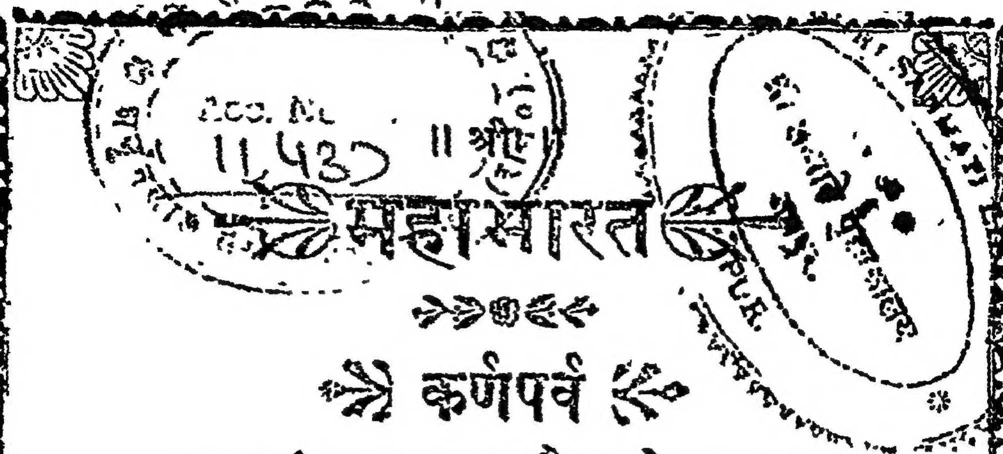
❁ कर्णपर्व की विषयसूची ❁



कर्णपर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो द्रोणे हते राजन् दुर्योधनमुखा नृपाः । भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन् ॥ १ ॥ ते द्रोणमनुशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः । पर्य्युपासन्त शोकार्त्तास्ततः शारद्वतीसुतम् २ ते मुहूर्त्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसंमितैः । रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे ॥ ३ ॥ तेषु वेश्मसु कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन् सुखम् । चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं दुःखशोकसमन्विताः ४

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायण, नरोंमें उत्तम और नर और वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार करके इतिहास आदि ग्रन्थोंकी व्याख्या करनेका आरम्भ करे ॥ * ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे राजा जनमेजय ! द्रोणाचार्यके मारे जाने पर दुर्योधन आदि (कौरवसेनाके योधा) राजे मनमें बहुत ही दुःखित होकर अश्वत्थामाके पास गये ॥ १ ॥ द्रोणाचार्यका शोक करते तथा दुःखसे अशक्त हुए वे शोकातुर राजे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास बैठगये ॥ २ ॥ और शास्त्रमें लिखे हुए अनेकों दृष्टान्त देकर दो घड़ीतक अश्वत्थामाको आश्वासन देते रहे, फिर सायंकाल होने पर वे सब अपनी छावनीमें चले गये ॥ ३ ॥ वे सब राजे दुःख और शोकसे व्याकुल होरहे थे, भयंकर संहारका ध्यान आनेसे उनको अपनी छावनीमें पहुँचकर

विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः । दुःशासनश्च शकुनिः सौबलश्च महाबलः ॥५॥उषितास्ते निशां तां तु दुर्योधननिवेशने । चिन्तयन्तः परिक्लेशान् पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ६ ॥ यच्चे द्यूतपरिक्लिष्टाः कृष्णा चानायिता सभाम् । तत् स्मरन्तोऽनुशोचन्तो भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ७ ॥ तथा तेषां चिन्तयतां तान् क्लेशान् द्यूतकारितान् । दुःखेन क्षणदा राजन् जगामाब्दशतोपमा॥८ ततः प्रभातसमये स्थिता दिष्टस्य शासने । चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९ ॥ ते कृत्वाऽवश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत । योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः ॥ १० ॥-कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान् दधि-

---

भी सुख नहीं मिला ॥ ४ ॥ सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन, दुःशासन और महाबली सुबलका पुत्र शकुनि ये सब उस रातको दुर्योधनके तम्बूमें सोये, और महात्मा पाण्डवोंको दियेहुए दुःखों का विचार करते रहे ॥ ५ ॥ ६ ॥ जो कि-जुएमें उनको क्लेश दिया था, द्रौपदीको घसीटकर सभामें बुलवाया था इस सबको याद करतेहुए वे मनमें पछतानेलगे और उनका चित्त बड़ा ही दुःखी हुआ ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जुएके समय दिये हुए दुःखोंका ध्यान आनेसे दुःखके कारण उनकी वह रात्रि सौ वर्षके समान होगयी (बड़े कष्टसे बीती) ॥ ८ ॥ तदनन्तर प्रातःकालके समय दैवकी आज्ञामें चलनेवाले उन सब राजाओंने शास्त्रमें कहीहुई विधिके अनुसार आवश्यक नित्यकर्म किये ॥ ९ ॥ हे भारत ! आवश्यक नित्यकर्म करनेके अनन्तर कौरव राजाओंने धीरज धरकर फिर सेनाओंको तयार होनेकी आज्ञा दी और युद्ध करनेके लिये निकलपड़े ॥ १० ॥ इस समय जिन्होंने ब्राह्मणों से मांगलिक कर्म करवाये हैं ऐसे दुर्योधन आदि राजाओंने इकट्ठे होकर कर्णका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया, दहीके पात्र,

पात्रघृताक्षतैः ॥ ११ ॥ निष्कैर्गोभिर्हिरण्यैश्च वासोभिश्च महा-धनैः। वन्दमाना जयाशीर्भिः सूतमागधवन्दिभिः ॥१२॥ तथैव पाण्डवा राजन् कृतपूर्वाह्निकक्रियाः । शिबिरान्निर्ययू राजन् युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ १३ ॥ ततः प्रवहते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । कुरूणां पाण्डवानाञ्च परस्परजयैषिणाम् ॥ १४ ॥ ततो द्विदिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः। कर्णे सेनापतौ राजन् बभूवातीव दारुणम् ॥ १५ ॥ ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः । पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥ १६ ॥ ततस्तु सञ्जयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम् । आचष्ट धृतराष्ट्राय यद्वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७ ॥ जनमेजय उवाच । आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणञ्चापि महारथम् । जगाम परमामार्त्तिं स वृद्धो राजाम्बिकासुतः १८

घी. अक्षत, गौ, घोड़े, सोनेकी मोहरें और बहुमूल्य वस्त्र देकर उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा की, ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये और सूत, मागध, वंदियोंने भी उनको जय २ के शब्दोंसे बढ़ावा दिया ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजा जनमेजय ! इसप्रकार ही पांडवों ने भी प्रभातके पहले पहरका सब नित्यकर्म करलिया और फिर लड़नेका निश्चय करके तुरन्त छावनीमेंसे निकलकर चलदिये ॥ १३॥ तदनन्तर परस्पर विजय चाहनेवाले कौरव और पांडवों का रोमांच खड़ा करनेवाला घोर युद्ध होनेलगा ॥१४॥हे राजन्! कर्णके सेनापति होजाने पर कौरव और पाण्डवोंकी सेनाओंका बड़ा ही घोर युद्ध दो दिनतक हुआ था ॥ १५ ॥ इस युद्धमें अर्जुनने वहुत सी शत्रुसेनाका संहार करके कौरवोंके देखतेहुए कर्णको मारडाला था ॥१६॥ कर्णके रणमें मारे जानेपर संजय तुरन्त हस्तिनापुरको गया और कुरुक्षेत्रमें जो घटना हुई थी वह सब धृतराष्ट्रसे कही ॥ १७ ॥ जनमेजयने पूछा, कि-महारथी भीष्मजी और द्रोणाचार्यको रणमें मारागया सुनकर अम्बिकाके

स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्य्योधनहितैषिणम् । कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १६ ॥ यस्मिन् जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः । तस्मिन् हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥ २० ॥ दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेपि वर्त्तताम् । यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥ २१ ॥ तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन् वाह्लीकमेव च । द्रोणञ्च सोमदत्तञ्च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२ ॥ तथैव चान्यान् सुहृदः पुत्रान् पौत्रांश्च पातितान् । श्रुत्वा यन्नाजहात् प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३ ॥ एतानि सर्वाण्याचद्व विस्तरेण महामुने । न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि जनमेजयवाक्ये

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुत्र बूढे राजा धृतराष्ट्रने बड़ा ही दुःख माना था ॥ १८ ॥ तो हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वैशम्पायनजी ! उसने दुर्योधनके हितैषी कर्ण को मारागया सुनकर दुःखी होतेहुए कैसे प्राणधारण किया था? ॥ १६ ॥ राजा धृतराष्ट्र कर्णके ऊपर ही अपने पुत्रोंकी विजय की आशा बाँधे बैठा था, उस कर्णके मारे जानेपर उसने अपने प्राणोंको कैसे धारण किया होगा ? ॥ २० ॥ मेरी समझमें मनुष्य महाकष्टमें पड़कर भी अपनी इच्छासे मरना नहीं चाहता, तभी तो राजा धृतराष्ट्र कर्णको मारागया सुनने पर भी अपने प्राणोंको नहीं त्यागसका ॥ २१ ॥ हे वैशम्पायनजी ! वृद्ध भीष्म पितामहको, द्रोणाचार्यको, सोमदत्तको, भूरिश्रवाको, दूसरे मित्रोंको, पुत्रोंको तथा पौत्रोंको रणमें मारेगये सुनने पर भी राजा धृतराष्ट्रने अपने प्राणोंको नहीं त्यागा, इससे मैं समझता हूँ, कि–मरना बड़ा कठिन काम है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे महामुने ! इन सब घटनाओं को विस्तारके साथ कहिये, अपने बड़ोंके इस महान् चरित्रको सुनते हुए भी मुझे तृप्ति नहीं होती ॥२४॥ प्रथम अध्याय समाप्त १

वैशम्पायन उवाच। हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा। दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ १ ॥ स हास्तिनपुरं प्राप्तो भृशमुद्विग्नमानसः। जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥२॥ समुद्वीक्ष्य स राजानं कश्मलाभिहतौजसम्। ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ॥ ३ ॥ सम्पूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम्। हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे ॥ ४ ॥ सञ्जयोहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान्। स्वदोषैरापदं प्राप्य कच्चिन्नाद्य विमुह्यसि ॥ ५ ॥ हितान्युक्तानि विदुरद्रोणगांगेय-केशवैः। अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ६ ॥ रामनारदकण्वाद्यैर्हितमुक्तं सभातले। न गृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न

वैशम्पायनने कहा, कि—हे महाराज जनमेजय! रणमें कर्णके मारेजाने पर दीन हुआ सञ्जय वायुकी समान वेगवाले घोड़ोंको रथमें जोतकर उस रातमें ही हस्तिनापुरको चलागया ॥ १॥ मनमें अति घबड़ाया हुआ सञ्जय हस्तिनापुरमें जापहुँचा और जिसके बान्धवोंका महान् क्षय होगया है ऐसे राजा धृतराष्ट्रके राजमहल में चलागया ॥ २ ॥ तहाँ राजा धृतराष्ट्र महादुःखसे निस्तेज (उदास) हुए बैठे थे, उनको देखते ही सञ्जयने दोनों हाथ जोड़ चरणोंमें शिर धरकर प्रणाम किया ॥ ३ ॥ उनका उचित रीतिसे सत्कार करनेके अनन्तर 'हाय रे! बड़ा बुरा होगया' ऐसा कहकर सञ्जय आगेकी बात कहनेलगा ॥ ४ ॥ हे राजन्! मैं संजय हूँ, आप सुखी तो हैं? अपने ही अपराधोंसे विपत्तिमें आपड़े हुए आपको आज खेद तो नहीं होता है? ॥ ५ ॥ विदुर द्रोणाचार्य, भीष्मजी और श्रीकृष्णने आपसे हितकी बातें कहीं थीं, परन्तु उन बातोंको आपने नहीं माना, यह बात याद करके आपके मनको खेद तो नहीं होता है? ॥ ६ ॥ आपसे परशुराम, नारद और कण्व आदिने बीच सभामें हितके वचन कहे थे, परंतु आपने नहीं माना, इस बातको याद करके आपके मनको दुःख

कुरुषे व्यथाम् ॥ ७ ॥ सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान् भीष्मद्रोणमुखान् परैः । निहतान् युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ८ ॥ तमेवं वादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् । स दीर्घमुष्णं निःश्वस्य दुःखार्त्त इदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । आपगेये हते शूरे दिव्यास्त्रवति सञ्जय । द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १० ॥ यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव ह । अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसम्भवः ॥ ११ ॥ स हतो यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना । पाण्डवेयाभिगुप्तेन श्रुत्वा मे व्यथितं मनः १२ भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महात्मने । साक्षाद्रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥ १३ ॥ यस्य प्रसादात् कौन्तेया राजपुत्रा महा-

---

तो नहीं होता है ? ॥७॥ तुम्हारा हित करनेके उद्योगमें लगे हुए भीष्म, द्रोण आदि तुम्हारे सम्बन्धियोंको शत्रुओंने रणभूमिमें मारडाला, उनको याद करके आपके मनमें दुःख तो नहीं होता है ? ॥ ८ ॥ सूतपुत्र संजयने दोनों हाथ जोड़कर राजा धृतराष्ट्र से इसप्रकार बूझा, तब दुःखसे व्याकुल हुए राजा धृतराष्ट्रने लंबा साँस छोड़कर संजयसे कहा ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्र बोले, कि—हे संजय ! दिव्य अस्त्रधारी, शूर पितामह तथा महाधनुषधारी द्रोणाचार्यके रणमें मारेजानेसे मेरा मन बड़ा ही दुःखित होरहा है ॥ १० ॥ वसुओंके अंशसे उत्पन्न हुए तेजस्वी भीष्मपितामह प्रतिदिन शरीर पर कवच धारण करके तयार हुए दश सहस्र रथियोंका संहार किया करते थे ॥ ११ ॥ उनको यज्ञसेन के पुत्र शिखण्डीने पाण्डवोंकी रक्षामें रहकर रणमें मारडाला, जिसकी याद आने पर मेरा मन बड़ा ही दुःखी होता है ॥१२॥ जिन महात्माका परशुरामजीने परम अस्त्र दिया था, और जिन को बालकपनमें अपना शिष्य बनाकर परशुरामजीने, स्वयं ही धनुर्वेद पढ़ाकर तयार किया था ॥ १३ ॥ जिनकी कृपासे कुन्ती

रथाः । महारथत्वं संप्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥ १४ ॥ तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे । सत्यसन्धं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १५ ॥ ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे । तौ द्रोणभीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः ॥ १६ ॥ त्रैलोक्ये यस्य चास्त्रेषु न पुमान् विद्यते समः । तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥ १७ ॥ संशप्तकानाञ्च बलं पाण्डवेन महात्मना । धनञ्जयेन विक्रम्य गमितं यमसादनम् ॥ १८ ॥ नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः । विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ॥ १९ ॥ विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नान् शोकसागरे । प्लवमानान् हते द्रोणे भिन्ननौकानिवार्णवे । दुर्योधनस्य कर्णस्य

के पुत्र राजकुमार पांडव तथा दूसरे राजे महारथी बनगये, ऐसे महाधनुषधारी और सत्यप्रतिज्ञावाले द्रोणाचार्यको रणमें धृष्टद्युम्नने मारडाला, यह सुनकर मेरा मन बड़ा ही खिन्न हुआ है ॥ १४ ॥ १५ ॥ इस जगत्में चार प्रकारके अस्त्रोंको जाननेमें जिन दोनोंकी समान कोई भी पुरुष नहीं है, उन भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यके मरणको सुनकर मेरा मन बहुत ही दुःखी हुआ है ॥ १६ ॥ तीनों लोकोंमें जिनकी समान अस्त्रविद्या जाननेवाला दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसे द्रोणाचार्यके मरणको सुनकर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १७ ॥ पांडुकुमार महात्मा धनंजयने पराक्रम करके जब संशप्तकोंके सेनादलका संहार करडाला, जब बुद्धिमान् अश्वत्थामाका नारायणास्त्र निष्फल होगया और जब सेनामें भागड पड़गयी तब मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १८ ॥ १९ ॥ मेरी समझमें जब द्रोणाचार्य मारेगये होंगे, उस समय जैसे नौकाके टूटजाने पर उसमें बैठेहुए मनुष्य अपने प्राण बचानेकी इच्छासे समुद्रमें तैरने लगते हैं, तैसे ही शोकसागरमें डूबेहुए सैनिक भी अपनी रक्षाके लिये भागने

भोजस्य कृतवर्मणः ॥२०॥ मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च। मत्पुत्रस्य शेषस्य तथान्येषाञ्च सञ्जय ॥ २१ ॥ विप्रद्रुतेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत् कथम्। एतत् सर्वं यथा वृत्तं तथा गायन्गणे मम ॥ २२ ॥ आचक्ष्व पांडवेयानां मामकानाञ्च विक्रमम्। सञ्जय उवाच। तवापराधाद्यद्वृत्तं कौरवेयेषु मारिष२३तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः। तस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति।अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न बुधः कुरुते व्यथाम् ॥२४॥ धृतराष्ट्र उवाच। न व्यथाभ्यधिका काचिद्विद्यते मम सञ्जय। दिष्टमेतत्पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयधृतराष्ट्र-
सम्वादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

लगे होंगे ॥ २० ॥ हे संजय! जब सेनाओंमें भागड़ पड़गयी उस समय दुर्योधन, कर्ण, भोज, कृतवर्मा, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा मेरे दूसरे पुत्रोंके मुखका रङ्ग कैसा होगया था? यह सब घटना जैसी कुछ हुई हो, मुझे सुना, तथा पांडुके पुत्रोंका और मेरे पुत्रोंका पराक्रम भी मुझे सुना॥ २१-२३ ॥ संजयने कहा, कि-हे राजन्! तुम्हारे अपराधसे कौरवोंको जो दुःख हुआ है, उसको सुनकर तुम अपने मनमें दुःख न मानो, विद्वान् पुरुष दैवाधीन वस्तुके लिये खेद नहीं करता है ॥२४॥ क्योंकि मनुष्यको सुख वा दुःख दैवकी इच्छानुसार होता, है दुर्दैवके कारणसे सुख नहीं मिलता किन्तु दुःख ही मिलता है, तथापि विवेकी पुरुष उसके लिये खिन्न नहीं होता है ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे संजय! मैं किसी भी दुःखको अधिक नहीं मानता हूँ, किन्तु उसको पूर्वजन्मके कर्मका अवश्य प्राप्त होनेवाला फल मानता हूँ, इसलिये तू अपनी इच्छानुसार मुझे सब वृत्तान्त सुना ॥२६॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच । हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः । बभूवुरस्वस्थमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥१॥ अवांमुखाः शस्त्रभृतः सर्वे एव विशाम्पते । अवेक्षमाणाः शोकार्त्ता नाभ्यभाषन् परस्परम् ॥ २ ॥ तान् दृष्ट्वा व्यथिताकारान् सैन्यानि तव भारत । ऊर्ध्वमेव निरैक्षन्त दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥ ३ ॥ अस्त्राण्येषान्तु राजेन्द्र शोणितान्यनेकशः । प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं हतं युधि ॥ ४ ॥ तानि बद्धान्यरिष्टानि लम्बमानानि भारत । अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥५॥ तथा तु स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्त्वमवस्थितम् । बलं तव महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ६ । भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि । पांडवेया समाहूता युद्धञ्चेदं प्रवर्त्तितम् ॥ ७ ॥ तदिदं निहते द्रोणे विषण्ण-

---

संजयने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! महाधनुषधारी द्रोणाचार्यके मारेजाने पर तुम्हारे महारथी पुत्रोंके मुख निस्तेज उदास और विचारशक्तिसे शून्य होगये ॥ १ ॥ हे भूपते ! सब शस्त्रधारी राजे द्रोणाचार्यका मरण हुआ देखकर नीचेको मुख किये शोकातुर होकर विना कुछ बोले चाले एक दूसरेके मुखकी ओर को देखनेलगे॥२॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय तुम्हारे सैनिक तुम्हारे पुत्रोंके तथा दूसरे राजाओंके मुखोंको शोकातुर देखकर दुःखसे बहुत ही घबड़ागये और ऊपरको ताकनेलगे ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र ! उनके रुधिरमें सनेहुए अनेकों शस्त्र, रणमें द्रोणाचार्यको पराहुआ देखतेही उनके हाथोंमें से छूट कर नीचे गिर पड़े ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी महाराज ! कमरमें बाँधे हुए शस्त्र ढीले होकर लटकने पर अशुभकी सूचना देते हुए मालूम होते थे मानो आकाशमेंसे तारागण नीचेको मुख करके गिररहे हैं ॥५॥ हे महाराज ! तुम्हारी सेनाको बलहीनसी हुई और भौचक्कीसी होकर खड़ी हुई देख राजा दुर्योधनने कहा, कि—॥६ ॥ मैंने तुम्हारे भुजदण्डोंके पराक्रमका भरोसा रखकरही पांडवोंको रणमें लड़ने

मिव लक्ष्यते । युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वशः ॥ ८ ॥
जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे । भवेत् किमत्र चित्रं वै
युध्यध्वं सर्वतोमुखाः ॥ ९ ॥ पश्यध्वञ्च महात्मानं कर्णं वैकर्तनं
युधि । प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥ १० ॥ यस्य वै
युधि सन्त्रासात् कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । निवर्त्तते सदा मन्दः सिंहात्
क्षुद्रमृगो यथा ॥ ११ ॥ येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥ १२ ॥ येन दिव्यास्त्रवि-
च्छूरो मायावी स घटोत्कचः । अमोघया रणे शक्त्या निहतो
भैरवं नदन् ॥ १३ ॥ तस्य दुष्पारवीर्यस्य सत्यसन्धस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ १४ ॥ द्रोणपुत्रस्य
विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः । पश्यन्तु पांडुपुत्रास्ते विष्णुवास-

---

के लिये बुलाया है और इस युद्धका आरम्भ किया है ॥ ७ ॥
परन्तु द्रोणाचार्यके मारे जाने पर यह सब सेना मुझे उदाससी
दीख रही है, रणमें लड़नेवाले हमारे योधाओंको शत्रु चारों ओरसे
मारे डालते हैं ॥ ८ ॥ रणमें लड़नेवालोंकी जीत या हार इन
दोनोंमेंसे एक अवश्यही होती है, फिर आश्चर्यकी कौनसी बात है,
अब तुम चारों ओरको मुड़कर शत्रुओंके साथ युद्ध करो ॥ ९ ॥
जिसके भयसे कुन्तीका मूर्ख पुत्र अर्जुन, जैसे सिंहसे छोटासा
मृग भाग जाता है तैसेही युद्धमेंसे भागजाया करता है, ऐसा महा-
बली महात्मा महाधनुषधारी सूर्यका पुत्र कर्ण दिव्य अस्त्रोंको
धारण कियेहुए देखो रणमें कैसा घूम रहा है ? ॥ १० ॥११॥
इस कर्णने ही दशहजार हाथियोंकी समान शक्तिमान् महाबली
भीमसेनको भी मानवी युद्धसे हरादिया था ॥१२॥इस कर्णने ही
संग्राममें गर्जना करके अपनी अमोघ शक्तिसे दिव्य अस्त्रोंको जानने
वाले बली मायावी उस वीर घटोत्कचको मारडाला था ॥१३॥
ऐसे महापराक्रमी, सत्य प्रतिज्ञावाले और बुद्धिमान् कर्णके दोनों
भुजदण्डोंके अक्षय बलको तुम आज रणमें देखना ॥ १४ ॥

वयोरिव ॥ १५ ॥ सर्वे एव भवन्तश्च शक्ताः प्रत्येकशोपि वा । पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान् किमु संहताः । वीर्यवन्तः कृतास्त्राश्च द्रक्ष्यथाद्य परस्परम् ॥ १६ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा ततः कर्णं चक्रे सेनापतिं तदा । तव पुत्रो महावीर्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ १७ ॥ सैन्यापत्यमवाप्याथ कर्णो राजन् महारथः । सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः ॥ १८ ॥ स सृञ्जयानां सर्वेषां पञ्चालानाञ्च मारिष । केकयानां विदेहानामकरोत् कदनं महत् ॥ १९ ॥ तस्येषुधाराः शतशः प्रादुरासन् शरासनात् । अग्रे पुंखेषु संसक्ता यथा भ्रमरपंक्तयः ॥ २० ॥ स पीड-

---

पाण्डव भी विष्णु और इन्द्रकी समान अश्वत्थामा और कर्ण इन दोनोंके पराक्रमको आज देखलें । ॥ १५ ॥ तुम सबोंमेंका एक २ योधा संग्राममें पाण्डवोंको सेनासहित मारनेकी शक्ति रखता है, फिर यदि तुम सब इकट्ठे होजाओ तब तो कहना ही क्या है ? तुम सब पराक्रमी अस्त्रविद्यामें कुशल हो, आज तुम आपसमें एक दूसरेको अपना २ बल दिखलाना ॥ १६ ॥ सञ्जयने कहा, कि —हे राजा धृतराष्ट्र ! ऐसा कहकर तुम्हारे महावीर पुत्र दुर्योधनने अपने भाइयोंके साथ संमतिके करके उसी समय कर्णको सेनापतिके पदपर नियत करदिया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! महारथी कर्ण सेनापतिके पदको पाकर सिंहकी समान गर्जना करता हुआ रणभूमिमें उन्मत्तसा होकर लड़ने लगा १८ हे राजन् ! उसने सकल सृञ्जय, पंचाल, केकय और विदेह राजाओंका संहार करडाला ॥ १९॥ इस युद्धमें कर्णके धनुष में से बाणोंकी सैंकड़ों धारें छूट रही थीं, और भौंरोंकी पंक्तियोंकी समान वे धारायें आगेके भागसे (फलकोंके भागसे) मानो दूसरे बाणोंके पिछले भागसे जुड़ीहुईसी मालूम होती थीं अर्थात् बाणोंकी अविच्छिन्न वर्षा होरही थी ॥ २० ॥ बड़े वेगमें भरे

यित्वा पञ्चालान् पांडवांश्च तरस्विनः। हत्वा सहस्रशो योधान्‌-र्जुनेन निपातितः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच। एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोम्बिकासुतः। शोकस्यान्तमपश्यन् वै हतं मेने सुयोधनम् ॥ १ ॥ विह्वलः पतितो भूमौ नष्टचेता इव द्विपः। तस्मिन्निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे२ आर्त्तनादो महानासीत् स्त्रीणां भरतसत्तम। स शब्दः पृथिवीं कृत्स्नां पूरयामास सर्वशः ॥ ३ ॥ शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः। रुरुदुर्भृशसन्तप्ता भ्रतीवोद्विग्नमानसाः ॥४॥ राजानञ्च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ। निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वा-

---

हुए पांचाल राजे और पांडव कर्णके मारे रणमें त्राहि २ पुकारने लगे और कर्णने रणमें हजारों योधाओं का संहार करडाला परन्तु अर्जुनने उसको मार कर गिरा दिया ॥ २१ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

वैशंपायन कहते हैं, कि–हे महाराज जनमेजय ! कर्णके मरण का समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्रको बड़ा शोक हुआ और उस समय उसने समझ लिया, कि-बस अब दुर्योधन भी मारागया१ वह अचेत हुए हाथीकी समान विह्वल होकर भूमिमें गिरपड़ा उस श्रेष्ठ राजा के भूमि में विह्वल हो कर गिरपड़ने पर हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! रणवासकी स्त्रियोंमें बड़ाभारी आर्त्तनाद हो उठा, जिस शब्दसे सब पृथ्वी (राजमहल) चारों ओरसे गूँज उठी ॥ २ ॥ ३ ॥ कौरवोंकी स्त्रियें महाभयानक शोकसागरमें डूबगयीं, मनमें बहुतही घबड़ागयीं और दुःख तथा शोकसे व्याकुल होकर रोने लगीं ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी जनमेजय। इस समय महारानी गान्धारी दूसरी सब स्त्रियोंके सहित राजा धृतराष्ट्र के पास आपहुँची और वे सब स्त्रियें अचेत होकर पृथ्वी

यन्तपुराणि च ॥ ५ ॥ ततस्ताः संजयो राजन् समाश्वासय-
दातुराः । मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम् ॥ ६ ॥
समाश्वस्ता स्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः। कदल्य इव वातेन धूय-
मानाः समन्ततः ॥ ७ ॥ राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम् ॥ ८ ॥ स लब्ध्वा
शनकैः संज्ञां ताश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृपः । उन्मत्त इव राजा तु स्थित-
स्तूष्णीं विशाम्पते ॥ ९ ॥ ततो ध्यात्वा चिरं कालं निःश्वस्य च
पुनः पुनः । स्वान् पुत्रान् गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान् १०
गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च । ध्यात्वा च सुचिरं
कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥ संस्तभ्य च मनो भूयो राजा
धैर्यसमन्वितः । पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत सञ्जयम् ॥ १२ ॥

पर गिरपड़ीं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! वे वार२ उठतीं और अचेत हो
जाती थीं, तब शोकातुर होकर आँसू बहाने वाली उन रानियों
को संजयने समझाया ॥ ६ ॥ थोडी देरमें वे सब स्त्रियें शान्त
हुईं परन्तु जैसे केलेके वृक्ष पवन चलने पर चारों ओरको काँपने
लगते हैं तैसेही वार२ काँपनेलगीं ॥ ७ ॥ उधर कुरुवंशी प्रज्ञाचक्षु
राजा धृतराष्ट्र मूर्छित हुए पड़े थे, उनको विदुरने छींटे देकर
होशमें किया ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र ! जब राजा धृतराष्ट्रको धीरे २
चेतहुआ तो समीपमें स्त्रियोंको रोती हुई देखकर हे राजन् ! वह
पागलसा होकर चुपचाप बैठगया ॥ ९ ॥ और फिर बहुत देर
तक सोचविचार करके तथा वार २ लंबे साँस लेकर अपने पुत्रों
की निंदा और पांडवोंकी प्रशंसा करने लगा ॥ १० ॥ फिर वह
बहुत देरतक विचार करके अपनी तथा सुबलके पुत्र शकुनिकी
बुद्धिकी निन्दा करने लगा और वारम्वार काँपने लगा ॥११॥
फिर राजा धृतराष्ट्र ने धीरज धरकर अपने मनको रोका और
अपने सारथी संजयसे फिर बूझने लगा, कि–॥ १२ ॥

त्वया यत्कथितं वाक्यं श्रुतं सञ्जय तन्मया।कच्चिद्द दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ॥ १३ ॥ जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकामुकः। ब्रूहि सञ्जय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥ १४ ॥ एवमुक्तोऽब्रवीत् सूतो राजानं जनमेजय। हतो वैकर्त्तनो राजन् सहपुत्रैर्महारथः। भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः॥१५॥दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना। पीतञ्च रुधिरं कोपात् भीमसेनेन संयुगे ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रशोके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच। एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोम्बिकासुतः। अब्रवीत् सञ्जयं सूतं शोकसंविग्नमानसः ॥ १ ॥ दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्यादीर्घजीविनः। हतं वैकर्त्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि

हे संजय!तूने मुझसे जो बात कही वह मैंने सुनली,हे संजय! मेरा पुत्र दुर्योधन सदा विजय चाहताहै,परन्तु अब तो उसको विजयकी आशा नहीं रही, इसलिये हे सञ्जय! दुर्योधन कहीं मर तो नहीं गया? यद्यपि यह कथा तू मुझे सुना चुका है, परन्तु इसको फिर सुना ॥ १३ ॥ १४ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय! इसप्रकार बूझने पर सूतपुत्र सञ्जयने धृतराष्ट्र से कहा, कि-हे राजन्! सूर्यका पुत्र कर्ण, रणमें शरीर त्यागने वाले महाधनुपधारी अपने भाई तथा दूसरे सूतपुत्रोंके साथ मारागया, यशस्वी पांडुकुमार भीमसेनने रणमें दुःशासनको मारडाला और क्रोधमें भरकर उसके रुधिरको पीलिया १५-१६ चौथा अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे महाराज! अम्बिकाके पुत्र राजा धृतराष्ट्र सूतपुत्र संजयसे युद्धका भयंकर समाचार सुनकर मनमें शोकातुर होगये और संजयसे बूझनेलगे, कि—॥ १ ॥ हे तात! थोड़ी आयुवाले मेरे पुत्र दुर्योधनके अन्यायसे कर्ण मारागया,यह

कृन्तति ॥ २ ॥ तस्य मे संशयं छिन्धि दुःखपारं तितीर्षतः । कुरूणां पाण्डवानाञ्च के नु जीवन्ति के मृताः ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच। हतः शान्तनवो राजन् दुराधर्षः प्रतापवान् । हत्वा पाण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ ४ ॥ तथा द्रोणो महेष्वासः पञ्चालानां रथव्रजान् । निहत्य युधि दुर्द्धर्षः पश्चाद्रुक्मरथो हतः ॥५॥ हतशेषस्य भीष्मेन द्रोणेन च महात्मना । अर्द्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्त्तनो हतः ॥ ६ ॥ विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः । आनर्त्तयोधान् शतशो निहत्य निहतो युधि ॥ ७ ॥ अथ पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रधर्ममनुस्मरन् । क्षीणवाहायुध शूरः स्थितो ऽभिमुखः परान् ॥ ८ ॥ घोररूपान् परिक्लेशान् दुर्योधनकृतान् बहून् । प्रतिज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥ ९ ॥ विन्दा-

सुनकर शोक मेरे मर्मस्थानोंको फाटडालता है ॥ २ ॥ मैं दुःखके पार पहुँचना चाहता हूँ, इसलिये तू मेरे सन्देहको दूर करनेके लिये बता, कि-कौरवों और सृञ्जयोंमें कौन २ जीते हैं और कौन २ मरगये ? ॥ ३ ॥ संजयने कहा, कि-हे राजन् ! शन्तनुके पुत्र, महाप्रतापी और प्रचण्ड भीष्मपितामह दश दिनमें पाण्डवोंके असंख्यों योधाओंको मारकर फिर आप भी मारेगये ॥४॥ महाधनुषधारी और असह्य द्रोणाचार्यने सोनेके रथमें बैठकर पञ्चालोंके अनेकों रथियोंका संहार किया और फिर वह भी मारे गये ॥ ५ ॥ महात्मा भीष्म और द्रोणके हाथसे मारेजाते समय जो बाकी रहगये थे, उनमेंसे आधे सैनिकोंको मारकर सूतपुत्र कर्ण भी मारागया ॥ ६ ॥ हे महाराज ! महाबली राजकुमार विविंशति आनर्त्त देशके सैंकड़ों योधाओंको रणमें मारकर आप भी मारागया ॥ ७ ॥ तुम्हारे वीर पुत्र विकर्णके घोड़े मारेगये शस्त्र टूटगये तब भी क्षत्रियके धर्मको याद करके रणमें शत्रुओंके सामने खड़ाहुआ जूझता रहा ८ उस समय भीमसेनने, कौरवोंके दिये हुए बहुतसे दुःखोंको याद करके तथा अपने आप

ऽनुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महाबलौ । कृत्वा त्वसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ १० ॥ सिन्धुराष्ट्रमुखानीह दशराष्ट्राणि यानि ह । वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥११॥ अक्षौहिणीर्दशैकाञ्च निर्ज्जित्य निशितैः शरैः । अर्जुनेन हतो राजन् महावीर्यो जयद्रथः ॥ १२ ॥ तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः । वर्त्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः ॥ १३ ॥ तथा दौःशासनिः शूरो बाहुशाली रणोत्कटः । द्रौपदेयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥१४॥किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम् । देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥ १५ ॥ भगदत्तो महीपालः क्षत्रधर्मरतः सदा । धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् १६ तथा कौरवदायादः न्यस्तशस्त्रो महायशाः। हतो भूरिश्रवा राजन्

जो प्रतिज्ञा की थी उसको भी याद करके विकर्णको मारडाला ॥ ९ ॥ अवन्ती देशके महारथी राजकुमार विन्द और अनुविन्द रणमें महाकठिन पराक्रम करके यमलोकमें चलेगये ॥१०॥ जिन में सिन्धुदेश मुख्य है ऐसे दश देश, जिस वीरकी अधीनतामें थे और जो आपकी आज्ञामें रहता था, उस महापराक्रमी (तुम्हारे जामाता) जयद्रथको तेज किये हुए बाणोंसे अर्जुनने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको हराकर मारडाला॥११॥१२॥दुर्योधनका पुत्र लक्ष्मण जो युद्धमें दुर्मद और पिताकी समान बली था उसको हे महाराज ! सुभद्राके पुत्रने रणमें मारडाला ॥ १३ ॥ दुःशासन का पुत्र वीर बाहुशाली जो बड़ा ही प्रबल लड़नेवाला था वह द्रौपदीके पुत्रके साथ युद्ध करतेमें यमलोकको सिधारगया॥१४॥ सागर और अनूप देशोंमें रहनेवाले भीलोंका स्वामी, धर्मात्मा, इन्द्रका प्यारा और बहुमान्य मित्र, सदा क्षत्रियधर्मका पालन करनेवाला भगदत्त अर्जुनके साथ युद्ध करतेमें उसके पराक्रम से यमलोकको पधारगया ॥ १५ ॥ १६ ॥ तथा हे राजन् ! बड़े यशवाला कौरववंशके दायाद (हिस्सेदार) सोमदत्तके पुत्र

शूरः सात्यकिना युधि ॥ १७ ॥ श्रुतायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धुरन्धरः । चरन्नभीतवत् संख्ये निहतः सव्यसाचिना ॥ १८ ॥ तव पुत्रः सदामर्षी कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः । दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥ यस्य राजन् गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् । सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना ॥ २० ॥ कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुशतान् परान् । सौभद्रेणेह विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २१ ॥ बहुशो योधयित्वा च भीमसेनं महारथम् । चित्रसेनस्तव सुतो भीमसेनेन पातितः ॥ २२ ॥ मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्द्धनः । असिचर्मधरः श्रीमान् सौभद्रेण निपातितः ॥२३॥ समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः । वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रो दृढविक्रमः ॥ २४ ॥ अभिमन्योर्वधं

भूरिश्रवाने रणमें हथियार छोड़ दिये थे तो भी सात्यकीने उस वीरको मारडाला ॥ १७ ॥ श्रुतायु तथा अम्बष्ठ क्षत्रियोंमें धुरंधर थे और रणमें निर्भय होकर घूमते थे, उनको अर्जुनने मारडाला ॥१८॥ हे महाराज ! तुम्हारा पुत्र दुःशासन जो कभी किसीकी बातको नहीं सहसकता था, और अस्त्रविद्यामें कुशल तथा युद्ध करनेमें प्रचण्ड था, उसको भीमसेनने मारडाला १९ और हे राजन् ! जिसके पास सहस्रों उत्तम हाथियोंकी सेना थी उस राजा सुदक्षिणको रणमें अर्जुनने मारडाला ॥ २० ॥ बड़ा मान पायेहुए शत्रुओंका संहार करनेके अनन्तर कोशलदेशका राजा सुभद्राके पुत्रके साथ लड़कर यमलोकको चलागया २१ तुम्हारा पुत्र चित्रसेन महारथी भीमसेनके साथ बहुत समय तक टक्कर झेलनेके अनन्तर भीमसेनके हाथसे मारागया ॥ २२ ॥ मद्रराजका पुत्र वीर, शत्रुओंको भय देनेवाला, ढाल तलवार धारण करनेवाला और राजलक्ष्मीसे देदीप्यमान था. उसको भी सुभद्राके पुत्रने मारडाला ॥ २३ ॥ महातेजस्वी कर्णका पुत्र वृषसेन कर्णकी समान ही पराक्रमी, बड़ा अस्त्रधारी और दृढ़पराक्रमी था, उसको अर्जुनने

स्मृत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः । धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २५ ॥ नित्यं प्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः । विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः ॥ २६ ॥ शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष । हतो रुक्मरथो राजन् भ्राता मातुलजो युधि ॥ २७ ॥ राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च कैकयः । पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ ॥ २८ ॥ भगदत्तसुतो राजन् कृतप्रज्ञो महाबलः । श्येनवच्चरता संख्ये नकुलेन निपातितः ॥ २९ ॥ पितामहस्तव तथा बाह्लीकः सह बाह्लिकैः । निहतो भीमसेनेन महाबलपराक्रमः ॥ ३० ॥ जयत्सेनस्तथा राजन् जारासन्धिर्महाबलः । मागधो निहतः संख्ये सौभद्रेण महात्मना ३१ पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन् दुःसहश्च महारथः । गदया भीमसेनेन

अभिमन्युका मरण सुनकर तथा अपनी प्रतिज्ञाको याद करके रणभूमिमें ही कर्णके देखतेहुए ही युद्ध करके मारडाला ॥ २४॥ ॥ २५ ॥ और जो नित्य पांडवोंके साथ वैर रखता था, उस राजा श्रुतायुको अर्जुनने वैरको याद करके मारडाला ॥ २६ ॥ और हे मान्य राजन् ! शल्यका पुत्र विक्रान्त, जो कि—अपने मामाका पुत्र था, तथा सोनेके रथमें बैठकर युद्ध करता था, उसको सहदेवने युद्धमें मारडाला ॥२७॥ तथा महापराक्रमी, बलवान् और बड़ी वीरता दिखानेवाले केकयवंशी बूढ़े राजा भगीरथको और बृहत्क्षत्रको भी उसने ही मारडाला ॥ २८ ॥ हे राजन् ! भगदत्तका पुत्र महाबली और बुद्धिमान् था, उसको रणभूमिमें शङ्करकी समान घूमतेहुए नकुलने मारडाला ॥ २९ ॥ भीमसेनने महाबली और पराक्रमी तुम्हारे पितामह बाल्हीकको, बाल्हीकों की सेनाके सहित लड़ाइमें मारडाला ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जरासंधके पुत्र महाबली मगधराज जयत्सेनको संग्राममें महात्मा अभिमन्युने मारडाला ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे महारथी पुत्र

निहतौ शूरमानिनौ ॥ ३२ ॥ दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः । कृत्वा त्वसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३३ ॥ उभौ कलिङ्गवृषभौ भ्रातरौ युद्धदुर्मदौ । कृत्वा चासुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३४ ॥ सचिवो वृषवर्मा ते शूरः परमवीर्यवान् । भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३५ ॥ तथैव पौरवो राजा नागायुतबलो महान् । समरे पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥ ३६ ॥ वसातयो महाराज द्विसाहस्रा प्रहारिणः । शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः ॥ ३७ ॥ अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो रणोत्कटाः । शिबयश्च रथोदाराः कालिङ्गसहिता हताः ॥ ३८ ॥ गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोपनाः । तेऽपावृत्तकवीराश्च निहताः सव्यसाचिना ॥ ३९ ॥ श्रेणयो बहु-

---

दुर्मुख और दुःसह वीरताका बड़ा अभिमान रखते थे उन दोनों राजकुमारोंको भीमसेनने, गदाके प्रहारसे मारडाला ॥ ३२ ॥ महारथी दुर्मर्षण, दुर्विषह और दुर्विजय बड़ा कठिन पराक्रम करके यमलोकको गये हैं॥३३॥ऐसे ही युद्धमें प्रचण्ड कर्म करने वाले कलिङ्ग और वृषक नामक दो भाई भी महाकठिन पराक्रम करके परलोकवासी होगये॥३४॥आपके वीर तथा महापराक्रमी मन्त्री वृषवर्माको भी भीमसेनने पराक्रम करके यमलोकमें भेजदिया ॥ ३५ ॥ ऐसे ही दश सहस्र हाथियोंकी समान बलवाले बड़े भारी राजा पौरवको पांडुपुत्र अर्जुनने युद्धमें मारडाला ॥३६॥ हे महाराज ! वसाति नामके दो सहस्र योधाओंको तथा पराक्रमी सब शूरसेनोंको अर्जुनने युद्धमें मारडाला ॥ ३७ ॥ तथा कवचधारी, रणमें भयानक पराक्रम करनेवाले तथा सफल प्रहार करनेवाले अभीषाहोंको, उदार रथी शिबियोंको तथा कलिङ्गोंको अर्जुनने मारडाला ॥ ३८ ॥ जो सदा गोकुलमें पलकर बड़े हुए थे, जो युद्धके समय महाक्रोध करनेवाले तथा पीछेको पैर न रखनेवाले थे उन संशप्तकोंके साथी गोपालोंको भी अर्जुनने

साहस्राः संशप्तकगणाश्च ये । ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वत-
क्षयम् ॥ ४० ॥ श्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ । त्व-
दर्थमतिविक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना ॥ ४१ ॥ उग्रकर्मा महे-
ष्वासो नामतः कर्मतस्तथा । शाल्वराजो महाबाहुर्भीमसेनेन
पातितः ॥ ४२ ॥ ओघवांश्च महाराज बृहन्तः सहितौ रणे ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥४३॥ तथैव रथिनां श्रेष्ठः
क्षेमधूर्त्तिर्विशाम्पते । निहतो गदया राजन् भीमसेनेन संयुगे ४४
तथा राजन्महेष्वासो जलसन्धो महाबलः । सुमहत्कदनं कृत्वा हतः
सात्यकिना रणे ॥ ४५ ॥ अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयात-
वान् । घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ४६ ॥ राधेयः
सूतपुत्रश्च भ्रातरश्च महारथाः । कैकेयाः सर्वशश्चापि निहताः

रणमें मारडाला ॥ ३९ ॥ तथा और भी सहस्रों पैदलोंकी
टुकड़ियें तथा संशप्तक भी अर्जुनके सामने लड़कर यमलोकको
सिधारगये ॥ ४० ॥ हे महाराज ! आपके दो साले राजा वृषक
और अचल आपके लिये रणमें बड़ाभारी पराक्रम करके अर्जुनके
हाथसे मारेगये ॥ ४१ ॥ जो बड़ा उग्र पराक्रम करता था और
जिसका नाम भी उग्रकर्मा था वह महाधनुषधारी, महाबाहु राजा
शाल्व भीमसेनके हाथसे मारा गया॥४२॥ हे महाराज ! राजा
ओघवान् और बृहन्त अपने मित्र दुर्योधनके लिये रणमें मिलकर
पराक्रम करते थे वे भी यमलोकको सिधारगये ॥ ४३ ॥ हे
राजन् ! ऐसेही रथियोंमें श्रेष्ठ राजा क्षेमधूर्त्तिको रणमें भीमसेनने
गदाके प्रहारसे मारडाला ॥ ४४ ॥ तथा हे राजन् ! बड़ा धनुष-
धारी महाबली जलसन्ध रणमें बड़ी भारी मार काट करके
सात्यकीके हाथसे मारागया ॥ ४५॥ जिसके रथमें गधे जुते हुए
थे उस राक्षसेन्द्र अलंबुषको घटोत्कचने यमलोकको भेजदिया ४६
अर्जुनने रणमें सूतपुत्र कर्णको, उसके महारथी भाइयोंको तथा

सव्यसाचिना ॥ ४७ ॥ मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रविक्रमाः।
यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥ ४८ ॥ मावेल्ल-
कास्तुण्डिकेराः सावित्रीपुत्रकाश्च ये। प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च
दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥ ४९ ॥ पत्तीनां निहताः संघा हयानां
प्रयुतानि च। रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥ ५० ॥
सध्वजाः सायुधा शूराः सवर्माम्बरभूषणाः। कालेन महता यत्ताः
कुशलैर्ये च वर्द्धिताः ॥ ५१ ॥ ते हताः समरे सर्वे पार्थेनाक्लिष्ट-
कर्मणा। अन्ये तथामितबलाः परस्परवधैषिणः ॥ ५२ ॥ एते
चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे। हताः सहस्रशो राजन्
यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ५३ ॥ एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुन-
समागमे। महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ॥ ५४ ॥

सब केकय भाइयोंको अर्जुनने मारडाला ॥ ४७ ॥ और हे राजन् ! मालवेके राजाओंको, मद्रदेशके राजाओंको, उग्र पराक्रम करने वाले द्रविड़देशके राजाओंको, यौधेयोंको, ललित्थोंको क्षुद्रकोंको उष्णीनरोंको ॥ ४८ ॥ मावेल्लकोंको, तुण्डिकेरोंको, सावित्री के पुत्रोंको तथा पूर्वके, उत्तरके, पश्चिमके और दक्षिणके जो भी राजे आये थे उनको अर्जुनने मारडाला ॥ ४९ ॥ पैदलोंके समूह (अनेकों कंपानियें), दश लाख घोड़े, लाखों रथी और हाथियोंकी बड़ीभारी सेनाका उसने संहार करडाला है ॥ ५० ॥ जिन्होंने ध्वजायें, शस्त्र, कवच, वस्त्र और आभूषण धारण किये थे, जो बड़े वीर थे और जिनको प्रवीण शिक्षकोंने बहुत समय तक शिक्षा देकर कुशल बनाया था, उनको भी उत्तमकर्म करनेवाले अर्जुनने रणभूमिमें मारडाला, तदनन्तर महाबली, परस्परके प्राण लेना चाहने वाले और भी बहुतसे राजाओंको तथा सहस्रों योधाओंको अर्जुनने रणमें मारडाला, हे राजन् ! आपने जो मुझसे प्रश्न किया था, उसका ही मैं आपको उत्तर देरहा हूँ ॥ ५१-५३ ॥ कर्ण और अर्जुनका सामना होने पर

यथा कृष्णेन नरको मुरुश्च नरकारिणा। कार्त्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण बलीयसा ॥ ५५ ॥ सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्ध-दुर्मदः। रणे कृत्वा महद्युद्धं घोरं त्रैलोक्यमोहनं ॥ ५६ ॥ यथा स्कन्देन महिषो यथा रुद्रेण चान्धकः। तथार्जुनेन निहतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ॥ ५७ ॥ सामात्यबान्धवो राजन् कर्णः प्रहरतांवरः। जयाशा धार्त्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ॥ ५८ ॥ तीर्णस्तत् पाण्डवैश्च यत् पुरा नावबुध्यसे। उच्यमानो महाराज बन्धुभि-र्हितकाङ्क्षिभिः। तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं सुमहात्ययम् ॥ ५६ ॥ पुत्राणां राज्यकामानां त्वया राजन् हितैषिणा। अहितान्येव चीर्णानि तेषां तत्फलमागतम् ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

इसप्रकार यह संहार होगया, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरका नाश किया था, जैसे रामने रावणको मारा था, जैसे कृष्णने नरकासुरका वध किया था, नरकारिने जैसे मुरको मारा था, भृगुपुत्र परशु-रामने जैसे रणभूमिमें त्रिलोकीको मोहित करनेवाला महाभयानक युद्ध करके युद्धमें दुर्मद वीर कार्त्तवीर्यको उसकेसम्बन्धी और बांधवों के सहित रणमें मारा था, स्वामिकार्त्तिकेयने जैसे महिषासुरका नाश किया था, रुद्रने जैसे अन्धकासुरका संहार किया था, तैसे ही युद्धमें दुर्मद महायोधा,वीर कर्णको,जाति और बांधवोंके सहित अर्जुनने रणभूमिमें द्वन्द्वयुद्ध करके मारडाला, तुम्हारे पुत्र जिससे अपनी विजयकी आशा रखते थे और जिससे वैरका आरम्भ हुआ था,उस कर्णको मारकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है,हेराजन्! हितकी इच्छा रखनेवाले बान्धवोंने तुमसे पहले,राज्यकी कामना वाले तुम्हारे पुत्रोंका हित चाहकर कहा था, तो भी तुम समझे नहीं इसकारण ही तुम्हें यह महादुःख भोगना पड़ा है, तुमने पांडवोंके लिये अहित काम किये थे, उन कामोंका ही तुम्हें यह फल मिला है ॥ ५४–६० ॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। आख्याता मामकास्तात निहता युधि पाण्डवैः। निहतान् पांडवेयानां मामकैर्ब्रूहि सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच। कुन्तयो युधि विक्रान्ता महासत्त्वा महाबलाः। सानुबन्धाः सहामात्या भीष्मेण युधि पातिताः ॥ २ ॥ नारायणा बल्लवाश्च रामाश्च शतशो रणे। अनुरक्ताश्च वीरेण भीष्मेण युधि पातिताः ॥ ३ ॥ समः किरीटिना संख्ये वीर्येण च बलेन च। सत्यजित् सत्यसन्धेन द्रोणेन निहतो युधि ॥ ४ ॥ पञ्चालानां महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः। द्रोणेन सह सङ्गम्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥ तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ। पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ६ ॥ यो बाल एव समरे सम्मितः सव्यसाचिना। केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन वा विभो ॥ ७ ॥ परेषां कदनं कृत्वा

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे तात संजय! पाण्डवोंने युद्धमें मेरे पुत्रोंका तथा उनके योधाओंका जो नाश किया है उसका समाचार तो तूने सुना दिया अब मेरे पुत्रोंने पांडवपक्षके जिन योधाओंको मारा है उनकी बात भी सुना ॥ १ ॥ संजयने कहा, कि—युद्धमें महापराक्रम करनेवाले, महाबली और बड़े सामर्थवान् कुन्तियोंको कुटुम्ब और मन्त्रियोंके सहित रणमें भीष्मजीने मार डाला ॥ २ ॥ नारायण, बलभद्र तथा दूसरे सैंकड़ों शूर जो पाण्डवोंके ऊपर भक्ति रखते थे, उनको भी वीर भीष्मजीने युद्ध में मारडाला ॥ ४ ॥ पंचालदेशके सब राजे बड़े धनुषधारी और युद्ध करनेमें कुशल थे, वे भी रणमें द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करके यमलोकको सिधारगये ॥ ५ ॥ राजा विराट और द्रुपद बूढे थे, तो भी वे मित्रके लिये पुत्रोंके सहित रणमें पराक्रम करते थे उनको भी द्रोणाचार्यने रणमें मारडाला ॥ ६ ॥ हे राजन्! जो बालकपनसे ही युद्ध करनेमें अर्जुनकी समान था, जिसका पराजय करना बलदेवजी तथा श्रीकृष्णजीको भी कठिन था, उस महारथी अभिमन्युने रणमें शत्रुओंका बड़ाभारी संहार किया

महारथविशारदः । परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकै रथैः ॥८॥
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः । तं कृतं विरथं वीरं क्षत्र-
धर्मे व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥ दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान्रणे ।
सपत्नानां निहन्ता च महत्या सेनया वृतः ॥ १० ॥ अम्बष्ठस्य
सुतः श्रीमान् मित्रहेतोः पराक्रमम् । आसाद्य लक्ष्मणं वीरं दुर्यो-
धनसुतं रणे ॥ ११ ॥ सुमहत् कदनं कृत्वा गतो वैवस्वतक्षयम् ।
बृहन्तस्तु महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ १२ ॥ दुःशासनेन
विक्रम्य गमितो यमसादनम् । मणिमान् दण्डधारश्च राजानौ
युद्धदुर्मदौ ॥ १३ ॥ पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन विनिपातितौ ।
अंशुमान् भोजराजश्च सहसैन्यो महारथः ॥ १४ ॥ भारद्वाजेन

था तथा महारथियोंमें मुख्य द्रोण, अश्वत्थामा, शल्य, कर्ण, कृपाचार्य औरकृतवर्मा इन छः महारथियोंमेंका प्रत्येक महारथी उस अभिमन्युको नहीं मारसका था, इसलिये सब महारथियोंने इकट्ठे होकर, क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीर अभिमन्युको रथशून्य करडाला था, फिर दुःशासनके पुत्रने उस अभिमन्युको रणमें मारडाला, हे महाराज ! दुःशासनके पुत्रने बड़ीभारी सेनाको साथ लेकर रणमें शत्रुओंका संहार किया था ॥७-१०॥ अम्बष्ठका पुत्र श्रीमान् अपने मित्रके लिये रणमें पराक्रम दिखा रहा था और दुर्योधनके पुत्र लक्ष्मणके सामने होकर उसने रणमें बड़ी मारकाट की थी, वह भी पीछेसे मारागया, बड़ा धनुषधारी बृहन्त अस्त्र-विद्यामें कुशल तथा युद्धमें दुर्मद था ११ ॥ १२ ॥ परन्तु वह दुःशासनके सामने पराक्रम करके यमलोकमें पहुँचगया, मणिमान् और दण्डधार नामके दो राजे युद्ध करनेमें बड़े मतवाले थे ॥ १३ ॥ युद्धमें मित्रके लिये पराक्रम करते हुए उन दोनोंको द्रोणाचार्यने मारगिराया, महारथी अंशुमान् राजा भोज अपनी सेनाको साथ लेकर आया था ॥ १४ ॥

विक्रम्य गमितो यमसादनम् । सामुद्रश्चित्रसेनश्च सहपुत्रेण भारत ॥ १५ ॥ समुद्रसेनेन बलात् गमितो यमसादनम् । अनूपवासी नीलश्च व्याघ्रदत्तश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥ अश्वत्थाम्ना विकर्णेन गमितो यमसादनम् । चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा तौ कदनं महत् ॥ १७ ॥ चित्रमार्गेण विक्रम्य विकर्णेन हतो मृधे । वृकोदरसमो युद्धे वृतः कैकेययोधिभिः ॥ १८ ॥ कैकेयेन स विक्रम्य भ्राता भ्रात्रा निपातितः । जनमेजयो गदायोधी पार्वतीयः प्रतापवान् ॥ १९ ॥ दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः । रोचमानौ नरश्रेष्ठौ रोचमानौ ग्रहाविव ॥ २० ॥ द्रोणेन युगपद्राजन् दिवं संप्रेषितौ शरैः । नृपाश्चाप्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशाम्पते ॥ २१ ॥ कृत्वा न सुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयं । पुरुजित्

द्रोणाचार्यने पराक्रम करके उसको यमलोकमें पहुँचा दिया, हे भरतवंशी राजन् ! समुद्रका पुत्र समुद्र तटके किरानोंका स्वामी चित्रसेन अपने पुत्रके साथ आया था ॥१५॥ उसको समुद्रसेनने बलात्कारसे यमलोकमें भेजदिया, अनूपदेशका रहनेवाला नील और व्याघ्रदत्त बड़ा पराक्रमी था ॥ १६ ॥ उन दोनोंको अश्वत्थामा और विकर्णने यमलोकमें भेजदिया, विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले चित्रायुधने बड़ी मारकाट की थी ॥ १७ ॥ उसको विकर्णने युद्धमें विचित्र प्रकारसे पराक्रम करके मारडाला, राजा कैकेय युद्धमें भीमसेनकी समान था, और वह कैकेय देशके योधाओंसे घिरकर आया था ॥ १८ ॥ उसको उसके ही भाई कैकेयने पराक्रम दिखाकर मारडाला, पर्वतका राजा प्रतापी जनमेजय गदासे युद्ध किया करता था ॥ १९ ॥ हे महाराज ! उसको तुम्हारे सुत दुर्मुखने मारडाला, रोच और मान नामके दो भाई मनुष्योंमें सिंहसमान और दो ग्रहोंकी समान चमकते थे ॥२०॥ हे राजन ! द्रोणाचार्यने बाण मारकर उन दोनोंको एक साथ स्वर्गमें भेजदिया, हे राजन् ! जो पराक्रमी राजे सामने पड़कर

कुन्तिभोजश्च मातुलौ सव्यसाचिनः ॥ २२ ॥ संग्रामनिर्जितौं ल्लोकान् गमितौ द्रोणसायकैः । अभिभूः काशिराजश्च काशिकै- र्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ वसुदानस्य पुत्रेण न्यासितो देहमाहवे । अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥ २४ ॥ निहत्य शतशः शूरानस्मदीयैर्निपातिताः । मित्रवर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रधर्मा च भारत ॥ २५ ॥ द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् । शिख- ण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः ॥ २६ ॥ लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत । सुचित्रश्चित्रवर्मा च पितापुत्रौ महा- रथौ ॥ २७ ॥ प्रचरंतौ महावीरौ द्रोणेन निहतौ रणे । वार्धक्षेमि- र्महाराज समुद्र इव पर्वणि ॥ २८ ॥ आयुधक्षयमासाद्य प्रशांतिं

पाण्डवोंकी ओरसे लड़ रहे थे ॥ २१ ॥ वे भी कठिन पराक्रम करके यमलोकको सिधारगये हैं, पुरुजित् और कुन्तिभोज धनं- जयके मामा थे ॥ २२ ॥ उनको द्रोणाचार्यके बाणोंने संग्रामसे जीतेहुए लोकोंमें (स्वर्गमें) पहुँचादिया, काशीका राजा अभिभू बहुतसे काशीवासियोंको साथ लेकर आया था ॥ २३ ॥ उसको वसुदानके पुत्रने संग्राममें मारडाला, अपारबली युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजा ॥ २४ ॥ सैंकड़ों शूरोंको मारकर हमारे योधाओंके हाथसे मारेगये, हे भारत ! पंचाल देशका राजा मित्रवर्मा तथा क्षत्रधर्मा ॥ २५ ॥ वे दोनों बड़े धनुषधारी थे, इनको भी द्रोणाचार्यने यमलोकमें भेजदिया, योधाओंका स्वामी शिखण्डीका सुत क्षत्रदेव भी युद्धमें आया था ॥ २६ ॥ हे भर- तवंशी राजन् ! उसको तुम्हारे पौत्र लक्ष्मणने मारडाला, सुचित्र और चित्रवर्मा ये दोनों पिता पुत्र महारथी थे ॥ २७ ॥ रणमें जूझते हुए उन महावीरोंको द्रोणाचार्यने मारडाला, हे महाराज ! जैसे अमावस्याके दिन समुद्र महाशान्त होता है तैसेही राजा वार्धक्षेमि ॥ २८ ॥ आयुका क्षय होजाने परम शान्त होगया, सेनाविन्दुका सबसे बड़ा सुत जो शस्त्रधारी और युद्ध करनेमें

परमां गतः । सेनाबिन्दुसुतः श्रेष्ठः शस्त्रवान् प्रवरो युधि ॥२९॥ वाह्लीकेन महाराज कौरवेन्द्रेण पातितः । धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ॥ ३० ॥ कृत्वा न सुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् । तथा सत्यधृतिर्वीरः कृत्वा कदनमाहवे ॥ ३१ ॥ पांडवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम् । सेनाबिन्दुः कुरुश्रेष्ठः कृत्वा कदनमाहवे ॥३२॥ पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपतिः । निहत्य शात्रवान्संख्ये द्रोणेन निहतो युधि ॥ ३३ ॥ तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान् । सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकैः ॥ ३४ ॥ श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी । कृत्वा न सुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥३५॥ तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परमास्त्रवित् । भीष्मेण निहतो राजन् शेतेऽद्य परवीरहा ॥ ३६ ॥ विराटपुत्रः शंखस्तु उत्तरश्च महारथः । कुर्वंतो

बडा चतुर था ॥ २९ ॥ हे महाराज ! उसको कौरवोंके राजा वाल्हीकने मारडाला, हे महाराज ! चेदियोंमें धृष्टकेतु एक श्रेष्ठ महारथी था ३० वह महाभयंकर पराक्रम करके यमलोकको चला गया, तथा सत्यधृति नामक वीरने रणमें बड़ी मारकाट की थी ३१ वह पांडवोंके लिये पराक्रम करके यमलोकको चलागया, हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ राजन् ! सेनाबिन्दु भी रणमें शत्रुको मारकर मर गया ॥ ३२ ॥ शिशुपालका पुत्र राजा सुकेतु भी रणमें शत्रुओंका संहार करके द्रोणाचार्यके हाथसे मारागया ॥ ३३ ॥ ऐसेही वीर सत्यधृतिको पराक्रमी मदिराश्वको और पराक्रमी सूर्यदत्तको द्रोणाचार्यने बाणोंसे मारडाला ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! युद्ध करनेवाला पराक्रमी राजा श्रेणिमान् भी रणमें महाभयानक पराक्रम करके यमलोकको चलागया ॥ ३५ ॥ ऐसेही युद्धमें पराक्रम करनेवाला अस्त्रविद्यामें महाप्रवीण और शत्रुओंका नाशक मगधराज, हे-राजन् ! भीष्मके हाथसे मारा जाकर रणभूमिमें सोरहा है ॥ ३६ ॥ विराटका पुत्र शङ्ख और महारथी उत्तर ये

सुमहत्कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३७ ॥ वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे । भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥३८॥ एते चान्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः । हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । मामकस्यास्य सैन्यस्य हृतोत्सेकस्य सञ्जय । अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १ ॥ तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे कुरुसत्तमौ । भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीविते सति ॥ २ ॥ न च शोचामि राधेयं हतमाहवशोभिनम् ।

दोनों बड़ाभारी पराक्रम करके यमलोकको पधारगये ॥ ३७ ॥ वसुदान भी संग्राममें शत्रुओंका बड़ा संहार करता था, उसको भी द्रोणाचार्यने पराक्रम दिखाकर यमलोकको भेजदिया ॥३८॥ द्रोणाचार्यने इन योधाओंको तथा पांडवोंके और भी बहुतसे योधाओंको पराक्रम करके मारडाला, उन सबके नाम मैंने तुम्हें बता दिये, जिनके लिये, कि–आपने मुझसे प्रश्न किया था ॥३९॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे संजय ! छोटेसे तालावमेंसे क्यारियों में को पानी लेजाने पर जैसे उस तालावमें जल शेष नहीं रहता है, तैसेही मेरी सेनाके मुख्य२ पुरुषोंके मारे जाने पर मैं देखता हूँ तो अब कोई भी योधा बाकी नहीं रहा ॥ १ ॥ बड़ेभारी धनुषधारी कुरुकुलमें श्रेष्ठ वीर भीष्मजी तथा द्रोणाचार्य मेरे लिये रणमें मारेगये, इस समाचारको सुनकर अब मैं इस नाशवान् जीवनका कोई प्रयोजन नहीं देखता ॥ २ ॥ जिसकी भुजाओंमें दशहजार हाथियोंकी समान बल था, उस रणभूमिको शोभा देनेवाले कर्णके लिये मैं शोक नहीं करता (क्योंकि–जिस रणमें मृत्यु–विजयी भीष्म और क्षात्र तथा ब्राह्म द्रोणचार्य सरीखे

यस्य वाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतम् ॥ ३ ॥ हतप्रवीर-सैन्यं मे यथा शंससि सञ्जय । अहतानपि मे शंस केऽत्र जीवन्ति के च न ॥ ४ ॥ एतेषु हि मृतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्त्तिताः । येऽपि जीवन्ति ते सर्वे मृता इति मतिर्मम ॥ ५ ॥ सञ्जय उवाच । यस्मिन्महास्त्राणि समर्पितानि चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि । दिव्यानि राजन्निहतानि चैव द्रोणेन वीरे द्विजसत्तमेन ॥ ६ ॥ महारथः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः । स वीर्यवान् द्रोणपुत्रस्तरस्वी व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ७॥ आनर्त्तवासी हृदिकात्मजोसौ महारथः सात्वतानां वरिष्ठः । स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ८ ॥ आर्त्तायनिः समरे दुष्प्रकम्पः सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम् । यः स्व-

---

योधा मारेगये तहाँ कर्णका माराजाना कौनसी वड़ी वात है?) ३ परन्तु हे संजय ! तूने जैसे मेरी सेनाके मरेहुए बड़े २ महारथियोंकी वात कही है, ऐसे ही जो जीवित हों उनकी भी वात सुना, कौन २ जीते हैं और कौन २ मरगये यह मुझे बता ॥४॥ जिन भीष्म पितामह आदिके नाम तूने सुनाए, उनके मारेजाने पर अब मेरी सम्मतिमें जो जीवित हैं, वे सब भी मरे हुएसे ही हैं ॥ ५ ॥ सञ्जयने कहा, कि —हे राजन्! द्विजवर द्रोणाचार्यने जिस वीरको चमकतेहुए बड़े चार प्रकारके (दृढ़वेधी, दूरवेधी, सूक्ष्मवेधी और शब्दवेधी) विचित्र अस्त्र समर्पण किये हैं ॥६॥ वह सफलपरिश्रमी, फुरतीले हाथोंवाला, दृढ़ आयुधधारी, दृढ़ मुष्टि और दृढ़ वाणोंवाला, वेगमें भराहुआ और पराक्रमी अश्वत्थामा तुम्हारे लिये लड़नेकी इच्छासे तयार होकर खड़ा है ॥७॥ आनर्त्तदेशका रहनेवाला, सात्वतवंशमें श्रेष्ठ, हृदीकका पुत्र साक्षात् भोजपति और अस्त्रविद्यामें प्रवीण यह कृतवर्मा तुम्हारे लिये युद्ध करनेकी इच्छासे खड़ा है ॥ ८ ॥ और तुम्हारे योधाओंमें मुख्य, सेनाके आगे २ चलनेवाला और जिसको विचलित

स्रीयान् पाण्डवेयान् विसृज्य सत्यां वाचं तां चिकीर्षुस्तरस्वी ६
तेजोवधं सूतपुत्रस्य संख्ये प्रतिश्रुत्याजातशत्रोः पुरस्तात् । दुरा-
धर्षः शक्रसमानवीर्यः शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १० ॥
आजानयैः सैन्धवैः पार्वतीयैर्नदीजकाम्बोजवनायुजैश्च । गान्धार-
राजः सुबलेन युक्तो व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे॥११॥शारद्वतो
गौतमश्चापि राजन्महाबलो बहुचित्रास्त्रयोधी । धनुश्चित्रं सुमह-
द्भारसाहं व्यवस्थितो योद्धुकामः प्रगृह्य ॥ १२ ॥ महाधनः केक-
यराजपुत्रः सदश्वयुक्तश्च पताकिनञ्च । रथाग्र्यमारुह्य नरप्रवीरो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १३ ॥ तथा सुतन्ते ज्वलनार्क-
तुल्यं रथं समास्थाय कुरुप्रवीरः । व्यवस्थितः पुरुमित्रो नरेन्द्रः

करना बड़ा ही कठिन है ऐसे आर्त्तायनके पुत्र राजा शल्यने अपनी कहीहुई बातको सत्य करनेकी इच्छासे अपने भांजे पांडवों को छोड़कर, युधिष्ठिरके सामने जिसने युद्धमें कर्णके पराक्रमका नाश करनेकी जो प्रतिज्ञा की थी वह उसने पूरी करदी, वह अजेय, इन्द्रकी समान पराक्रमी राजा शल्य, अब तुम्हारे लिये लड़नेको तयार खड़ा है ॥ ९ ॥ १० ॥ और गान्धार देशका राजा, युद्धके उपयोगी सिन्धदेशके, पहाड़ी, कच्छ देशके, कंबोज देशके तथा वनायु देशके घोड़ोंके तथा अपनी सेनाके साथ तुम्हारे लिये लड़नेको आया है ॥ ११ ॥ और हे राजन् ! शारद्वतके पुत्र महाबाहु भगवान् कृपाचार्य बड़ी विचित्र रीतिसे युद्ध करते हैं, वह विचित्र तथा बड़ेभारी प्रहारको सहन करनेवाले विचित्र धनुषको धारण करके तुम्हारे लिये लड़नेकी इच्छासे तयार खड़े हैं ॥ १२ ॥ तथा हे नरेन्द्र ! केकय राजाका पुत्र जिसमें उत्तम घोड़े जुनेहुए हैं ऐसे बड़ी ध्वजावाले रथमें बैठकर तुम्हारे लिये युद्ध करनेको आकर खड़ा है ॥ १३ ॥ और मेघ-शून्य आकाशमें जैसे सूर्य शोभा पाता है तैसे ही दमकता हुआ, कौरवोंमें वीर तुम्हारा पुत्र पुरुमित्र भी अग्नि और सुवर्णको

व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा खे ॥ १४ ॥ दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये व्यवस्थितः सिंह इवावभासे । रथेन जाम्बूनदभूषणेन व्यवस्थितं समरे योत्स्यमानः ॥ १५ ॥ स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा । पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो मेघांतरे सूर्य इव प्रकाशः ॥ १६ ॥ तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणिस्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः । व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्द्धं हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ ॥ १७ ॥ ह्रीनिषेवो भारत राजपुत्र उग्रायुधः क्षणभोजी सुदर्शः । जारासन्धिः प्रथमश्चाददृश्च चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च १८ शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च व्यवस्थिताः समरे योद्धुकामाः । कैतव्यानामधिपः शूरमानी रणे चरन् शत्रुहा राजपुत्रः । पत्ती हयी नागरत्तिप्रयायी व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १९ ॥ वीरः

समान दमकतेहुए रथमें बैठकर तुम्हारे लिये लड़नेको तयार है ॥ १४ ॥ हाथियोंकी सेनामें खड़ाहुआ दुर्योधन सिंहकी समान शोभा पारहा है और वह सुवर्णके आभूषणोंसे सजायेहुए रथमें बैठकर लड़नेकी इच्छासे रणमें आया खडा है ॥ १५ ॥ वीर दुर्योधनने सोनेके जडावका विचित्र कवच पहरा है, उसके शरीर की कान्ति कमलकी समान है,वह थोड़े धुएँवाले अग्निकी समान और बादलोंके मध्यमें वर्त्तमान सूर्यकी समान तेजस्वी दीखरहा है ॥ १६ ॥ तुम्हारा सुत सुषेण और वीर सत्यसेन हाथमें ढाल तलवार लेकर मनमें प्रसन्न हो लडनेकी इच्छासे रणमें चित्रसेन के साथ खडा है ॥ १७॥ हे भरतवंशी राजन् ! लज्जावान् उग्र आयुधोंवाला क्षणमें भोजन करनेवाला और देखनेमें सुन्दर जरासन्धका पहला पुत्र अदृढ़ तथा चित्रायुध, श्रुतवर्मा, जय,शल सत्यव्रत, दुःशल आदि महापुरुष अपनी २ सेनाके साथ लडने को तयार होगये हैं, कैतवोंके राजाका राजकुमार जो अपनेको को धीर मानता है और जिसने हरएक युद्धमें शत्रुओंका संहार किया है- वह वीर श्रुतायु,धृतायु,चित्राङ्गद और शूर चित्रसेन भी

श्रुतायुश्च धृतायुधश्च चित्राङ्गदाश्चित्रसेनस्तथैव । व्यवस्थिता योद्धुकामा नराग्र्याः महारिणो मानिनः सत्यसन्धाः ॥ २० ॥ कर्णात्मजः सत्यसन्धो महात्मा व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः ॥ २१॥ अथापरौ कर्णसुतौ वरास्त्रौ व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र । बलं महद्दुर्भिदल्पवीर्यैः समाश्रितौ योत्स्यमानौ त्वदर्थे ॥ २२ ॥ एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन् योधप्रवीरैरमितप्रभावैः । व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय॥ २३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । आख्याता जीवमाना ये परे सैन्या यथायथम् । इतीदमवगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं ब्रुवन्नेव

रथ,घोड़े हाथी और पैदलोंके साथ तुम्हारे लिये शत्रुओंके सामने युद्ध करनेकी इच्छासे तयार होकर खड़ा है ॥ १८—२० ॥ इनके सिवाय दूसरे मानी, सत्यप्रतिज्ञावाले महारथी योधा भी युद्धकी इच्छासे तयार होगये हैं, सत्यप्रतिज्ञावाला महात्मा कर्णपुत्र भी रणमें लडनेकी इच्छासे तयार होकर खड़ा है२१हे राजन्! कर्णके दूसरे दो सुत थोडी शक्तिवाले जिसका कठिनतासे भी नाश नहीं करसकते ऐसी बडीभारी सेनाके साथ तुम्हारे लिये लड़नेकी इच्छासे खड़े हैं,उनके शस्त्र उत्तम हैं और उनके हाथ बड़ी शीघ्रतासे चलते हैं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इन योधाओंके तथा दूसरे अपार प्रभाववाले वीर योधाओंके साथ तुम्हारा सुत कुरुराज दुर्योधन, हाथियोंकी टोलीके मध्यमें सिंहकी समान विजय पानेके लिये खडा है ॥ २३ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे संजय ! जो योधा शत्रुओंके हाथोंसे बचगये हैं और जो शत्रुओंके द्वारा मारेगये हैं, उनका तूने ठीक २ वर्णन करके सुनादिया, इसके परिणामसे मैं स्पष्टरूपसे समझगया, कि–कौनसे पक्षकी विजय होगी (हमारी तो पराजय ही होगी) ॥ २४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय ! ऐसा कहकर अम्बिकाका सुत राजा

तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । हतप्रवीरविध्वस्तं किञ्चिच्छेषबलं स्वकम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा तु मोहमगमच्छोकव्याकुलचेतनः । मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि मुहूर्त्तं तिष्ठ सञ्जय ॥ २६ ॥ व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् । मनो मुह्यति चाङ्गानि न च शक्नोमि धारितुम् ॥ २७ ॥ इत्येवमुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । नष्टचित्तस्तथा सोथ पपात जगतीपतिः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्व्वणि सञ्जयवाक्ये
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जनमेजय उवाच । श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैव निपातितान् । नरेन्द्रः किञ्चिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत् ॥ १ ॥ प्राप्तवान् परमं दुःखं पुत्रव्यसनजं महत् । तस्मिन् यदुक्तवान् काले तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा कर्णस्य निध-

---

धृतराष्ट्र अपनी सेना थोडी ही रहगयी है और उसमेंके वीर योधा मारेगये हैं, यह समाचार सुनकर तथा इन्द्रियोंके शोकसे व्याकुल होजानेके कारण मूर्छित होगया और मूर्छा खाते २ कहनेलगा, कि—अरे सञ्जय! तू दो घडी विश्राम करले। २५। २६। हे तात ! तेरे मुखसे बहुत सी अशुभ कथा सुनकर मेरा मन तथा नेत्र आदि अङ्ग मूर्छाके वशमें होगये हैं, उनको मैं स्थिर नहीं रखसकता ॥ २७॥ इतने शब्द कहते २ अंबिकाके सुत राजा धृतराष्ट्र का मन घूमनेलगा और वह मूर्छित होगया। २८। सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ ॥ ॥

जनमेजयने बूझा, कि—हे वैशंपायनजी ! राजा धृतराष्ट्र युद्धमें कर्ण और अपने पुत्रोंके मरणको सुनकर मूर्छित होनेके अनन्तर जब कुछ होशमें आया तब उसने संजयसे क्या बूझा ? ॥ १ ॥ राजा धृतराष्ट्रने जिस समय पुत्रोंके मरणको सुनकर महादुःख पाया था उस समय उसने संजयसे क्या कहा था? मैं आपसे बूझता हूँ, यह मुझे सुनाइये ॥ २ ॥ वैशंपायनजीने कहा, कि

नमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् । भूतसम्मोहनं भीमं मेरोः संसर्पणं यथा ३
चित्रमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः । पराजयमिवेन्द्रस्य द्विष-
द्भ्यो भीमकर्मणः ॥ ४ ॥ दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युतेः॥
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयाम्भसः ॥५॥ महीवियद्दिगम्बूनां
सर्वनाशमिवाद्भुतम् । कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ६
सञ्चिन्त्य निपुणं बुद्ध्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । नेदमस्तीति संचि-
न्त्य कर्णस्य समरे वधम् ॥ ७ ॥ प्राणिनामेवमन्येषां स्यादपीति
विनाशनं । शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशयः ॥ ८ ॥
विस्रंस्ताङ्गः श्वसन् दीनो हाहेत्युक्त्वा सुदुःखितः । विललाप महा-
राज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । सञ्जयाधिर-

---

प्राणिमात्रको मोहमें डालनेवाला सुमेरु पर्वतका भयङ्कर डगमगाना जैसे असम्भव है, ऐसेही कर्णका मरना भी असम्भव भयानक और प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला था, उसको राजा धृतराष्ट्रने सुना ॥ ३ ॥ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य अथवा परशुरामजीके मन में मोह होना जैसे असम्भव है, भयानक कर्म करनेवाले इन्द्रका शत्रुओंसे पराजय होना जैसे असम्भव है ॥४॥ और महाप्रकाश-वान् सूर्यका पृथ्वीपर आगिरना तथा अक्षय जलसे भरेहुए समुद्रके जलका सूखजाना जैसे ध्यानमें नहीं आसकता ॥ ५ ॥ पृथ्वी, आकाश, दिशायें और जलका नाश होजाना तथा पाप और पुण्य दोनों प्रकारके कर्मोंका कुछ फल न मिलना, जैसे एक आश्चर्यमयी घटना है ॥ ६ ॥ ऐसेही राजा धृतराष्ट्रने कर्ण के मरणको असम्भव माना, उसने अपने मनमें कर्णके मरणपर ध्यान देकर निश्चय किया कि–अब मेरी सेनामेंसे कोई भी नहीं बचसकेगा ॥ ७ ॥ तथा साथमें और भी बहुतसे प्राणियोंका नाश होजायगा, ऐसा विचार करते २ अम्बिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र शोकाग्निसे जलनेलगा, उसका हृदय मानो काँपनेलगा, और अङ्ग ढीले पड़गये, वह बारम्बार श्वास लेता हुआ दीनसा

धिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः । ऋषभप्रतिमस्कन्धो वृषभात्तगति-
स्वनः ॥ १० ॥ ऋषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्त्तते । शत्रोरपि
महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा ॥ ११ ॥ यस्य ज्यातलशब्देन शर-
वृष्टिरवेण च । नराश्वरथमातङ्गा नाधितिष्ठन्ति संयुगे ॥ १२ ॥
यमाश्रित्य महावाहुं विद्विषां जयकांक्षया । दुर्योधनोऽकरोद्वैरं पांडु-
पुत्रैर्महारथैः ॥ १३ ॥ स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे ।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥ १४ ॥ यो नामन्यत वै
नित्यमच्युतञ्च धनञ्जयम् । न वृष्णीन्सहितानन्यान् स्ववाहु-
बलदर्पितः ॥ १५ ॥ शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ ।

वनगया और हे महाराज! बड़ाही खिन्न होकर हाय हाय कह कर विलाप करने लगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्र ने कहा, कि- हे संजय! जो अधिरथी था, सिंह और हाथीकी समान पराक्रमी था, जिसके कंधे बैलकेसे थे, जो वड़े बैलकी समान चलता था तथा बैल जैसे बैलके साथ युद्ध करतेमें पीछेको नहीं हटता है तैसेही जो इन्द्रसमान शत्रुके साथ लड़नेमें भी पीछेको नहीं हटता था, जो वज्रकी समान दृढ़ कायावाला और तरुण अवस्थाका था ॥ १० ॥ ११ ॥ जिसके धनुषकी डोरीके, हाथोंकी तालीके और वाणवर्षाके शब्दको सुनकर रणभूमिमें रथ, घोड़े, हाथी और मनुष्य खडे नहीं रहसकते थे ॥ १२ ॥ और शत्रुओंका पराजय करनेकी इच्छासे जिस महावाहुका आश्रय लेकर दुर्यो-धनने महारथी पांडवोंके साथ वैर वाँधा था, उस महारथी, असह्यपराक्रमी और पुरुषोंमें व्याघ्र समान कर्णको पार्थने रणमें कैसे पराक्रम करके मारडाला? ॥१३॥१४॥वह अपने वाहुवल के गर्वमें आकर सदा अच्युत श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा दूसरे इकट्ठे हुए वृष्णियोंको तो कुछ गिनता ही नहीं था ॥ १५ ॥ जब २ दुर्योधन राज्यकी इच्छासे आतुर हो नीचेको मुख करके

अहं दिव्याद्रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे ॥ १६ ॥ इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम् । दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम् १७ योऽजयत्सर्वकाम्बोजानावन्त्यान् केकयैः सह । गान्धारान्मद्रकान् मत्स्यांस्त्रिगर्त्तांस्तंगणान् खशान ॥ १८ ॥ पञ्चालांश्च विदेहांश्च कुलिन्दान् काशिकोसलान् । सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च निषादान् पुण्ड्चीरकान् ॥ १९ ॥ वत्सान् कलिङ्गांस्तरलानश्मकानृषिकानपि । यो जित्वा समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा ॥ २० ॥ शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः । दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनाम्वरः ॥ २१ ॥ दिव्यास्त्रविन्महातेजा कर्णो वैकर्तनो वृषः । सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित् ॥ २२ ॥ घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे बलशालिभिः । वृषो महेन्द्रो देवेषु

बैठता था, तब २ यह कर्ण सदा लोभमें मोहित हुए मूर्ख दुर्योधनसे कहा करता था, कि—मैं अकेला ही शार्ङ्ग-धनुषधारी श्रीकृष्ण तथा गाण्डीवधनुषधारी अर्जुन इन दोनों अजेय पुरुषोंको दिव्य रथमेंसे नीचे गिरादूँगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ पहले जिस अकेले वीरने ही, सकल काम्बोज, केकयोंके सहित अवंती देशके राजे, गान्धार, मद्रक, मत्स्य, त्रिगर्त्त, तंगण, शक, पंचाल विदेह, पुलिन्द, काशी तथा कोशलदेशके राजे तथा सुह्म, अङ्ग, वङ्ग, निषाद, पुण्ड्र, चीरक, वत्स, कलिङ्ग, तरल, अश्मक, और ऋषिक आदि राजाओंको हराकर उनको करद (कर देनेवाला) बनाया था ॥ १८–२० ॥ जो कर्ण दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करना जानता था, जो महातेजस्वी, सूर्यका पुत्र, अस्त्रविद्यामें चतुर और परमप्रवीण सेनापति था, जो बहुत ही तेज कियेहुए और तीखे कङ्क पक्षीके परोंवाले बाणोंके प्रहारोंसे दुर्योधनकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करता था, उसको पराक्रमी और वीर पांडुपुत्रोंने रणमें कैसे मारडाला ? जैसे देवताओंमें इन्द्र जल बरसानेवाला है ऐसे

वृषः कर्णो नरेष्वपि ॥ २३ ॥ तृतीमन्यं लोकेऽस्मिन् वृषं नैवानुशुश्रम । उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः ॥२४॥ वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरताम्वरः । योऽजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभि ।। २५ ॥ दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं कृत्स्नामुर्वीमथाजयत् । यं लब्ध्वा मागधो राजा सान्त्वमानोऽथ सौहृदैः ॥ २६ ॥ अरौत्सीत् पार्थिवं क्षत्रमृते कौरवयादवान् । तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ २७ ॥ शोकार्णवे निमग्नोऽहं भिन्नानौरिव सागरे । तं वृषं निहतं श्रुत्वा द्वैरथे रथिनां वरम् २८ शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे यथा । ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि सञ्जय ॥ २९ ॥ वज्राद्दृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम् । ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवम् ॥ ३० ॥

ही मनुष्योंमें कर्ण धन बरसानेवाला है ॥ २१-२३ ॥ इन दोके सिवाय जगत्में तीसरा कोई भी वर्षा करनेवाला हो, यह मैंने नहीं सुना, घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा श्रेष्ठ है, राजाओंमें कुवेर श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ देवताओंमें महेन्द्र श्रेष्ठ है. ऐसे ही योधाओंमें कर्ण श्रेष्ठ था, वह वीर समर्थ और पराक्रमी राजाओंमें अजेय था, उसने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये सब पृथिवीका विजय करलिया था और मगधदेशके राजा जरासन्धने भी मित्रोंके समझाने पर कर्णका आश्रय लेकर यादव और कौरवोंके सिवाय अन्य सब क्षत्रिय राजाओंको कैद करलिया था, ऐसा महारथी कर्ण द्वंद्वयुद्धमें अर्जुनके हाथसे मारागया,यह सुनकर, जैसे टूटीहुई नौका समुद्रमें डूबजाती है, तैसे ही मैं शोकसागरमें डूबगया हूँ,महारथी वृषरूप कर्ण द्वन्द्वयुद्धमें मारागया, यह सुनकर जैसे नौकासे रहित हुआ पुरुष सागरमें डूबजाता है, तैसे ही मैं भी शोकसागरमें डूबगया हूँ, हे सञ्जय ! मैं जो ऐसे दुःखोंसे भी मरता नहीं हूँ तथा जातिवाले, सम्बन्धी और मित्रोंके ऐसे (घोर) तिरस्कार को सुनकर मैं मरता नहीं हूँ, इससे मैं समझता हूँ, कि—मेरा

को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात् सूत जीवितम् । विषमग्नि मपातं वा पर्वताग्रादहं श्रिये । न हि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि सञ्जय ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच । श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च । त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम् ॥ १ ॥ श्रुते महर्षि-प्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव । पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः ॥ २ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । दैवमेव परं मन्ये पौरुषन्तु निरर्थ-कम् । यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे ॥ ३ ॥ हत्वा युधिष्ठिरानीकं पञ्चालानां रथव्रजान् । प्रताप्य शरवर्षेण दिशः

दुर्भेद्य हृदय वज्रसे भी अधिक कड़ा है ॥ २४-३० ॥ हे संजय ! मेरे सिवाय दूसरा कौनसा पुरुष (ऐसे शोकके समाचारको सुनकर) अपने प्राणोंको नहीं त्यागेगा ? मैं कष्टदायक दुःखोंको सहन नहीं करसकता, किन्तु अब विष पीकर या अग्निमें कूद कर अथवा पहाड़ परसे नीचेको कूदकर अपने प्राणोंको खोदेना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! सत्पुरुष आज आप को लक्ष्मी, कुल, यश, तप और शास्त्रके श्रवणसे नहुषके पुत्र ययातिकी समान मानते हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! तुम शास्त्रमें महर्षिकी समान और कृतार्थ हो, इसलिये तुम अपने मनको स्थिर करो, अब चित्तमें खेद न मानो ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-जब रणमें शालकी समान प्रचण्ड कर्ण मारागया तो निरर्थक पुरुषार्थको धिक्कार है, मैं तो दैवको ही सर्वोपरि मानता हूँ ॥ ३ ॥ यदि ऐसा नहीं होता तो जिस महा-रथी कर्णने युधिष्ठिरकी सेनाको पांचालोंके रथियोंको और सब दिशाओंको बाणोंकी वर्षासे व्याकुल करके जैसे हाथमें वज्र धारण

सर्वो महारथः ॥४॥ मोहयित्वा रणे पार्थान् वज्रहस्त इवासुरान् । कथं स निहतः शेते वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ ५ ॥ शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव । चिन्ता मे वर्द्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते ॥ ६ ॥ कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फाल्गुनस्य च । अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य सञ्जय ॥ ७ ॥ वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम । यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं कर्णं न दीर्यते ८ आयुर्नूनं सुदीर्घं मे विहितं दैवतैः पुरा । यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा जीवाम्यद्य सुदुःखितः ॥ ९ ॥ धिग्जीवितमिदञ्चैव सुहृद्धीनस्य सञ्जय । अद्य चाहं दशामेतां गतः सञ्जय गर्हिताम् ॥ १० ॥

करनेवाला इन्द्र रणमें असुरोंको मूर्छित करडालता है तैसेही रण में खड़ेहुए पांडवोंको मूर्छित करडाला था वह कर्ण, वायुसे उखड़े हुए वृक्षकी समान रणमें अर्जुनके हाथसे मरकर पृथ्वी पर क्यों ढहपड़ा ? ॥ ४ ॥ ५ ॥ जैसे समुद्रका पार नहीं दीखा करता, तैसेही मुझको शोकसागरका छोर नहीं दीखता, हे सञ्जय ! जब से मैंने कर्णके मारजानेका और धनंजयकी विजयका समाचार सुना है तबसे मेरी चिन्ता बहुतही बढ़गयी है और मेरे मनमें आता है, कि-मैं मरजाऊँ ॥ ६ ॥ परन्तु हे सञ्जय ! कर्णके मरण और धनञ्जयके विजयका समाचार सुनकर भी कर्णके मारेजानेका तो मुझे विश्वास ही नहीं होता ॥ ७ ॥ मेरा हृदय वास्तवमें वज्र के सारकी समान दुर्भेद्य है, क्योंकि-मनुष्योंमें व्याघ्रसमान कर्ण के मरणको सुनने पर भी वह फट नहीं जाता ॥ ८ ॥ वास्तवमें देवताओंने (मेरे जन्मसे) पहले ही मेरी आयुको लम्बा बना दिया है, तभी तो कर्णके मरणको सुनकर मैं बहुत ही दुःखी होने पर भी अभी तक जीरहा हूँ ॥ ९ ॥ हे सञ्जय ! मैं संबन्धियोंसे हीन होगया, इसलिये मेरे जीवनको धिक्कार है, हे संजय! अब मैं ऐसी निंदित दशामें आपड़ा हूं, कि- ॥ १० ॥ जो मैं

कृपणं वर्त्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः । अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः ॥ ११ ॥ परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम् । दुःखात् सुदुःखं व्यसनं प्राप्तवानस्मि सञ्जय ॥१२॥ भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः । नात्र शेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि ॥ १३ ॥ स हि पार्थे महानासीत् पुत्राणां मम सञ्जय । युद्धे विनिहतः शूरो विसृजन् सायकान् बहून् ॥१४॥ को हि मे जीविते नार्थस्तमृते पुरुषर्षभम् । रथादाधिरथिर्नूनं न्यपतत् सायकार्दितः॥१५॥पर्वतस्येव शिखरं वज्रपाताद्विदारितम् । स शेते पृथिवीं नूनं शोभयन्रुधिरोक्षितः ॥ १६ ॥ मातङ्ग इव

पहले सब लोगोंसे सत्कार पाता था वही मैं अब मूढ़बुद्धि गाना जाऊँगा और सबकी दयाका पात्र बनूँगा तथा अपनी आजीविकाको दीन–भावसे चलाऊँगा ॥ ११ ॥ हे संजय ! मैंने जैसे तैसे (अपने मनको समझाकर) भीष्म, द्रोण आदिके मरणके दुःखको सह लिया था, इतनेमें ही मेरे ऊपर कर्णके मरणका दुःख भी आपड़ा, इसलिये मैं दूने दुःखमें फसगया, मैं दूसरोंसे तिरस्कार पाताहुआ अपने जीवनको कैसे बिता सकूँगा ? ॥१२॥ भीष्म और द्रोणाचार्यके मरणसे मैं महात्मा कर्णको बचाहुआ समझता था, परन्तु युद्धमें सूर्यपुत्र कर्णके मारेजानेपर अब मैं किसीको भी जीवित बचाहुआ नहीं देखता ॥ १३ ॥ हे संजय ! मैं समझता था, कि–मेरे पुत्रोंको रणकी नदीसे पार होनेके लिये कर्ण नौकारूप है, परन्तु शूर कर्ण भी रणमें बहुत से बाणोंकी वर्षा करते २ मारागया ॥ १४॥ उस महापुरुषके बिना अब मेरे जीवनकी क्या आवश्यकता है ? हाय महारथी कर्ण वास्तवमें बाणोंकी मारसे पीड़ित होकर रथमेंसे नीचे गिर पड़ा होगा ॥ १५ ॥ लोहूलुहान हुआ कर्ण, वज्रसे फाड़ेहुए पर्वतके शिखरकी समान पृथिवीको शोभा देता हुआ रणभूमिमें

मत्तेन द्विपेन्द्रेण निपातितः। यो बलं धार्त्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम् ॥ १७ ॥ सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम्। स हि वीरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥ १८ ॥ शेते विनिहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः। पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम् ॥ १९ ॥ दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः। अन्यथा चिंतितं कार्यं अन्यथा तत्तु जायते२० अहो तु बलवद्दैवं कालश्च दुरतिक्रमः। पलायमानः कृपणो दीनात्मा दीनपौरुषः॥२१॥ कच्चिद्विनिहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम। कच्चिन्न दीनाचरितं कृतवांस्तात संयुगे ॥ २२ ॥ कच्चिन्न निहतः शूरो यथान्ये क्षत्रियर्षभाः। युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा ॥ २३ ॥ दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम्। शरतल्पे शयानेन भीष्मेण

गिरा होगा ! ॥ १६ ॥ मतवाले गजराजके द्वारा मारगिराया हुआ हाथी जैसे पृथिवी पर ढहपडता है तैसे ही कर्ण पृथिवी पर गिरा होगा, जो कर्ण कौरवोंका एक बलरूप था, जिससे पांडव डरते थे, जो धनुषधारियोंकी एक ध्वजारूप था जो बड़ा धनुरधारी था, जो मित्रोंको अभय देता था वह कर्ण इन्द्रके नष्ट कियेहुए पर्वतकी समान अर्जुनके हाथसे माराजाकर पृथिवी पर ढहपडा। जैसे लङ्गड़ा मनुष्य मार्गमें नहीं चलसकता, जैसे दरिद्र की मनःकामना पूरी नहीं होती और जैसे पानीकी बूँदे प्यासे मनुष्यकी प्यासको दूर नहीं करसकतीं, ऐसे ही दुर्योधनका कर्त्तव्य भी कार्यसिद्धिके लिये अधूरा ही रहगया, जिस कार्यके लिये उसने अपने मनमें विचार किया, वह कार्य उससे उल्टा ही होता है ॥ १७–२० ॥ ओः ! दैव बलवान् है और कालको कोई नहीं लाँघसकता, परन्तु हे संजय ! मेरा पुत्र दुःशासन कृपण, उदासचित्त और पराक्रमहीन होकर भागता २ कहीं मर तो नहीं गया ? और हे तात ! उसने रणमें कहीं दीनताका आचरण तो नहीं करडाला ? मेरा वीर पुत्र दुर्योधन दूसरे बड़े

सुमहायशाः ॥ २४ ॥ पानीयं याचितः पार्थः सोऽविध्यन्मेदिनी-
तलम् । जलस्य धारां जनितां दृष्ट्वा पाण्डुसुतेन च ॥ २५ ॥
अब्रवीत् स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः । प्रशमाद्धि भवे-
च्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु वः ॥ २६ ॥ भ्रातृभावेन पृथिवीं भुंच्व
पाण्डुसुतैः सह । अकुर्वन् वचनं तस्य नूनं शोचति पुत्रकः २७
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः । अहन्तु निहतामात्यो हत-
पुत्रस्तु संजय ॥ २८ ॥ द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः ।
यथा हि शकुनिं गृह्य छित्वा पक्षौ च सञ्जय ॥ २९ ॥ विसर्ज-
यन्ति संहृष्टास्ताडयमानाः कुमारकाः । लूनपक्षतया तस्य गमनं

बड़े क्षत्रियोंकी समान कहीं मर तो नहीं गया ? राजा युधिष्ठिर सदा कहा करते थे, कि–तू युद्ध न कर परन्तु जैसे मूर्ख मनुष्य लाभदायक औषधको ग्रहण नहीं करता है तैसे ही मूढ दुर्योधन ने भी उनके कहनेको नहीं माना था, शरशय्या पर सोये हुए महात्मा भीष्मने जल माँगा, उस समय अर्जुनने बाणसे पृथिवी को फोड़दिया और उसमेंसे जलकी धारा निकलने लगी, यह देखकर हे तात ! महाबाहु भीष्मपितामहने पांडवोंकी ओरसे शान्ति पाकर कहा, कि–हे दुर्योधन! मेल करनेसे शान्ति मिलती है,इसलिये अब मेरा नाश होजाने पर तू इस युद्धको बंद कर दे ॥ २१–२६ ॥ और तू पांडवोंके साथ भ्रातृभावका वर्त्ताव रख कर पृथिवीपर राज्य सुखको भोग, परन्तु मेरे पुत्रने उनकी बात नहीं मानी, इसलियेही आज वह शोक कर रहा है ॥ २७ ॥ दीर्घदृष्टिवाले पितामहका कहना आज आगे आकर खड़ा है और हे संजय! अपने विषयमें मैं क्या कहूँ,मैं तो आज मंत्री और पुत्रोंसे शून्य होगया हूँ ॥ २८ ॥ ओः ! मैं आज पंख कटेहुए पक्षीकी समान जुएके कारणसे दुःखमें आपड़ा हूँ, हे संजय ! छोटे २ बालक जैसे एक पक्षीको पकड़कर उसके दोनों पंखोंको काट डालते हैं, प्रसन्न होते हुए उस पक्षीको मारते हैं और

नोपपद्यते ॥ ३० ॥ तथाहमपि संप्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः । क्षीणः सर्वार्थहानश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः ॥ ३१ ॥ कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहुदुःखितः । प्रोवाच सञ्जयं भूयः शोकव्याकुलमानसः ३२ धृतराष्ट्र उवाच योऽजयत् सर्वकाम्बोजानम्बष्ठान् कैकयैः सह । गान्धारांश्च विदेहांश्च जित्वा कार्यार्थमाहवे ।३३॥ दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं पृथिवीं योऽजयत्प्रभुः । स जितः पाण्डवैः शूरैः समरे बाहुशालिभिः ॥ ३४ ॥ तस्मिन् हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना । के वीराः पर्यतिष्ठन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३५ ॥ कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे । उक्तं त्वया पुरा तात यथा वीरो

पीछेसे उसको उड़ा देते हैं तो भी वह पक्षी पंखोंसे हीन होजाने के कारण आकाशमें को उड़ नहीं सकता है ॥२९॥३०॥ ऐसेही मैं भी पंख कटेहुए पक्षीकी समान दुःखकी दशामें आपड़ा हूँ, क्षीण होगया हूँ, सकल पदार्थोंसे हीन होगया हूँ, मेरे सम्बन्धी और भाई नहीं रहे, दीन होकर शत्रुओंके वशमें पड़ा हुआ मैं अब किधरको जाऊँ, यह मुझे नहीं सूझता ॥ ३१ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि-धृतराष्ट्रने बहुतही दुःखी होकर इसप्रकार विलाप किया, (थोड़ी देर ठहर कर) फिर मनमें शोकसे व्याकुल होतेहुए संजय से कहा, ॥ ३२ ॥ धृतराष्ट्र बोले, कि-जिस कर्णने कांबोज, केकयों सहित अंबष्ठ, गांधार और विदेहोंको राज्यके कामके लिये युद्धमें जीता था और जिस समर्थ कर्णने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये पृथ्वीको जीता था उस कर्णको वीर और बाहुबलशाली पांडवोंने रणभूमिमें जीतलिया तथा महाधनुषधारी इस कर्णको अर्जुनने जब युद्धमें मारडाला उस समय हे सञ्जय ! रणमें उसके आसपास कौन२ से वीर खड़े थे ? ॥ ३३-३५ ॥ क्या सब योधा उसको छोड़गये तब पांडवोंने अकेला देखकर उसको रणमें मारडाला ? हे तात ! जिसप्रकार वीर कर्णका मरण हुआ था, वह घटना तूने पहिले

निपातितः ॥ ३६ ॥ भीष्ममप्रतियुध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः। पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।३७॥तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि।युक्तयोगो महेष्वासः शरैः बहुभिराचितः ३८ निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन सञ्जय। अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः॥३९॥अश्रौषमहमेतद्वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ। भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद्वज्रभृत् स्वयम् ॥४०॥ न्यायेन युध्यमानौ हि तद्वै सत्यं ब्रवीमि ते। कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ॥ ४१ ॥ कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत्। यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणाम् ॥ ४२ ॥ प्रायच्छत् द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरन्दरः। यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः

मुझे सुनायी थी ॥३६॥ भीष्मजीने जब सामने लड़ना बन्द कर दिया तब शिखण्डीने सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मजीको रणमें बढ़िया बाण मारकर मारडाला था ॥ ३७ ॥ ऐसे ही बड़े धनुषधारी और योगाभ्यासी द्रोणाचार्यने भी जब सब हथियार हाथमेंसे नीचे धरदिये थे तब हे संजय! द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न ने बाणोंसे ढकेहुए द्रोणाचार्यको तलवार उठाकर उसके एक ही प्रहारसे उनका उनका शिर काटडाला था ॥ ३८ ॥ मैंने सुना है, कि-भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यको इसप्रकार कपटसे मार डाला। नहीं तो यदि स्वयं इन्द्र भी रणमें सामने आकर भीष्म और द्रोणाचार्यके साथ धर्मसे युद्ध करता तो उनको नहीं मार सकता था (वे ऐसे अजेय थे) यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, कर्ण भी रणमें दिव्य अस्त्रोंकी मारामार करता था, वह इन्द्रकी समान था, फिर वह रणमें कालका ग्रास कैसे होगया ? इन्द्रने दो कुण्डल लेकर उनके बदलेमें कर्णको जो बिजलीकी समान कान्तिवाली, सुवर्णसे सजायीहुई और शत्रुका नाश करने वाली दिव्य शक्ति दी थी और जिसका दिव्य बाण सर्पके मुख

काञ्चनभूषणः ॥ ४३ ॥ अशेत निहतः पत्री चन्दनेश्वरिसूदनः । भीष्मद्रोणप्रमुखान् वीरान् योऽवमन्ये महारथान् ॥४४॥ जामदग्न्या-न्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत । यश्च द्रोणमुखान् दृष्ट्वा विमुखानर्दितान् शरैः ॥ ४५ ॥ सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत् कार्मुकं शितैः । यश्च नागायुतप्राणं वज्ररंहसमच्युतम् ॥ ४६ ॥ विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत् । सहदेवञ्च निर्जित्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४७॥ कृपया विरथं कृत्वा नाहनद्धर्मचिन्तया । यश्च मायासहस्राणि विकुर्वाणं जयैषिणम् ॥ ४८ ॥ घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान् । एतांश्च दिवसान् यस्य युद्धे भीतो धनञ्जयः ॥४९॥ नागमद्द्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे । संशप्तकानां योधा ये आहूयन्त सदान्यतः ॥ ५० ॥ एतान्हत्वा

की समान दिव्य और सोनेसे मढाहुआ था, ऐसा चन्दनसे चर्चित हुआ शत्रुका नाश करनेवाला कर्ण मरकर रणमें सोरहा है। जिस वीरने भीष्म द्रोण आदि महारथी वीर पुरुषोंका अपमान किया था ३९–४४ जिसने जमदग्निके पुत्र परशुरामजीसे महाभयानक ब्रह्मास्त्रका प्रयोग सीखा था और द्रोण आदि वीरोंको वाणोंकी मारसे दुःखी होकर रणमेंसे पीछेको लौटते हुए देखने पर जिस महाबाहु कर्णने वाण मारकर अभिमन्युके वाणके भी टुकड़े करडाले थे और जिसने दश हजार हाथियोंकी समान बलवान्, वज्रकी समान वेगवाले और रणमेंसे पीछेको पैर न देनेवाले भीमसेनके रथको तोड़कर एकायकी रथहीन करके उसका उपहास कियाथा तथा नमेहुए पर्वोंवाले वाणोंसे सहदेवको रणमें जीतकर जिसने रथशून्य करदिया था, जिससे सहस्रों पुरुष प्रेम करते थे, और जिसने विजयकी इच्छावाले राक्षसोंके राजा घटोत्कचको इन्द्रकी शक्ति मारकर मारडाला था और इतने दिन होगये, अर्जुन जिससे भयभीत होकर द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिये सामने नहीं आता था ऐसे कर्णको उसने रणमें कैसे मारडाला ? जब संशप्तक योधा

हनिष्यामि पश्चाद्वैकर्तनं रणे। इति व्यपदिशन् पार्थो वर्जयन् सूतजं रणे ॥ ५१ ॥ स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा। रथभङ्गो न चेत्तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥ ५२ ॥ चेदस्माणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः। को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद्धनुः ॥ ५३ ॥ विमुञ्चन्तं शरान् घोरान् दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे। जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनं ॥५४॥ ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः। अस्त्राणि वा प्रनष्टानि यथा शंससि मे हतम् ॥ ५५ ॥ न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने। न हन्मि फाल्गुनं यावत् तावत् पादौ न धावये ॥५६॥ इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः। यस्य भीतो वने निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ५७ ॥ त्रयोदशसमा नित्यं नालभत् पुरुष-

दूसरी ओर लड़नेको बुलाते थे, तब अर्जुन कहता था, कि—मैं संशप्तकोंको मारकर पीछे कर्णको मारूँगा, सदा ऐसा कहकर अर्जुन कर्णको छोड़कर रणमें चलाजाता था, ऐसे शत्रुका विनाश करनेवाले कर्णको, अर्जुनने कैसे मारडाला ? यदि उसका रथ नहीं टूटा, यदि उसका धनुष नहीं टूटा अथवा यदि उसके अस्त्र नहीं टूटे, तो फिर शत्रुओंने कर्णको कैसे मारडाला? (निःसन्देह ऐसाही कुछ हुआ होगा नहीं तो उसको कौन मार सकता था?) बड़ाभारी धनुष घुमानेवाले, रणभूमिमें दिव्य और भयानक अस्त्रोंकी मारमार करनेवाले, पुरुषोंमें सिंहसमान कर्णको वेगमें भरेहुए सिंहकी समान, रणमें कौन मार सकता था?४५—५४ तू मुझे जैसा कर्णके मरणका समाचार कहरहा है इससे मुझे प्रतीत होता है कि—या तो उसका धनुष कटगया होगा अथवा उसका रथ भूमिमें गढ़गया होगा या उसके पासके अस्त्र बिगड़ गये होंगे, इसके सिवाय उसके मरणमें मैं कोई दूसरा कारण नहीं देखता" मैं जब तक अर्जुनको मार नहीं डालूँगा तबतक अपने पैरोंको नहीं धोऊँगा" यह जिस महात्माकी प्रतिज्ञा

र्षभः । यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः । ५८ ॥ मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान् बलात् । तत्रापि च सभामध्ये पाण्डवानाञ्च पश्यतां । दासभार्येति पांचालीमब्रवीत् कुरुसन्निधौ । न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्डतिलैः समाः ॥ ६० ॥ उपतिष्ठस्व भर्त्तारमन्यं वा वरवर्णिनि । इत्येवं यः पुमान् वाचो रूक्षाः संश्रावयन्रुषा ॥ ६१ ॥ सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः । यदि भीष्मा रणश्लाघी द्रोणो वा युद्धदुर्मदः ६२ न हनिष्यति कौन्तेयान्पक्षपातात्सुयोधन । सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ६३ ॥ किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी । स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः ॥६४'

थी जिस पुरुषके भयसे श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर तेरह वर्ष तक सोये नहीं थे, जिस महात्मा और पराक्रमी कर्णके पराक्रमका आश्रय लेकर मेरे पुत्रने बलात्कारसे (जबरन) पांडवोंकी स्त्री द्रौपदीको भरीसभामें घसिटवाकर मँगवाया था और उस सभामें पांडवोंके देखतेहुए ही और कौरवोंके समीपमें ही पांचालीको 'दासकी स्त्री' कहा था और यह भी कहा था, कि-अरी द्रौपदी ! ये सब तेरे पति नहीं हैं, किन्तु तिलखण्डोंकी समान निकम्मे हैं ॥ ५५-६० ॥ इसलिये अरी सुन्दराङ्गी ! तू किसी दूसरे भर्त्ताकी सेवा कर, इसप्रकार जिस कर्णने बीच सभामें क्रोधमें भरकर द्रौपदीको असंख्यों कठोर बातें सुनाई थीं उस कर्णको शत्रुओंने कैसे मारडाला ? और जो कर्ण नित्य दुर्योधनसे कहता था, कि-यदि रणमें प्रशंसाके पात्र भीष्म अथवा रणमें मदोन्मत्त होजानेवाले द्रोणाचार्य पक्षपातसे पांडवोंको नहीं मारेंगे तो मैं स्वयं पांडवोंका संहार करूँगा, तू अपने मनके सन्ताप को दूरकर ॥ ६१-६३ ॥ गांडीव धनुष और अक्षय भाथे क्या करेंगे ? जब मेरे चमकते हुए, चन्दनसे चर्चित बाण गिरने लगेंगे

स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः । यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन् ॥ ६५ ॥ अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन् पार्थान-वैक्षत । यस्य नासीद्भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः ॥ ६६ ॥ स्व-बाहुबलमाश्रित्य मुहूर्तमपि सञ्जय । तस्य नाहं वधं मन्ये देवै-रपि सवासवैः ॥ ६७॥ प्रतीपमभिधावद्भिः किं पुनस्तात पांडवैः । न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वापि गृह्णतः ॥ ६८ ॥ पुमानाधि-रथेः स्थातुं कश्चित् प्रमुखतोऽर्हति । अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः ॥ ६९ ॥ न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपला-यिनः । येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ॥ ७० ॥ वासु-देवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचयत् । स नूनं वृषभस्कन्धं कर्णं दृष्ट्वा निपातितम् ॥७१ ॥ दुःशासनञ्च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः ।

तब किसीका भी बल नहीं चलेगा' ऐसे बैलकी समान कंधोंवाले कर्णको अर्जुनने कैसे मारडाला ? जिसने बीचसभामें द्रौपदीसे 'तेरे पति नहीं रहे' ऐसा कहकर पांडवोंके मुखके सामनेको [हँस कर] देखा था और हे संजय ! जो अपने भुजबलका भरोसा रख कर श्रीकृष्ण, पांडव और उनके पुत्रोंसे नहीं डरता था, मेरी समझमें इन्द्र और देवता भी उसका वध नहीं करसकते थे ६४-६७ तब शत्रु बनकर चढ़ाई करनेवाले पांडव तो उसका नाश कर ही कैसे सकते थे ? धनुषकी डोरीको छूनेवाले अथवा चमड़ेके मोजे पहर कर धनुपको उठानेवाले अधिरथके पुत्र कर्णके सामने कोई भी खड़ा नहीं रहसकता था, कदाचित् यह पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंसे रहित होजाय तो भी लड़ाईमें पीछेको पैर न रखनेवाले महात्मा कर्णका नाश होना अशक्य था, परन्तु जिस मेरे दुष्टबुद्धि और मूर्ख पुत्रने अपने भाई दुःशासन तथा कर्णकी सहायतासे श्रीकृष्णका अपमान करना स्वीकार किया था वह मेरा पुत्र, बैलकी समान कंधोंवाले कर्णको और दुःशा-सनको मारागया सुनकर मेरी समझमें शोकही करता होगा, द्वन्द्व

हत वैकर्त्तनं दृष्ट्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥ जयतः पाण्डवां-
श्चापि किंस्विद्द दुर्योधनोऽब्रवीत् । दुर्मर्षणं हतं दृष्ट्वा वृषसेनञ्च
संयुगे ॥ ७३ ॥ प्रभग्नञ्च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः । पराङ्मु-
खांश्च राज्ञस्तु पलायनपरायणान् ॥७४॥ विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा
मन्ये शोचति पुत्रकः । अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ।
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंचिद्द दुर्योधनोऽब्रवीत् । स्वयं वैरं महत् कृत्वा
वार्यमाणः सुहृद्गणैः ॥ ७६ ॥ प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद्दुर्योधनोऽ-
ब्रवीत् । भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ७७ ॥ रुधिरे
पीयमाने च किंस्विद् दुर्योधनोब्रवीत् । सहगान्धारराजेन सभायां
यदभाषत ॥७८॥ कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन् किमब्रवीत् ।
द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पाण्डवान् ॥ ७६ ॥ शकुनिः

युद्धमें अर्जुनने कर्णको मारडाला, यह सुनकर तथा पांडवोंको विजय पातेहुए देखकर दुर्योधनने क्या कहा था? मेरी समझमें महाक्रोधी कर्णको मरा हुआ देखकर और अपनी सेनामें भागड़ पड़ी देखकर, महारथियोंको अपनी सेनाका संहार करते हुए देखकर तथा रथियोंको पीठ फेरकर भागते हुए देखकर मेरा पुत्र शोक ही करता होगा.उद्धत, अभिमानी दुष्टबुद्धि और इन्द्रि-योंके वशीभूत हुए दुर्योधनने अपनी सेनाको उत्साहहीन देखकर क्या कहा था ? रणमें जिनमेंके बहुतसे मारेगये थे ऐसे सम्ब-न्धियोंने मना किया तो भी दुर्योधनने अपने आप बड़ाभारा वैर खड़ा करदिया था, उस दुर्योधनने बहुतसे सम्बन्धियोंके मारे जाने पर क्या कहा था ? और भीमसेनने उसके भाई दुःशासन को रणमें मारडाला, तथा भीमसेन उसका रुधिर पीने लगा यह देखकर दुर्योधनने क्या कहा था ? दर्योधनने गांधारराज शकुनिके साथ रह कर भरी सभामें कहा था, कि-कर्ण लड़ाईमें अर्जुनको अवश्य ही मार डालेगा, परन्तु जब वह कर्ण ही लड़ाईमें मारागया तब दर्योधन क्या बोला ?

सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् । कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ॥ ८० ॥ हतं वैकर्त्तनं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते ॥ ८१ ॥ धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः । युवा रूपेण सम्पन्नो दर्शनीयो महायशाः ॥ ८२ ॥ अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत सञ्जय । आचार्यो यो धनुर्वेदे गौतमो रथसत्तमः ॥ ८३ ॥ कृपः शारद्वतस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् । मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा विनिहतं कर्णं सारथ्ये रथिनां वरः । किमभाषत सौवीरो मद्राणामधिपो बली ॥ ८५ ॥ दृष्ट्वा विनिहतं सर्वे योधा वा रणदुर्जयाः । ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः । वैकर्त्तनं हतं दृष्ट्वा कान्यभाषन्त सञ्जय ॥ ८६ ॥ द्रोणे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे । के वा मुखमनीकानामासन् संजय

और हे तात ! सुबलका पुत्र शकुनि, पहले जुआ खेलकर और उसमें पांडवोंको ठगकर बड़ा प्रसन्न हुआ था, उसने कर्णके मारे जाने पर क्या कहा ? महाधनुषधारी और सात्वतोंमें महारथी हृदीकके पुत्र कृतवर्माने कर्णको मारागया देखकर क्या कहा? हे संजय ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य धनुर्विद्या जाननेके अभिलाषी होकर जिस बुद्धिमान् अश्वत्थामाके पास सीखते थे, उस तरुण अवस्थावाले दर्शनीय और महायशस्वी अश्वत्थामाने जब कर्ण मारागया था तब क्या कहा था ? रथियोंमें श्रेष्ठ धनुर्वेदके आचार्य, गौतमगोत्री शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने कर्णके मारे जाने पर क्या कहा था ? सभामें शोभारूप, बलवान्, महारथी, सुवीरके पुत्र मद्रदेशके राजा शल्यने अपने सारथि होनेकी दशामें कर्णको मारागया देखकर क्या कहा था ? । ६४—८५॥ हे संजय! जिनको रणमें जीतना कठिन था ऐसे जो कितने ही राजे रणमें लड़नेके लिये आये थे वे योधा कर्णको मारागया देखकर क्या क्या बातें कहनेलगे थे ? ॥ ८६ ॥ हे संजय ! रथियोंमें व्याघ्र-

भागशः ॥ ८७ ॥ मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः ।
वैकर्त्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८८ ॥ केऽरक्षन् दक्षिणं
चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः । वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य
पृष्ठतः ॥ ८९ ॥ के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः ।
कथञ्च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः ॥ ९० ॥ पाण्डवाश्च
स्वयं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथाः । सृजन्तः शरवर्षाणि वारिधारा
इवाम्बुदाः ॥ ९१ ॥ स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा ।
व्यर्थः कथं समभवत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ९२ ॥ मामकस्यास्य
सैन्यस्य हतोत्सेधस्य सञ्जय । अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते

समान और मनुष्योंमें उत्तम वीर द्रोणाचार्य जब मारेगये तब कौन २ से पुरुष विभागके अनुसार किस २ सेनाके अधिपति हुए थे ? ॥ ८७ ॥ महारथी महाराज शल्यको सूर्यके पुत्र कर्ण का सारथी किसप्रकार बनाया था, हे सञ्जय ! वह घटना मुझे सुना ॥ ८८ ॥ जब वीर कर्ण सेनापति बनकर युद्ध कररहा था, तब कौन २ पुरुष कर्णके रथके बायें पहियेकी रक्षा कररहे थे ? और उसके दाहिने पहियेकी रक्षा कौन कररहे थे ? और कौन से वीर पुरुष उस शूर कर्णके पृष्ठभागमें खड़े होकर उसकी रक्षा कररहे थे ? ॥ ८९ ॥ तथा युद्धके समय कौन २ से शूरवीर लोगों ने कर्णकी रक्षा की थी, कौन २ क्षुद्र लोग उसको छोड़कर रण मेंसे भागगये थे ? और इकट्ठे होजाने पर भी तुममेंसे महारथी कर्ण कैसे मारागया ? ॥ ९० ॥ जैसे मेघ जलकी धारे बरसाते हैं तैसे ही महारथी वीर पाण्डव बाणोंकी वर्षा करतेहुए कर्णके ऊपर कैसे चढ़ आये थे ? ॥ ९१ ॥ हे सञ्जय ! उस समय सर्प जैसा मुखवाला उसका दिव्य महाधनुष निष्फल (बेकार) कैसे होगया था यह मुझे बता ? ॥ ९२ ॥ हे सञ्जय ! मेरी सेनाके मुख्य पुरुषका नाश होजाने पर मेरी सेनामें उत्साह नहीं रहा

सति ॥ ६३ ॥ तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे त्यक्तजीवितौ । भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीवितेन मे ॥ ६४ ॥ पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं कर्णञ्च पाण्डवैः । यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतैः ॥ ६५ ॥ द्रोणे हते च यद् वृत्तं कौरवाणां परैः सह । संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥६६॥ यथा कर्णश्च कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत् । यथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच । हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत । कृते च मोघसंकल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥ १ ॥ द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बलार्णवे । व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद् भ्रातृभिः

था, उसमेंसे कोई बचा हो, मैं तो यह देखता नहीं ॥ ६३ ॥ महाधनुषधारी वीर भीष्म तथा द्रोणने मेरे लिये प्राण देदिये, उन महात्मा भीष्म और द्रोणको रणमें मारेगये सुनकर अब मेरे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ ६४ ॥ जिसकी भुजाओं में दशहजार हाथियोंकी समान बल था उस कर्णको पाण्डवोंने मारडाला, इस बातको बार २ सुनकर वह दुःख अब मुझसे सहा नहीं जाता ॥ ६५ ॥ हे सञ्जय ! द्रोणाचार्यके मारेजाने पर मनुष्योंमें श्रेष्ठ कौरवोंका शत्रुओंके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ था यह मुझे सुना ? ॥ ६६ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले कर्णने जिसप्रकार कुन्तीके पुत्रोंके साथ युद्ध किया हो तथा जिसप्रकार वह रणमें मारागया हो वह सब समाचार मुझे सुना ॥ ६७ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! उस दिन महाधनुषधारी द्रोणाचार्य रणमें मारेगये और महारथी अश्वत्थामा का सङ्कल्प निष्फल होगया, तब सब कौरवोंका सेनादलसागर पीछेको हटनेलगा और अर्जुन अपने भाइयोंसे घिरकर अपनी

सह ॥ २ ॥ तमवस्थितमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ । विद्रुतं स्वबलं
दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत् ॥ ३ ॥ स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्य-
मुपाश्रितः । युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत ॥ ४ ॥
लब्धलक्ष्यैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा । सन्ध्याकालं समा-
साद्य प्रत्याहारमकारयत् ॥ ५ ॥ कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य
शिबिरं स्वकम् । कुरवः सुहितं मन्त्रं मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः ॥ ६ ॥
पर्यङ्केषु परार्द्ध्येषु स्पर्द्ध्यास्तरणवत्सु च । वरासनेषूपविष्टः
सुखशय्यास्विवामराः ॥ ७ ॥ ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परम-
वल्गुना । तानाभाष्य महेष्वासान् प्राप्तकालमभाषत ॥ ८ ॥ दुर्यो-
धन उवाच । मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम् । एवं गते

सेनाको व्यूहरचनामें गूँथकर लड़नेके लिये सामने आकर खड़ा
होगया ॥ १ ॥ २ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! अर्जुनको सामने
खड़ाहुआ देखकर तथा अपनी सेनाको भागताहुआ देखकर उस
को तुम्हारे पुत्रने पराक्रम करके रोकलिया ॥ ३ ॥ हे भारत !
अपनी सेनाको व्यूहके रूपमें खड़ी करके दुर्योधनने, अपने बाहु-
बलसे विजय पाकर प्रसन्न हुए और बहुत दिनोंसे विजयके लिये
उद्योग करनेवाले पाण्डवोंके साथ बहुत देर तक युद्ध किया और
सायंकाल होते ही सेनाको उसके नायक छावनीमें लेगये ॥ ४ ॥ ५ ॥
सेनाओंको पीछेको लौटाकर कौरव अपनी छावनीमें गये और
तहाँ आपसमें आगेके लिये हितकारी विचार करनेलगे ॥ ६ ॥
जैसे उत्तम गलीचे बिछीहुई सुखशय्याओं पर देवता बैठे हों, ऐसे
ही कौरव, जिनपर बहुमूल्य विस्तर बिछेहुए थे ऐसे पलँगों पर
तथा सुखदायक गद्दों पर बैठकर विश्राम लेनेलगे ॥ ७ ॥ कुछ
देर बाद राजा दुर्योधनने सब बड़े २ धनुषधारियोंको सम्बोधन
करके अतिमधुर और प्यारे वचनोंसे समयके अनुकूल बात कहना
आरम्भ की ॥ ८ ॥ कि—हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजाओं ! तुम सब
मेरी बात सुनकर झट उत्तर दो, विलम्ब न करना, हे राजाओं!

तु किं कार्यं किञ्च कार्यतरं नृपाः ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । एव-
मुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः । चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहा-
सनगतास्तदा ॥ १० ॥ तेषां निशम्येङ्गितानि युद्धे प्राणान् जुहू-
षताम् । समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम् ॥ ११ ॥
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे । रागो योगस्तथा दाक्ष्यं
नयश्चेत्यर्थसाधकाः ॥ १२ ॥ उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैव-
मुपाश्रिताः । लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः ॥ १३ ॥
नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः । न त्वेव कार्यं
नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ॥ १४ ॥ सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनु-

---

इस समय जो घटना हुई है, इसको देखतेहुए अब क्या काम
करना चाहिये, यह मुझे बताओ ? ॥ ९ ॥ सञ्जय कहता है,
कि-राजा दुर्योधनके इसप्रकार बूझने पर लड़नेकी इच्छावाले
जो मनुष्योंमें सिंहसमान योधा सिंहासनों पर बैठे थे, वे अनेकों
प्रकारकी शूरताकी चेष्टायें करनेलगे ॥ १० ॥ ये युद्धाग्निमें अपने
प्राणोंको होमना चाहते हैं, उन राजाओंके मनोंके ऐसे अभि-
प्रायोंको देखकर तथा राजा दुर्योधनके बाल-सूर्यकी समान
तेजस्वी मुखको देखकर ॥ ११ ॥ वाक्यके मर्मको समझनेवाला
बुद्धिमान् अश्वत्थामा कहनेलगा, पण्डित कहते हैं, कि—राग
(स्वामीकी भक्ति) योग (देश काल आदिकी सम्पत्ति),दाक्ष्य
(बल), और नीति ये चार उपाय सन्धि आदि कार्यकी सिद्धि
देनेवाले हैं, परन्तु इनका आश्रय दैव ही है, हमारे जो योधा
लोकोंमें महान् वीर गिनेजाते थे, देवताओंकी समान, महारथी,
नीतिमान्, देश काल आदिकी सम्पत्तिवाले, बलवान्, चतुर
और स्वामिभक्त थे, वे सब मारे गये तो भी हमें अपनी विजयके
विषयमें निराश नहीं होना चाहिये ॥ १२—१४ ॥ सब उपायों
को यदि अच्छे प्रकारसे काममें लाया जाता है तो दैव भी अनु-

लोभ्यते । ते वयं मवरं नृणां सर्वगुणगणैर्युतम् ॥१५॥ कर्णमेवाभिषेच्यामः सैन्यापत्येन भारत । कर्णं सेनापतिं कृत्वा ममथिष्यामहे रिपून् ॥ १६ ॥ एष ह्यतिबलः शूरः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः । वैवस्वत इवासह्यः सक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥ १७ ॥ एतदाचार्यतनयात् श्रुत्वा राजंस्तवात्मजः । आशाञ्च महतीञ्चक्रे कर्णं प्रति स वै तदा । हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पांडवान् । तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ॥ १६ ॥ ततो दुर्योधनः मीतः प्रियं श्रुत्वास्य तद्वचः । मीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम् ॥ २० ॥ स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः । दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं च परं मयि । तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि

कूल होजाता है, इसलिये हे भरतवंशी राजन् ! हम सब गुण गणोंसे युक्त मनुष्योंमें श्रेष्ठ कर्णको ही सेनापतिके पदपर अभिषेक करदें, यदि हम कर्णको सेनापति बना लेंगे तो शत्रुओंका संहार करडालेंगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह कर्ण महाबलवान्, वीर, अस्त्रविद्यामें चतुर, युद्धमें दुर्मद यमकी समान असह्य और रण में शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ है ॥१७॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रने आचार्यके पुत्रसे यह बात सुनकर उस समय कर्णके ऊपर बड़ी आशा बाँधी ॥ १८ ॥ और भीष्म तथा द्रोणाचार्यके मरण होजानेके अनन्तर कर्ण पाण्डवोंको जीतलेगा, मनमें ऐसी आशा होनेसे हे भारत ! दुर्योधनके चित्तको कुछ शान्ति मिली ॥१६॥ और प्रसन्न हुए दुर्योधनने अश्वत्थामाकी प्रीति और सत्कार से भरी हुई तथा अपना हित करनेवाली, परिणाममें सुख देने वाली इस बातको सुनकर अपने मनको स्थिर किया और महाराज ! अपने भुजबलका भरोसा रखनेवाले दुर्योधनने कर्णसे यह बात कही, कि-॥ २० ॥ २१ ॥ हे कर्ण ! मैं तेरे पराक्रमको जानता हूँ तथा मेरे ऊपर तेरा बड़ा प्रेम है तो भी हे महाबाहो !

हितं वचः ॥ २२ ॥ श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत्तव रोचते ।
भवान् प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः ॥ २३ ॥ भीष्मद्रोणा-
वतिरथौ हतौ सेनापती मम । सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविण-
वत्तरः ॥ २४ ॥ वृद्धौ हि तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनञ्जये ।
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात्तव ॥ २५ ॥ पितामहत्वं
संप्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे । रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि
दशैव तु ॥ २६ ॥ न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः प्रतापवान् ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फाल्गुनेन महाहवे ॥ २७ ॥ हते तस्मिन्
महेष्वासे शरतल्पगते तदा त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत्
पुरःसरः ॥ २८ ॥ तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिति मे
मतिः । स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम् ॥ २९ ॥

मैं तुझसे एक हितकी बात कहता हूँ ॥ २२ ॥ हे वीर ! मेरी बातको सुनकर जो तुझे अच्छा लगे वह भले ही कर, तू महा-बुद्धिमान् है और सदा ही मेरा बड़ाभारी आधार है ॥ २३ ॥ मेरे सेनापति अतिरथी भीष्म और द्रोण मारे गये, तू उनसे भी अधिक बलवान् है, इसलिये तू मेरा सेनापति बनजा ॥ २४ ॥ महाधनुषधारी वे दोनों सेनापति बूढ़े थे और अर्जुनके ऊपर ममता रखते थे, तो भी हे कर्ण ! मैंने तेरे कहनेसे उनका मान्य किया था हे तात ! भीष्मजीने अपने पितामहपनेकी ओर दृष्टि रखकर महारणमें दश दिनतक पाण्डवोंकी रक्षा की ॥ २६ ॥ तूने शस्त्र रख दिये थे इस लिये ही अर्जुनने रणभूमिमें शिखंडी को अपने आगे रखकर भीष्मपितामहको मारडाला ॥ २७ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! ज्योंही भीष्मपितामह घायल हुए और शरशय्या पर पड़रहे. कि-तेरे कहनेसे द्रोणाचार्य सेनापति बनगये ॥२८॥ मेरी समझमें उन्होंने भी अपने शिष्य होनेके कारण पाण्डवों की रक्षा की उन वृद्ध द्रोणाचार्यको भी धृष्टद्युम्नने तुरन्त मारडाला २९

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्यान्न मितविक्रम । त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन् ॥३०॥भवानेवाद्य नः शक्तो विजयाय न संशयः । पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम् ॥ ३१ ॥ स भवान् धुर्यवत् संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति । अभिषेचय सैनान्ये स्वय-मात्मानमात्मना ॥ ३२ ॥ देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभु-रव्ययः । तथा भवानिमां सेनां धार्त्तराष्ट्रीं विभर्त्तु वै ॥ ३३ ॥ जहि शत्रुगणान्सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव । अवस्थितं रणे दृष्ट्वा पाण्डवास्त्वां महारथाः ॥ ३४ ॥ द्रविष्यन्ति च पञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः । तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षेतां महाचमूम् ॥३५॥ भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा मन्दचेतसः । द्रविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाः सृञ्जयाश्च ह ॥ ३६ ॥ यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन्

हे कर्ण ! तेरा पराक्रम उन दोनों मुख्य पुरुषोंसे कम नहीं है, मैं विचार करता हूँ तो युद्धमें तेरी समान दूसरे किसी भी योधाको नहीं देखता ॥ ३० ॥ निःसन्देह तू ही हमारी विजय करासकता है, क्योंकि—तूने प्रारम्भमें, मध्यमें तथा अन्तमें हमारा हित किया है ॥ ३१ ॥ ऐसे तुझको बैलकी समान संग्राममें हमारी विजयका जुआ अपने कंधेपर लेना चाहिये और तू आप ही अपना सेनापतिके पदपर अभिषेक करले ॥३२॥ जैसे स्वामि-कार्त्तिकेय देवताओंका मुख्य और चिरञ्जीव सेनापति है तैसे ही तू भी इस कौरवी सेनाका सेनापति बनकर इसकी रक्षा कर३३ और जैसे इन्द्र दानवोंका संहार करता है तैसे ही तू भी सब शत्रुओंका संहार कर, महारथी पाण्डव तुझे रणभूमिमें खड़ा हुआ देखते ही जैसे दानव विष्णुको देखकर भाग जाते हैं तैसे ही भागजायँगे, इसलिये हे पुरुषश्रेष्ठ ! तू सेनापति बनकर इस सेनाको रणभूमिमें लेजा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तेरे तयार होकर रण-भूमिमें खड़ा होते ही मन्दबुद्धि पाण्डव अपने मन्त्रियोंके साथ भागजायँगे तथा पांचाल और सृञ्जय भी भागजायँगे ॥ ३६ ॥

स्वेन तेजसा । व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून् प्रतापय ॥ ३७ ॥ सञ्जय उवाच । आशा बलवती राजन् पुत्रस्य तत्र याभवत् । हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ॥ ३८ ॥ तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत् । सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाग्रे संयुयुत्सति ॥ ३९ ॥ कर्ण उवाच । उक्तमेतन्मया पूर्वं गांधारे तव सन्निधौ । जेष्यामि पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रान् सजनार्दनान् ४० सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः । स्थितो भव महाराज जितान् विद्धि च पांडवान् ॥ ४१ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्तो महाराज ततो दुर्योधनो नृपः । उत्तस्थौ राजभिः सार्द्धं देवैरिव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥ सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः ।

जैसे सूर्य उदय होकर अपने तेजसे तपताहुआ अन्धकारका नाश करडालता है, तैसे ही तू भी रणमें प्रकाशित होकर शत्रुओंका संहार कर ॥३७॥ सञ्जयने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र! तुम्हारे पुत्रको जो बड़ीभारी आशा थी, कि—भीष्म और द्रोणाचार्यके मारेजाने पर भी कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा॥३८॥उस आशाको अपने हृदयमें रखकर दुर्योधनने उस समय कर्णसे यह बात कही कि—हे सूतपुत्र ! पार्थ तेरे सामने खड़ा होकर लड़ना नहीं चाहता ॥ ३९ ॥ कर्णने कहा; कि—हे गान्धारीके पुत्र ! मैंने तुझसे पहले ही कहा था, कि—मैं तेरा सेनापति बनूँगा और पुत्रोंके तथा श्रीकृष्णके सहित सब पांडवोंको जीत लूँगा, इसमें जरा भी सन्देह न करना,हे महाराज ! अब तू स्थिर हो और पाण्डवोंको हाराहुआ ही समझ ॥ ४० ॥ ४१ ॥संजयने कहा, कि—हे महाराज ! जब कर्णने ऐसा कहा, तब जैसे इन्द्र देवताओंके साथ उठता है तैसे ही राजा दुर्योधन राजाओंके साथ उठकर खड़ा होगया ॥४२॥ और जैसे देवताओंने स्वामिकार्त्तिकेयको सेनापतिके पदपर नियत किया था तैसे ही सब राजाओंने शास्त्रकी लिखी हुई विधिके अनुसार कर्णका सेनापतिके पदपर अभिषेक

ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३ ॥ दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः । शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ ४४ ॥ तोयपूर्णैर्विषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः । मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥ ४५ ॥ औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृते। शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसंभृतैः४६ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः । तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥४७॥ ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च । वाचयामास विप्राग्र्यान् राधेयः परवीरहा ॥ ४८ ॥ जय पार्थान् सगोविन्दान् सानुगांस्तान्महाहवे । इति ते वन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च पुरुषर्षभम् ॥ ४९ ॥ जहि पार्थान् सपाञ्चालान् राधेय विजयाय नः । उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः५०

करना आरम्भ करदिया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! सोनेके और मट्टी के पात्रोंमें तथा हाथी, गेंडा और बैलके सीगोंमें मन्त्र पढ़कर जल भरे, उसमें मणि, मोती और सब पवित्र गन्धवाली ओषधियें डालकर उस जलसे तथा इकट्ठी की हुई और सब सामग्रियोंसे विजय चाहनेवाले दुर्योधन आदि सब राजाओंने, गूलड़के पटले पर रेशमी वस्त्र बिछाकर उसके ऊपर आनन्दके साथ बैठेहुए कर्णका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया, तदनन्तर प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उत्तम सिंहासन पर बैठेहुए महात्मा कर्णकी स्तुति करनेलगे ॥ ४४–४७ ॥ हे राजेन्द्र ! सोने की मोहरें, गौएँ तथा धनके दान देकर कर्णका सेनापतिके पद पर अभिषेक पूरा होजाने पर शत्रुओंका नाश करनेवाले कर्णने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करवाया ॥ ४८ ॥ इस समय वन्दीजनों ने और ब्राह्मणोंने पुरुषोंमें उत्तम कर्णसे कहा, कि–हे कर्ण ! तुम महायुद्धमें गोविन्द और अनुचरों सहित पांडवोंको जीतना ॥ ४९ ॥ जैसे सूर्य उदय होते ही अपनी उग्र किरणोंसे अंधकारका नाश करता है तैसे ही हे कर्ण ! तुम हमारी विजयके

न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां वै सकेशवाः । उलूकाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥ ५१ ॥ न च पार्थाः सपाञ्चालाः स्थातुं शक्तास्तवाग्रतः । आत्तशस्त्रस्य समरे महेन्द्रस्येव दानवाः ५२ अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः । अत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥ ५३ ॥ सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव । अमन्यत तदात्मानं कृतार्थं कालचोदितः ॥५४॥ कर्णोऽपि राजन् संप्राप्य सैनापत्यमरिन्दमः । योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ५५ ॥ तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत । देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

लिये पांचालों सहित पांडवोंका नाश करो ॥ ५० ॥ जैसे उलूक प्रकाशित हुए सूर्यकी किरणोंको नहीं सहसकते तैसे ही श्रीकृष्ण सहित पांडव भी तेरे छोड़ेहुए बाणोंको नहीं सहसकेंगे ॥ ५१ ॥ जैसे महेन्द्रके सामने दानव नहीं ठहरसकते तैसे ही पांचालोंके सहित पांडव रणमें शस्त्रधारण करने पर तेरे सामने खड़े नहीं होसकेंगे ॥ ५२ ॥ अपार कान्तिवाले कर्णका जब सेनापतिके पदपर अभिषेक होगया, उस समय उसकी कान्ति दूसरे सूर्यकी समान बड़ी ही प्रदीप्त दीखती थी॥५३॥कालके प्रेरणा कियेहुए तुम्हारे पुत्रने उस समय कर्णका सेनापतिके पदपर अभिषेक करके अपनेको कृतार्थ माना ॥ ५४ ॥ और हे राजन् ! शत्रुओं को दबानेवाले कर्णने भी सेनापतिके पदको पाकर सूर्यका उदय होनेके समय सेनाको तयार होनेकी आज्ञा दी ॥५५॥ हे भरतवंशी राजन् ! जैसे तारकासुरके संग्राममें देवताओंसे घिरेहुए स्वामिकार्त्तिकेयने शोभा पाई थी तैसे ही उस समय तुम्हारे पुत्रों से घिराहुआ कर्ण भी तहाँ शोभा पाने लगा ॥ ५६ ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ॥ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सैनापत्यन्तु संप्राप्य कर्णो वैकर्त्तनस्तदा । तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ॥ १ ॥ योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा । अकरोत् किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रास्ते भरतर्षभ । योगमाज्ञापयामासुर्नन्दितूर्यपुरःसरम् ॥ ३ ॥ महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य पार्थिव । योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ४ ॥ कल्पतां नागमुख्यानां रथानाञ्च वरूथिनाम् । सन्नह्यतां नराणाञ्च वाजिनाञ्च विशाम्पते ॥ ५ ॥ क्रोशताञ्चापि योधानां त्वरितानां परस्परम् । बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः ॥ ६ ॥ ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना । हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्षेण केतुना ॥७॥ तूणीरशतपूर्णेन सग-

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! सूर्यपुत्र कर्णके सेनापति वन जाने पर राजा दुर्योधनने उससे भाईकी समान हितकारी वचन कहा (सबके विश्राम लेलेने पर जब)-सूर्यका उदय हुआ कि-सेनाको तयार होनेका आज्ञा देकर फिर महाबुद्धिमान् कर्णने क्या किया था यह मुझे सुना ॥ १-॥ २ ॥ संजयने कहा, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन ! कर्णके विचारको जानकर तुम्हारे पुत्रोंने आनन्ददायक वाजे वजवाते हुए सब सेनाको तयार होनेकी आज्ञा दी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! रात्रि वीतनेको आयी, कि--तुम्हारी सेनामें एक साथ ' तयारी करो, तयारी करो ' ऐसा कोलाहल मचगया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! उस समय तयारी करनेमें मुख्य हाथियोंकी सेनावालोंका, रथियोंकी सेनाओंका और तयारी करतेहुए मनुष्योंका, घोड़ोंका आपसमें शीघ्रता करनेवाले और पुकारतेहुए योधाओंका वड़ाभारी शब्द होनेलगा और वह आकाश तक जापहुंचा ॥ ५॥ ६ ॥ सेनापति कर्ण, वायुके प्रतिकूल हानेके कारण सामनेको फहरातीहुई पताकावाले और निर्मल सूर्यकी समान दमकतेहुए रथमें वैठकर रणमें जाताहुआ

देन वरूथिना । शतघ्नीकिंकिणीशक्तिशूलतोमरधारिणा ॥ ८ ॥ कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा । रथेनातिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत ॥ ९ ॥ ध्मापयन् वारिजं राजन् हेमजालविभूषितम् । विधुन्वानो महच्चापं कार्त्तस्वरविभूषितम् ॥१०॥ दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनाम्वरम् । भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमोघ्नन्तं दुरासदम् ॥ ११ ॥ न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष । नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १२ ॥ ततस्तु त्वरयन् योधान् शंखशब्देन मारिष । कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद्बलम् ॥ १३ ॥ व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः ।

दीखा, कर्णके रथपर स्वेत पताका फहरा रही थी, उसके घोड़े बगलेकी समान सफेद थे, वह हाथमें सोनेकी मूठवाले धनुषको लिये हुए था, उसके रथकी ध्वजामें नागका चिन्ह था, सैंकड़ों भाथे, गदा, तोपें, किंकिणी, शक्ति, शूल, तोमर और धनुष उस रथके साथ थे तथा सैंकड़ों वाण और गदा धारण करनेवालोंकी सेना भी साथमें चलरही थी ॥७-६॥ हे राजन् ! उस समय कर्ण सुनहरी जालसे शोभायमान शंखको वजारहा था और सोना जड़ेहुए धनुषको हाथमें लेकर घुमारहा था ॥ १० ॥ हे राजन्! जैसे उदय होताहुआ सूर्य कठिनसे हटने योग्य अन्धकार का नाश करडालता है, तैसे ही महाधनुषधारी महारथी कर्ण भी बड़े रथमें बैठाहुआ था, उसने अपनी छावनीमेंसे निकलते ही उदासीनतारूप अन्धकारको दूर करदिया, यह देखकर ॥ ११ ॥ हे पुरुषोंमें व्याघ्रसमान राजन् ! कौरवोंमेंसे किसीने भी भीष्म, द्रोणाचार्य तथा अन्य वीरोंके मरनेका दुःख नहीं माना अर्थात् कर्णको देखते ही भीष्मादि महात्माओंके मरणके दुःखको भूलगये १२ हे राजन् ! तदनन्तर कर्ण अपना शंख वजाकर योधाओंको लड़नेके लिये मतवाले करताहुआ कौरवोंके बड़ेभारी सेनादलको छावनीमेंसे रणभूमिकी ओरको लेजानेलगा ॥ १३ ॥ इस समय

प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान् विजिगीषया ॥ १४ ॥ मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन् व्यवस्थितः । नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥ १५ ॥ द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः । मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः१६वामे पादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः।नारायणबलैर्युक्तोगोपालैर्युद्धदुर्मदैः१७ पादे तु दक्षिणे राजन् गौतमः सत्यविक्रमः। त्रिगर्त्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥१८॥ अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः । महत्या सेनया सार्द्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९ ॥ दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसङ्गरः । वृतो रथसहस्रेण दन्तिनाञ्च त्रिभिः शतैः ॥ २० ॥ पुच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा । चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ ॥ २१ ॥

शत्रुओंको दहलानेवाले महाधनुषधारी कर्णने पांडवोंको जीतनेकी इच्छासे अपनी सेनाको मकरव्यूहमें गूँथकर आगेको कूच किया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! मकरव्यूहमें गूँथीहुई सेनामें मगरके मुखके स्थान पर कर्ण खड़ाहुआ, दोनों नेत्रोंके स्थानों पर वीर शकुनि और महारथी उलूक खडेहुए ॥ १५ ॥ शिरस्थान पर अश्वत्थामा, कंठस्थान पर सब सगे भाई कौरव और मध्यस्थानमें बडीभारी सेनासे घिराहुआ राजा दुर्योधन खडा हुआ॥१६॥ हे राजेन्द्र!बायें चरणके स्थान पर युद्धमें दुर्मद नारायण नामके योधा तथा गोपालोंके साथ कृतवर्मा खड़ाहुआ॥१७॥हे राजन् ! मकरव्यूहके दाहिने चरणकी जगह सत्यपराक्रमी गौतम (कृपाचार्य) बड़े धनुषधारी त्रिगर्त्तों और दाक्षिणात्योंसे घिरकर खड़े हुए ॥ १८ ॥ वामचरणके पिछले भागमें मद्रदेशकी बड़ी भारी सेनाके साथ राजा शल्य खड़ाहुआ ॥ १९ ॥ हे महाराज! दाहिने चरणके पिछले भागमें सत्य प्रतिज्ञावाला राजा सुषेण एक हजार रथी और तीन सौ हाथियोंसे घिरकर खड़ाहुआ तथा मकरव्यूहके पूँछके भागमें चित्र और चित्रसेन नामके दो

तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे।धनञ्जयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२ ॥ पश्य पार्थ यथा सेना धार्त्तराष्ट्रीह संयुगे । कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्म्महारथैः ॥ २३ ॥ हतवीरतमा ह्येषा धार्त्तराष्ट्री महाचमूः । फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥ २४ ॥ एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते । सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ २५ ॥ चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनाम्वरः ।तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुनः२६ उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः । एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥ २७ ॥ भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः । अर्द्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम्।२८।वामपार्श्वे

महापराक्रमी भाई बड़ीभारी सेनासे घिरकर खड़ेहुए॥२०॥२१॥ हे राजेन्द्र ! महापुरुष कर्णके इसप्रकार कूच करने पर युधिष्ठिरने अर्जुनकी ओरको देखकर यह बात कही, कि—॥ २२ ॥ हे पार्थ! कर्णने इस युद्धमें धृतराष्ट्रकी सेनाको मकरके आकारमें सजाया है, और महारथी वीर पुरुषोंके द्वारा इसकी रक्षा की है. जरा इस पर दृष्टि डाल ॥ २३ ॥ हे महाबाहो ! धृतराष्ट्रकी बड़ीभारी सेनामें जो बड़े २ वीर थे वे मारेगये अब थोड़ेसे रहगये हैं, इस सेनाको तो मैं तृणोंकी समान समझता हूँ ॥ २४ ॥ इस सेनामें केवल एक महाधनुषधारी सूतपुत्र कर्ण ही शोभा पारहा है, यह महारथी, है देवता, असुर,गन्धर्व, किन्नर, बड़े२ सर्प और स्थावर जङ्गम तीनों लोक मिलकर भी इसको नहीं जीतसकते, हे महाबाहु अर्जुन! इस कर्णको मारनेसे आज तेरी विजय होगी॥२५॥ ॥ २६ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु बारह वर्षसे मेरे मनमें जो काँटा चुभा हुआ है वह भी आज निकलजायगा, इसलिये हे महाबाहु अर्जुन ! तू अपनी इच्छानुसार व्यूहरचना कर ॥२७॥ भाईकी इस बातको सुनकर स्वेत रङ्गके घोडोंवाले अर्जुनने अपनी सेनाको अर्धचन्द्रके आकारवाले व्यूहमें गूँथ दिया ॥ २८ ॥ उस

तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः। दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥ २९ ॥ मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनञ्जयः। नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥ ३० ॥ चक्ररक्षौ तु पांचाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ। नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥ ३१ ॥ शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः। यथाभागं यथोत्साहं यथायत्नञ्च भारत ॥ ३२ ॥ एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः। तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे। निहतान् पांडवान् मेने धार्त्तराष्ट्रः सबान्धवः ॥ ३४ ॥ तथैव पांडवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः। धार्त्तराष्ट्रान् हतान् मेने सकर्णान् वै जनाधिपः ॥ ३५ ॥ ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभिः। डि-

---

सेनाके बाईं ओर भीमसेन खड़ा हुआ, दाहिनी ओर महाधनुषधारी धृष्टद्युम्न खड़ाहुआ ॥ २९ ॥ व्यूहके मध्यभागमें राजा युधिष्ठिर और अर्जुन खड़े हुए, नकुल और सहदेव धर्मराजके पीछे खड़े हुए ॥ ३० ॥ पंचाल देशके युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके रथके पहियोंकी रक्षा करनेलगे और इन दोनोंकी रक्षा अर्जुन करता था तथा ये दोनों युद्धमें अर्जुनके पीछे ही चला करते थे ॥ ३१ ॥ हे भरतवंशी राजन्! बाकीके वीर राजे शरीर पर कवच पहरकर अपने उत्साह और उद्योगके साथ व्यूहमें जहाँ नियत कियेगये तहाँ जाकर खड़े होगये ॥ ३२ ॥ हे भारत! महाधनुषधारी पाण्डवोंने तथा कौरवोंने इसप्रकार व्यूह रचकर युद्ध करनेका विचार किया ॥ ३३ ॥ रणभूमिमें तुम्हारी सेनाको कर्णने व्यूहरचनामें खड़ा करदिया, यह देखकर दुर्योधनने और उसके भाइयोंने समझा कि-बस अब पाण्डव मारेगये ॥ ३४ ॥ हे राजन्! इसप्रकार ही राजा युधिष्ठिरने भी पाण्डवोंकी सेनाको व्यूहरचनामें खड़ीहुई देखकर कर्णसहित सब कौरवोंको मरा हुआ समझा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर दोनों सेनाओंमें शंख, भेरी,

डिडमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥ सैनयोरुभयो राजन् प्रावाद्यन्त महास्वनाः । सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥३७॥ हयहेषितशब्दाश्च वारणानाञ्च बृंहताम् । रथनेमिस्वनाश्चोग्राः संबभूवुर्जनाधिप ॥ ३८ ॥ न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते तत्र भारत । दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥३९॥ उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले । योद्धुकामे स्थिते राजन् हन्तुमन्योऽन्यमोजसा ॥ ४० ॥ तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योऽन्यं व्यवस्थितौ । अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥ ४१ ॥ नृत्यमाने च ते सेने समेयातां परस्परम् । तेषां पक्षैःप्रपक्षैश्च निर्जग्मुस्ते

पणव, आनक, दुन्दुभि, डौरू और झाँझ वजनेलगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! दोनों सेनादलोंमें बड़ी ध्वनिवाले वाजे वज उठे और विजयकी लालसावाले वीर सिंहकी समान गरजने लगे ॥३७॥ घोडे हिनाहिनानेलगे, हाथी चिंघारने लगे और हे राजन् ! रथ के पहियोंकी घड़े जोरकी घनघनाहट होने लगी ३८ हे राजन् ! उस समय व्यूहरचनाकी सेनाके मुहाने पर कवच पहरकर खड़े हुए महाधनुषधारी कर्णको देखकर उस समय किसीको भी द्रोणाचार्यके वियोगका दुःख नहीं मालूम होता था ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! दोनों सेनादल प्रसन्नमन योधाओंसे भरपूर थे, और लड़नेकी इच्छासे तथा परस्पर बलसे एक दूसरेका नाश करनेकी इच्छासे रणमें खडे थे ॥ ४० ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर कर्ण और अर्जुन एक दूसरेको देखकर क्रोधमें भरगये और तयार होकर सेनाके बीचमें घूमनेलगे ॥ ४१ ॥ और वे दोनों सेना मानो नाच रही हों इसप्रकार हर्षमें भरकर परस्पर युद्ध करनेलगीं और लड़नेकी इच्छावाले योधा आमने सामने सेनाओंमेंसे लड़ने

युयुत्सवः ॥ ४२ ॥ ततः प्रवहृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् । रथानाञ्च महाराज अन्योऽन्यमभिनिघ्नताम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि व्यूहनिर्माणे
एकादशोध्यायः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच । ते सेनेऽन्योऽन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे । बृहत्यौ संप्रजहाते देवासुरसमप्रभे ॥ १ ॥ ततो नरथाश्वेभैः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः । संप्रहारान् भृशञ्चक्रुर्देहपाप्मासुनाशनान् ॥२॥ पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तिभिर्गन्धतः समैः । उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम् ॥ ३ ॥ अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः । परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम् ॥ ४ ॥व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः । बाहवः पातिता रेजुर्द्धरण्यां

के लिये बाहर निकलनेलगे ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! आपसमें युद्ध करतेहुए योधा, रथी, हाथीसवार और घुड़सवार एक दूसरे को मारनेलगे, इसप्रकार दोनों दलोंमें युद्ध होनेलगा ॥ ४३ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! दोनों सेनाओंमेंके घोड़े मनुष्य और हाथी आनन्दमें भरगये,देवता और असुरोंकी समान कान्तिवालीं वे दोनों महासेना आमने सामने सुचेष्टा लेकर एक दूसरेका संहार करनेलगीं ॥ १ ॥ और उग्र पराक्रमवाले पैदल, मनुष्य, रथ, घोड़े तथा हाथी आदि साधनोंसे परस्परके पापी शरीर और प्राणोंका नाश करनेवाले प्रचण्ड प्रहार करने लगे ॥ २ ॥ इस समय पूर्णिमाके चन्द्रमा और सूर्यकी समान कान्तिमान् तथा कमलकी समान सुगन्धिवाले महापुरुषके मस्तकों से बड़े २ योधाओंने सब रणभूमिको ढक दिया ॥ ३ ॥ योधा रणमें अर्धचन्द्राकार शस्त्रोंसे, भालोंसे,क्षुरप्र नामके बाणोंसे,तलवारोंसे, पट्टिशोंसे और फरसोंसे युद्ध करते हुए योधाओंके शिरों को काटनेलगे ॥ ४ ॥ पुष्ट और विशाल भुजाओंवाले योधाओं

साग्रुधाङ्गदैः ॥ ५ ॥ तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्तांगुलितलैस्तथा । गरुडमतिहतैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव ॥ ६ ॥ द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विपद्धताः । विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥ ७ ॥ गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि । पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥८॥ रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः । सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन् परमसंकुले । ६ ॥ रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः । अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥ १० ॥ रथाश्वपत्तयो नागै रथरश्वेभाश्च पत्तिभिः । रथपत्तिद्विपाश्चैव रथैश्चापि नरद्विपाः ॥ ११ ॥

के शस्त्र और वाजूबन्दवाले भुजदण्डोंको रणभूमिमें काटकर डाल दिया था, वे शोभा पारहे थे ॥ ५ ॥ गरूड़के भगायेहुए पाँच मुख वाले सर्पोंकी समान भयानक दीखतेहुए, लाल अंगुलि और हथेलियोंवाले वीर पुरुषोंके तड़फतेहुए हाथोंसे रणभूमि शोभा पारही थी ॥ ६ ॥ जैसे पुण्य क्षीण होने पर स्वर्गवासी देवता विमानोंमेंसे नीचेको गिरपडते हैं ऐसे ही हाथी घोड़े और रथों में वैठेहुए वीर पुरुष शत्रुओंके हाथोंसे मरकर टपाटप नीचे गिर रहे थे ॥ ७ ॥ वड़े २ वीर रणमें वड़ी २ गदायें, परिघ और और मूसलोंके प्रहार कररहे थे, जिनकी चोटोंसे सैंकडों वीर रणभूमिमें गिररहे थे ॥ ८ ॥ उस महाभयानक युद्धमें रथियोंकी मारसे रथी कुचल रहे थे मदमत्त हाथियोंकी मारसे मदमत्त हाथी ढहरहे थे और घुडसवार घुडसवारोंका संहार कररहे थे ॥ ६ ॥ उस युद्धमें रथोंके कुचले हुए मनुष्य, हाथियोंके कुचलेहुए रथ,, पैदलोंके काटे घुडसवार तथा घुडसवारोंके मारेहुए पैदल पड़ेहुए थे ॥ १० ॥ हाथीसवारोंकी मारसे रथी, घुडसवार और पैदल मररहे थे, पैदलोंके हाथसे रथी घुडसवार और हाथीसवार मर रहे थे, घुडसवारोंकी मारसे रथी, पैदल और हाथीसवार मररहे थे तथा रथियोंकी मारसे पैदल और हाथी मररहे थे ॥ ११ ॥

रथाश्वेभनराणान्तु नराश्वेभरथैः कृतम् । पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥१२॥ तथा तस्मिन् बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च । अस्मानभ्यायपुः पार्थो वृकोदरपुरोगमाः ॥ १३ ॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः । सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह ॥ १४ ॥ वृता व्यूहेन महता पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः । व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः ॥ १५ ॥ आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः । नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥१६॥ बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः । समानमृत्यवो राजन् नात्यजन्त परस्परम् ॥ १७ ॥ कलापिनश्चा-

---

पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार, और रथी हाथसे, पैरसे हथियारोंसे तथा रथोंने रथियोंका, घुड़सवारोंका हाथीसवारोंका और पैदलोंका बड़ाभारी संहार कररहे थे ॥ १२ ॥ इसप्रकार वीर पुरुष सेनाका नाश कररहे थे तथा अनेकोंका नाश करडाला था, इतनेमें ही भीमसेन आदि पाण्डव हमारे ऊपर चढ़ आये ॥ १३ ॥ धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, द्रविड देशके योधाओंके साथ सात्यकि तथा राजा चेकितान रणभूमि में चढ़ आये· बड़े व्यूहसे घिरेहुए पांडव राजे, चोल देशके राजे और केरल देशके राजे भी हमारे ऊपर चढ़आये, जिनकी भुजायें बडी थीं, शरीर ऊँचे थे, नेत्र विशाल थे, जो आभूषण पहरे हुए थे, जिनके दाँत लाल थे, जो मतवाले हाथियोंकी समान पराक्रमी थे, भाँति २ के रँगीन वस्त्र पहरे हुए थे और शरीर पर सुगन्धित चन्दनादिके चूर्ण लगायेहुए थे ॥ १४--१६ ॥ कमरमें तलवार बाँधे और हाथमें पाश लिये हुए थे, हाथियों को पीछे हटानेका बल भी रखते थे, जीवन और मरणको एक समान समझते थे, हे राजन् ! वे युद्धमें एक दूसरेके ऊपर प्रहार कररहे थे ॥ १७ ॥ सब घुड़सवार और पैदल कन्धों

पहस्ता दीर्घकेशाः प्रियम्वदाः । पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूप-
पराक्रमाः ॥ १८ ॥ अथापरे पुनः शूराश्चेदिपाञ्चालकेकयाः ।
कारूपा कोशलाः काञ्च्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः ॥ १९ ॥ तेषां
रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः । नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति
च हसन्ति च ॥ २० ॥ तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः ।
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात्त्वदीयान्नागधूर्गतः ॥२१॥ स नागप्रवरोऽ-
त्युग्रो विधिवत्कल्पितो बभौ । उदयाग्राद्रिभवनं यथाभ्युदितभा-
स्करम् ॥ २२ ॥ तस्यायसं वर्मवरं वररत्नविभूषितम् । ताराव्या-
प्तस्य नभसः शारदस्य समत्विपम् ॥ २३ ॥ स तोमरव्यग्रकरश्चा-
रुमौलिः स्वलंकृतः । शरन्मध्यन्दिनार्काभस्तेजसा व्यदहद्रिपून् २४

पर भाथे तथा हाथोंमें धनुष लिये हुए थे, उनके केश बड़े और भाषण मधुर था, देखनेमें भयानक और पराक्रमी थे ॥ १८ ॥ इनके सिवाय दूसरे वीर चेदिदेशके राजे, पांचालराजे, केकय राजे, कारूप, कोसल, कांच्य और मागध राजे भी रणमें चढ़कर आये थे ॥ १९ ॥ उनमें उत्तम-रथ, घोड़े हाथी और भयङ्कर प्यादे अनेकों प्रकारके बाजोंवाले बाजे बजा रहे थे, उनको सुन कर नाचते और हँसते थे ॥ २० ॥ ऐसे बड़ेभारी सेनादल में भीमसेन बड़े २ महारथियोंसे घिरा हुआ हाथीके कंधे पर बैठ कर तुम्हारे पुत्रके ऊपर चढ़ आया ॥ २१ ॥ भीमसेन जिस हाथी पर बैठा था वह उत्तम जातिका था और उसको शास्त्रमें कहीहुई रीतिसे सजाया गया था, इसलिये जिसमें सूर्यका उदय हुआ हो ऐसे उदयाचल पर्वत पर बैठा हुआसा मालूम होता था ॥ २२ ॥ भीमसेनका शरीर पर धारण किया हुआ श्रेष्ठ रत्नोंसे शोभा-यमान लोहेका उत्तम कवच, तारागणसे भरेहुए शरद ऋतुके आकाशकी समान चमक रहा था ॥२३॥ वह सुन्दर मुकुटधारी और हाथमें तोमर लिये हुए था, उत्तम शृङ्गार किये हुए था, और शरद् ऋतुके मध्यान्हकालके सूर्यकी समान कान्तिमान् दीख

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात् क्षेमधूर्त्तिर्द्विपस्थितः। आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम् ॥२५॥ तयोः समवभद्युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः। यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ २६ ॥ संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम्। बलवत् सूर्यरश्म्याभैर्भित्वान्योऽन्यं विनेदतुः२७ व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः। प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम् ॥ २८ ॥ क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैश्च सर्वतः। तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः२९समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ वातोद्धृतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ ।३०।तावन्योऽन्यस्य धनुषी छित्वान्योऽन्यं विनेदतुः। शक्तितोमर-

रहा था, वह अपने तेजसे मानो शत्रुओंको जलाये देता था २४ हाथी पर बैठा हुआ क्षेमधूर्त्ति, दूसरे भीमसेनको और उसके हाथीको देखकर मनमें प्रसन्न हुआ और उसने बड़े ही प्रसन्न मन वाले भीमसेनको अपने साथ लड़नेको बुलाया और उसके ऊपर धावा किया ॥ २५ ॥ इस समय दैवेच्छासे जैसे वृक्षोंवाले दो पर्वतोंमें युद्ध होरहा हो, तैसेही उग्र रूपवाले, हाथियों पर विराजमान उन दोनों योधाओंमें तुमुल युद्ध होनेलगा ॥ २६ ॥ आमने सामने आतेही दोनोंके हाथी हाथी आपसमें भिड़गये; फिर वे दोनों वीर पुरुष गर्जना करते हुए सूर्यकी किरणोंकी समान चमकदार तोमर एक दूसरेके जोरसे मारने लगे ॥ २७ ॥ और फिर दोनों योधा अपने २ हाथियोंको पीछेको हटाकर रण में मण्डल बाँधकर घूमने लगे और हाथमें धनुष लेकर एक दूसरे के बाण मारने लगे ॥ २८ ॥ आपसमें विवाद करके भुजदण्डों पर ताल देकर तथा बाणोंके शब्दोंसे चारों ओर खड़ेहुए लोगों को प्रसन्न करतेहुए सिंहकी समान गर्जने लगे ॥ २९ ॥ वे दोनों चतुर और महाबली योधा, जिनके हाथियोंने ऊपरको सूँडें उठा लीं थीं और जिनके ऊपर पताकायें पवनसे फहरा रहीथीं, अपने हाथोंको उठा २ कर लड़ने लगे ॥ ३० ॥ इसप्रकार लड़ते २ उन

वर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः॥३१॥क्षेमधूर्त्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे । निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन्॥३२॥ स भीमसेनः शुशुभे तोमरैरङ्गमाश्रितैः । क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान् ॥ ३३ ॥ ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम् । ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान् ॥ ३४ ॥ ततः कुलूताधिपतिश्चापमानम्य सायकैः । दशभिस्तोमरं छित्वा षष्ट्या विव्याध पाण्डवम् ॥ ३५ ॥ अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम् । रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन् पाण्डवः शरैः ॥ ३६ ॥ स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे । गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद्वातोद्धूत

दोनोंने एक दूसरेके धनुषको काटडाला, और जैसे वर्षाकालके दो मेघ जलकी वर्षा करते हैं तैसे ही वे दोनों योधा परस्पर के ऊपर शक्ति और तोमरोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार युद्ध होरहा था, उस समय क्षेमधूर्त्तिने गरजकर भीमसेनकी छाती में बड़े वेगसे और छः तोमर (भाले) मारकर उसको बींध दिया ॥३२॥ तब तो भीमसेनके शरीरमें क्रोधकी ज्वाला धधकने लगी और जैसे मेघोंसे सात घोड़ोंवाला सूर्य शोभा पाताहै तैसेही शरीरमें शुभेहुए तोमरों से भीमसेन सुन्दर दीखनेलगा ॥३३॥ तदनन्तर भीमसेनने उद्योग करके शत्रुके ऊपर सूर्यकी समान चमकता हुआ और सीधा जानेवाला लोहेका तोमर फेंका॥३४॥परन्तु कुलूतदेश के राजा क्षेमधूर्त्तिने अपने धनुषको नमाकर दश बाणोंसे उस तोमरके टुकड़े करडाले और साठ बाणोंसे भीमसेनको बींध डाला॥३५॥ तब पांडुपुत्र भीमसेनने मेघकी समान गर्जना करने वाले धाण हाथमें लिये और गरज कर शत्रुके हाथीपर बाणों का प्रहार करने लगा॥३६॥युद्धमें भीमसेनने बाण मारकर क्षेमधूर्त्ति के हाथीको बहुतही दुःखी किया क्षेमधूर्त्तिने उसको अपने वशमें कर रक्खा था तो भी वह हाथी पवनसे कंपायमान हुए मेघकी

इवाम्बुदः ३७ तमभ्यधावद् द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट् । महावातेरितं वेगं वातोद्धूत इवाम्बुदः ३८ संनिवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्त्तिः प्रतापवान् । विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम् ३६ ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा । छित्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमर्दयत् ॥ ४० ॥ ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्त्तिः पराभिनत् । जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ॥ ४१ ॥ स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत । पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम् ॥ ४२ ॥ तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत् । तस्मात् प्रमथितान्नागात् क्षेमधूर्त्तिमवप्लुतम् । उद्यतायुधमायान्तं गदयाहन् वृकोदरः ॥ ४३ ॥ स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो

समान भागने लगा ॥ ३७ ॥ पवनसे चलायमान हुआ मेघ जैसे बड़े पवनसे चलाये हुए मेघकी ओरको दौड़ता है तैसेही भीम का महाभयानक हाथी सामनेके हाथीकी ओरको दौड़ा ॥ ३८ ॥ इस समय प्रतापी क्षेमधूर्त्तिने अपने हाथीको आगे जानेसे रोका और सामनेसे चढ़कर आतेहुए भीमसेनके हाथीको बाण मार कर बींध दिया ॥ ३६ ॥ फिर भीमसेनने नमेहुए पर्ववाला क्षुर युक्तिसे मारकर शत्रुके बाणको काट दिया और शत्रुके हाथीको अत्यन्त दुःखी किया ॥ ४० ॥ इससे क्षेमधूर्त्तिने क्रोधमें भरकर रणमें बाण मारे और भीमसेनको बींधडाला तथा उसके हाथी को भी मर्मस्थानोंमें बाण मारकर बींधडाला ॥ ४१ ॥ तब तो हे भरतवंशी राजन्! भीमसेनका वह बडाभारी हाथी पृथिवी पर ढह पड़ा, परन्तु हाथीके गिरनेसे पहले ही भीमसेन उसके ऊपर से भूमि पर कूद पड़ा ॥ ४२ ॥ और उसने क्षेमधूर्त्तिके हाथीके गदा मारी तब उसका हाथी भी भूमिपर ढहपड़ा और उसके गिरनेसे पहले ही, क्षेमधूर्त्ति भी नीचे उतर पड़ा और फिर अपना शस्त्र उठाकर भीमसेनके ऊपरको दौड़ा, परन्तु भीमसेन

द्विपम् । वज्रप्रभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा ॥ ४४ ॥ तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम् । प्राद्रवन् व्यद्द्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि क्षेमधूर्त्तिवधे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

सञ्जय उवाच । ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् । जघान समरे शूरः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १ ॥ तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् । कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुरते महारथाः ॥ २ ॥ कर्णोऽपि राजन् समरे व्यहनत् पाण्डवीं चमूम् । नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्ज्जितैः ॥३॥ तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः । नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ ४ ॥ वध्यमाने बले तस्मिन् सूतपुत्रेण मारिष । नकुलोऽ-

---

ने गदा मारकर उसको मारडाला, उस समय वज्रसे तोड़ेहुए पर्वतकी समान अथवा वज्रकी मारसे पृथिवी पर गिरनेवाले सिंह की समान क्षेमधूर्त्ति प्राणरहित होकर तलवारके साथ अपने हाथीके सामने ही ढहपडा, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! कुलूत देशके राजाओंको यश दिलानेवाले क्षेमधूर्त्ति राजाको मराहुआ देखकर तुम्हारी सेना उदासमन होकर रणमेंसे भागने लगी ॥ ४३–४५ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—तदनन्तर महाधनुषधारी वीर कर्ण युद्धमें नमेहुए पर्ववाले बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगा ॥ १ ॥ तथा हे राजन् ! महारथी पाण्डव भी कोपमें भर कर कर्णकी अधीनतामें रहनेवाली तुम्हारी सेनाको मारनेलगे ॥ २ ॥ हे राजन् ! कर्ण युद्धमें सूर्यकी किरणोंकी समान चमकते हुए और कारीगरोंने जिनको पानी देकर तेज किया था ऐसे बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाको जिस समय मारनेलगा ॥ ३ ॥ उस समय कर्णके बाण लगनेसे हाथी चिंघारते हुए दुःखी तथा उदासीन होगये और चारों ओरको भागने लगे ॥ ४ ॥ हे राजन् !

भ्यद्रवत्तूर्णं सूतपुत्रं महारणे ॥ ५ ॥ भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्म दुष्करम् । विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत् ६ श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः । प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम् ॥ ७ ॥ दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । संशप्तकगणान् क्रुद्धानभ्यधावद्धनञ्जयः ॥ ८ ॥ धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन् वीरवरक्षये । शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम् ॥ ९ ॥ श्रुतकीर्त्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव । दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान् ॥ १० ॥ कैकेयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता । सात्यकिः कैकेयौ चापिच्छादयामास भारत ॥ ११ ॥ तावेनं भ्रातरौ वीरौ जघ्नतुर्हृदये भृशम् । विषा-

जब कर्ण पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगा तब उस महारण में नकुल एक साथ कर्णके ऊपर चढ़ आया ॥ ५ ॥दूसरी ओर द्रोणका पुत्र अश्वत्थामा महाभयानक युद्ध कररहा था, उसके सामने भीमसेन आकर डटगया तथा केकय वंशके विन्द और अनुविन्दको सात्यकीने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ६ ॥ चढ़कर आयेहुए श्रुतकर्माको राजा चित्रसेनने रोकदिया तथा विचित्र ध्वजा और विचित्र धनुषवाले राजा चित्रको प्रतिविंध्यने रोक लिया७राजा दुर्योधन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके ऊपर जा चढ़ा और अर्जुन कोपमें भरकर संशप्तकगणोंके सामने लड़नेको जापहुंचा८ महारथियोंका नाश करनेवाले उस संग्राममें कृपाचार्य धृष्टद्युम्नके साथ लड़रहे थे और शिखंडी रणमेंसे पीछेको पैर न देनेवाले कृतवर्माके साथ लडरहा था ॥ ९ ॥ श्रुतकीर्त्ति शल्यके साथ और हे राजन् ! माद्रीका प्रतापी पुत्र सहदेव तुम्हारे पुत्र दुःशासनके साथ लडरहा था ॥ १० ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! दोनों केकय युद्धमें प्रकाशवान् बाणोंकी वर्षासे सात्यकीको ढके देते थे तथा सात्यकी दोनों केकयोंको बाणोंकी मारसे ढके देता था ॥ ११ ॥ जैसे महावनमें दो हाथी अपने दाँतोंसे अपने ऊपर

णाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महावने ॥ १२ ॥ शरसंभिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे । सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन् विव्यधतुः शरैः ॥ १३ ॥ तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन् सर्वतो दिशः । छादयन् शरवर्षेण वारयामास भारत ॥ १४ ॥ वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः । शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः ॥ १५ ॥ तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्वा शौरिर्महायशाः । अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे ॥ १६ ॥ अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान् । सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्ठु च ॥ १७ ॥ ताभ्यां मुक्ता महावाणाः कंकबर्हिणवाससः । द्योतयन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः स्वर्णभूषणाः ॥ १८ ॥

धावा करनेवाले हाथीकी छातीको चीर डालते हैं, तैसे ही उन दोनों वीर भाइयोंने सात्यकीके हृदयको बहुत ही वींधडाला १२ हे राजन् ! इस युद्धमें उन दोनों भाइयोंके कवचोंको सात्यकीने बाणसे फाड़डाला और उन दोनों भाइयोंने सच्चा पराक्रम करने वाले सात्यकिको बाण मारकर बींध दिया ॥१३॥ हे भरतवंशी महाराज ! तब सात्यकीने हँसते २ बाणोंकी वर्षा करके सब दिशाओंको ढक दिया और उनको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ १४ ॥ जब सात्यकिने बाणोंकी वर्षा करके उन दोनोंको रोकदिया तब उन दोनों भाइयोंने बाण मारकर तुरन्त ही सात्यकीको ढकदिया ॥ १५ ॥ तब महायशस्वी सात्यकीने उन दोनोंके विचित्र प्रकारके दोनों धनुषोंको काटडाला और तीखे बाण मारकर उन दोनोंको युद्ध करनेसे रोक दिया ॥ १६ ॥ तब उन्होंने दूसरे विचित्र धनुष लेकर बड़े २ बाण मारे और सात्यकीको ढकनेलगे तथा धीरे २ सुन्दर चालसे रणभूमिमें घूमनेलगे ॥ १७ ॥ वे दोनों भाई कङ्क और मोरके परोंवाले बाण छोडरहे थे, वे बाण सब दिशाओंमें प्रकाश करतेहुए सात्यकी

वाणान्धकारमभवत् तयो राजन् महामृधे । अन्योऽन्यस्य धनु-
श्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः ॥ १९ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो
युद्धदुर्मदः । धनुरन्यत् समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे ॥ २० ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत् । अपतत्तच्छिरो राजन्
कुण्डलोपचितं महत् ॥ २१ ॥ शम्बरस्य शिरो यद्वन्निहतस्य महा-
रणे । शोचयन् कैकेयान् सर्वान् जगामाशु वसुन्धराम् ॥ २२ ॥
तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः । सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा
शैनेयं पर्यवारयत् ॥ २३ ॥ स षष्ट्या सात्यकिं विध्वा स्वर्ण-
पुंखैः शिलाशितैः । ननाद बलवन्नादं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् २४
सात्यकिञ्च ततस्तूर्णं कैकेयानां महारथः । शरैरनेकसाहस्रैर्बाह्वो-
रुरसि चार्पयत् ॥ २५ ॥ स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्यकिः सत्यवि-

के ऊपर पड़नेलगे ॥ १८ ॥ और उनसे सर्वत्र अन्धकार होगया
तब वे महारथी एक दूसरेके परस्परके धनुषोंको काटनेलगे १९
थोडी देर इसप्रकार युद्ध होनेके अनन्तर युद्ध करनेमें मदमत्त
हुए सात्वतवंशी सात्यकीने क्रोधमें भरकर दूसरा धनुष हाथमें
लिया और उसको ठीक करके बड़ा ही तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण मार
कर अनुविंदका शिर काट दिया, तब महारणमें मारेगये शम्बरा-
सुरके शिरकी समान अनुविन्दका कुण्डलोंवाला बडाभारी शिर
सब केकयोंको शोकमें डुवाताहुआ पृथिवीपर गिरपडा ॥ २० ॥
॥ २२ ॥ अपने वीर भाईको मराहुआ देखकर उसके महारथी
भाईने दूसरा धनुष ठीक करके सात्यकीको घेरलिया ॥ २३ ॥
और सान पर तेज कियेहुए तथा सुनहरी परोंवाले साठ बाण
मारकर सात्यकीको वींधडाला और बड़े जोरसे गरजकर कहा,
कि—अरे ओ सात्यकी ! खडा रह, खडा रह ॥ २४ ॥ ऐसा कह
कर उस केकयोंके महारथीने असंख्यों बाण मारकर सात्यकीके
दोनों भुजदण्डोंको तथा छातीको वींध दिया ॥ २५ ॥ इस समय

क्रमः । रराज समरे राजन् सपुष्प इव किंशुकः ॥२६॥ सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना । कैकेयं पञ्चविंशत्या निव्याध प्रहसन्निव ॥२७॥ तावन्योऽन्यस्य समरे संच्छिद्य धनुषी शुभे । हत्वा च सारथिं तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ ॥ २८ ॥ विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे । शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा ॥ २९ ॥ व्यरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ । यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ ॥ ३० ॥ मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे । अन्योऽन्यमभितस्तूर्णं समाजग्मतुराहवे३१ अन्योऽन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् । कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ३२ ॥ सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः । चर्म छित्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ॥ ३३ ॥

सत्यपराक्रमी सात्यकीके सब अङ्ग बिंधगये और हे राजन् ! वह फूलोंवाले ढाकके वृक्षकी समान रणमें शोभा पानेलगा ॥ २६ ॥ महात्मा केकयने जिसको युद्धमें बींध दिया था ऐसे सात्यकीने मुख मलकाकर प्रसन्न मुखसे केकयके पचीस बाण मारे ॥२७॥ तदनन्तर दोनों महारथियोंने युद्धमें एक दूसरेके उत्तम धनुषको काटडाला और फिर सारथियोंको मारडाला ॥ २८ ॥ वे दोनों रथहीन होगये तब मनोहर भुजाओंवाले ये दोनों हाथमें उत्तम तलवार और सैंकडों फुल्लियोंसे जडीहुई ढाल लेकर रणमें लडनेलगे, इस समय ये दोनों देवासुर संग्राममें महाबली जम्भासुर और इन्द्रकी समान रणभूमिमें उत्तम तलवार लेकर बडी ही शोभा पारहे थे ॥ २९ ॥ ३० ॥ ये दोनों योधा रणभूमिमें मण्डल बाँधकर घूमनेलगे, झपट २ कर एक दूसरेके ऊपर धावा करनेलगे तथा परस्परका नाश करनेके लिये बडा उद्योग करनेलगे, इस घूमाघामीमें सात्यकीने केकयकी ढालके दो टुकडे करडाले ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ और केकयने सैंकडों तारामंडलोंसे भरीहुई सात्यकीकी ढालके टुकडे २ करडाले ॥३३॥

चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च । तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिं-
शवरधारिणम् ॥ ३४ ॥ अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः ।
सवर्मा केकयो राजन् द्विधा छिन्नो महारणे ॥ ३५ ॥ निपपात
महेष्वासो वज्राहत इवाचलः । तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथ-
सत्तमः ॥ ३६ ॥ युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परन्तपः । ततोऽन्यं
रथमास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ॥ ३७ ॥ कैकेयानां महत्
सैन्यं व्यधमत् सात्यकिः शरैः । सा वध्यमाना समरे कैकेयानां
महाचमूः । तमुत्सृज्य रणे शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि विन्दानुविन्दवधे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम् ।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः ॥ १ ॥ अभिसा-

फिर केकय रणरूप रङ्गभूमिमें बड़ी तेज तलवार लेकर कभी आगेको जाय और फिर पीछेको लौट आवे इसप्रकार मंडल बाँधकर घूमने लगा इतनेमें ही सात्यकीने तुरन्त अपने हाथीको फेरकर शस्त्रसे कवचसहित केकयके दो टुकड़े कर डाले और हे राजन् ! उस महारणमें केकय मारागया, जैसे वज्रसे तोड़ाहुआ पहाड़ भूमि पर ढहपड़ता है तैसे ही महाधनुष-धारी केकय पृथिवी पर ढहपड़ा, महारथी वीर सात्यकी, केकय को मारकर तुरन्त युधामन्युके रथ पर जाचढ़ा और फिर विधि-पूर्वक तयार कियेहुए दूसरे रथमें बैठगया तथा बाण मारकर केकयोंकी बड़ीभारी सेनाका संहार करडाला, इस समय केकय की सेना शत्रुकी ओरसे संहार होताहुआ देख कर शत्रु सात्यकीको छोड़कर दशों दिशाओंमेंको भागनेलगी ॥३४—३८॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! श्रुतकर्माने क्रोधमें भरकर युद्धमें राजा चित्रसेनके पचास बाण मारे ॥ १ ॥ तब अभिसार

रस्तु तं राजन्नवभिर्नतपर्वभिः । श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ २ ॥ श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे । नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत् ॥ ३ ॥ सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना । मूर्छामभिययौ वीरः कश्मलञ्चाविवेश ह ४ एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्त्तिर्महायशाः । नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः ॥ ५ ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः । धनुश्चिच्छेद भल्लेन तञ्च विव्याध सप्तभिः ॥ ६ ॥ सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम् । चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥ ७ ॥ स शरैश्चित्रितो राजा चित्रमाल्यधरो युवा । युवेव समरेऽशोभद्गोष्ठीमध्ये स्वलंकृतः ॥ ८ ॥ श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे । बिभेद तरसा शूरस्तिष्ठ तिष्ठेति

के राजा चित्रसेनने श्रुतकर्माके नमे हुए पर्व वाले नौ बाण मारकर पाँच बाण उसके सारथीके मारे ॥ २ ॥ तब तो श्रुतकर्मा कोपमें भरगया और उसने सेनाके मुहाने पर खड़ेहुए चित्रसेन के मर्मस्थानमें बड़ाही तीक्ष्ण बाण मारा ॥ ३ ॥ हे महाराज ! वीर चित्रसेन उस तेज बाणसे बिंधगया, और मूर्छित होकर बड़ा ही दुःख पाने लगा ॥४॥ इतनेमें ही जिसका बड़ा यश था ऐसे श्रुतकीर्त्तिने राजा श्रुतकर्माके नब्बै बाण मारकर उसको ढकदिया ५ तदनन्तर महारथी चित्रसेनकी मूर्छा दूर हुई तब उसने भाला मारकर श्रुतकर्माके धनुषके टुकड़े करडाले और सात बाण मार कर उसको भी बींध दिया ॥ ६ ॥ तब श्रुतकर्माने सामनेसे आते हुए बाणके वेगको रोकने वाले सुवर्णसे सजाये हुए धनुष को ले चित्रसेनके बाण मारकर उसका विचित्र आकार कर दिया ॥ ७ ॥ वह राजा तरुण अवस्थाका था वह विचित्र फूल धारण किये हुए था, उसके शरीरमें और मस्तक पर बाण चुभे हुएथे, इसलिये बिना सींगके भागमें शृङ्गार करके गोठमें खड़ेहुए तरुण बैलकी समान शोभा पारहा था ॥ ८ ॥ फिर वीर चित्र-

चाब्रवीत् ॥ ९ ॥ श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्पितः । सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः ॥ १० ॥ ततः स रुधिराक्तांगो रुधिरेण कृतच्छविः । रराज समरे वीरः सपुष्प इव किंशुकः॥११॥ श्रुतकर्मा तदा राजन् शत्रुणा समभिद्रुतः । शत्रुसम्वारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥१२॥ अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः । छादयन् समरे राजन् विव्याध च सुपत्रिभिः॥१३॥ ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च । जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥१४॥ तच्छिरो न्यपतद्भूमौ चित्रसेनस्य दीप्तिमत् । यदृच्छया यथा चन्द्रश्चयुतः स्वर्गान्महीतलम् ॥ १५॥ राजानं निहतं दृष्ट्वा तेऽभिसारन्तु मारिष । अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥ १६ ॥ ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत् सैन्यं

सेनने श्रुतकर्माकी छातीमें जोरसे बाण मारकर उसको बींध दिया और कहा, कि–अरे राजन् ! खड़ा रह खड़ा रह ॥ ९ ॥ युद्धमें बाण लगनेसे गेरुआ पानीसे भीगे हुए पर्वतकी समान श्रुतकर्माके शरीरमेंसे रुधिर टपकने लगा ॥ १० ॥ इस समय उसका शरीर लोहूसे भीगरहा था, इसलिये वीर श्रुतकर्मा रणमें फूलोंसे भरे हुए ढाकके वृक्षकी समान शोभा पारहा था ॥ ११ ॥ हे राजन् ! शत्रुने श्रुतकर्माके ऊपर धावा किया तब श्रुतकर्माने क्रोधमें भरकर शत्रुको रोकनेके लिये उसके धनुषके दो टुकड़े करडाले ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उसके धनुषके टुकड़े करडालनेके अनन्तर श्रुतकर्माने उत्तम परोंवाले तीन सौ बाण मारकर उस चित्रसेनको बींध दिया ॥ १३ ॥ और दूसरे तेज कियेहुए तीक्ष्ण भालेसे उस महात्माका टोपसे ढकाहुआ शिर काटडाला ॥ १४ ॥ जैसे दैवेच्छासे स्वर्गमेंसे चन्द्रमा पृथ्वी पर आपड़े तैसे ही महात्मा चित्रसेनका वह दमकताहुआ मस्तक एक साथ भूमि पर आपड़ा ॥१५॥ हे राजन् ! राजा चित्रसेन को मराहुआ देखकर चित्रसेनके योधा एक साथ अभिसारके

गाद्रवच्छरैः। अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ॥ १७ ॥
ते वध्यमानाः समरे तव पौत्रेण धन्विना। व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं
दावदग्धा इव द्विपाः ॥ १८ ॥ तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा निरुत्साहान्
द्विषज्जये। द्रावयन्निषुभिस्तीक्ष्णैः श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥ १९ ॥
प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्वा पञ्चभिराशुगैः। सारथिञ्च त्रिभि-
र्विध्वा ध्वजमेकेषुणापि च ॥ २० ॥ तं चित्रं नवभिर्भल्लैर्बाहो-
रुरसि चार्पयत्। स्वर्णपुंखैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः २१
प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्वा तस्य भारत सायकैः। पञ्चभिर्निशितै-
र्बाणैरथैनं स हि जघ्निवान् ॥ २२ ॥ ततः शक्तिं महाराज स्वर्ण-

राजा श्रुतकर्माके ऊपर टूटपड़े ॥ १६ ॥ तब जैसे अन्तकालमें यमराज सब प्राणियोंके ऊपर कोप करता है तैसे ही महाधनुष-धारी अभिसारका राजा भी कोपमें भरगया; और उसने बाण मारकर चित्रसेनकी सेनाको भगादिया ॥१७॥ तदनन्तर तुम्हारा पोता हाथमें धनुष लेकर रणमें घूमते हुए शत्रुके योधाओंको मारनेलगा, तब जैसे दौंकी आगमें जलतेहुए हाथी तुरन्त इधर उधरको भागने लगते हैं तैसे ही वे मार खातेहुए योधा भी तुरन्त चारों ओरको भागनेलगे ॥ १८ ॥ शत्रुओंका पराजय करनेमें उत्साहरहित होकर चारों ओरको भागतेहुए देखकर श्रुतकर्मा उनके तीखे बाण मारकर उन योधाओंको गड़बड़ाकर भगाने लगा, उस समय श्रुतकर्मा बड़ा ही तेजस्वी मालूम होता था१९ फिर प्रतिविंध्यने पाँच बाण मारकर चित्रको बींधडाला, तीन बाणोंसे सारथीको बींधकर एक बाणसे उसकी ध्वजाको काट डाला ॥२०॥ तब चित्रने नौ भाले तथा सोनेकी पूँछवाले सुन्दर मुखवाले तथा कंक और मोरके परोंसे युक्त बाण मारकर प्रति-विंध्यकी छाती और दोनों भुजाओंको चीरडाला ॥ २१ ॥ तब हे भरतवंशी राजन्! प्रतिविंध्यने पाँच तेज कियेहुए बाण मार कर चित्रके धनुषको काटडाला और चित्रके भी बाण मारे २२

घण्टां दुरासदाम् । माहिणोत्तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव २३
तामापतन्तीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा । द्विधा चिच्छेद समरे
प्रतिविन्ध्यो हसन्निव ॥ २४ ॥ सा पपात द्विधा छिन्ना प्रतिवि-
न्ध्यशरैः शितैः । युगान्ते सर्वभूतानि त्रासयन्ती यथाऽशनिः २५
शक्तिं तां महतीं दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम् । प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप
रुक्मजालविभूषिताम् ॥ २६ ॥ सा जघान हयांस्तस्य सारथिञ्च
महारणे । रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥ २७ ॥ एतस्मि-
न्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत । शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्ण-
दण्डामलंकृताम् ॥ २८ ॥ तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन् महा-
मनाः । ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः ॥ २९ ॥ समा-

तब हे महाराज ! चित्रने तुम्हारे पौत्रके अग्निकी लपटकी समान भयानक, सोनेकी घंटियोंवाली और बड़े परिश्रमसे पहुंचायी जाय, ऐसी शक्ति मारी ॥ २३ ॥ बड़ेभारी उल्मुककी समान यह अनुपम शक्ति अपनी ओरको एक साथ चली आरही थी, इतनेमें ही प्रतिविंध्यने हँसते २ उसके दो टुकड़े करडाले ॥२४॥ और जैसे युगके प्रलयके समय सब प्राणियोंको भय देताहुआ वज्र पृथिवी पर गिरता है, तैसे ही प्रतिविंध्यके तेज कियेहुए बाण लगनेसे उस शक्तिके दो टुकड़े होगये और वह पृथिवी पर गिरपड़ी ॥ २५ ॥ शक्तिको टूटीहुई देखते ही चित्रने, सोनेके पत्तरोंसे शोभायमान बडी गदा लेकर प्रतिविंध्यके ऊपर फेंकी ॥ २६ ॥ उस गदाने महारणमें उसके घोडोंको और सारथीको मारडाला तथा रथका चूरा करके बड़े वेगसे पृथिवीपर जापडी ॥ २७ ॥ हे भारत ! इस समय प्रतिविंध्य रथमेंसे उतर पड़ा और सोनेके दंडेवाली उत्तम सजायी हुई एक गदा चित्रके ऊपर फेंकी ॥ २८ ॥ उदारचित्त राजा चित्रने अपने ऊपरको आती हुई उस गदाको पकड़लिया और वह लौटाकर प्रतिविंध्य

साथ रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महायशा । निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले । पतिताभासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥३०॥ प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् । प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकांक्षया ॥ ३१ ॥ स तस्य गात्रावरणं भित्वा हृदयमेव च । जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥ ३२ ॥ स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः । प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसन्निभौ ॥ ३३ ॥ ॥ चित्रं संप्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः । अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समन्ततः ॥ ३४ ॥ सृजन्तो विविधान् बाणान् शतघ्नीश्च सकिंकिणीः । तमवच्छादयामासुः सूर्यमभ्रगणा इव ॥३५॥ तान् विधम्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे । व्यद्रावयत्तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥ ३६ ॥ ते वध्यमाना समरे

के मारी ॥२९॥ वह कान्तिवाली गदा संग्राममें वीर प्रतिविंध्यके पास पहुंचकर उसके दाहिने हाथको तोड़तीहुई भूमि पर जापड़ी और उसने गिरते ही वज्रकी समान प्रकाश करदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजा प्रतिविंध्यने कोप करके चित्रको मारडालनेकी इच्छासे उसके ऊपर सुवर्णसे शोभायमान तोमर फेंका ॥ ३१ ॥ वह तोमर चित्रके शरीर परके कवचको तथा उसकी छातीको फोड़कर जैसे बड़ा सर्प बिलमें घुसता हो तैसे तुरन्त भूमिमें घुस गया ॥ ३२ ॥ और राजा चित्र उस तोमरसे घायल हो परिघ का समान पुष्ट और लम्बी दोनों भुजाओंको फैलाकर भूमिपर ढहपड़ा ॥ ३३ ॥ रणको शोभायमान करनेवाले आपके पुत्र, चित्र को मरकर गिराहुआ देखकर बड़े वेगसे चारों ओरसे प्रतिविंध्य के ऊपर दौड़ पड़े ॥ ३४ ॥ और बादलोंका समूह जैसे सूर्यको ढकदेता है तैसे ही उन्होंने घंटियोंवाली शतघ्नियोंसे उसको ढक दिया ॥ ३५ ॥ बड़ी भुजाओंवाले प्रतिविंध्यने इस समय, जैसे वज्रधारी इन्द्र आसुरी-सेनाका नाश करता है तैसे ही बाणोंके समूहसे बहुतसे योधाओंका नाश करके शत्रुसेनाको भगादिया

तावका। पाण्डवैर्नृप। विप्राकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ३७
विप्रद्रुते बले तस्मिन् वध्यमाने समन्ततः। द्रौणिरेकोऽभ्ययात्तूर्णं
भीमसेनं महाबलम् ॥ ३८ ॥ ततः समागमो घोरो बभूव सहसा
तयोः। यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरिव ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चित्रवधे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच। भीमसेनं ततो द्रौणी राजन् विव्याध पत्रिणा।
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ १ ॥ तथैनं पुनराजघ्ने
नवत्या निशितैः शरैः। सर्वमर्माणि संप्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् २
भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः। रराज समरे राज-
न्रश्मिमानिव भास्करः ॥३॥ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः।

॥ ३६ ॥ हे राजन्! इस समय पांडव भी रणमें तुम्हारे पक्षके योधाओंको माररहे थे, इसकारण जैसे पवनसे बादल एक एक करके बिखरजाते हैं तैसे ही कौरव तित्तर वित्तर होगये ॥३७॥ इसप्रकार अपनी सेना चारों ओरसे मारखानेलगी, इसकारण ही भागनेलगी, उस समय तुरन्त ही अकेला अश्वत्थामा महाबली भीमसेनके सामने युद्ध करनेको दौड आया ॥ ३८ ॥ देवासुर-संग्राममें वृत्रासुर और इन्द्रमें जैसा युद्ध हुआ था तैसा ही घोर युद्ध उन दोनोंमें होने लगा ॥ ३९ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥

सञ्जयने कहा, कि–हे राजन्! तदनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने बडे वेगमें आकर अस्त्र छोड़नेकी फुरती दिखायी और बाण मारकर भीमसेनको बींधदिया ॥ १ ॥ और शरीरके मर्म-भागको जाननेवाले अश्वत्थामाने, फुरतीले हाथवाले पुरुषकी समान भीमसेनके सब मर्मस्थानोंको देखकर तेज कियेहुए नब्भे बाण मारकर भीमसेनको घायल कर दिया ॥ २ ॥ हे राजन्! अश्वत्थामाके तेज बाणोंसे बिंधाहुआ भीमसेन उस समय रणमें किरणोंवाले सूर्यकी समान शोभा पारहा था ॥ ३ ॥ फिर भीम-

द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥ ४ ॥ शरैः शरांस्ततो द्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम् । ललाटेऽभ्यहनद्राजन् नाराचेन स्मयन्निव ॥ ५ ॥ ललाटस्थं ततो बाणं धारयामास पांडवः । यथा शृंगं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप॥६॥ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी । त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ७ ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणोऽसौ व्यशोभत । प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृंगः पर्वतोत्तमः ॥ ८ ॥ ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पांडवम् । न चैनं कम्पयामास मातारिश्वेव पर्वतम् ॥ ९ ॥ तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः । नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १० ॥ तावन्योऽन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ । रथ-

सेन भी सावधानीके साथ छोडेहुए एक हजार बाणोंसे अश्वत्थामाको ढककर सिंहकी समान गर्जना करनेलगा ॥ ४॥ अश्वत्थामाने सामनेसे बाण मारकर भीमसेनके बाणोंको आगे आनेसे रोकदिया और हँसते २ भीमसेनके ललाटमें बाण मारे ॥५॥ हे राजन् ! इस समय भीमसेन ललाटमें उसके घुसजानेके कारण मदमत्त और ललाटमें सींग धारण करनेवाले गेंडकी समान शोभा पानेलगा ॥ ६ ॥ तदनन्तर पराक्रमी भीमसेनने भी मुख मलकाकर विजयके लिये प्रयत्न करतेहुए अश्वत्थामाके ललाटमें तीन बाण मारकर उसको भी घायल करदिया ॥ ७ ॥ वे बाण अश्वत्थामाके ललाटमें घुसगये और वह रुधिरसे न्हागया, इस लिये वर्षाकालमें गेरुआ पानीसे भीगेहुए तीन शिखरोंवाले उत्तम पर्वतकी समान शोभा पानेलगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर अश्वत्थामाने भीमसेनके सौ बाण मारे, परन्तु जैसे पवन पहाडको कम्पायमान नहीं करसकता, तैसे ही भीमसेनको कम्पायमान नहीं करसका ॥ ९ ॥ जैसे धार बँधकर पडता हुआ जलका प्रवाह पहाडको नहीं हिलासकता, तैसे ही युद्धके हर्षसे प्रसन्न हुआ भीमसेन भी तेजकिये हुए सैंकडों बाण मारकर रणमें अश्वत्थामाको

वर्यगतौ वीरौ शुशुभाते वलोत्कटौ ॥ ११ ॥ आदित्याविव संदीप्तौ लोकत्त्यकरावुभौ । स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः१२ ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे । कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसंघैरभीतवत् ॥ १३ ॥ व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ । शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयङ्करौ ॥ १४ ॥ अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः । मेघजालैरिवच्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ ॥ १५ ॥ चकाशेते मुहूर्त्तेन ततस्तावप्यरिन्दमौ । विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव ॥ १६ ॥ अथ तत्रैव संग्रामे वर्त्तमाने सुदारुणे । अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम्१७

नहीं डिगासका ॥ १० ॥ दोनों महारथी उत्तम रथोंमें बैठेहुए थे, वे दर्शनीय महावली वीर एक दूसरेको ढक देते हुए बड़ी शोभा पारहे थे ॥ ११ ॥ जैसे जगत्का संहार करनेके लिये दो सूर्य तयार हों तैसे ही वे दोना प्रकाशित होरहे थे, जैसे दो सूर्य अपनी किरणोंसे एक दूसरेको ताप दे रहे हों तैसे ही ये दोनों भी वाणोंसे एक दूसरेको सन्ताप देरहे थे ॥ १२ ॥ एक दूसरे के शस्त्र और अस्त्रोंका नाश करनेके लिये निर्भयकी समान तत्पर होकर आमने सामने वाण माररहे थे तथा उस महारणमें आपसमें वैरका वदला लेनेके लिये उद्योग कररहे थे ॥ १३ ॥ व्याघ्रसमान वे दोनों महारथी रणभूमिमें घूमरहे थे, उस समय उन दोनोंकी वाणरूप दाढें थीं, धनुषरूप मुख था और दोनों दुराधर्ष तथा भयानक दीखते थे ॥ १४ ॥ आकाशमेंके सूर्य और चन्द्रमा जैसे वादलोंसे ढकजातेहैं तैसेही वे दोनों परस्परकी वाणवर्षाके कारण चारों ओरसे ढक कर दीखे ही नहीं ॥१५॥ परन्तु जैसे मङ्गल और बुद्ध एक मुहूर्त्तके अनन्तर घनघटाओंमेंसे वाहर निकल आते हैं तैसेही शत्रुओंको दहलानेवाले वे दोनों कुछ देर वाद वाणोंके जालमेंसे वाहर निकल आये ॥ १६ ॥ इसप्रकार महाभयानक संग्राम चल रहा था, इतनेमें ही अश्वत्थामाने भीम-

क्तिरञ्च्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम् । न तन्मृषे भीमः शत्रोर्विजय-
लक्षणम् ।। १८ ।। प्रतिचक्रे ततो राजन् पाण्डवोऽप्यपसव्यतः ।
मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च ।। १९ ।। बभूव तुमुलं
युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः । चरित्वा विविधान् मार्गान् मण्डलस्थान-
मेव च ।। २० ।। शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः । अन्योऽ-
न्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ।। २१ ।। ईषतुर्विरथञ्चैव कर्तु-
मन्योऽन्यमाहवे । ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः ।।२२।।
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः । ततो घोरं महाराज
अस्त्रयुद्धमवर्त्तत ।। २३ ।। ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे ह्यभूत् ।
ते बाणाः समसज्जन्त मुक्तास्ताभ्यान्तु भारत ।। २४ ।। द्योत-

सेनकी दाहिनी भुजाको अपने वशमें करलिया ।। १७ ।। और
जैसे मेघ पहाड़के ऊपर जलकी धाराओंको बरसाता है तैसेही
भीमसेनके ऊपर सैंकड़ों भयानक बाणोंकी वर्षा करडाली, भीम-
सेन शत्रुके इस विजयचिन्हको सह न सका ।। १८ ।। रथके
आने जानेके मंडलाकर विभागोंमेंसे भीमसेन दाहिनी ओरसे
मंडलाकर घूमकर शत्रुके साथ लड़ने लगा ।। १९ और फिर
वे पुरुषसिंह अनेकों प्रकारकी युद्धकी रीतियोंसे रथको मंडला
कर घुमाकर रणमें घूमने लगे और आपसमें युद्ध करनेलगे २०
धनुषको कानतक खेंचकर एक दूसरेके बाण मारनेलगे और
एक दूसरेको मारडालनेका बड़ा ही उद्योग करनेलगे ।। २१ ।।
एक दूसरेको रथहीन करना चाहने लगे, फिर महारथी अश्व-
त्थामाने बड़े अस्त्र मारना आरम्भ करदिया ।। २२ ।। भीमसेनने
युद्धमें सामनेसे अस्त्र मारकर उसके बड़े२ अस्त्रोंका चूरा करडाला
और जैसे प्रजाके संहारकालमें ग्रहोंका घोर युद्ध होता है तैसे ही
हे महाराज ! उन दोनोंका युद्ध होनेलगा, हे भरतवंशी राजन् !
उस समय वे दोनों योधा जो बाण छोड़ते थे वे बाण एक दूसरे

पन्तो दिशः सर्वास्तत्र सैन्यं समन्ततः। बाणसंघैर्वृतं घोरमाकाशं
समपद्यत ॥ २५ ॥ उल्कापाताष्टतं युद्धं प्रजानां संक्षये नृप।
बाणाभिघातात् सञ्जज्ञे तत्र भारत पावकः ॥ २६ ॥ सविस्फु-
लिङ्गो दीप्तार्चिर्योऽदहद्वाहिनीद्वयम्। तत्र सिद्धा महाराज संपतन्तो-
ऽब्रुवन् वचः ॥ २७ ॥ युद्धानामतिसर्वेषां युद्धमेतदिति प्रभो। सर्व-
युद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २८ ॥ नेदृशञ्च पुन-
र्युद्धं भविष्यति कदाचन। अहो ज्ञानेन सपन्नावुभौ ब्राह्मण-
क्षत्रियौ॥ २९ ॥ अहो शौर्येण संयुक्तावुभौ चोग्रपराक्रमौ। अहो
भीमबलो भीम एतस्य च कृतास्त्रता ॥ ३० ॥ अहो वीर्यस्य सार-
त्वमहो सौष्ठवमेतयोः। स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ ३१

के साथ अटक कर जुड़जाते थे, उन बाणोंसे दशों दिशाओंमें
तथा सेनामें उजाला होरहा था, उन बाणोंके जालसे ढकाहुआ
आकाश भयानक मालूम होता था २३–२५ हे राजन्! जैसे प्रजाके
संहारके समय परस्परके ऊपर ऊके गिरते हैं और उनसे जैसे
भूमि ढकजाती है ऐसे ही बाणोंसे आकाश छागया और हे भरत-
वंशी राजन्! आपसमें टकराते हुए बाणोंमेंसे अग्नि निकल
रही थी ॥ २६ ॥ उस अग्निमें से चिनगारियें उड़रही थीं और हे
महाराज! उज्वल लपटोंवाला वह अग्नि दोनों सेनाओंको
जला रहा था, उस समय तहाँ युद्ध देखनेको आये हुए सिद्ध पुरुष
उन दोनोंकी प्रशंसा करतेहुए कहनेलगे, कि—॥ २७ ॥ सब युद्धों
में यह युद्ध श्रेष्ठ है और हे राजन्! दूसरे सब युद्ध इस युद्धकी
सोलह कलाके समान भी नहीं होसकते ॥ २८ ॥ ओः! ऐसा
युद्ध फिर कभी भी नहीं होगा! जिनमें एक ब्राह्मण और
दूसरा क्षत्रिय है ऐसे ये दोनों योधा ज्ञानसंपन्न हैं ॥ २९ ॥
दोनों योधा वीर और भयंकरपराक्रमी हैं! भीमका बल भया-
नक है तो अश्वत्थामा भी शस्त्रविद्यामें कुशल है ॥ ३० ॥ इन
दोनों योधाओंका पराक्रम और सज्जनता भी आश्चर्यमें डालती

रुद्रौ द्वावित संभूतौ यथा द्वावित भास्करौ । यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपावुभौ रणे ॥ ३२ ॥ इति वाचः स्म श्रूयन्ते सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः । सिंहनादश्च सञ्जज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ अद्भुतञ्चाप्यचिन्त्यञ्च दृष्ट्वा कर्म तयो रणे । सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥ ३४॥ प्रशंसन्ति तदा देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः । साधु द्रौणे महाबाहो साधु भीमेति चाब्रुवन् ॥ ३५ ॥ तौ शूरौ समरे राजन् परस्परकृतागसौ । परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ३६ ॥ क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात्प्रस्फुरिताधरौ । क्रोधात् संदष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ ॥ ३७ ॥ अन्योऽन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्टया महारथौ । शरांबुधारौ समरे शस्त्र-

---

है, युद्धमें खड़ेहुए ये दोनों योधा काल और यमकी समान दीखते हैं ॥ ३१ ॥ रणभूमिमें खड़ेहुए पुरुषोंमें व्याघ्रोंकी समान वे दोनों भयानक पुरुष मानो दो रुद्र उत्पन्न होगये हों अथवा दो सूर्य वा दो यम उत्पन्न होगये हों ऐसे दीखते थे ॥ ३२ ॥ ऐसी बातें करते हुए सिद्धोंकी वाणी वारम्वार सुननेमें आती थी तथा इकट्ठे हुए सिद्धोंका सिंहनाद भी होरहा था ॥ ३३ ॥ रणभूमिमें उन दोनों योधाओंके ऐसे अचिन्त्य और अद्भुत पराक्रमको देखकर सिद्ध और चारणोंके समूह आश्चर्यमें होगये ॥ ३४ ॥ और देवता सिद्ध तथा बड़े २ ऋषि 'हे महाबाहु द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा ! तुम्हें धन्य है. हे भीमसेन तुम्हें धन्य है' ऐसा कह कर उन दोनोंकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! वे दोनों वीर रणमें एक दूसरेके ऊपर प्रहार कररहे थे और क्रोधसे आँखें फाड़कर एक दूसरेकी ओरको देखरहे थे ॥ ३६॥ दोनोंकी आँखें क्रोधके मारे लाल होरही थीं, उनके ओठ क्रोधके कारण फड़क रहे थे, और क्रोधके मारे वे अपने दाँतोंसे दाँतोंको पीसरहे थे ॥ ३७ ॥ जिनके बाणरूप जलकी धारा और शस्त्ररूप बिजलीका प्रकाश था ऐसे उन दोनों महारथियों

विद्युत्प्रकाशिनौ ३८ तावन्योऽन्यध्वजं विध्वा सारथिञ्च बहारथे। अन्योऽन्यस्य हयान् विध्वा बिभिदाते परस्परम् ॥ ३९ ॥ ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे। उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योऽन्यस्य वधैपिणौ ॥४०॥तौ सायकौ महाराज द्योतमानौ चमूमुखे। आजघ्नतुः समासाद्य वज्रवेगौ दुरासदौ ॥ ४१ ॥ तौ परस्परवेगाच्च शराभ्याञ्च भृशाहतौ। निपेततुर्महावीर्यौ रथोपस्थे तयोस्तदा ॥ ४२ ॥ ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम्। अपोवाह रणाद्राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ४३ ॥ तथैव पाण्डवं राजन् विह्वलं तं मुहुर्मुहुः। अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम् ४४ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामयुद्धे पञ्चदशोऽध्यायः १५

ने वर्षासे परस्परको ढकदिया ॥ ३८ ॥ उन दोनोंने बड़ेभारी संग्राममें एक दूसरेकी ध्वजाको काटकर सारथियोंको काटडाला और फिर परस्परके घोड़ोंको घायल करके आमने सामनेसे बाण मारकर बींधने लगे ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार युद्ध करते हुए वे दोनों योधा क्रोधमें भरगये, इस कारण दोनों योधा हाथमें बाण लेकर एक दूसरेका नाश करनेकी इच्छासे तुरन्त परस्परके ऊपर वेगके साथ बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ४० ॥ हे महाराज ! रणके मुहाने पर उन दोनोंके बाण चमक रहे थे, उनका वेग वज्रकी समान था, उनको वशमें करना कठिन था और वे दोनों आमनेसामने होकर प्रहार कररहे थे ॥ ४१ ॥ दोनों बड़े ही वेगसे एक दूसरेको मार रहे थे इस कारण वे दोनों महापराक्रमी योधा बहुत ही घायल होगये और मूर्छा खाकर रथकी बैठकमें गिरपड़े ४२ हे राजन्! उस समय अश्वत्थामाको मूर्छित जानकर सब सेनाके सामने सारथी उसको रणभूमिमेंसे दूर लेगया ४३ तथा शत्रुको दुःख देनेवाले और वारम्वार विह्वल होकर मूर्छित हुए भीमसेनको भी उसका सारथी सब सेनाके देखते हुए रणभूमिमेंसे दूर लेगया ॥४४॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

धृतराष्ट्र उवाच । यथा संशप्तकैः सार्द्धमर्जुनस्याभवद्रणः । अन्येषाञ्च महीपानां पाण्डवैस्तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥ अश्वत्थाम्नस्तु यद्युद्धमर्जुनस्य च सञ्जय । अन्येषाञ्च महीपानां सह पार्थैर्ब्रवीहि मे ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन् यथा वृत्तं संग्रामं ब्रुवतो मम । वीराणां शत्रुभिः सार्द्धं देहपाप्मासुनाशनम् ३ पार्थः संशप्तकबलं प्रविश्यार्णवसन्निभम् । व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम् ४ शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनञ्जयः।पूर्णचंद्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च ॥ ५ ॥ सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव । संहतानायतान् पुष्टांश्चन्दनागुरुरूषितान् ॥ ६॥ सायुधान् सतलत्रांश्च पञ्चास्योरगसन्निभान् । बाहून् क्षुरैरमि-

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय ! अर्जुनका संशप्तकगणोंके साथ जिसप्रकार युद्ध हुआ हो तथा दूसरे राजाओंका पाण्डवोंके साथ जिसप्रकार युद्ध हुआ हो वह मुझे सुना ॥ १ ॥ तथा हे संजय ! अश्वत्थामा और अर्जुनका जिसप्रकार युद्ध हुआ हो तथा दूसरे राजाओंके साथ पांडवोंका जैसे युद्ध हुआ हो वह मुझे सुना ॥ २ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! आपके पक्षके वीरोंका शत्रुओंके साथ शरीरके पातकोंको मिटाने वाला तथा प्राणोंका नाश करनेवाला युद्ध जिसप्रकार हुआ था वह मैं आपसे ज्योंका त्यों कहता हूं, सुनिये ॥ ३ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाला अर्जुन, समुद्रकी समान गंभीर संशप्तकोंकी सेनामें घुसगया और जैसे महावायु समुद्रको हिलोरडालता है तैसे ही संशप्तकोंकी सेनाको घँघोलडाला ॥ ४ ॥ फिर तेज किये हुए भालोंसे वीर योधाओंके शिर काटनेलगा, पूर्णिमाके चन्द्रमा की समान मुखवाले, सुन्दर आँखें भ्रुकुटी और दाँतोंवाले शिर बिना नालके कमलकोशसे दीखरहे थे, उन शिरोंसे अर्जुनने एक सपाटेमें भूमिको ढकदिया, फिर अर्जुनने क्षुर नामके बाण मारकर सुन्दर गोलाकार स्थूल और लम्बे, चन्दन और अगर

त्राणाँ चिच्छेद समरेऽर्जुनः ॥ ७ ॥ धुर्यान् धुर्येतरान् सूतान् ध्वजांश्चापानि सायकान् । पाणीन् सरत्नानसकृत् भल्लैश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ८ ॥ रथान् द्विपान् हयांश्चैव सारोहानर्जुनो युधि । शरैरनेकसाहस्रैर्निन्ये राजन् यमक्षयम् ॥ ९ ॥ तं प्रवीराः सुसंरब्धा नर्दमाना इवर्षभाः । वासितार्थमिवक्रुद्धमभिद्रुत्य मदोत्कटाः ॥ १० ॥ निघ्नन्तमभिजघ्नुस्ते शरैः शृंगैरिवर्षभाः । तस्य तेषाञ्च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥११॥ त्रैलोक्यविजये यद्वद्दैत्यानां सह वज्रिणा । अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ॥ १२ ॥ इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विध्वा प्राणान् जहार सः । छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान् हतयोधाश्वसारथीन् ॥ १३ ॥ विध्वस्ता-

से चर्चित शस्त्रधारी, चमड़ेके मोजोंवाले और पाँच मुखके सर्प समान शत्रुओंके भुजदण्डोंको काटडाला ॥ ५-७ ॥ तदनन्तर उत्तम जातिके रथके घोड़ोंको, खच्चरोंको, सारथियोंको, ध्वजाओंको, धनुषोंको, बाणोंको, रत्नजड़ी अँगूठी और कड़ोंवाले हाथोंको भी भाले मारकर बराबर काटनेलगा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार अर्जुनने युद्धमें लाखों बाण मार कर हाथी और घोड़ोंको उनके सवारोंके साथ यमलोकमें भेजदिया ॥ ९ ॥ तब सब योधा बड़े ही क्रोधमें भरकर साँडोंकी समान गरजनेलगे और ऋतुधर्ममें आयी हुई गौओंको लिए क्रोधमें भरे हुए और मारनेके लिये ऊपरको चढकर आते हुए बैलको जैसे दूसरे मदमत्त और क्रोधमें भरे हुए बैल गरजते हुए अपने सींगोंसे मारना आरम्भ करदेते हैं तैसे ही योधा भी बाणोंका प्रहार करते हुए और क्रोधमें भरेहुए अर्जुनके अनेकों बाण मारनेलगे, उस समय अर्जुनमें तथा योधाओंमें रोमाञ्च खड़े करने वाला युद्ध होने लगा ॥ १०-११ ॥ यह युद्ध, तीनों लोकोंकी विजयके समय दैत्योंका इन्द्रके साथ जैसा हुआ था तैसा ही होनेलगा, अर्जुनने शत्रुओंके चारों ओरसे आते हुए सब अस्त्रोंको अस्त्र

युधतूणीरान् समुन्मथितकेतनान् । संछन्नयोक्त्ररश्मीकान् विव-
रूथान् विकूबरान् ॥ १४ ॥ विस्रस्तबन्धुरयुगान् विस्रस्ताक्षमपट्ट-
लान् । रथान् विशकलीकुर्वन् महाभ्राणीव मारुतः ॥ १५ ॥
विस्मापयन् प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्द्धनं । महारथसहस्रस्य समं
कर्माकरोज्जयः ॥१६॥ सिद्धदेवर्षिसंघाश्च चारणाश्चापि तुष्टुवुः ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ॥ १७ ॥ केशवार्जुनयो-
र्मूर्ध्नि प्राह वाक् चाशरीरणी । चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदी-
प्तिबलद्युतीः ॥ १८ ॥ यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवा-
र्जुनौ । ब्रह्मेशानाविवाजेयौ वीरावेकरथे स्थितौ ॥ १९ ॥ सर्वे-

मारकर रोकदिया और फिर जैसे पवन बड़े २ मेघोंको चखेर देता है तैसे ही अर्जुनने भी बहुतसे बाण मारकर शीघ्रतासे रथ, कूँट, पहिये, धुरी और रथके नीचे के काठ आदिके टुकड़े २ करडाले, रथोंके जुए, घोड़ोंकी बाग-डोरें तथा रथोंके ऊपरकी छत्री आदिकोंके भी टुकड़े करडाले रथोंमें बैठेहुए सारथियोंको, घोड़ोंको लगामोंको और हाँचोंको भी बाण मारकर काटडाला तथा योधा आदिकोंको प्राणहीन करडाला॥ १२—१५ ॥ धनञ्जयने रणभूमिमें हजारों महारथियों केसा पराक्रम करके सबको आश्चर्यमें डालदिया, यह घटना देखने योग्य थी और इससे शत्रुओंका भय बढ रहा था ॥ १६ ॥ जिस समय अर्जुनने ऐसे विजयदायक भयावना पराक्रम किया, उस समय सिद्ध, देवर्षि और चारणोंकी मण्डलियें उसकी प्रशंसा करने लगीं, देवताओंके नगाड़े बजने लगे, भगवान् कृष्ण और अर्जुनके ऊपर आकाशमेंसे पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी, तथा आकाश-वाणी हुई, कि—वीर कृष्ण और अर्जुन चन्द्रमाकी कान्तिको, अग्निकी दीप्तिको, पवनके बलको और सूर्यके प्रतापको सदा धारण करते हैं, एक रथमें बैठे हुए ये दोनों ब्रह्मा और शिवकी समान

भूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ । इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ॥ २० ॥ अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद्रणे । अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्छरान् ॥ २१ ॥ सेषुणा पाणिनाहूय महसन् द्रौणिरब्रवीत् । यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम् ॥ २२ ॥ ततः सर्वात्मनाद्य त्वं युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे । एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ॥ २३ ॥ बहु मेनेऽर्जुनोऽत्मानमिति चाह जनार्दनम् । संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ॥ २४ ॥ यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव । आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे ॥ २५ ॥ एवमुक्तोऽवहत् पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिके । जैत्रेण विधिनाहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे २६

अजेय हैं ॥ १७-१६ ॥ सब प्राणियोंमें उत्तम नर और नारायणका रूप हैं, हे भारत ! इस महान् आश्चर्यको देखकर तथा आकाशवाणीको सुनकर ॥ २० ॥ अश्वत्थामा कृष्ण और अर्जुनके साथ पूर्णरीतिसे लड़नेको तयार होगया, हाथमें बाण लेकर रणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपरको दौड़ा तथा जिनके फलके शत्रुओंका नाश करनेवाले थे ऐसे बाण फेंकता हुआ अर्जुनसे पुकार कर हँसते २ कहने लगा, कि-अरे अर्जुन ! यदि यदि तू मुझे वीर और योग्य अतिथि आयाहुआ मानता हो तो ॥ २१-२२ ॥ आज तू पूर्ण (प्रेम) भावसे मुझे युद्धरूप दान देकर मेरा अतिथिसत्कार कर, इसप्रकार आचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने लड़नेकी इच्छासे अर्जुनको बुलाया ॥ २३ ॥ उस समय अर्जुनने अपनेको भाग्यशाली माना और श्रीकृष्णसे यह बात कही, कि-मुझे संशप्तकोंका संहार करना है, परन्तु अश्वत्थामा मुझे लड़नेके लिये बुलारहा है ॥ २४ ॥ इसलिये हे माधव ! बताइये, कि-पहले कौनसा काम करना चाहिये ? यदि आप उचित समझते हों तो चढ़ाई करके अश्वत्थामाका अतिथिसत्कार करिये ॥ २५ ॥ अर्जुनने इस प्रकार श्रीकृष्णजीसे कहा, तब जैसे

तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत् । अश्वत्थामन् स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च ॥ २७ ॥ निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम् । सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ॥ २८॥ यामभ्यर्थयसे मोहाद्दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् । तामाप्तुमिच्छन् युध्यस्व स्थिरो भूत्वाद्य पाण्डवम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः । विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः ॥ ३० ॥ तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम् । चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥ ३१ ॥ सज्जं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ । त्रिभिः शतैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥ ३२ ॥ ततः शरसहस्राणि प्रयुना-

वायु इन्द्रको यज्ञमें लेजाता है तैसे ही श्रीकृष्ण अश्वत्थामाके बुलायेहुए अर्जुनको विजयकी विधिसे अश्वत्थामाके पास लेगये ॥ २६ ॥ और फिर श्रीकृष्णने एक विचारके अश्वत्थामाको बुलाकर कहा, कि–हे अश्वत्थामा ! तू स्थिर होकर शीघ्र ही हमारे ऊपर प्रहार कर और हमारे कियेहुए प्रहारको सहन कर ॥२७॥ सेवकोंको अपने राजाके अन्नको सफल करने का यह समय मिला है. इस विषयमें ब्राह्मणोंका सूक्ष्म विवाद है, परन्तु क्षत्रियोंका जय पराजयके विषयमें बड़ा विवाद है ।२८। तुम अर्जुनसे दिव्य–सत्कार पाना चाहते हो, इसमें तुम्हारी नासमझी है, यदि तुम अर्जुनसे सत्कार पाना चाहते हो तो तुम आज रणमें स्थिरताके साथ खड़े रहकर अर्जुनके साथ युद्ध करो ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णके ऐसा कहने पर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने कहा, कि–बहुत अच्छा और फिर साठ बाणोंसे श्रीकृष्णको तथा तीन बाणोंसे अर्जुनको बींधदिया ३० तब अर्जुनने बड़े क्रोधमें आकर तीन बाणोंसे अश्वत्थामाके धनुषको काटडाला तब अश्वत्थामाने दूसरा महाघोर धनुष लिया ॥ ३१ ॥ एक निमेषमात्रमें उसके ऊपर बाण चढ़ाकर

न्यर्बुदानि च । ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम् ३२
इषुधेर्धनुषश्चैव ज्याया श्चैवाथ मारिष । बाह्वोः कराभ्यामुरसो
वदनघ्राणनेत्रतः ॥ ३४ ॥ कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य
एव च । रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥ ३५ ॥ शर-
जालेन महता विध्वा माधवपाण्डवौ । ननाद मुदितो द्रौणिर्म-
हामेघौघनिःस्वनम् ॥३६॥ तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युत-
मब्रवीत् । पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति ॥ ३७ ॥
वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रवेश्य शरवेश्मनि । एषोऽस्मि हन्मि संक-
ल्पं शिक्षया च बलेन च ॥ ३८ ॥ अश्वत्थाम्नः शरानस्तांश्छि-
त्त्वैकैकं त्रिधा त्रधा । व्यधमद्भरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः ३९

तीन सौ बाण श्रीकृष्णके और एक हजार बाण अर्जुनके मारे ३२
और फिर अश्वत्थामाने उद्योग करके रणमें हजार, दशहजार,
अब्ज ऐसे असंख्यों बाण मारकर अर्जुनको रणभूमिमें रोक
दिया ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! उस समय परब्रह्मको जाननेवाले
अश्वत्थामाके माथेमेंसे, धनुषमेंसे, रोदेमेंसे, दोनों भुजाओंके
मूलमेंसे, दोनों हाथोंमें से, छातीमें से, नाकमें से, कानमेंसे,
मस्तकमेंसे, शरीरमेंसे, रुओंमेंसे, कवचमेंसे, रथमेंसे और ध्व-
जाओंमेंसे भी मानो बाणही छूटते हुए दीखते थे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥
अश्वत्थामाने बड़ेभारी बाणोंके जालसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको
बाँधकर आनन्दके साथ बड़ीभारी घनघटाकी समान गर्जना
की ॥ ३६ ॥ उसकी इस गर्जनाको सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे
कहा, कि-हे केशव ! देखो गुरुपुत्र अश्वत्थामा मेरी ओर द्वेप-
भाव रखकर कैसी दुष्टता कररहा है ॥ ३७ ॥ यह हम दोनोंको
बाणोंके जालमें बन्द करके मराहुआ समझ रहा है, परन्तु मैं
अभी अपनी शिक्षाके प्रभावसे तथा बलके आधारपर इसके
सङ्कल्पको नष्ट किये देता हूँ ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर भरतवंशमें
श्रेष्ठ अर्जुनने जैसे पवन कुहरका नाश करदेता है तैसेही अश्व-

ततः संशप्तकान् भूयः साश्वसूतरथद्विपान् । ध्वजपत्तिगणान्क्रुद्धैर्ना- राचैर्विव्याध पाण्डवः॥४०॥ये ये ददृशिरे तत्र यद्रूपास्तदा जनाः। ते ते तत्र शरैर्व्याप्तं मेनिरेऽत्मानमात्मना ॥ ४१ ॥ ते गाण्डीवप्रमु- क्तास्तु नानारूपाः पतत्रिणः । क्रोशे साग्रे स्थितान् घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान्रणे॥ ४२ ॥ भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदव- र्षिणाम् । यथा वने परशुभिर्निकृत्ताः सुमहाद्रुमाः ॥ ४३ ॥ पश्चात्तु शैलवत् पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः। वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रि- चयास्तथा ॥ ४४ ॥ गन्धर्वनगराकारान्रथांश्चापि सुकल्पितान् । विनीतैर्जवनैर्युक्तानास्थितान् युद्धदुर्मदैः ॥ ४५ ॥ शरैर्विशकलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् । स्वलंकृतानश्वसादीन् पत्तींश्चाहन् धन-

स्थामाके फेंकेहुए एक २ बाणके तीन २ टुकड़े करडाले॥३९॥ तदनन्तर अर्जुनने भयानक बाणोंसे फिर संशप्तक योधाओंकी टुकड़ीके घोड़े, सारथी, रथ, हाथी, ध्वजा और पैदलोंको बींध डाला॥ ४० ॥ इस समय रणभूमिमें जो लोग देखनेके लिये खड़े थे वे भी आपही अपनेको बाणोंसे बिंधाहुआ समझने लगे॥ ४१ ॥ अर्जुनके गांडीव धनुषमेंसे छोड़ेहुए अनेकों प्रकारके बाण रणमें डेढ़ २ कोशसे अधिक दूरीपर खड़ेहुए हाथि- योंका और मनुष्योंका नाश कररहे थे ॥ ४२॥ जैसे वनमें फरसोंसे काटेहुए बड़े २ वृक्ष पृथिवी पर गिर पड़ते हैं ऐसेही मद टपकानेवाले हाथियोंकी सूँडें पृथिवी पर गिरनेलगीं ॥४३॥ और पीछेसे इन्द्रका वज्र लगनेसे जैसे पहाड़ोंके समूह खड़ खड़ करतेहुए भूमिमें आपड़ते हैं तैसेही हाथीवानोंके सहित हाथी भूमि पर गिरने लगे ॥ ४४ ॥ धनंजयने गन्धर्वनगरकी समान उत्तमतासे सजायेहुए तथा वेगवाले और सिखाये हुए घोड़ोंसे जुड़ेहुए और युद्धके मतवाले योधा जिनमें बैठेहुए थे ऐसे रथोंके बाण मारकर टुकडे २ करडाले तदनन्तर शत्रुओंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके आभूषणादिसे सजेहुए घुड़सवारोंको तथा

ञ्जयः ॥ ४६ ॥ धनञ्जययुगान्तार्कः संशप्तकमहार्णवम् । व्यशोपयत दुःशोषं तीक्ष्णैः शरगभस्तिभिः ॥ ४७ ॥ पुनर्द्रौणिं महाशैलं नाराचैर्वज्रसन्निभैः । निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन् वज्रीव पर्वतम् ॥ ४८ ॥ तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः । युयुत्सुरागमद्योद्धुं पार्थस्तानच्छिनच्छरान् ॥ ४९ ॥ ततः परमसंक्रुद्धः पाण्डवेऽस्त्राण्यवासृजत् । अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ॥ ५० ॥ अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् । अपांक्तेयानिव त्यक्त्वा दाता पांक्तेयमर्थिनम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामार्जुनसंवादे
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पैदलोंका नाश करडाला ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अर्जुनरूप प्रलयकालके सूर्यने इसप्रकार अपने तीक्ष्णवाणरूप किरणोंसे संशप्तकरूप महासागर, जोकि–बड़ी कठिनतासे सूख सकता था उसको सुखाना आरम्भ करदिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर जैसे इन्द्र बड़े वेगवाले वज्रके प्रहारसे पहाड़के टुकड़े २ करडालता है तैसे ही वज्र समान बड़े वेगवाले वाण मारकर अश्वत्थामारूप महापर्वतको बींधडाला ॥ ४८ ॥ तब तो आचार्यपुत्र अश्वत्थामा क्रोधमें भरगया और वाण लेकर घोड़े तथा सारथियों सहित अर्जुनके सामने लड़नेकी इच्छासे चढआया और अर्जुनके ऊपर वाण फेंकने लगा. अर्जुनने उसके वाणोंको काट डाला ॥ ४९ ॥ फिर जैसे गृहस्थ योग्य अतिथिको विश्रामके लिये घर देता है तैसे अश्वत्थामाने भी अत्यंत क्रोधमें भरकर योग्य अर्जुनके ऊपर वाण वरसाना आरम्भ करदिये ॥ ५० ॥ तब जैसे दाता, पंक्तिमें बैठनेके अयोग्य ब्राह्मणोंको छोड़कर पंक्तिमें बैठने योग्य अर्थीकी ओरको जाता है, तैसेही अर्जुन भी संशप्तक नामक योधाओंको छोड़कर अश्वत्थामाके सामने लड़ने को जापहुंचा ॥ ५१ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

सञ्जय उवाच। ततः समभवद्युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः। नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव १ सन्तापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव ॥ २ ॥ ततोऽविध्यत् भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम्। स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मि-र्यथा रविः ॥ ३ ॥ अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नार्दितौ भृशम्। स्वरश्मिजालविकचौ युगान्तार्काविवासतुः ॥ ४ ॥ ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्रमवासृजद्वासुदेवेऽभिभूते। द्रौणायनिं चाभ्यहनत् पृषत्कैर्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः ॥५॥ स केशवञ्चार्जुनञ्चातितेजा विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा। बाणैः सुमुक्तैरतितीव्रवेगैर्यैराहतो मृत्युरपि

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! जैसे आकाशमेंकी नक्षत्रमण्डलीके शुक्र और बृहस्पतिमें युद्ध हुआ था तैसेही शुक्र और बृहस्पतिकी समान तेजस्वी अश्वत्थामा और अर्जुनमें युद्ध होने लगा ॥ १ ॥ मार्गको छोडकर चलनेवाले दो ग्रह जैसे लोकोंको भयदायक होते हैं तैसे ही वे दोनों योधा भी वैरके मार्गमें पहुंचकर बाणरूप चमकती हुई किरणोंसे एक दूसरेको सन्ताप और लोकोंको त्रास देने लगे ॥ २ ॥ आरम्भमें अर्जुन ने अश्वत्थामाकी भ्रकुटीके बीचमें जोरसे बाण मारकर उसको बींधदिया, उस बाणसे, जैसे खड़ी किरणोंवाला सूर्य शोभा पाता है तैसेही द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शोभा पानेलगा ॥ ३ ॥ इससमय अश्वत्थामाने भी श्रीकृष्ण और अर्जुनके सैंकड़ों बाण उनको मार कर बड़ा ही घायल करदिया, शरीरमें चुभे हुए बाणोंके कारण वे दोनों, अपनी किरणोंसे दमकते हुए प्रलयकालके सूर्यसे मालूम होते थे ॥ ४ ॥ जब श्रीकृष्ण अकुला गये तब अर्जुनने चारों ओरको जलानेवाले धारदार अस्त्र और वज्र, अग्नि तथा यमदण्ड की समान प्राणान्त करनेवाले बाण अश्वत्थामाके मारना आरम्भ करदिये ॥ ५ ॥ तब अतिभयानक पराक्रम करनेवाले महातेजस्वी अश्वत्थामाने श्रीकृष्ण और अर्जुनके मर्मस्थानोंमें

व्यथेत ॥ ६ ॥ द्रौणेरिपूनर्जुनः सन्निवार्य व्यायच्छतस्तं द्विगुणैः
सुपुंखैः । तं साश्वसूतध्वजमेकवीरमावृत्य संशप्तकसैन्यमाच्छेत् ७
धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः पाणीन् भुजान् पाणिगतञ्च शस्त्रम् ।
छत्राणि केतूंस्तुरगात्रथेषां वस्त्राणि माल्यानि च भूषणानि । ८॥
वर्माणि चर्माणि मनोरमानि प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव ।
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुमुक्तैर्बाणैः स्थितानामपरांमुखानाम् । ९॥
सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः समास्थिता यत्नकृतैर्नृवीरैः ।
पार्थेरितैर्बाणशतैर्निरस्तास्तैरेव सार्द्धं नृवरा निपेतुः ॥ १० ॥
पद्मार्कपूर्णेन्दुनिभाननानि किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि । भल्लार्द्ध-
चन्द्रक्षुरहिंसितानि प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥ ११ ॥ अथ

ऐसे वेगमें भरेहुए बाण उत्तमतासे चढ़ाकर मारना आरम्भ किये कि-जिन बाणोंकी मारसे मृत्युको भी पीड़ा होजाय ॥ ६ ॥ इस प्रकार अश्वत्थामा बाण मारनेके उद्योगमें लगाहुआ था, कि अर्जुनने उसके बाणोंका अपेक्षा दूने बाण मारकर रोकदिया, फिर दूसरे बाण मारकर इकहू वीर अश्वत्थामाको तथा उसके रथ, सारथी, घोड़े और ध्वजाको भी ढकदिया फिर अर्जुन संशप्तकों की सेनाकी ओरको झुका ॥ ७ ॥ तहाँ जाकर, पीछेको न हट कर सामनेको ही आकर लड़नेवाले शत्रुओंके धनुष, बाण, भाथे रोदे, हाथ, हथेली हाथमेंके हथियार, छत्र, ध्वजा, घोड़े, रथकी ईषा, वस्त्र, पुष्प, आभूषण, ढाल मनोहर पुष्प, प्यारे कवच, और मस्तकोंको, उत्तमताके साथ धनुषपर चढ़ाकर छोड़े हुए बाणोंसे काटडाला ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर रणभूमिमें जो, रथ, घोड़े, और हाथी सजाये हुए खड़े थे.तथा उनके ऊपर जो वीर पुरुष बैठे थे,उनके ऊपर अर्जुनने उद्योग करके सैंकड़ों बाणोंका प्रहारकिया उनसे उन वाहनोंके साथ वे वीर पुरुष पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ १० ॥ कमल, सूर्य और पूर्णोके चन्द्रमाकी समान मुखों वाले, मुकुट,फूलमें और आभूपणोंसे चमकतेहुए योधाओंके शिर

द्विपैर्देवरिपुद्विपाभैर्देवारिदर्पापहमत्यदग्रम् । कलिंगवङ्गाङ्गनिषा-
दवीरा जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥ १२ ॥ तेषां द्विपानां
निचकर्त्त पार्थो वर्माणि मर्माणि करान् नियन्तॄन् । ध्वजान्पता-
काश्च ततः प्रपेतुर्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥ १३ ॥ तेषु भग्न-
ग्नेषु गुरोस्तनूजं बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः । प्रच्छादयामास
महाभ्रजालैर्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम् ॥ १४ ॥ ततोऽर्जुनेषू-
निषुभिर्निरस्य द्रौणिः शरैरर्जुनवासुदेवौ । प्रच्छादयित्वा दिवि
चन्द्रसूर्यौ ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते ॥ १५ ॥ तमर्जुनस्तांश्च
पुनस्त्वदीयानभ्यर्दितस्तैरभिसृत्यशस्त्रैः । बाणान्धकारं सहसैव

भाले, अर्द्धचन्द्राकार तथा अस्त्राकार बाणोंकी मारसे कटकर भूमिपर नीचे गिरने लगे ॥ ११ ॥ कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग, निषाद आदि देशोंके वीर राजे अर्जुनको मारनेकी इच्छासे गजासुरकी समान बलवान् हाथियों पर चढकर महादैत्यका मद उतारनेवाले महापराक्रमी अर्जुनके सामने चढ़ आये ॥ १२ ॥ अर्जुनने हाथियों पर चढ़ेहुए योधाओंके कवच, ढाल, शूँड, हाथीवान्, ध्वजायें और पताकाओंको काटकर वज्रसे काटेहुए पर्वतके शिखरोंकी समान नीचे गिरादिया ॥ १३ ॥ जब शत्रुओंके सेनादलोंमें इसप्रकार संहार होने लगा तब जैसे वायु, उदय होतेहुए सूर्यको बादलोंसे ढकदेता है तैसेही अर्जुनने उदय होते हुए सूर्यकी समान चमकनेवाले बाणसे अपने गुरुपुत्रको ढक दिया ॥ १४ ॥ और जैसे मेघ वर्षाकालमें आकाशमेंके सूर्य और चन्द्रमाको ढककर गड़गड़ाहटके साथ गरजता है, तैसेही अश्वत्थामाने भी अपने तेज किये हुए बाणोंसे अर्जुनके बाणोंको पीछेको हटादिया और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको बाणोंसे ढककर गर्जना की ॥ १५ ॥ इसप्रकार अश्वत्थामाने तथा तुम्हारे पक्षके दूसरे योधाओंने अर्जुनको बहुत ही दुःखी किया तब अर्जुन एक साथ बाणोंके जालसे अंधेरा करके उत्तम पूँछोंवाले बाण

कृत्वा विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुंखैः ॥ १६ ॥ नाप्याददत् सन्दधन्नैव मुञ्चन् वाणान्वशेऽदृश्यत सव्यसाची । रथांश्च नागांस्तुरगान् पदातीन् संस्यूतदेहान् ददृशुर्हतांश्च ॥ १७ ॥ सन्धाय नाराचवरान् दशाशु द्रौणिस्त्वदन्येकमिवोत्ससर्ज्ज । तेषान्तु पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्पञ्चाच्युतं निर्विभिदुः सुपुंखाः ॥ १८ ॥ तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्यावसृक् स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ । समाप्तविद्येन तथाभिभूतौ हतौ रणे ताविति मेनिरेऽन्ये ॥ १६ ॥ अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम् । कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं कष्टो भवेद्व्याधिरिवाक्रियावान् ॥ २० ॥ तथेति

लिये हुए तुम्हारे पक्षके सब योधाओंके पास आपहुंचा और उन सबोंको घायल करदिया ॥ १६ ॥ रणमें खड़ेहुए दर्शक, रथमें बैठेहुए अर्जुनने वाण कब लिये, कब चढाये और कब छोड़े यह नहीं देखसके, वे केवल शत्रुओंके, रथ, रथी हाथी, हाथीसवार, घोड़े, घुड़सवार तथा पैदलोंको एक दूसरेके शरीरों से चिपटेहुए तथा मरेहुए देखते थे ॥ १७ ॥ इसप्रकार युद्ध चल रहा था, कि—अश्वत्थामाने तुरन्त उत्तम परोंवाले दश वाण धनुष पर चढ़ाये और मानो एक ही वाण माररहा हो इसप्रकार पाँच वाण श्रीकृष्णके तथा पाँच वाण अर्जुनके एक साथ मारकर उनको वींधदिया ॥ १८ ॥ पूरी धनुषविद्या जाननेवाले अश्वत्थामाने मनुष्योंमें श्रेष्ठ और कुबेर तथा इन्द्रकी समान श्रीकृष्ण और अर्जुनके जो वाण मारे तो वे दोनों मुखमेंसे लोहू ओकने लगे, यह देखकर दूसरोंने समझा, कि—वे दोनों रणमें अश्वत्थामाके हाथसे मारेगये ॥ १६ ॥ उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, कि—तू असावधानी (गफलत) क्यों करता है ? इस योधाका प्राणान्त कर, तू इसको न मारकर उपेक्षा करेगा तो जैसे उपाय न करनेसे रोग बढ़कर दुःखदायी होजाता है तैसेही यह शत्रु बढ़ कर दुःखदायी होजायगा ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण

चोक्त्वा च्युतमप्रमादी द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष । भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू ॥ २१ ॥ गांडीवमुक्तैः कुपितो विकर्णैर्द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद । छित्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्यत्ते तं रणादूहुरतीव दूरम् ॥ २२ ॥ स तैर्हृतो वातजवैस्तुरङ्गैर्द्रौणिर्दृढं पार्थशराभिभूतः । इयेष नावृत्य पुनस्तु योद्धुं पार्थेन सार्द्धं मतिमान् विमृश्य । जानन् जयं नियतं वृष्णिवीरे धनञ्जये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥ २३ ॥ नियम्य स हयान् द्रौणिः समाश्वस्य च मारिष । रथाश्वनरसंबाधं कर्णस्य प्राविशद्बलम् ॥ २४ ॥ प्रतीपकारिणि रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।

की इस बातको सुन अर्जुनने तथास्तु, कहकर सावधान होगया और बड़े प्रयत्न करके अश्वत्थामाके चन्दनसे चर्चित उत्तमबाहु छाती, शिर, और अनुपम जाँघोंको बाणोंसे बींधदिया ॥ २१ ॥ फिर अर्जुनने क्रोधमें भरकर बकरेके कानोंकी समान बाण धनुषमें छोड़कर अश्वत्थामाको घायल करदिया, उसके रथकी डोरियोंको काटकर उसके घोड़ोंको भी घायल करदिया उस समय रथमें जोड़ेहुए घोड़े चौंककर अश्वत्थामाको रणभूमिमेंसे बहुत दूर लेगये ॥ २२ ॥ जब वे वेगवान् घोड़े अश्वत्थामाको दूर खेंचकर लेगये तब अर्जुनके बाणोंसे घायल हुए बुद्धिमान् अश्वत्थामाने विचार करके फिर अर्जुनके साथ लड़नेके लिये लौटकर आनेकी इच्छा न की ॥ २३ ॥ किन्तु हे राजन् ! अपने घोड़ोंको रोककर और जरा देर आराम लेकर रथ घोड़े और पैदलोंसे भरेहुए कर्णके सेनादल में घुसगया ॥ २४ ॥ जैसे शरीरमेंके रोगको मंत्र और औषधों की क्रियाओंसे दूर किया जाता है ऐसेही अपना अनिष्ट करने

मन्त्रौषधिक्रियायोगैर्व्याधौ देहादिवाहृते ॥ २५ ॥ संशप्तकानभिमुखौ मयातौ केशवार्जुनौ । वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामपराजये
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच । अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः । रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यतां ॥ १ ॥ निवर्त्तयित्वा तु रथं केशवोर्जुनमब्रवीत् । वाहयन्नेव तुरगान् गरुडानिलरंहसः २ मागधोमतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना । भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥ ३ ॥ एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति । वाक्यान्ते प्रापयत् पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति ॥ ४ ॥ स मागधानां

वाले अश्वत्थामाको जब घोड़े रणमेंसे दूर खेंचकर लेगये तब श्रीकृष्ण और अर्जुन, जिसके ऊपर पताकायें पवनसे ऊँची फहरा रहीं थीं ऐसे और जलके धारापातकी समान शब्द करने वाले रथमें बैठकर संशप्तकोंकी ओर लड़नेको चलेगये॥२५-२६॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ छ ॥ छ

सञ्ज़य कहता है. कि—हे राजन् ! इसके अनन्तर उत्तरकी ओर लड़तीहुई पाण्डवोंकी सेनामें दण्डधारके हाथसे मार खाते हुए रथी,हाथीसवार, घुड़सवार और पैदलोंका कोलाहल सुनने में आया ॥ १ ॥ उस समय गरुड और पवनकी समान वेगवाले घोडोंको हाँकते हुए श्रीकृष्णने रथको पीछेको लौटाकर अर्जुन से कहा, कि—॥ २ ॥ मगधदेशका राजा दण्डधार बडा पराक्रमी है और उसका हाथी बडा संहार करनेवाला है, यह राजा अस्त्रशिक्षा और बलमें भगदत्तसे कम नहीं है ॥३॥ इसको मार कर संशप्तकोंको मारना इतना कहकर तुरंत ही अर्जुनको दण्डधार के समीप लेगये ॥ ४ ॥ राजा दण्डधार अंकुशको धारण करनेमें

प्रवरोंऽकुशग्रहे ग्रहेऽप्रसह्यो विकचो यथा ग्रहः। सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ॥ ५ ॥ सुकल्पितं दानव-नागसन्निभं महाभ्रनिर्ह्रादममित्रमर्दनम्। रथाश्वमातङ्गगणान् सहस्रशः समास्थितो हन्ति शरैर्नरानपि ॥ ६ ॥ रथानधिष्ठाय सवाजिसारथीन्नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत्। द्विपांश्च पद्भ्यां प्रमृद्य करेण द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत् ॥ ७ ॥ नरांश्च कार्ष्णायसवर्मभूषणान् निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह। व्यपोथयद्दन्तिवरेण शुष्मिणा सशब्दवत् स्थूलनलं यथा तथा ॥ ८ ॥ अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने मृदङ्गभेरीबहुशंखनादिते। रथा-

---

(हाथीकी लड़ाई) में बड़ा चतुर था, सब ग्रहोंमें जैसे बिना शिर का केतु ग्रह महाभयानक है, ऐसे ही यह राजा भी युद्धमें महा-भयानक था, धूमकेतु नामक ग्रह जैसे सब पृथिवीका नाश करता है, तैसे ही यह दारुण राजा भी पाण्डवोंकी सेनाका संहार करनेलगा ॥ ५ ॥ वह राजा अत्यन्त सजेहुए, बड़ेभारी मेघकी समान गर्जना करनेवाले शत्रुका नाश करनेवाले और असुरोंके हाथीकी समान हाथी पर बैठकर बाणोंसे सहस्रों रथियों, घुडसवारों हाथीसवारों और पैदलोंका नाश करता था ॥६॥ उसका हाथी, घोड़े, और सारथियों सहित रथोंके ऊपर पैर रखकर उनको कुचलता रहा था तथा कालचक्रकी समान दूसरे हाथियोंको सूँड से पकड़ २ कर पैरसे मसल रहा था ॥ ७ ॥ राजा दण्डधार काले लोहेके कवचको पहरकर शृङ्गार कियेहुए घुडसवारोंको, घोडोंको और पैदलोंको अपने महाबली बड़ेभारी हाथीके द्वारा अत्यन्त गर्जनाके साथ मोटे नलकी समान झुकाकर पृथिवी पर पटक रहा था ॥ ८ ॥ उस समय अर्जुन उत्तम रथमें बैठकर उस बड़े हाथीके सामने जापहुंचा, उस समय रणभूमिमें प्रत्यञ्चाके हाथकी तालियोंके, और रथोंके पहियोंके शब्द होनेलगे, मृदङ्ग,

रथमातङ्गसङ्कुले रथोत्तमे नाभ्यपतद्द्विपोत्तमम् ॥९॥ ततोऽ-
र्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमैर्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत् । स
दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभिस्ततो ननाद प्रजहास चासकृत्॥१०॥
ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं चकर्त्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन् सहपादगोप्तृभिस्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः॥११॥
ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना घनाघनेनानिलतुल्यवर्चसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं धनञ्जयञ्चाभिजघान तोमरैः ॥ १२ ॥
अथास्य बाहू द्विपहस्तसन्निभौ शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः ।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डवस्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत् १३
स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः समाचितः काञ्चनवर्मभृद्द्विपः ।

भेरी और शंखोंके शब्द होनेलगे, रणभूमि हजारों रथ घोड़े और हाथियोंसे भररही थी ॥ ९ ॥ दण्डधारने बारह उत्तम बाण श्रीकृष्णके और सोलह अर्जुनके मारे तथा तीन २ बाणोंसे घोड़ोंको घायल करके बारम्बार गरजनेलगा ॥ १० ॥ तब अर्जुनने भी भल्ल नामके बाण मारकर इसके धनुषको तथा बाण और रोदेको काटडाला, फिर सजीहुई ध्वजाको भी काट डाला, तदनन्तर रक्षकोंसहित पैदलोंको भी काटकर वह गिरिव्रजका राजा बडे क्रोधमें भरगया ॥ ११ ॥ और गंडस्थलमेंसे मद टपकानेवाले, मेघकी समान श्यामवर्णके, पवनकी समान कान्तिमान् हाथीके द्वारा इसने अर्जुनको बहुत ही विह्वल करना चाहा और श्रीकृष्णके तथा अर्जुनके भाले मारे । १२ ॥ तब तो धनञ्जयने क्षुर नामके तीन बाण मारकर हाथीकी सूँडकी समान इसके दोनों भुजदण्डोंको और पूर्ण चन्द्रमाकी समान मुख को एक साथ काटदिया और फिर सौ बाण इसके हाथीके मारे ॥१३॥ जो सोनेका कवच पहररहा था ऐसे उस हाथीके सब शरीरमें सोनेकी समान चमकते हुए बाण चुभगये, इसकारण वह

तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा दावाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः १४
स वेदनार्त्तोम्बुदनिस्वनो नदंश्चरन् भ्रमन् प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत्।
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तदा यथा गिरिर्वज्रविदारितस्तथा १५
हिमावदातेन सुवर्णमालिना हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना। हते रणे
भ्रातरि दण्ड आव्रजज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनञ्जयम् ॥ १६ ॥ स
तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभिर्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः। समर्पयित्वा
विननाद नर्दयंस्ततोऽस्य बाहू निचकर्त्त पाण्डवः ॥ १७ ॥ क्षुरप्र-
कृत्तौ सुभृशं सतोमरौ शुभांगदौ चन्दनरूषितौ भुजौ। गजात्
पतन्तौ युगपद्विरेजतुर्यथाद्रिशृंगाद्रुचिरौ महोरगौ ॥ १८ ॥ तथार्द्ध-

हाथी रातमें जिसपर दानानल बलउठी हो ऐसे औषधोंवाले पर्वतकी समान दीखनेलगा ॥ १४ ॥ बाण लगनेसे हाथीको बड़ी वेदना हुई और वह घबड़ाकर मेघकी समान गरजनेलगा तथा बीचमें ठोकरें खाता हुआ इधर उधरको दौडनेलगा और अन्तमें वज्र के तोड़े हुए पर्वतकी समान, पीड़ा पाकर अपने सहित पृथिवी पर ढहपड़ा तथा दण्डधार भी मरगया ॥ १५ ॥ जब दण्डधार मारागया तो उसका भाई दण्ड, वरफकी समान स्वेत, सोनेकी मालावाले और हिमालयके शिखरकी समान बड़े हाथी पर चढ़ कर श्रीकृष्णको तथा अर्जुनको मारनेके लिये चढ़ आया ॥१६॥ उसने सूर्यकी समान चमकते हुए तीन तेज भाले श्रीकृष्णके मारे और पाँच अर्जुनके मारे तथा जोरसे गरजनेलगा, तब अर्जुनने दण्डके दोनों हाथ काटडाले, जिससे कि—वह डकरानेलगा१७ तोमर धारण करनेवाले, उत्तम बाजूबन्द पहरे और जिसके शरीर पर चन्दन चुपड़ा हुआ था ऐसे दण्डके दोनों हाथ छुरा मारकर अर्जुनने झट काटडाले, जैसे पहाडके शिखर परसे सुन्दर बड़े २ साँप गिरते हों, ऐसे ही वे दोनों हाथ एक साथ हाथी परसे नीचे सरक पड़े ॥ १८ ॥ फिर अर्जुनने दण्डके शिरमें

चन्द्रेण हतं किरीटिना पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात् । स शोणितार्द्रो निपतन्विरेजे दिवाकरोऽस्त। दिव पश्चिमां दिशम् १९ अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसन्निभं दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः । बिभेद पार्थः स पपात नादयन् हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा २० ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा जिगीषवः संयति सव्यसाचिना । तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ ततः प्रभग्नं सुमहद्रिपोर्बलम् २१ गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च संघशः परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे । परस्परं प्रस्खलिताः समाहिता भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः ॥२२॥ अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः पुरन्दरं देवगणा इवाब्रुवन् ।

अर्धचन्द्राकार बाण मारा तब जैसे सूर्य अस्ताचल पर्वत परसे पश्चिम दिशामेंको उतर जाता है, तैसे ही दण्डका शिर भी हाथी परसे भूमिपर गिरपड़ा और जैसे सूर्य अस्त होते समय लाल रङ्गका होजाता है तैसे ही लोहूलुहान हुआ दण्ड भी हाथी पर से गिरते समय लाल २ होगया, था ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर अर्जुनने सूर्यकी किरणोंके समान चमकते हुए और प्रकाश करने वाले उत्तम बाणोंसे, श्वेत रङ्गके मेघसे दण्डके हाथीको चीरडाला, और जैसे वज्रकी मारसे हिमालयका शिखर टूटकर पृथिवी पर गिर पड़ता है तैसे ही वह हाथी चिंघारताहुआ पृथिवी पर गिरकर मरगया २० फिर दण्डधार और दण्डकी समान बलवान् दूसरे योधा भी उत्तम हाथियों पर बैठकर संग्राममें लड़नेकी इच्छासे चढ़ आये उनको भी सव्यसाची अर्जुनने पहले दोनों भाई और उनके हाथियोंकी समान बाण मारकर मारडाला. तब शत्रुओंकी बड़ी भारी सेना तुरन्त ही भाग निकली ॥ २१ ॥ हाथीसवार, रथी, घुड़सवार तथा पैदल आपसमें इकट्ठे होकर परस्परका नाश करते हुए रणमें गिरने लगे और सावधान होकर परस्पर एक दूसरे को कठोर वचन कहने लगे और आपसमें खूब लड़कर मरगये ॥ २२ ॥ इसप्रकार शत्रुका संहार होजाने पर जैसे देवता इन्द्र

अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः ॥ २३ ॥ न चेदरक्षिष्य इमान् जनान् भयाद् द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितान् । तथाभविष्यद् द्विषतां प्रमोदनं यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन ॥ २४ ॥ इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीडिता निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्ज्जुनः । यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं जगाम संशप्तकसंघहा पुनः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दण्डधारवधे

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच । प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान् बहून् । वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १ ॥ पार्थबाणहता राजन्नरा-

---

को चारों ओरसे घेरलेते हैं तैसे ही अपने सैनिक अर्जुनको चारों ओरसे घेर कर कहने लगे, कि-हे वीर ! जैसे प्रजा मृत्युसे डरती है, तैसे ही हम जिससे भय खारहे थे उस शत्रुको तुमने मारडाला, यह बड़ा अच्छा हुआ ॥ २३ ॥ बलवान् शत्रु हमें दुःख देरहे थे, उनसे यदि तुम हमारी रक्षा नहीं करते तो हे शत्रुनाशन ! जैसे उनका नाश होनेसे हम प्रसन्न हुए हैं, ऐसे ही हमारे नाशसे शत्रु प्रसन्न होते ॥ २४ ॥ इसप्रकार अपने प्यारे सैनिकोंने वार २ अर्जुनकी प्रशंसा की, उसको सुनकर अर्जुनके मनमें आनन्द हुआ, तदनन्तर अर्जुन उन सबोंका उचित रीतिसे सत्कार करके संशप्तकोंका संहार करनेके लिये गया ॥२५॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ॥ ॥

संजय कहता है, कि-हे राजन् ! जैसे मङ्गल नामका ग्रह वक्र और महावक्र गतिमें आकर लोकोंका संहार करता है, तैसे ही अर्जुनने भी दूसरे शत्रुओंके सामनेसे लौटकर वक्र और महावक्र गतिसे संशप्तकोंके ऊपर चढ़ायी करके बहुतसे संशप्तकोंको मार डाला ॥ १ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुनके बाणोंसे पैदल,

श्वरथकुञ्जराः । विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥ २ ॥
धुर्यान् धुर्यगतान् सूतान् ध्वजांश्चापानि सायकान् । पाणीन्
पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३ ॥ भल्लैः क्षुरैरर्द्धचन्द्रै-
र्वत्सदन्तैश्च पाण्डवः । चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्य-
ताम् ॥ ४ ॥ वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा । निपतन्त्य-
र्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥ तेषां तस्य च तद्युद्धमभव-
ल्लोमहर्षणम् । त्रैलोक्यविजये यादृग्दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ६ ॥
तमविध्यत् त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः । उग्रायुधसुतस्तस्य
शिरः कायादपाहरत् ॥ ७ ॥ तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धाः नानाशस्त्रैरभी-

घुड़सवार, रथी तथा हाथीसवार घायल होकर विचलित होगये, चक्कर खाने लगे, भागगये, मरकर गिरगये और कितने ही उदास होगये ॥ २ ॥ इस समय शत्रुकी ओरसे जो वीर सामने आकर लड़ रहे थे, उनके रथोंके घोड़ोंको, रथोंको, सारथियोंको, ध्वजाओंको, धनुषोंको, बाणोंको, हाथोंको, हाथोंमेंके शस्त्रोंको भुजाओंको तथा शिरोंको, भालोंको, क्षुरोंको अर्धचन्द्राकार और वत्सदन्त नामके बाण मारकर अर्जुनने काटडाला ॥ ३–४ ॥ ऋतुमती गायके पीछे लगे हुए बैलके ऊपरको जैसे लड़ना चाहने वाले दूसरे बैल टूट पड़ते हैं तैसे ही राज्यके लिये मथन करते हुए अर्जुनके ऊपर सैकड़ों और सहस्रों योधा टूट पड़े ॥ ५ ॥ इस समय अर्जुनका उन योधाओंके साथ रोमांच खड़े करनेवाला भयानक युद्ध हुआ और वे भी, तीनों लोकोंका विजय करते समय इन्द्रके साथ जैसे दैत्योंने युद्ध किया था तैसा ही युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ फिर उग्रायुधके पुत्रने विषधर साँपकी समान तीक्ष्ण सर्पाकारके तीन बाण मारकर धनञ्जयको घायल किया, तब धनञ्जयने बाण मारकर उसके धड़परसे मस्तकको उड़ादिया ॥ ७ ॥ उस समय, जैसे पवनके चलाये हुए बादल चौमासेमें हिमालयके

त्पन् । मरुद्भिः प्रेषिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥ ८ ॥ अस्त्रै-
रस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः । सम्यगस्तैः शरैः सर्वान-
हितानहनदर्हन् ॥ ९ ॥ छिन्नत्रिवेणुसंघातान् हताश्वान् पार्ष्णि-
सारथीन् । विस्रस्तहस्ततूणीरान् विचक्ररथकेतनान् ॥ १० ॥
संछिन्नरश्मियोक्त्राक्षान् व्यनुकर्ष युगान्रथान् । विध्वस्तसर्व-
सन्नाहान् बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्तदा ॥ ११ ॥ ते रथास्तत्र विध्वस्ताः
परार्ध्या भान्त्यनेकशः । धनिनामिव वेश्मानि हतान्यग्न्यनिला-
म्बुभिः ॥ १२ ॥ द्विपाः सम्भिन्नवर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः ।

ऊपर वर्षा करते हैं तैसे ही उग्रायुधके सब सैनिक क्रोधमें भरकर अर्जुनके ऊपर चारों ओरसे अनेकों प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८ ॥ अर्जुनने सामनेसे अस्त्र मार कर शत्रुओंके उन अस्त्रोंको चारों ओरसे आनेसे रोकदिया और फिर बाणों की बड़ीभारी मारसे बहुतसे शत्रुओंका संहार करडाला ॥ ९ ॥ और उसी समय अर्जुनने बाण मारकर शत्रुओंके रथोंकी नीचे की तीन लकड़ियोंको काटडाला, घोड़ोंको मारडाला, पीछे आने वाले योधाओंको तथा सारथियोंको काटडाला, इस समय रथोंमें बैठे हुए योधाओंके हाथोंमें से बाणोंके भाथे, रथोंके पहिये तथा ध्वजायें नीचे गिरपड़ीं ॥ १० ॥ उस समय अर्जुनने बाण मार कर घोड़ोंकी लगामें तथा बागडोरोंको काटडाला, रथके नीचेकी धुरियोंको काटडाला, रथोंके नीचेके काठ तथा जुओंकोभी काट डाला, और रथोंके ऊपरके गलेफोंको तथा रथियोंके कवचोंको भी काटडाला ॥ ११ ॥ इस युद्धमें चूरा हुए हजारों रथोंमें युद्ध की बहुतसी सामग्री भरी हुई थी, इसलिये वे रथ अग्नि, पवन और जलसे नष्टहुए श्रीमानोंके घरोंकी समान दीखते थे॥१२॥ इसयुद्धमें वज्रकी समान बाणोंकी मारसे हाथियोंके और उनके ऊपर बैठेहुए योधाओंके कवच टूटफूट गये थे और वज्रकी चोट

पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रपाताग्निभिर्यथा ॥ १३ ॥ सारोहास्तुरगाः पेतुर्बहवोऽर्जुनताडिताः । निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणाः रुधिरार्द्राः सुदुर्दृशः ॥ १४ ॥ नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना । बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्म्लुश्च मारिष ॥१५॥ अनेकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः । शरैर्निजघ्निवान् पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥ १६ ॥ महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः । सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥ १७॥ विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः । गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् १८

से तथा अग्निकी ज्वालाओंसे जैसे पहाड़के ऊपरके घर नीचे टूट पड़ते हैं, तैसे ही हाथी और उनके ऊपर बैठनेवाले योधा नीचे गिररहे थे ।।१३।। ऐसे ही अर्जुनके बाण लगनेसे शत्रुओंके बहुत से घोड़ोंकी जीभें और आँतें बाहर निकल पड़ी थीं, वे घोड़े और घुड़सवार लोहूलुहान होकर बड़े ही भयानक दीखरहे थे और क्षीण होकर पृथिवी पर पड़े थे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर अर्जुनके बाणोंसे विंधेहुए पैदल, घोड़े और हाथी चारों ओरको भागने लगे, ठोकरें खानेलगे, गिरने लगे, बड़ी गर्जना करनेलगे और कितने ही उदास होगये ॥ १५ ॥ महेन्द्र जैसे दानवोंका संहार करता है तैसे ही अर्जुन सानपर तेज कियेहुए तथा वज्र, अशनि और विषकी समान अनेकों बाण मारकर शत्रुओंका संहार करने लगा ॥ १६ ॥ अर्जुनके मारेहुए अनेकों वीर, जो कि-बहुमूल्य कवच और आभूषणोंवाले तथा भाँति२ के वस्त्र धारण कररहे थे अपने रथ और ध्वजाओंके साथ रणभूमिमें सोरहे हैं ॥ १७ ॥ हारजाने पर भी, उत्तम कर्म करने वाले तथा श्रेष्ठ और कुलीन कहलानेवाले योधाओंके सुन्दर शरीर पृथिवी पर पड़े रहे, परन्तु उनके आत्मा उत्तम कर्म करने के कारण स्वर्गमें चलेगये ॥ १८ ॥ महारथी अर्जुन इसप्रकार

अथार्जुनं रथवरं त्वदीयाः समभिद्रवन् । नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः ॥ १९ ॥ उह्यमाना रथाश्वेभैः पत्तयश्च जिघांसवः । समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम् ॥ २० ॥ तदायुधमहावर्षं मुक्तं योधमहाम्बुदैः । व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥ २१ ॥ साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसंप्लवम् । सहसा सन्तितीर्षन्तं महाशस्त्रास्त्रसेतुना ॥ २२ ॥ अथाब्रवीद्वासुदेवः पार्थ किं क्रीडसेऽनघ । संशप्तकान् प्रमथ्यैनांस्ततः कर्णवधे त्वर ॥ २३ ॥ तथेत्युक्त्वार्जुनः कृष्णं शिष्टान् संशप्तकांस्तदा । आक्षिप्य शस्त्रेण बलात् दैत्यानिन्द्र इवावधीत् ॥ २४ ॥ आद-

---

हमारी सेनाका संहार करडालता था, यह देखकर हमारे पक्षके अनेकों देशोंके राजे बड़े ही क्रोधमें भरगये और अपने २ सेनादलोंके साथ महारथी अर्जुनके ऊपरको जाचढ़े ॥ १९ ॥ रथी, घुड़सवार, हाथीसवार तथा पैदल अर्जुनको मारनेके लिये शीघ्रताके साथ उसके ऊपर अनेकों प्रकारके शस्त्रोंका प्रहार करने लगे ॥ २० ॥ इस समय योधारूप बड़े भारी मेघमण्डल आयुधरूप जलकी बड़ीभारी वर्षा कररहे थे, इतनेमें ही अर्जुनरूप पवनने शीघ्र ही तेज बांण मारकर शत्रुरूप बड़ीभारी घनघटाओंकी आयुधवृर्षाको बखेरदिया ॥ २१ ॥ अर्जुन, घुड़सवार रथी हाथीसवार और पैदलोंवाले, बड़े २ अस्त्रशस्त्रोंके समूहरूप एक तालावको एकसाथ अस्त्रशस्त्ररूप सेतुसे तरना चाहने लगा २२ उसी समय श्रीकृष्णने उससे कहा कि—हे निर्दोष अर्जुन ! तू यह खेल क्यों कररहा है ? इन संशप्तक योधाओंका संहार कर और फिर कर्णको मारनेके लिये शीघ्रता कर ॥ २३ ॥ 'बहुत अच्छा ऐसा ही करता हूँ' श्रीकृष्णजीसे ऐसा कहकर जैसे इन्द्रने दैत्योंको मारा था तैसे ही अर्जुन उस समय श्रेष्ठ संशप्तकोंका, बाणोंके प्रहारोंसे संहार करने लगा ॥ २४ ॥ इस

दन्सन्दधन्नेषून् दृष्टः कैश्चिद्रणेऽर्जुनः । विमुञ्चन् वा शरान् शीघ्रं दृश्यतेव हितैरपि ॥ २५ ॥ आश्चर्यमिति गोविन्दः सममन्यत भारत । हंसांशुगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन् २६ ततः संग्रामभूमिञ्च वर्त्तमाने जनक्षये । अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ २७ ॥ एष पार्थ महारौद्रो वर्त्तते भरतक्षयः । पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ २८ ॥ पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् । महताञ्चापविद्धानि कलापानिषुधीस्तथा ॥ २९ ॥ जातरूपमयैः पुंखैः शरांश्चानतपर्वणः । तैलधौतांश्च नाराचान् निर्मुक्तानिव पन्नगान् ॥ ३० ॥ आकीर्णांस्तोमरांश्चापि विचित्रान् हेमभूषितान् । वर्माणि चापविद्धानि

समय अर्जुन इतनी शीघ्रतासे बाण लेता था, धनुष पर चढ़ाता था और उनको छोड़ता था, कि इन सब बातोंको कोई सावधानीसे देखनेवाला भी नहीं देखसकता था ॥ २५ ॥ हे भारत ! श्रीकृष्ण भी अर्जुनकी इस बाणविद्याकी कुशलताको देखकर आश्चर्यमें होगये, जैसे हंस सरोवरमें घुसते हैं तैसे ही सूर्यकी समान गौर वर्णके अर्जुनके बाण तुम्हारी सेनामें घुसनेलगे २६ उस समय रणभूमिमें मनुष्योंका महासंहार होनेलगा, यह देख कर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, कि—हे पार्थ ! पृथिवी पर दुर्योधन के कारणसे भरतवंशका तथा अन्य राजाओंका यह महाभयानक क्षय होरहा है ॥ २८ ॥ हे भरतवंशी अर्जुन ! देख, बड़े २ धनुषधारियोंके सोनेकी पत्तरोंसे जड़ीहुई मूठोंवाले ये धनुष ये आभूषण, और ये भाथे बाणोंसे कटगये हैं ॥ २९ ॥ नवेहुए पर्ववाले बाण तथा तेलसे घिसकर उज्वल कियेहुए ये सोनेकी पूंखोंवाले बाण विना केंचुलीके साँपसे दीखरहे हैं ॥ ३० ॥ और हे भरतवंशी अर्जुन ! सोनेकी मूठोंवाले अनेकों प्रकार के तोमर बिखरेहुए पड़े हैं और जिनका ऊपरका भाग सोनेका

रुक्मपृष्ठानि भारत ॥ ३१ ॥ सुवर्णविकृतान् प्रासान् शक्तीः कनकभूषिताः । जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ ३२ ॥ जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषितान् । दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ ३३ ॥ परिघान् भिन्दिपालांश्च भुशु-ण्डीः कुणपानपि । अयस्कुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च ३४ नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः । जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ॥ ३५ ॥ गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्त-कान् । गजवाजिरथैः क्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः ॥ ३६ ॥ मनुष्यगजवाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः । निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासै-र्नखरैर्लगुडैरपि ॥ ३७ ॥ शरीरैर्बहुधाच्छिन्नैः शोणितौघपरि-प्लुतैः । गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ॥ ३८ ॥

है ऐसी बहुतसी ढालें भूमि पर पड़ी हैं ॥ ३१ ॥ सोनेसे जड़ेहुए प्रास, शक्तियें और सोनेके गंडे पड़ीहुई बहुतसी गदायें भी पड़ी हैं ॥ ३२ ॥ सोनेकी बनीहुई ऋष्टियें, सोनेसे शोभायमान पट्टिश और सोनेकी चित्रकारीवाले दंड जिनमें पड़े हैं ऐसे फरसोंको भी देख ॥ ३३ ॥ रणभूमिमें परिघ, भिन्दिपाल, भुशुण्डी, कुणप लोहेके भाले और बड़े २ मूसल पड़े हैं उनको देख ॥ ३४ ॥ विजयकी इच्छावाले वेगवान् योधा अनेकों प्रकारके हथियारोंको हाथोंमें लियेहुए रणभूमिमें मरे पड़े हैं, परन्तु हथियारोंके कारण से जीतेहुएसे मालूम होते हैं ॥ ३५ ॥ और देख ये जो सहस्रों योधा पड़े हैं, इनमेंसे किन्हींके शरीर गदाओंसे कुचले हुए हैं, किन्हींके शिर मूसलोंसे फटेहुए हैं तथा कोई हाथी, घोड़े और रथोंके कुचलेहुए हैं ॥३६॥ हे शत्रुओंका नाश करनेवाले अर्जुन ! बाण, शक्ति ऋष्टि, तोमर, तलवार, पट्टिश, प्रास, बाघनख तथा लाठियोंसे हाथी घोड़े और रथोंपर बैठनेवालोंके तथा पैदलों के शरीर कुचलकर चूरा २ होगये हैं, उनके प्राणरहित और लोहूलुहान हुए शरीरोंसे रणभूमि ढकगयी है ॥ ३७–३८ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभलक्षणैः। सतलत्रैः सकेयूरै-र्भाति भारत मेदिनी ॥ ३९ ॥ सांगुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलं-कृतैः। हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ४० ॥ बद्ध-चूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः। रथांश्च बहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ ४१ ॥ अश्वांश्च बहुधा पश्य शोणितेन परिसुतान्। अनुकर्षानुपासङ्गान् पताका विविधान् ध्वजान् ४२ योधानाञ्च महाशङ्खान् पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्। निरस्तजिह्वा-न्मातङ्गान् शयानान् पर्वतोपमान् ॥ ४३ ॥ वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजयोधिनः। वारणानां परिस्तोमान् सुयुक्तानेककम्ब-लान् ॥ ४४ ॥ विपाटितविचित्राश्च रूपचित्राः कुथास्तथा। भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः ॥ ४५ ॥ वैदूर्य-मणिदण्डांश्च पतितांश्चांकुशान्भुवि। अश्वानाञ्च युगापीडान्

हे भारत! चन्दन चुपड़े, बाजूबन्द पहरे, सुन्दर आभूषणोंवाले, दस्ताने और पहुंचीवाले भुजदण्डोंसे रणभूमि दिपरही है ॥३९॥ योधाओंके कटकर गिरेहुए दस्तानोंवाले और शृङ्गार कियेहुए हाथोंके पहुँचोंसे तथा हाथीकी सूँडकी समान सांथलोंसे और उत्तम मुकुट पहरे कुण्डलोंवाले मस्तकोंसे रणभूमि दिपरही है, जहाँ तहाँ सोनेकी घंटियोंवाले सुन्दर रथ टूटे पड़े हैं ४०-४१ देख रुधिरमें न्हायेहुए घोड़े भी जहाँ तहाँ पड़े हैं, रथके नीचेके काठ, इधर उधरके काठ, पताकायें और अनेकों ध्वजायें टूटी पड़ी हैं ॥ ४२ ॥ योधाओंके बजानेके बड़े २ स्वेत शंख बिखरे पड़े हैं, पहाड़ोंकी समान हाथी बाहरको जीभें निकालकर रण-भूमिमें पड़े सोरहे हैं ।४३॥ अनेकों प्रकारकी वैजयन्ती मालायें मारेगये हाथी सवार, और उनकी बनीहुई रङ्गबिरङ्गी अनेकों हाथियोंकी झूलोंके ढेर पडे हैं ।। ४४ ॥ फटीहुई रङ्गबिरङ्गी अनेकों हाथियोंकी झूलें और हाथियोंके गिरनेसे कुचले हुए घंटे पड़े हैं ॥ ४५ ॥ पृथ्वी पर पड़े हुए वैदूर्यमणिसे जड़े

रत्नचित्रानुरश्छदान् ॥ ४६ ॥ विद्धाः सादिध्वजाग्रेषु सुवर्ण-
विकृताः कुथाः । विचित्रान् मणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ४७
अश्वास्तरपरिस्तोमान् राङ्कवान् पतितान्भुवि । चूडामणीन् नरे-
न्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ॥ ४८ ॥ छत्राणि चापविद्धानि
चामरव्यजनानि च । चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥४६॥
क्लृप्तश्मश्रुभिराकीर्णां पूर्णचन्द्रनिभैर्महीम् । कुमुदोत्पलपद्मानां
खण्डैः फुल्लं यथा सरः ॥ ५० ॥ तथा महीभृतां वक्त्रैः कुमुदो-
त्पलसन्निभैः ।तारागणविचित्रस्य निर्मलेन्दुद्युतित्विषः ॥ ५१ ॥
पश्येमां नभसस्तुल्यां शरन्नक्षत्रमालिनीम् । एतत्त्वय्येवानुरूपं
कर्मार्जुन महाहवे ॥ ५२ ॥ दिवि वा देवराजस्य त्वया यत् कृत-

दण्डोंवाले अंकुश, घोड़ोंके जोत और छाती पर कसनेके रत्नजड़े तङ्गोंको भी देख ॥ ४६ ॥ जिनके ऊपर मणियोंके भाँति २ के चित्र बनाये हैं ऐसी सुनहरी चित्रकारीसे सजायीहुई जो मानो सोनेकी ढालकर बनायी हों ऐसी घोड़ों की झूलें घुड़सवारोंके भालोंकी नोकोंमें उलझी हुई पड़ी हैं४७ रंकुजातिके मृगोंके बालोंसे बनायी हुई घोड़ोंकी गद्दियें राजाओं के मुकुट और भाँति २ की सोनेकी मालायें पड़ी हैं ॥ ४८ ॥ छत्र, चमर और पंखे भी रणभूमिमें टूटेपड़े हैं, चन्द्रमा और तारागणकी समान कान्तिवाले, मनोहर कुण्डल पहरे, कतरीहुई दाढ़ीवाले, चन्द्रमाकी समान उज्वल राजाओंके सुन्दर मुखोंसे यह रणभूमि छारही हैं, कुमुद उत्पल और पद्मोंके समूहोंसे जैसे तालाब प्रफुल्लित दीखता है, तैसे ही कुमुद और उत्पलोंकी समान राजाओंके मुखोंसे पृथिवी प्रफुल्लित होरही है, इसको देख, यह रणभूमि शरद-ऋतुके नक्षत्रोंवाले और तारागणके उदय होनेसे विचित्र दीखतेहुए तथा निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनीसे प्रकाशवान् आकाशसी होरही है, इसको देख, हे अर्जुन ! महा-रणमें यह तेरा कर्म तुझे ही शोभा देता है ४६-५२ और रणभूमिमें

मद्य वै । एवं तां दर्शयन्कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ॥ ५३ ॥ गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत् । शंखदुन्दुभिनिर्घोषं भेरीपणवनिःस्वनम् ॥ ५४ ॥ रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान् । प्रविश्य तद्बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगितैः ॥ ५५ ॥ पांड्येनाभ्यर्द्दितं सैन्यं त्वदीयं वीक्ष्य विस्मितः । स हि नानाविधैर्बाणैरिष्वस्त्रप्रवरो युधि ॥५६ ॥ न्यहनद् द्विषतां पूगान् गतासूनन्तको यथा । गजवाजिमनुष्याणां शरीराणि शितैः शरैः ॥ ५७ ॥ भित्वा प्रहरतां श्रेष्ठो विदेहासूनपातयत् । शत्रुप्रवीरैरस्त्राणि नाना-

---

तूने जैसा पराक्रम किया है ऐसा पराक्रम केवल स्वर्गमें इंद्रनेही किया है, श्रीकृष्ण इसप्रकार अर्जुनको रणभूमि दिखाते तथा उसके विषय की बातें करतेहुए अपनी छावनीमेंको जारहे थे, इतनेमें ही उन्होंने दुर्योधनकी सेनामें शंख, दुन्दुभि, पटह, भेरी और झाँझोंका बड़ाभारी शब्द सुना, तथा रथ, घोड़े और हाथियों का भी बड़ाभारी शब्द सुना तथा शस्त्रोंका भयानक झनझनाहट सुना उसको सुनते ही श्रीकृष्ण, पवनकी समान वेगवाले घोड़ोंको हाँककर दुर्योधनकी सेनामें घुसे तो देखते क्या हैं, कि––राजा पांड्य तुम्हारी सेनाका संहार कर रहा है, उसको देखकर श्रीकृष्ण आश्चर्यमें होगये, राजा पाण्ड्य धनुर्विद्या और अस्त्रविद्यामें बड़ा प्रवीण था, वह अनेकों प्रकार के बाण मारकर, जैसे काल मरणके समीप पहुंचे हुओंका संहार करता है तैसे ही शत्रुओंका संहार कर रहा था तथा तेज किये हुए बाणोंसे हाथी, घोड़े और योधाओंके शरीरोंको काटता हुआ उनको प्राणहीन करके पृथिवी पर गिरा रहा था, इस समय शत्रुकी ओरके वीरोंने पांड्यके ऊपर अनेकों प्रकारके अस्त्र शस्त्र मारना आरम्भ करदिया, परन्तु श्रेष्ठ योधा राजा पांड्यने अपने बाणोंसे उनके शस्त्र अस्त्रोंके टुकड़े २ करडाले

शस्त्राणि सायकैः। छित्वा तानवधीच्छत्रून् पाण्ड्यः शक्र इवासुरान्॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः। न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया सञ्जय कीर्त्तितम्॥ १ ॥ तस्य विस्तरशो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम्। शिक्षां प्रभावं वीर्यञ्च प्रमाणं दर्पमेव च ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच। भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णार्जुनजनार्दनान्। समाप्तविद्यान्धनुषि श्रेष्ठान् यान्मन्यसे रथान् ॥ ३ ॥ यो ह्याक्षिपति वीर्येण सर्वानेतान्महारथान्। न मेने चात्मना तुल्यं कञ्चिदेव जनेश्वरम् ॥ ४ ॥ तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्यामात्मनो यो न मृष्यते। वासुदेवार्जुनाभ्याञ्च न्यूनतां नैच्छदात्मनि॥ ५ ॥ स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः।

और जैसे इन्द्र असुरोंका नाश करता है तैसे ही शत्रुओंका नाश करने लगा॥ ५३—५८ ॥ उन्नीसवां अध्याय समाप्त १९

धृतराष्ट्रने बूझा कि—हे सञ्जय! लोकोंमें प्रसिद्ध और वीर राजा पाण्ड्यका तूने पहले ही वर्णन किया था, परन्तु उसने युद्धमें क्या पराक्रम किया, यह तूने मुझे नहीं सुनाया ॥ १ ॥ इसलिये अब तू मुझे वीर राजा पांड्यके पराक्रम, विद्याका अभ्यास, प्रभाव, शरीरका बल, प्रमाण तथा गर्वको विस्तारके साथ सुना ॥ २ ॥ सञ्जयने कहा कि—भीष्म द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, अर्जुन और श्रीकृष्ण ये सब महारथी धनुर्विद्यामें पारङ्गत हैं, ऐसा आप मानते हैं ॥ ३ ॥ परन्तु राजा पाण्ड्य सब महारथियोंको अपने पराक्रमके सामने तुच्छ गिनता था, वह किसी राजाको भी अपनी समान नहीं मानता था ४ वह राजा द्रोण या भीष्मकी समताको सह नहीं सकता था और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे अपनेको कम नहीं गिनता था ५

कर्णस्यानीकमहनत् पराभूत इवान्तकः॥ ६ ॥ तदुदीर्णरथाश्वञ्च पत्तिप्रवरसंकुलम्। कुलालचक्रवत् भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात्७ व्यश्वसूतध्वजरथान् विप्रविद्धायुधद्विपान्। सम्यगस्तैः शरैः पांड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत्॥ ८ ॥ द्विरदान् द्विरदारोहान् विपताकायुधध्वजान्। सपादरक्षानहनत् वज्रेणाद्रीनिवाद्रिहा॥९॥ स शक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान् हयानपि। पुलिन्दखशबाल्हीका-न्निषादान्ध्रककुन्तलान्॥ १०॥ दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च शूरान् संग्रामकर्कशान् विशस्त्रकवचान्बाणैः कृत्वा चैवाकरोद्व्यसून्।११। चतुरङ्गबलं बाणैर्निघ्नन्तं पार्थिवमाहवे। दृष्ट्वा द्रौणिरसंभ्रान्तमस-

ऐसा राजा पाँड्य सब राजाओंमें श्रेष्ठ था और सब शस्त्रधारियों में भी श्रेष्ठ मानाजाता था, वह कुपित हुए कालकी समान कर्ण की सेनाका संहार करनेलगा॥ ६ ॥ रथ और घोड़ोंसे उछलती हुई बडेभारी पैदलोंके दलसे भरीहुई और कुम्हारके चाक की समान चारों ओरको घूमतीहुई हमारी सेनाका पराक्रमसे संहार करने लगा॥ ७ ॥ और जिनके घोड़े सारथी, ध्वजा, रथ, शस्त्र तथा हाथी नष्ट होगये थे ऐसे योधाओंकी ओरको बाणोंका प्रहार करके जैसे वायु बादलोंको बखेर देता है तैसे ही राजा पांड्यने शत्रुओंके योधाओंको रणमें छिन्न भिन्न कर दिया॥ ८ ॥ जैसे इन्द्र वज्रसे पहाड़ोंको नष्ट करडालता है तैसे ही पांड्यने हाथियोंको हाथीसवारोंको पताका शस्त्र और ध्वजाओंसे रहित करके पादरक्षकों सहित मारडाला॥ ९ ॥ उसने शक्ति प्रास और भाथे धारण करनेवाले घुड़सवार, घोड़े तथा पुलिन्द, खस, बाल्हीक, निषाद, आंध्रक, कुन्तल, दाक्षिणात्य और भोज जातिके महाभयानक युद्ध करनेवाले वीर योधाओंके शस्त्रोंको और शरीरों पर पहरेहुए कवचोंको बाण मारकर काटडाला और उन योधाओंको शस्त्रहीन तथा कवचहीन करके मारडाला॥ १०-११ ॥ वह राजा रणमें निर्भय होकर बाणोंसे

म्भ्रान्तस्ततोभ्ययात् ॥ १२ ॥ आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तम-
भीतवत् । माह महरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयत् ॥ १३ ॥ राजन्
कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत । वज्रसंहननमख्य मख्यातबल-
पौरुष ॥ १४ ॥ मुष्टिश्लिष्टायतज्यञ्च व्यायताभ्यां महद्धनुः ।
दोर्भ्यां विस्फारयन् भासि महाजलदवद् भृशम् ॥ १५ ॥ शरवर्षैर्म-
हावेगैरमित्रानभिवर्षतः । मदन्यं नानुपश्यामि मतिवीरं त्वाहवे ? ६
रथद्विरदपत्त्यश्वानेकः ममथसे बहून् । मृगसंघानिवारण्ये विभी-
र्भीमबलो हरिः ॥ १७ ॥ महता रथघोषेण दिवं भूमिञ्च नादयन् ।

चतुरङ्गिनी सेनाका नाश कररहा था, यह देखकर अश्वत्थामा साव-
धान हो उसके सामने युद्ध करनेको चढ़ आया ॥१२॥ युद्ध करने
वालोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने निडर पुरुषकी समान, निर्भय राजा
पांड्यको मुसकुराते हुए मधुर वाणीसे बुलाकर उससे कहा,
कि ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तेरे नेत्र कमलकी पंखड़ीकी समान हैं,
तू कुलीन राजाओंमें मसिद्ध है, तेरा शरीर वज्रकी समान दृढ़
है और तेरा बल तथा पुरुषार्थ मसिद्ध है ॥ १४ ॥ जिसकी लंबी
मत्यञ्चाको तू मुट्ठीमें पकड़ेहुए है, ऐसे बड़े धनुषको जब तू
अपने विशाल बाहुसे पकड़ कर उस पर टंकार देता है, उस
समय पूर्णरूपसे तू एक बड़ा मेघसा मालूम होता है ॥ १५ ॥
तू शत्रुओंके ऊपर बड़े वेगवाले बाणोंकी वर्षा बरसा रहा है,
इस रणमें तेरे सामने पड़कर लड़नेकी योग्यतावाला अपने सिवाय
मैं और किसी योधाको नहीं देखता ॥ १६ ॥ जैसे भयानक बल
वाला सिंह वनमें निर्भय होकर मृगोंको मारडालता है, तैसे ही तुम
अकेले ही रथ, हाथी, घोडे और उनके सवारोंका और पैदलोंके दल
का नाश कर रहे हो १७ हे राजन् ! जैसे शरद् ऋतुमें जोरसे गरजने
वाला मेघ अन्नका नाश करता है, तैसे ही तुम भी रथके बड़े
भारी घरघराहटसे आकाश और पृथिवीको मतिध्वनित करते

वर्षान्ते सस्यहा मेघो भासि हार्दीव पार्थिव ॥ १८ ॥ संस्पृशामः शरांस्तीक्ष्णांस्तूणादाशीविषोपमान् । मयैवैकेन युध्यस्व त्र्यम्बकेनान्धको यथा ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः । कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः २० मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः । स्मयन्नभ्यहनद् द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः ॥ २१ ॥ ततोऽपरान् सुतीक्ष्णाग्रान् नाराचान्मर्मभेदिनः । गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामाप्यवासृजत् ॥ २२ ॥ तान् शरा-

करते हुए सहस्रों योधाओंका नाश कर रहे हो ।१८। इसलिये जैसे अन्धकासुरने शंकरके साथ युद्ध किया था तैसे ही तुम भाथेमेंसे बाहर निकालतेहुए सर्पसमान तीखे बाणोंको छोड़तेहुए अकेले ही मेरे सामने लड़नेको आजाओ ॥ १९ ॥ अश्वत्थामाके ऐसा कहने पर राजा पांड्यने कहा, कि—'बहुत अच्छा' अब तुम मेरे ऊपर प्रहार करो, अश्वत्थामाने राजा पांड्यके ऊपर प्रहार किया तब मलयकी समान ध्वजावाले राजा पांड्यने अश्वत्थामाको कर्णि नामका बाण मारकर बींधदिया ॥२०॥ आचार्योंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने हँसते २ मर्मस्थानको चीरडालनेवाला महाप्रचण्ड और अग्निकी लपटकी समान बाण मारकर राजा पांड्यको घायल करदिया ॥ २१ ॥ तदनन्तर अश्वत्थामाने और भी बड़ी तीखी धारवाले और मर्मस्थानको तोड़ देनेवाले बाण दशमी गतिसे (१) छोड़े ॥ २२ ॥

(१) बाणोंकी दश प्रकारकी गति ये हैं-"उन्मुख्याभिमुखी तिर्यङ् मन्दा गोमूत्रिका ध्रुवा । स्खलिता यमकाक्रान्ता क्रुष्टतीक्ष्णगतीर्विदुः ॥" उन्मुखी, अभिमुखी और तिरछी गतिवाले तीन बाण मस्तक हृदय और पसलियोंमें अटकनेवाले होते हैं, मन्दा गतिवाला बाण चमड़ेको जरासा फोड़ता है, गोमूत्रिका जातिका बाण कवचको काटता है ध्रुवा लक्ष्यको अवश्य ही गिराता है स्खलिता लक्ष्यको बचाजाता है

नच्छिनत् पाण्ड्यो नवभिर्निशितैः शरैः । चतुर्भिरर्दयच्चाश्वा-
नाशु ते व्यसवोऽभवन् ॥ २३ ॥ अथ द्रोणसुतस्येषूंस्तांश्छित्वा
निशितैः शरैः । धनुर्ज्यां विततां पाण्ड्यश्चिच्छेदादित्यतेजसः २४
दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा । प्रेष्य चाशु रथे
युक्तान् नरैरश्वान् हयोत्तमान् ॥ २५ ॥ ततः शरसहस्राणि प्रेष-
यामास वै द्विजः । इषुसम्बाधमाकाशमकरोद्दिश एव च ॥२६ ॥
ततस्तानस्यतः सर्वान् द्रौणेर्बाणान्महात्मनः । जानानोऽप्यक्षयान्
पाण्ड्यो शातयत् पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥ प्रयुक्तांस्तान् प्रयत्नेन छित्वा

राजा पाण्ड्यने तेजकियेहुए नौ बाण मारकर अश्वत्थामाके दशमी गतिवाले बाणोंको काटडाला और तुरन्त सामनेसे और चार बाण मारकर अश्वत्थामाके घोड़ोंको बींधदिया, तब वे घोड़े प्राणहीन होकर गिरगये ॥ २३ ॥ तब राजा पांड्यने सूर्यकी समान तेजस्वी अश्वत्थामाके बाणोंको अपने तेज बाणोंसे काट कर उसके धनुषकी लम्बी प्रत्यञ्चाको भी काटडाला ॥ २४ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाला अश्वत्थामा दिव्य धनुषके ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तथा मेरे रथमें सेवकोंने शीघ्र ही दूसरे घोड़े लाकर जोड़दिये, यह देखकर हजारों बाणोंकी वर्षा करनेलगा, जिसने आकाश और दिशाओंके भागको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २५-२६ ॥ तदनन्तर महात्मा अश्वत्थामा जो जो बाण छोड़ने लगा वे सब अक्षय हैं, इस बातको राजा पांड्य जानता था तो भी उस महात्मा राजाने बाण मारकर सामनेको आतेहुए उन बाणोंके भी टुकड़े करडाले ॥ २७ ॥ इस प्रकार

यमकाक्रान्ता लक्ष्यको फोड़कर तुरन्त बाहर निकल आता है और क्षुण्णा गतिवाला बाण लक्ष्यके एक अवयवको तोड़ देता है । दशमी गतिसे माराहुआ बाण धड़परसे मस्तकको उड़ा देता है और यह गति सब गतियोंसे बढ़िया मानी जाती है ।

द्रौणेरिषूनरिः । चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः ॥ २८॥
अथारेर्लाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः । प्रास्यद्द्रोणसुतो बाणान्
वृष्टिं पूषानुजो यथा ॥ २९ ॥ अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदा-
युधम् । अन्हस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष ॥ ३० ॥
तदन्तकमिव क्रुद्धमन्तकल्यान्तकोपमम् । ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः
प्रायशोऽभवन् ॥ ३१ ॥ पर्जन्य इव घर्मान्ते दृष्ट्वा साद्रिद्रुमां महीम् ।
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥ ३२ ॥ द्रौणिपर्ज-
मुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम् । वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य मुदा
पाण्ड्यानिलोनदत् ॥ ३३ ॥ तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरु-

अश्वत्थामाके मारेहुए वाणोंको उद्योगसे काटकर तथा तेज किये हुए वाण मारकर रणमें उसके रथके पहियोंकी रक्षा करनेवाले योधाओंको मारडाला ॥ २८ ॥ राजा पांड्यकी वाण छोड़नेमें बड़ीभारी फुरतीको देखकर अश्वत्थामाने अपने धनुषको अच्छे प्रकारसे खींचकर मण्डलाकार बना लिया और फिर इन्द्रकी समान वाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! आठ २ बैलों-से खेंचे जाने वाले आठ छकड़ोंमें जितने वाण भरे थे, वे सब वाण अश्वथामाने आधे पहरमें निवाड़ दिये ॥ ३० ॥ कालकी समान कोपमें भरा हुआ अश्वत्थामा कालके भी कालकी समान था, जिन २ योधाओंने इस युद्धमें अश्वत्थामाको देखा था वे योधा प्रायः मूर्छितसे होगये थे ॥ ३१ ॥ जैसे वर्षा ऋतुमें मेघ पृथिवीपरके पहाड़, समुद्र, वन आदि सब भागोंमें जल बरसाता है, तैसे ही द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा भी पाण्डवोंकी सब सेनाके ऊपर वाणोंकी वर्षा कर रहा था ॥ ३२ ॥ अश्वत्थामा-रूप मेघ जो वाणोंकी वर्षा कर रहा था, राजा पांड्यरूप पवन बड़े हर्षसे वायव्यास्त्र मारकर उस वाणवर्षाको बखेर रहा था ३३ तदनन्तर अश्वत्थामाने रणमें बड़ी भारी गर्जना की और चन्दन

रूपितम् । मलयमतिमं द्रौणिश्छित्वाश्वांश्चतुरोऽहनत् ॥ ३४ ॥ सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम् । धनुश्छित्वार्द्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद्रथम् ॥ ३५ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य छित्वा सर्वायुधानि च । प्राप्तमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे कर्णो गजानीकमुपाद्रवत् । द्रावयामास स तदा पांडवानां महद्बलम् ॥ ३७ ॥ विरथान्रथिनश्चक्रे गजानश्वांश्च भारत । योधान् बहुभिरानर्च्छच्छरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३८ ॥ अथ द्रौणिमहेष्वासः पांड्यं शत्रुनिवर्हणम् । विरथे रथिनां श्रेष्ठं नाहनद्युद्धकांक्षया ॥ ३९ ॥ हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पितस्त्वरा-

---

तथा अगरसे चर्चित मलयाचलकी समान उसकी ध्वजाको काट डाला और फिर उसके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥ ३४ ॥ फिर एक बाणसे सारथीको मारकर और अर्धचन्द्राकार बाणसे महामेघकी समान गम्भीर शब्द करनेवाले धनुषको काटकर रथके तिल २ की बराबर टुकड़े करडाले ॥ ३५ ॥ शत्रुके अस्त्रों को अस्त्रोंसे रोककर तथा उसके सब शस्त्रोंको भी काटकर उसको अपने वशमें कर लिया तो भी अश्वत्थामाने युद्ध करनेकी इच्छासे राजा पांड्यको मारा नहीं ॥ ३६ ॥ इस ही समय कर्ण हाथियोंकी सेना पर जाचढ़ा, उस समय उसने पांडवोंकी बड़ी भारी सेनाको रणमेंसे भगादिया ॥ ३७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! महारथी कर्णने रथियोंको रथहीन करदिया, घुड़सवारोंके घोड़े मारडाले, हाथीसवारोंके हाथी मारदिये और नमेहुए पर्ववाले बाण मारकर बहुतसे हाथियोंको घायल करदिया ॥ ३८ ॥ इसी समय शत्रुओंका संहार करनेवाला महारथी राजा पांड्य रथसे शून्य होगया था, उसको महाधनुषधारी अश्वत्थामाने युद्धरूप क्रीड़ा करनेकी इच्छासे मारा नहीं ॥ ३९ ॥ इसी अवसरमें एक शृङ्गार कियाहुआ महाबली हाथी बड़े वेगसे दौड़ता हुआ तहाँ

भिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली । तमाद्रवद् द्रौणिशराहतस्त्वरन् जवेन कृत्वा प्रतिहस्तिगर्जितम् ।४०। तं वारणं वारणयुद्धकोविदो द्विपोत्तमं पर्वतसानुसन्निभम् । तमभ्यतिष्ठन्मलयध्वजस्त्वरन् यथाद्रिशृंगं हरिरुन्नदंस्तथा ॥ ४१ ॥ स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं बलास्त्र-सर्गोत्तमयत्नमन्युभिः । ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन् गजं गुरोः सुता-याद्रिपतीश्वरो नदन् ॥ ४२ ॥ मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः। हतो हतोऽसीत्यसकृन्मुदा नदन् पराभिनद् द्रौणिवराङ्गभूषणम् ॥ ४३ ॥ तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं भृशाभि-पातात् पतितं विचूर्णितम् । महेन्द्रवज्राभिहतं महास्वनं यथाद्रिशृंगं

आपहुंचा. इस हाथीका स्वामी मरगया था, अश्वत्थामाने उसके बाण मारा, इसलिये वह चिंघारता हुआ और बड़े वेगसे दौड़ता हुआ अपने सामनेके राजा पांड्यके ऊपरको झपटने लगा ।४०। जैसे इन्द्र गरजता हुआ पर्वतके शिखर परको चढ़ता चलाजाता है तैसेही हाथीके युद्धमें कुशल राजा पांड्य पर्वतके शिखरकी समान उस बड़े ऊँचे हाथीके सामनेको वेगसे दौड़ा ॥ ४१ ॥ और उसके अंकुश मारकर बड़ीभारी पीड़ा देताहुआ उसके ऊपर चढ़बैठा और फिर बलात्कारसे अस्त्रोंका प्रहार करनेके लिये क्रोधमें भरेहुए मलयराज पांड्यने गरजकर अश्वत्थामाके ऊपर सूर्यकी किरणकी समान चमकताहुआ तोमर एक साथ फेंका ॥ ४२ ॥ अरे मार लिया, मार लिया ! ऐसा हर्षके साथ कोलाहल करके अश्वत्थामाके शिरपरसे सोनेके मुकुटको नीचे गिरादिया, उस मुकुटमें मणियें और उत्तम २ हीरे मढ़ेहुए थे, उत्तम प्रकारके जरीके वस्त्र, फूल और मोतियोंसे उसको सजाया गया था ॥ ४३ ॥ जैसे इन्द्रके वज्रकी चोट पड़नेसे पर्वतका शिखर बड़ाभारी शब्द करता हुआ पृथ्वी पर आपड़ता है और उसके टुकड़े २ होजाते हैं तैसे ही सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और अग्नि

धरणीतले तथा ॥ ४४ ॥ ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना पदाहतो नागपतिर्यथा तथा । समाददे चान्तकदण्डसन्निभानिषूनमित्रार्तिकरांश्चतुर्दश ॥ ४५ ॥ द्विपस्य पादाग्रकरान् स पञ्चभिर्नृपस्य बाहू च शिरोथ च त्रिभिः । जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः स पाण्ड्यराजानुचरान्महारथान् ॥ ४६ ॥ सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषणौ । भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ ॥ ४७ ॥ शिरश्च तत् पूर्णशशिप्रभाननं सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् । क्षितावपि भ्राजति तत् सकुण्डलं विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा ॥ ४८ ॥ स तु द्विपः

की समान कांतिवाला वह मुकुट तोमरकी बड़ीभारी चोटसे खनर शब्द करता हुआ पृथ्वी पर आगिरा और गिरतेही चूरा २ हो गया ॥ ४४ ॥ तब तो जैसे लात मार देनेसे बड़ाभारी सर्प क्रोध के आवेशमें आकर जल उठता है तैसेही क्रोधके मारे अश्वत्थामा के भी तन बदनमें आगसी लगगयी, उसने शत्रुका नाश करने वाले यमदण्डसरीखे चौदह बाण हाथमें लिये ॥ ४५ ॥ और उनमेंसे पाँच बाण मारकर हाथीके पैरकी अंगुलियें काटदीं, तीन बाण मारकर राजा पांड्यके दोनों हाथ और मस्तक को काटदिया तथा बाकीके छः बाण मारकर राजा पांड्यके उत्तम तेजस्वी छः महारथी अनुचरोंको मारडाला ॥ ४६ ॥ लंबे और गोल, सुन्दर चन्दनसे चर्चित, मोती मणि और हीरेसे जड़े सुनहरी आभूषण पहरे राजा पांड्यके वे कटकर गिरेहुए भुजदण्ड पृथ्वी पर ऐसे तड़फने लगे जैसे गरुड़के मारेहुए दो साँप तड़पते हों ॥ ४७ ॥ तथा काटकर गिराया हुआ राजा पांड्यका वह शिरभी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान कान्तिवाले मुखसे दिप रहा था, उसमेंके विशाल नेत्र क्रोधके मारे लाललाल होरहे थे, नासिका ऊँची थी, कानोंमें कुण्डल दमक रहे थे, उन कुण्डलों के मध्यमें वह मुख विशाखा नामके दो नक्षत्रोंके मध्यमें चन्द्रमा

पञ्चभिरुत्तमेषुभिः कृतः षडंशश्चतुरो नृपस्त्रिभिः । कृतो दशांशः कुशलेन युध्यता यथा हविस्तद्दश दैवतं तथा ॥ ४६ ॥ स पादशो राक्षसभोजनान् बहून् प्रदाय पांड्योऽश्वमनुष्यकुञ्जरान् । स्वधामिवाप्य ज्वलनः पितृप्रियस्ततः प्रशान्तः सलिलप्रवाहितः ॥ ५० ॥ समाप्तविद्यन्तु गुरोः सुतं नृपः समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः । सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पाण्ड्यवधे
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि सञ्जय । एकवीरेण कर्णेन द्रावितेषु परेषु च ॥ १ ॥ समाप्तविद्यो

सा मालूम होता था ॥ ४८ ॥ युद्ध करनेमें प्रवीण अश्वत्थामा ने युद्ध करते २ उत्तम पाँच बाण मारकर राजाके छः टुकड़े कर दिये तथा तीन बाण और मारकर फिर चार टुकड़े करदिये, इस प्रकार दश देवताओंके लिये मानो हविके दश भाग कर दिये ॥ ४६ ॥ जैसे श्मशानका अग्नि,शवरूप पिंडको लेकर जल के प्रवाहसे शान्त होजाता है तैसेही राजा पांड्य भी घोड़े, मनुष्य और हाथियोंका संहार करनेके अनन्तर उनका बहुतसा बलिदान राक्षसोंको देकर अश्वत्थामाके बाणोंसे शान्त होगया (मरगया) ॥ ५० ॥ सब विद्याओंके पारगामी गुरुपुत्र अश्वत्थामाने राजा पांड्यको मारकर अपना काम पूरा करदिया तब जैसे बल दैत्यको जीतकर इन्द्रने विष्णुका सत्कार किया था तैसे ही तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अपने मित्रोंसे घिरकर अश्वत्थामा के पास गया और बड़े हर्षके साथ उसका महान् सत्कार किया ॥ ५१ ॥ वीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे सञ्जय ! जब राजा पांड्य मारागया और अद्वितीय वीर कर्णने रणमेंसे शत्रुओंको भगादिया तब अर्जुनने रणभूमिमें क्या किया ? ॥ १ ॥ पांडुपुत्र अर्जुन, बली,

बलवान् युक्तो वीरः स पाण्डवः । सर्वभूतेष्वनुज्ञातः शङ्करेण महात्मना ॥ २ ॥ तस्मान्महद्भयं तीव्रममित्रघ्नाद्धनञ्जयात् । स यत्तत्राकरोत् पार्थस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । हते पाण्ड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम् । पश्यामि नाहं राजानमपयातांश्च पाण्डवान् ॥ ४ ॥ निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् । अश्वत्थाम्नश्च संकल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः ॥ ५ ॥ तथाश्वरथनागानां कृतञ्च कदनं महत् । सर्वमाख्यातवान् वीरो वासुदेवः किरीटिने ॥ ६ ॥ एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद्भयम् । वाहयाश्वान् हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः ॥ ७ ॥ तत प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना । दारुणश्च पुनस्तत्र

वीर, कर्त्तव्य कर्मको जाननेवाला और सम्पूर्ण शस्त्रविद्याको सीखाहुआ है तथा महात्मा शङ्करने उसके ऊपर कृपा करके उसको सब प्राणियोंसे अजेय करदिया है ॥ २ ॥ हे सञ्जय ! शत्रुका नाश करनेवाले ऐसे धनंजयसे मुझे महातीव्र भय रहता है इसलिये उसने रणभूमिमें जो पराक्रम किया हो वह मुझे सुनाइ सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! राजा पांड्यके मारेजाने पर श्रीकृष्णने तुरन्तही अर्जुनसे हितकारी बात कही, कि राजा युधिष्ठिरको और लौटकर आयेहुए पांडवोंको मैं नहीं देख रहा हूँ ॥ ४ ॥ जब पांडव पीछेको लौटे थे तब शत्रुकी बड़ीभारी सेनामें भागड़ पड़गयी थी और अश्वत्थामाके कहनेसे कर्णने सृञ्जयोंका संहार किया था ॥ ५ ॥ तथा उसने घोड़े, रथ, हाथी और उनपर बैठनेवालोंका भी कचर घांस करडाला, वीर वासुदेवने अर्जुनसे यह बात कही ॥ ६ ॥ यह सब सुनकर तथा अपने भाइयोंके ऊपर महाघोर भय आयाहुआ देखकर अर्जुन ने चिन्तामें पड़कर श्रीकृष्णसे कहा, कि—हे हृषीकेश ! आप शीघ्रही घोड़ोंको हाँकिये ॥ ७ ॥ हृषीकेशने तुरन्त ही जिसके सामने आकर कोई योधा लड़ायीमें नहीं ठहर सकता ऐसे रथ

प्रादुरासीत् समागमः ॥ ८ ॥ ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरु-
पाण्डवाः । भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ ६ ॥ ततः
प्रवृत्ते भूयः संग्रामो राजसत्तम । कर्णस्य पांडवानाञ्च यमराष्ट्र-
विवर्द्धनः ॥ १० ॥ धनूंषि बाणान् परिघानसितोमरपट्टिशान् ।
मुसलानि भुशुंडीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान् ॥ ११ ॥ गदाः
प्रासान् शितान् कुन्तान् भिन्दिपालान्महांकुशान् । प्रगृह्य क्षिप्रमा-
पेतुः परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥ बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः
प्रदिशो वियत् । पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान् ॥ १३
तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चक्रुराहवम् । वीरा वीरैर्महाघोरं कल-
हान्तं तितीर्षवः ॥ १४ ॥ ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणाञ्च

को आगेको बढ़ाया, परन्तु आगे बढ़तेही फिर कौरवोंके साथ
दारुण संग्रामका अवसर आपड़ा ॥ ८ ॥ फिर कौरव और पांडव
निर्भय होकर जुटगये, उस समय पांडवोंकी सेनाका नेता भीम
और हमारी सेनाका नेता कर्ण था ॥ ६ हे राजसत्तम ! कर्ण
और पांडवोंमें, यमराजके लोकको बढ़ानेवाला युद्ध फिर आरंभ
होगया ॥ १० ॥ धनुष, बाण, परिघ, तलवार, पट्टिश, तोमर,
मूसल, भुशुण्डी, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, गदा, प्रास, तेज कियेहुए
भाले, भिन्दिपाल और बड़े २ अंकुशोंको हाथमें लेकर योधा एक
दूसरेका नाश करनेकी इच्छासे आपसमें जुटगये ॥ ११ ॥ १२ ॥
योधा बाणोंकी टङ्कारोंसे, धनुषोंके रोदोंकी झङ्कारोंसे तथा
हथेलियोंकी तालोंसे स्वर्ग, दिशायें और कोनोंको तथा
आकाशको एवं रथके पहियोंकी घरघराहटसे पृथ्वीको शब्दाय-
मान करते हुए शत्रुओंके ऊपर टूटपड़े ॥ १३ ॥ और बड़ाभारी
कोलाहल करके मनमें प्रसन्न होतेहुए वीर पुरुष, महाभयानक
कलहके पार होनेकी इच्छासे वीर योधाओंके साथ लड़नेलगे १४
उस समय रणमें धनुषोंके रोदोंका, हाथोंमें पहरे हुए चमड़ेके

बृंहताम् । पादातानाञ्च पततां नृणां नादो महानभूत् ॥ १५
तालशब्दांश्च विविधान् शूराणाञ्चाभिगर्जताम् । श्रुत्वा तत्र
भृशं त्रेसुः पेतुर्मम्लुश्च सैनिकाः ॥ १६ ॥ तेषां निनदताञ्चैव
शस्त्रवर्षञ्च मुञ्चताम् । बहूनाधिरथिर्वीरः ममर्दाशेषुभिः परान् १७
पञ्च पञ्चालवीराणां रथान् दश च पञ्च च । साश्वसूतध्वजान्
कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १८ ॥ योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां
कर्णमाहवे । शीघ्रस्त्रास्तूर्णमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ १९ ॥
ततः कर्णो द्विपत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन् । विजगाहाण्डजाकीर्णां
पद्मिनीमिव यूथपः ॥ २० ॥ द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरु-
त्तमम् । विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयन् ॥ २१ ॥

मोर्जोका, चिंघारते हुए हाथियोंका, रणमें नीचे गिरतेहुए पैदल सैनिकोंका तथा देखनेवालोंका बड़ा कोलाहल होरहा था ॥१५॥ गर्जना करतेहुए वीर पुरुषोंकी ललकारोंको सुनकर तथा वीरोंके भाँति २ के शब्दोंको सुनकर योधा बहुतही डरगये और उदास होकर भूमिपर गिरेजाते थे ॥ १६ ॥ गर्जना करते और शस्त्रों की वर्षा करनेवाले योधाओंके बीचमें रहकर लड़तेहुए महारथी वीर कर्णने बाणोंसे बहुतसे वीरोंका संहार करडाला ॥ १७ ॥ इतनाही नहीं, किन्तु उसने बाणोंकी मारसे पंचाल देशके पाँच महारथियोंको मारडाला तथा उनके घोड़े सारथी और ध्वजाओं के सहित पन्द्रह रथ तोड़डाले ॥ १८ ॥ बड़ेही वेगसे अस्त्र छोड़नेवाले पांडवोंके वीर योधाओंने उस समय रणमें कर्णको चारों ओरसे घेरलिया ॥१९॥ तब जैसे हाथियोंकी थाँगका स्वामी अनेकों जलचरोंसे भरेहुए छोटेसे तालावको घँघोल डालता है, तैसेही कर्णने भी बाणोंकी वर्षा करके शत्रुकी सेनाको विलोड़ डाला ॥ २० ॥ और शत्रुओंकी सेनाके भीतर घुसकर बड़े भारी धनुषको हिलाने लगा तथा तेज कियेहुए बाण मारकर शत्रुओंके शिरोंको काट २ कर भूमिपर गिराने लगा ॥ २१ ॥

चर्मवर्माणि संछिन्ना व्यपतन् भुवि देहिनाम् । विषेहुर्नास्य संस्पर्शं द्वितीयस्य पतत्रिणः ॥ २२ ॥ वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः प्रच्युतैः शरैः । मौर्व्या तलत्रेऽभ्यहनत् कशया वाजिनो यथा ॥ २३ ॥ पाण्डुसृञ्जयपञ्चालान् शरगोचरमागतान् । ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव ॥ २४ ॥ ततः पञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष । यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः ॥ २५ ॥ तेषु व्यायच्छमानेषु कुरुपाञ्चालपाण्डुषु । प्रियानसून् रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम् ॥ २६ ॥ सुसन्नद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः । गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः ॥ २७ ॥

उस समय योधाओंके कवच और ढालें कट २ कर भूमिपर गिरने लगे, वे कवच और ढालें कर्णके दूसरे बाणकी मारको नहीं सहसकते थे अर्थात् एकही प्रहारमें कटजाते थे ॥ २२ ॥ जैसे घुड़सवार चाबुक मारकर घोड़ेको चौंकादेता है, तैसेही कर्ण भी कवचोंका, शरीरोंका और प्राणोंका नाश करनेवाले बाण धनुषकी डोरीमेंसे छोड़कर, धनुषकी डोरीके घावको रोकनेवाले चमड़ेके मोजेको काटताहुआ सेनाको चौंकाने लगा कि-जिससे योधा धनुष पर फिर बाण न चढ़ासकें ॥ २३ ॥ जैसे सिंह मृगों की टोलियोंको मारडालता है, तैसेही कर्ण एकायकी बाणोंके झपाटेमें आये हुए पांडव, सृञ्जय और पंचालोंका नाश करने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उस समय पंचाल देशके राजे, द्रुपदके पुत्र, नकुल, सहदेव और युयुधान ये सब इकट्ठे होकर कर्ण के ऊपर जाचढ़े ॥ २५ ॥ उन कौरव, पांचाल और पांण्डवोंके उद्योग करने पर योधा परस्पर एक दूसरेके ऊपर प्रहार करके प्यारे प्राणोंको त्यागने लगे ॥ २६ ॥ वे महाबली योधा शरीरों पर कवच और शिरों पर टोप धारण कियेहुए थे, उनमेंसे कितनेही कालदण्डकी समान गदाओंको, कितनेही मूसलोंको

समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः । नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रव्-
ल्गन्तश्च मारिष॥२८॥ततो निजघ्नुरन्योऽन्यं पेतुश्चान्योऽन्यताडिताः ।
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विमस्तिष्केक्षणायुधाः ॥ २९ ॥ दन्तपूर्णैः
सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसन्निभैः । जीवन्त इव चाप्येके तस्थुः शस्त्रो-
पबृंहिताः ॥ ३० ॥ परश्वधैश्चाप्यपरे पट्टिशैरसिभिस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च नखरप्रासतोमरैः ॥ ३१ ॥ ततक्षुश्चिच्छि-
दुश्चान्ये बिभिदुश्चिक्षिपुस्तथा । सञ्चकर्तुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा
रणमहार्णवे ॥ ३२ ॥ पेतुरन्योऽन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः ।

तथा कितनेही परिघोंको घुमाते २ रणभूमिमें गरजते हुए दौड़ रहे थे,अभिमानके वचन बोलतेहुए एक दूसरेको लड़नेके लिये पुकार रहे थे२७॥२८॥कितनी ही देरतक ऐसी बातोंका युद्ध होना रहा,फिर एक दूसरेको मारने लगे, परस्परकी मारसे गिरने लगे उन मेंसे कितनोंही के शरीरोंमेंसे रुधिर टपक रहा था, किन्हींके शिर फटगये थे, किन्हींकी आँखे फूटगयीं थीं, और किन्हींके शस्त्र कट गये थे ॥ २९ ॥ जो योधा भूमिपर पड़ेहुए थे, उनके रुधिरसे भरे दाँत चायेहुए मुख फटी हुई दाड़िमीसे मालूम होते थे कितने ही शस्त्र धारण किये मरे पड़े हुए योधा जीवित से मालूम होते थे ॥ ३० ॥ कितनेही योधा फरसोंसे शत्रुओंको काटरहे थे, कितनेही पट्टिशों और तलवारोंसे शत्रुओंको फाड़रहे थे, कोई शक्तियोंसे वैरियोंको चीररहे थे, कोई भिंदिपालोंसे शत्रुओंको कुचल रहे थे, कोई बाघनखरो शत्रुओंको फाड़रहे थे और कितनेही प्रासोंसे तथा तोमरोंसे शत्रुओंका नाश कररहे थे, इस प्रकार क्रोधमें भरेहुए योधा रणरूप महासागरमें शत्रुओंका संहार कररहे थे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ परस्परके प्रहारसे प्राणहीन और रुधिर से न्हाकर गिरते हुए योधा लाल और चमकीले रसको टपकानेवाले काटेहुए लालचन्दनके वृक्षसे मालूम होते

क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रफुल्लाश्चन्दना इव ॥ ३३ ॥ रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः । नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥ ३४ ॥ ध्वजाः शिरांसि छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः । क्षुरैर्भल्लार्द्धचन्द्रैश्च छिन्नाः पेतुर्महीतले ॥ ३५ ॥ नरांश्च नागान् सरथान् हयान् ममृदुराहवे । अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः ॥ ३६ ॥ सपताका ध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः । पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा ॥३७॥ हताश्च हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः । अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ॥ ३८ ॥ सादिभिः पत्तिसंघाश्च निहता युधि शेरते । मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः ॥ ३९ ॥

थे ॥ ३३ ॥ रथियोंके मारेहुए रथी, हाथियोंके मारेहुए हाथी पैदलोंके मारेहुए पैदल और घोड़ोंके मारेहुए घोड़े सहस्रों गिर रहे थे ॥ ३४ ॥ रथोंकी ध्वजायें, योधाओंके शिर, छत्र, मनुष्यों की भुजायें और हाथियोंकी सूँड़ें, छुरे, भाले तथा अर्धचन्द्राकार बाणोंसे कटकर भूमिपर गिरनेलगे ॥ ३५ ॥ योधा रणमें महावतों सहित योधाओंका हाथियोंका, सवारों सहित घोड़ों का और रथियों सहित रथोंका कचरधाँस करनेलगे, घुड़सवार वीरोंको मारने लगे, और हाथियोंकी सूँड़ें काटनेलगे ॥ ३६॥ पैदलोंने उछलकर हाथियोंके और रथोंके ऊपर प्रहार किया, वे ध्वजा और पताकाओंके सहित विशीर्णहुए पर्वतोंकी समान गिर गये ॥ ३७ ॥ प्राणहीन हुए और घायल हुए योधा सर्वत्र पड़ेहुए थे, बडे वेगमें भरे हुए घुड़सवारोंको पैदलोंने सामनेसे आकर मार डाला ॥ ३७ ॥ और घुड़सवारोंके साथ लड़ते हुए पैदल भी मरकर रणभूमिमें लुड़कगये, इस महायुद्धमें मरेहुए योधाओंके मस्तक कुचले हुए कमलोंकी समान निस्तेज होरहे थे और शरीर कुमलायीं हुईं पुष्पमालाओंकी समान म्लान होरहे थे॥३९॥

हतानां वदनान्यासन् गात्राणि च महाहवे । कनाखवत्यर्थकान्तानि द्विरदाश्वनृणां नृप । समुन्नानीव वस्त्राणि ययुर्दुर्दर्शतां पराम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सञ्जय उवाच । हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः । धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥ १ ॥ प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः । अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २ ॥ मेकलाः कोसला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा । गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥ ३ ॥ शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः । सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे ॥ ४॥ तान्संमिमर्दिषुन् नागान् पार्ष्ण्यङ्गुष्ठांकुशैर्भृशम् । चोदितान् पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृषत् ॥ ५ ॥ एकैकं दशभिः

हे राजन् ! इन हाथीसवार, घुड़सवार और पैदलोंके मुख बड़े ही मनोहर थे, परन्तु खारमें पड़नेसे मलिन हुए वस्त्रोंकी समान इस समय बड़ेही घिनौने होगये थे॥४०॥इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त

संजयने कहा, कि–हे महाराज! तुम्हारे पुत्रकी प्रेरणासे बड़े२ महारथी महावत, पृषत्के पुत्र धृष्टद्युम्नका नाश करनेके लिये क्रोधमें भरेहुए हाथियों पर बैठकर उसके साथ लड़नेको गये॥१॥ हे राजन् ! हस्तियुद्धमें प्रवीण पूर्व, दक्षिण, अङ्ग, वङ्ग,पुंड्र,मगध और ताम्रलिप्त देशके योधा मेकल, कोशल, मद्र, दशार्ण कलिङ्ग और निषध देशके योधा जैसे मेघ जलकी वर्षा करते हैं वैसे ही ये सब रणभूमिमें पांचालोंकी सेनाके ऊपर बाण ,तोमर और नाराचोंकी वर्षा करने लगे ॥ २–४ ॥ और संहार करना चाहने वाले हाथियोंको पैरोंकी एड़ी, अंगूठे और अंकुशोंसे अच्छे प्रकारसे हाँककर पृषत्कुलके राजाकी ओरको लेगये, उस समय धृष्टद्युम्न उन हाथियोंके ऊपर बाणोंकी और नाराचोंकी वर्षा

षड्भिरष्टाभिरपि भारत। द्विरदानभिविव्याध क्षिप्तैर्गिरिनिभाञ्छरैः ॥ ६ ॥ प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम्। प्रययुः पाण्डुपाञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः ॥ ७ ॥ तान्नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीतलनादितैः।वीरनृत्यं प्रनृत्यन्तः शूरतालप्रचोदितैः॥ नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ८ ॥ सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान् । समन्तात्सिषिचुर्वीरा मेघास्तोयैरिवाचलान् ॥ ९ ॥ ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान् रथानपि । हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥ १० ॥ बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः।

करने लगा ॥ ५ ॥ हे भरतवंशी राजन ! पहाड़ोंकी समान ऊँचे एक२ हाथीके दश२ छः२ और आठ२ बाण मारकर वह घायल करने लगा ॥ ६ ॥ जैसे मेघ सूर्यको ढकदेते हैं, ऐसेही हाथियों की धाँगोंने धृष्टद्युम्नको चारों ओरसे घेरकर ढकदिया, यह देखते ही पाण्डव और पांचाल तेज कियेहुए बाण लेकर रणभूमिमें आपहुंचे ॥ ७ ॥ और धृष्टद्युम्नको घेर लेनेवाले उन हाथियोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, प्रत्यञ्चारूप वीणाको बजाने लगे, वीर पुरुष नृत्य करने लगे और वीर पुरुष तालियोंकी ताल देकर उनको उत्साह देने लगे, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकी, शिखण्डी, पराक्रमी चेकितान ये सब वीर पुरुष,जैसे मेघ जलसे पर्वतोंको भिगोते हों, तैसे ही सामने के योधाओंको चारों ओरसे बाणवर्षा करके ढकने लगे ।८॥९। म्लेच्छ महावतोंने उन मदमत्त हाथियोंको शत्रुओंके ऊपरको छोड़ दिया, वे हाथी मनुष्योंको, रथोंको, घोड़ोंको तथा दूसरे योधाओंको शूंडोंसे घसीटकर बड़े क्रोधके साथ पैरोंसे कुचलने लगे१० वे पकड़े हुए योधाओंको दाँतोंकी नोकोंसे चीरनेलगे और शूंडोंसे ऊपर को पटकने लगे, उस समय कितने ही योधा जो

विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥ ११ ॥ प्रमुखे वर्तमा-
नन्तु द्विपमङ्गस्य सात्यकिः । नाराचेनोग्रवेगेन भित्वा मर्माण्य-
पातयत् ॥ १२ ॥ तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः ।
नाराचेनाहनद्वक्षः सात्यकिः सोऽपतद्भुवि ॥ १३ ॥ पुण्ड्रस्या-
पततो नागं चलन्तमिव पर्वतम् । सहदेवः प्रयत्नात्तैर्नाराचैरहन-
त्त्रिभिः ॥ १४ ॥ विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम् । तं
कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्ययात् ॥ १५ ॥ सहदेवं तु नकुलो
वारयित्वाङ्गमार्दयत् । नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन तम् १६
दिवाकरकरप्रख्यानंगश्चिक्षेप तोमरान् । नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधै-
कैकन्तु सोऽच्छिनत् ॥ १७ ॥ तथार्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद

हाथियोंके दाँतोंमें उलझ कर रहगये थे और भयानक दीखरहे थे वे
भूमि पर गिरनेलगे ११ तदनन्तर सात्यकीने अपने सामने खड़ेहुए
अङ्गदेशके राजाके हाथीको उग्रवेगवाले बाण मारकर उसके मर्म-
स्थानोंको चीरडाला ॥ १२ ॥ अङ्गराजने सात्यकीके प्रहारको
चुकाकर अपने शरीरकी रक्षा की और वह हाथी परसे नीचे
उतरनेको हुआ, इतनेमें ही सात्यकीने बाण मारकर उसकी छाती
को फोड़दिया, और वह पृथ्वी पर गिरगया ॥ १३ ॥ इतनेमेंही
मानो पर्वत चल रहा हो, ऐसा दीखनेवाला राजा पुण्ड्रका हाथी
लड़नेके लिये आपहुंचा, सहदेवने उद्योग करके उसके तीन बाण
मारे ॥ १४ ॥ और उस हाथीकी पताका, महावत, कवच, ध्वजा
और प्राणको नष्ट करके सहदेव फिर अङ्गराजकी ओरको झपटा १५
परन्तु नकुलने सहदेवको आगे जानेसे रोकदिया, उसने स्वयंही
यमराजके दण्डकी समान तीन बाण अङ्गराजके मारे और उसके
हाथीके सौ बाण मारे ॥ १६ ॥ अङ्गराजने सूर्यकी किरणोंकी
समान चमकते हुए एक सौ आठ तोमर नकुलके मारे, नकुलने
उनमेंसे हरएकके तीन २ टुकडे करडाले ॥ १७ ॥ फिर नकुलने

पाण्डवः। स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना॥ १८ ॥ अथाङ्गपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे। अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः॥ १९॥ चलत्पताकैः सुमुखैः हेमकक्षातनुच्छदैः। मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः॥ २०॥ मेकलोत्कलकालिंगा निषधास्ताम्रलिप्तकाः। शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः॥ २१॥ तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः। परिपेतुः सुसंरब्धा पाण्डुपाञ्चालसोमकाः॥ २२ ॥ ततस्तदभवद् युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह। सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः २३ नागानां प्रास्फुटन् कुम्भा मर्माणि विविधानि च। दन्ताश्चैवातिविद्धानां नाराचैर्भूषणानि च।२४।तेषामष्टौ महा-

अर्धचन्द्र बाणसे उसका शिर काटदिया वह म्लेच्छ मरकर उस हाथीके साथही गिरपड़ा॥ १८॥ हस्तियुद्धमें प्रवीण अङ्गदेशके राजकुमारके मारेजाने पर अङ्गदेशके बड़े२ महावत क्रोधमें भरगये और हाथियोंके द्वारा नकुलके ऊपर धावा करदिया॥ १९ ॥ उन हाथियोंके ऊपर पताकायें फहरा रही थीं, उनके मुख मनोहर थे, उन पर सुनहरी रस्सियें और झूलें कसीहुई थीं, ऐसे जलते हुए पर्वतोंकी समान हाथियोंके द्वारा नकुलका नाश करने की इच्छासे शीघ्रतासे धावा करदिया॥ २०॥ मेकल, उत्कल कलिङ्ग, निषध, ताम्रलिप्त आदि देशोंके राजे नकुलको मारडालने की इच्छासे चारों ओरसे बाणों और तोमरोंकी वर्षा करनेलगे।२१। जैसे बादल सूर्यको ढकदेते हैं तैसेही उन्होंने नकुलको ढकदिया, उसी समय पांडव, पांचाल और सोमकवंशके राजे क्रोधमें भरकर चारों ओरसे चढ़आये॥ २२ ॥ तदनन्तर रथियोंका हाथियोंके साथ घोर युद्ध हुआ वे रथी सहस्रों बाणोंकी और तोमरोंकी वर्षा करने लगे॥ २३ ॥ उस बाणोंकी मारसे हाथियोंके गण्डस्थल और मर्मस्थान घायल होगये, उनके दाँत और गहने टूटगये २४

नागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः । सहदेवो जघानाशु तेऽपतन्सह
सादिभिः ॥२५॥ अञ्जोगतिभिरायम्य प्रयत्नाद्धनुरुत्तमम् । नारा-
चैरहनन्नागान्नकुलः कुलनन्दनः ॥ २६ ॥ ततः पाञ्चाल-
शैनेयौ द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः । शिखण्डी च महानागान् सिषिचुः
शरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥ ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः ।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः ॥२८॥ एवं हत्वा तव गजांस्ते
पाण्डरथकुञ्जराः । द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम् ॥२९॥
तां ते सेनां समालोड्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः । विक्षोभयित्वा च
पुनः कर्णं समभिदुद्रुवुः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

उनमेंसे बड़े२ आठ हाथियोंके सहदेवने बड़े ही तेज चौंसठ बाण मारे, तब वे हाथी उसी समय सवारों सहित ढहपड़े ॥ २५ ॥ कुलको आनन्द देनेवाले नकुलने उद्योगके साथ उत्तम धनुषको खेंचकर सीधी गतिवाले बाणोंसे अन्य हाथियोंको मारडाला २६ तदनन्तर पंचालोंके सरदार, सात्यकी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक और शिखण्डीने बाणोंकी वर्षासे बड़े२ हाथियोंको भरदिया २७ इस समय पांडवोंके योधारूप घनघटाओंने शत्रुओंके हाथीरूप पर्वतोंके ऊपर बाणरूप जलकी मूसलधार वर्षा करना आरंभ करदी, तब तो जैसे वज्रकी वर्षासे पर्वत गिरते हों तैसेही हमारे हाथी गिरनेलगे ॥२८॥ इसप्रकार पांडवोंके महारथियोंके हाथियों ने तुम्हारे हाथियोंका नाश करडाला और जैसे किनारा टूट जानेसे नदी चारों ओरको बहने लगती है, तैसेही तुम्हारी सेना रणमेंसे जल्दी२ भागने लगा, यह देखकर ॥ २९ ॥ पाण्डवोंके योधाओंने तुम्हारी सेनाको विलोड़कर भयभीत करडाला और फिर कर्णके ऊपर जाचढ़े ॥ ३० ॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त २२

सञ्जय उवाच । सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं वाहिनीं तव । दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात् ॥ १ ॥ तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः। सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह २ ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना । पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ॥ ३ ॥ सहदेवस्ततो राजन्नाराचेन तवात्मजम् । विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिञ्च त्रिभिः शरैः ॥ ४ ॥ दुःशासनस्ततश्चापं छित्वा राजन् महाहवे । सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥ सहदेवस्तु संक्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे । आविध्य प्रासृजत्तूर्णं तव पुत्ररथं प्रति ॥ ६ ॥ समार्गणगुणं चापं छित्वा तस्य महानसिः । निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात् ॥७॥ अथान्यद्धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान् । दुःशा-

---

सञ्जय कहता है, कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! जब सहदेव क्रोधमें भरकर तुम्हारी सेनाको दिक्क करनेलगा तब दुःशासन सहदेवके सामने जापहुंचा-भाईने भाईके ऊपर धावा किया ॥१॥ इस महायुद्धमें दोनों भाइयोंको लड़तेहुए देखकर महारथी सिंह की समान गर्जना करनेलगे और अपने वस्त्रोंको उड़ानेलगे॥२॥ हे भारत ! फिर तुम्हारे पुत्रने क्रोधमें भरकर धनुष उठाया और बलवान् पांडुपुत्रकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ ३ ॥ तब हे राजन् ! सहदेवने तुम्हारे पुत्रके सत्तर बाण मारकर उसके सारथीके तीन बाण मारे ॥ ४ ॥ हे राजन् ! फिर दुःशासनने उस महायुद्धमें सहदेवके धनुषको काटकर तिहत्तर बाण सहदेवकी भुजा और छाती पर मारे ॥ ५ ॥ तब तो सहदेव बड़े क्रोधमें भरगया और उस महारणमें तलवार लेकर घुमाने लगा और बड़ी फुरतीसे तुम्हारे पुत्रके रथपर फेंकी ॥ ६ ॥ वह बड़ीभारी तलवार दुःशासनके प्रत्यंचासहित धनुषको काटकर आकाशमेंसे जैसे साँप नीचे गिरता हो तैसे भूमिपर आपड़ी ॥ ७ ॥ तब तो प्रतापी सह-

सनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः ॥ ८ ॥ तमापतन्तं विशिखं यम-
दण्डोपमं त्विषम् । खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः ९
ततस्तं निशितं खड्गमाविध्य युधि सत्वरः । धनुश्चान्यत्समादाय
शरं जग्राह वीर्यवान् ॥१०॥ तमापतन्तं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः
शरैः । पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव ॥ ११ ॥ ततो
बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे । सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास
भारत ॥ १२ ॥ तान्शरान् समरे राजन् वेगेनापततो बहून् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत ॥ १३ ॥ स निवार्य्य
महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान् । अथास्मै सुबहून् बाणान् प्रेषया-
मास संयुगे ॥ १४ ॥ तान् बाणांस्तव पुत्रोऽपि छित्त्वैकैकं त्रिभिः
शरैः । ननाद सुमहानादं नादयानो वसुन्धराम् ॥१५॥ ततो दुःशा-

देवने दूसरा धनुष उठाया और दुःशासनके ऊपर प्राणान्तकारी
बाण छोड़ा ॥ ८ ॥ यमराजके दण्डकी समान दमकता हुआ वह
बाण जब दुःशासनकी ओरको गया तब दुःशासनने तेज धार
वाली तलवारसे उसके टुकड़े करदिये॥९। तदनन्तर दुःशासनने तेज
तलवार रणमें घुमाकर सहदेवके मारी और फिर फुरतीले
तथा पराक्रमी उस कौरवने दूसरा धनुषबाण हाथमें लिया॥१०।
सहदेवने मुसकुराते हुए तेज बाण मारकर अपनी ओरको आती
हुई उसकी तलवारको फुरतीसे तोड़ गिराया ॥ ११॥ हे भारत !
तब तुम्हारे पुत्रने महायुद्धमें सहदेवके रथके ऊपर तुरन्त चौंसठ
बाणमारे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इस संग्राममें दुःशासनके बाण
बड़े वेगसे सहदेवके रथके ऊपरको आरहे थे, सहदेवने पाँच२
बाण मारकर हरएक बाणके टुकड़े करडाले ॥ १३ ॥ सहदेवने
तुम्हारे पुत्रके फेंकेहुए बाणोंको नष्ट करनेके अनन्तर संग्राममें
तुम्हारे पुत्रके ऊपर बहुतसे बाण छोड़े ॥ १४ ॥ और तुम्हारे
पुत्रोंने भी तीन बाणोंसे उसके हरएक बाणको काटडाला और
फिर बड़ीभारी गर्जना की, जिससे पृथिवी दहलने लगी ॥१५॥

सनो राजन् विध्वा पांडुसुतम् रणे । सारथिं नवभिर्बाणैर्माद्रेयस्य समार्पयत् ॥ १६ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान् । समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम् ॥ १७ ॥ विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत् । स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत् ॥ १८ ॥ प्राविशद्धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः । ततः स मुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः ॥ १९ ॥ मूढञ्चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम् । अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः ॥ २० ॥ पराजित्य रणे तन्तु कौरव्यं पांडुनन्दनः । दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः ॥२१॥ पिपीलिकपुटं राजन्

हे राजन् ! तदनन्तर दुःशासनने रणमें सहदेवको घायल करके उसके सारथीके नौ बाण मारे ॥१६॥ हे महाराज ! तब तुरन्त प्रतापी सहदेव कोपमें भरगया, उसने कालके भी काल समान महाभयानक बाणको हाथमें लिया ॥१७॥ तथा धनुषकी डोरीको जोरसे खेंचकर उसके ऊपर बाण चढ़ाया और वह बाण तुम्हारे पुत्रके मारा, उस बाणने वेगके साथ तुम्हारे पुत्रके बड़े भारी बखतरको तोड़दिया, तुम्हारे पुत्रके शरीरको भी फोड़दिया और फिर जैसे सर्प बमईमें घुसता है तैसे हे राजन् ! वह बाण भूमि में घुसगया, हे राजन् ! तुम्हारे महारथी पुत्रको मूर्छित हुआ देखकर उसका सारथी तेज बाणोंकी मार खाता हुआ बड़ा ही भयभीत होरहा था तो भी एकसाथ उसके रथको रणमेंसे दूर लेगया ॥ १८-२० ॥ इसप्रकार सहदेवने युद्धमें दुःशासनको हरादिया और फिर दुर्योधनकी सेनाको देखकर चारों ओरसे उसका नाश करनेलगा ॥ २१ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! जैसे मनुष्य क्रोधमें भरकर चींटियोंके भट्टोंको नष्ट करडाले तैसे

यथा मृद्नन्नरो रुपा। तथाऽस्ता कौरवी सेना मृदिता तेन भारत२२
इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सहदेवदुःशासनयुद्धे
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच। नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम्। कर्णो वैकर्त्तनो राजन् वारयामास वै रुपा ॥ १ ॥ नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत्। चिरस्य वत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्यचक्षुपा २ यस्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम्। त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ॥ ३ ॥ त्वद्दोपात् कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम्। त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥ ४ ॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः। सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेपतः ॥ ५ ॥ प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम्।

ही सहदेव कौरवोंकी सेनाका नाश करने लगा ॥ २२ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ छ ॥ छ ॥

संजय कहता है. कि–हे राजन् धृतराष्ट्र! जब युद्धका उत्साही नकुल रणमें कौरवसेनाको भगानेलगा तब सूर्यके पुत्र कर्णने क्रोधमें भरकर उसको रोका ॥ १ ॥ तब नकुलने हँसते२ कर्णसे कहा, कि–आज दैववश बहुत दिनोंमें तुझे अपने शान्तनेत्रसे देखा है, यह बड़े आनन्दकी बात है ॥ २ ॥ अरे पापी! आज तू रणमें मेरे पराक्रमको देखना, तु ही सब अनर्थोंकी, वैरकी और कलहकी जड़ है ॥ ३ ॥ अरे! तेरे ही अपराधसे सब कौरव आपसमें लड़कर नष्ट होगये, इसलिये मैं आज रणमें तुझे मारकर कृतकृत्य और निश्चिन्त होऊँगा ॥४॥ इसप्रकार कर्णसे कहा, तब उसने नकुलको उत्तर दिया, कि–अरे राजकुमार! एक राजकुमारको और विशेपकर धनुपधारीको ऐसाही करना चाहिये ५ हे वीर! तू पहले मेरे ऊपर प्रहार कर, तब मैं तेरे पराक्रमको देखूँगा, अरे शूर! जब रणमें कुछ पराक्रम कर दिखावे तब

कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥ ६ ॥ अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः । स युध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते ॥७॥ इत्युक्त्वा प्राहरत्तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः । विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥ नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत । अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥ ९ ॥ तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः । त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पांडवमार्दयत् ॥ १० ॥ ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे । आशीविषा यथा नागा भित्त्वा गां सलिलं पपुः ११ अथान्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् । कर्णं विव्याध सप्तत्या सारथिञ्च त्रिभिः शरैः १२ ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा । क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् १३ अथैनं छिन्नधन्वानं

अपनी प्रशंसा करना ॥ ६ ॥ हे तात ! जो शूर होते हैं वे कुछ कहते नहीं, किन्तु शक्तिके अनुसार युद्ध करके अपना पराक्रम दिखाते हैं ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर कर्णने रणभूमिमें नकुलको एक साथ तिहत्तर बाण मारकर बींधदिया ॥ ८ ॥ हे भारत ! जब कर्णने नकुलको बींधदिया तब उसने भी कर्णके विषधर सर्पोंकी समान अस्सी बाणमारकर घायल करदिया ॥ ९ ॥ तब बड़े धनुषवाले कर्णने सान पर धरकर तेज कियेहुए और सोनेके परों वाले बाणमारकर नकुलके धनुषको काटडाला और नकुलके तीस बाणमारे ॥ १० ॥ इस समय जैसे विषधर सर्प पृथिवीको फोड़कर नीचेका जल पीते हैं तैसे ही रणभूमिमें उन बाणोंने भी नकुलके कवचको चीरडाला और उसके शरीरमेंके रुधिरको पीनेलगे ॥ ११ ॥ तब नकुलने सोनेकी पीठवाले और जिसको कोई भी न तोड़सके ऐसे दूसरे धनुषको लेकर कर्णके सत्तर और उसके सारथीके तीन बाण मारे ॥ १२ ॥ और फिर क्रोध में भरे हुए शूर, शत्रुका नाश करनेवाले नकुलने, हे महाराज !

सायकानां शतैस्त्रिभिः । आजघ्ने प्रहसन् वीरः सर्वलोकमहारथम् । कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष । विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥१४॥१५॥ अथान्यद्धनुरादाय कर्णो वैकर्त्तनस्तदा । नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १६ ॥ तत्रस्थैरथ बाणैस्तैर्माद्रीपुत्रो व्यशोभत । स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन् प्रभाम् ॥ १७ ॥ नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः । अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥ १८ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम् । नकुलस्य ततो बाणैः समन्ताच्छादयद्दिशः ॥ १९ ॥ संच्छाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः । चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥ २० ॥ ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्नि दृश्यते । खद्योतानामिव व्रातैः

बड़े ही तीखे और क्षुरप्र नामके एक बाणसे कर्णके धनुषको काटडाला ॥१३॥ उसके धनुषको काटनेके अनन्तर वीर नकुलने, सब लोगोंमें महारथी मानेहुए कर्णके हँसकर तीनसौ बाण मारे १४ हे राजन् ! कर्णको बड़ा ही दुःख पहुँचा, यह देखकर देवताओं सहित रथियोंने बड़ा आश्चर्य माना ॥ १५ ॥ तदनन्तर सूर्यके पुत्र कर्णने दूसरा धनुष लेकर नकुलकी हँसलीके स्थान पर पाँच बाण मारे ॥ १६ ॥ हँसलीमें गुभेहुए उन बाणोंसे माद्रीके पुत्र नकुलकी ऐसी शोभा हुई कि-मानो सूर्य अपनी किरणोंसे भूमि पर प्रकाश फैला रहा है ॥ १७ ॥ फिर नकुलने सात बाणोंसे कर्णको बींधदिया और हे राजन् ! फिर उसके धनुषकी डोरी काटडाली ॥ १८ ॥ कर्णने तुरन्त ही महावेगवाला दूसरा धनुष लिया और रणभूमिमें नकुलके आसपासकी दिशाओंको बाण मारकर ढकदिया ॥१९॥ कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंसे नकुल एकसाथ ढकगया तब तो उस महारथीने तुरन्त ही बाण मारकर कर्णके बाणोंको काटडाला ॥ २० ॥ उस समय आकाशमें छाया

संवतद्भिर्यथा नभः ॥ २१ ॥ तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा। शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीद्विशांपते ॥ २२ ॥ ते शरा हेमविकृताः सम्पतन्तो मुहुर्मुहुः। श्रेणीकृता व्यकाशन्त क्रौञ्चाः श्रेणीकृता इव ॥ २३ ॥ वाणजालावृते व्योम्नि छादिते च दिवाकरे। न स्म सम्पतते भूम्यां किञ्चिदप्यन्तरीक्षगम् ॥ २४ ॥ निरुद्धे तत्र मार्गे च शरसंघैः समन्ततः। व्यरोचेतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ २५ ॥ कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः। अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्त्ता भृशार्दिताः ॥ २६ ॥ नकुलस्य तथा बाणैर्हन्यमाना चमूस्तव। व्यशीर्यत दिशो राजन् वाततुन्ना इवाम्बुदाः ॥ २७ ॥ ते सेने हन्यमाने तु ताभ्यां दिव्यै-

---

हुआ वाणोंका जाल ऐसा दीखता था, मानों चारों ओरसे आकर गिरनेहुए पतङ्गोंके दलने आकर आकाशको घेरलिया हो ॥ २१ ॥ हे राजन्! उस समय आकाश जैसे टीड़ीदलोंसे छा जाय तैसे ही वाणोंके जालसे ढकाहुआ दीखता था ॥ २२ ॥ सोनेसे मढ़ेहुए वाण तले ऊपर बराबर गिररहे थे, वे इकट्ठे होने पर क्रौंच पक्षियोंसे मालूम होते थे ॥ २३ ॥ वाणोंके आकाशमें छाजाने पर सूर्य भी ढकगया था, उस समय आकाशमें पहुँची हुई कोई वस्तु भी भूमिमें आकर नहीं गिरसकती थी ॥ २४ ॥ चारों ओरसे वाण मारकर आकाशके मार्गोंको रोकदिया था, इसलिये वे दोनों महात्मा उदय हुए दो कालसूर्योंकी समान मालूम होते थे ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र! इस समय कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए वाणोंकी मार खाते हुए सोमक राजे उस वेदनासे घबड़ा कर छुप गये ॥ २६ ॥ हे राजन्! नकुलके वाणोंकी मार खाती हुई तुम्हारी सेना भी जैसे पवनसे बादल बिखर जाते हैं तैसे ही रणमेंसे बिखरकर चारों ओरको भागनेलगी ॥ २७ ॥ जब बड़े २ दिव्य वाणोंसे उन दोनों सेनाओंका संहार होने लगा

महाशरैः । शरपातमपाक्रम्य तस्थतुः प्रेक्षिके तदा ॥२८॥ प्रोत्सारितजने तस्मिन् कर्णपाण्डवयोः शरैः । अविध्येतां महात्मानावन्योऽन्यं शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥ विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्द्धनि । छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥ ३० ॥ नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः । सूतपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथाम्बरे ॥ ३१ ॥ तथैव सूतपुत्रेण प्रेषिताः परमाहवे । पाण्डुपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्ताम्बरे शराः ॥३२॥ शरवेश्मप्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन । सूर्याचन्द्रमसौ राजंश्छाद्यमानौ घनैरिव ३३ ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः । पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥ सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण

तब बाणोंकी वर्षासे दूरको हटकर वह सेना दर्शककी समान खड़ी होगयी ॥ २८ ॥ कर्णके और नकुलके बाणोंकी मारसे दोनों सेनाओंके योधा दूरको हटगये, फिर वे दोनों महात्मा बाणोंकी वर्षा करके एक दूसरेको घायल करनेलगे ॥ २९ ॥ वे दोनों दिव्य शस्त्रोंको धारण किये हुए थे और सेनाके मुहाने पर खड़े होकर एक दूसरेका नाश करनेके लिये फुरतीसे एक दूसरेको बाणोंसे ढकरहे थे ॥ ३० ॥ नकुलके मारेहुए कङ्कपक्षीके और मयूरके परोंवाले बाण कर्णको ढकते हुए जैसे आकाशमें छागये थे ॥ ३१ ॥ तैसे ही उस महारणमें कर्णके छोड़हुए बाण भी नकुलको ढककर आकाशमें छागये ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! वे दोनों योधा बाणोंके घरमें बन्दी होकर इसप्रकार किसीको भी नहीं दीखे, जैसे घनघटाओंमें ढकेहुए सूर्य और चन्द्रमा किसीको भी नहीं दीखते हैं ॥३३॥ इसप्रकार लड़ते २ कर्णको क्रोध आगया और उसने अपने शरीरको बड़ा ही भयानक बनाकर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके नकुलको ढकदिया ॥३४॥ हे महाराज ! कर्णने पाण्डुपुत्र नकुलको बाणोंसे पूरा २ ढकदिया तो भी जैसे सूर्य

पाण्डवः । न चकार व्यथां राजन् भास्करो जलदैर्यथा ॥ ३५ ॥
ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष । प्रेषयामास समरे शत-
शोऽथ सहस्रशः ॥ ३६ ॥ एकच्छायमभूत् सर्वं तस्य बाणैर्महा-
त्मनः । अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे सम्पतद्भिः शरोत्तमैः ॥ ३७ ॥ ततः
कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः । सारथिं पातयामास रथ
नीडाद्धसन्निव ॥ ३८ ॥ ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः
शरैः । यमस्य भवनं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ ३९ ॥ अथास्य
तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः । पताकां चक्ररक्षांश्च गदां
खड्गञ्च मारिष ॥ ४० ॥ शतचन्द्रञ्च तच्चर्म सर्वोपकरणानि
च । हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशाम्पते ॥ ४१ ॥ अव-
तीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्ठितः । तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य

बादलोंसे ढकजाने पर भी खेद नहीं मानता है तैसे ही वह जरा भी खिन्न नहीं हुआ ॥ ३५ ॥ परन्तु हे राजन् ! महारथी नकुल ने हँसकर रणमें सैंकड़ों और हजारों बाण कर्णके ऊपर छोड़े ३६ जिस समय उस महात्माके बाण पड़नेलगे, उस समय चारों ओर बादलोंकी छायाकी समान अन्धकार छागया ॥ ३७ ॥ हे महाराज! फिर कर्णने महात्मा नकुलके धनुषको काटडाला और हँसते२ सुख बनाकर रथकी बैठक परसे नकुलके सारथीको नीचे गिरा दिया ॥३८॥ हे भारत ! तदनन्तर तेज कियेहुए चार बाण मारकर फ़ुरतीके साथ उसके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥३९॥ तदनन्तर बाण मारकर उसके दिव्य रथके तिल २ समान टुकड़े करडाले और फिर उसके रथकी पताकाको, पहियोंको, रक्षकोंको, गदाको, तलवारको, सौ फुल्लियोंवाली ढालको तथा और सब सामानको छिन्न भिन्न करडाला, हे राजन्! नकुलके रथके घोड़े मरगये, वह रथशून्य और कवचशून्य होगया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वह टूटेहुए रथपरसे तुरन्त नीचे उतर पड़ा और हाथमें परिघ ले

सूतजः ॥ ४२ ॥ व्यहनत् सायकैः राजन् सुतीक्ष्णैर्भारसाधनैः ।
व्यायुधञ्चैवमालक्ष्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४३ ॥ आर्पयद्बहुभिः
कर्णो न चैनं समपीडयत् । स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बली-
यसा ॥ ४४ ॥ प्राद्रवत् सहसा राजन् नकुलो व्याकुलेन्द्रियः ।
तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन् वै पुनः पुनः ॥४५॥ सज्यमस्य धनुः
कण्ठे व्यवासृजत भारत । ततः स शुशुभे राजन् कण्ठासक्तमहा-
धनुः ॥ ४६ ॥ परिवेषमनुप्राप्ते यथा स्याद्व्योम्नि चन्द्रमाः । यथैव
चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥ ४७ ॥ तमब्रवीत्ततः कर्णो
व्यर्थं व्याहृतवानसि । वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः॥४८
मा योत्सीः कुरुभिः सार्द्धं बलवद्भिश्च पाण्डव । सदृशैस्तात युध्यस्व

लड़नेके लिये सामने आकर खड़ा होगया, कर्णने उसके उठाये हुए महाभयानक परिघको, बड़े ही तीक्ष्ण और शत्रुके पाशको सहनेवाले बाण मारकर उसके टुकड़े करडाले, नकुल शस्त्रशून्य होगया, नकुलको ऐसा देखकर कर्णने उसके नमेहुए पर्व वाले बहुतसे बाण मारे,परन्तु उसको पीड़ा नहीं दी,जिस समय नकुल रणभूमिमें अस्त्रविद्यामें कुशल और बलवान् कर्णके हाथसे मार खाने लगा, उस समय उसकी इन्द्रियें व्याकुल होगयीं और वह एकसाथ रणमेंसे भागगया, तब तो राधाका पुत्र कर्ण वारंवार हँसताहुआ नकुलके पीछे दौड़ा और हे भरतवंशी राजन्! उसने नकुलके कण्ठमें अपना तानाहुआ धनुप डाल दिया, हे राजन्! जिसके कण्ठमें बड़ाभारी धनुप पड़ाहुआ था वह नकुल उस समय आकाशमें कुण्डलके मध्यमें विद्यमान चन्द्रमाकी समान और इन्द्रधनुपसे शोभायमान काली घनघटाकी समान शोभा पानेलगा ॥ ४२-४७ ॥ तदनन्तर कर्णने नकुलसे कहा, कि— तूने मिथ्या कहा था, तू वारम्वार मार खारहा है तो भी अब तू प्रसन्न रहताहुआ, पहले जो कुछ कहा था, उसको कह तो

क्रीडां मा कुरु पाण्डव ॥ ४९ ॥ गृहे वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ । एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा ॥५०॥ वधमाप्तन्तु तं शूरो नाहनद्धर्मवित्तदा । स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत् ॥ ५१ ॥ विसृष्टः पाण्डवो राजन् सूतपुत्रेण धन्विना । व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ५२ ॥ आरुरोह रथञ्चापि सूतपुत्रप्रतापितः । निःश्वसन् दुःखसन्तप्तः कुम्भस्थ इव पन्नगः ॥ ५३ ॥ तं विजित्याथ कर्णोऽपि पञ्चालांस्त्वरितो ययौ । रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च ॥ ५४ ॥ तत्राक्रन्दो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते । दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पञ्चालानां रथव्रजान् ॥ ५५ ॥ तत्राकरोन्महाराज कदनं सूत-

---

नहीं ॥ ४८ ॥ अरे पाण्डुपुत्र ! तू बलवान् कौरवोंमेंसे किसीके साथ युद्ध न कर, किन्तु तेरे समान जो योधा हों उसके साथ ही युद्ध करना और आजकी पराजयके कारण लज्जित न होना, हे माद्रीके पुत्र ! अब तू घरको जा, अथवा जहाँ कृष्ण और अर्जुन हों तहाँ जा, हे महाराज ! ऐसा कहकर उसने उसी समय नकुल को छोड़ दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इससमय नकुलका प्राणान्त हो जाता, परन्तु हे राजन् ! धर्मवेत्ता कर्णने कुन्तीकी बातको याद करके इसको मारा नहीं, किन्तु छोड़ दिया ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! सूतपुत्र धनुषधारी कर्णने नकुलको मारा नहीं, किन्तु छोड़ दिया तब वह लज्जित होता हुआ युधिष्ठिरके रथकी ओरको चलागया ॥५२॥ और उनके रथमें जाबैठा, कर्णके प्रतापसे पराजय पाया हुआ नकुल, घड़ेमें बन्द कियेहुए सर्पकी समान दुःखसे सन्तप्त होकर फुङ्कारें मारनेलगा ॥ ५३ ॥ नकुलको जीतकर कर्ण शीघ्र ही बड़ी पताकावाले और चन्द्रमाकी समान स्वेत घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर पाञ्चालोंकी ओरको चलागया ॥५४ ॥ हे राजन् ! सेनापति कर्णको पाञ्चालोंके महारथियोंकी टोलियोंकी ओरको

नन्दनः । मध्यं गते दिनकरे चक्रवद्भ्रमि चरन् प्रभुः ॥ ५६ ॥
भग्नचक्रै रथैः कैश्चित् छिन्नध्वजपताकिभिः । हताश्वैर्हतसूतैश्च
प्रभग्नाक्षैश्च मारिष ॥ ५७ ॥ ह्रियमाणानपश्याम पञ्चालानां
रथव्रजान् । तत्र तत्र च संभ्रान्ता विचेरुरथ कुञ्जराः ॥ ५८ ॥
दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने । भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छि-
न्नहस्ताश्च वारणाः ॥ ५९ ॥ छिन्नगात्रावराश्चैव छिन्नवाल-
धयोऽपरे । छिन्नाभ्राणीव संपेतुर्हन्यमाना महात्मना ॥ ६० ॥
अपरे त्रासिता नागा नाराचशरतोमरैः । तमेवाभिमुखा जग्मुः
शलभा इव पावकम् ॥ ६१ ॥ अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महा-

जाता देखकर पाण्डव बड़ी जोरसे चिल्लानेलगे५५ हे महाराज ! जिस समय सूर्य आकाशके मध्यभागमें आया (मध्यान्हका समय हुआ) उस समय राजा कर्ण रणमें चक्रकी समान घूमता २ पंचाल देशके राजाओंका संहार करनेलगा ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! इस समय रणभूमिमें घबड़ाहटके मारे कितने ही रथोंके पहिये टूट गये, कितनोंहीकी ध्वजा पताकायें टूटगयीं, कितनोंहीके घोड़े मर गए, कितनोंहीके सारथी मरगए और कितने ही रथोंकी धुरियें टूटगयीं ॥ ५७ ॥ इस समय पंचालदेशके राजाओंके रथी इधर उधरको भागते हुए दीखनेलगे और हाथी भी पागलसे बनकर इधर उधरको भागनेलगे ॥ ५८ ॥ और बड़े वनमें दावानलसे जलेहुएसे दीखनेलगे, कितने ही हाथी गण्डस्थलोंके फूटजानेसे लोहूलुहान होगए कितनेही हाथियोंके कवच फटगए और कितनों ही की पूँछें कटगयीं, इसप्रकार महात्मा कर्णके हाथकी मारखाते हुए हाथी टूटेहुए बादलोंकी समान पृथिवी पर गिरनेलगे५९।६० और कितने ही हाथी नाराच, बाण तथा तोमरोंसे भयभीत हो कर जैसे पतङ्ग अग्निकी ओरको दौड़ते हों तैसे ही कर्णके सामने को दौड़नेलगे ॥६१॥ दूसरे कितने ही बड़े हाथी आपसमें युद्ध

द्विपाः । क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलस्रवाः ॥ ६२ ॥ उर-श्छदैर्वियुक्तांश्च बालबन्धैश्च वाजिनः । राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः ॥ ६३ ॥ हीनांश्चाभरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जितान् । चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि ॥ ६४ ॥ निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभितैः । अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान् हयोत्तमान् ६५ प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत । हययोधानपश्याम कञ्चुकोष्णीषधारिणः ६६ निहतान् वध्यमानांश्च वेपमानांश्चभारतानागाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्र तत्रैव भारत६७ रथान् हेमपरिष्कारान् संयुक्तान् जवनैर्हयैः । भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम् ॥ ६८ ॥ भग्नाक्षकूवरान् कांश्चित् भग्नचक्रांश्च

भरहे थे और जैसे झरनेमेंसे पानी टपकता हो तैसे ही उनके शरीरोंमेंसे लोहू टपकरहा था ॥ ६२ ॥ इस युद्धमें घोडोंकी छातियों परके ढक्कन, तथा चाँदीके, काँसीके और सोनेके आभूषण और लगामें भी उनके शरीरों परसे गिरगयी थीं और उनके शरीरों परसे चँवर झूलें तथा भाथे भी खिसक कर नीचे गिरगये थे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ और रणमें मरेहुए शूर घुड़सवार शोभा पा रहे थे, और उत्तम घोड़े रणभूमिमें जिधर तिधर भागरहे थे ६५ हे भरतवंशी राजन्! जामे और पगड़ियोंको पहरेहुए तथा प्रास तलवार और ऋष्टियें जिनके हाथोंमेंसे गिरगयी थीं ऐसे घुड़सवारों मेंसे कितने ही मरगये, कितने ही शत्रुओंके हाथसे मार खारहे थे और हे भरतवंशी राजन्! कितने ही काँप रहे थे और जिनके शरीरके अङ्ग कटगये थे ऐसे कितने ही जहाँ तहाँ मरेपड़े थे ६६ ॥ ६७ ॥ जिनमें वेगवान् घोड़े जुतेहुए थे ऐसे कितने ही सोनेसे सजायेहुए रथ रथियोंके मारेजानेसे इधर उधर घूमतेहुए दीखते थे ॥ ६८ ॥ हे भारत! कितने ही रथोंकी धुरियें और ढाँच, कितनोंहीके पहिये और कितनोंहीकी पताकायें टूटगयी थीं तथा

भारत। विपताकध्वजांश्चान्यांश्छिन्नेषादण्डबन्धुरान् ॥ ६९ ॥
विहृतान्रथिनस्तत्र धावमानांततस्ततः। सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमा-
नान्विशाम्पते ॥ ७० ॥ विशस्त्रांश्च तथैवान्यान् सशस्त्रांश्च
हतान् बहून्। तारकाजालसंछन्नान् वरघण्टाविशोभितान ॥७१॥
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान् । वारणाननुपश्याम
धावमानान् समन्ततः ॥७२॥ शिरांसि बाहूनूरूंश्च छिन्नानन्यां-
स्तथैव च । कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः ॥ ७३ ॥
महान् व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वपद्यत । कर्णसायकनुन्नानां
युध्यतांञ्च शितैः शरैः ॥ ७४ ॥ ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण
सृञ्जयाः । तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥ ७५ ॥ तं
दहंतमनीकानि तत्र तत्र महारथम् । क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ता-

---

कितने ही रथोंकी ईषा, दण्डे और बंधुर टूटगये थे ॥ ६९ ॥
हे राजन् ! कर्णके तीखे बाणोंकी मारसे रथी रणमें घायल होकर
जिधर तिधरको भागरहे थे ॥७०॥ कितने ही शस्त्र हाथमें लिये
हुए ही मारेगये और कितने ही शस्त्रहीन होकर मारेगये, कितने
ही हाथी अनेकों प्रकारके तारोंसे सजायेहुए, अनेकों घण्टोंसे,
अनेकों रङ्गकी विचित्र पताकाओंसे शोभायमान थे, वे कर्णके तीखे
बाणोंकी मारसे रणभूमिमें चारों ओरको भागतेहुए मेरे देखने
में आये ॥७१॥७२॥ कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंसे योधाओं
के शिर, हाथ और सांथलें कटकर रणभूमिमें जिधर तिधर पड़े
हुए मेरे देखनेमें आये ॥ ७३ ॥ युद्ध करते हुए तथा कर्णके तीखे
बाणोंसे कटेहुए योधाओंमें ऐसा भयानक युद्ध होरहा था ७४
फिर रणमें कर्णके हाथसे मार खातेहुए सृञ्जय अग्निमें गिरने
वाले पतङ्गोंकी समान कर्णकी ओरको जानेलगे ॥ ७५ ॥ इस
समय महारथी कर्ण भी भिन्न २ स्थानों पर सेनाका संहार कर
रहा था, इसकारण क्षत्रिय कर्णको प्रलयकालके दारुण अग्नि

ग्निमिवोल्वणम् ॥ ७७ ॥ हतशेषास्तु ये वीराः पञ्चालानां महा-
रथाः । तान् प्रभग्नान् द्रुतान् वीरः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः ॥ ७७ ॥
अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान् । तापयामास तान् बाणैः
सूतपुत्रो महाबलः । मध्यन्दिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः॥७८॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णपराक्रमे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच । युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत् ।
उलूकोऽभ्यपतत्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥ युयुत्सुश्च ततो
राजन् शितधारेण पत्रिणा । उलूकं ताडयामास वज्रेणेव महा-
चलम् ॥ २ ॥ उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे । क्षुरप्रेण

की समान मान रणको छोड़कर भाग रहे थे ॥ ७६ ॥ इस लड़ाईमें जो पंचालदेशके वीर महारथी मरते २ बचगये थे वे तुरन्त रणमेंसे भाग निकले, इस समय वीर और तेजस्वी कर्ण उन योधाओंके ऊपर पीछेसे बाण फेंकनेलगे, कर्णकी मारसे योधाओंके कवच और ध्वजायें टूटगईं और जैसे अन्धकारका नाश करनेवाला मध्यान्हका सूर्य प्राणियोंको धूपसे संताप देता है, तैसे ही महाबली सूतपुत्र कर्ण योधाओंको बाणोंसे सन्ताप देनेलगा ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! युयुत्सु तुम्हारे पुत्रकी बड़ीभारी सेनाको भगानेलगा, यह देख उलूक तहाँ तुरन्त ही आपहुँचा और कहने लगा कि-अरे युयुत्सु ! खड़ा रह खड़ा रह ॥ १ ॥ हे राजन् ! यह सुन युयुत्सु खड़ा होगया और इन्द्रके वज्रका प्रहार करनेकी समान तुरन्त ही तेजधारवाले बाणसे महाबली उलूकके ऊपर प्रहार किया ॥२॥ तुम्हारे पुत्रकी ओरसे रणमें आयाहुआ उलूक क्रोधमें भरगया और उसने क्षुरप्र नामका बाण मारकर तुम्हारे पुत्र युयुत्सुके धनुषको काटडाला।

धनुश्छित्वा ताडयामास कर्णिना ॥ ३ ॥ तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम् । अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥ ४ ॥ शाकुनिन्तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ । सारथिं त्रिभिरानर्च्छत् तञ्च भूयो न्यविध्यत ॥५॥ उलूकस्तन्तु विंशत्या विध्वा स्वर्ण-विभूषितैः । अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ६ ॥ स छिन्नयष्टिः सुमहान् शीर्यमाणो महाध्वजः । पपात प्रमुखे राजन् युयुत्सोः काञ्चनध्वजः ॥ ७ ॥ ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्च्छितः । उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ८ ॥ उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष । शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम ॥ ९ ॥ तच्छिन्नम पतद्भूमौ युयुत्सोः सारथेस्तदा । तारारूपं यथा चित्रं

और उसने कर्णी नामका बाण मारा ॥ ३ ॥ इससे युयुत्सुकी आँखें लालताल होगयीं, उसने टूटे हुए धनुषको फेंककर बड़े ही वेगवाला दूसरा बड़ाभारी धनुष हाथमें लिया ।४। और हे भरतवंश में श्रेष्ठ राजन्! फिर उसने उलूकके साठ बाण मारे, उसके सारथी के तीन मारे और फिर उलूकको बाणोंसे बींधदिया ॥५॥ शकुनि के पुत्र उलूकने सोनेसे सजेहुए बीस बाण मारकर युयुत्सुको बींधदिया और फिर क्रोधमें भरेहुए उलूकने युयुत्सुकी सोनेकी बड़ीभारी ध्वजाको काटडाला ॥ ६ ॥ ज्योंही दण्डेको काटा, कि—हे राजन्! वह सोनेकी बड़ीभारी ध्वजा युयुत्सुके सामने नीचे गिरपड़ी ॥७॥ युयुत्सु अपनी ध्वजाको टूटकर गिरते देखते ही बड़े क्रोधमें भरगया और उसने उलूककी छातीमें पाँच बाण मारे ॥ ८ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन! फिर उलूकने तेल लगाकर उज्ज्वल कियेहुए भल्ल नामके बाणसे युयुत्सुके सारथी का शिर काटडाला ॥ ९ ॥ युयुत्सुके सारथीका कटाहुआ वह शिर उस समय आकाशमेंसे विचित्र रङ्गके तारेकी समान पृथिवी

निपपात महीतले ॥ १० ॥ जघान चतुरोऽश्वांश्च तञ्च विव्याध पञ्चभिः । सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ११ ॥ तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ । पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन्निशितैः शरैः ॥ १२ ॥ शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव । व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्द्धादसम्भ्रमः ॥ १३ ॥ हताश्वे तु रथे तस्मिन् शतानीको महारथः । गदां चिक्षेप संक्रुद्ध-स्तव पुत्रस्य मारिष ॥ १४ ॥ सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन् । पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥ १५ ॥ तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्त्तिवर्द्धनौ । व्यपाक्रमेतां युद्धात्तु प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥ १६ ॥ पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तो विविंशो रथ-

---

पर आपड़ा ॥ १० ॥ फिर उलूकने उसके रथके चारों घोड़ोंको मारडाला, फिर पाँच बाण युयुत्सुके मारे, वीर उलूकके प्रहारसे युयुत्सु अत्यन्त घायल होगया और दूसरे रथमें बैठकर रणभूमिमेंसे भागगया ११ युयुत्सुको रणमें हराकर उलूक झटसे पंचाल और सृञ्जय राजाओंकी ओरको चलागया, तथा उनके तेज कियेहुए बाण मारनेलगा १२ हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र श्रुतकर्माने आधा पलक मारनेमात्र समयमें निर्भय होकर शतानीकके घोड़ोंको और सारथी को मारडाला ॥१३॥ और उसको रथहीन करदिया, हे राजन् ! तब तो महारथी शतानीक कोपमें भरगया और उसने विना ही घोड़ोंके रथमें खड़े होकर तुम्हारे पुत्रके ऊपर गदाका प्रहार किया ॥ १४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उसकी फेंकी हुई गदा रथको, घोड़ोंको और सारथीको भस्म करके पृथिवी पर गिरतीहुई ऐसी मालूम हुई, कि- मानो अभी पृथ्वीको फाड़डालेगी ॥१५॥ इस समय कुरुवंशकी कीर्त्तिको बढ़ानेवाले ये दोनों वीर पुरुष विना रथके होकर एक दूसरेको देखतेहुए रणभूमिमेंसे पीछेको हटगये१६ इससे तुम्हारा पुत्र विविंश घबड़ाकर अपने रथपर चढ़गया और

माविशत् । शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः ॥ १७ ॥ सुतसोमन्तु शकुनिर्विध्वा सुनिशितैः शरैः । नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्यौघ इव पर्वतम् ॥ १८ ॥ सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम् । शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥ १९ ॥ तांश्छरान् शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः । लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे ॥ २० ॥ निवार्य समरे चापि शरांस्तान्निशितैः शरैः । आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥ २१ ॥ तस्याश्वान् केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः। श्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २२ ॥ हताश्वो विरथश्चैव छिन्नकेतुश्च मारिप । धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद् भूमावतिष्ठत ॥२३॥ व्यसृजत्

शतानीक भी एक साथ शीघ्र ही प्रतिविंध्यके रथ पर चढ़गया ॥ १७ ॥ तदनन्तर कोपमें भरेहुए शकुनिने तेज कियेहुए वाण मारकर वींधडाला, तो भी जैसे पानीका अहला पहाड़को नहीं हिलासकता तैसे ही वह सुतसोमको न डिगा सका ।१८।हे भरतवंशी राजन् ! सुतसोमने उसको अपने पिताका परमशत्रु जान कर अनेकों वाणोंसे ढकदिया ॥ १९ ॥ शकुनिने सामनेसे दूसरे वाण मारकर तुरन्त उसके वाणोंको काटडाला, शकुनिके शस्त्र वजनमें हलके थे और वह अनेकों प्रकारके युद्धकी कलामें चतुर था, इसकारण रणमें विजयसे शोभा पारहा था ॥२०॥ शकुनिने रणमें तेज कियेहुए वाण मारकर सुतसोमको पीछे हटादिया और फिर अत्यन्त क्रोधमें भरकर सुतसोमके तीन वाण मारे२१ हे महाराज ! फिर तुम्हारे साले शकुनिने सुतसोमके घोड़ोंके, उसके रथकी ध्वजाके और सारथिके वाण मारकर तिल २ की समान टुकडे करदिये, इस समय सेनाके लोग बड़ा कोलाहल करउठे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! ज्यों ही रथ,घोड़े और पताकाओं का नाश हुआ,कि–सुतसोम पैदल ही भूमिपर हाथमें धनुष लेकर

सायकांश्चैव स्वर्णपुंखाञ्छिलाशितान् । छादयामास समरे तव श्यालस्य तं रथम् ॥ २४ ॥ शलभानामिव व्रातान् शरव्रातान्महारथः । रथोपगान् समीक्ष्यैवं विव्यथे नैव सौबलः ॥ २५ ॥ प्रममाथ शरांस्तांस्तु शरव्रातैर्महायशाः । तत्रातुष्यन्त योधाश्च सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः ॥ २६ ॥ सुतसोमस्य तत् कर्म दृष्ट्वा श्रद्धेयमद्भुतम् । रथस्थं शकुनिं यस्तु पदातिः समयोधयत् ॥२७॥ तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः । व्यहनत् कार्मुकं राजंस्तूणीरांश्चैव सर्वशः ॥ २८ ॥ स छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत् । वैदूर्योत्पलवर्णाभं हस्तिदन्तमयत्सरुम् ॥ २९ ॥ भ्राम्यमाणं ततस्तन्तु विमलाम्बरवर्चसम् । कालदण्डोपमं मेने सुत-

---

खड़ा होगया ॥ २३ ॥ फिर उसने सोनेकी पूँछवाले और सान पर घिसकर तेज कियेहुए बाण मारकर युद्धमें तुम्हारे साले शकुनि के रथको ढकदिया ॥ २४ ॥ टीडीदलोंकी समान बहुतसे बाण अपने रथके आसपास आयेहुए देखकर भी शकुनिके मनमें कुछ चिन्ता नहीं हुई ॥ २५ ॥ परन्तु परमकीर्त्तिमान् शकुनिने सामने से बाण छोड़कर सुतसोमके बाणोंका चूरा करडाला, उस समय युद्धमें खड़ेहुए योधा और आकाशमें खडे हुए सिद्ध पुरुष, वह जो पैदल सुतसोम और रथमें बैठेहुए शकुनिका युद्ध होरहा था, उसमें सुतसोमके अद्भुत और श्रद्धायोग्य परमपराक्रमको देखकर सन्तुष्ट होगये ॥ २६–२७ ॥ हे राजन् ! फिर शकुनिने बड़े वेगवान् और नमेहुए पर्ववाले तीक्ष्ण भाले मारकर सुतसोमके धनुषको तथा सब भाथोंको काटडाला ॥ २८ ॥ राजा सुतसोमका धनुष कटगया, वह विनारथका होगया, तब उसने तलवार घुमाकर बड़ी गर्जना की, बुद्धिमान् सुतसोमकी तलवार वैदूर्यमणि और कमलके पत्तोंकी समान चमकरही थी और उस की मूठ हाथीदाँतकी थी, वह तलवार निर्मल आकाशकी समान

सोमस्य धीमतः ॥ ३० ॥ सोऽचरत् महसा खड्गी मण्डलानि समन्ततः । चतुर्दश महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥३१॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं सृतनिःसृतम् । सम्पातसमुदीर्णे च दर्शयामास संयुगे ॥ ३२ ॥ सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान् । तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥ ३३ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा । प्राहिणोत् सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान् ॥ ३४ ॥ चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च । दर्शयंल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः ॥ ३५ ॥ तस्य संच-

---

तेजस्वी और चारों ओरको उछल रही थी, इस तलवारको शकुनिने यमराजके दण्डकी समान माना ॥ २९—३० ॥ हे महाराज ! सुतसोमने अस्त्रविद्याकी उत्तम शिक्षा पायी थी और वह बलवान् भी था, उसने तलवार लेकर उसको रणभूमिमें बहुत बार चौदहप्रकारके मण्डलोंसे घुमाया ॥ ३१ ॥ भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत सृत, सम्पात और समुदीर्ण ये गतियें अनुलोम और प्रतिलोम रीतिसे चौदह मण्डलकी युद्धगतियोंके रूपमें उसने सबको दिखायीं॥३२॥ जिस समय सुतसोम मण्डलाकारमें तलवार लेकर घूम रहा था, उस समय पराक्रमी शकुनि उसके ऊपर बाणोंका प्रहार कररहा था और ज्यों २ उसके बाणअपनी ओरको आते थे त्यों २ सुतसोम उत्तम तलवार से उन बाणोंको झटाझट काट रहा था ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! यह देखकर शत्रुओंका संहार करनेवाला सुबलका पुत्र शकुनि क्रोधमें भरगया, उसने सुतसोमके ऊपर विषधर सर्पोंकी समान बाण मारने आरम्भ करदिये।३४।परन्तु गरुडकी समान सुतसोम ने रणमें शस्त्र चलानेमें अपनी फुरती दिखलायी और शस्त्रशिक्षाके बलसे तथा पराक्रमसे तलवार मारकर शकुनि के सब बाणोंको काटडाला ॥ ३५ ॥ परन्तु हे राजन् ! जिस

रतो राजन् मण्डलावर्त्तने तदा । क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गश्चिच्छेद सुप्रभम् ॥ ३६ ॥ स छिन्नः सहसा भूमौ निपपात महानसिः । अर्द्धमस्य स्थितं हस्ते सुतसोमस्तस्य भारत ॥ ३७ ॥ छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् । प्राविध्यत् ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥ ३८ ॥ तच्छित्वा सगुणञ्चापं रणे तस्य महात्मनः । पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम् ॥ ३९ ॥ सुतसोमस्ततोऽगच्छच्छ्रुतकीर्त्तेर्महारथम् । सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत् सुदुर्जयम् ॥ ४० ॥ अभ्ययात् पाण्डवानीकं निघ्नञ्छत्रुगणान् बहून् । तत्र नादो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते ॥ ४१ ॥ सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत् । तान्यनी-

समय सुतसोम मण्डलमें चक्राकार गतिसे फिरने लगा उस समय शकुनिने छुरीके आकारका एक बड़ा ही तेज बाण मारकर उस की कांतिवाली तलवारको काटडाला ॥ ३६ ॥ वह बड़ी तलवार टुकड़े होकर पृथिवी पर गिरपड़ी, परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! उत्तम मूठवाली उस तलवारका आधा भाग सुतसोमके हाथमें रहगया ॥ ३७ ॥ अपनी तलवारके टुकड़े हुए देख महारथी सुतसोमने छः पग आगेको कूदकर उस तलवारका आधा टुकड़ा फेंककर शकुनिके मारा ॥ ३८ ॥ वह सोने तथा हीरेके जड़ाव से शोभायमान तलवारका टुकड़ा शीघ्रतासे महात्मा शकुनिके धनुषको और धनुषकी डोरीको काटकर पृथ्वी पर जापड़ा ३९ फिर सुतसोम श्रुतकीर्त्तिके बड़ेभारी रथपर चढ़गया और शकुनि परमदुर्जय तथा भयानक धनुषको लेकर हे राजन् ! दूसरे स्थान पर जहाँ पाण्डवोंकी सेना खडी थी उधर लडनेको गया और बहुतसे शत्रुओंका संहार करने लगा, उस समय पाण्डवों की सेनामें बडा कोलाहल मचगया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पाण्डवसेना की पलटनें बहुत थीं और शस्त्रोंको धारण कियेहुए बड़े घमंडमें

कानि दृष्टानि शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ४२ ॥ द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना । यथा दैत्यचमूं राजन् देवराजो ममर्द ह । तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सुतसोमसौबलयुद्धे
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच । धृष्टद्युम्नं कृपो राजन् वारयामास संयुगे । यथा दृष्ट्वा वने सिंहं शरभो वारयेद्युधि ॥ १ ॥ निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा । पदात् पदं विचलितुं नाशकत्तत्र भारत २ गौतमस्य रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति । वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तञ्च मेनिरे ॥३॥ तत्रावोचन् विमनसो रथिनः सादिनस्तथा । द्रोणस्य निधनान्नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥ ४ ॥ शारद्वतो महा-

---

भररही थीं वे उस युद्धमें निर्भय पुरुषकी समान घूमते हुए शकुनिको देखकर चारों ओरको भागने लगीं, यह दशा महात्मा शकुनिने अपनी दृष्टिसे देखी तब जैसे इन्द्रने दैत्योंकी सेनाका संहार किया था उसप्रकार ही शकुनि पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजन् धृतराष्ट्र ! जैसे वनमें शरभ सिंहको आगे बढ़नेसे रोकता है तैसेही कृपाचार्यने संग्राममें धृष्टद्युम्नको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ १ ॥ हे भारत ! बलवान् कृपाचार्यने पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्नको आगे बढ़नेसे ऐसी दृढ़ताके साथ रोका, कि–वह एक पग भी आगेको न बढ़सका ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नके रथकी ओरको कृपाचार्यके रथको जाता देखकर सब भयभीत होगये और उन्होंने समझा, कि–बस अब धृष्टद्युम्न मारागया ॥ ३ ॥ रणमें लडतेहुए रथी और घुडसवार भी मनमें खिन्न होकर कहनेलगे, कि–यह कृपाचार्य निःसन्देह द्रोणाचार्यके मारेजानेसे क्रोधमें भरगये हैं ॥४॥ यह बड़े तेजस्वी,

तेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः । अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥ ५ ॥ अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात् । अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान्न नो हन्यात् समागतान् ॥ ६ ॥ यादृशं दृश्यते रूपमन्तकमतिमं भृशम् । गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य गौतमः ॥ ७ ॥ आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि । अस्त्रवान् वीर्यसम्पन्नः क्रोधेन च समन्वितः ॥ ८ ॥ पार्षतश्च महायुद्धे विमुखोऽद्याभिलक्ष्यते । इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह ॥ ९ ॥ व्यश्रूयन्त महाराज तयोस्तत्र समागमे । विनिःश्वस्य ततः क्रोधात् कृपः शारद्वतो नृप ॥ १० ॥ पार्षतञ्चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु । स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना ११ कर्त्तव्यं न स्म जानाति मोहेन महता वृतः । तमब्रवीत्ततो यन्ता

दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करना जानने वाले और उदार-बुद्धि हैं, क्या आज धृष्टद्युम्न कृपाचार्यके हाथसे जीवित बचजायगा ? क्या यह बडीभारी सेना महाभयसे बचेगी ? क्या यह ब्राह्मण हम सबोंको एकसाथ संहार करनेसे छोडेगा ॥ ५॥६॥ आज कृपाचार्यका स्वरूप कैसा कालकी समान है, इससे मालूम होता है, कि—यह द्रोणाचार्यकी समान ही वर्त्ताव करेंगे ॥ ७ ॥ कृपाचार्यके हाथमें बडीही फुर्त्ती है, सदा युद्धमें विजय पाते हैं, अस्त्रविद्याके जाननेवाले पराक्रमी और बडे क्रोधी हैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! कृपाचार्य और धृष्टद्युम्नके युद्धके समय तुम्हारी सेनाके और शत्रुकी सेनाके सैनिकोंकी ऐसी बातें सुननेमें आती हैं ॥ ९ ॥ फिर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य क्रोधमें साँसें छोडकर धृष्टद्युम्नके सकल मर्मस्थानों पर बाणोंका प्रहार करने लगे, धृष्टद्युम्न चेष्टारहित स्तब्ध हुआ रथमें बैठा था और गौतमगोत्री महात्मा कृपाचार्यके हाथसे मार खारहा था १०-११ धृष्टद्युम्न महामोहके वशमें होकर, 'क्या करना चाहिये' इस

कच्चित् क्षेमं तु पार्षत ॥ १२ ॥ ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया क्वचित् । दैवयोगात्तु ते वाणा नापतन्मर्मभेदिनः १३ प्रेषिता द्विज-मुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः । व्यावर्त्तये रथं तूर्णं नदीवेगमिवा-र्णवात् ॥ १४ ॥ अवध्यं ब्राह्मणं मन्ये येन ते विक्रमो हतः । धृष्ट-द्युम्नस्ततो राजन् शनकैरब्रवीद्वचः ॥ १५ ॥ मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते । वेपथुश्च शरीरे मे लोमहर्षश्च जायते १६ वर्जयन् ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः । अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे ॥१७॥ क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्ठिकी मतिः । ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन् हयान् ॥ १८ ॥ यतो भीमो

बातको भूलगया, फिर सारथीने उससे बूझा, कि–हे पृषत्के पुत्र धृष्टद्युम्न ! तुम कुशलसे तो हो ? ॥ १२ ॥ मैंने आपके ऊपर युद्धमें ऐसा दुःख पडता हुआ पहले कभी नहीं देखा, यह ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य तुम्हारे मर्मस्थानोंको देख २ कर चारों ओरसे बाण मार रहे हैं, तो भी तुम ऐसे क्यों बैठे हो, कि–मानो ये मर्मस्थानोंको भेदनेवाले बाण दैवयोगसे तुम्हारे शरीरमें लगते ही नहीं हैं, आप आज्ञा दीजिये तो जैसे समुद्रमें से नदीका वेग पीछेको लौटआता है वैसेही रणभूमिमेंसे रथको एकसाथ पीछेको लौटा लेजाऊँ ? ॥ १३ ॥ १४ ॥ क्योंकि–जिस ब्राह्मणने तुम्हारे पराक्रमको नष्ट करदिया है, यह मेरी समझमें तुम्हारे हाथसे मरनेवाला नहीं है, हे राजन् ! तब धृष्ट-द्युम्न ने धीरेसे यह बात कही ॥ १५ ॥ कि–हे सूत ! मेरा मन मुरझाया जाता है और मेरे शरीरमेंसे पसीना छूटरहा है, मुझे कपकपी छूटरही है और शरीर पर रोंगटे खडे हुएजाते हैं १६ इसलिये रणमें इस ब्राह्मणका सामना छोडकर जहाँ अर्जुन या भीम हो तहाँ मुझे धीरे धीरे लेचल ॥१७॥ हे सारथी ! अर्जुन वा भीमसेनका सहारा लेनेसे ही आज मेरा कल्याण होगा,

महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः । प्रद्रुतञ्च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ १९ ॥ किरञ्छरशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा । शङ्खञ्च पूरयामास मुहुर्मुहुररिन्दम ॥ २० ॥ पार्षतं द्रावयामास महेन्द्रो नमुचिं यथा । शिखण्डिनन्तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम् २१ हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः । शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम् ॥ २२ ॥ पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत् । कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्वा षष्ट्या पतत्रिभिः ॥ २३ ॥ धनुरेकेन चिच्छेद हसन्राजन्महारथः । अथान्यद्धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ॥ २४ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत । ततोऽस्य नवतिं बाणान्रुक्मपुंखान् सुतेजनान् ॥ २५ ॥

यह मेरा निश्चय विचार है, हे महाराज! यह सुन उसका सारथी बडी फुरतीसे घोडोंको हाँककर जहाँ महाधनुषधारी भीमसेन खडा हुआ तुम्हारे योधाओंके साथ युद्ध कररहा था, तहाँ उसके रथको लेगया, हे राजन्! जब धृष्टद्युम्नके रथको रणमेंसे भागते हुए देखा तब कृपाचार्यने उसके ऊपर सैंकडों वाण मारे, फिर उसके पीछे दौडे और वारंवार शङ्ख बजानेलगे ॥ १७-२० ॥ जैसे इन्द्रने नमुचिको भयभीत करदिया था, तैसेही कृपाचार्यने धृष्टद्युम्नको भयभीत करदिया, दूसरी ओर हार्दिक्य, भीष्मको मारनेवाले और जिसको जीतना बडाही कठिन था ऐसे शिखंडी को मुसकुराताहुआसा क्षणरमें आगेको बढ़नेसे रोकने लगा, शिखंडीने हृदीकमण्डलके महारथी कृतवर्माकी हँसलीमें तेजकिये हुए भल्लनामके पांच वाण मारे तब महारथी कृतवर्माने क्रोधमें भरकर शिखंडीके सात वाण मारे और एक वाणसे हँसतेर उसके धनुषको काटडाला, द्रुपदके बलवान् पुत्र शिखंडीने दूसरा धनुष हाथमें उठालिया ॥ २१-२४ ॥ और क्रोधमें भरकर कृतवर्मासे कहा, कि-खडा रह, खडा रह, अब कहाँ जाता है?

प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः । वितथांस्तान् समा-
लक्ष्य पतितांश्च महीतले ॥ २६ ॥ क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं
चिच्छिदे भृशम् । अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृंगमिवर्षभम् ॥ २७ ॥
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् । कृतवर्मा तु संक्रुद्धो
मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥ २८ ॥ ववाम रुधिरं गात्रैः कुम्भवक्त्रा-
दिवोदकम् । रुधिरेण परिक्लिन्नः कृतवर्मा व्यराजत ॥ २९ ॥
वर्षेण क्लेदितो राजन् यथा गैरिकपर्वतः । अथान्यद्धनुरादाय
समार्गणगुणं प्रभुः ॥ ३० ॥ शिखण्डिनं बाणवरैः स्कन्धदेशे
व्यताडयत् । स्कन्धदेशस्थितैर्बाणैः शिखण्डी तु व्यराजत ॥३१॥
शाखाप्रशाखाविपुलः सुमहान् पादपो यथा । तावन्योऽन्यं भृशं

ऐसा कहकर उसने सोनेकी पूँछवाले और बड़ेही तेज नौ बाण कृतवर्माके मारे, हे राजेन्द्र ! वे बाण हार्दिक्यके कवचके ऊपरसे नीचे गिरनेलगे, अपने मारेहुए बाणोंको भूमिपर गिरतेहुए देख कर शिखंडीने छुरीकेसी धारवाला एक तेज बाण मारकर कृत-वर्माके धनुषको काटडाला, धनुषके कटजाने पर कृतवर्मा सींग टूटेहुए बैलकी समान बलशून्य होगया ॥ २५-२७ ॥ फिर शिखण्डीने क्रोधमें भरकर कृतवर्माकी दोनों भुजाओंमें और छातीमें अस्सी बाण मारे, बाणोंसे विंधजाने पर कृतवर्मा कोपमें भरगया ॥ २८ ॥ जैसे घड़ेके मुखमेंसे जल गिरता हो तैसेही उसके सब अङ्गोंमेंसे रुधिर बहने लगा, हे राजन् ! रुधिरसे न्हायाहुआ कृतवर्मा पानीसे भीगेहुए गेरुआ रङ्गके पहाड़सा दीखने लगा, फिर राजा कृतवर्माने प्रत्यञ्चावाला दूसरा धनुष हाथमें लिया ॥ २९ ॥ ३० ॥ और शिखण्डीके कण्ठमें बाणमारनेलगा कण्ठमें घुसेहुए बाणोंसे शिखंडी शाखा और प्रशाखाओंसे फैले हुएबड़ेभारी वृक्षकी समान दीखनेलगा, उस समय दोनों योधा एक दूसरेको बाणोंसे खूब बींधकर लोहूलुहान होरहे थे और

विध्वा रुधिरेण समुक्षितौ ॥ ३२ ॥ अन्योऽन्यशृंगाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव । अन्योऽन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ ३३ रथाभ्याञ्चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः । कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ॥ ३४ ॥ रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः । ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ॥ ३५ ॥ जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः । स तेनाभिहतो राजन् मूर्च्छामाशु समाविशत् ॥ ३६ ॥ ध्वजयष्टिञ्च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः । अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम् ॥ ३७ ॥ हार्दिक्यशरसन्तप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः । पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो । व्यद्रवत् पाण्डवी सेना व्यधमाना समन्ततः ३८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शिखण्डयपयानेषड्विंशोऽध्यायः २६

सींग मारनेसे लोहूलुहान हुए दो बैलोंकी समान मालूम होते थे, दोनों महारथी एक दूसरेको मारनेका उद्योग कररहे थे ३१-३३ और दोनों वार२ रथोंका मण्डल बनाकर घूमरहे थे, हे महाराज! कृतवर्माने सानपर धरकर तेजकिये हुए सोनेकी पूँछवाले सत्तर बाण मारकर शिखण्डीको बींधडाला और वह इतना ही कहके बैठरहा, किन्तु महायोधा कृतवर्माने युद्धमें जोरमें भरकर फुरतीके साथ शिखण्डीके प्राणनाश करनेवाला भयङ्कर बाण मारा, उस बाणके लगनेसे शिखण्डीको तुरन्त मूर्छा आगयी ॥ ३४-३६ ॥ उसने विह्वल होकर एकसाथ ध्वजाके दण्डेको पकड़लिया, तुरन्त ही उसका सारथी महारथी शिखंडीको रणमेंसे दूर लेगयेया, द्रुपदका वीर पुत्र शिखंडी कृतवर्माके बाणका प्रहार लगनेसे बड़ा सन्तप्त होरहा था, वारम्बार साँस छोड़रहा था और हे प्रभो ! तुरन्त ही चारों ओरसे मार खाती हुई पांडवोंकी सेना रणमेंसे भागगयी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । श्वेताश्वोऽपि महाराज व्यधमत्तावकं बलम् । यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः ॥ १ ॥ प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्त्तास्तं शिवयः कौरवैः सह । शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं महत् ॥ २ ॥ सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः सुतञ्जयः । सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत ॥ ३ ॥ त्रिगर्त्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः । पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः ४ व्यसृजन्त शरव्रातान् किरन्तोऽर्जुनमाहवे । अभ्यवर्तन्त सहसा वार्योघा इव सागरम् ॥ ५ ॥ ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः । अगच्छन् विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः ॥ ६ ॥ ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे । हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम् ॥ ७ ॥ सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि

सञ्जयने कहा कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! जैसे वायु रुईके ढेरको चारों ओर बखेरदेता है, तैसेही श्वेत घोड़े वाला अर्जुन तुम्हारी सेनाको चारों ओरको भगानेलगा ॥ १ ॥ इस समय त्रिगर्तदेशके राजे, कौरव, शिविदेशके राजे, शाल्व और संशप्तक तथा नारायणनामक बड़े भारी सेनादलके योधा अर्जुन पर चढ़ गए ॥ २ ॥ हे भारत ! सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, सुतञ्जय, सौश्रुति, चित्रसेन, मित्रवर्मा, भाइयोंसे घिराहुआ त्रिगर्तराज और महाधनुर्धर अनेक प्रकारके शस्त्रोंमें चतुर उसके पुत्र, ये सब रणमें अर्जुन पर बाण बरसाने लगे और जलका अहला जैसे समुद्रकी ओरको जाता है, तैसेही वे अर्जुनके ऊपर धँसगए ३-५ जैसे गरुड़के सामने जाकर सर्प नष्ट होजाते हैं, तैसेही वे सैकड़ों और हजारों योधा अर्जुनसे टकराकर नष्ट होनेलगे ॥ ६ ॥ जैसे भुनगे नष्ट होतेहुएभी अग्निको नहीं छोड़ते, तैसे ही वे योधा पिटने पर भी अर्जुनको नहीं छोड़ते थे ॥ ७ ॥ युद्धमें सत्यसेनने तीन, मित्रदेवने तरेसठ, चन्द्रसेनने सात, मित्रवर्माने तिहत्तर

पाण्डवम् । मित्रदेवस्त्रिषष्टया तु चन्द्रदेवस्तु सप्तभिः ॥ ८ ॥
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः । शत्रुञ्जयस्तु विंशत्या
सुशर्मा नवभिः शरैः ॥६॥ स विद्धो बहुभिः संख्ये प्रतिविव्याध
तान् नृपान् । सौश्रुतिं सप्तभिर्विध्वा सत्यसेनं त्रिभिः शरैः १०
शत्रुञ्जयञ्च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाष्टभिः । मित्रदेवं शतेनैव श्रुत-
सेनं त्रिभिः शरैः ॥११॥ नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाष्टभिः ।
शत्रुञ्जयञ्च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः ॥ १२ ॥ सौश्रुतेः
सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् । त्वरितश्चन्द्रदेवञ्च शरैर्निन्ये
यमक्षयम्॥१३॥ तथेतरान्महाराज यतमानान्महारथान् । पञ्चभिः
पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत् ॥१४॥ सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं
व्यसृजन्महत् । समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च ॥१५॥
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः । अयस्मयो हेमदण्डो

सौश्रुतिने सात, शत्रुञ्जयने वीस, और सुशर्माने नौ बाण मारकर अर्जुनको घायल करदिया ॥ ८–६ ॥ बहुतोंके बाणोंसे घायल होनेपर अर्जुनने भी सौश्रुतिको सात, सत्यसेनको तीन, शत्रुञ्जयको वीस, चन्द्रदेवको आठ, मित्रदेवको सौ, श्रुतिसेनको तीन, मित्रवर्माको नौ, सुशर्माको आठ, इसप्रकार उन राजाओंको बाणोंसे घायल करडाला, फिर उसने राजा शत्रुञ्जयको शिलापर घिसकर तेज कियेहुए बाणोंसे मारकर सौश्रुतिके टोपसहित शिरको धड़से अलग करदिया, फिर फुर्तीले अर्जुनने तीरोंसे चन्द्रदेवको यमराजके घर भेजदिया ॥ १०–१३ ॥ हे महाराज ! दूसरे उद्योग करते हुए महारथियोंमेंसे प्रत्येकको पाँच २ बाण मारकर पीछेको हटादिया ॥ १४ ॥ सत्यसेनने रणभूमिमें बड़े क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णजीके ऊपर बड़ाभारी तोमर मारा और सिंहकी समान गरजने लगा ॥ १५ ॥ कड़े लोहेका और सोनेके दण्डवाला वह तोमर महात्मा श्रीकृष्ण

जगाम धरणीं तदा ॥ १६ ॥ माधवस्य तु विद्धस्य तोम-
रेण महारणे । प्रतोदः प्रापतद्धस्ताद्रश्मयश्च विशाम्पते ॥ १७ ॥
वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनञ्जयः । क्रोधमाहारयत्तीव्रं
कृष्णञ्चेदमुवाच ह ॥ १८ ॥ प्रापयाश्वान्महाबाहो सत्यसेनं प्रति
प्रभो । यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥ प्रतोदं
गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा । वाहयामास तानश्वान् सत्य-
सेनरथं प्रति ॥ २० ॥ विष्वक्सेनन्तु निर्भिन्नं दृष्ट्वा पार्थो धन-
ञ्जयः । सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः ॥ २१ ॥ ततः
सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः । कुण्डलोपचितं कायाच्च-
कर्त्त पृतनांतरे ॥ २२ ॥ तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाचि-

की दाहिनी भुजाको घायल करके पृथिवी पर जापड़ा ॥ १६ ॥
और हे राजन् ! महारणमें तोमर लगनेके कारण श्रीकृष्णजीके
हाथमेंसे चाबुक और घोड़ोंकी बागडोरें गिरपड़ीं ॥ १७ ॥ तोमर
लगनेके कारण श्रीकृष्णजीका शरीर घायल हुआ देखकर अर्जुन
को बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने श्रीकृष्णजीसे यह कहा, कि १८
हे प्रभो ! हे महाबाहु कृष्ण ! आप मेरे घोड़ोंको हाँककर सत्य-
सेनके समीप लेचलिये तो मैं तीखे बाण मारकर उसको यमपुरी
में पहुँचाऊँ ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णजीने दूसरी चाबुक और घोड़ोंकी
बागडोरोंको पहलेकी समान हाथमें लेकर घोड़ोंको सत्यसेनके
रथकी ओरको हाँका ॥ २० ॥ ज्योंही घोड़े सत्यसेनके रथके
पास पहुंचे, कि—महारथी अर्जुन श्रीकृष्णको सत्यसेनके बाणसे
घायल हुआ देखकर तीक्ष्णबाण मारनेलगा और पहलेही सपाटे
में सत्यसेनको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ २१ ॥ और फिर तेज
कियेहुए तीखे भाले मारकर उस राजाका कुण्डलों सहित बड़ा
मस्तक रणमें धड़परसे उड़ादिया ॥ २२ ॥ सत्यसेनका शिर
काटनेके अनन्तर तेज कियेहुए बाण मारकर मित्रवर्माको शीघ्र

पत् । वत्सदंतेन तीक्ष्णेन सारथिश्चास्य मारिष ॥ २३ ॥ ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान् बली । पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २४ ॥ ततो राजतपुंखेन राजन् शीर्षं महात्मनः । मित्रसेनस्य चिच्छेद क्षुरमेण महारथः ॥ २५ ॥ सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत् । ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ २६ ॥ शस्त्रोघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश । अभ्यर्दितस्तु तैर्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २७ ॥ ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः । ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् विशाम्पते ॥२८॥ ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणाञ्च मारिष । रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह ॥ २९ ॥ अक्षाणामथ

दिया और उसके सारथीके बछड़ेके दाँतसे मढ़ाहुआ एक तीखा बाण मारा ॥ २३ ॥ और बली अर्जुनने क्रोधमें भरकर फिर संशप्तकोंके मण्डलके सैंकड़ों बाण मारे और उसकी सैंकड़ों तथा हजारों टुकड़ियोंको रणभूमिमें सुलादिया ॥ २४ ॥ और फिर हे राजन् ! महारथी अर्जुनने चाँदीकी पूँछवाला क्षुरप्र नामका बाण मारकर महात्मा मित्रसेनका शिर काट डाला ॥ २५ ॥ और फिर महाक्रोधमें भरकर सुशर्माकी हँसली पर बाण मारा, इस समय सब संसप्तक खलबला उठे और अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर उसके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करनेलगे; उन्होंने दशों दिशाओंमें दुन्द मचादिया, इस समय संशप्तकोंके हाथसे अर्जुनको चारों ओरसे बड़ी पीड़ा सहनी पड़ी थी, इन्द्रकी समान पराक्रमी, महारथी और गंभीरबुद्धि वाले अर्जुनने ज्योंही इन्द्रास्त्रको प्रकट किया, कि–हे राजन् ! उस अस्त्रमेंसे हजारों बाण निकलने लगे ॥ २६——२८ ॥ हे राजन् ! इस समय रणभूमिमें नष्ट होतेहुए रथ, पताका, धनुष, भाथे, जुए, धुरी, पहिये, जोत, रासें, ढांच, रथके नीचेके काठ,

चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिः सह । कूबराणां वरूथानां पृषत्का-
नाञ्च संयुगे ॥ ३० ॥ अश्वानां पततांश्चापि प्रासानामृष्टिभिः
सह । गदानां परिघाणां च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥३१॥ शतघ्नीनां
सचक्राणां भुजानां चोरुभिः सह । कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयू-
राणां च मारिष ॥ ३२ ॥ हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च
भारत । छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ॥ ३३ ॥
अश्रूयत महाञ्छब्दस्तत्र तत्र विशाम्पते । सकुण्डलानि स्वक्षीणि
पूर्णचन्द्रनिभानि च ॥ ३४ ॥ शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजाल-
मिवाम्बरे । सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च ॥ ३५ ॥
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले । गन्धर्वनगराकारं घोर-
मायोधनं तदा ॥ ३६ ॥ निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः ।
हस्तिभिः तुरंगैश्चैव पतितैश्चाभवन्मही ३७अगम्यरूपा समरे विशी-

बाण, गिरतेहुए घोड़े, प्रास, ऋष्टि, गदा, परिघ, शक्ति, तोमर,
पट्टिश, शतघ्नी, चक्र, हाथ, साँथल, कण्ठकी मालायें बाजूबन्द,
कड़े, हार, कठले, कवच, छत्र, पंखे शिर और मुकुटोंका बड़ा
भारी शब्द होरहा था, आकाशमें जैसे तारागणोंके जाल दीखते
हैं तैसे ही रणभूमिमें, कुण्डलोंवाले, और सुन्दर नेत्रोंवाले पूर्णिमा
के चन्द्रमाकी समान योधाओंके मस्तक लुड़कतेहुए दीखरहे थे,
सुन्दर हार पहिरे, सुन्दर वस्त्रोंवाले और चन्दनसे चर्चित, मरे
हुए योधाओंके शरीर भी रणभूमिमें पड़ेहुए दिखायी देरहे थे,
ऐसे २ अनेकों दृश्योंके कारण उस समय वह रणभूमि गन्धर्वनगर
की समान अलौकिक और भयानक होरही थी ॥२९—३६॥
इस युद्धमें महाबली राजकुमार, क्षत्रिय, हाथी और घोड़े मरकर
भूमिमें पड़े हुए थे, उनसे पृथिवी खचाखच भरीहुई थी और जैसे
पहाड़ोंके टूटपड़नेसे भूमि अगम्य होजाती है, ऐसेही योधाओंके
शवोंसे अगम्य होरही थी, रणभूमिमें शत्रुपक्षके योधाओंका तथा

गोरिव पर्वतैः । नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥ निघ्नतः शात्रवान् भल्लैर्हस्त्यश्वञ्चास्यतो महत् । स्वानुगा इव सीदन्ति रथचक्राणि मारिष ॥ ३९ ॥ चरतस्तस्य संग्रामे तस्मिंल्लोहितकर्द्दमे । सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ॥४०॥ श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः । वध्यमानन्तु तत् सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ॥४१॥ प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठति भारत । ताञ्जित्वा समरे जिष्णुः संशप्तकगणान् बहून् । विरराज तदा पार्थ विधूमोऽग्निरिवोज्ज्वलन् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनविजये
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच । युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान् बहून । स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥१॥ तमापतन्तं सहसा

हाथी घोड़े आदि सेनाका बड़ाभारी संहार करतेहुए महात्मा अर्जुनके रथके पहियोंको चलनेके लिये मार्गभी नहीं रहा था, हे राजन् ! जैसे अधिपति राजाके मरजाने पर उसके अधीन रहनेवाले सेवक दुःखी होते हैं, ऐसेही रथोंके टूटजानेसे पहिये निकम्मे पड़े थे ॥ ३७–३९ ॥ रणभूमिमें रुधिरकी कीच होरही थी, उस कीचमें अर्जुनके रथके पहिये औंदगये थे, उनको मन और पवनकी समान वेगवाले घोडे बड़े परिश्रमसे खेंच रहे थे और रथमें बैठाहुआ धनुषधारी अर्जुन संशप्तकोंकी सेनाका संहार किये चलाजारहा था, इसकारण हे भरतवंशी राजन् ! संशप्तकोंकी सब सेना खड़ी न रहसकी, वहुतसी सेना रणमेंसे पीछेको हटनेलगी, अर्जुनने संशप्तकोंके वहुतसे मण्डलोंको उस संग्राममें हरादिया, उस समय वह धुआँरहित प्रज्वलित हुए अग्निसा शोभा पारहा था ॥ ४०–४२ ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त २७

संजय कहता है, कि–हे भरतवंशी राजन ! राजा युधिष्ठिर रणभूमिमें वडे वाण छोड़रहे थे, उनके ऊपर राजा दुर्योधनने

तव पुत्र महारथम् । धर्मराजो द्रुतं विध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् २
स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः । सारथिञ्चास्य भल्लेन
भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥३॥ ततो युधिष्ठिरो राजा स्वर्णपुंखान्
शिलीमुखान् । दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ४ ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः । पञ्चमेन शिरः कायात्
सारथेस्तु समाक्षिपत् ॥ ५ ॥ षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु
कार्मुकम् । अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ॥ ६ ॥ पञ्च-
भिर्नृपतिञ्चापि धर्मराजोऽर्दयद्भृशम् । हताश्वात्तु रथात्तस्मादव-
प्लुत्य सुतस्तव ॥ ७ ॥ उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत ।
तन्तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ॥ ८ ॥ अभ्यवर्त्तन्त सहसा

स्वयं ही निर्भय पुरुषकी समान धावा किया ॥ १ ॥ तुम्हारे महा-
रथी पुत्र दुर्योधनको एकाएकी अपने ऊपर चढकर आयाहुआ
देख कर धर्मराज युधिष्ठिरने तुरन्तही उसको बाणोंसे बींधडाला
और कहा, कि-अरे दुर्योधन ! खड़ा रह, खड़ा रह ॥ २ ॥
इससे दुर्योधन बड़े क्रोधमें भरगया और उसने धर्मराजके तेज
कियेहुए नौ बाण मारे तथा उनके सारथीके एक भाला मारा ३
तबतो राजा युधिष्ठिरने सोनेकी पूँछवाले और सानपर धरकर
तेज कियेहुए तेरह बाण दुर्योधनके मारे ॥ ४ ॥ और चार
बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको बींधकर मारडाला तथा पाँचवें
बाणसे सारथीका शिर काटडाला ॥ ५ ॥ छठे बाणसे उसकी
ध्वजाको काटडाला, सातवें बाणसे उसके धनुषको काटडाला,
आठवें बाणसे उसकी तलवारके टुकड़े करके उसको भूमि पर
गिरादिया ॥ ६ ॥ तथा धर्मराजने और पाँच बाण मारकर
राजा दुर्योधनको बहुतही दुःखी किया तब जिसके घोडे मरगये
थे ऐसा राजा दुर्योधन रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और भूमिपर
खड़ा होगया तब राजा दुर्योधनको कष्टमें पड़ाहुआ देखकर

परीप्सन्तो नराधिपम् । अथ पाण्डुसुता सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ९ ॥ अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत । ततस्तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ॥ १० ॥ ततः किलिकिलाशब्दाः प्रादुरासन्महीपते । यत्राभ्यगच्छन् समरे पञ्चालाः कौरवैः सह ११ नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः । रथाश्च रथिभिः सार्द्धं हयाश्च हयसादिभिः ॥ १२ ॥ द्वंद्वान्यासन्महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे । विविधान्यप्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥ १३ ॥ ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च । अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैपिणः ॥ १४ ॥ अन्योऽन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः । न हि ते समरश्चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन ॥ १५ ॥ मुहूर्त्तमेव तद्यु-

---

कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि दुर्योधनको चारों ओर खोजते खोजते एकायकी उसके पास आपहुँचे और उसको चारों ओर से घेरकर खड़े होगये, उधर सब पांडव युधिष्ठिरको घेरकर आसपास खड़े थे हे राजन् ! दोनों पक्षमें बड़े जोरके साथ युद्ध होनेलगा, उस महासंग्राममें सहस्रों तुरी (बिगुल) बजने लगीं ॥ ७-१० ॥ हे राजन् ! जहाँ पंचालदेशके सरदारोंका कौरवोंके सरदारोंके साथ मुचैटा होरहा था, तहाँ बड़ा ही कोलाहल मच रहा था ॥ ११ ॥ पैदल पैदलोंके साथ लड़ने लगे, उत्तम हाथी उत्तम हाथियोंके साथ लड़ने लगे, रथी रथियोंके साथ भिड़गये तथा घुड़सवार घुडसवारोंके साथ लड़ने लगे, हे महाराज ! युद्धमें जैसे २ उत्तम प्रकारके, बढ़िया शस्त्रोंवाले, अनेकों प्रकारके द्वन्द्वयुद्ध होनेलगे, वैसे युद्ध किसीके विचारमें भी नहीं आसकते ॥ १२-१३ ॥ वे सब वीर बड़े वेगमें भरेहुए थे, एक दूसरेका नाश करना चाहते थे वे बडी ही चालाकी और फुरतीसे शोभाके साथ रणभूमिमें लड़रहे थे १४ वे योधाओंके धर्मके अनुसार रणभूमिमें परस्परका संहार कर

द्धमासीन्मधुरदर्शनम् । तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्त्तत ॥१६॥ रथी नागं समासाद्य दारयन्निशितैः शरैः । प्रेषयामास कालाय शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७ ॥ नागा हयान् समासाद्य विक्षिपन्तो बहून्रणे । दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा ॥ १८ ॥ हयारोहाश्च बहवः परिवार्य हयोत्तमान् । तलशब्दरवांश्चक्रुः सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥ १९ ॥ धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणान महागजान् । पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः ॥२०॥ विद्राव्य च बहूनश्वान्नागा राजन्मदोत्कटाः । विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥ २१ ॥ साश्वारोहाश्च तुरगान् विषाणैर्विव्यधू रुषा । अपरे चिक्षिपुर्वेगात् प्रगृह्यातिबलास्तदा ॥ २२ ॥

रहे थे, परन्तु पीठ फेरनेवालेके साथ किसी प्रकारका भी युद्ध नहीं कररहे थे ॥ १५ ॥ ऐसा सुन्दर दर्शनीय युद्ध केवल दो घड़ीतक ही चला, फिर योधा पागल मनुष्यकी समान मर्यादा छोड़कर आपसमें लड़नेलगे ॥ १६ ॥ रथी हाथीसवारोंको तेज बाण मारकर घायल करनेलगे और नमेहुए बाण मारकर सामने के योधाओंको यमलोकमें भेजनेलगे ॥ १७ ॥ उस समय हाथी जहाँ तहाँ बहुतसे घोड़ोंके साथ जुटेहुए थे और बड़ी ही उग्रताके साथ उनका संहार कररहे थे ॥ १८ ॥ बहुतसे घुड़सवार चारों ओरसे चढ़कर आनेलगे और श्रेष्ठ घुड़सवारोंको घेरकर चारों ओरसे तालियें बजानेलगे ॥ १९ ॥ ऐसे ही कितने हाथी सवार हाथियोंके सहित भागने भी लगे, तब घुड़सवार उनके पीछे पड़कर पीछेसे और दायें बायेंसे प्रहार करने लगे ॥२०॥ हे राजन् ! कितने ही हाथी मदसे प्रचण्ड होकर बहुतसे घोड़ोंको भगाने लगे, कितने ही दाँतोंसे मारनेलगे,कितने ही घोड़ोंको खूब कुचलनेलगे॥२१॥ कितने ही हाथी क्रोधमें भरकर अपने दाँतोंसे घुड़सवारोंको और घोड़ोंको मारने लगे और कितने ही महाबली हाथी घोड़ों

पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः।चक्रुरार्त्तस्वरं राजन् दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २३ ॥ पदातीनान्तु सहसा प्रद्रुतानां महाहवे । उत्सृज्याभरणं तूर्णमवप्लुत्य रणाजिने ॥ २४ ॥ निमित्तं मन्य-मानास्तु परिणाम्य महागजाः । जगृहुर्विभिदुश्चैव चित्राण्याभ-रणानि च ॥ २५ ॥ तांस्तु तत्र प्रसक्तान् वै परिवार्य पदातयः । हस्त्यारोहान्निजघ्नुस्ते महावेगा बलोत्कटाः ॥ २६ ॥अपरे हस्ति-भिर्हस्तैः ख विक्षिप्ता महाहवे । निपतन्तो विषाणाग्रैर्भृशं विद्धाः सुशिक्षितैः॥२७॥ अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताम् । सेना-न्तरं समासाद्य केचित्तत्र महागजैः ॥२८॥ क्षुण्णगात्रा महाराज

को तथा घुड़सवारोंको वेगसे पकड़कर ऊपरको उछालनेलगे २२ पैदलोंकी मारसे घबड़ाकर हाथी चारों ओरसे पर्वतोंकी गुफाओं मेंको घुसकर भयानक रूपसे चिंघारने लगे और दशों दिशाओंमें को भागनेलगे ॥ २३ ॥ उस महारणमें कितने ही पैदल गहनों को फेंक२ कर भागनेलगे और कितने ही एकसाथ चारों ओरसे रणाङ्गणमें इकट्ठे होनेलगे ॥ २४ ॥ बड़े२ हाथियों पर बैठेहुए कितने ही योधा विजयका कारण मान हाथियोंको नचातेहुए उनको विचित्र प्रकारके आभूषण तथा अन्य पदार्थ ग्रहण कराने लगे और शत्रुओंका हाथियोंसे नष्टकराने लगे ॥ २५ ॥ शत्रुओं का नाश करनेमें लगेहुए उन हाथियोंके सवारोंको, महावेग-वान् और बलवान् दूसरे हाथियोंके सवार घेरकर उनका नाश करनेलगे ॥ २६ ॥ कितनेही हाथी रणभूमिमें शूँडोंसे शत्रुओं को आकाशमेंको उछालरहे थे और वे ज्योंही नीचे गिरते थे, कि—सुशिक्षित हाथी, दांतोंकी नोकें भोंककर उनको बींधडालते थे ॥ २७ ॥ तथा कितनोंहीको तुरन्त पकडकर दांतोंके प्रहारसे मार डालते थे, हे महाराज! बड़े२ हाथी सेनामें घुसकर कितने ही योधाओंको वारम्वार भूमिपर पटकतेहुए उनके शरीरोंको

विक्षिप्य च पुनः पुनः। अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे ॥ २९ ॥ पुरःसराश्च नागानामपरेषां विशाम्पते। शरीराण्यतिविद्धानि तत्र तत्र रणाजिरे ॥ ३० ॥ प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे। निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः ३१ निगृह्य च गजाः केचित् पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः। रथाश्वसादिभिस्तत्र संभिन्ना न्यपतन्भुवि ॥ ३२ ॥ सहसा सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे। भूमावमृद्नन् वेगेन सचर्माणं पदातिनम् ॥ ३३ ॥ तथा सावरणान् कांश्चित्तत्र तत्र विशाम्पते। रथान्नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष ॥ ३४ ॥ व्याक्षिपन् सहसा तत्र घोररूपे भयानके। नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतु महाबलाः ॥ ३५ ॥

शुरकस करडालते थे और कितने ही मुख्य हाथियोंके सवारों को रणभूमिमें पंखेकी समान घुमाकर मारे डालते थे, इसप्रकार हे राजन्! रणभूमिमें भिन्न२ स्थानों पर हाथियों पर बैठेहुए योधाओंके शरीरोंको घायल कियाजारहा था ॥ २८-३० ॥ योधा, कितने ही हाथियोंके दाँतोंकी फाँटके मध्यमें प्रासोंका, कितने ही हाथियोंके गण्डस्थलोंपर तोमरोंका और कितने ही हाथियोंके होठों पर शक्तियोंका प्रहार करनेलगे ॥ ३१ ॥ दोनों ओर खड़ेहुए महाभयानक रथी और घुडसवार कितने ही हाथियोंको हथियारोंसे घायल कररहे थे और वे हाथी घायल हो होकर पृथिवी पर गिररहे थे ॥ ३२ ॥ और इस संग्राममें घुडसवार,महायुद्धमें ढाल बाँधकर खड़ेहुए पैदलोंको जोरसे तोमर मारकर पृथिवीपर गिरारहे थे ॥ ३३ ॥ हे राजन्! उस घोररूप भयानक युद्धमें हाथी, भिन्न २ स्थानों पर खड़ेहुए और कवच धारण कियेहुए कितने ही रथियोंको सूँडसे ऊपरको उठाकर एकसाथ भूमिपर पटकने लगे और कितने ही महाबली हाथियों के बाणोंका प्रहार कर रहे थे और वे वज्रसे टूटकर गिरे हुए

पर्वतस्येव शिखरं वज्रभग्नं महीतले । योधा योधान् समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन् युधि ॥ ३६ ॥ केशेष्वन्योऽन्यमाक्षिप्य चिक्षिपु-र्विभिदुश्च ह । उद्यम्य च भुजानन्ये निक्षिप्य च महीतले ॥ ३७॥ पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहरच्छिरः । पततश्चापरो राजन् विजहारासिना शिरः ॥ ३८ ॥ जीवतश्च तथैवान्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत् । मुष्टियुद्धं महच्चासीद्योधानां तत्र भारत ॥ ३९ ॥ तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धञ्च भैरवम् । समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथापरः ॥ ४० ॥ जहार समरे प्राणान् नानाशस्त्रैरनेकधा । संसक्तेषु च योधेषु वर्त्तमाने च संकुले ॥ ४१ ॥ कवन्धान्युत्थितानि स्युः शतशोऽथ सहस्रशः । शोणितैः सिच्यमानानि

पर्वतोंके शिखरोंकी समान पृथिवी पर गिररहे थे, कितने ही योधा संग्राममें योधाओंके सामने डटकर मुष्टियुद्ध (घूसमघूसा) कररहे थे ॥ ३४–३६ ॥ और कितने ही आपसमें शिरकी चोटियें पकडकर लडरहे थे और कितने ही एक दूसरेको ऊपरको उछालकर भूमि पर पटक २ कर माररहे थे और कोई अपनी कौलिया फैलाकर शत्रुओंको दबोच २ कर भूमिपर पटक रहे थे तथा सामने आनेवाले शत्रुकी छातीको पैरसे दबाकर उसका शिर काटरहे थे और दूसरे कितने ही योधा अपने ऊपर चढ़कर आयेहुए मनुष्यके शिरको तलवारसे काटलेते थे, और कोई योधा जीवित शत्रुके शरीरमें कटार भोंकरहे थे, हे भरतवंशी राजन् धृतराष्ट्र ! इस संग्राममें योधाओंमें बडाभारी मुष्टियुद्ध भी हुआ था, भयानक केशाकेशि युद्ध भी हुआ तथा महाभयानक बाहुयुद्ध भी हुआ था, कितने ही अवसरोंपर तो आपसमें लडते हुए योधा एक दूसरेको पहचानते भी नहीं थे ॥ ३७–४० ॥ रणभूमिमें अनेकों प्रकारके शस्त्र चलाकर योधा, शत्रुओंके अनेकों

शस्त्राणि कवचानि च ॥ ४२ ॥ महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे । एवमेतन्महायुद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥४३॥ उन्मत्त-गङ्गाप्रतिमशब्देनापूरयञ्जगत् । नैवं स्वे न परे राजन् विज्ञायन्ते शरातुराः ॥ ४४ ॥ योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः । स्वान् स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान् ॥ ४५ ॥ उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत। रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः४६ हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः । अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ ४७ ॥ क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्त्तिनी ।

प्रकारसे प्राण लेरहे थे और आमने सामनेसे डटकर दोनों ओर के योधा खूब जोरसे युद्ध कररहे थे, इस संग्राममें दोनों ओरके योधा खिलगये ॥ ४१ रणभूमिमें सैंकडों और सहस्रों धड युद्ध के आवेशमें उठकर खड़े होजाते थे और उनके शस्त्र तथा कवच रुधिरमें लथडपथड होरहे थे, वे मजीठसे रँगेहुए लाल २ वस्त्रसे दीखरहे थे, इसप्रकार यह महाभयानक युद्ध होरहा था, इस युद्धमें हजारों हथियार उछलरहे थे और यह युद्ध उन्मत्त हुई गङ्गा नदी की समान अपनी गर्जनासे सकल जगत्को शब्दायमान कररहा था, हे राजन् ! इस समय बाणोंकी मारसे घबड़ाये हुए योधा यह अपना है, यह पराया है, इसप्रकार एक दूसरेको पहचानते भी नहीं थे ॥ ४२–४४ ॥ परन्तु क्षत्रिय राजे 'रणमें लडना हमारा धर्म है' ऐसा विचार कर ही विजयकी इच्छासे लडरहे थे और हे महाराज ! अपने पक्षके योधाओंको मारते तथा सामने लडनेको आयेहुए शत्रुओंको भी माररहे थे ॥ ४५ ॥ दोनों पक्षके वीर पुरुषोंसे रणभूमि उफन रही थी, टूटकर गिरेहुए रथोंसे और पृथिवी पर मारकर गिरायेहुए घोड़े, हाथी, घुड-सवार तथा पैदलोंसे रणभूमि एक क्षणमें अगम्य होगयी, चारों ओर रुधिर बहनेलगा, हे राजन् ! इस युद्धमें कर्णने पंचालोंके

पञ्चालानहनत् कर्णस्त्रिगर्त्तांश्च धनञ्जयः ॥४८॥ भीमसेनः कुरू-
न्राजन् हस्त्यनीकञ्च सर्वशः।एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः।
अपराह्णे गते सूर्ये कांक्षतां विपुलं यशः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च।
त्वत्तोऽहं सञ्जयाश्रौषं पुत्राणाञ्चैव संक्षयम् ॥ १ ॥ यथा त्वं
मे कथयसे यथा युद्धञ्च वर्त्तते। न सन्ति सूत कौरव्या इति मे
निश्चिता मतिः ॥ २ ॥ दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः।
धर्मपुत्रः कथञ्चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥ ३ ॥ अपराह्णे कथं
युद्धमभवल्लोमहर्षणम्। तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि

सरदारोंका और अर्जुनने त्रिगर्त्तोंका नाश करडाला ॥४६-४८॥
और भीमसेनने सब कौरव सरदारोंका तथा हाथियोंकी सेनाका
संहार करडाला था इसप्रकार कौरव और पांडवोंकी सेनाने
महायश पानेकी इच्छासे सूर्य ढलनेके समय तक युद्ध किया था,
जिसमें दोनों पक्षोंकी सेनाका यह संहार हुआ था ॥ ४९ ॥
अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ छ ॥

राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय! मैंने तुझसे महाभया-
नक और जो सहे नहीं जासकते ऐसे दुःखदायी बहुतसे वृत्तांत
सुने और अपने पुत्रोंका मारा जाना भी सुना ॥ १ ॥ हे सूत!
तूने मुझसे जैसी बात कही है और रणभूमिमें जिसप्रकार युद्ध
हुआ है, उससे मुझे यही निश्चय होता है, कि-मेरे पुत्र कौरव
अब जीवित नहीं बचसकते ॥ २ ॥ तूने कहा था, कि-रणभूमि
में धर्मराजने महारथी दुर्योधनको रथहीन करदिया था, इसमें
मैं यह बूझता हूँ, कि-धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दुर्योधनको रथहीन
करके फिर उसके साथ युद्ध कैसे किया? ॥ ३ ॥ और तीसरे
पहरके समय रोमाञ्च खड़े करनेवाला युद्ध कैसे हुआ? यह सब

सञ्जय ॥ ४ ॥ सञ्जय उवाच । संसक्तेषु च सैन्येषु युध्यमानेषु भागशः । रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥ क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा । दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ६ ॥ प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत । तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः ॥ ७ ॥ ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः । स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे । ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ९ ॥ सारथिञ्चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः । तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥ १० ॥ समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।

मुझे तू ठीक २ बता ? क्योंकि—हे सञ्जय ! तू कथा कहनेमें कुशल है ॥ ४ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! दोनों ओरकी सेनायें एकसाथ जुटगयीं और विभागके अनुसार सब योधा एक दूसरेका नाश करने लगे, उस समय हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन दूसरे रथमें जावैठा ॥५॥ उस समय विषधर सर्पकी समान महाक्रोधमें भरगया और उसने राजा युधिष्ठिरको देखकर ॥ ६ ॥ अपने सारथीसे कहा, कि—अरे सारथी ! तू बहुत जल्दी चल और जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर खड़े हैं तहाँ मुझे शीघ्र पहुँचा ॥ ७ ॥ इस समय दुर्योधन शरीरपर कवच पहिने हुए था, उसने सारथीको आज्ञा दी, कि—सारथी तत्काल राजा दुर्योधनके रथको रणमें राजा युधिष्ठिरके सामनेको हाँकलेगया, युधिष्ठिर राजा दुर्योधनको सामने आता देखकर मद टपकाने वाले हाथी की समान कोपमें भरगये ॥ ८-९ ॥ और उन्होंने भी अपने सारथीको आज्ञा दी कि—जहां दुर्योधन खड़ा है तहाँ मेरे रथको हाँक कर लेचल तब सारथी युधिष्ठिरको दुर्योधनके समीप लेगया तब उन महारथी दोनों वीर भाइयोंका मुचेटा होगया ॥ १० ॥

ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योऽन्यमाहवे ॥ ११ ॥ ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष । शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥ १२ ॥ तन्नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः ॥१३॥ अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः । अन्यत् कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे । दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ १४ ॥ अथान्यद्धनुरादाय प्रत्यविध्यत पाण्डवम् । तावन्योऽन्यं सुसंरब्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥ १५ ॥ सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया । जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योऽन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥ १६ ॥ अन्तरं मार्गमाणौ च चेरतुस्तौ महारथौ । ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैस्तौ तु कृतव्रणौ ॥ १७ ॥ विरेजतुर्महाराज किंशुकाविव पुष्पितौ । ततो राजन् विमुंचंतौ सिंहनादान्मु-

क्रोधमें भरेहुए और युद्धके मतवाले दोनों शूर आपसमें भिड़कर रणमें एक दूसरेके ऊपर बड़े २ धनुषोंमेंसे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ११ ॥ राजा दुर्योधनने सानपर धरकर तेजकियेहुए भालों से धर्मशील धर्मराजके धनुषको काटडाला ॥ १२ ॥ परन्तु राजा युधिष्ठिर इस अपमानको न सहसके, वे कोपमें भरगये और लाल २ आँखें करके टूटाहुआ धनुष हाथमेंसे नीचे रखदिया और दूसरा धनुष लेकर रणके मुहाने पर खड़े होगये तथा दुर्योधनकी ध्वजा और धनुषको काटडाला ॥ १३-१४ ॥ तब दुर्योधनने दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिरको घायल करदिया और फिर वे दोनों बड़े ही क्रोधमें भरकर शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगे ॥१५॥ वे दोनों दो सिंहोंकी समान बड़े ही आवेशमें भरगये और एक दूसरेका पराजय करनेकी इच्छासे रणमें एक दूसरेके बाण मारनेलगे तथा बैलोंकी समान गर्जना करनेलगे ॥ १६ ॥ एक दूसरेके छिद्र खोजने लगे तथा धनुषको कानतक खींचकर बाण मारने लगे, ऐसा करते हुए एक दूसरेको घायल करनेलगे १७

मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ तलयोश्च तथा शब्दान् धनुषोश्च महाहवे । शंखशब्दस्वरांश्चैव चक्रतुस्तौ नरेश्वरौ ॥ १९ ॥ अन्योऽन्यं तौ महाराज: पीडयाञ्चक्रतुर्भृशम् । ततो युधिष्ठिरो राजा पुत्रं तव शरैस्त्रिभिः ॥ २० ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगैर्दुरासदैः । प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिः ॥ २१ ॥ पञ्चभिर्निशितैर्बाणैः रुक्मपुंखैः शिलाशितैः । ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत ॥ २२ ॥ सर्वपारसवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा । तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शितैः शरैः ॥२३॥ त्रिभिश्छिच्छेद सहसा तञ्च विव्याध पञ्चभिः । निपपात ततः साथ स्वर्णदण्डा महास्वना ॥ २४ ॥ निपतन्ती महोल्केव व्यराजत्

हे महाराज ! इस समय लोहूलुहान हुए वे दोनों फूलोंवाले टेसूके वृक्षसे मालूम होते थे, हे राजन् ! वे दोनों वारंवार सिंह की समान गर्जना कररहे थे ॥ १८ ॥ हाथोंकी तालियें वजारहे थे, महारणमें धनुषों पर टङ्कार दे रहे थे और वे दोनों राजे बड़ी सुन्दरतासे अपनार शङ्ख वजारहे थे ॥ १९ ॥ हे महाराज ! आपसमें एक दूसरेको वडा ही दुःखी कररहे थे, तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने क्रोधमें भरकर वज्रकी समान वेगवाले महाभयानक तीन वाण तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी छातीमें मारे, तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने भी तुरन्त सान पर धरकर तेज कियेहुए सोने की पूँछवाले पाँच वाण युधिष्ठिरके मारे, हे भरतवंशी राजन् ! फिर उसने राजा युधिष्ठिरके ऊपर शक्तिभी मारी ॥२०-२२॥ यह शक्ति सवका संहार करनेवाली, तीखी और वड़े उल्मुककी समान प्रकाश करनेवाली थी, राजा युधिष्ठिरने उस शक्तिको अपने ऊपरको आतीहुई देखते ही तेज कियेहुए तीन वाण मारकर उसके टुकड़े करडाले और सामने दुर्योधनके पाँच वाण मारकर घायल करदिया, सोनेकी दण्डेवाली शक्ति वाण लगते ही वडाभारी शब्द करतीहुई भूमिपर आपडी ॥ २३ ॥ २४ ॥

शिखिसन्निभा । शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते २५
नवभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्निजघान युधिष्ठिरम् । सोऽतिविद्धो वलवता
शत्रूणां शत्रुतापनः ॥२६॥ दुर्योधनं समुद्दिश्य वाणं जग्राह सत्वरः
समाधत्त च तं वाणं धनुर्मध्ये महावलः ॥ २७ ॥ चिक्षेप च
महाराज ततः क्रुद्धः पराक्रमी । स तु वाणः समासाद्य तव
पुत्रं महारथम् ॥ २८ ॥ व्यामोहयत राजानं धरणीञ्च
ददार ह । ततो दुर्योधनः क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगितः ॥ २९ ॥
विधित्सुः कलहस्यान्तं धर्मराजमुपाद्रवत् । तमुद्यतगदं दृष्ट्वा दण्ड-
हस्तमिवान्तकम् ॥ ३० ॥ धर्मराजो महाशक्तिं प्राहिणोत्तव
सूनवे । दीप्यमानां महावेगां महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३१ ॥

अग्निकी समान नीचे पडीहुई वह शक्ति वडीभारी उल्कासी मालूम होती थी, हे राजन्! शक्तिके टुकडेहुए देखकर तुम्हारे पुत्रने तेज कियेहुए नौ भाले राजा युधिष्ठिरके मारे, जब वलवान् शत्रुने राजा युधिष्ठिरको अत्यन्त घायल करदिया, तव शत्रुको ताप देनेवाले राजा युधिष्ठिरने शीघ्र ही दुर्योधनकी ओरको देखकर एक वाण हाथमें लिया, महावली राजा युधिष्ठिरने उस वाणको धनुष पर चढ़ाया ॥ २५-२७ ॥ और हे महाराज ! उस पराक्रमी राजाने वड़े कोपमें भरकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके वह वाण मारा, वह वाण तुम्हारे महारथी पुत्रको घायल और मोहित करके फिर पृथिवीको फोड़कर उसमें घुसगया, तुम्हारा पुत्र भी वड़े ही कोपमें भरगया और उस युद्धको समाप्त करनेकी इच्छासे गदा उठाकर वड़े वेगसे धर्मराजकी ओरको दौड़ा, हाथ में दण्ड लेकर आतेहुए कालकी समान गदा तानकर आतेहुए तुम्हारे पुत्रको देखकर धर्मराजने तुम्हारे पुत्रके ऊपर वडीभारी शक्ति छोड़ी, वह शक्ति प्रकाशमयी, वड़े वेगवाली और वलती हुई वड़ीभारी उल्कासी मालूम होती थी ॥ २८-३१ ॥ उस

रथस्थः स तया विद्धो वर्म भित्वा स्तनान्तरे । भृशं संविग्नहृदयः पपात च मुमोह च ॥ ३२ ॥ भीमस्तमाह च ततः प्रतिज्ञामनुचिन्तयन् । नायं वध्यस्तव नृप इत्युक्तः संन्यवर्त्तत ॥ ३३ ॥ ततस्त्वरितमागम्य कृतवर्मा तवात्मजम् । प्रत्यपद्यत राजानं निमग्नं व्यसनार्णवे ॥ ३४ ॥ गदामादाय भीमोऽपि हेमपट्टपरिष्कृताम् । अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे ॥ ३५ ॥ एवं तदभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह । अपराह्णे महाराज कांक्षतां विजयं युधि ३६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुर्योधनयुधिष्ठिरयुद्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सञ्जय उवाच । ततः कर्णं पुरस्कृत्य त्वदीया युद्धदुर्मदाः । पुनरावृत्य संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम् ॥१॥ द्विरदनररथाश्वशंख-

गदाकी मारसे दुर्योधनका कवच टूटगया और रथमें बैठेहुए राजा दुर्योधनके हृदय पर उस गदाका प्रहार होनेसे उसके हृदयमें बड़ीभारी पीड़ा होनेलगी और वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिरपड़ा ॥ ३२ ॥ भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञाको याद करके धर्मराजसे कहा, कि-आप इस दुर्योधनको न मारिये, क्योंकि-इसकी मृत्यु मेरे हाथसे होनी है, यह सुनकर राजा युधिष्ठिर पीछेको लौट आये ॥ ३३ ॥ इतनेमें ही दुःखरूप सागरमें डूबे हुए तुम्हारे पुत्रके पास कृतवर्मा दौड़कर आपहुँचा ॥ ३४ ॥ तब भीमसेन भी सोनेकी पत्तरसे जड़ीहुई गदा लेकर युद्धमें बड़े वेग से कृतवर्माके सामनेको दौड़ आया ॥३५॥ हे महाराज ! युद्धमें विजय चाहनेवाले तुम्हारे पुत्रोंका इसप्रकार शत्रुओंके साथ वह युद्ध हुआ था ॥ ३६ ॥ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

संजय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पक्षके युद्ध के दुर्मद पुरुष कर्णको आगे करके फिर लड़नेके लिये चढ़आये तथा देवता और असुरोंकी समान भयङ्कर संग्राम करनेलगे ॥१॥

शब्दैः परिहृषिता विविधैश्च शस्त्रपातैः । द्विरदरथपदातिसादिसंघाः परिकुपिताभिमुखाः प्रजघ्निरे ते ॥२॥ शितपरश्वधसासिपट्टिशैरिषुभिरनेकविधैश्च सूदिताः । द्विरदरथहया महाहवे वरपुरुषैः पुरुषाश्च वाहनैः ॥ ३ ॥ कमलदिनकरेन्दुसन्निभैः सितदशनैः सुमुखाक्षिनासिकैः । रुचिरमुकुटकुण्डलैर्मही पुरुषशिरोभिरास्तृता बभौ ॥ ४ ॥ परिघमुसलशक्तितोमरैर्नखरभुशुण्डिगदाशतैर्हताः । द्विरदनरहयाः सहस्रशो रुधिरनदीप्रवहास्तदाभवन् ॥ ५ ॥ प्रहतरथनराश्वकुञ्जरं प्रतिभयदर्शनमुल्बणव्रणम् । तदहितहतमाबभौ बलं पितृपतिराष्ट्रमिव प्रजाक्षये ॥ ६ ॥ अथ तव नरदेव सैनिकास्तव च सुताः सुरसूनुसन्निभाः । अमितबल-

---

हाथी, घोड़े, रथ, पैदल तथा घुड़सवारोंकी टोलियें, हाथी, मनुष्य रथ, घोड़े और शस्त्रोंके शब्द सुनकर तथा भाँति २ के हथियारोंके प्रहारोंको सहकर बड़े हर्षमें भरगये और बड़े क्रोधके साथ एक दूसरेके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ २ ॥ इस महासंग्राम में वीर पुरुष तेज फरसे, तलवार, पट्टिश तथा भाँति २ के बाणों से हाथीसवार, रथी, घुड़सवार तथा अनेकों वाहनों पर बैठने वाले योधाओंका संहार करनेलगे ॥ ३ ॥ कमल, सूर्य और चन्द्रमाकी समान तेजस्वी मुखवाले, श्वेत दाँत, सुन्दर मुख आँख और नाकवाले, मनोहर मुकुट और कुण्डलोंवाले वीर पुरुषोंके मस्तकोंसे ढकीहुई पृथिवी उस समय अलौकिक दीखने लगी ॥ ४ ॥ उस युद्धके समय सहस्रों हाथी, योधा तथा घोड़े सैंकड़ों परिघ, मूसल, शक्ति, तोमर, नखर, भुशुण्डी और गदाओंकी मारसे मरकर रुधिरकी नदीमें तैरनेलगे ॥ ५ ॥ सेनामें रथ, योधा, घोड़े और हाथी मरनेलगे और योधाओंके शरीर घायल होगये, इसलिये शत्रुओंकी मारीहुई वह सेना, प्रजाके संहारके समय यमराजके देशकी समान भयानक दीखती थी॥६॥

पुरःसरा रणे कुरुवृषभाः शिनिपुत्रमभ्ययुः ॥ ७ ॥ तदतिरुधिरभीममार्चभौ पुरुषवराश्वरथद्विपाकुलम् । लवणजलसमुद्धतस्वनं बलमसुरामरसैन्यसन्निभम् ॥ ८ ॥ सुरपतिसमविक्रमस्ततस्त्रिदशवरावरजोपमं युधि । दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ॥ ६ ॥ तमपि सरथवाजिसारथिं शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन् । भुजगविषसमप्रभै रणे पुरुषवरं समवास्तृणोत्तदा ॥ १० ॥ शिनिवृषभशरैर्निपीडितं तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः । त्वरितरथा रथर्षभं द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥ ११ ॥ तदुदधिनिभमाद्रवद्बलं त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः । द्रुपदसुतमुखैस्तदाभवत्पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान् ॥ १२ ॥ अथ पुरुषप्रवरौ

अरुणदेवकी समान बलवान् तुम्हारे पुत्र कौरव, राजाओंकी सेनाओंको तथा अपनी अपार सेनाको साथ लेकर रणमें खड़े हुए शिनिपुत्रके साथ लडनेको चलदिये ७ इस समय वह सेना वीर पुरुष, घोड़े, रथ और हाथियोंसे भरपूर थी, उछलतेहुए खार समुद्रकी समान गरज रही थी, देवदानवोंकी सेनाकी समान दमक रही थी और रुधिरकी धारायें बहनेसे भयानक दीखरही थी ॥ ८ ॥ युद्धका आरम्भ होनेपर इन्द्रकी समान पराक्रमी सूर्यपुत्र कर्णने सूर्यकी किरणोंकी समान कान्तिवाले बाण विष्णुकी समान वीर शिनिपुत्रके मारे ॥ ६ ॥ तब शिनिके श्रेष्ठ पुत्रने फुरतीसे विषधर साँपोंकी समान तीखे बाण मारकर रणमें खड़े हुए महापुरुष कर्ण, उसके रथ, घोड़े और सारथिको ढकदिया १० जब शिनिकुलके ज्येष्ठ पुत्रके बाणोंसे महारथी कर्ण बिंधगया तब तुम्हारे अतिरथी सम्बन्धी और मित्र, हाथी घोड़े रथ और पैदलों सहित शीघ्रतासे कर्णके पास आये ॥ ११ ॥ और तुम्हारे पुत्रोंका समुद्रकी समान बड़ाभारी सेनादल भी उस समय उसके पीछे२ गया, उसी समय राजा द्रुपदके पुत्र आदि शत्रु बड़े वेगसे

कृताह्निकौ भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् । अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥ १३ ॥ जलदनिनदनिःस्वनं रथं पवनविधूतपताककेतनम् । सितहयमुपयान्तमन्तिकं कृतमनसो ददृशुस्तदारयः ॥ १४ ॥ अथ विस्फार्य गाण्डीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः । शरसंबाधमकरोत् खं दिशः प्रदिशस्तथा ॥ १५ ॥ रथान् विमानप्रतिमान् भञ्जयन् सायुधध्वजान् । ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत् ॥ १६ ॥ गजान् गजप्रयन्तृंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान् । सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १७ ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम् । दुर्यो-

तुम्हारी सेनाके पीछे दौड़े और उन्होंने योधा, रथ, घोड़े और हाथियोंका बड़ी संख्यामें संहार करना आरंभ करदिया १२ इतने समयमें महापुरुष श्रीकृष्ण और अर्जुनने नित्यकर्मसे निवट कर शास्त्रमें कहीहुई विधिसे भगवान् शङ्करका पूजन किया और शत्रुओंका नाश करनेका निश्चय करके वे दोनों तुरन्त तुम्हारी सेनाके ऊपर चढ़आये ॥ १३ ॥ इस समय स्वेत घोड़ों से जुड़ा और जिसकी ध्वजा पवनसे फहरा रही थी ऐसा अर्जुन का रथ मेघकी समान गर्जना करता२ रणमें समीप ही आपहुँचा और उसको शत्रुओंने देखा ॥ १४ ॥ अर्जुन शत्रुसेनाके पास रथमें नाचताहुआसा आकर खड़ा होगया, फिर गांडीव धनुषको खेंच बाण मारकर आकाश, दिशायें तथा कोनोंको चारों ओरसे घेरलिया ॥ १५ ॥ जैसे पवन बादलोंको बखेर देता है तैसे ही अर्जुनने बाण मारकर शत्रुओंके विमानोंकी समान रथ, आयुध ध्वजा और सारथियोंको काटडाला ॥ १६ ॥ तथा हाथी, हाथियोंके महावत, सेना, शस्त्र, ध्वजायें, घुड़सवार, घोड़े और पैदलोंको बाण मारकर यमपुरीमें भेजदिया ॥ १७ ॥ अर्जुन कालकी समान क्रोधमें भरगया, तुम्हारी सेनामेंका कोई

धनोऽभ्ययादेको निघ्नन् वाणैरजिह्मगैः ॥१८॥ तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान् केतुञ्च सायकैः। हत्वा सप्तभिरेकेन छत्रं चिच्छेद पत्रिणा ॥ १९ ॥ नवमं च समाधाय व्यसृजत् प्राणघातिनम्। दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततो द्रौणे-र्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्छरैः। कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ २१ ॥ हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजञ्चाश्वांस्तथावधीत्। दुःशासनस्येष्वसनं छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥२२॥ अथ सात्यकिमुत्सृज्य त्वरन् कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः। विद्ध्वा विव्याध विंशत्या कृष्णं पार्थं पुनः पुनः॥ २३ ॥ न ग्लानिरासीत् कर्णस्य

भी उस महारथीको नहीं हटासकता था, परन्तु अकेले दुर्योधन ने उसके ऊपर धावा करदिया, वह अर्जुनके सीधे जानेवाले वाण मारने लगा ॥ १८ ॥ तव अर्जुनने सात वाण मारकर उसके धनुष, सारथी, घोड़े और रथकी पताकाको काटडाला तथा एक वाणसे उसके छत्रको भी काटडाला ॥ १९ ॥ और उत्तम जातिका एक प्राणघातक नवाँ वाण चढ़ाकर दुर्योधनके मारा, परन्तु इतनेमें ही अश्वत्थामाने सामनेसे वाण मारकर उसके सात टुकड़े करडाले ॥ २० ॥ तव अर्जुनने भी सामनेसे वाण मारकर अश्वत्थामाके धनुषको काटडाला, घोड़ोंको मार-डाला और रथको तोड़डाला तथा फिर कृपाचार्यके उग्र धनुषके भी टुकड़े करडाले ॥ २१ ॥ और फिर कृतवर्माके धनुषको काटडाला तथा उसकी ध्वजा और घोड़ोंको भी उसी समय वाणके प्रहारसे उड़ादिया, तदनन्तर दुःशासनके धनुषको काट कर अर्जुन कर्णके ऊपर जाचढ़ा ॥ २२ ॥ तव तो कर्ण सात्यकी को छोड़कर शीघ्रताके साथ अर्जुनके सामने आया और आते क्षण ही उसने अर्जुनके तीन वाण तथा श्रीकृष्णके बीस वाण मारे और फिर दोनोंके ऊपर वारंवार वाणोंका प्रहार करने

क्षिपतः सायकान् बहून् । रणे विनिघ्नतः शत्रून् क्रुद्धस्येव शत-क्रतोः ॥ २४ ॥ अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विध्वा शितैः शरैः । नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत् ॥ २५ ॥ ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन् । युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ २६ ॥ उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च । चेदि-कारूषमत्स्यानां केकयानाञ्च यद्बलम् ॥ २७ ॥ चेकितानश्च बल-वान् धर्मराजश्च सुव्रतः । एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्र-विक्रमैः ॥२८॥ परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन् । भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः ॥ २९ ॥ तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्वा शितैः शरैः । अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भङ्क्त्वेव मारुतः ॥ ३० ॥ रथिनः समहामात्रान गजानश्वान् ससादिनः ।

लगा ॥ २३ ॥ अत्यन्त कोपमें भरेहुए इन्द्रकी समान रणमें क्रोध में भरकर शत्रुओंके ऊपर बहुतसे बाणोंका प्रहार करतेहुए कर्ण को जरा भी थकावट न हुई ॥ २४ ॥ कर्णको बाण छोड़ते देख कर सात्यकी चढ़आया, उसने सान पर धरेहुए नब्भै तीखे बाण कर्णके मारे और फिर सौ बाण मारे ॥ २५ ॥ तदनन्तर पांडवों की ओरके सब योधा कर्णको घायल करने लगे, युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रकोंका मण्डल ॥२६॥ उत्तमौजा, युयुत्सु नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न और चेदी, कारूष, मत्स्य, केकय आदि देशोंके सरदार २७ बलवान् चेकितान, सदाचारी धर्मराज ये सब पांडवोंके वीर, रथ घोड़े हाथी और भयानक पराक्रमी पैदलोंसे कर्णको चारों ओरसे घेरतेहुए महाभयानक बातें कहते २ कर्णका वध करनेको तयार होगये और रणमें अनेकों प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ परन्तु जैसे पवन वृक्षोंको तोड़कर उड़ादेता है तैसे ही कर्णने इस समय तेज कियेहुए बाण मारकर उनके शस्त्रोंकी वर्षाके टुकड़े २ करके

पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन् कर्णो व्यदृश्यत ॥३१॥ तद्वध्यमानं पांडूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा। विशस्त्रपत्रदेहासु प्राय आसीत् पराङ्मुखम् ३२अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्याऽर्जुनः स्मयन्।दिशःखञ्चैव भूमिञ्च प्राच्छणोच्छरवृष्टिभिः॥ ३३ ॥ मुसलानीव सम्पेतुः परिघा इव चेषवः। शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे३४ तैर्वध्यमानं तत्सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपम् । निमीलिताक्षमत्यर्थं वभ्राम च ननाद च ॥ ३५ ॥ निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्वनरद्विपाः। हन्यमानाः शरैरार्त्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः ॥ ३६ ॥ त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम्। गिरिमस्तं समा-

---

उसको दूर उड़ादिया ॥ ३० ॥ उस समय देखनेमें आया, कि-कर्ण कोपमें भरकर रथी, हाथी, वड़े २ महावत, घोड़े, घुडसवार तथा पैदलोंका संहार किये डालता है ॥ ३१ ॥ और उसके अस्त्रोंके तेजसे घायल हुई पांडवी सेना हथियारोंसे शून्य होगयी, उनके शरीर कटगये,उनमेंके वहुतसे मरगये और जो जीते वचे वे प्रायः रणमेंसे भागनेलगे ॥ ३२ ॥ फिर अर्जुनने हँसतेर अस्त्र मारकर कर्णके अस्त्रको पीछेको हटाया और वाणोंकी वर्षा करके दिशायें, आकाश तथा पृथिवीको ढकदिया ॥ ३३ ॥ इस समय युद्धमें जो वाणोंकी वर्षा होरही थी वह ऐसी मालूम होती थी कि-मानो आकाशमेंसे मूसल गिररहे हैं, कितनोंहीने समझा, कि-ये शतघ्नियें गिररहीं हैं और किन्हीने समझा, कि-ये भयानक वज्र वरस रहे हैं ॥ ३४ ॥ कर्णके उन वाणोंकी मार खाताहुआ पाण्डवोंका पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंका सेनादल आँखें मींचकर चारों ओरको भागताहुआ गर्जना करनेलगा ॥ ३५ ॥ और घोड़े, मनुष्य तथा हाथी रणमें मरनेलगे और कितने ही वाणोंकी मार खाकर ऐसे आतुर होगये, कि-भयभीत होकर रणमेंसे भागनेलगे ॥ ३६ ॥ इसप्रकार तुम्हारे पुत्र और पांडव

साथ प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥ ३७ ॥ तमसा च महाराज रजसा
च विशेषतः । न किञ्चित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम् ३८
ते त्रस्यन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत । अपयानं ततश्चक्रुः
सहिताः सर्वयोधिभिः ॥ ३९ ॥ कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन्
दिनक्षये । जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिविरं ययुः ॥ ४० ॥
वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः । परानुपहसन्तश्च स्तु-
वन्तश्चाच्युतार्जुनौ ॥ कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एव ते ४१
आशीर्वाचः पाण्डवेषु प्रायुज्यन्त नरेश्वराः ॥ ४२ ॥ ततः कृतेऽ-
वहारे च प्रहृष्टास्तत्र पाण्डवाः । निशायां शिविरं गत्वा न्यवसन्त

विजयकी इच्छासे जी तोड़कर युद्ध करनेमें लगरहे थे, इतनेमें ही सूर्य अस्त होगया ॥ ३७ ॥ चारों ओर अन्धकार छागया और धूलि उड़रही थी, इसलिये हे महाराज ! हम भले या बुरे किसी भी परिणामको नहीं देख सके ॥३८॥ हे भारत ! बड़े २ धनुष-धारी पुरुष अन्धकारके कारण उस रात्रिकेसे युद्धसे डरगये और और अपने सब योधाओंके साथ रणभूमिमेंसे छावनीकी ओरको जानेलगे ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! सायङ्काल हुआ और कौरव जब रणमेंसे पीछेको लौटे तब मनमें प्रसन्न हुए पाण्डव भी विजय पाकर अपनी छावनीकी ओरको चलपड़े ॥ ४० ॥ उस समय भाँति भाँतिके बाजे बजनेलगे, योधा सिंहकी समान गरजनेलगे, पाँडवपक्षके योधा शत्रुओंका उपहास करनेलगे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ४१ ॥ जब वीर योधा रण-भूमिमेंसे छावनीकी ओरको कूच करनेलगे उस समय सब शूरों ने और राजाओंने पाँडवोंको आशीर्वाद दिया ॥ ४२ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु जिस समय वीर पुरुष छावनीकी ओरको कूच करनेलगे उस समय पाण्डव और राजे प्रसन्न होगये तथा छावनीमें जाकर रात्रि बितानेलगे ॥ ४३॥ फिर राक्षस, पिशाच

नरेश्वराः ॥ ४३ ॥ ततो रक्तःपिशाचाश्च श्वापदाश्चैव संघशः ।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्याक्रीडसन्निभम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि प्रथमदिवसयुद्धानहारे
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । स्वेनच्छन्देन नः सर्वानवधीद्व्यक्तमर्जुनः ।
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः ॥ १ ॥ पार्थश्चैकोऽह-
रद्भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत् । एकश्चेमां महीं जित्वा
चक्रे बलिभृतो नृपान् ॥ २ ॥ एको निवातकवचानहन-
द्दिव्यकार्मुकः । एकः किरातरूपेण स्थितं शर्वमयोधयत् ॥ ३ ॥
एको ह्यरक्षद्भरतानेको भवमतोषयत् । तेनैकेन जिता सर्वे महीपा
ह्युग्रतेजसा ॥४॥ न ते निन्द्याः प्रशस्यास्ते यत्ते चक्रुर्ब्रवीहि तत् ।

और शिकारी पशु टोलियें बनाकर रुद्रकी विहारभूमिकी समान भयानक रणभूमिमें इकट्ठे होकर मांस और रुधिरका भोजन करनेलगे ॥ ४४ ॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे सञ्जय ! अर्जुन अपनी इच्छानुसार हमारे सब योधाओंको खुली रीति पर मारनेलगा, वह यदि हाथमें शस्त्र लेकर रणमें खड़ा होजाय तो साक्षात् कालको भी नहीं छोड़सकता ॥ १ ॥ इस अर्जुनने अकेले ही सुभद्राका हरण किया था, अकेलेने ही अग्निको खाण्डव वन देकर तृप्त किया था और अकेलेने ही इस संपूर्ण पृथिवीको जीतकर राजाओंको करदाता बनाया था ॥ २ ॥ और इस अर्जुनने अकेले ही दिव्य धनुषसे निवातकवचोंका संहार किया था और इस ही अर्जुनने अकेले ही भिल्लरूपधारी शङ्करके साथ युद्ध करके उनको प्रसन्न किया था ॥ ३ ॥ इस अर्जुनने अकेलेही घोषयात्रामें दुर्योधन आदिकी रक्षा की थी, इसने अकेले ही शङ्करको सन्तुष्ट किया था और इसही उग्र तेज वाले अकेले अर्जुनने सब राजाओं

ततो दुर्योधनः सूत पश्चात् किमकरोत्तदा ॥ ५ ॥ सञ्जय उवाच ।
हतप्रहतविध्वस्तविवर्मायुधवाहनाः । दीनस्वरा दूयमाना मानिनः
शत्रुनिर्जिताः ॥६॥ शिविरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः ।
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पादाक्रान्ता इवोरगाः ॥ ७ ॥ तानब्रवीत्
ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् । करं करेण निष्पीड्य प्रेक्ष-
माणस्तवात्मजम् ॥ ८ ॥ यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनस्तदा ।
संबोधयति चाप्येनं यथा कालमधोक्षजः ॥ ९ ॥ सहसास्त्रविस-

को जीता था ॥ ४ ॥ मेरे पुत्र कौरव निंदाके पात्र नहीं हैं, किन्तु प्रशंसाके योग्य हैं, उन्होंने क्या २ पराक्रम किये, यह तू मुझे सुना, तथा हे सञ्जय ! दुर्योधनने उस समय कैसा पराक्रम किया था, यह भी मुझे सुना ॥ ५ ॥ संजयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र! कौरवोंमेंसे कितनोंहीके ऊपर शस्त्रोंकी मार पड़ी थी कितनोंहीके अङ्ग कटगये थे और कितने ही वाहनों परसे नीचे गिरगये थे तथा कितनोंहीके कवच, शस्त्र और वाहन टूट फूट कर नष्ट होगए थे तथा वे अभिमानी शत्रुओंसे हारगये थे, इसकारण उनके स्वर बैठगये थे और उनके मन खिन्न होगये थे ॥ ६ ॥ जिनकी दाढ़ टूटकर विष नष्टहोगया है ऐसे सर्प पैरके नीचे दबजाने पर जैसे फुङ्कारें मारते हैं और कुछ कर नहीं सकते, ऐसे ही कौरव भी पराजय होनेसे अपनी छावनीमें (मन मारेहुए)बैठेथे,'फिर अब किसप्रकार युद्ध करना चाहिये'यह सलाह करने लगे ॥ ७ ॥ तहाँ कर्ण भी बैठा था और वह क्रोधमें भरे हुए साँपकी समान फुङ्कारें मार रहा था फिर अपने दोनों हाथों को मसलता हुआ तुम्हारे पुत्रके सामनेको देखकर कहने लगा, कि–॥ ८ ॥ अर्जुन सावधान है, अपने काम पर दृढ़ रहनेवाला है, चतुर है, धीरजवान् है और समय२ पर श्रीकृष्ण उसको सचेत करते रहते हैं ॥ ९ ॥ ऐसे अर्जुनने हमारे ऊपर एकसाथ

गेंण वयं तेनाद्य वञ्चिताः । श्वस्त्वहं तस्य संकल्पं सर्वं हन्ता महीपते ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान् । तेऽनुज्ञाता नृपाः सर्वे स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥११॥ सुखोपितास्तां रजनीं हृष्टा युद्धाय निर्ययुः । तेऽपश्यन् विहितं व्यूहं धर्मराजेन दुर्जयम् ॥ १२ ॥ प्रयत्नात् कुरुमुख्येन बृहस्पत्युशनो मते । अथ प्रतीपकर्त्तारं प्रवीरं परवीरहा ॥ १३ ॥ सस्मार वृषभस्कन्धं कर्णं दुर्योधनस्तदा । पुरन्दरसमं युद्धे मरुद्गणसमं बले ॥ १४ ॥ कार्त्तवीर्यसमं वीर्ये कर्णं राज्ञोऽगमन्मनः । सर्वेषां चैव सैन्यानां कर्णमेवागमन्मनः । सूतपुत्रं महेष्वासं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ १५ ॥

शस्त्रोंकी वर्षा करके आज हमें धोखादिया है, परन्तु हे राजन् ! कलको मैं इसके सब संकल्पको नष्ट करडालूँगा ॥ १० ॥ कर्णके ऐसा कहनेके बाद दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर सहायताके लिये आयेहुए महाराजाओंको अपने२ डेरे पर जानेकी आज्ञा दी, तब सब राजे अपनी२ छावनीमें चलेगये ॥ ११ ॥ सबोंने वह रात्रि सुखके साथ बितादी, दूसरे दिन प्रातःकालके समय प्रसन्न होते हुए सब योधा छावनीमेंसे बाहर निकलकर युद्ध करनेके लिये व्यूहमें गुथकर आगेको बढे, उस समय कौरवकुलमें मुख्य और शुक्राचार्य तथा बृहस्पतिकी समान वर्त्ताव करने वाले राजा युधिष्ठिरने कौरवसेनाके उस दुर्जय व्यूहको कौरवोंके सामनेही तोड़ डाला, तब शत्रुओंका संहार करनेवाले दुर्योधनने, बैलकी समान ऊँचे कन्धोंवाले, युद्ध करनेमें इन्द्रकी समान, मरुद्गणकी समान बलवान्, शत्रुओंका संहार करनेवाले कर्णको याद किया था ॥ १२-१४ ॥ जैसे प्राणसङ्कटके समय भाई भाईको याद करता है, तैसेही उस समय बलमें कार्त्तवीर्यकी समान और बड़े भारी धनुपको धारण करनेवाला कर्ण ही राजा दुर्योधन और दूसरे राजाओंको याद आया था ॥ १५ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा,

धृतराष्ट्र उवाच । ततो दुर्योधनः सूत पश्चात्किमकरोत्तदा । यद्वोऽ-
गमन्मनो मन्दाः कर्णं वैकर्त्तनं प्रति ॥ १६ ॥ अप्यपश्यत राधेयं
शीतार्त्त इव भास्करम् । कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रवृत्ते च रणे पुनः १७
कथं वैकर्त्तनः कर्णस्तत्रायुध्यत सञ्जय । कथञ्च पाण्डवाः सर्वे
युयुधुस्तत्र सूतजम् ॥ १८ ॥ कर्णो ह्येको महाबाहुर्हन्यात् पार्थान्
ससृञ्जयान् । कर्णस्य भुजयोर्वीर्यं शक्रविष्णुसमं युधि ॥ १९ ॥
तस्य शस्त्राणि घोराणि विक्रमश्च महात्मनः । कर्णमाश्रित्य
संग्रामे मत्तो दुर्योधनो नृपः ॥२०॥ दुर्योधनं ततो दृष्ट्वा पाण्डवेन
भृशार्दितम् । पराक्रान्तान् पाण्डुसुतान् दृष्ट्वा चापि महारथः २१
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मन्दो दुर्योधनः पुनः । जेतुमुत्सहते पार्थान्
सपुत्रान् सहकेशवान् ॥ २२ ॥ अहो बत महद् दुःखं यत्र पाण्डु-

धृ०-हे सञ्जय ! दुर्योधनने इस समय इसके बाद क्या किया था?
तुम सबोंका मन सूर्यके पुत्र कर्णकी ओरको गया, तब जैसे शीत
से कष्ट पातेहुए पुरुपको सूर्यके दर्शनसे आनन्द होता है तैसे ही
तुमको राधाके पुत्र कर्णके दर्शनसे आनन्द प्राप्त हुआ होगा,
सब सेनाको रणभूमिमें लानेके अनन्तर फिर युद्धका आरंभ हुआ
उस समय सूर्यपुत्र कर्ण रणमें किसप्रकार लड़ा था? और सब पांडवों
ने कर्णके साथ किसप्रकार युद्ध किया था ॥ १६-१८ ॥ महा-
बाहु कर्ण अकेला ही पांडवोंको और सृञ्जयोंको मारसकता है,
युद्धमें कर्णके दोनों भुजदण्डोंका पराक्रम इन्द्र और विष्णुकी
समान है ॥ १९ ॥ तथा उसके हथियार और पराक्रम भी भयङ्कर
हैं, इस युद्धमें दुर्योधन कर्णका ही आश्रय लेकर मदमत्त होगया
है ॥ २० ॥ परन्तु जब मदमत्त हुए दुर्योधनको युधिष्ठिरने अत्य-
न्त पीड़ा दी तब पाण्डुके पराक्रमी पुत्रोंको देखकर महारथी कर्ण
ने क्या कहा था ? ॥ २१ ॥ शोक है कि-अब भी मन्दबुद्धि
दुर्योधन इस रणमें कर्णका सहारा लेकर पांडवोंको, उनके पुत्रों

सुतान् रणे। नातरद्रभसः कर्णो दैवं नूनं परायणम् ॥ २३ ॥
अहो घूतस्य निष्ठेयं घोरा सम्प्रति वर्त्तते । अहो तीव्राणि दुःखानि
दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ २४ ॥ सोढा घोराणि बहुशः शल्यभूतानि
सञ्जय । सौवलञ्च तदा तात नीतिमानिति मन्यते ॥ २५ ॥
कर्णश्च रभसो नित्यं राजानं चाप्यनुव्रतः । यदेवं वर्त्तमानेषु महा-
युद्धेषु सञ्जय ॥ २६ ॥ अश्रौषं निहतान् पुत्रान् नित्य-
मेव च निर्जितान् । न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवा-
रकः ॥ २७ ॥ स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते दैवन्तु बलवत्तरम् । सञ्जय
उवाच । राजन् पूर्वनिमित्तानि धर्मिष्ठानि विचिन्तय ॥ २८ ॥

को और श्रीकृष्णको जीतनेका उत्साह रखता है ॥२२॥ ओः ! बड़े दुःखकी बात है, कि—महापराक्रमी कर्ण संग्राममें पांडुपुत्रोंको न जीतसका, निःसंदेह जय पराजयका आधार प्रारब्धके ही ऊपर है ॥ २३ ॥ ओः ! इस समय जुएका भयानक परिणाम पास आपहुंचा दीखता है, हे सञ्जय ! दुर्योधनने पांडवोंको जो बड़े२ दुःख दिये, वे मेरे हृदयमें काँटासा चुभते थे, उन सबको मैंने सहही लिया, हे तात ! उस समय महाबली कर्ण भी शकुनिकी जुए आदिकी करतूतको राजनीतिरूप ही मानता था और दुर्योधन सदा ही कर्णकी सलाहके अनुसार ही चलता था, तो भी हे सञ्जय ! नित्य होनेवाले इस महायुद्धमें मैं अपने पुत्रोंको नित्य२ हारतेहुए और मरतेहुए क्यों सुनता हूँ ? क्या हमारी सेनामें ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, कि—जो रणमें पांडवोंको आगे बढ़ने से रोकसके ? ॥ २४-२७ ॥ परन्तु जैसे पुरुष अनाथ स्त्रियोंकी टोलियोंमें घुसजाते हैं, तैसेही पांडवोंके योधा हमारी सेनामें घुसआते हैं, इसलिये अब मैं समझता हूँ, कि—तुमने पहले जुआ आदि जो२ धर्मके ! (अधर्मभरे) काम किये हैं, उनको जरा विचारो (याद करके पछताओ), क्योंकि—यह सब उसका ही

अतिक्रान्तं हि यत् कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः । तच्चास्य न भवेत् कार्यं चिन्तया च विनश्यति ॥ २६ ॥ तदिदं तव कार्यन्तु दूरप्राप्तं विजानता । न कृतं यत्त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणम् ॥ ३० ॥ उक्तोऽसि बहुधा राजन् मा युध्यस्वेति पाण्डवैः । गृह्णीषे न च तन्मोहाद्वचनञ्च विशाम्पते ॥ ३१ ॥ त्वया पापानि घाराणि समाचीर्णानि पाण्डुपु । त्वत्कृते वर्त्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥ ३२ ॥ तत्त्विदानीमतिक्रांतं मा शुचो भरतर्षभ । शृणु सर्वं यथा वृत्तं घोरं वैशसमच्युत ॥ ३३ ॥ प्रभातायां रजन्यान्तु कर्णो राजानमभ्ययात् । समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ३४ कर्ण उवाच । अद्य राजन् समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना ।

परिणाम है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य कोई काम करते समय उसका विचार नहीं करता है, किन्तु उस कामके पूरा होजाने पर उसकी योग्यता अयोग्यताका विचार करता है, इससे उसका कोई काम भी सिद्ध नहीं होता है, किन्तु चिन्तासे उसका नाश होजाता है२६ तुम जानते थे, कि-यह तुम्हारा मनचीता काम सिद्ध होना बड़े दूरकी बात है, तो भी तुमने उस कार्यकी योग्यता वा अयोग्यता की परीक्षा नहीं की ॥ ३० ॥ हे राजन् ! पांडवोंने आपसे अनेकों प्रकारसे कहा, कि-आप युद्ध न करिये, तो भी हे महाराज ! तुमने पुत्रोंके मोहमें पड़कर उनके कहनेको मानाही नहीं ॥३१॥ तुमने पांडवोंके ऊपर बड़े२ घोर अनर्थ (जुल्म) किये, तुम्हारी इस करतूतसे ही यह राजाओंका घोर संहार हुआ है ॥ ३२ ॥ परन्तु हे भरतवंशमें श्रेष्ठ और दृढ़ मनवाले राजन् ! पश्चात्ताप और सोच विचार करनेका समय अब गया, इसलिये अब शोक न करिये, और यह भयानक संहार किसप्रकार हुआ उसको सुनिये ॥ ३३ ॥ रात्रि पूरी होकर प्रभात होते ही महाबाहु कर्ण राजा दुर्योधनके पास जाकर कहने लगा, ॥ ३४ ॥ कर्ण बोला,

निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥ ३५ ॥ बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत । नाभूत् समागमो राजन् मम चैवार्जुनस्य च ॥ ३६ ॥ इदन्तु मे यथाप्रज्ञं शृणु वाक्यं विशाम्पते । अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥ ३७ ॥ हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन् मयि चावस्थिते युधि । अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम् ॥ ३८ ॥ ततः श्रेयस्करं यच्च तन्निबोध जनेश्वर । आयुधानाञ्च मे वीर्यं दिव्यानामर्जुनस्य च ॥ ३९ ॥ कार्यस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने । सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४० ॥ प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि

कि-मैं आज यशस्वी अर्जुनके साथ युद्ध करूंगा, आज या तो मैं ही उस वीरको मारडालूँगा या वही मुझे मारडालेगा ॥३५॥ हे भरतवंशी राजन्! मुझे तथा अर्जुनको बहुतसे काम करने थे, इसलिये अबतक मेरा अर्जुनका मुचेटा नहीं हुआ था, परन्तु अब वह समय आगया ॥ ३६ ॥ हे राजन्! इसलिये मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपसे जो कुछ कहता हूं, उसको सुनिये, हे भारत! मैं रणमें अर्जुनको मारे विना लौटकर नहीं आऊंगा ॥ ३७ ॥ हमारी सेनाके बड़े२ योधा मारे गये हैं, परन्तु अभी मैं संग्राममें खड़ा हूं, आज अर्जुन मेरे ऊपर चढ़कर आवेगा, क्योंकि-मेरे पाससे इन्द्रकी शक्ति जाती रही है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! अर्जुनके तथा मेरे दिव्य अस्त्र एकसे हैं, परन्तु आपका कल्याण करने वाला शस्त्रोंका पराक्रम मुझमें उससे कितना अधिक है उसको सुनिये ॥ ३९ ॥ शत्रुके किसी कर्त्तव्यका नाश करनेमें, बड़ी फुरतीसे शस्त्रोंको चलानेमें, दूरका निशाना गिरानेमें, युद्धचातुरीमें तथा किसी अस्त्रको तोड़गिरानेमें अर्जुन मेरी समान नहीं है ॥ ४० ॥ शरीरके बलमें, मनके बलमें, अस्त्रशिक्षामें, अस्त्रोंको सफल करनेमें तथा निशानेको ताकनेमें भी अर्जुन

भारत । निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४१ ॥ सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः । इन्द्रार्थे प्रियकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥४२॥ येन दैत्यगणान्राजन् जितवान् वै शतक्रतुः । यस्य घोषेण दैत्यानां व्यामुह्यन्त दिशो दश ॥४३॥ तद्भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसम्मतम् । तद्दिव्यं भार्गवो मह्यमददद्धनुरुत्तमम् ॥ ४४ ॥ तेन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतांवरम् । यथेन्द्रः समरे सर्वान् दैतेयान् वै समागतान् ॥ ४५ ॥ धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात्तद्विशिष्यते । त्रिसप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता ॥४६॥ धनुषो ह्यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः । तद्रामो ह्यददन्मह्यं तेन योत्स्यामि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥ अद्य दुर्योधनाहं त्वां नंदयिष्ये

मेरी समान नहीं है ॥ ४१ ॥ मेरे प्रसिद्ध धनुषका नाम विजय है, वह सकल आयुधोंमें श्रेष्ठ है और इन्द्रका हित करनेकी इच्छा से विश्वकर्माने इसको इन्द्रके लिये बनाया था ॥ ४२ ॥ इन्द्रने इस धनुषसे सब दैत्योंको हराया था, इस धनुषकी टङ्कारके शब्दसे दशों दिशायें चारों ओरसे गूँजती थीं ॥ ४३ ॥ ऐसा श्रेष्ठ और सबोंमें महामाननीय धनुष इन्द्रने भृगुके पुत्र परशुराम को दिया था और परशुरामने वह दिव्य तथा महान् धनुष मुझको दिया है ४४ उस बडेभारी धनुषको लेकर इन्द्र जैसे रणमें इकट्ठे हुए सब दैत्योंके साथ लडा था, तैसे ही मैं भी विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनके साथ आज युद्ध करूँगा ॥ ४५ ॥ परशुरामने मुझे जो भयङ्कर धनुष दिया है, वह धनुष गाण्डीवसे भी श्रेष्ठ है, इस ही धनुषसे भृगुपुत्र परशुरामने इक्कीसवार पृथिवीको जीता था ॥४६॥ परशुरामजीने वह धनुष मुझे देदिया और देते समय इस धनुषके दिव्य काम मुझे कह सुनाये थे, मैं उस ही धनुषसे अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा ॥४७॥ और हे दुर्योधन ! आज रणमें विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको उसके भाइयोंके सहित संग्राम

सबान्धवम् । निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम् ॥ ४८ ॥ सपर्वतवनद्वीपा हतवीराससागरा । पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव ॥ ४९ ॥ नाशक्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः । सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा ॥ ५० ॥ न हि मां समरे सोढुं संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा । अवश्यन्तु मया वाच्यं येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात् ॥ ५१ ॥ ज्या तस्य धनुषो दिव्या तथाक्षय्ये महेषुधी । सारथिस्तस्य गोविन्दो मम तादृङ् न विद्यते ५२ तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजितं युधि । विजयश्च महादिव्यं ममापि धनुरुत्तमम् ॥ ५३ ॥ तत्राहमधिकः पार्थाद् धनुषा तेन पार्थिव । येन चाप्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे ॥ ५४ ॥

मैं मारडालूँगा और आपको प्रसन्न करूंगा ॥४८॥हे राजन् ! आज ही पर्वत,वन,द्वीप और समुद्रों सहित तथा जिसमें आपका सामना करने वाले वीर पुरुषों का नाश हुआ है ऐसी पृथिवी आपको दूँगा कि–जिसपर तुम अपने पुत्र पौत्रों सहित सुखसे राज्य करोगे४९जैसे धर्म पर प्रेम रखने वाले और मनको वशमें रखने वाले मनुष्यकी कार्यसिद्धि सहजमें ही होजाती है तैसे ही आज मैं भी तुम्हारा हित करनेके लिये अच्छे प्रकारसे तुम्हारी कार्यसिद्धि कर सक्ताहूँ ॥५०॥हे राजन् ! जैसे वृक्ष अग्निको नहीं सह सकता तैसेही अर्जुन भी इस युद्धमें मेरी मारको नहीं सह सकेगा तो भी एक बातमें मैं अर्जुनसे कम हूँ, वह बात बतादेना मैं आवश्यक समझता हूँ॥५१॥ अर्जुनके धनुषकी डोरी(रोदा) दिव्य है, उसके दोनों भाथे अक्षय हैं और उसके सारथी श्रीकृष्ण हैं, मेरे पास ऐसी कुछ सामग्री नहीं है५२ अर्जुनके पास गाण्डीव नामका दिव्य और अजेय धनुष है,मेरेपास विजय नामका दिव्य और उत्तम धनुष है ॥५३॥ हे राजन् ! इस धनुषके कारणसे मैं अर्जुनकी अपेक्षा श्रेष्ठ हूँ, और जिस बातमें अर्जुन मेरी अपेक्षा अधिक बली

रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः । अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः ॥ ५५ ॥ अच्छेद्यः सर्वतो वीरा वाजिनश्च मनोजवाः । ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान् वानरो विस्मयङ्करः ॥५६॥ कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति । एतैर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम् ॥५७॥ अयन्तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः । सारथ्यं यदि मे कुर्यात् ध्रुवस्ते विजयो भवेत् ॥ ५८ ॥ तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः । नाराचान् गार्द्धपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे ॥ ५९ ॥ रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः । आयान्तु पश्चात् सततं मामेव भरतर्षभ६०

है, उसको मुझसे सुनिये॥५४॥सब लोकोंमें मान पायेहुए और सबके पूजनीय श्रीकृष्ण, अर्जुनके सारथी हैं और अग्नि देवताने उसको सोनेसे मढ़ाहुआ एक दिव्य रथ दिया है५५ हे राजन् ! इस रथको कोई किसी ओरसे भी नहीं तोड़सकता, अर्जुनके घोड़े भी मनकी समान वेगवाले हैं, उसकी ध्वजा बड़ी और कान्तिवाली है तथा उस ध्वजाके ऊपर जो वानर बैठा है वह तो आश्चर्यमें डालदेता है ॥ ५६ ॥ जगत्की रचना करनेवाले श्रीकृष्ण उसके रथकी तथा उसकी रक्षा किया करते हैं, परन्तु मेरे पास इनमेंका कुछ भी नहीं है, तो भी मैं अर्जुनके सामने जाकर लड़ना चाहता हूँ ॥ ५७ ॥ यह हमारे संग्रामको शोभा देनेवाला राजा शल्य, अखिल विश्वके कर्त्ता श्रीकृष्णकी समान ही है, यदि यह मेरा सारथी बनजाय तो अवश्य ही विजय होजाय ॥५८॥ इसलिये आप ऐसा करिये, कि-जिसमें शत्रुओंसे न हारनेवाला राजा शल्य मेरा सारथी बनजाय, रणमें मेरे पीछे२ आनेवाले रथोंमें, गिद्धके परोंवाले बाण भरवा दीजिये ॥५९॥ और हे भरतवंशी राजन् ! ऐसा प्रबन्ध करदीजिये, कि-उत्तम घोड़ोंसे जुड़ेहुए, मेरे शस्त्रोंसे भरे हुए उत्तम छकड़े मेरे पीछेरही

एवमभ्यधिकः पार्थात् भविष्यामि गुणैरहम् । शल्योऽप्यभ्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहम् ॥ ६१ ॥ यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा । तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः ॥ ६२ ॥ बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन । तथास्त्रैर्मत्समो नास्ति कश्चिदेवं धनुर्धरः ॥ ६३ ॥ तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन । सोऽयमभ्यधिकः कृष्णाद्भविष्यति रथो मम ॥ ६४ ॥ एवं कृते रथस्थोऽहं गुणैरभ्यधिकोऽर्जुनात् । भवे युधि जयेयं च फाल्गुनं कुरुसत्तम ॥ ६५ ॥ समुद्यातुं न शक्ष्यन्ति देवा अपि सवासवाः । एतत् कृतं महाराज त्वयेच्छामि परन्तप ॥ ६६ ॥ क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम् ।

चलाकर ॥ ६० ॥ ऐसी व्यवस्था होजाने पर मैं अर्जुनसे अधिक गुणवान होजाऊँगा, राजा शल्य श्रीकृष्णसे अधिक गुणी हैं और मैं भी अर्जुनसे अधिक गुणवान् हूँ ॥ ६१ ॥ वीर शत्रुओं का नाश करनेवाले श्रीकृष्ण जैसे अश्वविद्यामें चतुर हैं, वैसे ही महारथी राजा शल्य भी अश्वविद्यामें प्रवीण हैं॥६२॥ और जैसे बाहुबलमें राजा शल्यकी समान और कोई नहीं है, ऐसे ही अस्त्रविद्यामें भी मेरी समान दूसरा कोई धनुषधारी पुरुष नहीं है ॥ ६३ ॥ यदि अश्वविद्यामें अपनी समता न रखनेवाला राजा शल्य मेरे रथका सारथी बनजाय तो मेरा रथ श्रीकृष्णके रथसे भी अधिक काम देने लगेगा॥६४॥ ऐसा प्रबन्ध करलेने पर यदि मैं रथमें बैठ जाऊँगा तो अर्जुनसे भी अधिक गुणोंवाला होजाऊँगा और हे कुरुसत्तम ! रणमें अर्जुनको जीतलूँगा ६५ और ऐसा प्रबन्ध होजाने पर तो यदि देवता अपने राजा इन्द्रके साथ आजायँगे तो भी मेरे सामने लड़नेका उत्साह नहीं कर सकेंगे, इसलिये हे शत्रुओंको ताप देनेवाले महाराज ! मैं चाहता हूँ, कि–आप मेरे कहनेके अनुसार ऐसा प्रबन्ध करदीजिये॥६६॥ आप मेरी इच्छा पूरी कीजिये, आपका यह समय निरर्थक नहीं

एवं कृते कृतं सर्वं सर्वकामैर्भविष्यति ॥ ६७ ॥ ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत् करिष्यामि भारत । सर्वथा पाण्डवान् संख्ये विजेष्ये वै समागतान् ॥६८॥ नहि मे समरे शक्ताः सम्मुखातु सुरासुराः । किमु पाण्डुसुता राजन् रणे मानुषयोनयः ॥६९॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना । सम्पूज्य संप्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत् ॥ ७० ॥ दुर्योधन उवाच । एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे । सोपासङ्गा रथाः साश्वाः स्वनुयास्यन्ति संयुगे ॥ ७१ ॥ नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते । अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥ ७२ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान् । अभिगम्याब्रवीद्राजा मद्रराजमिदं वचः ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः

जाना चाहिये, मेरे कथनानुसार प्रबन्ध करदेनेसे तुम्हारी सब कामनायें पूरी होजायँगी ॥ ६७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! फिर तुम देखना, कि-मैं संग्राममें कैसा काम करता हूँ, मैं रणमें इकट्ठे हुए सब पांडवोंको सर्वथा जीतलूँगा ॥ ६८ ॥ युद्धमें देवता तथा दैत्य भी मेरे सामने चढ़ायी करके नहीं आसकते, फिर हेराजन्! मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए पांडव तो मेरा सामना करही कैसे सकते हैं ? ॥ ६९ ॥ संजयने कहा, कि-युद्धको शोभा देने वाले कर्णने तुम्हारे पुत्रसे ऐसा कहा तब वह मनमें प्रसन्न हुआ और कर्णकी प्रशंसा करके कहने लगा ॥ ७० ॥ दुर्योधनने कहा, कि-हे कर्ण ! तू जैसा कहरहा है, मैं सब काम ऐसे ही करूँगा, युद्धकी सब सामग्री और घोड़ोंके सहित रथ, संग्राममें तेरे पीछे२ आवेंगे ॥ ७१ ॥ और गिद्धके परोंवाले तेरे बाणोंको गाड़ियें खेंचकर लावेंगी और हे कर्ण ! हम तथा सब राजे तेरे पीछे २ चलेंगे ॥ ७२ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे महाराज ! तुम्हारा

सञ्जय उवाच । पुत्रस्तव महाराज मद्रराजं महारथम् । विन-
येनोपसङ्गम्य प्रणयाद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ सत्यव्रत महाभाग
द्विषतां तापवर्द्धन । मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयङ्कर ॥ २ ॥
श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदताम्वर । यथा नृपतिसिंहानां मध्ये
त्वां वरये स्वयम् ॥ ३ ॥ तत्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह ।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च ॥ ४ ॥ तस्मात् पार्थविना-
शार्थं हितार्थं मम चैव हि । सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात् कर्त्तु-
मर्हसि ॥५॥ त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते । अभी-
षूणां हि कर्णस्य ग्रहीतान्यो न विद्यते ॥ ६ ॥ ऋते हि त्वां

प्रतापी पुत्र, कर्णसे ऐसा कहकर राजा शल्यके पास गया और मद्रराजसे इसप्रकार कहनेलगा॥७३॥इकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

संजयने कहा, कि–हे महाराज ! तदनन्तर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, महारथी राजा शल्यके पास विनयके साथ जाकर युक्ति-पूर्वक कहनेलगा, कि–॥१॥ हे सत्यव्रतधारी ! हे महाबलशाली ! हे शत्रुओंके सन्तापको बढ़ानेवाले ! हे शत्रुसेनाको भयभीत करनेवाले ! हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ, रणमें शूरता दिखानवाले मद्रराजशल्य ! तुमने कर्णकी बात सुनली ? सकल सिंहसमान राजाओंमें तुम्हारे पास मैं एक वर माँगनेको आया हूँ ॥२॥३॥ हे अनुपम पराक्रमवाले ! हे शत्रुपक्षका संहार करनेवाले मद्रराज शल्य ! मैं अपना मस्तक नमाकर विनयके साथ आज आपसे कर्णकी इच्छानुसार एक वर माँगता हूँ ॥४॥ हे रथियोंमें श्रेष्ठ ! आप अर्जुनका नाश और मेरा हित करनेके लिये तथा मेरे ऊपर तुम्हारा प्रेम है, इसलिये आप कर्णके सारथी बनजाइये ५ तुम सारथी बन जाओगे तो राधाका पुत्र कर्ण मेरे शत्रुको जीत लेगा, तुमसे ही सारथी बननेके लिये विशेषकर कहनेका कारण यह है, कि–तुम्हारे सिवाय दूसरा और कोई भी ऐसा चतुर

महाभाग वासुदेवसमं युधि । स पाहि सर्वथा कर्णं यथा ब्रह्मा महेश्वरम् ॥ ७ ॥ यथा च सर्वथापत्सु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् । तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥ ८ ॥ भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो भवान् भोजश्च वीर्यवान् । शकुनिः सौबलो द्रौणिरहमेव च नो बलम् ॥ ९ ॥ एवमेष कृतो भागो नवधा पृथिवीपते । न च भागोऽत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १० ॥ ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शत्रवः । वृद्धौ हि तौ नरव्याघ्रौ छलेन निहतौ युधि ॥ ११ ॥ कृत्वा न सुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ । तथान्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि ॥ १२ ॥ अस्मदीयाश्च बहवः स्वर्गायोपगता रणे । त्यक्त्वा प्राणान् यथाशक्ति चेष्टां

नहीं है, कि-जो कर्णके घोड़ोंकी रासें पकड़सके ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! तुम युद्धमें श्रीकृष्णकी समान ही हो, त्रिपुरके युद्धके समय जैसे ब्रह्माने शंकरकी रक्षा की थी, तैसेही आजके युद्धमें तुम राधाके पुत्र कर्णकी रक्षा करो ॥ ७ ॥ जैसे श्रीकृष्ण सदा आपत्तिके समय अर्जुनकी रक्षा करते हैं तैसेही हे मद्रराज ! तुम आज कर्णकी रक्षा करो ॥ ८ ॥ भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, तुम, पराक्रमी भोजराज, सुवलका पुत्र शकुनि, अश्वत्थामा और मैं,इतने हम सब अपनी सेनाके आधाररूप हैं९ हे राजन् ! इन महात्मा पुरुषोंकी अधीनतामें हमने अपनी सेनाके नौ भाग किये थे, उनमेंसे भीष्मपितामह और महात्मा द्रोणाचार्य का विभाग अब नहीं है१०उन्होंने अपने विभागोंसे भी आगे बढ़कर हमारे शत्रुओंका नाश किया है,वे दोनों योधा वृद्ध और बड़े धनुषधारी थे, परन्तु रणमें कपटसे मारेगये ॥ ११ ॥ हे निर्दोष राजन् ! वे दोनों वृद्ध पुरुष महाउत्तम कर्म करके इस लोकसे स्वर्गलोकको सिधार गये तथा और कितने ही व्याघ्र-समान पुरुष भी युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारेगये ॥१२॥ संग्राम में

कृत्वा च पुष्कलाम् ॥ १३ ॥ तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप । पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत साम्प्रतम् ॥ १४ ॥ बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः । बलशेषं न हन्युर्मे यथा तत् कुरु पार्थिव ॥ १५ ॥ हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो । कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः ॥ १६ ॥ भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः । शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे १७ तस्मिन् जयाशा विपुला मम मद्रजनाधिप । तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन ॥ १८ ॥ पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः । तथा कर्णरथे राजंस्त्वमभीषुग्रहो भव ॥ १९ ॥ तेन

उनके सिवाय हमारे और बहुतसे योधा शक्तिके अनुसार बड़े २ पराक्रम करते हुए प्राण त्यागकर स्वर्गको सिधारगये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मेरी इस सेनामें बहुतसे योधा मारेगये हैं और पांडवों की सेना गिनतीमें थोड़ी थी, तब भी उसने हमारी बड़ीभारी सेनाका नाश करडाला है, क्या यह अच्छा हुआ ? ॥ १४ ॥ इसलिये हे राजन् ! सत्य पराक्रमवाले, बलवान् और महात्मा कुन्तीके पुत्र पांडव मेरी शेष रही हुई सेनाका नाश न करडालें, इसका प्रबन्ध आप करिये ॥ १५ ॥ हे समर्थ राजन् ! युद्धमें पांडवोंने मेरी सेनामेंके वीर पुरुषोंका संहार करडाला है, केवल एक महाबाहु कर्णही मेरा प्रिय और हित करनेमें तत्पर रहता है ॥ १६ ॥ हे पुरुषव्याघ्र शल्य ! आज कर्ण अर्जुनके साथ संग्राममें लड़ना चाहता है और तुम सब लोगोंमें महारथी हो (इसलिये आपकी ही सहायताकी आवश्यकता है) ॥ १७ ॥ हे मद्रराज ! मुझे कर्णके भरोसेपर विजयकी बड़ी आशा है, परन्तु मैं इस पृथिवीपर कर्णके घोड़ोंकी रासोंको पकड़सकनेवाला तुम्हारे सिवाय और किसीको नहीं देखता ॥ १८ ॥ संग्राममें जैसे श्रीकृष्ण अर्जुनके उत्तम सारथी हैं, ऐसेही तुम भी कर्णके

युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च मारिष । यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तवैव तत् ॥ २० ॥ पूर्वं नः समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून् । इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च ॥ २१ ॥ कृष्णेन सहितः पार्थो धार्त्तराष्ट्रीं महाचमूम् । अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन् दृश्यते युधि ॥ २२ ॥ भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते । तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाद्य हि ॥ २३ ॥ अरुणेन यथा सार्द्धं तमः सूर्यो व्यपोहति । तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे ॥ २४ ॥ उद्यन्तौ च यथा सूर्यौ बालसूर्यसमप्रभौ । कर्णशल्यौ रणे दृष्ट्वा विद्रवन्तु महारथाः ॥ २५ ॥ सूर्या-

---

सारथी बनजाओ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! संग्राम में अर्जुन श्रीकृष्ण-के साथ ही रहता है और श्रीकृष्ण रणमें उसकी रक्षा करते हैं ऐसे अर्जुनने रण में जो २ काम किये हैं, वे सब आपके सामने ही हुए हैं ॥२०॥ अर्जुन पहले इसप्रकार रणमें शत्रुओंका संहार नहीं करता था, परन्तु अब अर्जुनका जो पराक्रम हमारे देखने में आरहा है उसका कारण यह है, कि-श्रीकृष्ण उस की सहायता करते हैं२१और हे मद्रराज! अर्जुनाप्रति दिन श्रीकृष्ण की सहायतासे संग्राममें धृतराष्ट्र पुत्रकी बड़ी भारी सेनाको रणमेंसे भगाता हुआ देखनेमें आता है२२हे महाकान्तिवाले राजा शल्य अब युद्धमें तुम्हारा और कर्णका नाश करनेका भाग बाकी है, इस लिये आज तुम कर्णके साथ रहकर एकसाथ शत्रुका संहार कर डालो ? ॥२३॥ और हे राजन् ! जैसे सूर्य अरुणके साथ रहकर अन्धकारका नाश करता है, तैसे ही तुम भी अब कर्णके साथ रहकर महारणमें अर्जुनका नाशकरो ॥ २४ ॥ उदय हुए सूर्यकी समान तेजस्वी और दो बाल सूर्योंकी समान कान्तिवाले कर्ण और शल्यको रणमें लड़नेको उद्यत हुए देख कर पाण्डवपक्षके महारथी भाग जायँ तो बड़ा अच्छा हो॥२५॥

रुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष । तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपञ्चालाः ससृञ्जयाः ॥ २६ ॥ रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान् । संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥ २७ ॥ यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् । तथा भवान् परित्रातु कर्णं वैकर्त्तनं रणे ॥ २८ ॥ त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति । देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते । किं पुनः पाण्डवेयानां मा विशङ्कीर्वचो मम ॥ २९ ॥ सञ्जय उवाच । दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः । त्रिशिखां भ्रकुटिं कृत्वा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः ॥ ३० ॥ क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः । कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ३१

हे राजन् ! जैसे अन्धेरा सूर्यको तथा अरुणको देखकर भाग जाता है तैसेही तुम दोनोंको देखकर पंचालराजे और सृञ्जय राजाओंके सहित कुन्तीके पुत्र भी रणमेंसे भागजायँ, ऐसी युक्ति करो ॥ २६ ॥ कर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ है और तुम सारथियोंमें श्रेष्ठ हो, इस लोकमें तुम दोनोंका समागम ऐसा होगा, कि-न कभी हुआ है और न कभी आगेको होगा ॥ २७ ॥ जैसे सब दशामें श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं, तैसेही तुम रणमें सूर्यके पुत्र कर्णकी रक्षा करो ॥ २८ ॥ हे राजन् ! तुम सारथी बनजाओगे तो संग्राममें इन्द्रसहित देवता भी कर्णका पराजय नहीं करसकेंगे फिर पांडवोंकी तो बात ही क्या है ? मेरे इस कहनेमें तुम ज़राभी सन्देह न करना ॥ २९ ॥ सञ्जयने कहा, कि-दुर्योधनकी इस बातको सुनकर राजा शल्य बड़ेही क्रोधमें भरगया, भ्रकुटिमें तीन बल डाल कर बारम्बार अपने दोनों हाथोंको पटकने लगा ३० बड़ी २ भुजाओंवाला, उत्तमकुलमें उत्पन्न हुआ, ऐश्वर्यवान्, शास्त्रका अभ्यासी तथा बलका अभिमान रखनेवाला राजा शल्य क्रोधसे लाल २ हुई आँखोंको घुमाता हुआ दुर्योधनसे बोला ३१

शल्य उवाच । अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं वा परिशङ्कसे । यन्मां
ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥ ३२ ॥ अस्मत्तोऽभ्य-
धिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि । न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्य-
मात्मनः ॥ ३३ ॥ आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते ।
तमहं समरे जित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥ ३४ ॥ अथ वाप्येक
एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन । पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो
रिपून् ॥ ३५ ॥ यथाभिमानं कौरव्य निधाय हृदये पुमान् ।
अस्मद्विधः प्रवर्त्तेत मा मां त्वमभिशङ्किथाः॥ ३६॥युधि चाप्यवमानो
मे न कर्त्तव्यः कथञ्चन । पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननोपमौ ३७
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान् । रथं पश्य च मे

शल्यने कहा, कि–निःसन्देह तू मेरा अपमान कररहा है, अरे
गान्धारीके पुत्र! तुझे मेरे ऊपर सन्देह है, तब ही तो तू निःशङ्क
होकर मुझसे कर्णका गाड़ीवान् बननेको कहता है ॥ ३२ ॥
और तू कर्णको मुझसे अधिक समझकर उसकी प्रशंसा करता
है, परन्तु मैं राधाके पुत्र कर्णको अपनी समान नहीं गिनता
हूँ ॥ ३३ ॥ हे दुर्योधन ! तू मुझसे अधिक बलवान् पुरुषको
बता तो मैं उसके साथ संग्राम करके जीतूँ और फिर मैं जहाँसे
आया हूँ तहाँको ही लौट कर चलाजाऊँगा ॥ ३४ ॥ अथवा हे
कुरुनन्दन ! मैं अकेला ही पांडवोंके साथ युद्ध करूँगा और आज
ही संग्राममें शत्रुओंका संहार करडालूँगा, उस समय तू मेरे परा-
क्रमको देखना ॥ ३५ ॥ हे कुरुवंशी दुर्योधन ! मुझसा पुरुष
हृदयमें अभिमानको रखकर काम करनेके लिये आगेको बढ़ता
है, इसलिये तू मेरी शक्तिके ऊपर शङ्का न कर ॥३६॥ ऐसे ही
युद्धके विषयमें तुझे मेरा अपमान कदापि नहीं करना चाहिये,
इन मेरे वज्रकी समान मजबूत और मोटे भुजदण्डोंको देख ३७
मेरे विचित्र धनुषको और विषैले सर्पोंकी समान बाणोंको देख

क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ॥ ३८ ॥ गदाञ्च पश्य गान्धारे हेमपट्ट-
विभूषिताम् । दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयञ्च पर्वतान् ॥३९॥
शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव । तं मामेवंविधं राजन्
समर्थमरिनिग्रहे ॥ ४० ॥ कस्माद्युनक्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे
रणे । न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥ ४१ ॥ न
हि पापीयसः श्रेयान् भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे । यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या
गरीयांसं वशे स्थितम् ॥ ४२ ॥ वशे पापीयसो धत्ते तत्पापम-
धरोत्तरम् । ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात्क्षत्रं च बाहुतः ॥४३॥
ऊरुभ्यामसृजद्वैश्यान् पद्भ्यां शूद्रानिति श्रुतिः । तेभ्यो वर्णविशे-
षाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ४४ ॥ अथान्योऽन्यस्य संयोगात्

तथा मेरे ठीक किये हुए तथा वायुकी समान वेगवाले उत्तम घोड़ोंसे जुते इस रथको देख ॥ ३८ ॥ अरे गान्धारीके पुत्र ! मेरी सोने की पत्तरोंसे जड़ी हुई गदाको भी देख, हे राजन् ! शत्रुओंको दवानेके लिये मैं इतना बली हूँ, कि— यदि तू आज्ञा देय तो इस सब पृथिवीको फोड़डालूँ और अपने तेजसे समुद्रोंको भी सुखाडालूँ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर भी इस संग्राममें तू मुझसे अधिरथके पुत्र जैसे नीच का सारथी बननेके लिये क्यों कहता है? हे राजेन्द्र ! तुम मुझे नीच काम पर जुटाना चाहते हो, यह तुम्हे उचित नहीं है ॥ ४१ ॥ मैं एक कुलीन पुरुष होकर इस पापीका दास बनने का उत्साह नहीं करसकता, कोई कुलीन पुरुष प्रेमवश अपने पास आवे और अपने अधीन होकर रहे,उसको यदि किसी नीच पुरुषके वशमें करदिया जाय तो उसको ऊँचको नीच और नीचको ऊँच करने का पाप लगता है, परमात्मा ने ब्राह्मणको अपने मुखसे उत्पन्न किया है क्षत्रियोंको बाहुओंमेंसे उत्पन्न किया है वैश्योंको जङ्घाओंमें से और शूद्रों को चरणोंमें से उत्पन्न किया है ऐसा वेदकी श्रुति

चातुर्वर्ण्यस्य भारत । गोप्तारः संग्रहीतारो दातारः क्षत्रियाः स्मृताः ॥ ४५ ॥ याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः । लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्रह्मणा भुवि ॥ ४६ ॥ कृषिश्च पाशुपाल्यञ्च विशां दानञ्च धर्मतः । ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः ॥ ४७॥ ब्रह्मक्षत्रस्य विहिता सूता वै परिचारकाः । न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥ ४८ ॥ अहं मूर्द्धाभिषिक्तो हि राजार्षिकुलजो नृपः। महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च वन्दिनाम् ॥४९॥ सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदन । सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्त्तुमुत्सहे ॥५०॥ अवमानमहं प्राप्य

कहती है हे भरतवंशी राजन् दुर्योधन ! इन चारों वर्णोंका आपस में अनुलोम और प्रतिलोम संबंध होनेसे अनुलोम और प्रतिलोमजातिकी वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न होती है, इनमें क्षत्रिय जाति सब वर्णोंकी रक्षा करनेवाली वेदाध्ययन करनेवाली और दान देनेवाली है, ब्राह्मणजाति यज्ञ करने वाली करानेवाली वेद जाननेवाली, पढ़ाने वाली, दान देनेवाली और दान लेने वाली है ब्रह्माने पृथिवी पर ब्राह्मण और क्षत्रियकी जातिको लोगोंके ऊपर अनुग्रह करनेको ही रचा है ॥ ४२ ॥ ४६ ॥ खेती करना, पशुओं का पालन करना तथा धर्मके अनुसार दान देना; यह वैश्योंका धर्म है और शूद्रजातिको तीनों वर्णोंकी सेवा करनेके लिये रचा है ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंकी सेवा करनेके लिये शूद्रोंको उत्पन्न किया है, परन्तु क्षत्रियजातिका पुरुष शूद्रोंकी सेवा करे, ऐसा तो कहीं सुननेमें नहीं आया ॥ ४७ ॥ ॥४८ ॥ मेरे ललाट पर राजतिलक हुआ है, मैं राजर्षिकुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, महारथी कहलाता हूँ और मैं वन्दीजनोंके सेवा तथा स्तुति करने योग्य हूँ ॥ ४९ ॥ ऐसा मैं शत्रुओं की सेनाका नाश करनेमें समर्थ होकर, यहाँ संग्राम

न योत्स्यामि कथञ्चन। आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै ॥ ५१ ॥ सञ्जय उवाच ॥ एवमुक्त्वा नरव्याघ्रः शल्यः समितिशोभनः। उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥ ५२ ॥ प्रणयाद्बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव। अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम् ॥ ५३ ॥ यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम्। अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तन्निबोध जनेश्वर ॥ ५४ ॥ न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शङ्के त्वाञ्च पार्थिव। न हि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद्यदनृतं भवेत् ॥ ५५ ॥ ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः। तस्मादार्त्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥ ५६ ॥

मैं कर्णका सारथी बनना नहीं चाहता ॥ ५० ॥ हे गान्धारीके पुत्र! मैं किसी प्रकार भी ऐसा अपमान पाकर युद्ध नहीं करूगा, किन्तु आज ही तुम्हारी आज्ञा लेकर अपने घरको चलाजाऊँगा ॥ ५१ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे महाराज! ऐसा कहकर सभाका आभूषणरूप राजा शल्य क्रोधमें भरा हुआ राजाओंके बीचमेंसे एकसाथ उठकर चलने लगा॥५२॥तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने प्रेमभाव दिखातेहुए बड़े ही सन्मानके साथ राजा शल्यको पकड़कर रोक लिया और उसको समझाते हुए सब कामोंको सिद्धकरने वाला मधुरवाक्य कहने लगा कि-॥५३॥हे राजा शल्य! आप जैसा कहते हैं, यह सब ठीक है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं तथापि हेराजन! मेरा जो कुछ विचार है उसको सुनलीजिये ५४ हे राजन!कर्ण आपसे अधिक बली नहीं है और मुझे आपके पराक्रमके विषयमें कुछ सन्देह नहीं है और जो काम करने योग्य नहीं होगा उसको मद्रदेशका महाराज कदापि नहीं करसकता ॥५५॥तुम्हारे पूर्वपुरुष सत्यवादी थे, तुम उनके ही गोत्रमें उत्पन्न हुए हो,इसलिये ही तुमको लोग आर्त्तायनि कहते हैं अर्थात् ऋत जो उसकाअयन कहिये आश्रय करनेवालोंका गोत्रज कहते हैं इस,

शल्यभूतश्च शत्रूणां यस्मात्त्वं भुवि मानद । तस्माच्छल्येति ते नाम कथ्यते पृथिवीतले ॥ ५७ ॥ यदेतद्व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण । तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थे यद्यदुच्यसे ॥५८॥ न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान् । वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिति संयुगे ॥ ५९ ॥ मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैःकर्णं धनञ्जयात् । भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते६० कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ । भवानप्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥६१॥ यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः । द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज ॥ ६२ ॥ शल्य उवाच । यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव । विशिष्टं देवकी-

---

बातको मैं समझा हुआ हूँ ॥५६॥ और हे मान देनेवाले राजन् ! तुम युद्धमें शत्रुओंको शल्यरूप हो, इसलिये ही भूतल पर तुम्हारा शल्य नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ५७ ॥ हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले और धर्मको जानने वाले राजन् ! पहिले मेरा प्रिय काम सिद्ध करनेके लिये तुम जैसे कह चुकेहो और अब भी जो कुछ कहा है उस सब कामको करिये ॥ ५८ ॥ न आपसे कर्ण ही अधिक बलवान् है और न मैं ही आपसे अधिक बली हूँ, तुम श्रेष्ठ घोड़ोंको काबूमें रखना जानतेहो इसलिये ही मैं आपसे सारथी बननेकी प्रार्थना करता हूँ ॥५९॥ हे शल्य ! मैं कर्ण को अर्जुनसे अधिक गुणवान् समझताहूँ और आपको श्रीकृष्णसे अधिक गुणवान् मानता हूँ और यह जगत् भी ऐसा ही मानता है ॥ ६० ॥ हे राजन् ! कर्ण अस्त्रविद्यामें अर्जुनसे अधिक है और तुम अश्वविद्यामें तथा बलमें श्रीकृष्णसे अधिक हो ॥ ६१ ॥ उदारमन वाले श्रीकृष्ण जिस अश्वविद्याको जानते हैं, हे मद्रराजकुमार ! तुम उससे दूनी अश्वविद्याको जानते हो ॥ ६२ ॥ इस पर राजा शल्यने कहा, कि-हे गांधारीके पुत्र दुर्योधन ! तुमने जो इस

पुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ ६३ ॥ एष सारथ्यमातिष्ठे राधे-
यस्य यशस्विनः । युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ६४
समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्त्तनं प्रति । उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं
वाचोऽस्य सन्निधौ ॥ ६५ ॥ सञ्जय उवाच । तथेति राजन् पुत्रस्ते
सह कर्णेन भारत । अब्रवीन्मद्रराजस्य मतं भरतसत्तम ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यस्य सारथ्यस्वीकारे
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दुर्योधन उवाच । भूय एव तु मद्रेश यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
यथा पुरा वृत्तमिदं युद्धे देवासुरे प्रभो ॥ १ ॥ यदुक्तवान् पितुर्मह्यं
मार्कण्डेयो महानृषिः । तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ॥२॥

सेनाके बीचमें मुझे देवकीपुत्र श्रीकृष्णसे अधिक बलवान् कहा, इससे मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ ॥ ६३ ॥ हे वीर ! इसलिये ही मैं तेरी प्रार्थनाके अनुसार, यशस्वी राधाका पुत्र कर्ण जिस समय अर्जुनके सामने युद्ध करनेको जायगा उस समय मैं उसका सारथीपना करूँगा ॥ ६४ ॥ परन्तु हे वीर राजन् ! इस कामको करनेके लिये मैं एक नियम करता हूँ, कि-मैं सूर्यके पुत्र कर्ण से जो २ बात कहूँ वह सब बातें उसको श्रद्धाके साथ सुननी पड़ेंगी ॥ ६५ ॥ संजय कहता है, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! फिर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने और कर्णने राजा शल्यके अभिप्राय को जानकर उत्तर दिया, कि-अच्छा ऐसा ही होगा ॥ ६६ ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ छ ॥ छ

दुर्योधनने कहा, कि-हे मद्रदेशके राजन् ! पहले जैसे देवासुर नामका युद्ध हुआ था, उसकी कथा मैं तुमको सुनाता हूँ, सुनिये १ हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ शल्य ! पहले महर्षि मार्कण्डेयने मेरे पिताके सुनते हुए मुझसे जो कथा कही थी, वह मैं आज तुम्हें पूरी २

तन्निबोध न चाप्यत्र कर्त्तव्या ते विचारणा । देवानामसुराणां च परस्परजिगीषया ॥ ३ ॥ बभूव प्रथमो राजन् संग्रामस्तारकामयः । निर्जितास्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥ निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः । ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव ॥ ५ ॥ तप उग्रं समास्थाय परमे नियमे स्थिताः । तपसा कर्षयामासुर्देहांस्ते शत्रुतापन ॥६॥ दमेन तपसा चैव नियमेन समाधिना । तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ॥ ७ ॥ अवध्यत्वं च ते राजन् सर्वभूतैश्च सर्वदा । सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥८॥ तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः । नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्त्तध्वमितोऽसुराः ॥ ९ ॥

सुनाता हूँ ॥ २ ॥ इसको सुनिये तथा अपने मनमें और कुछ विचार न करिये, हे राजन् ! पहले देवताओंने तथा दैत्योंने आपसमें विजय पानेकी इच्छासे तारकामय संग्राम किया था और उस संग्राममें देवताओंने दैत्योंको हरादियाथा,ऐसा हमने सुना है३-४ जब देवताओंने दैत्योंको हरादिया,तब हे राजन् ! तारक दैत्यके ताराक्ष,कमलाक्ष और विद्युन्माली नामके तीन पुत्र थे५वे परम नियममें रहकर उत्तम तपस्या करनेलगे, और हे शत्रुओंको ताप देनेवाले राजन् ! तपस्यासे अपने शरीरोंको सुखाने लगे ॥६॥ उनके बाहरी इन्द्रियोंका निग्रह करनेसे, एकाग्रचित्त होनेसे, नियमोंका पालन करनेसे तथा समाधिसे वरदेनेवाले ब्रह्माजी प्रसन्न होगये और उन्होंने जब उन दैत्योंसे वर माँगनेके लिये कहा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तब उन तीनोंने, सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीसे एक साथ यह वर माँगा, कि–हमको कोई भी प्राणी किसी समय भी न मारसके ॥ ८ ॥ उस समय सब लोकोंके प्रभु समर्थ ब्रह्माजीने उनसे कहा, कि–इस लोकमें कोई भी अमर नहीं रहसकता, इसलिये हे असुरो ! तुम ऐसा वर न

अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते । ततस्ते सहिता राजन्
संप्रधार्यासकृत्प्रभुम् ॥ १० ॥ सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्येदम-
थाब्रुवन् । अस्मभ्यं त्वं वरं देव संप्रयच्छ पितामह ॥ ११ ॥ वयं
पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् । विचरिष्याम लोकेऽ-
स्मिंस्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः ॥ १२ ॥ ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः
परस्परम् । एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥ १३ ॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा । एकेषुणा देववरः स नो
मृत्युर्भविष्यति १४ एवमस्त्विति तान्देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् । ते तु
लब्धवराः प्रीताः संप्रधार्य परस्परम् ॥ १५ ॥ पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं
मयं वव्रुर्महासुरम् । विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥ १६ ॥

माँगो, किन्तु जो तुम्हारे मनको अच्छा लगता हो ऐसा कोई और
वर माँगलो तथा अब तपस्या करनी बन्द करदो, हे राजन् !
यह सुनकर उन तीनों भाइयोंने मनमें निश्चय करके वार वार
सब लोकोंके ईश्वर ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा, कि–हे पिता-
मह ! आप हमको ऐसा वर दीजिये, कि–॥ ६–११ ॥ हम
तीन नगरोंमें बैठकर तुम्हारी कृपासे सन्मान पातेहुए इस पृथिवी
पर विचरें ॥ १२ ॥ इसप्रकार फिरते २ एक सहस्र वर्ष बीतजाने
पर जब हमारे ये नगर इकट्ठे हों और हे निष्पाप ब्रह्माजी !
उस समय जब हम एक दूसरेसे मिलजायँ ॥ १३ ॥ हे भगवन् !
तब हमारे इकट्ठेहुए इन तीनों नगरोंको जो महान् देवता एक
ही बाणसे नष्ट करदेय, उसके ही हाथसे हमारी मृत्यु हो, यही
वर हम माँगते हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी उनसे 'तथास्तु' कहकर
ब्रह्मलोकको चलेगये और वे दैत्य वर पाकर प्रसन्न होगये, फिर
आपसमें संमति करके दैत्य और दानवोंमें प्रतिष्ठा पायेहुए,
जरारहित विश्वकर्मा नामके महादैत्य मय दानवके पास गये और
तीनों भाइयोंने उससे तीन नगर बनादेनेकी प्रार्थना की १५-१६

ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान् पुराणि च । त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा ॥ १७ ॥ काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरीक्षे च राजतम् । आयसञ्चाभवद्भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते ॥१८॥ एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम् । गृहाट्टालकसंयुक्तं बृहत्प्राकारतोरणम् ॥ १९ ॥ गृहप्रवरसम्बाधमसम्बाधमहापथम् । प्रासादैर्विविधैश्चैव द्वारैश्चाप्युपशोभितम् ॥ २० ॥ पुरेषु चाभवन्राजन् राजानो वै पृथक् पृथक् । काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ॥ २१ ॥ राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् । त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रींल्लोकानस्त्रतेजसा २२ आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः । तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बु-

---

तब मय दानवने अपने मनको एकाग्र करके एक सोनेका, एक चाँदीका और एक लोहेका ये तीन नगर बनाये ॥ १७ ॥ इन तीनों नगरोंमेंसे सोनेका नगर स्वर्गमें रहा, चाँदीका नगर अन्तरिक्षमें रहा और लोहेका नगर पृथिवी पर रहा, हे राजन् ! ये तीनों नगर अपने स्वामियोंकी इच्छानुसार विचरते थे ॥१८॥ यह हर एक नगर लंबाई और चौड़ाईमें बराबर सौ २ योजनका था और उनमें महल अटारियें, बहुतसे किले तथा बड़ी २ वंदनवारें बनी हुई थीं ॥ १९ ॥ उन नगरोंमेंके बड़े २ मंदिर एक दूसरेसे सटकर मालाकार बनेहुए थे. बड़ी २ सड़कें बनीं हुईं थीं, अनेकों प्रकारकी बनावटोंकी हवेलियोंसे तथा फाटकों से वह नगर शोभा पारहा था ॥ २० ॥ हे राजन् ! उन तीनों नगरोंके राजे जुदे२ थे, महात्मा तारकाक्षका नगर सोनेका विचित्र था ॥ २१ ॥ कमलाक्षका चाँदीका था, और विद्युन्माली का नगर लोहे का था उन तीनों दैत्य राजाओंने अस्त्रके प्रतापसे तीनों लोकोंको अपने वशमें करलिया और वे कहने लगे, कि—प्रजापति कौन पदार्थ है ? अर्थात् हम

दानि च ॥ २३ ॥ कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः ।
मांसादाश्च सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा ॥ २४ ॥ महदैश्वर्य-
मिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः ॥ सर्वेषाञ्च पुनस्तेषां सर्वयोगवहो
मयः ॥ २५ ॥ तमाश्रित्य हि ते सर्वे वर्त्तयन्त्यकुतोभयाः । यो
हि यं मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः ॥ २६ ॥ तस्मै कामं
मयस्तं तं विदधे मायया तदा । तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महा-
बलः ॥ २७ ॥ तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत् पितामहः । सन्तुष्टम-
वृणोद्देवं वापी भवतु नः पुरे ॥ २८ ॥ शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः
स्युर्बलवत्तराः । स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः २९

ही तीनों लोकोंके राजा हैं, जिनका पहले देवताओंने अपमान किया था और जो मांसाहारी तथा अभिमानी थे, ऐसे महाशूर करोड़ों दानव इन दैत्यराजाओंके पास जिधर, तिधरसे आकर इकट्ठे होगये ॥ २२-२४ ॥ फिर ये सब दैत्य बड़ीभारी प्रभुता को पानेकी इच्छासे त्रिपुरासुरके किलेमें ही आकर बसगये, मय दानव इन सब दानवोंकी सकल आवश्यकतायें पूरी किया करता था ॥ २५ ॥ सब दानव मयका आश्रय लेकर सब स्थानों से तहाँ ही आ निर्भयताके साथ रहनेलगे, इस त्रिपुरमें रहनेवाला कोई भी अपने मनमें जो कामना करता था, उसकी उस कामना को मय दैत्य अपनी माया ने तत्काल पूरी करदेता था तारकाक्ष के एक हरि नामका महाबली वीर पुत्र था ॥ २६-२७ ॥ उसने बड़ाभारी तप किया तब ब्रह्माजी प्रसन्न होगये, तब संतुष्ट हुए ब्रह्मदेवसे हरिने वर माँगा, कि—हमारे नगरमें एक ऐसी बावड़ी बनजाय, कि-॥ २८ ॥ जिसमें हथियारोंसे घायल हुए वीरोंको डालने पर उनके घाव भरजायँ और वे अधिक बलवान् होकर बाहर निकलें, ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर तारकाक्षके पुत्र हरिको वरदान दिया, हरि उस वरको पाकर ॥ २९ ॥ हे राजन्

ससृजे तत्र वापीं तां मृतसंजीवनीं प्रभो । येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥३०॥ मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् । तां प्राप्य ते पुनस्तांस्तु सर्वान् लोकान् बबाधिरे ॥ ३१ ॥ महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्द्धनाः । न तेषामभवद्राजन् क्षयो युद्धे कथञ्चन॥३२॥ततस्ते लोभमोहाभ्यामभिभूता विचेतसः । निर्ह्रीकाः संस्थिता सर्वे स्थापिताः समलूलुपन् ॥ ३३ ॥ विद्राव्य सगणान् देवांस्तत्र तत्र तदा तदा । विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ३४ देवोद्यानानि सर्वाणि प्रियाणि च दिवौकस म् । ऋषीणामाश्रमान् पुण्यान् रम्यान् जनपदांस्तथा ॥३५॥ व्यनाशयन्नमर्य्यादा दानवा दुष्टचारिणः । पीड्यमानेषु लोकेषु ततः शक्रो मरुद्वृतः ॥ ३६ ॥

शल्य ! अपने नगरमें मरनेवालोंको जीवित करनेवाली एक बावडी बनवाई, दैत्य जिस वेशमें और जिस रूपमें मरते थे, उनको उस बावडीमें डालदेने पर फिर वैसे ही वेश और रूपमें जीवित होकर उस बावडीमेंसे बाहर निकल आया करते थे, इस प्रकार वे दैत्य बड़ेभारी तपसे सिद्धिको तथा उस बावडीको पाकर सब लोकोंको पीडा देनेलगे और देवताओंके भयको बढ़ानेलगे, इसप्रकार युद्धमें किसी दिन भी दैत्योंका नाश नहीं होता था, वे दैत्य दिन प्रतिदिन लोभ और मोहके वशमें होते चलेगये, बुद्धि नष्ट होजानेसे उन्होंने लज्जाको त्यागदिया,वे चारों ओरसे लूट मार करनेलगे, ब्रह्माजीके वरदानसे वे बड़े गर्वमें भरगये थे, इसलिये भिन्न २ समयों पर और भिन्न २ स्थानोंमें देवताओंको तथा गणदेवताओंको भगाकर अपनी इच्छानुसार विचरनेलगे।३०। ।३४।वे दुराचारी दानव,मर्यादाका,देवताओंके प्रिय सब बगीचोंका ऋषियोंके पवित्र और रमणीय आश्रमोंका तथा रमणीय देशोंका नाश करनेलगे, जब वे सब लोकोंको दुःख देनेलगे, तब इन्द्र अपने योधा पवनोंको साथ लेकर इन त्रिपुरोंके साथ लडनेको

पुराण्यायोधयाचक्रे वज्रपातैः समन्ततः। नाशकत्तान्यभेद्यानि यदा भेत्तुं पुरन्दरः ॥ ३७ ॥ पुराणि वरदत्तानि धात्रा तेन नराधिप। तदा भीतः सुरपतिर्मुक्त्वा तानि पुराण्यथ ॥ ३८ ॥ तैरेव विबुधैः सार्द्धं पितामहमरिन्दम। जगामाथ तदा ख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ॥ ३९ ॥ ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरोभिः संप्रणम्य च। वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ॥ ४० ॥ श्रुत्वा तद्भगवान् देवो देवानिदमुवाच ह। ममापि सोऽपराध्नोति यो युष्माकमसौम्यकृत् ॥ ४१ ॥ असुरा हि दुरात्मानः सर्व एव सुरद्विषः। अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान् पीडयन्त्युत ॥ ४२ ॥ अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः। अधार्मिकास्तु हन्तव्या इति मे व्रतमाहितम् ॥४३॥ एकेषुणा विभेद्यानि तानि दुर्गाणि नान्यथा

आया और उनके ऊपर चारों ओरसे वज्रका प्रहार करनेलगा, परन्तु ब्रह्माजीने उनको वरदान देदिया था. इसलिये उन अभेद्य तीनों पुरको न तोडसका, किन्तु उसने भयभीत होकर उन तीनों नगरोंको छोडदिया तथा हे शत्रुदमन राजन्! वह देवताओंको साथ लेकर, दैत्योंसे जो दुःख मिलता था उसको कहनेके लिये ब्रह्माजीके पास गया ॥ ३५–३९ ॥ इन्द्रने ब्रह्माजीको प्रणाम करके सब बात निवेदन की और फिर पितामह ब्रह्माजीसे बूझा कि–बताइये, इस त्रिपुरका नाश किस उपायसे हो ॥ ४० ॥ भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंकी बात सुनकर उनसे उत्तरमें यह बात कही, कि—जो तुम्हें दुःख देता है वह मेरा भी अपराध करता है ॥ ४१ ॥ सब असुर दुष्टात्मा और देवताओंके द्वेषी हैं वे निरन्तर मेरा अपराध करते हैं और तुम्हें भी पीड़ा देते हैं ॥ ४२ ॥ मैं निःसन्देह सब प्राणियोंके लिये समान हूँ, परन्तु मैंने धर्मरहित पापियोंका नाश करने का व्रत लेलिया है ॥ ४३ ॥ त्रिपुरके तीनों नगर एक ही बाण से नष्ट कियेजासकते

न च स्थाणुमृते शक्तो भेत्तुमेकेषुणा परः ॥४४ ॥ ते यूयं स्थाणुमीशानं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् । योद्धारं वृणुतादित्याः स तान् हन्ता सुरेतरान्॥४५॥इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥ ४६ ॥ तपोनियममास्थाय गृणंतो ब्रह्म शाश्वतम्।ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः ॥ ४७ ॥ तुष्टुवुर्वाग्भिरुग्राभिर्भयेष्वभयदं नृप । सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ॥ ४८ ॥ तपोविशेषैर्बहुभिर्योगं यो वेद चात्मनः । यः सांख्यमात्मनो वेत्ति यस्य चात्मा वशे सदा४९ तं ते ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम् । अनन्यसदृशं लोके भग-

हैं, इसके लिये और कोई उपाय नहीं और भगवान शङ्करके सिवाय दूसरा कोई भी ऐसा नहीं है, कि–जो एक ही बाणसे इन तीनों नगरोंको तोड़सके ॥ ४४ ॥ इसलिये हे देवताओं ! तुम स्थिर रहनेवाले सबके ईश्वर, विजयी, उत्तम कर्म करनेवाले योधा श्रीशङ्करके पास जाओ और उनसे वर माँगो, तब वह इन दैत्यों का नाश करेंगे ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजीकी बात सुनकर इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्माजी को साथमें लिये हुए श्रीशङ्करकी शरणमें गये ॥ ४६ ॥ ये देवता धर्मको जाननेवाले थे इसलिये यम नियम को ग्रहण करके, मनको एकाग्र कर शुद्ध अन्तःकरणसे सनातन परब्रह्मकी कीर्त्ति गाते हुए ऋषियोंके साथ श्रीशङ्करके पास गये ॥ ४७ ॥ और भयके अवसरों पर अभय देने वाले, सबके आत्मारूप, निरुपाधिक आत्मासे सर्वत्र व्यापे हुए महात्मा शङ्कर की उग्र वाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ४८ ॥ जो शङ्कर अनेकों प्रकारकी तपस्यासे चित्तकी वृत्तिका निरोध करना जानते हैं, जो अपने आत्माको जड़पदार्थमात्रसे जुदा रखना जानते हैं तथा जो आत्माको स्वतन्त्र रखना जानते हैं ऐसे, तेजके भण्डाररूप उमा के पति पापरहित श्रीशङ्करका सबोंने दर्शन किया ॥ ४९ ॥ छः

वन्तमकल्मषम् ॥ ५० ॥ एकञ्च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन् ।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ॥५१॥ परस्परस्य
चापश्यन् सर्वे परमविस्मिताः । सर्वभूतमयं दृष्ट्वा तमजं जगतः
पतिम् ॥ ५२ ॥ देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः । तान्
स्वस्तिवादेनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शङ्करः ॥५३॥ ब्रूत ब्रूतेति भग-
वान् स्मयमनोऽभ्यभाषत।त्र्यम्बकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्ते स्वस्थचेतसः
४५ नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रभो इत्यब्रुवन् वचः । नमो देवाधिदेवाय
धन्विने वनमालिने ॥ ५२ ॥ प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्य
ते। नमो स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय शंभवे ॥ ५६ ॥ विलोहि-
ताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने । अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुध-

ऐश्वर्यवाले श्रीशंकर एकरूप हैं, तो भी सब देवता बड़े ही आ-
श्चर्यमें होकर श्रीशंकरमें अपने संकल्पके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु,
रुद्रादि अनेकों प्रकारके रूपोंको देखने लगे तथा वे देवता महात्मा
शंकरमें अपने आपको तथा दूसरोंको भी देखनेलगे, देवता तथा
ब्रह्मर्षियोंने सकल प्राणिमय, अजन्मा, जगत्पति श्रीशंकरके दर्शन
करनेके अनन्तर पृथिवी पर लंबे लेटकर उनको प्रणाम किया
तब भगवान् शंकरने स्वस्ति कहकर उनका सत्कार करते हुए
उठाया ॥ ५०-५३ ॥ और मुसकुराते हुए भगवान् शंकर कहने
लगे, कि-हे देवताओं ! कहो, कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है ?
इसप्रकार त्रिनेत्र शंकरके आज्ञा देने पर देवता मनको स्थिर
करके कहने लगे, कि-हे प्रभो ! आपको नमस्कार है, आपको
नमस्कार है, देवताओंके अधिदेव धनुषधारी वनमाला पहननेवाले
शंकरको नमस्कार है ॥ ५४-५५ ॥ दक्षके यज्ञका विध्वंस करने
वाले, प्रजापतियोंने जिनकी स्तुति की, करते हैं तथा जो स्तुति
के योग्य हैं ऐसे शंभुको नमस्कार है ॥ ५६ ॥ लाल २ रूपवाले,
रुद्र (भयानक) रूप, विषके कारण श्याम कण्ठवाले, त्रिशूलधारी

योधिने ॥ ५७ ॥ अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च।
दुर्वारणाय काथाय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ५८ ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे
चीरवाससे। तपोरताय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे ५९ कुमारपित्रे
त्र्यक्षाय प्रवरायुधयोधिने। प्रपन्नार्त्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्सङ्घघातिने॥
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः। गवाञ्च पतये नित्यं यज्ञानां
पतये नमः ॥६१॥ नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायामितौजसे।
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान् भजस्व नः ॥ ६२ ॥ ततः
प्रसन्नो भगवान् स्वागतेनाभिनन्द्य तान्। प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो
ब्रूत किं करवाणि वः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुराख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३

सफल दर्शन वाले, जिनके मृगकेसे नेत्र हैं, उत्तम आयुधोंसे युद्ध करनेवाले श्रीशङ्करको नमस्कार है ॥ ५७ ॥ सब प्रकार योग्य, शुद्धस्वरूप, सकल जगत्के निवासरूप, सबका संहार करनेवाले, जिनको पीछेको हटाना कठिन है, सर्वप्रलयकर्त्ता, ब्रह्मचारीरूप, और ब्रह्मस्वरूप शङ्करको नमस्कार है ॥ ५८ ॥ सब विद्याओंके अधिपति, प्रमादरहित, सबके नियन्ता, मृगचर्म ओढ़ने वाले, तपोरूप रथमें बैठनेवाले; पिङ्गलवर्ण, व्रतधारी तथा हाथीका चर्म ओढ़नेवाले शङ्करको नमस्कार है ॥ ५९ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयके पिता, तीन नेत्र वाले, उत्तम आयुध धारण करनेवाले, शरणागतके दुःखहर्त्ता तथा ब्राह्मणोंके द्वेषियोंके समूहका नाश करनेवाले श्रीशङ्करको नमस्कार है ॥ ६० ॥ वनस्पतियोंके पति, मनुष्योंके पति, गौओंके पति और यज्ञोंके पति श्रीशङ्करको नमस्कार है ॥ ६१ ॥ सेनाके साथ रहनेवाले, त्रिनेत्र, अपार-पराक्रमी श्रीशङ्करको नमस्कार है हे देव! हम मन वाणी और कायासे आपकी शरणमें आये हैं, आप हमारा कल्याण करिये ॥ ६२ ॥ भगवान् शङ्कर देवताओंकी इस स्तुतिसे प्रसन्न होगये और फिर उनका आगत स्वागतसे सत्कार करके कहने

दुर्योधन उवाच । पितृदेवर्षिसंघेभ्योऽभये दत्ते महात्मना । सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः ॥ १ ॥ तवातिसर्गात् सर्वेश प्राजापत्यमिदं पदम् । मयाधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान् वरः ॥२॥ ताननतिक्रान्तमर्यादान्नान्यः संहर्तुमर्हति । त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्विभो ॥ ३ ॥ स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां नो दिवौकसाम् । कुरु प्रसादं देवेश दानवान् जहि शङ्कर ॥४ त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं सुखमेधत मानद । शरण्यस्त्वं हि लोकेश ते वयं शरणं गताः ॥ ५ ॥ स्थाणुरुवाच । हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः । न त्वेक उत्सहे हन्तुं बलस्था हि सुर-

लगे, कि-तुम्हारा भय दूर हो और तुम बताओ, कि-मैं तुम्हारा कौनसा काम करूँ ? ॥ ६३ ॥तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

दुर्योधनने कहा, कि-हे राजा शल्य ! महात्मा शङ्करने पितरों को, देवर्षियोंके मण्डलोंको और देवताओंको अभयदान दिया, तब ब्रह्माजीने शङ्करका सत्कार कर लोकोंका हित करनेवाली बात कही, कि-॥ १ ॥ हे देवेश ! आपकी कृपासे मैंने प्रजापति का पद पाया है और दानवोंको बड़ा वर दिया है ॥२॥ परन्तु उन दानवोंने अब मर्यादाका भङ्ग करदिया है, इसलिये अब उनका संहार आपके सिवाय दूसरा कोई नहीं करसकता, इस लिये हे भूत भविष्यके स्वामी ! आप उनका संहार करिये ॥३॥ हे देव ! ये देवता आपकी शरणमें आये हैं, इसलिये हे देवेश ! शङ्कर ! आप कृपा करके इन दैत्योंका नाश करिये ॥ ४ ॥ हे मान देनेवाले शङ्कर ! सब जगत् आपकी कृपासे सुख पाता है, और हे लोकोंके स्वामी ! तुम शरणागतोंके प्यारे हो, इसलिये हम आपकी शरणमें आये हैं ॥ ५ ॥ स्थाणु-शिव बोले, कि-मेरा विचार है, कि-तुम्हारे सब शत्रुओंका नाश करदिया जाय, परन्तु दानव बलवान् हैं, इसलिये मैं अकेला उनका नाश नहीं

द्विपः ॥ ६ ॥ ते यूयं सहिताः सर्वे मदीयेनार्द्धतेजसा । जयध्वं युधि तान् शत्रून् संघातो हि महाबलः ॥ ७ ॥ देवा ऊचुः । अस्मत्तेजोबलं यावत्तावद् द्विगुणमाहवे । तेषामिति ह मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः । मम तेजोबलार्द्धेन सर्वान्निघ्नत शात्रवान् ६ देवा ऊचुः । विभर्तुं तव तेजोऽर्द्धं न शक्ष्यामो महेश्वर । सर्वेषां नो बलार्द्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच । यदि शक्तिर्न वः काचिद्बिभर्तुं मामकं बलम् । अहमेतान् हनिष्यामि युष्मत्तेजोर्द्धबृंहितः ॥ ११ ॥ ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम । अर्धमादाय सर्वेषां तेजसाऽभ्यधिकोऽभवत् १२ स तु देवो बलेनासीत्

करना चाहता ॥ ६ ॥ तुम सब इकट्ठे होजाओ और मेरे आधे तेजसे उन शत्रुओंका पराजय करो, पुरुष इकट्ठे होनेसे महाबली होजाते हैं ॥ ७ ॥ देवताओंने कहा, कि-हममें जितना तेज और बल है, उसकी अपेक्षा उनका तेज और बल हमारी समझमें दूना है, क्योंकि-हमने रणमें उनका तेज और बल देखा है ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि-जिन पापियोंने तुम्हारा अपराध किया है वे सर्वथा मार देनेके योग्य हैं, मेरे आधे तेज और बलसे तुम सब शत्रुओंका नाश करडालो ॥ ६ ॥ देवताओंने कहा, कि-हे महेश्वर! हम आपके आधे तेज और बलको धारण नहीं करसकते, इसलिये आपही हम सबोंके आधे तेज और बलको लेकर सब शत्रुओंका नाश करिये ॥ १० ॥ श्रीभगवान् ने कहा, कि-यदि तुममें मेरे आधे बलको धारण करनेकी शक्ति नहीं है तो मैं ही तुम्हारे आधे तेजको लेकर तुम्हारे शत्रुओंका संहार करूँगा ॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! यह सुनकर देवताओं ने शिवजीसे कहा, कि-बहुत अच्छा, तब शिवजी सब देवताओं का आधा तेज लेकर उसके द्वारा सबसे अधिक तेजस्वी और

सर्वेभ्यो बलवत्तरः । महादेव इति ख्यातस्ततः प्रभृति शङ्करः १३
ततोऽब्रवीन्महादेवो धनुर्बाणधरस्त्वहम् । हनिष्यामि रथेनाजौ
तान् रिपून् वो दिवौकसः ॥ १४ ॥ ते यूयं मे रथञ्चैव धनुर्बाणं
तथैव च । पश्यध्वं यावदद्यैतान् पातयामि महीतले ॥ १५ ॥
देवा ऊचुः । मूर्त्तीः सर्वाः समाधाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः । रथं
ते कल्पयिष्यामो देवेश्वर सुवर्चसम् ॥ १६ ॥ तथैव बुद्ध्या विहितं
विश्वकर्मकृतं महत् । ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन् १७
विष्णुं सोमं हुताशञ्च तस्येषुं समकल्पयन् । शृङ्गमग्निर्बभूवास्य
भल्लः सोमो विशाम्पते ॥ १८ ॥ कुड्मलञ्चाभवद्विष्णुस्तस्मिन्निषुवरे तदा । रथं वसुन्धरां देवीं विशालपुरमालिनीम् ॥ १९ ॥

सबसे अधिक बली होगये ॥ १२ ॥ भगवान् शङ्कर सब देवताओंसे अधिक बलवान् हुए तबसे ही जगत्में महादेव नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १३ ॥ फिर महादेवजीने देवताओंसे कहा, कि- हे देवताओ! मैं धनुष बाण धारण करके रथमें बैठ रणमें तुम्हारे शत्रुओंका नाश करूंगा ॥ १४ ॥ हे देवताओ ! तुम आज मेरे धनुषको और बाणोंको देखो, मैं आज अपने बाणोंसे नगरोंको तोड़कर भूमिपर गिरा दूँगा ॥ १५ ॥ देवताओंने कहा, कि- हे देवेश्वर ! हम तीनों लोकोंके सब तत्त्वोंको इकट्टे करके आपके लिये एक महाकान्तिमान् रथ बनावेंगे ॥ १६ ॥ देवताओंके ऐसा कहने पर वह रथ जैसा पहिले बताया था वैसा ही विश्वकर्माने तयार करदिया और देवताओंने उस रथके भिन्न २ अङ्गोंको रचदिया ॥ १७ ॥ विष्णु, सोम और अग्निको शंकरका बाण बनाया, इनमें अग्नि को धनुषका काण्ड बनाया सोम को बाण का फल बनाया और विष्णु को बाण की तीक्ष्ण धारपर रक्खा, बड़े २ नगर पहाड़, वन, द्वीप आदिके समूहवाली पृथिवीको शङ्करका रथ बनाया, मन्दर नामक पर्वतको उस

सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा। मन्दरः पर्वतश्चाक्षं जंघा तस्य महानदी ॥ २० ॥ दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारो रथस्य ह । ईषा नक्षत्रवंशश्च युगः कृतयुगोऽभवत् ॥ २१ ॥ कूवरश्च रथस्यासीद्वासुकिर्भुजगोत्तमः । अपस्करमधिष्ठाने हिमवान् विन्ध्यपर्वतः ॥ उदयास्तावधिष्ठाने गिरी चक्रे सुरोत्तमाः ॥ २२ ॥ समुद्रमक्षमसृजन् दानवालयमुत्तमम् । सप्तर्षिमण्डलञ्चैव रथस्यासीत् परिष्करः ॥ २३ ॥ गङ्गा सरस्वती सिन्धुर्धुरमाकाशमेव च । उपस्करो रथस्यासन्नापः सर्वाश्च निम्नगाः ॥२४॥ अहोरात्रं कलाश्चैव काष्ठाश्च ऋतवस्तथा । अनुकर्षं ग्रहा दीप्ता वरूथं चापि तारकाः ॥ २५ ॥ धर्मार्थकामसंयुक्तं त्रिवेणुं दारुबन्धुरम्। ओष-

---

रथ की धुरी बनाया, महानदी गङ्गा को धुरीके आधाररूप काठ के स्थानमें नियत किया ॥ १८—२० ॥ दिशाओं और कोनोंको रथका परिवाररूप बनाया, नक्षत्रोंके समूहको ईषा बनाकर सत्युगको रथका जुआ बनाया ॥ २१ ॥ सर्पराज वासुकीको रथका कूबर बनाया, पिछले काठकी जगह शेषको रक्खा, हिमालय और विंध्याचलको रथके पहिये बनाया तथा श्रेष्ठ देवताओंने उदयाचल और अस्ताचलको उन दोनों पहियों के आधार का काठ बनाया ॥२२ ॥ दैत्योंके रहनेके उत्तम स्थानरूप महासागरको रथकी अक्ष (बाँधने की रस्सियों का ढेर)बनाया,सप्तर्षियोंके मण्डलको रथके पहियों की पट्टियें बनाया ॥ २३ ॥ गङ्गा, सरस्वती, सिंधु और आकाशगङ्गाको उस रथके जुएको बाँधनेकी सामग्री बनाया, अन्य सब नदियोंको अन्य स्थानोंमें बाँधनेकी रस्सियें बनाया ॥ २४ ॥ दिन, रात, कला, काष्ठा तथा छः ऋतुओंको रथके नीचेका खेंचनेवाला भाग बनाया, चमकतेहुए ग्रह और तारागणको रथका वरूथ (रक्षकभाग) बनाया ॥ २५ ॥ तीन बाँसोंकी समान धर्म, अर्थ और कामको

धीर्वीरुधस्तत्र घण्टापुष्पफलोपगाः ॥ २६ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे । पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते रात्र्यहनी शुभे ॥२७॥ दशनागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखान् दृढान् । योक्त्राणि चक्रुर्नागांश्च निःश्वसन्तो महोरगान् ॥ २८ ॥ द्यां युगं युगचर्माणि संवर्त्तक-वलाहकान् । कालपृष्ठोऽथ नहुषः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ २९ ॥ इतरे चाभवन्नागा हयानां वालबन्धनाः । दिशश्च प्रदिशश्चैव रश्मयो रथवाजिनाम् ॥ ३० ॥ सन्ध्यां धृतिञ्च मेधाञ्च स्थितिं सन्नतिमेव च । ग्रहनक्षत्रताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ॥ ३१ ॥ सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतींल्लोकेश्वरान् हयान् । सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकाञ्च सुव्रताम् ॥ ३२ ॥ योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकां-

---

रथके भीतरकी बैठकरूप बनाया, पुष्प फलवाली ओषधियों तथा लताओंको उस रथकी घंटियें बनाया ॥ २६ ॥ सूर्य और चन्द्रमाको उस रथके अन्य दो पहिये बनाया (क्योंकि-वह रथ चार पहियोंका था), रात्रि और दिनको उस रथके पूर्व पक्ष और पर पक्ष बनाया ॥ २७ ॥ धृतराष्ट्र आदि दश सर्प राजाओं को उस रथकी ईषा बनाया फुंकारें मारते हुए बड़े २ सर्पोंको उस रथके जोत बनाया ॥ २८ ॥ आकाशको जुआ और संव-र्त्तक वलाहक आदि मेघोंको जुएमें लगानेके चमड़े बनाया, काल-पृष्ठ, नहुष, कर्कोटक, धनंजय तथा अन्य सर्पोंको घोड़ोंके केश गूथनेकी डोरियें बनाया, दिशाओं और कोनोंको घोड़ोंकी डोरियें बनाया ॥ २९ ॥ ३० ॥ सन्ध्या, धृति, मेधा, स्थिति, सन्नति, ग्रह, नक्षत्र, तारा और आकाशको रथके ऊपर मढ़नेका चमड़ा बनाया ॥ ३१ ॥ इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि लोक-पालोंको उस रथके घोडे बनाया, सिनीवाली (पूर्व अमावस्या), अनुमति (पूर्व पूर्णिमा), कुहू (उत्तर अमावस्या) और सुन्दर व्रतधारी राका (उत्तर पूर्णिमा) को घोड़ोंकी रासें बनाया,

स्त्र कंटकान् । धर्मः सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः ३३
अधिष्ठानं मनश्चासीत् परिरथ्या सरस्वती । नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः ॥ ३४ ॥ विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयन् । वषट्कारः प्रतोदोऽभूद्गायत्री शीर्षबन्धना ॥३५॥ यो यज्ञे विहितः पूर्वमीशानस्य महात्मनः । सम्वत्सरो धनुस्तद्वै सावित्री ज्या महास्वना ॥ ३६ ॥ दिव्यञ्च वर्म विहितं महार्हं रत्नभूषितम् । अभेद्यं विरजस्कं वै कालचक्रं वहिष्कृतम् ॥ ३७ ॥ ध्वजयष्टिरभून्मेरुः श्रीमान् कनकपर्वतः । पताकाश्चाभवन्मेघास्तडिद्भिः समलंकृताः ॥ ३८ ॥ रेजुरध्वर्यु मध्यस्था ज्वलन्त इव पावकाः । क्लृप्तन्तु तं रथं दृष्ट्वा विस्मिता देवताभवन् ॥ ३९ ॥ सर्वलोकस्य

रोहक नामक नक्षत्रोंको तथा देवताओंको जोतकी कीलें बनाया. धर्म, सत्य, तप और अर्थको उस रथकी डोरियें बनाया ३२-३३ मनको उस रथको खड़ा रखनेकी भूमि बनाया, सरस्वतीको रथके चलनेकी भूमि बनाया अनेकों प्रकारके विचित्र शब्दोंको पवनसे हलतीहुई पताकायें बनाया ॥ ३४ ॥ बिजलीरूप इन्द्रधनुषसे वह दिव्य रथ चमक उठा था, वषट्कार उस रथके घोड़ोंकी चाबुक बना और गायत्री उस रथके ऊपरके भागका बन्धन बनी ॥३५॥ महात्मा शंकर के यज्ञमें पहले जो संवत्सर था वह वह शंकरका धनुष बना, सावित्री बड़ी ध्वनिवाली प्रत्यञ्चा बनी ॥ ३६ ॥ कालचक्रमेंसे निकालकर दिव्य कवच बनाया, वह कवच बड़े मूल्यके रत्नोंसे शोभायमान, किसीसे न टूटसकनेवाला और रजोगुणसे रहित था ॥३७॥ सोनेका श्रीमान् मेरुपर्वत उस रथकी की ध्वजा का दण्डा बना और बिजलियोंसे शोभायमान बादल पताकायें बने ॥ ३८ ॥ ये पताकायें अध्वर्युओंके मध्यमें शोभायमान अग्नियें सी मालूम होती थीं ऐसे उस रथको तयार हुआ देख देवता आश्चर्य में लीन होगये ॥ ३९ ॥

तेजांसि दृष्ट्वैकस्थानि मारिष । युक्तं निवेदयामासुर्देवास्तस्मै महा-
त्मने ॥ ४० ॥ एवं तस्मिन् महाराज कल्पिते रथसत्तमे । देवैर्म-
नुजशार्दूल द्विषतामभिमर्दने ॥ ४१ ॥ स्वान्यायुधानि दिव्यानि
न्यदधाच्छङ्करो रथे । ध्वजयष्टिं वियत् कृत्वा स्थापयामास गोवृ-
षम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः । परि-
स्कन्दा रथस्यासन् सर्वतो दिशमुद्यताः ॥ ४३ ॥ अथर्वाङ्गिरसा-
वास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः । ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणञ्च पुरः-
सराः॥४४॥ इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः । दिव्या वाचश्च
विद्याश्च परिपार्श्वचराः स्थिता ॥ ४५ ॥ स्तोत्रादयश्च राजेन्द्र
वषट्कारस्तथैव च । ओङ्कारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत् ४६
विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः । छायामेवात्मनश्चक्रे

हे राजन् ! सब लोकोंके तेजको एक स्थानमें देख कर देवताओंने महात्मा शङ्करसे निवेदन किया, कि—रथ जुड़ा हुआ तयार है। ४०। हे मनुष्यों में सिंह समान राजन्! देवताओंने शत्रुओंका संहार करने वाला उत्तम रथ तयार किया ॥ ४१ ॥ तब शङ्करने अपने मुख्य शस्त्र उस रथमें रक्खे, आकाशको ध्वजादण्ड बनाया और अपनो बैलकी ध्वजाके स्थानमें लगादिया ॥ ४२ ॥ ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड तथा ज्वर ये सब चारों दिशाओंमें को मुख करके उस रथके रक्षक बने ॥ ४३ ॥ अथर्वा अङ्गिरा महात्मा शङ्करके रथके पहियोंके रक्षक हुए, ऋग्वेद, सामवेद और अठारह पुराण उस रथके आगे चलने वाले पुरुष हुए ॥४४॥ इतिहास और यजुर्वेद उस रथके पिछले भागके रक्षक हुए, वेदवाणी और चौदह विद्या रथके चारों ओर रक्षा करनेको फिरनेलगीं॥४५। हे राजन् ! स्तोत्र आदि स्तुतिग्रन्थ, वषट्कार और ओङ्कार रथके आगे बड़ी ही शोभाके साथ चलने लगे ॥४६॥ शंकरने रणमें छः ऋतुओं से विचित्र दीखने वाले संवत्सरको धनुष बनाया और

धनुर्ज्यामजरां रणे ॥ ४७ ॥ कालो हि भगवान्रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः । तस्माद्रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा॥ ४८॥ इषुश्चाप्यभवद्विष्णुर्ज्वलनं सोम एव च । अग्नीषोमौ जगत् कृत्स्नं वैष्णवं रोच्यते जगत् ॥ ४९ ॥ विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः । तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥ ५० ॥ तस्मिन् शरे तिग्मऽन्युमु मोचासह्यमीश्वरः। भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥ ५१ ॥ स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासाऽभयङ्करः । आदित्यायुतसंकाशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥ ५२ ॥ दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः । नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान्नरान् ॥ ५३ ॥ प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीम-

अपनी छायाको धनुषकी अविनाशी डोरी बनाया ॥ ४७ ॥ भगवान् काल रुद्र बने, सम्वत्सर उनका धनुष हुआ, रुद्रकी छायारूप कालरात्रि कभी न घिसने वाली धनुषकी डोरी बनी ४८ विष्णु, अग्नि और सोम उनके बाण बने, क्योंकि–सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोमरूप है और वैष्णव नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥ विष्णु अपार तेजस्वी भगवान् शङ्करके आत्मा हैं,इस लिये दैत्य कालरात्रिरूप धनुषकी डोरीका स्पर्श नहीं कर सके ॥ ५० ॥ समर्थ शङ्करने भृगु और अङ्गिराके क्रोधमेंसे उत्पन्न हुए अति दुःसह तीक्ष्ण अग्निको बाणमें स्थापित किया ॥ ५१ ॥ भगवान् शङ्कर नीले, लाल और धूम्रवर्णके थे, हाथीका चमड़ा ओढ़ रहे थे, भक्तोंको अभय देनेवाले थे, लाखों सूर्योंकी समान प्रकाशित होरहे थे तथा अग्निकी ज्वालाओंसे घिरेहुए शोभा पा रहे थे५२ वे बड़ी कठिनतासे गिराने योग्य निशानेको भी गिरानेवाले और ब्रह्मद्वेषियोंको जीतनेवाले और मारनेवाले तथा सर्वदा धर्मका पालन करनेवालोंके रक्षक और अधर्मियोंका संहार करनेवालेहैं५३ सब शत्रुओंको मसलने वाले, भयङ्कर बल और रूप वाले और

रूपैर्मनोजवैः । विभाति भगवान् स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः ॥५४॥ तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत् । जङ्गमाजङ्गमं राजन् शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥५५॥ दृष्ट्वा तन्तु रथं युक्तं कवची सशरासनी । बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्ण्वग्निसम्भवम् ॥ ५६ ॥ तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयाञ्चक्रिरे प्रभो । पुण्यगन्धवहं राजन् श्वसनं देवसत्तमम् ॥ ५७ ॥ तमास्थाय महादेवस्त्रासयन् दैवतान्यपि । आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥५८॥ तमारुरुक्षु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः । गन्धर्वा देवसंघाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥५९॥ ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च वन्दिभिः । तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ६०स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी । हसन्निवाब्रवीद्देवान् सारथिः को भवि-

मनकी समान वेग वाले और अपनी समान गुणोंवाले अपने रथ आदिसे भगवान् शङ्कर शोभा पाने लगे ॥५४॥ हे राजन ! यह चराचर जगत् शंकरके अङ्गोंका आश्रय लेकर ही स्थित है और दर्शनीय हो शोभा पारहा है ॥ ५५ ॥ भगवान् शङ्कर रथ तयार देख कवच पहर, धनुष ले सोम, विष्णु और अग्निसे उत्पन्न हुए दिव्य बाणको ले तयार होगए ॥ ५६ ॥ हे समर्थ राजन् ! उस समय देवताओंने देवताओंमें श्रेष्ठ पवित्र गन्धवाले वायुको उनके ऊपर हवा करनेको नियत किया ॥ ५७ ॥ तब शङ्कर सम्पूर्ण सामग्रीसे सुसज्जित हो पृथ्वीको कँपाते हुएसे रथमें बैठे और देवताओंको भी त्रस्त करने लगे ॥५८॥ भगवान् शङ्कर जिस समय रथमें बैठने लगे, उस समय बड़े २ ऋषि गन्धर्व और देवता तथा अप्सराओंके समूह उनकी स्तुति करने लगे ५९ ब्रह्मर्षि उनकी स्तुति करने लगे, वन्दीजन वन्दना करने लगे और नृत्यमें चतुर अप्सराओंके झुण्ड नाच २ कर उनको बधाई देने लगे ॥ ६० ॥ उस समय खड्ग, बाण और धनुष धारण

ष्यति ॥ ६१ ॥ तमब्रुवन् देवगणा यं भवान् संनियोक्ष्यते । स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥ ६२ ॥ तानब्रवीत् पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः । तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं सञ्चिन्त्य मा चिरम् ॥ ६३ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना । गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्येदं वचोऽब्रुवन् ॥ ६४ ॥ यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे । तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः ॥ ६५ ॥ रथश्च विहितोऽस्माभिर्विचित्रायुधसंवृतः । सारथिश्च न जानीमः कः स्यात्तस्मिन्रथोत्तमे ॥ ६६ ॥ तस्माद्विधीयतां कश्चित् सारथिर्देवसत्तमः । सफलां तां गिरं देव कर्त्तुमर्हसि नो विभो ॥ ६७ ॥ एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवा-

कर शोभा पाते हुए वर देने वाले शङ्कर हँसकर देवताओंसे कहने लगे, कि-मेरा सारथि कौन बनेगा? ॥ ६१ ॥ तब देवताओंने निवेदन किया कि हे देवेश ! आप जिसको आज्ञा देंगे वह आप का सारथि बनेगा ॥ ६२ ॥ भगवान शङ्करने देवताओंसे फिर कहा कि-"तुम अपने आप विचार कर, जो मुझसे श्रेष्ठ हो उसे बिना विलम्ब किये सारथि बनाओ" ॥ ६३ ॥ महात्मा शिवजी के कहे वचनको सुनकर देवता ब्रह्माजीके पास जा उनको प्रसन्न कर यह कहने लगे ॥ ६४ ॥ कि-हे देव ! देवताओंके शत्रुओंको दण्ड देनेके विषयमें आपने जैसा कहा था, वैसा ही हमने किया और भगवान् शङ्कर हमारे ऊपर प्रसन्न हो गये हैं ॥ ६५ ॥ और हमने शङ्करके लिये विचित्र आयुधोंसे भरा हुआ एक रथ भी तयार कर दिया है परन्तु हमें यह नहीं सूझता कि-हम उस रथके लिये सारथि किसको बनावें ॥६६॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! आप किसी श्रेष्ठ व्यक्तिको सारथि बनाइये और हे विभो ! आप हमारी वाणीको सफल करें ॥ ६७ ॥ हे भगवन् ! आपने ऐसा पहले ही कहा था कि-मैं तुम्हारा हितकारी काम करूँगा अतः

नसि । हितं कर्त्तास्मि भवतामिति तत् कर्त्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥ स देवयुक्तो रथसत्तमो नो दुराधरो द्रावणः शात्रवाणाम् । पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा विभीषयन् दानवानुद्यतोऽसौ ॥ ६९ ॥ तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्र्या धरा सशैला च रथो महात्मनः । नक्षत्रवंशानुगतो वरूथी हरो योद्धा सारथिर्नाभिलक्ष्यः ॥ ७० ॥ तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् । तत्प्रतिष्ठो रथो देव हरो योद्धा तथैव च ॥ ७१ ॥ कवचानि सशस्त्राणि कार्मुकञ्च पितामह । त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम् ॥ ७२ ॥ त्वं हि सर्वगुणैर्युक्तो दैवतेभ्योऽधिकः प्रभो । स रथं तूर्णमारुह्य संयच्छ परमान् हयान् ॥ ७३ ॥ जयाय त्रिदशेशानां वधाय त्रिदशद्विषाम् । इति ते शिरसा गत्वा त्रिलोकेशं पितामहम् । देवाः

आज आप हमारा हित करिये ॥ ६८ ॥ हे ब्रह्मदेव ! हमारा रथ सब प्रकारकी श्रेष्ठ सामग्रियोंसे भरपूर है, दुराधर्ष शत्रुओंको भगाने वाले पिनाकपाणि शङ्करको उस रथका योधा नियुक्त किया गया है और वह दानवोंको भय देते हुए उनके साथ लड़नेको तयार होगए हैं ॥ ६९ ॥ उस रथमें चारों वेद ही श्रेष्ठ घोड़े हैं, पर्वतों सहित पृथिवी रथ बनी है नक्षत्रमाला उस रथका वरूथ है, परन्तु उस रथका हाँकने वाला सारथि नहीं मिलता ॥७०॥ अतः सारथि इन सबसे बढ़िया होना चाहिये, क्योंकि–हे देव ! रथ घोड़े और योद्धा सारथीके ही आधार पर रहते हैं ॥७१॥ कवच, शस्त्र और धनुष भी सारथिके अधीन हैं और हे पितामह ! आपके सिवाय दूसरा कोई सारथी हमें नहीं दीखता ७२ क्यों कि–आप सर्वगुणसम्पन्न हैं और देवताओंसे बली है, अतः हे प्रभो ! आप शीघ्र ही रथ पर सवार हो दिव्य घोड़ों (की रासों) को पकड़ो ॥७३॥ हमने सुना है कि–देवताओंने अपनी जीतके लिये और देवताओंसे द्वेष रखनेवालोंका वध करने

प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतम् ॥७४॥ पितामह उवाच।
नात्र किञ्चिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं त्रिदिवौकसः। संयच्छामि हया-
नेष युध्यतो वै कपर्दिनः। ततः स भगवान्देवो लोकस्रष्टा पिता-
महः ॥ ७५ ॥ सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः। तस्मि-
न्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दने लोकपूजिते ॥ ७६ ॥ शिरोभिरगमन्
भूमिं ते हया वातरंहसः। आरुह्य भगवान्देवो दीप्यमानः स्व-
तेजसा ॥७७॥ अभीषून् हि प्रतोदञ्च सञ्जग्राह पितामहः। तत
उत्थाप्य भगवान् तान् हयाननिलोपमान् ॥ ७८ ॥ बभाषे च तदा
स्थाणुमारोहेति सुरोत्तमः। ततस्तमिषुमादाय विष्णुसोमाग्नि-
सम्भवम् ॥ ७९ ॥ आरुरोह तदा स्थाणुर्धनुषा कम्पयन् परान्।
तमारूढन्तु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ॥ ८० ॥ गन्धर्वा देवसंघाश्च

के लिये सारथिपन करनेके लिये तीनों लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी को शिर झुका प्रणाम कर प्रसन्न किया था ॥ ७४॥ ब्रह्माजीने उस समय देवताओंसे कहा कि—हे देवताओं! तुमने जो कुछ कहा है उसमें कुछ भी झूँठ नहीं है, कपर्दी शिव जिस समय युद्ध करेंगे उस समय मैं रथके घोड़ोंकी लगामें पकड़े रहूँगा, तब देवताओंने लोकोंके रचने वाले भगवान् ब्रह्माजीको महात्मा शिवजीका सारथि बनाया, संसारके पूज्य ब्रह्माजीके शीघ्रतासे रथ पर चढ़ते ही पवनकी समान वेगसे चलने वाले घोड़ोंने पृथ्वी पर शिर टेक दिया अर्थात् प्रणाम किया, तब अपने तेजसे प्रकाशवान् भगवान् ब्रह्माजीने रथमें बैठकर घोड़ोंकी रासों और चाबुक को हाथमें लिया और पवनकी समान वेगवाले घोड़ोंको खड़ा किया ॥ ७५—७८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने शिवजीसे कहा कि—अब आप रथमें बैठिये तब भगवान् शिव विष्णु, सोम और अग्निसे उत्पन्न हुए बाणको ले धनुषसे शत्रुओंको कँपाते हुए रथ पर चढ़े, रथमें बैठेहुए देवेश शङ्करकी महर्षि, गन्धर्व, देव-

तथैवाप्सरसां गणाः । स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ॥ ८१ ॥ प्रदीपयन्रथे तस्थौ त्रींल्लोकान् स्वेन तेजसा । ततो भूयोऽब्रवीद्देवो देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ८२ ॥ न हन्यादिति कर्त्तव्यो न शोको वः कथञ्चन । हतानीत्येव जानीत बाणेनानेन चासुरान् ॥ ८३ ॥ ते देवाः सत्यमित्याहुर्निहता इति चाब्रुवन् । न च तद्वचनं मिथ्या यदाह भगवान् प्रभुः ॥ ८४ ॥ इति सञ्चिन्त्य वै देवाः परां तुष्टिमवाप्नुवन् । ततः प्रयातो देवेशः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ८५ ॥ रथेन महता राजन्नुपमा यस्य नास्ति ह । स्वैश्च पारिषदैर्देव पूज्यमानो महायशाः ॥ ८६ ॥ नृत्यद्भिरपरैश्चैव मांसभक्ष्यैर्दुरासदैः । धावमानैः समन्ताच्च तर्जमानैः परस्परम् ॥ ८७ ॥ ऋषयश्च महाभागास्तपोयुक्ता महागुणाः ।

ताओंके समूह तथा अप्सराओंके झुण्ड स्तुति करनेलगे, इस समय वरदान देनेवाले और तलवार, बाण तथा धनुष धारण करने वाले श्रीशङ्कर रथमें बैठकर अपने तेजसे तीनों लोकोंमें उजाला करने लगे, फिर उन देवने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा कि-॥ ७९-८२ ॥ तुम यह सन्देह कदापि न करना, कि-यह बाण शत्रुओंका नाश नहीं करसकेगा. किन्तु इस बाणसे तुम असुरोंको मरे हुए ही समझना ॥ ८३ ॥ देवताओंने कहा, कि-आपका कहना सत्य है और असुर अब मारे ही गये, हे भगवन् ! हे प्रभो ! आपने जो कुछ कहा है वह आपका वचन मिथ्या नहीं होसकता ८४ इस प्रकार विचार करके वे देवता बड़े ही प्रसन्न हुए, फिर जिनको किसीकी भी उपमा न दी जासके ऐसे भगवान् श्रीशङ्कर बड़े भारी रथमें बैठकर उन सब देवताओं के साथ चलदिये, इस समय जिनको कोई न दबासके ऐसे आपस में गर्जना करनेवाले मांसभक्षी, चारों ओरको दौड़तेहुए अपने भूत प्रेत आदि पार्षद महायशवाले श्रीशंकरकी पूजा करने

आशंसुर्विजयं देवा महादेवस्य सर्वशः ॥ ८८ ॥ एवं प्रयाते वरदे लोकानामभयङ्करे । तुष्टमासीज्जगत् सर्वं देवताश्च नरोत्तम ॥ ८९ ॥ ऋषयस्तत्र देवेशं स्तुवन्तो बहुभिः स्तवैः । तेजश्चास्मै वर्द्धयन्तो राजन्नासन् पुनः पुनः ॥ ९० ॥ गन्धर्वाणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । वादयन्ति प्रयाणेऽस्य वाद्यानि विविधानि च ॥ ९१ ॥ ततोऽधिरूढे वरदे प्रयाते चासुरान् प्रति । साधु साध्विति विश्वेशः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ९२ ॥ याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः । पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान्रणे ॥ ९३ ॥ ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः । येन तत्त्रिपुरं राजन् दैत्यदानवरक्षितम् ॥ ९४ ॥ पिबद्भिरिव चाकाशं

लगे ॥ ८५-८७ ॥ महाभाग, तपस्वी बड़े २ गुणी ऋषि तथा देवता भी महादेवजीकी पूर्ण रीतिसे प्रशंसा करने लगे ॥ ८८ ॥ हे राजन्! भगवान् शङ्करने तीनों लोकोंको अभय देनेके लिये त्रिपुरके ऊपर चढ़ाई करदी, इस समय सब जगत् प्रसन्न हुआ और सब देवता भी प्रसन्न हुए ॥ ८९ ॥ हे राजन्! इस समय ऋषि देवदेव शङ्करकी अनेकों स्तोत्रोंसे स्तुति करतेहुए वारंवार उनके तेज(उत्साह) को बढ़ाने लगे ॥ ९० ॥ शङ्करके चढ़ाई करनेके समय हजार, दश हजार और अर्ज्जो गन्धर्व अनेकों प्रकारके बाजे बजानेलगे ॥ ९१ ॥ वरदान देनेवाले ब्रह्माजी रथमें बैठकर असुरोंकी ओरको चले, उस समय विश्वके नाथ शङ्कर मुसकुराते हुए कहने लगे, कि-बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ ९२ हे प्रजापति देव! जिस स्थान पर दैत्य हों तहाँ तुम सावधान होकर मेरे घोड़ोंको शीघ्र ही लेचलो और आज मैं रणमें जब अपने शत्रुओंका संहार करूँगा तब मेरे भुजदण्डोंका बल देखना ॥ ९३ ॥ मन और पवनकी समान वेगवाले घोड़े हाँक कर ब्रह्माजीने दैत्य और दानवोंसे रक्षित त्रिपुरासुरके नगरकी

तैर्हयैर्लोकपूजितैः । जगाम भगवान् क्षिप्रं जयाय त्रिदिवौकसाम् ॥९५
प्रयाते रथमास्थाय त्रिपुराभिमुखे भवे । ननाद सुमहन्नादम्वृषभः
पूरयन् दिशः ॥९६॥ ऋषभस्यास्य निनदं श्रुत्वा भयकरं महत् ।
विनाशमगमंस्तत्र तारकाः सुरशत्रवः ॥९७॥ अपरेऽवस्थितास्तत्र
युद्धायाभिमुखास्तदा । ततः स्थाणुर्महाराज शूलधृक् क्रोध-
मूर्च्छितः ॥ ९८ ॥ त्रस्तानि सर्वभूतानि त्रैलोक्यं भूः प्रकम्पते ।
निमित्तानि च घोराणि तत्र सन्दधतः शरम् ॥ ९९ ॥ तस्मिन्
सोमाग्निविष्णूनां क्षोभेण ब्रह्मरुद्रयोः । स रथो धनुषः क्षोभादतीव
ह्यवसीदति ॥ १०० ॥ ततो नारायणस्तस्माच्छरभागाद्विनिःसृतः ।
वृषरूपं समास्थाय उज्जहार महारथम् ॥ १०१ ॥ सीदमाने रथे

ओरको रथ बढ़ाया ॥९४॥ भगवान् शङ्कर देवताओंकी विजय के लिये, मानो आकाशको पी रहे हैं ऐसे मालूम होनेवाले और लोकोंमें मान पायेहुए घोड़ोंको पूरे वेगसे दौड़ाते हुए त्रिपुरासुरकी ओरको लड़नेके लिये चलदिये ॥ ९५ ॥ महादेवजी रथमें बैठकर ज्योंही त्रिपुरासुरकी ओरको लड़नेको चले, कि–नन्दीश्वरने बड़ीभारी गर्जना करके दशों दिशाओंको भरदिया ॥ ९६ ॥ तारक दैत्यके सगे और अनुयायियोंमेंके कितनेही शंकरके नन्दीश्वरके महाभयानक शब्दको सुनकर उसी समय मरगये ॥ ९७ ॥ परन्तु कितनेही युद्ध करनेके लिये सामने आकर खड़े होगये, हे महाराज ! शङ्करने क्रोधके आवेशमें आकर हाथमें त्रिशूल लिया और धनुष पर बाण चढ़ाया, उस समय सब प्राणी भयभीत होगये, तीनों लोक काँपने लगे और भयानक शकुन होने लगे ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ उस बाणमें सोम, अग्नि और विष्णुका आवाहन करते ही उनके भारके दबावसे ब्रह्मा और रुद्रका वह रथ पृथिवीमेंको धसनेलगा ॥१००॥ तुरन्त ही भगवान् नारायण उनके बाणमेंसे बाहर निकलआये और उन्होंने बैलकारूप धरकर शङ्करके बड़ेभारी रथको पृथिवीमेंसे बाहर निकाला ॥ १०१ ॥

चैव नर्दमानेषु शत्रुषु । ससंभ्रमात्तु भगवान् नादं चक्रे महाबलः ॥१०२॥ वृषभस्य स्थितो मूर्ध्नि हयपृष्ठे च मानद । तदा स भगवान् रुद्रो निरैक्षद्दानवं पुरम् ॥ १०३ ॥ वृषभस्यास्थितो रुद्रो हयस्य च नरोत्तम । स्तनांस्तदाशातयत खुरांश्चैव द्विधाकरोत् ॥ १०४ ॥ ततःप्रभृति भद्रन्ते गवां द्वैधी कृताः खुराः । हयानाञ्च स्तना राजंस्तदाप्रभृति नाभवन् ॥ १०५ ॥ पीडितानां बलवता रुद्रेणाद्भुतकर्मणा । तथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः सन्धाय तं शरम् ॥ १०६ ॥ युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् । तस्मिन् स्थिते महाराज रुद्रे विधृतकार्मुके ॥ १०७ ॥ पुराणि तेन कालेन जग्मुरेकत्वं तदा । एकीभावं गते चैव त्रिपुरत्वमुपागते १०८ बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् । ततो देवगणाः सर्वे

शंकरका रथ जिस समय पृथिवीमें धसगया, उस समय शत्रु गर्जना करनेलगे, तब महाबली शंकरने भी क्रोधमें भरकर गर्जना की ॥ १०२ ॥ और हे मान देनेवाले राजन् ! उस समय नन्दीगण और घोड़ोंकी पीठपर बैठे हुए शंकरने दानवोंके तीनों नगरों की ओरको दृष्टि डाली ॥ १०३ ॥ हे राजन् ! जो शंकर बैल और घोड़ोंकी पीठपर बैठे हुए थे, उन्होंने भारसे पिचतेहुए उन बैलोंकी खुरियोंको चीरडाला और घोड़ोंके स्तनोंको काटडाला ॥ १०४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो, उस दिनसे बैलोंकी खुरियें फटी हुई होगयीं और अद्भुत पराक्रम करनेवाले बलवान् शङ्करके भारसे दबेहुए सब घोडे विना स्तनोंके उत्पन्न होते हैं, फिर भगवान् शङ्करने धनुष के ऊपर रोदा चढ़ाया, धनुषको ठीक करके उसके ऊपर पाशुपत अस्त्रको लगाकर वह धनुष हाथमें लिया और इकट्ठे होनेकी बाट देखतेहुए तीनों नगरोंका ध्यान करनेलगे ॥ १०५–१०७॥ समय आने पर वे तीनों पुर इकट्ठे होगये और इकट्ठे होतेही

सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ १०९ ॥ जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो महे-
श्वरम् । ततोऽग्रतः प्रादुरभूत्त्रिपुरं निघ्नतोऽसुरान् ॥ ११० ॥
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः । स तद्विकृष्य भगवान् दिव्यं
लोकेश्वरो धनुः ॥ १११ ॥ त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं
प्रति । उत्सृष्टे वै महाभाग तस्मिन्नित्रिपुवरे तदा ॥११२॥ महानार्त-
स्वरो ह्यासीत् पुराणां पततां भुवि । तान्सोऽसुरगणान् दग्ध्वा
प्राक्षिपत् पश्चिमार्णवे ॥ ११३ ॥ एवं तत्त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चा-
प्यशेषिताः । महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा ॥ ११४ ॥
स चात्मक्रोधजो वह्निर्हाहेत्युक्त्वा निवारितः । मा कार्षीर्भस्मसा-
ल्लोकानिति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ॥ ११५ ॥ ततः प्रकृतिमापन्ना

त्रिपुरपनेको प्राप्त होगये ॥ १०८ ॥ उसी समय महात्मा देवता भयङ्कर हर्षनाद करनेलगे, सब देवता, सिद्ध और महर्षि श्री-महादेवजीकी स्तुति करतेहुए जयजयकारकी ध्वनि करनेलगे, इतने मेंही असुरोंका संहार करनेवाले, अकथनीय भयानक शरीर वाले असह्य तेजस्वी भगवान् शङ्करकी दृष्टिमें वे तीनों नगर आये, उसी समय भगवान् शङ्करने अपने दिव्य धनुषको खेंचा, फिर त्रिपुरके ऊपर तीनों लोकोंका सारभूत बाण मारा और हे महा-भाग राजन् ! ज्योंही वह बड़ा बाण त्रिपुरके लगा, कि-उसी समय तीनों नगरोंमें रहनेवाले बड़े२ असुर हाय हाय करतेहुए पृथिवी पर गिर गये, शङ्करने उन तीनों नगरोंमें रहनेवाले दानवोंको जलाकर पश्चिमी समुद्रमें फिकवादिया ॥१०९-११३॥ इसप्रकार भगवान् शङ्करने तीनों लोकोंका हित करनेकी इच्छासे क्रोधमें भरकर उन तीनों पुरोंको और सब दैत्योंको भस्म कर डाला ॥ ११४ ॥ उस अपने क्रोधसे उत्पन्न हुए अग्निको भग-वान् शङ्करने हैं हैं करके रोका और त्रिनेत्र शङ्करने उससे कहा, कि-तू त्रिलोकीको जलाकर भस्म न करना ॥ ११५ ॥ तीनों

देवा लोकास्तथर्षयः।तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम्११६
तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् । कृतकामाः प्रयत्नेन
प्रजापतिमुखाः सुराः ॥ ११७॥ एवं स भगवान् देवो लोकस्रष्टा
महेश्वरः । देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम् ॥११८॥
यथैव भगवान् ब्रह्मा लोकधाता पितामहः । सारथ्यमकरोत्तत्र
रुद्रस्य परमोऽव्ययः ॥११९॥ तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पिता-
महः । संयच्छतु हयानस्य राधेयस्य महात्मनः ॥ १२० ॥ त्वं हि
कृष्णाच्च कर्णाच्च फाल्गुनाच्च विशेषतः। विशिष्टो राजशार्दूल
नास्ति तत्र विचारणा ॥ १२१ ॥ युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वञ्च ब्रह्म-
समो नये । तस्माच्छक्तो भवान् जेतुमच्छत्रूंस्तानिवासुरान् १२२

पुरोंका और दैत्योंका संहार होजाने पर देवता, तीनों लोकोंके प्राणी और ऋषि सुखी हुए, उन्होंने उत्तम वाणीसे अनुपम बल वाले शङ्करकी स्तुति की ॥ ११६ ॥ भगवान् शङ्करने उनको जानेकी आज्ञा दी तब प्रजापति आदि सब देवता जैसे आये थे तैसेही अपनी कामना पूरी होने पर अपने२ धामको चलेगये११७ इसप्रकार जगत्को रचनेवाले देवताओंके मण्डलके अध्यक्ष भगवान् महादेवजीने सब लोकोंका कल्याण किया था ॥ ११८ ॥ मुझे कहना यह है, कि—अविनाशी भगवान् विधाताने जैसे भगवान् शङ्करका सारथीपना किया था तैसेही तुम भी कर्णका सारथीपना करो और पितामह ब्रह्माने जैसे महात्मा शङ्करके घोड़ोंकी लगाम पकड़ी थी तैसेही तुम भी राधाके पुत्र महात्मा कर्णके घोड़ोंकी लगाम पकड़ो और घोड़ोंका नियममें रक्खो ११९-१२० हे राजसिंह ! तुम श्रीकृष्णसे, कर्णसे और अर्जुनसे भी अधिक श्रेष्ठ हो, इसमें शङ्का करनेकी कोई बात नहीं है ॥१२१॥ युद्ध करनेमें कर्ण रुद्रकी समान है और सारथीपना करनेमें तुम ब्रह्मा की समान हो, शङ्कर जैसे ब्रह्माकी सहायतासे असुरोंको हरा

यथा शल्याद्य कर्णोऽयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् । प्रमथ्य हन्यात् कौन्तेयं तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥ १२३ ॥ त्वयि मद्रेश राज्याशा जीविताशा तथैव च । विजयञ्च तथैवाद्य कर्णसाचिव्यकारितः ॥१२४॥ त्वयि कर्णश्च राज्यञ्च वयं चैव प्रतिष्ठिताः । विजयश्चैव संग्रामे संयच्छास्य हयोत्तमान् ॥ १२५ ॥ इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे । पितुर्मम सकाशे यद् ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् ॥ १२६ ॥ श्रुत्वा वै तद्वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम् । कुरु शल्य विनिश्चित्य मा भूदत्र विचारणा ॥ १२७ ॥ भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महातपाः । तस्य रामेति विख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः ॥ १२८ ॥ स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान्

सके थे ऐसे ही तुम दोनों मिलकर मेरे शत्रुओंको हरासकते हो ॥ १२२ ॥ हे शल्य ! आज यह कर्ण, श्वेत घोड़ोंवाले और श्रीकृष्ण जिसके सारथी हैं ऐसे अर्जुनको रणमें जैसे भी मारसके उसका उद्योग शीघ्र करो ॥ १२३ ॥ हे मद्रराज ! आज राज्य की आशा, जीवनकी आशा तथा कर्णके मंत्रीपनके कारणसे मिलनेवाली विजयकी आशा आपके ही ऊपर है ॥ १२४ ॥ कर्ण, कौरवोंका राज्य और हम सब तुम्हारे ही ऊपर आधार रक्खे हुए हैं, संग्राममें विजयका आधार भी तुम्हारे ही ऊपर है, इसलिये आप कर्णके घोड़ोंकी लगाम पकड़े रहनेका काम कीजिये ॥ १२५ ॥ यह इतिहास मैंने आपको कह सुनाया, ऐसा ही एक दूसरा इतिहास पहले मेरे पिताके सामने एक धर्मवेत्ता ब्राह्मणने कहा था, वह मैं आपसे कहता हूँ, सुनिये ॥ १२६ ॥ और शल्य ! कारण तथा कार्यसे भरपूर मेरी विचित्र बातको सुनिये और उसका सार निकालकर काम करिये, इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, ॥ १२७ ॥ भार्गवोंके कुलमें बड़े यशवाले जमदग्नि नामके एक पुत्र थे, उनके तेजस्वी और गुण-

भवम् । अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः ॥ १२९ ॥ तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च । हृद्गतञ्चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ॥ १३० ॥ महादेव उवाच । राम तुष्टोऽस्मि भद्रन्ते विदितं मे तवेप्सितम् । कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ३१ दास्यामि ते तदस्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि । अपात्रमसमर्थञ्च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ॥ १३२ ॥ इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना । प्रत्युवाच महात्मान शिरसावनतः प्रभुम् ॥ १३३ ॥ यदा जानाति देवेशः पात्रं मामस्त्रधारणे । तदा शुश्रूषतेऽस्त्राणि भवान्मे दातुमर्हति ॥ १३४ ॥ दुर्योधन उवाच । ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च । पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्र-

---

वान् परशुराम नामके एक पुत्र थे ॥ १२८ ॥ उन जितेन्द्रिय परशुरामने मनको वशमें रखकर अस्त्रविद्या सीखनेके लिये तीव्र तपस्या करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया ॥ १२९ ॥ भगवान् शंकर परशुरामकी भक्ति और परमशान्त स्वभावसे उनके ऊपर प्रसन्न होगये और उनके हृदयकी बात जानकर दर्शन दिया १३० शिवने कहा, कि–हे परशुराम ! तेरा कल्याण हो, मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ और तेरी इच्छाको जानगया हूँ, तू अपने आत्माको पवित्र कर तो यह सब पाजायगा ॥ १३१ ॥ हे परशुराम ! जब तू पवित्र होजायगा तो मैं तुझे अस्त्र दूंगा, क्योंकि–तू अपवित्र होगा तो वे अस्त्र तुझे भस्म करदेंगे ॥ १३२ ॥ देवोंके देव शंकरने जब परशुरामसे ऐसा कहा, तब परशुरामने महात्मा शंकरको प्रणाम करके उनसे यों कहा, कि–॥१३३ ॥ हे शंकर ! यदि आप मुझे अस्त्रधारणके योग्य समझते हों तो मैं अस्त्रविद्याको सुनना चाहता हूँ, आप ही मुझे अस्त्रविद्या देसकते हैं ॥ १३४ ॥ दुर्योधन कहता है, कि–शंकरसे ऐसा कहकर परशुरामने तप, दम, नियम, अनेकों प्रकारकी पूजायें, सामग्रियें

पुरस्कृतैः ॥ १२५ ॥ आराधयितवान् शर्वं बहून् वर्षगणांस्तदा ।
प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः ॥ १३६ ॥ अब्रवीत्तस्य
बहुशो गुणान् देव्याः समीपतः । भक्तिमानेष सततं मयि रामो
दृढव्रतः ॥ १३७ ॥ एवं तस्य गुणान् प्रीतो बहुशोऽकथयत् प्रभुः ।
देवतानां पितॄणाञ्च समक्षमरिसूदन ॥ १३८ ॥ एतस्मिन्नेव काले
तु दैत्या आसन् महाबलाः । तैस्तदा दर्पमोहान्धैरबाध्यन्त दिवौ-
कसः ॥ १३९ ॥ ततः सम्भूय विबुधास्तान् हन्तुं कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव तान् ॥ १४० ॥ अभिगम्य ततो
देवा महेश्वरमुमापतिम् । प्रासादयन्त ते भक्त्या जहि शत्रुगणा-
निति ॥ १४१ ॥ प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् । रामं

और बलिदानोंसे यजनके मंत्र पढ़कर बहुत वर्षों तक भगवान् शिवकी आराधना की, तब महादेवजी भृगुवंशी महात्मा परशुरामके ऊपर प्रसन्न हुए और देवी पार्वतीके सामने उनके बहुतसे गुण गाते हुए कहनेलगे, कि—यह परशुराम मेरे ऊपर नित्य भक्ति रखता है और सदाचारमें भी दृढ़ है, इसलिये मैं इसका कल्याण करना चाहता हूँ ॥ १३५-१३७ ॥ हे शत्रुओंका संहार करने वाले शल्य ! भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर देवता और पितरों के सामने भी परशुरामका बड़ा गुणगान किया ॥ १३८ ॥ इतने समयमें दैत्य बड़े बलवान् होगये, उन्होंने दर्प और मोह आदिसे देवताओंको दुःख देना आरम्भ करदिया ॥ १३९ ॥ देवताओंने इकट्ठे होकर दैत्योंका नाश करनेका निश्चय किया और शत्रुओं का संहार करनेके लिये उद्योग करनेलगे, परन्तु वे उनको जीत न सके ॥ १४० ॥ तब देवताओंने उमाके प्राणपति भगवान् शंकर के पास जाकर भक्तिसे उनको प्रसन्न किया और कहने लगे, कि—शत्रुओंके समूहोंका संहार करिये ॥ १४१ ॥ भगवान् शिवने देवताओंके शत्रुओंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा की और

भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शङ्करः ॥ १४२ ॥ रुद्र उवाच । रिपून् भार्गव देवानां जहि सर्वान् समागतान् । लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च ॥ १४३ ॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच त्र्यम्बकं वरदं प्रभुम् । राम उवाच । का शक्तिर्मम देवेश अकृतास्त्रस्य संयुगे॥१४४॥ निहन्तुं दानवान् सर्वान् कृतास्त्रान् युद्धदुर्मदान् । महेश्वर उवाच । गच्छ त्वं मदनुज्ञातो निहनिष्यसि शात्रवान्१४५ विजित्य च रिपून् सर्वान् गुणान् प्राप्स्यसि पुष्कलान् । एतच्छ्रुत्वा च वचनं प्रतिगृह्य च सर्वशः ॥१४६॥ रामः कृतस्वस्त्ययनः प्रययौ दानवान् प्रति । अब्रवीद्देवशत्रूंस्तान् महादर्पबलान्वितान्४७ मम युद्धं प्रयच्छध्वं दैत्या युद्धमदोत्कटाः । प्रेषितो देवदेवेन वो विजेतुं महासुराः१४८इत्युक्त्वा भार्गवेणाथ दैत्या योद्धुं प्रचक्रमुः।

परशुरामको बुलवाकर उनसे कहा, कि-॥ १४२ ॥ हे परशुराम ! तुम लोकोंका हित करनेकी इच्छासे और मुझे प्रसन्न करनेके लिये जो देवताओंके शत्रु इकट्ठे होकर आवें उनका संहार करो ॥ १४३ ॥ भगवान् शङ्करने परशुरामसे कहा, तब उन्होंने वरदान देनेवाले त्रिनेत्र शङ्करको उत्तर दिया, परशुराम बोले, कि-सब दैत्य अस्त्रविद्यामें कुशल तथा युद्धदुर्मद हैं और हे देवदेव ! मैं अस्त्रविद्यामें चतुर नहीं हूँ, इसलिये उनको रणमें मारनेकी मुझमें क्या शक्ति है? शिवने कहा, कि-तुम मेरी आज्ञासे दैत्योंके साथ युद्ध करनेको जाओगे तो निश्चय उनको मार सकोगे ॥ १४४॥१४५ ॥ सब दैत्योंको जीतलेनेसे तुम्हारी बड़ी पूजा होगी, परशुरामने शङ्करकी इस बातको सुनकर पूर्णरीति से स्वीकार करलिया ॥ १४६ ॥ फिर ब्राह्मणोंने परशुरामका स्वस्तिवाचन किया, तब परशुराम दैत्योंके सामने गये और दर्प तथा गर्ववाले दैत्योंसे कहने लगे, कि-॥ १४७ ॥ हे युद्ध करनेमें उत्कट महादैत्यों ! मुझे देवदेव महादेवजीने तुम्हारा पराजय

स तान्निहत्य समरे दैत्यान् भार्गवनन्दनः ॥ १४९ ॥ वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः । स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ॥ १५० ॥ संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत । प्रीतश्च भगवान्देवः कर्मणा तेन तस्य वै ॥ १५१ ॥ वरान् प्रादाद्बहुविधान् भार्गवाय महात्मने । उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ॥ १५२ ॥ निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याभवद्रुजा । तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ॥ १५३ ॥ गृहाणास्त्राणि दिव्यानि मत्सकाशात् यथेप्सितम् । दुर्योधन उवाच । ततोऽस्त्राणि समस्तानि वरांश्च मनसेप्सितान् ॥ १५४॥ लब्ध्वा बहुविधान्रामः प्रणम्य शिरसा शिवम् । अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महा-

करनेको भेजा है, आओ मुझे युद्ध दो ॥ ४८ ॥ परशुरामने ऐसा कहा, तब दैत्य परशुरामके सामने आकर युद्ध करने लगे, परशुरामने युद्धमें वज्रकी समान कठोर प्रहार करके उन दैत्यों को मारडाला और दैत्योंने युद्धमें ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ परशुरामके शरीरको घायल करडाला ॥ ४९–५० ॥ जब दैत्योंका संहार करके परशुरामजी शङ्करके पास आये तब शङ्करने उनके शरीर पर हाथ फेरा, कि–तुरन्त ही उनके शरीरके घाव भर गये, परशुरामके ऐसे महापराक्रमसे महादेवजी प्रसन्न होगये ५१ और महात्मा परशुरामको अनेकों प्रकारके वर दिये तथा त्रिशूलधारी महादेवने प्रसन्न होकर परशुरामसे कहा, कि–॥ ५२ ॥ शस्त्रोंकी मारसे तुम्हारे शरीरमें जो पीड़ा हुई थी, उसको सह लेनेसे तुमने मनुष्यका कर्त्तव्य पूरा करलिया, अब तुम दैवी-पुरुष हो ॥ ५३ ॥ अब तुम मुझसे चाहे जौनसे दिव्य अस्त्र लेसकते हो, दुर्योधन कहता है, कि–तदनन्तर तपस्वी महात्मा परशुरामने सब अस्त्र और इच्छानुसार अनेकों वरदान लिये, फिर शिर झुकाकर शङ्करको प्रणाम किया और शङ्करसे आज्ञा

तपाः ॥ १५५ ॥ एवमेतत् पुरा वृत्तं तदा कथितवान्नृषिः । भार्ग-
वोऽप्यददद्दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने ॥ १५६ ॥ कर्णाय पुरुषव्याघ्र
सुप्रीतेनान्तरात्मना । वृजिनं हि भवेत् किञ्चिद्यदि कर्णस्य
पार्थिव ॥१५७॥नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद्भृगुनन्दनः।
नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथञ्चन ॥ १५८ ॥ देवपुत्रमहं
मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम् । विसृष्टमवबोधार्थं कुलस्येति मति-
र्मम ॥ १५९ ॥ सर्वथा न ह्ययं शल्य कर्णः सूतकुलोद्भवः ।
सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम् ॥ १६० ॥ कथमादित्य-
सदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति । यथा ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराज-
करोपमौ ॥१६१॥ वक्षः पश्य विशालञ्च सर्वशत्रुनिवर्हणम् । न

लेकर अपने स्थानको चलेगये ॥ ५४–५५ ॥ ऐसा यह प्राचीन
इतिहास इन परशुराम ऋषिने मुझसे कहा था,उन ही भृगुवंशी
महात्माने अन्तःकरणसे प्रसन्न होकर महात्मा कर्णको दिव्य
धनुर्वेद पढ़ाया है, यदि कर्णमें किसीप्रकारका भी दोष होता तो
परशुराम उसको धनुर्वेद न पढ़ाते इसलिये मैं कर्णको किसीप्रकार
भी सूतकुलमें या शूद्रकुलमें उत्पन्न हुआ नहीं मानता हूँ ५६-५८
मैं तो कर्णको क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुआ एक देवपुत्र समझता हूँ,
इसके कर्म और पराक्रमसे इसका कुल प्रकट होजायगा, इसलिये
ही इसका त्याग कियागया है, ऐसा मेरा विचार है ॥ १५९ ॥
हे शल्य ! यह कुण्डल और कवचके साथ उत्पन्न हुआ महाबाहु
और सूर्यकी समान तेजस्वी महारथी कर्ण सूतकुलमें कभी उत्पन्न
नहीं होसकता, सूर्यकी समान तेजस्वी वाघको, हिरनी कैसे
उत्पन्न करसकती है ? कर्णकी दोनों भुजायें पुष्ट और शेषनाग
की समान हैं ॥ १६० ॥ १६१ ॥ उसके विशाल वक्षःस्थलको
तो देखो ! वह सब शत्रुओंका संहार करनेवाला है, विकर्त्तनका
पुत्र कर्ण कोई साधारण मनुष्य नहीं है, किन्तु हे राजेंद्र ! वह

त्वेष प्राकृतः कश्चित् कर्णो वैकर्त्तनो नृपः ॥ १६२ ॥ महात्मा श्रेग राजेन्द्र रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ १६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुरवधोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

दुर्योधन उवाच । एवं स भगवान् देवः सर्वलोकपितामहः । सारथ्यमकरोत्तत्र ब्रह्मा रुद्रोऽभवद्रथी ॥ १ ॥ रथिनोऽभ्यधिको वीरः कर्त्तव्यो रथसारथिः । तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ॥ २ ॥ यथा देवगणैस्तत्र वृतो यत्नात् पितामहः । तथास्माभिर्भवान् यत्नात् कर्णादभ्यधिको वृतः ॥ ३ ॥ यथा देवैर्महाराज ईश्वरादधिको वृतः । तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः । नियच्छ तुरगान् युद्धे राधेयस्य महाद्युते ॥ ४ ॥ शल्य उवाच । मयाप्येतन्नरश्रेष्ठ बहुशो नरसिंहयोः । कथ्यमानं श्रुतं

तो परशुरामका प्रतापी शिष्य और एक महात्मा पुरुष है ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

दुर्योधन कहता है, कि—इसप्रकार सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने सारथीपना किया था और रुद्र रथमें बैठेहुए योधा बने थे ॥ १ ॥ हे वीर ! रथका सारथी रथीसे अधिक वीरको बनाना चाहिये, इसलिये हे पुरुषव्याघ्र ! आप रणमें कर्णके घोड़ोंको वशमें रखिये ॥ २ ॥ जैसे देवगणोंने यत्न करके ब्रह्मा को सारथी बनाया था तैसे ही हम भी कर्णसे भी अधिक बली आपसे सारथी बननेके लिये विनय करते हैं ॥ ३ ॥ देवताओं ने जैसे शङ्करसे अधिक बलवान् ब्रह्माजीसे सारथी बननेके लिये प्रार्थना की थी तैसे ही हम भी आपसे सारथी बननेके लिये प्रार्थना करते हैं, ब्रह्माजीने जैसे शङ्करके घोड़ोंको वशमें रक्खा था तैसेही हे महाकान्तिमान् शल्य ! आप भी रणमें कर्णके घोड़ोंको वशमें रखिये ॥ ४ ॥ शल्यने कहा, कि—हे राजा दुर्यो-

दिव्यमाख्यानमतिमानुषम् ॥ ५ ॥ यथा च चक्रे सारथ्यं भवस्य प्रपितामहः । यथा सुराश्च निहता इषुणैकेन भारत ॥ ६ ॥ कृष्णस्य चापि विदितं सर्वमेतत् पुरा बभून् । यथा पितामहो जज्ञे भगवान् सारथिस्तदा ॥ ७ ॥ अनागतमतिक्रान्तं वेद कृष्णोऽपि तत्त्वतः । एतदर्थं विदित्वा तु सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ८ ॥ स्वायम्भुरिव रुद्रस्य कृष्णः पार्थस्य भारत । यदि हन्याच्च कौन्तेयं सूतपुत्रः कथञ्चन ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा विनिहतं पार्थं स्वयं योत्स्यति केशवः । शङ्खचक्रगदापाणिर्धक्ष्यते तव वाहिनीम् ॥१०॥ न चापि तस्य क्रुद्धस्य वार्ष्णेयस्य महात्मनः । स्थास्यते प्रत्यनीकेषु कश्चिदत्र नृपस्तव ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच । तं तथा भाषमाणन्तु

धन ! मनुष्योंमें सिंहसमान मानेजानेवाले इन दोनों महात्माओं का अमानुषिक दिव्य चरित्र लोकोंके मुखसे मैंने वहुत वार सुना है और हे भरतवंशी राजन् ! ब्रह्माने शिवका सारथीपना किया था और शंकरने एक वाणसे असुरोंका नाश कैसे किया था यह भी मैं जानता हूँ तथा जैसे यह सब पहले हुआ था—इसको श्रीकृष्ण भी जानते हैं ॥ ५—७ ॥ भगवान् ब्रह्माजी जैसे भूत और भविष्यत्की वात जानते थे, ऐसेही श्रीकृष्ण भी सव वातको अच्छे प्रकार जानते हैं ॥ ८ ॥ इस सव वातको जानकर जैसे ब्रह्माजी शिवके सारथी वने थे, तैसे ही हे दुर्योधन ! श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथी वने हैं ॥ ९ ॥ यदि कर्ण किसीप्रकार अर्जुनको मारडालेगा तो अर्जुनको मरा हुआ देखकर श्रीकृष्ण अपने आप युद्ध करने लगेंगे ॥ १० ॥ और जव शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्ण क्रोधमें भरकर तेरी सव सेनाको भस्म करने लगेंगे, उस समय तेरी सेनामेंका कोई भी राजा शत्रुसेनाके सामने खड़ा नहीं रहसकेगा ॥ ११ ॥ सञ्जय कहता है, कि—राजा शल्यने ऐसा कहा, तव शत्रुओंको

मद्रराजमरिन्दमः । प्रत्युवाच महाबाहुरदीनात्मा सुतस्तव ॥१२॥ मावमंस्था महाबाहो कर्णं वैकर्त्तनं रणे । सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥ १३ ॥ यस्य ज्यानलनिर्घोषं श्रुत्वा भयकरं महत् ॥ १४ ॥ पाण्डवेयानि सैन्यानि विद्रवन्ति दिशो दश । प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा रात्रौ घटोत्कचः ॥ १५ ॥ मायाशतं विकुर्वाणो हतो मायापुरस्कृतः । न चातिष्ठत बीभत्सुः प्रत्यनीके कथञ्चन ॥ १६ ॥ एतांश्च दिवसान् सर्वान् भयेन महता वृतः । भीमसेनश्च बलवान् धनुष्कोटयाभिचोदितः ॥ १७ ॥ उक्तश्च संज्ञया राजन् मूढ औदरिकेति च । माद्रीपुत्रो तथा शूरौ येन जित्वा महारणे ॥ १८ ॥ कमप्यर्थं पुरस्कृत्य न हतो युधि मारिष । येन वृष्णिप्रवीरस्तु सात्यकिः सात्वतां वरः ॥ १९ ॥ निर्जित्य

दयादेनेवाले, उदारचित्त, महाबाहु तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने उसको उत्तर दिया, कि–हे महाबाहु राजन् ! तुम रणमें सूर्यपुत्र कर्ण का तिरस्कार न करो ॥ १२ ॥ १३ ॥ कर्ण सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ है और शास्त्रके सब विषयोंका पारङ्गत है, उसके धनुषकी डोरीके महाभयानक टंकारशब्दको सुनकर पांडवोंकी सेनायें दशों दिशाओंमेंको भागने लगती हैं, हे महाभुज राजन् ! घटोत्कच रात्रिमें सैंकड़ों मायाएँ किया करता था, उसको तुम्हारे सामने ही कर्णने कैसे मारडाला, बीभत्सु डरके मारे आजतक युद्धमें कर्णके सामने किसीप्रकार भी खड़ा नहीं रहसका था ।१४-१६। बली भीमसेनको भी धनुषकी नोक चुभोकर कर्णने लड़नेके लिये उकसाया था और आँखके इशारेसे कहा था, कि–ओ मूढ़ ! तू केवल पेट भरना ही जानता है और कर्णने महारणमें वीर नकुल सहदेवको भी हराया था, किसी कारणवश उनको युद्धमें मारा नहीं था और हे राजन् ! कर्णने वृष्णिकुल तथा सात्वतोंमें श्रेष्ठ सात्यकीको युद्धमें हराकर बलात्कारसे रथशून्य करदिया

समरे वीरो विरथश्च बलात्कृतः। सृञ्जयाश्चेतरे सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः॥ २०॥ असकृन्निर्जिताः संख्ये स्मयमानेन संयुगे। तं कथं पाण्डवा युद्धे विजेष्यन्ति महारथम्॥ २१॥ यो हन्यात् समरे क्रुद्धो वज्रहस्तं पुरन्दरम्। त्वञ्च सर्वास्त्रविद्वीर सर्वविद्यासु पारगः॥ २२॥ बाहुवीर्येण ते तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन। त्वं शल्यभूतः शत्रूणामविपह्यः पराक्रमे॥ २३॥ अतस्त्वमुच्यसे राजन् शल्य इत्यरिसूदन। तव बाहुबलं प्राप्य न शेकुः सर्वसात्वताः॥ २४॥ तव बाहुबलाद्राजन् किन्नु कृष्णो बलाधिकः। यथा हि कृष्णेन बलं धार्यं वै फाल्गुने हते॥ २५॥ तथा कर्णात्ययीभावे त्वया धार्यं महद्बलम्। किमर्थं समरे सैन्यं

था और मुसकुरातेहुए धृष्टद्युम्न आदि सब सृञ्जयोंको रणमें वारंवार हराया था, ऐसे महारथी कर्णको युद्धमें पांडव कैसे जीत सकेंगे ?॥ १७-२१ ॥ कर्ण यदि क्रोधमें भरजाय तो वज्रधारी इन्द्रका भी नाश करसकता है, ऐसेही तुम भी सब अस्त्रोंको जानते हो, वीर हो, सब विद्याओंके और विशेषकर अस्त्रविद्याके पारङ्गत हो ॥ २२ ॥ इस पृथिवी पर कोई भी पुरुष तुम्हारी समान बाहुयुद्धमें प्रवीण नहीं है तथा तुम्हारा पराक्रम भी ऐसा है, कि-उसको शत्रु सह नहीं सकते तथा शत्रुओंके लिये तुम शल्य (काँटे) की समान हो ॥ २३ ॥ इसलिये ही हे शत्रुओंका नाश करनेवाले राजन् ! तुम शल्य कहलाते हो, सब सात्वत इकट्ठे होकर भी तुम्हारे बाहुबलको नहीं सहसकते, हे राजन् ! क्या तुम्हारे बाहुबलके सामने श्रीकृष्ण अधिक बलवान् हैं ? ॥ २४ ॥ हे राजन ! कदाचित् अर्जुन रणमें मारा गया तो श्रीकृष्ण पांडवसेनाकी रक्षा करेंगे, ऐसेही यदि कर्ण रणमें माराजाय तो तुम उसके बड़ेभारी सेनादलकी रक्षा करना (अर्थात्-कृष्णने केवल सारथीपना करनेकी प्रतिज्ञा की है, तो

वासुदेवो न्यवारयत् ॥ २६ ॥ किमर्थञ्च भवान् सैन्यं न हनिष्यति मारिष । त्वत्कृते पदवीं गन्तुमिच्छेयं युधि मारिष । सोदराणाञ्च वीराणां सर्वेषाञ्च महीक्षिताम् ॥ २७ ॥ शल्य उवाच । यन्मां ब्रवीषि गान्धारे अग्रे सैन्यस्य मानद । विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ २८ ॥ एष सारथ्यमास्थाय राधेयस्य यशस्विनः । युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे २९ समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्त्तनं प्रति । उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य सन्निधौ ॥ ३० ॥ सञ्जय उवाच । तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन मारिष । अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य सन्निधौ ॥ ३१ ॥ सारथ्यस्याभ्युपगमात् शल्येनाश्वासितस्तदा ।

भी यदि वह युद्ध करनेको उद्यत होजायँ तो तुम भी युद्ध करना, ऐसा करनेमें तुम्हारी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं होगी) ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तुम रणमें शत्रुसेनाका संहार किसलिये नहीं करते हो, मैं युद्धमें तुम्हारा अवलम्ब लेकर अपने वीर भाइयोंके और सब शूर राजाओंके ऋणसे मुक्त होना चाहता हूँ ॥ २७ ॥ शल्यने कहा, कि-हे मान देनेवाले गांधारीके पुत्र दुर्योधन ! तुम इस सेनाके सामने कहरहे हो, कि-तुम कृष्णसे भी अधिक बलवान् हो, इसलिये मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ ॥ २८ ॥ हे वीर ! मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार अर्जुनके साथ युद्ध करते हुए राधाके पुत्र कर्णका सारथीपना करूँगा ॥ २९ ॥ तो भी हे वीर ! मैं एक बात ठहराना चाहता हूँ, वह यह है, कि-मैं कर्णके सामने जो बात कहूँ वह उसको श्रद्धाके साथ सुननी होगी ॥ ३० ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! यह सुनकर सब क्षत्रियोंके सामने बैठेहुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने कर्णके साथ सलाह करके मद्रराज शल्यसे कहा, कि-अच्छा ऐसा ही होगा ॥ ३१ ॥ राजा शल्यके सारथी बनना स्वीकार करलेने

दुर्योधनस्तदा हृष्टः कर्णं तमभिषस्वजे ॥ ३२ ॥ अब्रवीच्च पुनः कर्णं स्तूयमानः सुतस्तव । जहि पार्थात्रणे सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३३ ॥ स शल्येनाभ्युपगते हयानां संनियच्छने । कर्णो हृष्टमना भूयो दुर्योधनमभाषत ॥ ३४ ॥ नातिहृष्टमना ह्येष मद्रराजोऽभिभाषते । राजन्मधुरया वाचा पुनरेनं ब्रवीहि वै ॥ ३५॥ ततो राजा महाप्राज्ञः सर्वास्त्रकुशलो बली । दुर्योधनोऽब्रवीच्छल्यं मद्रराजं महीपतिम् ॥ ३६ ॥ पूरयन्निव घोषेण मेघगम्भीरया गिरा । शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धव्यमिति मन्यते ॥ ३७ ॥ तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि । कर्णो हत्वेतरान् सर्वान् फाल्गुनं हन्तुमिच्छति ॥ ३८ ॥ तस्याभीषुग्रहे राजन् प्रयाचे

से दुर्योधन उस समय निर्भय होगया, उसने प्रसन्न होकर कर्णको हृदयसे लगाया ॥ ३२ ॥ और प्रशंसा करते हुए तुम्हारे पुत्रने कर्णसे फिर कहा, कि-जैसे रणमें इन्द्रने सब असुरोंका संहार किया था तैसेही तुम भी रणमें पांडवोंका संहार करो ॥ ३३ ॥ राजा शल्यने कर्णका सारथीपना स्वीकार कर लिया तब कर्ण मनमें प्रसन्न हुआ और उसने फिर दुर्योधनसे कहा, कि-॥ ३४ ॥ यह मद्रराज मनमें अधिक प्रसन्न होकर सारथी बननेको नहीं कहते हैं, इसलिये हे राजन् ! तुम फिर इनको मधुर वाणीसे समझाओ ॥ ३५ ॥ महाबुद्धिमान् सब अस्त्रविद्यामें चतुर और बलवान् तुम्हारा पुत्र दुर्योधन मद्रराज शल्यसे, दिशाओंको भरता हो इसप्रकार मेघकी समान गंभीर वाणीमें इसप्रकार कहनेलगा, कि-हे राजन् शल्य ! आज कर्ण अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इसलिये आप रणमें इसके सारथी बनकर घोड़ोंको हाँकिये, कर्ण सब योधाओंका संहार करके अर्जुनका संहार करना चाहता है ३८ हे राजन् ! कर्णके घोड़ोंकी लगाम पकड़नेके लिये मैं आपसे वार

त्वां पुनः पुनः। पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः। तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय॥ ३६ ॥ सञ्जय उवाच। ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत्। दुर्योधनममित्रघ्नं प्रीतो मद्राधिपस्तदा॥ ४० ॥ एवञ्चेन्मन्यसे राजन् गान्धारे प्रियदर्शन। तस्मात्ते यत् प्रियं किञ्चित् तत् सर्वं करवाण्यहम् ४१ यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित्। तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यं परन्तप॥ ४२ ॥ यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये। मम तत् क्षमतां सर्वं भवान् कर्णश्च सर्वशः॥४३॥ कर्ण उवाच। ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः। तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भवस्व नः॥ ४४ ॥ शल्य उवाच। आत्मनिन्दात्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः। अनाचरितमार्याणां

वार प्रार्थना करता हूँ, जैसे श्रीकृष्ण अर्जुनके उत्तम सारथी हैं, तैसेही तुम कर्णके सारथी बनकर उसकी चारों ओरसे रक्षा करो॥ ३६ ॥ संजय कहता है, कि—हे राजन्! धृतराष्ट्र! मद्रदेशका राजा शल्य बड़ाही प्रसन्न हुआ और शत्रुका नाश करनेवाले दुर्योधनको छातीसे लगाकर कहनेलगा॥ ४० ॥ शल्यने कहा, कि—हे गांधारीके पुत्र राजा दुर्योधन! हे प्रियदर्शन! यदि तू ऐसा ही करना चाहता है तो मैं जो कुछ भी तेरा प्रिय काम हो उसको करनेको तयार हूँ॥४१॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! हे परन्तप! मैं जो कुछ भी काम करसकता हूँ, वह सब काम अन्तःकरणसे करनेको तयार हूँ॥ ४२ ॥ परन्तु मैं हित करनेकी इच्छासे कर्णसे प्रिय वा अप्रिय जो कुछ भी कहूँ वह सब तुझे और कर्णको सहना पड़ेगा॥ ४३ ॥ कर्णने कहा, कि—जैसे ब्रह्मा शङ्करके और श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथी बनकर उसका हित करनेमें तत्पर रहे हैं, तैसेही हे मद्रराज! तुम भी सदा मेरा हित करनेमें लगे रहकर मेरा सारथीपना करो ४४

वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ४५ ॥ यत्तु विद्वन् प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव । आत्मनः स्तवसंयुक्तं तन्निबोध यथातथम् ॥ ४६ ॥ अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत् प्रभो । अप्रमादप्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सनैः ॥ ४७ ॥ ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ । वाहयिष्यामि तुरगान् विज्वरो भव सूतज ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यस्य कर्णसारथ्य-
स्वीकारे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दुर्योधन उवाच । अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति । कृष्णादप्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः ॥ १ ॥ यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः । शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता

शल्यने कहा, कि–श्रेष्ठ पुरुष अपनी निन्दा वा स्तुति नहीं करता है, तथा दूसरे की भी निन्दा वा स्तुति नहीं करता है यह चार प्रकारका श्रेष्ठ पुरुषोंका व्रत है ॥ ४५ ॥ तो भी हे विद्वन् ! तुम्हे निश्चय दिलानेके लिये मैं अपने विषयमें जो प्रशंसा की बात कहता हूँ उसको तुम सुनो ॥ ४६ ॥ प्रभो ! मैं सावधान रहता हूँ, घोड़ोंको बड़ीही चतुरताके साथ हाँकना जानता हूँ, आगेके दोषोंको जानता हूँ और उन दोषों को हटाना भी जानता हूँ, आगामी दोषोंको दूर करनेकी मुझ में शक्ति है, इसलिये मैं मातलिकी समान इन्द्रका भी सारथीपना करसकता हूँ ॥ ४७ ॥ हे निर्दोष कर्ण ! तू रणभूमिमें अर्जुनके साथ युद्ध करेगा, उस समय मैं सारथी वनकर तेरे घोड़ोंको हाँकूँगा, तू चिन्ता न कर ॥ ४८ ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥　छ　॥　छ　॥　छ

दुर्योधन कहता है, कि–हे कर्ण! जैसे मातलि इन्द्रका सारथी है तैसे ही यह शल्य कृष्णसे अधिक बलवान् है, यह मद्रराज तेरा सारथी वनेगा ॥ १ ॥ जैसे सारथी मातलि घोड़ोंसे जुड़ेहुए इन्द्र

रथवाजिनाम् ॥ २ ॥ योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ । रथश्रेष्ठो ध्रुवं संख्ये पार्थानभिभविष्यति ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । ततो दुर्य्योधनो भूयो मद्रराजं तरस्विनम् । उवाच राजन् संग्रामेऽभ्युपिते पर्युपस्थिते ॥ ४ ॥ कर्णस्य यच्छ संग्रामे मद्रराज हयोत्तमान् । त्वयाभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनञ्जयम् ॥ ५ ॥ इत्युक्तो रथमास्थाय तथापि प्राह भारत । शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनाब्रवीत् । त्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यकृसत्वरन् ६ ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम् । विधिवत् कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत् ॥ ७ तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ८ ॥ सम्पादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा । कृत्वा

के रथ को हाँकता है, तैसे ही यह शल्य भी सारथि बनकर तेरे रथके घोड़ोंको ठीक २ वशमें रख सकेगा ॥२॥ जब तुझसरीखा योधा रथ में बैठेगा और मद्रदेश का राजा सारथी बनेगा, तब उत्तम रथमें बैठा हुआ तू निःसन्देह रणमें पाण्डवोंको जीत सकेगा ॥३॥ सञ्जय कहता है, कि–हे राजन् ! दुर्योधन ने दूसरे दिन प्रातःकालके समय पराक्रमी मद्रराजसे कहा, कि–जब संग्राम होने लगे ॥ ४ ॥ तब तुम रणमें कर्णके उत्तम घोड़ोंकी लगाम पकड़े रहना तो तुम्हारा रक्षा किया हुआ कर्ण धनंजयको जीत लेगा ॥ ५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! दुर्योधनके ऐसा कहने पर शल्यने कहा, कि–अच्छा ऐसा ही करूँगा, फिर वह रथमें बैठ कर कर्णके पास आया, कर्णने मनमें प्रसन्न होकर अपने सारथी से कहा, कि-हे सारथि ! तू मेरे लिये शीघ्रतासे रथ तयार करला, शल्य सारथिने गन्धर्व नगरकी समान विधिविधानसे सब सामग्रियोंसे सजाया हुआ उत्तम विजयी रथ कर्णके सामने लाकर खड़ा किया और कहा, कि–महाराजकी जय हो, रथ हाजिर है, तब महारथी कर्णने, जिस रथको वेदवेत्ता पुरोहित

प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम् ॥ ६ ॥ समीपस्थं मद्रराजमारोह त्वमथाब्रवीत् । ततः कर्णस्य दुर्द्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत् १० आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम् । ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वरथमुत्तमम् ॥ ११ ॥ अध्य तिष्ठ यथाम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः । तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ ॥ १२ ॥ व्यभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि । संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तमौ ॥ १३ ॥ ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी स्तूयमानाविवाध्वरे । स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितो बभौ।१४। धनुर्विस्फारयन् घोरं परिवेषीव भास्करः । आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान् ॥ १५ ॥ प्रबभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्थ

ने वेदमंत्रोंसे अभिमंत्रण करके सकल सामग्रियोंमें गुणाधान कर तयार किया था, उस रथकी प्रयत्नसे पूजा करके प्रदक्षिणा की और फिर सूर्यकी स्तुति करके ॥ ७-६ ॥ सामने खड़े हुए मद्रदेशके राजासे कहा, कि–हे राजन् शल्य ! अब तुम रथ पर बैठो, महातेजस्वी सिंह जैसे पर्वत पर चढ़ जाता है तैसे ही महातेजस्वी राजा शल्य भी कर्णके बड़े विजयी रथके ऊपर चढ़ गया, राजा शल्यको अपने उत्तम रथपर चढ़ाहुआ देखकर सूर्य जैसे बिजली वाले मेघके ऊपर सवार होता है तैसेही कर्ण भी अपने रथके ऊपर जाबैठा,एक रथमें बैठे हुए वे दोनों जने सूर्य और अग्निकी समान प्रतीत होते थे तथा सूर्य और अग्नि इकट्ठे होकर आकाशमें मेघके ऊपर बैठनेसे जैसे शोभा पाते हैं तैसे ही शोभा पानेलगे उन दोनों तेजस्वी वीर पुरुषों की उस समय लोग स्तुति करने लगे १०-१३ जैसे यज्ञमें ऋत्विज और सभासद् इन्द्रकी और अग्निकी स्तुति करते हैं तैसे ही लोग उनकी स्तुतियें गारहे थे, राजा शल्य रथ की अगली बैठक पर बैठ गया और रथके घोड़ोंकी लगाम पकड़ ली, तुरन्त ही तेजके कुण्डल वाले सूर्यकी समान तेजस्वी

इवांशुमान् । तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम् ॥ १६ ॥ दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत् । अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे ॥ १७ ॥ कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम् । मनोगतं मम ह्यासीत् भीष्मद्रोणौ महारथौ ॥ १८ ॥ अर्जुनं भीमसेनञ्च निहन्तारा्विति ध्रुवम् । ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे ॥ १६ ॥ तत् कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः । गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनञ्जयम् ॥ २० ॥ भीमसेनञ्च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि । जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ २१ पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात् । ततस्तूर्य्यसहस्राणि

और बाणरूप किरणोंसे भरेहुए सूर्यपुत्र कर्णने रथमें बैठे हुए अपने भयङ्कर धनुषका टंकारशब्द किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ उस समय जैसे मन्दराचल पर्वत पर चढ़ा हुआ सूर्य शोभा पाता है तैसे ही रथ पर बैठा हुआ पुरुषों में व्याघ्र समान कर्ण भी शोभा पारहा था, महाबाहु और महातेजस्वी कर्ण ज्योंही युद्ध करनेके लिये रथमें बैठा, उसी समय दुर्योधनने उससे कहा, कि– हे वीर ! द्रोणाचार्य तथा भीष्म भी युद्धमें जैसा कठिन पराक्रम नहीं करसके थे, उस कठिन कर्मको तू सब धनुषधारियोंके देखते हुए महारथी अर्जुनके सामने करके दिखा, मैं समझता था, कि– महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य अर्जुनको और भीमसेनको अवश्य ही मारडालेंगे, परन्तु हे वीर कर्ण ! उन्होंने रणमें ऐसा पराक्रम करके न दिखाया, परन्तु दूसरे इन्द्रकी समान तू वैसा पराक्रम करके दिखाना, या तो तू धर्मराजको कैद कर लेना नहीं तो अर्जुन भीमसेन तथा नकुल सहदेवको मारडालना, तेरी विजय और कल्याण हो, हे उत्तम पुरुष ! अब तू लड़नेके लिये यात्रा कर ॥ १६–२१ ॥ और रणमें जाकर पांडुपुत्रोंकी सब सेनाको जलाकर भस्म करडाल, इसप्रकार कर्णसे कहा, कि– उसी समय

भेरीणामयुतानि च ॥ २२ ॥ वाद्यमानान्यरोचन्त मेघशब्दा यथा दिवि । प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं रथस्य रथसत्तमः ॥ २३ ॥ अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् । चोदयाश्वान्महाबाहो यावद्धन्मि धनञ्जयम् ॥ २४ ॥ भीमसेनं यमौ चोभौ राजानञ्च युधिष्ठिरम् । अथ पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनञ्जयः ॥ २५ ॥ अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च । अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान् परमतेजनान् ॥ २६ ॥ पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च । शल्य उवाच । सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ॥ २७ ॥ सर्वास्त्रज्ञान्महेष्वासान् सर्वानेव महाबलान् । अनिवर्त्तिनो महाभागान् अजय्यान् सत्यविक्रमान् ॥ २८ ॥ अपि सञ्जनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः । यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥ राधेय गाण्डीवस्याजौ तदा नैवं

युद्धकी यात्राके समय बजने योग्य सहस्रों नफीरी नगाड़े आकाश में मेघोंके गरजनेकी समान चारों ओरसे गर्जनाके साथ बजने लगे, रथमें बैठाहुआ महारथी कर्ण दुर्योधनकी बात मानकर युद्ध करनेमें चतुर राजा शल्यसे कहने लगा कि–हे महाबाहु शल्य ! घोड़ोंको रणभूमिकी ओरको हाँक तो मैं अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और राजा युधिष्ठिरको रणमें मारूँ, आज धनंजय मेरे बाहुबलको अच्छी तरह देख लेय ॥ २२–२५ ॥ हे शल्य ! पांडवोंका नाश और दुर्योधनकी विजय करनेके लिये रणमें सैंकड़ों और सहस्रों कंक पक्षीके परोंवाले बाणोंकी मारामार करूँगा, शल्यने कहा, कि–हे सूतपुत्र ! तू पांडवोंका अपमान क्यों करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ पांडव सब प्रकारके अस्त्रोंमें प्रवीण, धनुषधारी, बलवान् रणमें पीछेको न हटनेवाले, महाभाग्यशाली अजेय और सत्यपराक्रमी हैं ॥२८॥ अरे! वे तो साक्षात् इन्द्रको भी भयभीत करदेनेवाले हैं, अरे राधाके पुत्र ! तू जब वज्रकी

वदिष्यसि । यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे॥३०॥विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यति । यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा ॥ ३१ ॥ शितैः पृषत्कैः कुर्वाणानभ्रच्छायामिवाम्वरे । अस्यतः क्षिण्वतश्चारींल्लघुहस्तान् दुरासदान् ॥ ३२ ॥ पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं तदा नैवं वदिष्यसि । सञ्जय उवाच । अनादृत्य तु तद्वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् । याहीत्येवाब्रवीत् कर्णो मद्रराजं तरस्विनम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसम्वादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम् । चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ १ ॥ ततो दुन्दुभिनि-

---

समान अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टङ्कारके शब्दको सुनेगा, तब तू ऐसा कदापि नहीं कहसकेगा और रणभूमिमें भीमसेन हाथियोंकी सेनाके दाँत उखाड़कर उसका संहार करेगा, तब भी तू ऐसा नहीं कह सकेगा और धर्मराज, नकुल तथा सहदेव भी रणमें तेज किये हुए वाणोंसे मेघोंकी समान आकाशको छादेयँगे, फोके हाथसे वाण छोड़कर शत्रुओंका संहार करने लगेंगे कि तले ऊपर वाणोंकी मारामार मचावेंगे तथा अन्य राजाओंका संहार करना आरंभ करदेंगे, उनको जब तू देखेगा तब भी ऐसा नहीं कहसकेगा ॥२६-३२॥ संजय कहता है, कि-हे धृतराष्ट्र ! मद्रराजने ऐसा कहा, तब उसका अनादर करके कर्णने महावेग वाले मद्रराजसे कहा, कि- चल रथको आगे बढ़ा ॥ ३३ ॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

सञ्जय कहता है,कि-महाबाहु कर्ण लड़नेकी इच्छासे हाथमें धनुष लेकर तयार होगया, उसको देखकर सब कौरव प्रसन्न हो चारों ओरसे हर्षनाद करने लगे ॥ १ ॥ दुन्दुभि और

घोषैर्भेरीणां निनदेन च । बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्ज्जितैश्च तरस्विनाम् ॥ २ ॥ निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् । प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च ॥ ३ ॥ चचाल पृथिवी राजन् ववाश च सुविस्तरम् । निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात् सप्त महाग्रहाः ॥ ४ ॥ उल्कापाताश्च सञ्जज्ञुर्दिशां दाहास्तथैव च । शुष्काशन्यश्च सम्पेतुर्ववुर्वाताश्च भैरवाः ॥ ५ ॥ मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव । अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम् ॥ ६ ॥ प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि । अस्थिवर्षञ्च पतितमन्तरीक्षाद्भयानकम् ॥ ७ ॥ जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे। अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशाम्पते८ एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र दारुणाः । समुत्पेतुर्विनाशाय

भेरियोंके शब्द होने लगे, बाणोंके भाँति २ की सरसराहट होने लगी, घोड़े हिनहिनानेलगे ॥ २ ॥ और तुम्हारे योधा हर्षमें मृत्यु को पीछे छोड़कर युद्धमें लड़नेके लिये मैदानमें आगये, कर्ण सबसे आगे २ चलनेलगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उस समय पृथिवी डगमगानेलगी और कौरव योधाओंका बड़ा कोलाहल होरहा था, सातों बड़े २ ग्रह लड़नेके लिये सूर्यमेंसे बाहरको निकलते हुए दीखे ॥ ४ ॥ चारों ओर आकाशमेंसे उल्कापात होनेलगे, दिशाओंमें आगसी लगगयी, स्वच्छ आकाश में गर्जना होनेलगी, वज्रपात होने लगे, भयानक पवन चलने लगे ॥ ५ ॥ उस समय पशु पक्षी महाभय दिखाते हुए तुम्हारी सेनाके दक्षिणभागमें ऊपर उड़नेलगे ॥ ६ ॥ जाते समय कर्णके घोड़े भूमिमें गिरपड़े, आकाशमेंसे हड्डियोंकी भयानक वर्षा होने लगी ॥ ७ ॥ कौरवोंके शस्त्र बलते हुएसे मालूम होनेलगे, उनकी ध्वजायें हिलने लगीं और हे राजन् ! उनके वाहन आँसू बहाने लगे ॥ ८॥ कौरवोंके विनाशके लिये तहाँ ये तथा और भी भया-

कौरवाणां सुदारुणाः ॥ ६ ॥ न च तान् गणयामासुः सर्वे दैवेन मोहिताः । प्रस्थितं सूतपुत्रञ्च जयेत्यूचुर्नराधिपाः । निर्जितान् पाण्डवांश्चैव मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १० ॥ ततो रथस्थः परवीरहन्ता भीष्मद्रोणावस्तवीर्य्यौ समीक्ष्य ।समुज्ज्वलद्भास्करपावकाभो वैकर्त्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप।११। स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य । मानेन दर्पेण विदह्यमानः क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च । १२ । नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः क्रुद्धाद्बिभेम्यायुधवान् रथस्थः । दृष्ट्वा तु भीष्मप्रमुखान् शयानानतीव मां ह्यस्थिरता जहाति ॥ १३ ॥ महेन्द्रविष्णुप्रतिमावनिन्दितौ रथाश्वनागप्रवरप्रमाथिनौ । अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परैस्ततो

नक एवं महाभयानक उत्पात दीखने लगे ॥ ६ ॥ दैवने सबके ऊपर अज्ञानका पड़दा डालदिया था, इसलिये इन उत्पातोंको किसीने कुछ गिना ही नहीं किन्तु युद्धके लिये उद्यत होकर सब सेनापति गर्जना करनेलगे,कि-कर्णकी जय हो, जय हो हे महाराज वे तो यही समझरहेथे, कि-पाण्डवोंको अब जीता ॥ १० ॥ हे राजन् ! (रणभूमिकी ओरको जातेहुए), शत्रुपक्षके शूरोंका संहार करने वाले, सूर्य और अग्निकी समान तेजस्वी तथा रथियोंमें हाथीकी समान बलवान् कर्णने रथमें बैठे २ महापराक्रमी भीष्म और द्रोणाचार्यके मरणके विषयका विचार किया ॥११॥ फिर अर्जुनके महापराक्रमका विचार करके अभिमान तथा दर्पसे अन्तःकरणमें जलता हुआ और क्रोधके मारे लालताल हुआ कर्ण लंबे २ साँस लेताहुआ शल्यको पुकार कर कहने लगा कि-॥१२॥मैं हाथमें शस्त्र लेकर रथमें बैठा हूँ,इसलिये अब मुझे कोपमें भरेहुए इन्द्रका भी डर नहीं है रणमें सोतेहुए इन द्रोण और भीष्म आदि योधाओंको देखकर मेरा धीरज बढ़गया है १३ महेन्द्र और विष्णुकी समान पूर्ण शुद्ध चरित्रवाले रथी, घुड़सवार

न मेऽप्यस्ति रणेऽद्य साध्वसम् ॥ १४ ॥ समीक्ष्य संख्येऽतिबला-न्नराधिपान् सयूतमातंगरथान् परैर्हतान् । कथं न सर्वानहितान् रणेऽवधीन्महास्त्रविद् ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः ॥ १५ ॥ स संस्मरन् द्रोणमहं महाहवे ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत । न वा मदन्यः प्रसहेद्रणेऽर्जुनं समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥ १६ ॥ शिक्षा प्रसादश्च बलं धृतिश्च द्रोणे महास्त्राणि च सन्नतिश्च । स चेद्-गान्मृत्युवशं महात्मा सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥ १७ ॥ नेह ध्रुवं किञ्चिदपि प्रचिन्तयन् विद्यां लोके कर्मणो दैवयोगात् । सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते ॥ १८ ॥ न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः क्रिया सुनीतं परमायुधानि वा । अलं

तथा बड़े २ योधाओंका संहार करने वाले, जिनको कोई मार नहीं सकता था ऐसे भीष्म पितामह और द्रोणाचार्यको शत्रुओंने मारडाला यह देखकर भी मुझे इस रणमें आज जरा भी भय नहीं लगता है ॥ १४ ॥ युद्धमें शत्रुओंने बड़े २ बलवान् राजाओंको सारथियोंको, घुड़सवारोंको और रथियोंको मारडाला, यह देख कर भी परम अस्त्रवेत्ता और ब्राह्मणोंमें उत्तम गुरु द्रोणाचार्यने न जाने क्यों सब शत्रुओंका संहार नहीं किया ॥ १५ ॥ हे कौरवों ! मैं द्रोणाचार्यका स्मरण करके इस महासंग्राममें तुम से जो कुछ कहता हूँ, उसको तुम सत्यही समझना, मेरे सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष, रणमें भयङ्कररूपधारी मृत्युकी समान चढ़कर आयेहुए अर्जुनको नहीं सहसकता ॥ १६ ॥ जिन्होंने अस्त्रशस्त्रोंकी ऊँची शिक्षा पायी थी, जिनमें अस्त्र शस्त्र चलानेकी कुशलता, बल, धीरज, सब प्रकारकी अस्त्रविद्या और विवेक था, वह महात्मा द्रोणाचार्य जब मारेगये तो और सबोंको अब मैं मरणके लिये आतुर (तयार बैठे) ही समझता हूँ १७ परन्तु मुझे विचार करनेसे मालूम होता है, कि-कर्मभोगके कारण

मनुष्यस्य सुखाय वर्त्तितुं तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥ १६ ॥
हुताशनादित्यसमानतेजसं पराक्रमे विष्णुपुरन्दरोपमम् । नये
बृहस्पत्युशनःसमं सदा न चैनमस्त्रं तदुपास्त दुःसहम् ॥ २० ॥
संमाक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराभूते पौरुषे धार्त्तराष्ट्रे । मया
कृत्यमिति जानामि शल्य प्रयाहि तस्माद् द्विषतामनीकम् ॥२१॥
यत्र राजा पाण्डवः सत्यसन्धो व्यवस्थितो भीमसेनार्ज्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च यमौ च कस्तान् विषहेन्मदन्यः
॥ २२ ॥ तस्मात् क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि रणे पञ्चालान् पाण्डवान्
सृञ्जयांश्च । तान् वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये यास्यामि वा

कोई भी वस्तु इस लोकमें अमर नहीं है, अभी संग्राममें द्रोणाचार्य मारे गये हैं, इस दशामें कौन पुरुष निश्चयके साथ कह सकता है, कि–कल सवेरे सूर्योदयके समय जीवित रहूँगा ॥१८॥ अस्त्र, बल, पराक्रम, क्रिया, उत्तम शिक्षा तथा उत्तम प्रकारके शस्त्र मनुष्योंको पूरा २ सुख नहीं देसकते,क्योंकि–द्रोणाचार्यके पास ये सब पूरे२साधन थे तथापि उनको रणमें शत्रुओंने मारडाला द्रोणाचार्य तेजमें अग्नि और सूर्यकी समान थे, नीतिमें सदा बृहस्पति और शुक्राचार्यकी समान थे, पराक्रममें विष्णु वा इन्द्र की समान थे और स्वयं भी असह्य थे, तो भी अस्त्र उनकी रक्षा नहीं करसके ॥ २० ॥ इस समय जब कि–स्त्रियें तथा बालक राजकुमार विलाप करते हैं तथा धृतराष्ट्रके पुत्र सामर्थ्यहीन होकर पराजय माननेको तयार हैं, तब हे राजन् शल्य ! मेरी समझमें इस समय मुझे बड़ाभारी काम करना है, इसलिये तुम शत्रुसेनाकी ओरको चलो ॥ २१ ॥ जहाँ सत्य प्रतिज्ञावाले राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृञ्जय और नकुल सहदेव डटेखड़े हैं, तहाँ मेरे सिवाय दूसरा कौन पुरुष उनकी टक्कर झेलसकता है ? ॥ २२ ॥ इसलिये हे मद्र-

द्रोणपथा यमाय ॥ २३ ॥ न त्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये तेषां शूराणामिति मां शल्य विद्धि । मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम् ॥ २४॥ प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य । अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थान् दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्त्तितुं वै ॥ २५॥ कल्याणवृत्तः सततं हि राजन् वैचित्रवीर्य्यस्य सुतो ममासीत् । तस्यार्थसिध्यर्थमहं त्यजामि प्रियान् भोगान् दुस्त्यज्यं जीवितञ्च ॥ २६ ॥ वैयाघ्रचर्माणम-कूजनाक्षं हेमत्रिकोपं रजतत्रिवेणुम् । रथप्रवर्हं तुरगप्रवर्हैर्युक्तं

राज ! शीघ्रही रणमें पांचाल, पाण्डव और सृञ्जयोंके सामने मेरे रथको लेचल, आज रणमें मुचैटा लेकर या तो उनको मार डालूँगा, नहीं तो मैं भी द्रोणाचार्यके मार्गसे यमलोकको चला जाऊँगा ॥ २३ ॥ हे राजा शल्य ! तुम इस बातको निश्चय समझ लो, कि–मैं उन शूरोंके बीचमें अवश्य ही जाऊँगा, क्योंकि उन्होंने जो मेरे दुर्योधनादि मित्रोंके साथ वैरभाव बाँधा है, इसको मैं सह नहीं सकता, चाहे मैं इस संग्राममें अपने प्राणोंको त्याग कर द्रोणाचार्यके पीछे यमलोकको भले ही चला जाऊँ ॥ २४॥ मनुष्य बुद्धिमान् हो चाहे मूर्ख हो, तथापि जब काल उसका सत्कार करता है और उसकी आयु पूरी होनेको आजाती है, उस समय वह अपनी मृत्युको कदापि नहीं टालसकता, इसलिये हे विद्वन् ! मैं पार्थके साथ लड़नेको जाऊँगा, प्रारब्धके लेखको कौन टालसकता है ? ॥ २५ ॥ विचित्रवीर्यके पुत्रका पुत्र (दुर्योधन) नित्य मेरा कल्याण चाहता है, इसलिये मैं उसका काम करनेके लिये अपने प्यारे ऐश्वर्य और जीवन तक त्यागनेको तयार हूँ ॥ २६ ॥ व्याघ्रके चमड़ेसे मढ़ाहुआ यह मेरा उत्तम रथ मुझे परशुरामजीने दिया है, इसके नीचेकी धुरी जरा भी खड़-खड़ाहट नहीं करती है, इसकी बैठक सोनेकी है और नीचेके

प्रादान्मह्यमिदं ह राम ॥ २७ ॥ धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य ध्वजान् गदाः सायकांश्चोग्ररूपान् । असिञ्च दीप्तं परमायुधञ्च शंखञ्च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥ २८ ॥ पताकिनं वज्रनिपात निःस्वनं सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम् । इमं समास्थाय रथं रथर्षभं रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥ २९ ॥ तच्चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत् सदाऽप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम् । तं वा हनिष्यामि समेत्य युद्धे यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ॥ ३० ॥ यमवरुणकुबेरवासवा यदि युगपद् सगणा महाहवे । जुगुपिषव इहैत्य पाण्डवं किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥ ३१ ॥ सञ्जय उवाच । इति रण-

भागमें तीन बाँस चाँदीके लग रहे हैं और इसमें उत्तम घोड़े जुते हुए हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् शल्य ! इस रथमें भिन्न २ प्रकारके धनुष हैं, ध्वजायें हैं, गदायें हैं, भयानक फलवाले भाले हैं, चमकती हुई तलवारें और उत्तम जातिके शस्त्र हैं, स्वेत रङ्गका हर समय गुंजारनेवाला उत्तम शङ्ख है ॥ २८ ॥ और इस रथके ऊपर उत्तम पताकायें फहराती हैं, यह रथ जब चलता है, उस समय वज्रपातकी समान घनघनाहटका शब्द होता है और इस रथमें सफेद घोड़े जुतेहुए हैं, उत्तम भालोंसे भराहुआ है, ऐसे उत्तम रथमें बैठाहुआ मैं पराक्रम करके महारथी अर्जुनका नाश करूँगा ॥ २९ ॥ सदा सावधान रहकर सबका नाश करनेवाला काल कदाचित् रणमें अर्जुनकी रक्षा करेगा तो भी मैं स्वयं संग्राममें उस कालके साथ भी लड़कर उसका नाश करडालूँगा, अथवा भीष्मपितामहके सामने यमलोकको चलाजाऊँगा ॥ ३० ॥ कदाचित् यम, वरुण, कुबेर इन्द्र आदि देवता अपने सेवकोंके सहित एकसाथ अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये आज महारणमें लड़नेको उतर आवेंगे, तो भी अधिक क्या कहूँ, मैं उनके सामने भी युद्ध करूँगा और अर्जुनको जीतूँगा ॥ ३१ ॥ सञ्जय

रभसस्य कत्थतस्तदुपनिशम्य वचः स मद्रराट् । अवहसदवमन्य वीर्य्यवान् प्रतिपिषिधे च जगाद चोत्तरम् ॥ ३२ ॥ शल्य उवाच । विरम विरम कर्ण कत्थनादतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान् । क्व च हि नरवरो धनञ्जयः क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ॥ ३३ ॥ यदुसदनमुपेन्द्रपालितं त्रिदिवमिवामरराजरक्षितं । प्रसभमभिविलोड्य को हरेत् पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥३४॥ त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं क इह पुमान् भवमाह्वयेद्युधि । मृगवधकलहे ऋतेऽर्जुनात् सुरपतिवीर्य्यसमप्रभावतः ॥ ३५ ॥ असुरसुरमहोरगान्नरान् गरुडपिशाचसयक्षराक्षसान् इषुभिरजयदग्निगौरवात् स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥३६॥ स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि

कहना है, कि–हे धृतराष्ट्र ! युद्ध करनेके लिये वेगमें भरा हुआ कर्ण, इसप्रकार बड़बड़ा रहा था, उसकी बड़बड़ाहटको सुनकर पराक्रमी मद्रराज हँसा और उसका अपमान करके उसने कर्णको रोकनेके लिये इसप्रकार उत्तर देना आरम्भ किया ॥ ३२ ॥ शल्यने कहा, कि–अरे कर्ण ! चुप हो, चुप हो, बड़बड़ाहट न कर, तू बड़ा उत्कट है और तू अपनी शक्तिसे अधिक बातें बना रहा है, कहाँ तो पुरुषोंमें उत्तम धनञ्जय ? और कहाँ पुरुषोंमें अधम तू ? ॥३३॥ इन्द्रके रक्षा कियेहुए स्वर्गकी समान श्रीकृष्णके रक्षा कियेहुए यदुके घरको एकसाथ घँघोलकर अर्जुनके सिवाय दूसरा कौनसा पुरुष श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राका हरण करसकता था ? ॥ ३४ ॥ मृगका शिकार करते समय विवाद होजाने पर इन्द्रकी समान प्रतापी अर्जुनके सिवाय दूसरा कौन पुरुष तीनों लोकोंके स्वामी और ईश्वरोंके ईश्वर महादेवजीको भी युद्ध करनेके लिये पुकार सकता है ? ॥ ३५ ॥ अग्निको यथेच्छ तृप्त करनेके लिये असुर, देवता, बड़े२ सर्प, गरुड, पिशाच यक्ष, राक्षस आदिको बाणोंसे परास्त करके अपनी इच्छानुसार

मोचितः । दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधि कुरुषु बहून् विनिहत्य तानरीन् ॥ ३७ ॥ प्रथममपि पलायिते त्वयि प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः । स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥ ३८ ॥ समुदितबलवाहना पुनः पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे । सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः ॥ ३९ ॥ इदमपरमुपस्थितं पुनस्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै । यदि न रिपुभयात्पलायसे समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥४०॥ सञ्जय उवाच । इति बहु परुषं प्रभाषति प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम् ।

बलि अर्जुनने ही दिया था ॥ ३६ ॥ गन्धर्वोंके साथ युद्ध होने पर गन्धर्व कौरवोंकी सेनाके बहुतसे योधाओंका संहार करके दुर्योधनको पकड़कर लेगये थे, उस समय अर्जुनने ही सूर्यकी समान कान्तिवाले उत्तम बाण मारकर उनके हाथसे दुर्योधनको छुड़ाया था. वह तुझे याद है क्या ? ॥ ३७ ॥ उन गन्धर्वोंके साथ युद्ध होते समय तू तो सबसे पहले भागगया था ! तब पीछे से कलहप्रिय धृतराष्ट्रके पुत्रोंको गन्धर्वोंने कैद किया था, उस समय पाण्डवोंने आकाशविहारी चित्ररथ आदि गन्धर्वोंको परास्त करके धृतराष्ट्रके पुत्रोंको छुड़ाया था, यह घटना तुझे याद है क्या ? ॥ ३८ ॥ राजा विराटके यहाँ जब कौरव गौओंको घेर लानेके लिये गये थे, उस समय अर्जुनने बड़ीभारी सेना, वाहन, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा भीष्मपितामह आदि सब सुभटों को हराया था, उस समय तूने अर्जुनको क्यों नहीं जीता था ? ॥३९॥ अरे कर्ण ! वह अवसर तो जाता ही रहा, परन्तु अब आज यह दूसरी बारका युद्ध तेरी मृत्युके लिये ही आलगा है, यदि आज तू शत्रुके भयसे रणभूमिको छोड़कर नहीं भागेगा तो अवश्य ही माराजायगा ॥ ४० ॥ संजय कहता है, कि–मद्रराजने क्रोधमें भरकर कर्णसे ऐसे कठोर वचन कहे, तब

भृशमभिलषितः परन्तपः कुरुपृतनापतिराह मद्रपम् ॥ ४१ ॥
कर्ण उवाच । भवतु भवतु किं विकत्थसे ननु मम तस्य च युद्धमुद्य-
तम् । यदि स जयति मामिहाहवे तत इदमस्तु सुकत्थितं तव
॥४२॥ सञ्जय उवाच । एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान् ।
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया ॥ ४३ ॥ स रथः
प्रययौ शत्रून् श्वेताश्वः शल्यसारथिः । निघ्नन्नमित्रान् समरे तमो-
घ्नन् सविता यथा ॥ ४४ ॥ ततः प्रायात् प्रीतिमान् वै रथेन वैया-
घ्रेण श्वेतयुजाथ कर्णः । स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां धन-
ञ्जयं त्वरया पर्य्यपृच्छत् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसम्वादे
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला कर्ण बड़ेही क्रोधमें भरगया और
और वह कुरुसेनापति कर्ण मद्रराजसे कहनेलगा ॥ ४१ ॥ कर्ण
ने कहा, कि–अस्तु, अस्तु, परन्तु तू इतना क्यों बड़बड़ा रहा
है ? अर्जुनका और मेरा युद्ध होनेवाला ही है, यदि आज वह
रणमें मुझे हरादेगा तब तेरा कहना सत्य होगा ॥ ४२ ॥ संजय
कहता है, कि–मद्रदेशके राजा शल्यने 'तथास्तु' कहकर और
कुछ उत्तर नहीं दिया, कर्णने लड़नेकी इच्छासे शल्यसे कहा,
कि–हे शल्य ! अब तू रथको हाँककर आगेको चल ॥ ४३ ॥
जिसका सारथी शल्य है और जिसके घोड़े सफेद हैं ऐसे रथमें
बैठाहुआ कर्ण, जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करता है तैसेही
रणमें शत्रुओंका संहार करताहुआ आगेको बढ़नेलगा ॥ ४४ ॥
व्याघ्रकी खालसे मढ़ेहुए और सफेद घोड़ोंवाले रथमें बैठकर
कर्ण प्रसन्नमनसे रणमें बराबर आगेको बढ़ने लगा और पाण्ड-
वोंकी सेनाको देखकर बड़ी शीघ्रताके साथ धनंजयका समा-
चार बूझनेलगा ॥ ४५ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

सञ्जय उवाच । प्रयाणे च ततः कर्णो हर्षयन् वाहिनीं तव । एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवान् पर्यपृच्छत ॥ १ ॥ यो मामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनं । तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति ॥ २ ॥ न चेत्तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः । शकटं रत्नपूर्णञ्च यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ ३ ॥ न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् । शतं दद्यां गवां तस्मै नैत्यकं कांस्यदोहनं ॥ ४ ॥ शतं ग्रामवरांश्चैव दद्यामर्जुनदर्शिने । तथा तस्मै पुनर्दद्यां श्वेतमश्वतरीरथम् ॥ ५ ॥ युक्तमञ्जनकेशीभिर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् । न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ६ ॥ अन्यं तस्मै वरं दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम् । तथा-

संजय कहता है, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! कर्ण पाण्डवोंके साथ लड़नेके लिये आगेको बढ़ा और तुम्हारी सेनाको उत्साह दिलाताहुआ पाण्डवोंके हरएक योधाको ,देखकर शत्रुसेनाका समाचार बूझताहुआ कहने लगा, कि-॥ १ ॥ आज जो पुरुष मुझे श्वेतवाहन महात्मा अर्जुनको दिखावेगा, उसको मैं उसकी इच्छानुसार यथेष्ट धन दूँगा ॥ २ ॥ यदि धनसे उसकी तृप्ति नहीं होगी तो जो मुझे अर्जुनको दिखावेगा, उसको रत्नोंसे भराहुआ छकड़ा दूँगा ॥ ३ ॥ यदि इससे भी उसका मन प्रसन्न नहीं होगा तो अर्जुनको दिखानेवाले पुरुषको मैं नित्य उत्तम दूध देनेवाली सौ गौएं तथा दूध दुहनेके काँसीके पात्र दूँगा ।४। इतना ही नहीं, किन्तु अर्जुनको दिखानेवाले पुरुषको मैं सौ उत्तम गौएं दूंगा, अरे ! जो कोई मुझे अर्जुन यहाँ खड़ा है यह दिखावेगा, उसको मैं, जिसमें काले केशोंवाली स्त्रियें बैठी होंगी ऐसा खच्चरोंसे जुताहुआ श्वेत रथ दूँगा, उसको वह भी सन्तोष नहीं देगा तो अर्जुनके दिखानेवाले पुरुषको मैं हाथीकी समान बलवान् खेंचनेवाले छः बैलोंसे जुताहुआ सोनेका रथ दूँगा।

प्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ॥ ७ ॥ श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिताम् । न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ८ ॥ तस्मै दद्यां शतं नागान् शतं ग्रामान् शतं रथान् । सुवर्णस्य च मुख्यस्य हयाग्र्याणां शतं शतान् ॥ ९ ॥ ऋध्या गुणैः सुदान्तांश्च धुर्य्यवाहान् सुशिक्षितान् । तथा सुवर्णशृङ्गीणां गोधेनूनां चतुःशतम् ॥ १० ॥ दद्यां तस्मै सवत्सानां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् । न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ११ ॥ अन्यं तस्मै वरं दद्यां श्वेतान् पञ्चशतान् हयान् । हेमभाण्डपरिच्छन्नान् सुमृष्टमणिभूषणान् ॥ १२ ॥ सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टादशापरान् । रथञ्च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलंकृतम् ॥ १३ ॥ युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् । न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुन-

और मैं उसको कंठमें मङ्गलसूत्र धारण करनेवालीं गाने बजानेमें प्रवीण और सजीहुई श्यामा नामकी सोलह वर्षकी स्त्रियें दूँगा, यदि वह उनसे भी प्रसन्न नहीं होगा तो उस अर्जुनको बताने वालेको सौ हाथी, सौ गाँव, सौ सोनेसे मढ़ेहुए उत्तम रथ तथा शरीरमें पुष्ट, गुणी, श्रेष्ठ, सधे, रथको खेंचसकनेवाले, उत्तम शिक्षा दिये हुए हजार उत्तम घोड़े और सोनेसे मढ़े सींगोंवालीं बछड़ों सहित चार सौ गौएं दूँगा, अर्जुनको दिखानेवाले पुरुषको यदि ये भी प्रसन्न नहीं करसकेंगी तो ॥ ५–११ ॥ उसको सोनेकी भूलोंसे सजे हुए और चमकती हुई मणियोंके गहनोंवाले, सफेद रङ्गके, सीखेहुए पाँचसौ घोड़े अर्पण करूँगा ॥ १२ ॥ और भी उत्तम शिक्षा दियेहुए अठारह घोड़े दूँगा तथा सफेद रङ्गका उत्तम प्रकारसे सजाया हुआ, काम्बोज देशके बढ़िया घोड़ोंसे जुता हुआ एक सोनेका रथ भी दूँगा, अर्जुन को दिखाने वाला पुरुष इन वस्तुओंको भी पसन्द नहीं करेगा तो सोनेके भाँति २ के गहनोंसे सजाये हुए, सोनेकी मालायें

दर्शिवान् ॥ १४ ॥ अन्यं तस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट् । काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैः संच्छन्नान् हेममालिनः ॥ १५ ॥ उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान् हस्तिशिक्षकैः । न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १६ ॥ अन्यं तस्मै वरं दद्यां वैश्यग्रामांश्चतुर्दश । सुस्फीतान् धनसंयुक्तान् प्रत्यासन्नवनोदकान् । अकुतोभयान सुसम्पन्नान् राजभोज्यांश्चतुर्दश ॥ १७ ॥ दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा । प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ १८ ॥ न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् । अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत् स्वयम् ॥१९॥ पुत्रदारान् विहारांश्च यदन्यद्वित्तमस्ति मे । तच्च तस्मै वरं दद्यां यद्यच्च मनसेच्छति ॥ २० ॥ हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः ।

पहरे, महावतोंसे शिक्षा पायेहुए और पश्चिम दिशा (अफ्रीका) में उत्पन्न हुए छः सौ हाथी भी दूँगा, अर्जुनके दिखाने वाले पुरुषको यह भी पसन्द नहीं होगा तो ॥ १३–१६ ॥ उस को अच्छे वसेहुए, धनसंपन्न, जिनके पास ही वन और जलाशय होंगे, जिनमें किसी प्रकारका भय नहीं होगा, उत्तम सम्पत्ति वाले और राजाओंके रहनेके योग्य वैश्यग्राम (व्यापारके केन्द्र)चौदह ग्राम दूँगा ॥ १७ ॥ जो पुरुष मुझे अर्जुनका समाचार लाकर देगा उसको मैं कण्ठमें मङ्गलसूत्र पहरनेवाली, मगध देशकी नवयौवना सौ दासियें दूँगा ॥ १८ ॥ अर्जुनके दिखानेवाले पुरुषको यह भी प्रसन्न नहीं कर सकेगा तो वह अपनी इच्छासें जिस वस्तुको चाहेगा वही वस्तु दूँगा ॥ १९ ॥ पुत्र, स्त्रियें, विहारके साधन आदि और जो कुछ भी धन मेरे पास है, उसमेंसे अर्जुनका पता देनेवाला जिस २ वस्तुको अपने चित्तसे पसंद करेगा वही वस्तु मैं उसको दूँगा ॥ २० ॥ जो पुरुष मुझे कृष्ण और अर्जुनका समाचार देगा उसको, कृष्ण और अर्जुन

तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात् केशवार्जुनौ ॥ २१ ॥ एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन् युधि । दध्मौ सागरसम्भूतं सुस्वरं शंखमुत्तमम् ॥ २२ ॥ ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य ह । दुर्योधनो महाराज संहृष्टः सानुगोऽभवत् ॥ २३ ॥ ततो दुन्दुभिनिर्घोषो मृदङ्गानाञ्च सर्वशः । सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निःस्वनः ॥ २४ ॥ प्रादुरासीत्तदा राजन् सैन्येषु पुरुषर्षभ । योधानां संप्रहृष्टानां तथा समभवत् स्वनः ॥ २५ ॥ तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु संवमानं महारथम् । विकत्थमानञ्च तदा राधेयमरिकर्षणम् । मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णावलेपे

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

शल्य उवाच । मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।

को एकसाथ मारकर उनका सब धन देडालूँगा ॥ २१ ॥ युद्ध के लिये यात्रा करते हुए कर्णने इसप्रकार बहुतसी बातें कहीं, फिर उसने सुन्दर ध्वनिवाला समुद्रमेंसे उत्पन्न हुआ उत्तम शंख बजाया ॥ २२ ॥ कर्णकी इन बातोंको सुनकर हे महाराज ! दुर्योधन और उसके साथी बड़े ही प्रसन्न हुए ॥२३ ॥ हे भरतसत्तम ! सेनाओंमें चारों ओर दुन्दुभी और मृदङ्ग बजने लगे बाजोंकी ध्वनिके साथही योधा सिंहोंकी समान दहाड़ने लगे और और हाथी चिंघाड़नेलगे ॥ २४ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजन् ! सेनादलोंमें जहाँ तहाँ योधा भी बड़े प्रसन्न होकर चिल्लाने लगे ॥२५॥ इस प्रकार कौरवसेनामें बड़ा भारी हर्ष छाजाने पर जब राधाके पुत्र महारथी कर्णने आगेको बढ़ते २ अपनी बड़ाई की बातें करना आरंभ कीं, उस समय शत्रुओंको दबानेवाले कर्ण से मद्रराज शल्यने हँसकर यह बात कही ॥ २६ ॥ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

शल्यने कहा, कि-अरे सूतपुत्रकर्ण ! हाथीकी समान

प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनञ्जयम् ॥ १ ॥ बाल्यादिह त्वं त्यजसि वसु वैश्रवणो यथा । अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनञ्जयम् ॥२॥ परासृजसि यद्वित्तं किंचित्त्वं बहु मूढवत् । अपात्रदाने ये दोषास्तान्मोहान्नावबुध्यसे ॥ ३ ॥ यत्त्वं प्रेरयसे वित्तं बहु तेन खलु त्वया । शक्यं बहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥४ यच्च प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहात् वृथैव तत् । न हि शुश्रुम संमर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ ॥५॥ अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो न हि सन्ति ते । ये त्वां निवारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥ ६ ॥ कार्याकार्यं न जानीषे कालपक्वोऽस्यसंशयम् । बह्वबद्धमकर्णीयं

बलवान् तथा रथको खेंचने वाले छः बैलोंसे जुते सोने के रथका दान न कर, तू आज ही धनञ्जयको देख लेगा ॥ १ ॥ अरे कर्ण ! आज तू विनाही उद्योगके अर्जुनका दर्शन पाजायगा फिर तू कुबेरके भण्डारीकी समान मूर्खतावश धन उड़ानेमें क्यों लग रहा है ? ॥ २ ॥ जैसे कोई बुद्धिहीन वृथा ही धन देनेको तयार होजाय तैसे ही तू भी धन लुटाता हुआ मालूम होरहा है, परन्तु कुपात्रको धन देनेसे जो दोष लगते हैं, उन दोषोंको अज्ञानताके कारण तुझे खबर ही नहीं है ॥ ३ ॥ अरे सूत ! तू जो निरर्थक ही बहुतसा धन देनेको तयार होगया है, इतने धनसे तो तू बहुतसे यज्ञ कर सकेगा, इसलिये उस धनसे तू यज्ञ कर अर्थात् अर्जुनके साथ लड़कर मरने की अपेक्षा तो समझकर लौटजा और धर्मके कामकर ॥४॥ तू जो मूर्खताके कारण कृष्ण और अर्जुनको मारडालना चाहता है, यह तेरा विचार भी वृथा ही है, युद्धमें गीदड़ने सिंहोंको मारा हो यह तो हमने कभी सुना ही नहीं ॥ ५ ॥ तू वह काम करना चाहता है, जो हो ही नहीं सकता, मालूम होता है तेरे कोई मित्र नहीं हैं, जो अग्निमें फाँदते हुए तुझको शीघ्र ही रोकें ॥ ६ ॥ कौन काम करने योग्य है और काम न

को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥७॥ समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे बद्ध्वा यथा शिलाम् । गिर्य्यग्राद्वा निपतनं तादृक् तव चिकीर्षितम् ८ सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः । धनञ्जयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत् प्राप्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥ हितार्थं धार्त्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया । श्रद्धत्स्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा १० कर्ण उवाच । स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे । त्वन्तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥ ११ ॥ न मामस्माद्भिप्रायात् कश्चिदद्य निवर्त्तयेत् । अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किमु मर्त्यः कथञ्चन ॥१२॥ सञ्जय उवाच । इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः

करनेयोग्य है, इसका तुझे ज्ञान ही नहीं है, निःसन्देह कालने तुझे (खानेकेलिये) पकालिया है, यदि ऐसा नहीं होता तो क्या कोई जीवित रहना चाहनेवाला मनुष्य ऐसी सर्वथा असंबद्ध और न सुननेयोग्य बातें कहेगा?॥७॥ तू जो कुछ करना चाहता है यह तेरा काम ऐसा है जैसे कोई गलेमें शिला बाँधकर हाथोंसे तैरकर समुद्रके पार होना चाहे अथवा पहाड़की चोटी परसे नीचे को कूदपड़े ॥ ८ ॥ यदि तू अपना भला करना चाहता है तो तू सब योधा और व्यूहरचनामें गुथी हुई सेनाकी रक्षामें रहकर अर्जुनके साथ युद्ध करना ॥ ९ ॥ यह बात मैं तेरी हानि करने के लिये नहीं, किन्तु दुर्योधनके हितके लिये कहरहा हूँ, तू यदि जीवित रहना चाहता हो तो मेरे कहनेके ऊपर विश्वास कर ॥ १० ॥ कर्णने कहा, कि– मैं आजके युद्धमें अपने भुजदण्डोंके पराक्रमके भरोसे पर अर्जुनके साथ लड़नेके लिये ही उसको खोजरहा हूँ,परन्तु तू तो ऊपरसे मित्र बना हुआ मेरा भीतरी शत्रु है, तभी तो ऐसी बातें कहकर मुझे डराना चाहता है ॥ ११ ॥ आज मेरी इस दृढ़प्रतिज्ञासे मुझे कोई भी नहीं पलट सकेगा,चाहे वज्र उठाकर इन्द्र भी चढ़ आवे तो मैं उसकी भी नहीं मानूँगा, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥ १२ ॥ संजयने

प्राहोत्तरं वचः । चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥ १३ ॥
यदा वै त्वां फाल्गुनवेगमुक्ता ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः ।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः शिताग्रास्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात्॥१४॥
यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः प्रतापयन् पृतनां सव्यसाची । त्वां
मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कैस्तदा पश्चात्तप्स्यसे सूतपुत्र ॥ १५ ॥
बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो यथा कश्चित् प्रार्थयतेऽपहर्तुम् ।
तद्वन्मोहात् द्योतमानं रथस्थं त्वं प्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य ॥ १६ ॥
त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं सर्वाणि गात्राणि निघर्षसि त्वम् ।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥ १७ ॥
क्रुद्धं सिंहं केशरिणं बृहन्तं बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी । समा-

कहा, कि- हे धृतराष्ट्र ! ऐसा कहकर ज्योंही कर्ण चुपा, कि- उसको अत्यन्त क्रोध दिलानेके लिये मद्रराजने उत्तर देते हुए फिर यह बात कही कि-॥ १३ ॥ अरे ! जिस समय अर्जुनके फसीले हाथके छोड़े हुए और धनुषकी प्रत्यंचामेंसे निकले हुए, कंक पक्षीके परोंवाले तीखी धारके बाण वेगके साथ तेरे पीछे पड़ेंगे, उस समय तुझे उस वीरके साथ लड़नेका पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा ॥ १४ ॥ जब पार्थ दिव्य धनुष लेकर तेरी सेनाको पीड़ित करता हुआ तेज बाणोंसे तुझे कुचलने लगेगा उस समय ही हे सूतपुत्र कर्ण ! तुझे अपनी मूर्खताके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥ १५ ॥ जैसे माताकी गोदमें लेटाहुआ कोई बालक मूर्खतासे चन्द्रमाको पकड़नेके लिये कहता हो, ऐसे ही तू भी रथमें बैठेहुए तेजस्वी अर्जुनको आज मूर्खतासे जीतलेना चाहता है ॥१६॥ हे कर्ण ! आज तू तलवारकी तेजधारकी समान तीखे कर्म करने वाले अर्जुनके सामने लड़ना चाहता है, इससे प्रतीत होता है, कि- तू अत्यन्त तेज धारवाले त्रिशूलके ऊपर अपने सब अङ्गोंको रगड़नेके लिये उद्यत हुआ है ॥ १७ ॥ जैसे

ह्वयेत्तद्वदेतनावाद्य समाह्वनं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥ १८ ॥ मा सूत-पुत्राह्वय राजपुत्रं महावीर्यं केशरिणं यथैव । वने शृगालः पिशितेन तृप्तो मा पार्थमासाद्य विनंक्ष्यसि त्वम् ॥ १९ ॥ ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम् । शशको ह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥२०॥ बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात् काष्ठेन विध्यसि । महाविषं पूर्णकोपं यत् पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥२१॥ सिंहं केशरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे। शृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पांडवम् २२ सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम् । भोगीवाह्वयसे पाते कर्ण

कोई छोटीसी अवस्था का छोटासा हिरन मूर्खतासे वेगमें भर कर क्रोधसे दहाड़तेहुए केहरी सिंहको अपने साथ लड़नेको बुलाता हो, तैसे ही हे सूतपुत्र कर्ण ! तू भी आज अर्जुनको अपने मरनेके लिये बुला रहा है ॥ १८ ॥ हे सूतपुत्र कर्ण ! तू तो बनचारी और मांसके टुकड़ेसे तृप्त होनेवाले एक गीदड़ की समान है, तू महापराक्रमी केसरी सिंहकी समान राजपुत्र अर्जुनको युद्धके लिये न पुकार, अर्जुनसे मुचैटा होते ही तू माराजायगा ॥ १९ ॥ हे कर्ण ! तू तो एक खरगोशकी समान है अरे ! तू हलके अग्र भागकेसे दाँतोंवाले गण्डस्थलमेंसे मद टपकाने वाले बड़ेभारी हाथीकी समान कुन्तीनन्दन धनंजयको युद्धमें क्यों पुकार रहा है ? ॥ २० ॥ तू महाविषधर और बड़े ही कोपमें भरे हुए अर्जुनके सामने जाकर युद्ध करना चाहता है इससे मालूम होता है, कि तू मूर्खताके कारण बिलमें रहने वाले काले साँपको लकड़ीसे कुरेद रहा है ॥ २१ अरे मूढ़ ! जिसप्रकार गीदड़ कोपमें भरे हुए केहरी सिंहको उलाँघ कर गरजने लगता है,ऐसे ही हे कर्ण ! तू भी युद्धमें अर्जुनको पुकार रहा है ॥ २२ ॥ जैसे साँप, बड़े वेगवाले पक्षियोंके राजा विनतानन्दन गरुड़को मरने के लिये बुलाता हो तैसेही तू

पार्थं धनञ्जयम् ॥ २३ ॥ सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषान्वितम् । चन्द्रोदये विवर्द्धन्तमप्लवः सन्तितीर्षसि ॥ २४ ॥ ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णशृंगं प्रहारिणम् । वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥ २५ ॥ महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि । कामतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥ २६ ॥ यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् । तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥ २७ ॥ शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् । मन्यते सिंहमात्मानं यावत् सिंहं न पश्यति ॥ २८ ॥ तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि । अपश्यन् शत्रुदमनं नरव्याघ्रं

भी अर्जुन को युद्धका निमंत्रण देरहा है ॥ २३ ॥ भयानक, मगरोंसे भरेहुए, गगनचुम्बित पर्वतकी समान उछलती हुई तरङ्गोंवाले, अनेकों नदियोंके जलसे उफनतेहुए और चन्द्रमाके उदयकालमें बढ़तेहुए महासागरको तू बिना ही जहाजके तरजाना चाहता है ? ॥ २४ ॥ रे बच्चा कर्ण ! जैसे कोई बछड़ा नगाड़ेकी समान गर्दन वाले, तीखे सींगोंवाले और प्रहार करते हुए बड़ेभारी बैलको जानबूझकर लड़नेको बुलाता हो तैसे ही तू भी अर्जुनको बुला रहा है ॥ २५ ॥ जैसे मेंडक यथेच्छ वर्षा करनेवाले महाभयानक मेघके सामने को गरजरहा हो तैसे ही तू भी जगत्में बड़े मेघकी समान इच्छानुसार कामना पूरी करनेवाले अर्जुनके सामने गर्जना कररहा है ॥ २६ ॥ जैसे अपने घरमें बैठाहुआ कुत्ता वनमें रहनेवाले व्याघ्रको देखकर भौंकनेलगे, ऐसे ही तू भी नरोंमें व्याघ्रसमान अर्जुनके सामने भौंक रहा है ॥२७॥ हे कर्ण! वनमें रहने वाला गीदड़ भी खरगोशोंके बीचमें रहताहुआ जब तक सिंहको नहीं देखता तब तक अपने आपको सिंह ही समझता है ॥ २८ ॥ तैसे ही हे कर्ण ! जबतक तूने शत्रुओंका दमन करनेवाले, मनुष्योंमें

धनञ्जयम् ॥ २९ ॥ व्याघ्रं त्वं मन्यसेत्मानं यावत् कृष्णौ न पश्यसि । समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३० ॥ यावद्गाण्डीवनिर्घोषं न शृणोषि महाहवे । तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥३१॥ रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश । नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥ ३२ ॥ नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनञ्जयः । वीरप्रद्वेषणान्मूढ तस्मात् क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥ ३३ ॥ यथाखुः स्याद्बिडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले । यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥ ३४ ॥ यथानृतञ्च सत्यं च यथा चापि विषामृते । तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ ३५ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्याधिक्षेप ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

व्याघ्रसमान अर्जुनको देखा नहीं है तब तक ही तू भी अपने आपको सिंहसमान मानरहा है ॥ २९ ॥ एक रथमें बैठेहुए सूर्य और चन्द्रमाकी समान तेजस्वी श्रीकृष्ण और अर्जुनको जबतक तू देखता नहीं है तब तक ही तू अपनेको व्याघ्रसमान मान रहा है ॥ ३० ॥ हे कर्ण ! जब तक तू महासंग्राममें गांडीव धनुषके शब्दको नहीं सुनता है तब तक ही तेरे मनमें आये सो बक सकता है ॥ ३१ ॥ तू जब रथ और धनुषके शब्दोंसे दशों दिशाओंको गुंजारनेवाले तथा सिंहकी समान गर्जना करनेवाले अर्जुनको देखेगा तब तुरन्त ही गीदड़सा बन जायगा ॥३२॥ तू सदाका गीदड़ है और अर्जुन सदाका सिंह है, अरे मूढ़ ! तू वीरके साथ द्वेष करता है इसलिये गीदड़सा मालूम होता है ॥ ३३ ॥ हे कर्ण ! जैसे बलवान्पने और निर्बलपनेमें चूहा और बिलाव, कुत्ता और बाघ, गीदड और सिंह तथा खरगोश और हाथी प्रसिद्ध हैं ॥३४॥ जैसे सत्य और असत्य, विष और अमृत प्रसिद्ध है तैसे ही तुम और अर्जुन भी अपने२ कर्मोंसे जगत्में प्रसिद्ध हो॥३५॥उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।३९।

सञ्जय उवाच । अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा । शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥ १ ॥ कर्ण उवाच । गुणान् गुणवतां शल्य गुणवान् वेत्ति नागुणः । त्वन्तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गणागुणम् ॥ २ ॥ अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् । अहं शल्य विजानामि विक्रमञ्च महात्मनः ॥ ३ ॥ तथा कृष्णस्य माहात्म्यमृषभस्य महीक्षिताम् । यथाहं शल्य जानामि न त्वं जानासि तत्तथा ॥४॥ एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे । जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम् ५ अस्ति चायमिषुः शल्य सुमुखो रक्तभोजनः । एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥ ६ ॥ शेते चन्दनचूर्णेषु पूजितो बहुलाः

संजय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! जब महाबली शल्यने कर्णका इसप्रकार तिरस्कार किया, तब शल्यके शल्यसमान (काँटेकी समान चुभनेवाले) वचनोंको याद करके कर्ण बड़े ही क्रोधमें भरगया और उससे कहने लगा ॥ १ ॥ कर्णने कहा, कि—हे शल्य ! जो गुणी होता है वही गुणीके गुणको जानता है, गुणहीन पुरुष गुणवानके गुणोंको नहीं जानता. तू गुणहीन है, इसलिये गुण वा अवगुणको क्या जानसकता है ॥ २ ॥ मैं महात्मा अर्जुनके बड़े २ अस्त्र, क्रोध, वीरता, बाण, धनुष और पराक्रमको जैसा जानता हूँ तैसा अरे शल्य ! तू नहीं जानता ३ तैसेही पृथिवीके पतियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके माहात्म्यको मैं जैसा जानता हूँ तैसा तू नहीं जानता॥४॥अरे शल्य ! मैं अपने पराक्रमको भी जानता हूँ और अर्जुनके पराक्रमको भी जानता हूँ, इसलिये ही मैं गांडीवधनुषधारी अर्जुनको युद्ध करनेके लिये बुलाता हूँ ॥ ५ ॥ हे शल्य ! मेरा यह सुन्दर परोंवाला बाण रुधिरका भोजन करनेवाला है, अच्छी तरहसे तेज कियाहुआ है तथा बहुत दिनोंसे चन्दनके चूर्णसे इसकी पूजा करके इसको चन्दन

समाः । आहेयो विषवाननुग्रो नराश्वद्विपसंघहा ॥ ७ ॥ घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः । निर्भिन्द्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम् ॥ ८ ॥ तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन् फाल्गुनादृते । कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात् सत्यञ्चापि शृणुष्व मे ॥ ९ ॥ तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनञ्जयौ । योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत् कर्म सदृशं मम ॥ १० ॥ सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता । सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ॥ ११ ॥ उभयं तत् समासाद्य कोऽनिवर्त्तितुमर्हति । तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दनस्थितौ ॥ १२ ॥ मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे । पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ॥ १३ ॥ मणी सूत्र इव

के चूर्णमें ही रक्खा है, यह बाण महाविषधर सर्पकी समान है, यह मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके समूहोंका नाश करनेवाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ महाभयानक है, कवच और शरीरके हाड़ोंको फोड़ डालनेवाला है, यदि मैं क्रोधमें भरजाऊँ तो इस बाणसे बड़ेभारी मेरुपर्वतको भी फोड़डालूँ ॥ ८ ॥ परन्तु अर्जुन और देवकीनन्दन कृष्णके सिवाय और दूसरे किसीके ऊपर मैं इस बाणका प्रयोग कदापि नहीं करूँगा, मेरी इस बातको तू सत्य ही मानना ॥ ९ ॥ हे शल्य ! मैं महाक्रोध करके इस बाणसे कृष्ण और अर्जुनके साथ ही युद्ध करूँगा, क्यों कि- मुझे, मैं जैसा हूँ वैसा ही पराक्रम करना चाहिये ॥ १० ॥ सब वृष्णिवंशी वीरोंकी लक्ष्मी कृष्णके आधार पर है और पांडुके सब पुत्रोंकी विजय अर्जुनके भरोसे पर है ॥ ११ ॥ मेरे सिवाय ऐसा बलवान् कौन है कि-जो इन दोनोंका रणमें मुचैटा लेकर इनको पीछेको हटासके ? हे शल्य ! ऐसे ये दोनों पुरुषव्याघ्र साथ२ एक रथमें बैठकर मुझ अकेलेके सामने लड़नेको आरहे हैं, इस लिये मेरा जन्म कैसे उत्तम कुलमें हुआ है, इस पर तो तू

गोतौ द्रष्टासि निहतौ मया । अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्य-
कपिध्वजौ ॥ १४ ॥ भीरूणां त्रासजननं शल्य हर्षकरं मम ।
त्वन्तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ॥ १५ ॥ भयावतीर्णः
संत्रासादबद्धं बहु भाषसे । संस्तौषि नौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदे-
शज ॥ १६ ॥ तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम् ।
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ॥१७॥ सुहृद् भूत्वा रिपुः
किं मां कृष्णाभ्यां भीषयस्यसि । तौ वा ममाद्य हन्तारौ हनिष्ये
वापि तावहम् ॥ १८ ॥ नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो

अपनी दृष्टि डाल, जैसे एक डोरेमें दो मणियें पिरोई जाती हैं,
तैसे ही प्रेमसूत्रमें बँधेहुए ममेरे फुफेरे इन दोनों अजेय भाइयों को
तू मेरे हाथसे माराहुआ ही देखगा, अर्जुनके पास गांडीव धनुष
है और श्रीकृष्णके पास सुदर्शन चक्र है, एककी ध्वजामें गरुड़
है और दूसरेकी ध्वजामें वानर हनुमान् है, यह सब देखकर
किसी डरपोकको भले ही भय लगे, परन्तु हे शल्य ! मुझे तो
उलटा हर्ष होता है, परन्तु तेरा स्वभाव खोटा है, तू स्वयं मूर्ख है
तथा तुझे महायुद्धका ज्ञान नहीं है ॥ १२–१५ ॥ और तू भयसे
डरजाताहै, इसलिये ही तू घबड़ाकर असंबद्ध बहुत ही बड़बड़ाया
करता है, अरे दुष्ट देशमें रहनेवाले शल्य तू जो उनकी प्रशंसा
करता है ? इसमें कुछ कारण अवश्य है ॥ १६ ॥ हे पापी देशमें
उत्पन्न हुए और क्षत्रिय को कलङ्क लगानेवाले, क्षुद्र तथा दुष्ट-
बुद्धि शल्य ! मैं युद्धमें इन दोनोंको मारडालनेके अनन्तर तुझे
भी तेरे बांधवोंके सहित आजही मार डालूँगा ॥ १७ ॥ तू
मेरा शत्रु होते हुए भी मित्रसा बनकर क्या मुझे कृष्ण और
अर्जुनका भय दिखाता है ? या तो आज मैं इन दोनोंको मार
डालूँगा, नहीं तो वे दोनों ही मुझे मारडालेंगे ! ॥ १८॥ परन्तु
मुझे अपने बलकी अच्छी तरह खबर है, इसलिये कृष्ण और

वलम् । वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ॥ १९ ॥
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्व कुदेशज । स्त्रियो वालाश्च वृद्धाश्च
प्रायः क्रीडागता जनाः ॥२०॥ या गाथाः संप्रगायन्ति कुर्वन्तोऽ-
ध्ययनं यथा । ता गाथा शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥ २१ ॥
ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद्राजसन्निधौ । श्रुत्वा चैकमना मूढ
क्षम वा ब्रूहि चोत्तरम् ॥ २२ ॥ मित्रध्रुङ् मद्रको नित्यं यो नो
द्वेष्टि स मद्रकः । मद्रके सङ्गतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥ २३ ॥
दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः । यावदन्तं हि दौरा-
त्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम्॥२४॥पिता पुत्रश्च माता च श्वश्रश्वशुर-
मातुलाः । जामाता दुहिता भ्राता नप्तान्ये ते च वान्धवाः ॥ २५ ॥

अर्जुनका मुझे जरा भी भय नहीं है, ओ क्षुद्रदेशमें उत्पन्न हुए शल्य! कृष्ण जैसे हजारोंको और अर्जुन जैसे सैंकड़ोको मैं अकेला ही मारडालूँगा, इसलिये तू चुपचाप बैठा रह ओ मूढ़ शल्य! पहले ब्राह्मणोंने दुष्टात्मा मद्रदेशवासियोंके विषयमें राजाओंके पास आकर कथायें सुनाईं थीं, उन कथाओंको स्त्रियें, वालक वृद्ध तथा क्रीड़ामें मग्न हुए मनुष्य कहा करते हैं, उन सब कथाओं को तू मुझसे यथावत् सुन एकाग्रचित्तसे उनको सुनकर या तो तू मुझे क्षमाकर नहीं तो उनका उत्तर दे ॥ १९ ॥ २२ ॥ मद्रदेशका रहनेवाला सदा मित्रोंसे द्रोह करता है, इसलिये जो हमसे द्वेप करता है वह मद्रदेशवासी है, तुच्छ वचन वोलने वाले नराधम मद्रदेशवासीमें सज्जनता तो होती ही नहीं ॥ २३ ॥ मद्रदेशवासी सदा दुष्टात्मा, असत्यभाषी, असत्य व्यवहार करने वाला और कुटिल स्वभावका होता है, मद्रदेशके लोग मरनेके समय तक अपनी कुटिलताको नहीं छोड़ते हैं. ऐसा हमने सुना है ॥ २४ ॥ पिता, पुत्र, माता, सास, सुसर, मामा, जमाई, लड़की, भाई, पोता, वान्धव, मित्र, अभ्यागत, दासी और दास,

वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासञ्च सङ्गतम् । पुंभिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥ २६ ॥ येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा । पीत्वा सीधु सगोमांसं क्रन्दन्ति च हसंति च ॥ २७ ॥ गायन्ति चाप्यवद्धानि प्रवर्त्तन्ते च कामतः । कामप्रलापिनोऽन्योऽन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत् ॥ २८ ॥ मद्रकेष्ववलिप्तेषु प्रख्याताशुभकर्मसु । नापि वैरं न सौहार्द्दं मद्रकेण समाचरेत् २६ मद्रके सङ्गतं नास्ति मद्रको हि सदा मलः । मद्रकेषु च संसृष्टं शौचं गान्धारकेषु च ॥३०॥ राजयाजकयाज्ये च नष्टं दत्तं हविर्भवेत् । शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम् ॥ ३१ ॥ यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् । तथैव सङ्गतं कृत्वा नरः

इसप्रकार स्त्रियें और पुरुष, आपसमें इकट्ठे होकर अपनी इच्छानुसार जाने अनजाने सबके साथ कामक्रीड़ा करते हैं ।२५-२६। हलकी जातिके मद्रदेशवासी सत्तू और मच्छियें खाया करते हैं, मदिरा पीते हैं, गोमांस खाते हैं तथा मदिरासे उन्मत्त होकर चिल्लाते हैं, हँसते हैं ॥ २७ ॥ विना संबंधके गीत गाते हैं, इच्छानुसार विषयसेवन करते हैं और उस समय एक दूसरेके साथ अश्लील वातें भी करते हैं, ऐसोंमें भला धर्म कैसे रहसकता है ? ॥ २८ ॥ मद्रदेशके घमण्डी लोग नीच कर्म करनेके लिये प्रसिद्ध हैं, ऐसे मद्रदेशवासीके साथ वैरभाव या मित्रता कदापि नहीं करनी चाहिये ॥ २६ ॥ मद्रदेशवासियोंमें स्नेह तो होता ही नहीं, मद्रदेशवासी तो सदा मनुष्यका मल है, मद्रदेशवालोंके साथकी हुई मित्रता और गांधारदेशवासियोंमेंकी पवित्रता इस प्रकार निष्फल होती है, जैसे कि—ब्राह्मणका पद लेकर यज्ञ करनेवाले राजाके यज्ञमें दिया हुआ हवि निष्फल होता है, शूद्रको संस्कार करानेवाला ब्राह्मण जैसे पतित होजाता है और ब्राह्मण से द्वेष करनेवाला पुरुष जैसे सदा पराजय पाता है, तैसेही मद्र-

पतति मद्रकैः ॥३२॥ 'मद्रके सङ्गतं नास्ति हतं वृश्चिक ते विषम् । आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया'॥३३॥ इति वृश्चिकदष्टस्य विषवेगहतस्य च । कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते॥३४॥एवम् विद्वन् जोपमास्व शृणु चात्रोत्तरं वचः। वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः ॥ ३५ ॥ मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामचराश्च ताः। तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हसि ॥ ३६ ॥ यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रदशेरकाः । तासां विभ्रष्टधर्माणां निर्लज्जानां ततस्ततः ॥ ३७॥ त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि । सुवीरकं याचमाना मद्रिका

देशवासियोंके साथ मित्रताका सङ्ग करनेसे भी मनुष्य पतित होजाता है ॥ ३०-३२ ॥ किसी भी मनुष्यको जब बीछू काटता है और विषके वेगसे जब उसको पीड़ा होती है, उस समय बुद्धिमान् वैद्य बीछूका विष उतारनेके लिये यह मंत्र पढ़ा करते हैं, कि-हे बीछू ! मद्रकोंके साथ कियाहुआ स्नेह जैसे निरर्थक जाता है, तैसे ही तेरा विष भी निरर्थक (नष्ट) होगया, यह विषकी शान्ति मैंने अथर्ववेदके मंत्रसे की है, इसमें कही हुई बात सत्यसी मालूम होती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अरे शल्य ! तू यह सब जानता है, इसलिये अपनी जीभको बंदकर अथवा मैं जो कुछ कहता हूँ, उसको तू फिर सुन-मद्रदेशकी स्त्रियें मदिरा पीकर मदमत्त होजाती हैं और वस्त्र उतारकर नङ्गी नाचती हैं॥ ३५॥ जीमें आवे उसके साथ विवाह कर लेती हैं यथेच्छ मैथुन कराती हैं, ऐसी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ तू वर्णसङ्कर पुत्र है, ऐसा तू धर्मोपदेश देनेकी योग्यता कैसे रखसकता है ? ॥ ३६ ॥ जिस देशकी स्त्रियें ऊँटनियोंकी समान और गधैयोंकी समान खड़ी२ मूतती हैं, उन निर्लज्ज और धर्मभ्रष्ट स्त्रियोंका तू पुत्र है, इसलिये तू धर्मका उपदेश करनेकी इच्छा

कर्षन्ति स्फिचौ ॥३८॥ प्रदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम् । मा मां सुवीरकं कश्चित् याचतां दयितं मम॥३९॥पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम् । गौर्यो बृहत्यो निर्ह्रीकाः मद्रिकाः कम्बलावृताः ॥ ४० ॥ घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम । एवमादि मयान्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद्बहु ॥४१॥ आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुकर्मसु । मद्रकाः सिन्धुसौवीरा धर्मं विद्युः कथयन्त्विह ॥४२॥ पापदेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः । एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम् ॥ ४३ ॥ यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः । आयुधानां साम्पराये यन्मु-

---

कैसे रखता है ? मद्रदेशकी स्त्रियोंसे कोई जौकी काँजी माँगता है तो वे उस पुरुषको उसकी कमरकी काँलिया भरकर घसीट लेजाती हैं ॥३७॥ ३८ ॥ और प्रसन्न होकर उसको काँजी नहीं देती हैं, किन्तु इसप्रकार दारुण वचन कहती हैं, कि-किसी भी पुरुषको हमारी प्यारी रवड़ी नहीं माँगनी चाहिये ॥ ३९ ॥ मैं पुत्र देदूँ, पति देदूँ, परन्तु काँजी नहीं देसकती, मद्रदेशकी स्त्रियें शरीरमें गोर, ताड़सी लम्बी, निर्लज्ज, धनणा ओढ़नेवाली बहुत भोजन करनेवाली और प्रायः आचारभ्रष्ट होती हैं, ऐसा हमने सुना है, मद्रदेशकी स्त्रियोंके नखसे लेकर शिखापर्यन्तके सब कुकर्मोंको भी मैं बतासकता हूँ तथा और लोग भी बहुतसी बातें कहसकते हैं, ऐसे मद्र, सिंधु और सौवीर देशके पुरुष धर्मको कैसे जानसकते हैं ? ॥ ४०-४२ ॥ जब कि वे स्वयं पापी देशमें उत्पन्न हुए हैं, म्लेच्छ हैं और धर्मके ज्ञानसे शून्य हैं ? हे शल्य ! युद्धमें मरकर सोना और सत्पुरुषोंसे सत्कार पाना यह क्षत्रियका कर्त्तव्य है, ऐसा मैंने सुना है, मेरा पहलेसे ही यह विचार है, कि-शस्त्रोंसे युद्ध करके रणमें अपने जीवनको त्यागदेना चाहिये क्योंकि-मरनेके बादमें मैं स्वर्गमें जाना चाहता

च्येयमहं ततः ॥४४॥ ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः । सोऽहं प्रियः सखा चास्मि धार्त्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ ४५ ॥ तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु । व्यक्तं त्वमप्युपहितः पांडवैः पापदेशज ॥ ४६ ॥ यथा चामित्रवत् सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्त्तसे । कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि ॥ ४७ ॥ संग्रामाद्विमुखः कर्त्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः । सारङ्ग इव घर्मार्त्तः कामं विलप शुष्य च ॥ ४८ ॥ न हि भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः । तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्त्तिनाम् ॥ ४९ ॥ या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे । तेषां त्राणार्थमुद्यन्तं वधार्थं द्विषतामपि ॥ ५० ॥ विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम् । न तद्भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रप ।५१।

हूँ, मैं बुद्धिमान् दुर्योधनका प्यारा मित्र हूँ और मेरे ये प्राण और धन भी उसके ही लिये हैं, परन्तु अरे पापी देशमें जन्म लेनेवाले पुरुष ! मुझे यह निश्चय है, कि–पाण्डवोंने तुझे तोड़लिया है, इसलिये ही तू मेरे साथ पूरे शत्रुकेसा वर्त्ताव कररहा है, परन्तु जैसे नास्तिक धर्मके ज्ञाता पुरुषको धर्मसे विमुख नहीं करसकते, ऐसेही तुझसरीखे सैंकड़ों पुरुष भी मुझे युद्धसे विमुख नहीं करसकते, धूपसे घवड़ाये हुए हिरनकी समान अपनी इच्छानुसार बड़बड़ा और पड़ा २ सूख ॥ ४३–४८ ॥ मैं क्षत्रियके धर्ममें डटा हुआ हूं मुझे कोई भी डरा नहीं सकता,पहिले परशुरामजीने मुझसे कहा था, कि–युद्धमें पीछेको पैर न देनेवाले किन्तु रणमें ही शरीरको त्यागदेनेवाले महान् पुरुषोंको उत्तम गति मिलती है, तू जाने रहना, कि–धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी रक्षा करनेके लिये और शत्रुओंका संहार करनेके लिये पुरूरवाकी समान उत्तम व्रत धारण करके रणमें खड़ा हूं, अरे मद्रराज ! त्रिलोकीमें ऐसे एक प्राणीको भी मैं नहीं देखता, कि–जो मुझे अपने विचारसे

यो मामस्मादभिप्रायाद्वारयेदिति मे मतिः । एवं विद्वान् जोषमास्व
त्रासात् किं बहु भाषसे ॥ ५२ ॥ न त्वां हत्वा प्रदास्यामि क्रव्या-
द्भ्यो मद्रकाधम । मित्रप्रतीक्षया शल्य धार्त्तराष्ट्रस्य चोभयोः ५३
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि । पुनश्चेदीदृशं वाक्यं
मद्रराज वदिष्यसि ॥ ५४ ॥ शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्र-
कल्पया । श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुदेशज ॥ ५५ ॥
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वा निजघान तौ । एवमुक्त्वा तु
राधेयः पुनरेव विशाम्पते ॥ ५५ ॥ अब्रवीन्मद्रराजानं याहि
याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसम्वादे
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

जरा भी डिगासके, इसलिये तू चुपचाप बैठा रह, घबराहटके कारण बुद्धिहीन हुए पुरुषकी समान क्यों बकरहा है ? ४९-५२ अरे नीच मद्रराज ! (अधिक बोला तो) मैं तुझे मारडालूँगा और तेरे टुकड़े२ करके मांसाहारी प्राणियोंको बाँट दूंगा, हे मद्रराज ! तू दुर्योधनका मित्र लगता है और मित्र दुर्योधनका काम करनेके लिये, दुर्योधन और धृतराष्ट्र मुझे दोष देंगे इस भयसे तथा सहनशीलतासे, इन तीन कारणोंसे मैंने तुझे जीता छोड दिया है, परन्तु यदि अब भी तू ऐसी बात कहेगा तो वज्रकी समान गदा मारकर तेरे मस्तकको पृथिवी पर गिरादूँगा, अरे क्षुद्र मद्रदेशमें उत्पन्न हुए शल्य! आज मनुष्य रङ्गभूमिमें ही सुनलेंगे अथवा आँखसे देख लेंगे, कि–कृष्ण और अर्जुनने कर्णको मार डाला है अथवा कर्णनेही उन दोनोंको मारडाला है, ऐसा कह कर हे राजन् ! कर्णने फिर धिक्कार देतेहुए शल्यसे कहा, कि अरे शल्य ! रथको बढ़ा बढ़ा ॥ ५३–५६ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः । शल्योऽब्रवीत् पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः ॥ १ ॥ जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्त्तिनाम् । राज्ञां मूर्द्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः ॥ २ ॥ यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष । तथाद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया ॥ ३ ॥ इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे । श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं निहीनकुलपांसन ॥ ४ ॥ नाहमात्मनि किञ्चिद्वै किल्विषं कर्ण संस्मरे । येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥ ५ ॥ अवश्यन्तु मया वाच्यं बुध्यता त्वद्धिताहितम् । विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥ ६ ॥ समञ्च विषमञ्चैव रथिनश्च बलाबलम् । श्रमः

संजय कहता है, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! युद्धको अभिनन्दन देनेवाले कर्णके ऐसे वचनोंको सुनकर शल्यने फिर कर्णको एक दृष्टांतरूप बात सुनायी ॥ १ ॥ मैं यज्ञ करनेवाले तथा संग्राममें पीछेको पैर न देनेवाले मूर्धाभिषिक्त राजाओंके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मैं स्वयं धर्मात्मा हूं ॥ २ ॥ (तू ऐसा कहता है) परन्तु हे कर्ण ! आज तो तू मदिरा पीकर मतवालासा हुआसा मालूम होरहा है, इसलिये मैं स्नेहवश तुझसरीखे प्रमादीकी चिकित्सा करना चाहता हूं ॥ ३ ॥ हे कुलमें कलङ्क लगानेवाले नीच कर्ण ! मैं तुझे एक कौएकी कथा सुनाता हूं, तू उसको सुन और फिर जैसा तेरे जीमें आवे वैसा करना ॥ ४ ॥ हे महाबाहु कर्ण ! मेरा किसी प्रकारका भी अपराध हो यह मुझे स्मरण नहीं आता, कि-जिसके कारणसे तू मुझसे निरपराधीको मारडालना चाहता है ॥ ५ ॥ परन्तु मैं भले और बुरे कामको समझता हूं, इसलिये किसमें तेरा हित है और किसमें अहित है यह बात मैं तुझे अवश्य बतादेना उचित समझता हूँ, तिसमें भी राजाके सारथीको तो विशेष कर राजाका

खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥७॥ आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम् । भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानाञ्च प्रतिक्रिया ८ अस्त्रयोगश्च युद्धञ्च निमित्तानि तथैव च । सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना ॥ ६ ॥ अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं वचः । वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १० ॥ यज्वा दानपतिः क्षान्तः स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः । बहुपुत्रः प्रियापत्यः सर्वभूतानुकम्पकः ॥११॥ राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः । पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनाम् ॥ १२ ॥ काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः । तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः ॥ १३ ॥ मांसौदनं दधि क्षीरं पायसं मधुसर्पिषी ।

हितैषी ही होना चाहिये ॥ ६ ॥ मैं तेरे इस रथका सारथी हूँ, इसलिये मुझे रथीके सम तथा विषमभावको, उसके बलाबलको, रथी तथा घोड़ोंके परिश्रम और खेदको, आयुधों की विद्याको, पशु पक्षियोंके शब्दोंको तथा युद्धके कामका भार सहज है या कठिन इन सब बातोंको जानना चाहिये, ऐसे ही शरीरमें घुसेहुए शल्योंको बाहर निकालनेके विषयमें, अस्त्रोंका प्रयोग करनेके विषयमें, युद्ध करनेको जाते समय होनेवाले शकुनोंके विषयमें जानकारी होना चाहिये ॥६—६॥ इसलिये हे कर्ण ! मैं तुझे एक कौएकी उपदेशभरी कथा सुनाता हूँ, तू उसको सुन, किसी समय समुद्रके किनारे पर कोई एक वैश्य रहता था, वह बड़ा धनधान्यसंपन्न था, वह वैश्य यज्ञ, दान, तथा अपने धर्म कर्ममें सावधान रहता था, वह क्षमावान् , शुद्ध अन्तःकरणवाला और सब प्राणियोंके ऊपर दयालु था, उसके बहुतसे पुत्र थे और वे सब उसको प्यारे थे, वह धर्मात्मा राजाके देशमें रहता था, इसलिये उसको किसी प्रकारका भय नहीं था, उस वैश्यके छोटी अवस्थाके बालक एक कौएको प्रतिदिन

स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः॥१४॥ सदृशान् पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चावमन्यते। अथ हंसा समुद्रान्ते कदाचिदतिपातिनः१५ गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः। कुमारकास्ततो हंसान् दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन् ॥ १६ ॥ भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहङ्गम ॥ १६ ॥ प्रतार्यमानस्तैः सर्वैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ॥१७॥ तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद्दर्पाच्च मन्यते। तान्सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति ॥ १८ ॥ उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम्। तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ॥ १९ ॥ तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताव इति पक्षिणम्। तच्छ्रुत्वा प्राहसन् हंसा

अपने भोजनमेंसे बचाहुआ मांस भात, दही, दूध दुग्धपाक, मीठा, घी आदि जूठन खिलाकर खेल किया करते थे, वह कौआ भी वैश्यके बालकोंका दिया हुआ उच्छिष्ट अन्न खा खा कर हृष्ट पुष्ट होगया था और घमण्डमें भरकर अपने समान तथा अपनेसे ऊँची जातिके पक्षियोंका अपमान किया करता था, एक समय मानसरोवरमें विहार करनेवाले और बड़ी शीघ्रतासे उड़नेवाले हंस–जो कि–गरुड़कीसी गतिवाले थे उड़ते२ उस समुद्रके किनारे पर आपहुँचे, उन हंसोंको देखते क्षणही वैश्यके लड़कोंने कौएसे कहा, कि–॥ १०–१६ ॥ अरे ओ कौए भाई! आकाशचारी सब पक्षियोंमें तू ही श्रेष्ठ है, तुझसे श्रेष्ठ कोई भी पक्षी नहीं है, इसप्रकार अल्पबुद्धि बालकों ने कौएको खूब उकसाया और कौएने भी मूर्खता तथा अभिमानके कारण उन बालकोंके कहनेको सत्य मान लिया, क्यों कि–वह कौआ बालकोंकी दी हुई जूठनको खा खाकर बड़े घमण्डमें भरगया था, तदनन्तर वह कौआ बड़ी दूर तक उड़सकनेवाले हंसोंमें कौनसा हंस श्रेष्ठ है, यह जाननेकी इच्छासे उन हंसोंके पास गया और एकसे बूझा, कि–अरे! तुम्हारा सरदार कौन

ये तत्रासन् समागताः ॥ २० ॥ भाषतो बहु काकस्य बलिनः
पततां वराः । इदमूचुः स्म चक्राङ्गा वचः काकं विहङ्गमाः ॥ २१॥
हंसा ऊचुः। वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः। पक्षिणाञ्च
वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः ॥ २२ ॥ कथं हंसं नु बलिनं चक्रांगं
दूरपातिनम् । काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते ॥ २३ ॥
कथं त्वं पतिता काक सहास्माभिर्ब्रवीहि तत् । अथ हंसवचो मूढः
कुत्सयित्वा पुनः पुनः । प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघ-
वात् ॥ २४ ॥ काक उवाच । शतमेकञ्च पातानां पतितास्मि न
संशयः । शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा ॥ २५ ॥ उड्डीन-

है ? फिर उस मूर्ख कौएने एक हंसको श्रेष्ठ देखकर उसके पास जाकर कहा, कि–चल, हम दोनों उड़ें, जिससे मालूम होजाय कि–उड़नेमें हम दोनोंमें तेज कौन है, कौए की बातको सुनकर इकट्ठे हुए वे बलवान् हंस हँसपड़े और कौएसे कहने लगे ॥१७–२१॥ हंस बोले कि–अरे ओ कौए ! हम मानसरोवरमें रहनेवाले हंस हैं, पृथिवी पर फिरते २ यहाँ आगये हैं और हम बहुत दूरतक उड़सकते हैं, इसलिये सब पक्षी हमारा सन्मान करते हैं ॥२२॥ अरे दुर्बुद्धि ! तू तो एक कौआ है, फिर बहुत दूर तक उड़सकनेवाले हंसोंको उड़नेके विषयमें क्यों निमंत्रण देता है ? ॥ २३ ॥ बता तो सही तू हमारे साथ कैसे उड़सकेगा कौएने हंसोंकी इस बात को सुनकर उनको दुत्कारा और स्वयं नीच जातिका होनेके कारण अपनी प्रशंसा करताहुआ कहने लगा ॥ २४ ॥ कौआ बोला, कि–तुम इसमें जरा भी सन्देह न करना कि–मैं एक सौ एक प्रकारका उड़ना जानता हूँ, मेरी उड़नेकी गति विचित्र और विविध प्रकारकी है और उस हर एक गतिमें सौ सौ योजन ऊँचे तक उड़ाजासकता है, उन गति-योंके नाम इस प्रकार हैं ॥२५॥ उड्डीन (ऊँची गति), अवडीन

प्रवडीनञ्च प्रडीनं डीनमेव च । निडीनमथ सण्डीनं तिर्यग्डीन-
गतानि च ॥ २६ ॥ विडीनं परिडीनञ्च पराडीनं सुडीनकम् ।
अभिडीनं महाडीनं निर्डीनमतिडीनकम् ॥ २७ ॥ अवडीनंप्रडी-
नञ्च संडीनं डीनडीनकम् । सण्डीनोड्डीनडीनञ्च पुनर्डीनविडी-
नकम् ॥ २८ ॥ सम्पातं समुदीषञ्च ततोऽन्यद्व्यतिरिक्तकम् ।
गतागतं प्रतिगतं वह्वीश्च निकुलीनकाः ॥ २९ ॥ कर्त्तास्मि मिषतां
वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे बलम् । तेषामन्यतमेनाहं पतिष्यामि विहा-
यसम् ॥ ३० ॥ प्रदिशध्वं यथान्यायं केन हंसाः पताम्यहम् । ते

(नीची गति), प्रडीन (चारों ओरकी गति), डीन (साधारण उड़ना) निडीन (धीरे २ उड़ना, संडीन (छटासे उड़ना), तिर्यक्डीन (तिरछा उड़ना) विडीन (विडम्बित उड़ना) परिडीन (सर्वत्र गति), पराडीन (पीछेको उडना) सुडीनक (स्वर्गकी ओरको उडना) अभिडीन (सन्मुखगति), महाडीन (वेगकी गति), निर्डीन (निश्चल-विना अटके उडनेकी गति) अतिडीनक (प्रचण्डगति) अवडीन (धीरे २ ऊपरको उडना) प्रडीन (विचित्रगति), संडीन तथा डीनडीनक (सुन्दरगतिसे उड़नेका आरंभ करके चारों ओरको उड़ २ कर नीचे को उतरना), संडीनोड्डीनडीन (लटकती हुई गतिसे उड़कर ऊपरको चढ़ना),डीनविडीनक (एक चालमें दूसरी चाल दिखाना), संपात (एक क्षणमें उड़कर फिर पीछेको लौटआना), समुदीष (ऊपरके भागमें तथा नीचेके भागमें उड़ना), व्यतिरिक्तक (अमुक स्थान पर पहुँचना है ऐसा सङ्कल्प करके उधरको उड़ते हुए जाना), गतागत (उड़ना और चक्कर खाकर पीछेको आना), प्रतिगत (सामनेको उड़ना), इसप्रकार उड़नेकी बहुत सी रीतियें हैं उनको मैं जानता हूँ ॥२६—२९॥ मैं तुम्हारे सामने ही उन गतियोंमें से तुम जिस गतिसे कहोगे उससे ही आकाश

वै ध्रुवं विनिश्चित्य संपतध्वं मया सह ॥ ३१ ॥ पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये । एवमुक्तं तु काकेन प्रहस्यैको विहङ्गमः ॥३२॥ उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे । हंस उवाच । शतमेकञ्च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहङ्गमाः । तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन ॥ ३४ ॥ पत त्वमपि रक्ताक्ष येन पातेन मन्यसे । अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन् समागताः ॥ ३५ ॥ कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत् । एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिपतिष्यति ३६ हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः । प्रपेततुः स्पर्द्धया च तत-

---

मैं उड़कर दिखाऊँगा, तब तुम देखोगे, कि—मेरा बल कैसा है ॥ ३० ॥ हे हंसों ! तुम मुझसे न्यायके साथ कहो, कि—मैं कौनसी गतिसे उड़ूँ, फिर सिर हिलाकर कहा कि—तुम मनमें निश्चय करके कहना, क्योंकि इस निराधार आकाशमें तुम तो मेरे साथ उड़ोगे ही? बहुतसे पक्षी उड़ते २ गिरभी पड़ते हैं॥ ३१॥ कौएके ऐसा कहनेपर एक हंसने हँसकर कहा, कि—हे कर्ण ! उस हंसकी बात तू मुझसे सुन— हंसने कहा, कि-ओ कौए ! तू एक सौ एक प्रकारका उड़ना जानता है, निःसन्देह तू उन ही उड़ानोंसे उड़ेगा॥३२—३३॥ परन्तु हम सब पक्षी जिस एक प्रकारकी उड़ानको जानते हैं, मैं वैसा ही उड़सकता हूँ. दूसरी किसी प्रकारकी भी उड़ानको मैं नहीं जानता ॥ ३४॥ अरे कौए ! तुझे जो उड़ान पसन्द हो तू उससे ही उड़, यह सुनकर वहाँ इकट्ठे हुए दूसरे बहुतसे कौए हँसपड़े और कहनेलगे, कि—॥ ३५ ॥ यह हंस एक प्रकार की ही उड़ान जानता है, फिर यह सौ प्रकारकी उड़नेकी गतियोंको कैसे जीतसकेगा ? बलवान् कौआ बड़े वेगसे उड़ेगा और सौ उड़ानोंमेंकी एक उड़ानसे हंसकी उड़ानको हरा देगा कौओंमें इसप्रकार बातचीत होनेके कारण हंस और कौआ आपस

स्तौ हंसवायसौ ॥ ३७ ॥ एकपाती च चक्रांगः काकः पातशतेन च। पतिताथाथ चक्राङ्गः पतिता वाथ वायसः ॥३८॥ विस्मापयिषुः पातैराचचक्षाणोत्मनः क्रियाः। अथ काकस्य चित्राणि पतितानि मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरधिकैः स्वरैः। हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ॥ ४० ॥ उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च। वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतंति च ॥ ४१ ॥ कुर्वाणा विविधान् रावानाशंसन्तो जयं तथा। हंसस्तु मृदुनैकेन विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥ ४२ ॥ प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष। अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥४३॥ योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते।

में होड करके उडनेके लिये तैयार होगये ॥३६–३७॥ हंस अपनी एक प्रकारकी गतिसे उडनेलगा परन्तु कौआ भाँति२ की उडानों से देखनेवालोंको आश्चर्यमें डालता हुआ तथा अपनी उडनेकी भिन्न २ रीतियें दूसरोंको दिखाता हुआ आकाशमें उडने लगा, कौएकी अनेकों प्रकारकी उडनेकी रीतिको देखकर दूसरे कौए बारंबार प्रसन्न होते थे और बडे जोरसे काँ काँ करने लगते थे तथा हंसोंको अप्रिय वचन कहते हुए उनका उपहास करते थे३८-४० कौआ बारंबार आकाशमेंको ऊँचा उडकर वृक्षोंकी फुलंचियों पर बैठजाता था और फुलंचियों परसे उडकर फिर भूमिमें बैठजाता था ॥ ४१ ॥ यह देखकर कौए अनेकों प्रकारका काँ काँ शब्द करतेहुए उस कौएकी विजय पुकार रहे थे, हंस तो एक प्रकारकी कोमल गतिसें ही आकाशमें उड रहा था ॥ ४२ ॥ और वह भी एक मुहूर्त भर ही उडा, उसकी गति कौएकी गतिसे कम थी, यह देखकर कौए हंसका अपमान करके कहनेलगे, कि–हंस ऊँचा तो उडा परन्तु कौएकी उडानके सामने हंसकी उडान उतरती हुई है, कौओंकी इस बातको

अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापतत् पश्चिमां दिशम्। उपर्युपरि वेगेन
सागरं मकरालयम्।ततो भीः प्राविशत् काकं तदा तत्र विचेतसम्॥४५
द्वीपद्रुमानपश्यन्तं निपातार्थे श्रमान्वितम्। निपतेयं क्व नु श्रान्त
इति तस्मिन् जलार्णवे॥ ४६॥ अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्व-
गणालयः। महासत्त्वशतोद्भासी नभसोऽपि विशिष्यते॥ ४७॥
गांभीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं हि सूतज। दिगम्बराम्भसः कर्ण
समुद्रस्था विदुर्जनाः॥ ४८॥ विदूरपातात्तोयस्य किं पुनः कर्ण
वायसः। अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च॥ ४९॥
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद्व्यपसर्पितुम्। अतिक्रम्य च चक्रांगः

सुनकर हंस एकसाथ वेगके ऊपर वेग बढ़ाता हुआ पश्चिम दिशाके समुद्रकी ओरको उडनेलगा॥४३॥४४॥कौआ भी उसके साथ ही साथ समुद्रकी ओरको उडनेलगा, दोनों समुद्रके सपाट स्थानमें उडनेलगे, थोडी ही देरमें उडते२ कौआ थकगया, उसने विश्राम लेनेके लिये इधर उधरको देखा, परन्तु समुद्रमें कहीं टापू या वृक्ष उसको नहीं दीखा, कि-जिसपर बैठकर वह विश्राम लेलेय, तब तो उसके मनमें यह भय बैठनेलगा,कि- मैं तो थकगया और अब कहाँ बैठूँगा तथा अगलेही क्षणमें वह किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ होगया४५-४६ हे कर्ण! समुद्रमें असंख्यों प्राणी रहते हैं,समुद्र सैंकडों महाबली प्राणियोंका उत्पत्तिस्थान है, समुद्र आकाशसे भी महाभयङ्कर है, ऐसे दिशारूप वस्त्रसे ढकेहुए महासागरकी गंभीरताको तथा उसके जलके बड़ेभारी प्रवाहको समुद्रके मार्गसे यात्रा करने वाले लोग भी नहीं जानसकते तो फिर विचारा कौआ तो जान ही कैसे सकता था ? वह हंस कौएको लाँघकर उसके आगे निकलगया, परन्तु दयाके कारण उसने उसको सर्वथा नहीं छोड़ा उस कौएको देखनेके लिये वह इधर उधरको दृष्टि डालने लगा और

काकं तं समुदैक्षत ॥ ५० ॥ यावद्‌ गत्वा पतत्येष काको मामिति
चिन्तयन्। ततः काको भृशं श्रांतो हंसमभ्यागमत्तदा ॥ ५१ ॥
तं तथा ह्रीयमानन्तु हंसो दृष्ट्वाऽब्रवीदिदम्। उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं
स्मरन् सत्पुरुषव्रतम् ॥ ५२ ॥ हंस उवाच। बहूनि पतितानि त्वमा-
पत्ताणो मुहुर्मुहुः। पातस्य व्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे५३
किं नाम पतितं काक यत्त्वं पतसि साम्प्रतम्। जलं स्पृशसि पक्षा-
भ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥ प्रब्रूहि कतमे तत्र पाते वर्तसि
वायस। एह्येहि काक शीघ्रं त्वमेष त्वां प्रतिपालय ॥ ५५ ॥
शल्य उवाच। स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च जलं तदा। दृष्टो
हंसेन दुष्टात्मन्निदं हंसं ततोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥ अपश्यन्नम्भसः

मनमें विचार करनेलगा, कि–यह कौआ उड़ता २ थक जायगा तो मेरे पास आवेगा, इस विचारसे हंस कौएकी वाट देखता हुआ ठहरगया, कौआ वहुत ही थक गया था, इसलिये उड़ता २ हंसके पास आया, उस समय थकावटके कारण समुद्रमें गिरनेको ही था, परन्तु सत्पुरुषोंके व्रतको याद करके हंसने समुद्रमें डूवनेको तयार हुए कौएको वचानेका विचार किया और कौएसे कहा ॥ ४७–५२ ॥ हंस वोला कि–अरे कौए! तू मुझसे वार २ वहुतसी उड़ानोंकी वातें वघार रहा था, परन्तु इससमय तू अपनी उड़ानोंको क्यों नहीं दिखाता? ॥ ५३ ॥ अरे कौए! इस समय तू दोनों पंखों और चोंचसे वारंवार जलको क्यों छूरहा है अर्थात् जलमें गोते क्यों खारहा है? यह कौनसे प्रकारकी उड़ान है? अरे कौए! वता तो सही इस समय तू कौनसी उड़ानसे उड रहा है? अरे कौए! जल्दीसे यहाँ आ मैं वहुत देरसे तेरी वाट देख रहा हूँ ॥ ५४ ॥५५॥ शल्य कहता है, कि–अरे दुष्टात्मा कर्ण! उस हंसने कौएको दोनों पंखोंसे और चोंचसे समुद्रके जलमें गोते खाता हुआ और घवडाया हुआ देखा॥५६॥

पारं निपतंश्च श्रमान्वितः । पातवेगप्रमथितो हंसं काकोऽब्रवीदि-
दम् ॥ ५७ ॥ वयं काकाः कुतो नाम चराम काकवाशिकाः ।
हंस प्राणैः प्रपद्ये त्वामुदकान्तं नयस्व माम् ॥ ५८ ॥ स पक्षाभ्यां
स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च महार्णवे । काको दृढपरिश्रान्तः सहसा निप-
पात ह ॥ ५९ ॥ सागराम्भसि तं दृष्ट्वा पतितं दीनचेतसम् ।
म्रियमाणमिदं काकं हंसो वाक्यमुवाच ह ॥ ६० ॥ शतमेकञ्च
पातानां पताम्यहमनुस्मरन् । श्लाघमानस्त्वमात्मानं काक भाषि-
तवानसि ॥ ६१ ॥ स त्वमेकशतं पातं पतन्नभ्यधिको मया ।
कथमेवं परिश्रान्तः पतितोऽसि महार्णवे ॥ ६२ ॥ प्रत्युवाच ततः
काकः सीदमान इदं वचः । उपरिष्ठं तदा हंसमभिवीक्ष्य प्रसाद-

कौएने भी उस समय देखा तो सामने कहीं समुद्रका पार नहीं दीखा और जल्दी २ उडनेसे वह थक भी गया था, इसलिये समुद्रके सपाट मैदानमें वह गिरनेको होरहा था उसने हंससे यह बात कही, कि–॥ ५७ ॥ हम तो कौए हैं, काँ काँ करतेहुए जहाँ तहाँ भटकते रहते हैं, हम उड़नेकी विद्याको कहाँसे जानसकते हैं ? हे हंस ! मैं अपने प्राण तुझे सौंपता हूँ, तू मुझे समुद्रके किसी किनारे पर लेचल ॥ ५८ ॥ ऐसा कहते२ दोनों पंखोंसे और मुखसे महासागरके जलको छूताहुआ अत्यन्त थकजानेके कारण घबड़ाकर एकसाथ गिरपड़ा ॥ ५९ ॥ कौआ समुद्रके जलमें गिरगया, उसका मन उदास होगया तथा वह मरनेकी अनी पर जापहुँचा, यह देखकर हंसने उससे कहा, कि–॥ ६० ॥ अरे कौए ! तू अपनी प्रशंसा करताहुआ कहता था, कि–मैं तो एकसौ एक प्रकारकी उड़ाने जानता हूँ, उस बातको अब याद कर ॥ ६१ ॥ तू एकसौ एक प्रकारकी उड़ान जानता है, मुझसे अधिक बलवान् है, फिर ऐसा थककर समुद्रमें क्यों गिरगया ? ॥ ६२॥ यह सुनकर दुःखसे घबड़ाएहुए कौएने

यन् ॥ ६३ ॥ काक उवाच । उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येत्मानं सुपर्णवत् । अवमन्य बहूँश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः ॥ ६४ ॥ प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम् । यद्यहं स्वस्तिमान् हंस स्वदेशं प्राप्नुयां विभो ॥ ६५ ॥ न कश्चिदवमन्येहमापदो मां समुद्धर । तमेवं वादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम् ॥ ६६ ॥ काक काकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे । कृपयादाय हंसस्तं जलक्लिन्नं सुदुर्दशम् ॥६७॥ पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन पृष्ठमारोपयच्छनैः । आरोप्य पृष्ठं हंसस्तं काकं तूर्णं विचेतनम् ॥ ६८ ॥ आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः । संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरम् ॥ ६९ ॥ गतो यथेप्सितं देशं हंसो मन इवाशुगः ।

अपने ऊपर उड़तेहुए हंसकी ओरको देखकर उसको प्रसन्न करतेहुए कहा ॥६३॥ कौआ बोला, कि—हे हंस ! मैं जूठन खाकर घमण्डमें भरगया था, इसलिये मैं अपनेको गरुड़की समान वेगवान् समझने लगा था और अपनी जातिके कौओंका तथा दूसरे पक्षियोंका अपमान किया करता था ॥ ६४ ॥ परन्तु हे हंस ! इस समय मैं अपने प्राण तुझे अर्पण करता हूँ, मेरा जीवन तेरे हाथमें है, तू मुझे किसी टापूके तटपर पहुँचा दे, हे हंस ! यदि मैं जीता जागता अपने देशमें पहुँच जाऊँगा तो आजसे किसी भी पक्षीका कभी अपमान नहीं करूँगा, तू मुझे इस आपत्तिमेंसे छुटादे, इसप्रकार लाचार बनाहुआ कौआ अचेतसा होकर विलाप करने लगा और काँ काँ शब्द करके समुद्रमें डुबकियें खानेलगा, कौए की ऐसी महादुर्दशाको देखकर उसको समुद्रके जलमें भीगाहुआ देखतेही हंसको दया आगयी, इसलिये अचेतहुए उस कौएको धीरेसे दोनों पंजोंमें उठा अपनी पीठपर बैठाललिया और होड़ बदकर जहाँसे वह कौएके साथ उड़ा था तहाँही आकर उस आत्मप्रशंसी कौएको उसने नीचे उतारदिया, फिर उसको धीरज

एवमुच्छिष्टपुष्टः स काको हंसपराजितः ॥ ७० ॥ बलं वीर्यं महत् कर्ण त्यक्त्वा क्षान्तिमुपागतः । उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा ॥ ७१ ॥ एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्त्तराष्ट्रैर्न संशयः । सदृशान् श्रेयसश्चापि सर्वान् कर्णावमन्यसे ॥ ७२ ॥ द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः । विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा ॥ ७३ ॥ यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना । शृगाला इव सिंहेन क्व ते वीर्यमभूत्तदा ॥ ७४ ॥ भ्रातरञ्च हतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना । पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७५ ॥ तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।

देकर शान्त किया और फिर वह मनकी समान वेगवाला हंस अपनी इच्छानुसार किसी दिशाकी ओरको उड़गया, हे कर्ण ! इसप्रकार पहले वैश्यके घर जूठन खाकर हृष्ट पुष्टहुए कौएको हंसने जब हरादिया तब वह अपने बल और वीरताकी मिथ्या प्रशंसाको त्यागकर शान्त हुआ था ॥ ६५–७१ ॥ इसप्रकारही तुझे भी कौरवोंने जूठन खिलाकर हृष्ट पुष्ट किया है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है और इसलिये ही हे कर्ण ! तू भी अपने समान और अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका अपमान करता है ॥ ७२ ॥ जब विराट नगरके ऊपर चढ़ायी करते समय द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भीष्म तथा और भी बहुतसे कौरव तेरी रक्षा कर रहे थे, उस समय तेरे सामने अकेले आये हुए अर्जुनको तूने क्यों नहीं मारा था ? ॥ ७३ ॥ उस समय जैसे सिंह गीदड़ों को जीत लेता है तैसे ही जब अर्जुनने सब योधाओंको एकसाथ तथा अलग अलग जीत लिया था, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ चलागया था ॥ ७४ ॥ जब अर्जुनने युद्धमें सब कौरव वीरोंके सामने तेरे भाई को मारडाला उस समय तू पहलेसे ही क्यों भागगया था ? ॥ ७५ ॥ और हे कर्ण ! जिस समय द्वैतवनमें गन्धर्वोंने कौरवोंके ऊपर

कुरून् समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७६ ॥ हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान्रणे । कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोत्तयत् ॥ ७७ ॥ पुनः प्रभावः पार्थस्य पौराणः केशवस्य च । कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ॥ ७८ ॥ सततञ्च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः । अवध्यौ वदतोः कृष्णौ सन्निधौ च महीक्षिताम् ॥ ७९ ॥ कियत्ततत् प्रवक्ष्यामि येन येन धनञ्जयः । त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा ॥ ८० ॥ इदानीमेव द्रष्टासि प्रधाने स्यन्दने स्थितौ । पुत्रञ्च वसुदेवस्य कुन्तीपुत्रञ्च पाण्डवम् ॥ ८१ ॥ यथाश्रयत चक्राङ्गः वायसो बुद्धिमाश्रितः । तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवञ्च धनञ्जयम् ॥ ८२ ॥ यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ । द्रष्टास्येकरथे कर्ण

चढ़ायी की थी उस समय भी सब कौरवोंको छोडकर तू पहलेसे ही क्यों भागगया था ? ॥ ७६ ॥ अरे कर्ण ! अर्जुनने ही रणके मुहाने पर खडा रहकर चित्रसेन आदि गन्धर्वों को बडी भारी मारकाटसे जीतकर स्त्रीसहित दुर्योधनको गन्धर्वोंके हाथसे छुटाया था, ॥ ७७ ॥ अरे कर्ण ! परशुरामजीने राजाओंकी सभामें अर्जुन और श्रीकृष्णका प्राचीनकालका प्रभाव कहकर सुनाया था, उसको तूने सुना ही है ! भीष्म और द्रोणाचार्यकी बातें भी तूने सुना हैं, उन्होंने सब राजाओंके सामने कहा था, कि—अर्जुन और श्रीकृष्णको तो कोई मार ही नहीं सकता ॥७८-७९॥ अब मैं तुझे अर्जुनका कौन कौनसा पराक्रम सुनाऊँ ? जैसे सब प्राणियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ऐसे ही अर्जुन तुझसे श्रेष्ठ है ॥ ८० ॥ (धीरज रख) अब ही मुख्य रथमें बैठे हुए वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्ण और कुन्तीनन्दन अर्जुनको तू देखेगा ॥ ८१ ॥ परन्तु 'कौएने जैसे बुद्धिमानीसे काम लेकर हंसका आश्रय लिया था, ऐसे ही तू भी श्रीकृष्ण और अर्जुनका आश्रय ले ॥ ८२ ॥ हे कर्ण ! इस

तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ८३ ॥ यदा शरशतैः पार्थो दर्पं ते वारयिष्यति । तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च ॥ ८४ ॥ देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरोत्तमौ । तौ मावमंस्था मौर्ख्यात्त्वं खद्योत इव रोचनौ ॥ ८५ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ यद्वत्तद्वदर्जुनकेशवौ । प्राकाश्येनाभिविख्यातौ त्वन्तु खद्योतवन्नृषु ॥ ८६ ॥ एवं विद्वन् मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ । नृसिंहौ तौ महात्मानौ जोषमास्स्व विकत्थने ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि हंसकाकीयोपाख्याने
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच । मद्राधिपस्याधिरथिर्महात्मा वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः । उवाच शल्यं विदितं ममैतत् यथाविधावर्जुनवासु-

---

समय तू चाहे सो कहता रह, परन्तु जब रणमें एक रथमें बैठे श्रीकृष्ण और अर्जुनका दर्शन करेगा, उस समय तू ऐसा नहीं कहसकेगा ॥ ८३ ॥ जब अर्जुन सैंकडों बाण मारकर तेरा घमण्ड उतारेगा, उस समय ही तू अपनी और अर्जुनकी असमानता को जानसकेगा ॥ ८४ ॥ पटबीजना जैसे सूर्य और चन्द्रमा का अपमान करता हो (कि मैं इन दोनोंसे बढ़कर हूँ) ऐसे ही तू देवता और असुरोंमें मुख्य माने जाते हुए महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनका मूर्खतासे अपमान न कर ८५ अरे कर्ण ! अर्जुन और श्रीकृष्ण अपने पराक्रमके कारण जगत्में सूर्य और चन्द्रमा की समान प्रसिद्ध हैं और तू तो मनुष्योंमें एक पटबीजनेकी समान है ॥ ८६ ॥ हे कर्ण ! तू श्रीकृष्ण और अर्जुनके स्वरूप को जानता है, इस लिये मनुष्योंमें सिंहसमान महात्मा श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका अपमान करना छोडदे तथा तू अपनी बडाई बघारना भी बंदकर ॥ ८७ ॥ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! मद्रराज शल्यकी

देवौ ॥ १ ॥ शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य । अहं विजानामि यथावदद्य परोक्षभूतं तव तत्तु शल्य २ तौ चाप्यहं शस्त्रभृतां वरिष्ठौ व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ । सन्तापयत्यभ्यधिकन्तु रामाच्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥३॥ अवसं वै ब्राह्मणच्छद्मनाहं रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः । तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो हितार्थिना फाल्गुनस्यैव शल्य ॥४॥ कृतो विभेदेन ममोरुमेत्य प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम् । ममोरुमेत्य प्रविभेद कीटः सुप्ते गुरौ तत्र शिरो निधाय ॥ ५ ॥ ऊरुप्रभेदाच्च महान् बभूव शरीरतो मे घनशोणितौघः । गुरोर्भया-

अप्रिय बातको सुनकर अधिरथीके पुत्र महात्मा कर्णका उसके ऊपरसे विश्वास उठगया, उसने शल्यसे कहा, कि—अर्जुन और श्रीकृष्ण कैसे पराक्रमी हैं, यह बात मुझे अच्छी तरहसे मालूम है ॥ १ ॥ अरे शल्य ! अर्जुनका रथ हाँकनेवाले कृष्णके बलको और अर्जुनके बड़े२ अस्त्रोंको तू नहीं जानता है, परन्तु मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ ॥ २ ॥ उन दोनों बड़े शस्त्रधारी कृष्ण और अर्जुनके साथ मैं ही रणमें निर्भय होकर युद्ध करूँगा, परन्तु ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ परशुरामने मुझे जो शाप दिया है, वह शाप आज मुझे बड़ाही सन्ताप देरहा है ॥ ३ ॥ पहले मैं दिव्य अस्त्रविद्याको सीखनेकी इच्छासे ब्राह्मणके वेशमें परशुरामजीके पास रहा करता था, उस समय अर्जुनका ही हित करनेकी इच्छासे इन्द्रने तहाँ आकर मेरे काममें विघ्न डाला था ॥ ४ ॥ ऐसा प्रसङ्ग आबना, कि एक समय गुरु परशुरामजी मेरी गोदीमें शिर रखकर सोरहे थे, उस समय इन्द्र भौंरेके विरूप शरीरमें घुसकर मेरी जङ्घाके पास आया और उसमें डंक मारदिया ॥ ५ ॥ उसमें से रुधिरकी धार बहने लगी, उस समय मुझे भय लगा, कि—रुधिर पोंछनेको खड़ा होजाऊँ तो गुरुदेवकी निद्रा भङ्ग हो

चापि न चेलितवानहं ततो विबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥ ६ ॥ स धैर्ययुक्तं प्रसमीक्ष्य मां वै न त्वं विप्रः कोऽसि सत्यं वदेति । तस्मै तदात्मानमहं यथावदाख्यातवान् सूतवदेत्य शल्य ॥ ७ ॥ स मां निशम्याथ महातपस्वी संशप्तवान् रोषपरीतचेताः । सूतोपधात्राप्तमिदं तवास्त्रं न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥ ८ ॥ अन्यत्र तस्मात्तव मृत्युकालादब्राह्मणे ब्रह्म न हि ध्रुवम् स्यात् । तदद्य पर्याप्तमतीव चास्त्रमस्मिन् संग्रामे तुमुलेऽतीव भीमे ॥ ९ ॥ योऽयं शल्य भरतेषूपपन्नः प्रकर्षणः सर्वहरोऽतिभीमः । सोऽभिमन्ये क्षत्रियाणां प्रवीरान् प्रतापिता बलवान् वै विमर्दः ॥ १० ॥ शल्योग्रधन्वान-

---

जायगी, इसलिये मैं हिला भी नहीं, परन्तु रुधिरका गीलापन लगते ही गुरुदेव जागउठे और उन्होंने मेरी ओरको देखा तो मैं निश्चिन्त वैठा था, मुझे धीर वीरकी समान बैठा हुआ देखकर परशुरामजीने बूझा, कि—अरे ! तू किस जातिका है ? तू ब्राह्मण नहीं मालूम होता, सत्य बता, हे शल्य ! उस समय मैंने उनको अपनी ठीक सूतजाति बतादी ॥ ६ ॥ ७ ॥ मेरी जातिको जानकर महातपस्वी परशुरामका चित्त क्रोधसे भरगया और उन्होंने शाप देतेहुए कहा, कि—हे सूत ! तेरे मृत्युसमयके सिवाय और सव समय तुझे ब्रह्मास्त्रका स्मरण रहेगा, परन्तु तूने अपनी जातिको छिपाकर ब्राह्मणके कपटवेशमें ब्रह्मास्त्रविद्या सीखी है, इसलिये अपनेप्राणोंकी रक्षा करते समय तुझे ब्रह्मास्त्र का स्मरण नहीं रहेगा ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण न हो ऐसे अन्यजाति के पुरुषमें यह ब्रह्मास्त्र चिरकाल तक नहीं रहता है, इसलिये इस महाभयानक घोर संग्राममें आज मैं उस ब्रह्मास्त्रको भूलगया हूँ ॥९॥ हे शल्य ! आजके संहारमें यह अर्जुन बड़े २ भरतवंशी राजाओंका संहार करेगा और सबका क्षय कर डालेगा, यह बड़ा ही भयानक और प्रचण्ड है और सब शूर क्षत्रियोंको घबड़ा

महं वरिष्ठं तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम् । सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं धनञ्जयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥ ११ ॥ अस्त्रं हि मे तत् प्रतिपन्नमद्य येन क्षेप्स्ये समरे शत्रुपूगान् । प्रतापिनं बलवन्तं कृतास्त्रं तमुग्रधन्वानममितौजसञ्च ॥ १२ ॥ क्रूरं शूरं रौद्रममित्रसाहं धनञ्जयं संयुगेऽहं हनिष्ये । अपाम्पतिर्वेगवानप्रमेयो निमज्जयिष्यन् बहुलाः प्रजाश्च ॥ १३ ॥ महावेगं संकुरुते समुद्रो वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम् । प्रमुञ्चन्तं बाणसंघानमोघान् मर्मच्छिदो वीरहनः सुपत्रान् ॥ १४ । कुन्तीपुत्रं प्रत्र योत्स्यामि युद्धे ज्याः कर्षतामुत्तममद्य लोके । एवं बलेनातिबलं महास्त्रं समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् १५

देनेवाला है ॥ १० ॥ तो भी हे शल्य ! इस महाभयानक युद्धमें उग्रधनुषधारी श्रेष्ठ बलवान् असह्य पराक्रमी, वेगवान् और सत्यप्रतिज्ञावाले अर्जुनको मैं मृत्युके मुखमें पहुँचा दूँगा ॥ ११ ॥ मुझे एक अस्त्र और भी मिला है, उस अस्त्रके प्रतापसे मैं रणमें शत्रुओंके मण्डलका तथा प्रतापी, बली, अस्त्रनिपुण, उग्रधनुषधारी और अपारबली अर्जुनका आज नाश करूँगा ॥ १२ ॥ यद्यपि अर्जुन क्रूर, शूर, भयानक और शत्रुकी मारको सहनेवाला है, तथापि जलोंका अधिपति समुद्र जब प्रजाओंको डुबादेना चाहता है तब बड़े वेगमें भरजाता है ऐसे अपार महासागरको उसका किनारा जैसे रोके रहता है ऐसे ही धनुषके रोदेको खेंचने में श्रेष्ठ अर्जुन जब युद्धमें, वीरोंका संहार करनेवाले, मर्मभेदी और उत्तम परोंवाले बाणोंकी मारामार करेगा उससमय जैसे किनारा ज्वारभाटेसे उबलतेहुए समुद्रको रोके रहता है ऐसे ही मैं भी बड़े २ अस्त्रोंको धारण करनेवाले, दुराधर्ष, उग्र और समुद्रकी समान राजाओंको रणमें डुबोदेने वाले अर्जुनको बाणों की मारसे आगे बढ़नेसे रोकदूँगा और सामने पड़कर उसकी टक्कर लूँगा, युद्धमें धनुष धारण करनेवाले दूसरे किसीको भी

शरौघिणं पार्थिवान्मज्जयन्तं वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये ।
अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ १६ ॥
सुरासुरान् यो युधि वै जयेत तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम् । अती-
वमानी पाण्डवो युद्धकामो ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः ॥ १७ ॥
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य संख्ये बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम् ।
सहस्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम् ॥ १८ ॥ तमो-
नुदं मेघ इवातिमात्रं धनञ्जयं छादयिष्यामि बाणैः । वैश्वानरं धूम-
शिखं ज्वलन्तं तेजस्विनं लोकमिमं दहन्तम् ॥ १९ ॥ मेघो यथा
शरवर्षैस्तथाहं कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि युद्धे । आशीविषं दुर्धरम-
प्रमेयं सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम् ॥ २० ॥ क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं

मैं जिसकी समान नहीं समझता और जो रणमें देवता तथा दानवोंको भी जीतलेता है, उस अर्जुनके साथ आज मैं महाघोर युद्ध करूँगा, उसको तू देखना, अर्जुन बड़ा मानी और युद्धका अभिलाषी है, इसकारण वह मेरे सामने आकर बड़े २ दिव्य अस्त्रोंसे युद्ध करेगा ॥१३-१७॥ और मैं भी रणमें अस्त्रोंसे उसके अस्त्रोंको और उत्तम जातिके बाणोंसे उसके बाणोंके टुकड़े २ करडालूँगा और फिर उसको भी मारडालूँगा, धूपसे सब दिशाओंको तपानेवाले, उग्रताप वाले और प्रकाशसे अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यको जैसे मेघ ढकदेते हैं तैसे ही मैं भी सूर्यके समान प्रचण्ड, प्रतापसे दिशाओं को तपानेवाले तेजस्वी अर्जुनको बाणोंके समूहसे ढकदूँगा, धुएँरूप शिखावाले, तेजस्वी प्रकाशवान् और मृत्युलोकको जलाने वाले अग्निको जैसे मेघ अपने जलसे शांत कर देता है, तैसेही मैं भी तेजस्वी और अग्निकी समान सब लोकोंको ताप देनेवाले अर्जुनको आजके युद्धमें बाण मारकर शान्त करदूँगा, बड़ीही विषैली डाढ़वाले सर्पकी समान दुराधर्ष, अमितबली अग्निकी

महान्तं कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः । प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥ २१ ॥ युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो धनञ्जयं क्रुद्धममृष्यमाणम् । विशारदं रथमार्गेषु शक्तं धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ॥ २२ ॥ लोके वरं सर्वधनुर्द्धराणां धनञ्जयं संयुगे संसहिष्ये । अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ २३ ॥ सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये तथा विद्वन् योत्स्यमानोऽस्मि तेन । यः सर्वभूतानि सदेवकानि प्रस्थेऽजयत् खाण्डवे सव्यसाची ॥ २४ ॥ को जीवितं रक्षमाणो हि तेन युयुत्सेद्व मामृते मानुषोऽन्यः । मानी दृढास्त्रः कृतहस्तयोगो

समान प्रभाववाले क्रोधसे मदोन्मत्त,महान् शत्रुरूप कुन्तीपुत्र अर्जुनको मैं भल्लजातिके बाण मारकर ठंडा करदूँगा,अर्जुन पवनकी समान सबका मथन करनेवाला, बलवान्, उग्र, सहनशील तथा क्रोधी है, मैं रणमें उसके सामने हिमालयकी समान अचल खड़ा रहकर टक्कर झेलूँगा, अर्जुन रथयुद्ध करनेमें चतुर, शक्तिमान्, रणकी धुरीको उठानेवाला, युद्ध करनेमें बड़ा शूर और जगत्के सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ है, तो भी मैं रणमें उसके सामने टक्कर झेलूँगा, आजके युद्धमें मैं धनुष बाण धारण करनेवाले दूसरे किसीको भी अर्जुनकी समान समर्थ नहीं समझता १८-२३॥ जिसने इस सब पृथिवीको विजय किया है उस अर्जुनके साथ रणमें मुठभेड़ा लेकर मैं आज युद्ध करूँगा, जिस अर्जुनने खांडवप्रस्थके पास खांडव वनको जलाते समय देवताओंका और सब प्राणियोंका पराजय किया था, उस अर्जुनके सामने प्राणोंकी भी परवाह न करके मेरे सिवाय दूसरा कौन पुरुष युद्ध करसकता है ? वह अभिमानी, अस्त्रविद्यामें कुशल, बाण चढ़ाने में फुरतीले हाथवाला, दिव्य अस्त्रोंको, छोडना जाननेवाला, श्वेत रङ्गके घोड़ोंवाला और शत्रुओंका नाशक है, ऐसे अतिरथी

दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी ॥ २५ ॥ तस्याहमद्यातिरथस्य कायाच्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः । योऽस्याम्यहं शल्य धनञ्जयेन मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥ २६ ॥ अन्यो हि नाप्येकरथेन मर्त्यो युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम् । तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम् ॥ २७ ॥ किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेताः ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य । अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान् ॥ २८ ॥ हन्यामहं तादृशानां शतानि क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात् । अवोचस्त्वं पाण्डवार्थे प्रियाणि प्रधर्षयन्मां मूढवत् पापकर्मा ॥ २९ ॥ मयार्जवे जिह्मगतिर्हतस्त्वं मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम् । कालस्त्वयं

अर्जुनके तेज किये हुए बाण मारकर उसके शरीर परसे मस्तक को काट गिराऊँगा हे शल्य ! मैं रणमें मृत्यु और विजय दोनों को आगे करके ही अर्जुनके सामने युद्ध करनेको निकला हूँ ॥ २४–२६ ॥ मेरे सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है कि–जो इन्द्रकी समान पराक्रमी अर्जुनके साथ युद्ध करसके । अरे मूर्ख बुद्धिवाले मूढ़ शल्य ! तू मुझे अर्जुनका पराक्रम क्या सुनावेगा ? मैं अपने आपही संग्राममें अर्जुनके पुरुषार्थसे प्रसन्न होकर क्षत्रियोंकी सभामें उसके पराक्रमका बखान करता हूँ, तू तो क्रूर स्वभावका, क्षुद्र, क्षमा करनेवालेका तिरस्कार करनेवाला और क्षमासे शून्य है ॥२७–२८॥ अरे पाप कर्म करनेवाले शल्य! तूने पांडवोंके हितके लिये ही मूर्खकी समान मुझे अप्रिय वचन कहे हैं और मेरा अपमान किया है, परन्तु यदि मैं चाहूँ तो तुझ जैसे सैंकड़ों मनुष्योंको मारडालूँ परन्तु जा ! समयकी ओर ध्यान देकर तेरे ऊपर क्षमा कररहा हूँ ॥ २९ ॥ तुझे तो मेरे साथ सरलताका वर्त्ताव करना चाहिये, उसके बदले मेरे साथ तू यह कपटबुद्धिका वर्त्ताव क्यों करता है ? अरे धिक्कार है ।

प्रत्युपयाति दारुणो दुर्योधनो युद्धमुपागमद् यत् ॥ ३० ॥ तस्यार्थ-सिद्धिं त्वभिकांक्षमाणस्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति । मित्रं मिदे-र्नन्दतेः प्रीयतेर्वा संत्रायतेर्मिनुतेर्मोदतेर्वा ॥ ३१ ॥ ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति तच्चापि सर्वं समवेत्ति राजा । शत्रुः शदेः शास-तेर्वाश्यतेर्वाभृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा ॥ ३२ ॥ उपसर्गाद्बहुधा सूदतेश्च प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम् । दुर्योधनार्थं तव च प्रियार्थं यशोऽर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम् ॥ ३३ ॥ तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ

यदि इस समय मैं तुझे मार डालूँ तो मित्रद्रोही गिनाजाऊँ, सात पग साथ चलनेसे ही मित्रता होजाती है, इस नियमसे तू मेरा मित्र होगया है, अब जो समय आनेवाला है वह बड़ा दारुण होगा, तथापि दुर्योधन स्वयं युद्ध करनेको आगया है॥३०॥ और मैं तो दुर्योधनका काम सिद्ध करनेकी ही अभिलाषा रखता हूँ, परन्तु तू तो खुल्लंखुल्ला शत्रुता दिखला रहा है,कि–दुर्योधनके साथ तेरी शुद्ध मित्रता नहीं है, अर्थात् तू हमारे पक्षका होकर शत्रुओंसे प्रीति रखता है मिद, नदि, प्रीय् सं त्रै, मि और मुद इन सब धातुओं मेंसे मित्र शब्द उत्पन्न होता है स्नेह करना, प्रीतिकरना, अच्छी प्रकारसे रक्षाकरना सन्मान करना और हर्षित करना, मित्र शब्द के ये सब अर्थ मुझमें विद्यमान हैं मैं तुझसे निश्चयके साथ कहता हूँ, कि–ये सब बातें मुझमें हैं और राजा दुर्योधन मेरे सब भाव को जानता है तथा शद्,शास, श्यो, दृ, श्वस, सीद और प्रायः उपसर्ग पूर्वक सीद्धातुमेंसे शत्रु शब्द उत्पन्न होता है, काट डालना आज्ञा चलाना, क्षीण करना, खिन्न करना, नाश करदेना ये शत्रु शब्दके अर्थ हैं, ये सब बातें तुझमें घटती हैं और उनको ही तू मेरे साथ वर्त्त रहा है, तू मेरा मित्र नहीं है, किन्तु शत्रु है, परन्तु मैं दुर्योधनके लाभके लिये. तेरा मित्र करनेके लिये अपने यशके लिये और ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये श्रीकृष्ण और अर्जुन

योत्स्ये यत्नात् कर्म तत् पश्य मेऽद्य । अस्त्राणि परयाद्य ममोच्चमानि ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि ॥ ३४ ॥ आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः । अस्त्रं ब्राह्मयं मनसा तद्धयजय्यं क्षेप्स्ये पार्थायाप्रमेयं जयाय । तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे न चेत् पतेद्विषमे मेऽद्य चक्रम् ॥ ३५ ॥ वैवस्वताद्दण्डहस्ताद्वरुणाद्वापि पाशिनः । सगदाद्वा धनपतेः सवज्राद्वापि वासवात् । अन्यस्मादपि कस्माच्चिदमित्रादाततायिनः ॥ ३६ ॥ इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यतः । तस्मान्न मे भयं पार्थान्नापि चैव जनार्दनात् ॥ ३७ ॥ सह युद्धं हि मे ताभ्यां साम्पराये भविष्यति । कदाचिद्विजयस्याहमस्त्रहेतोरटन्नृप ॥ ३८ ॥

साथ बड़े उद्योगसे युद्ध करूँगा उस मेरे पराक्रमको तू आज देखना तू आज मेरे श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्र, दिव्यास्त्र और मानवास्त्रोंको देखना ३१-३४ जैसे मतवाला हाथी मत्तमातङ्गके सामने युद्ध करनेके लिये चढ़ाई करता है तैसे ही मैं भी प्रचण्डपराक्रमी अर्जुनके सामने जाकर युद्ध करूँगा, मनसे भी जिसका पराजय नहीं किया जा सकता ऐसा ब्रह्मास्त्र आज युद्धमें मैं अपनी विजयके लिये अर्जुनके ऊपर छोड़ूँगा, यदि मेरे रथका पहिया कहीं ऊँचेनीचे स्थानमें नहीं अटका तो अर्जुन मेरे ब्रह्मास्त्रमेंसे नहीं बचसकेगा ॥ ३५ ॥ हे शल्य ! मैं इस ब्रह्मास्त्रके प्रतापसे दण्डधारी यमसे, पाशधारी वरुणसे, गदाधारी कुबेरसे, वज्रधारी इन्द्रसे तथा दूसरे किसी आततायी शत्रुसे भी नहीं डरताहूँ, इसलिये हे शल्य ! तू समझ रख कि—उस अर्जुन वा श्रीकृष्णसे मैं जरा भी नहीं डरता ।३६। ।।३७।। तू मान या न मान, परन्तु आज रणमें उनके साथ मेरा युद्ध अवश्य ही होगा, परन्तु हे शल्य ! एक दूसरी यह चिन्ता होती है, कि—एक समय में विजय करनेके अभिप्रायसे अस्त्रोंका अभ्यास करताहुआ वनमें घूम रहाथा तथा चारोंओरको भयानक

अज्ञानाद्विक्षिपन् बाणान् घोररूपान् भयानकान् । होमधेन्वा वत्सश्चरस्य प्रमत्त इषुणाहतम् ॥ ३९ ॥ चरन्तं विजने शल्य ततोऽभ्युपाजहार माम् । यस्मात्त्वया प्रमत्तेन होमधेन्वा हतः सुतः ४०
श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मां ब्राह्मणोऽब्रवीत् । युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायनं भयम् ॥ ४१ ॥ तस्माद्बिभेमि बलवद् ब्राह्मणव्याहृतादहम् । एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ४२
अदां तस्मै गोसहस्रं बलीवर्दांश्च षट्शतान् । प्रसादं न लभे शल्य ब्राह्मणान्मद्रकेश्वर ॥ ४३ ॥ ईषादन्तान् सप्तशतान् दासीदासशतानि च । ददतो द्विजमुख्यो मे प्रसादं न चकार सः ४४
कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश । आहरन्न लभे तस्मात्

बाण फेंक रहाथा, उसी समय एक ब्राह्मणकी होमधेनुका एक बछड़ा वनमें चररहाथा, उसके मैंने प्रमादसे अनजानमें बाण मार दिया ॥ ३८॥ ३९ ॥ इससे उस ब्राह्मणको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने मुझे शाप दिया कि—तूने उन्मत्त होकर मेरी होमधेनुके बछड़े को मारडाला है, इसलिये संग्राममें युद्ध करते समय तेरे ऊपर एकायकी भय आपड़ेगा और तेरे रथका पहिया गढ़ेमें घुस जायगा, उस ब्राह्मणके शापका भी आज मुझे बड़ा डर लगरहा है, जिनका चन्द्रमा राजा है ऐसे ब्राह्मण सुख तथा दुःख देनेकी शक्ति रखते हैं, जब वह ब्राह्मण मुझे शाप देनेको उद्यत हुआ, उस समय उस ब्राह्मणको उस बछड़ेके बदलेमें मैंने एक सहस्र गौएं और छः सौ बैल देनेकी प्रार्थना की, परन्तु हे मद्रराज शल्य ! उस ब्राह्मणको मैं किसी प्रकार भी प्रसन्न न करसका ॥४०-४३॥ हलके अग्रभागकी समान दाँतोंवाले सात सौ हाथी और सातसौ दासियें देनेको मैं तयार हुआ, तो भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने मेरे ऊपर कृपा नहीं की ॥ ४४ ॥ श्वेत रङ्गके बछड़ोंवाली, श्याम रङ्गकी चौदह हजार गौएं देनेकी भी मैंने प्रार्थना की, तो भी उस ब्राह्मण

प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥४५॥ ऋद्धं गृहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किंचन। तत् सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति ॥ ४६ ॥ ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराधं प्रयत्नतः। व्याहृतं यन्मया सूत तत्तथा न तदन्यथा ॥ ४७ ॥ अनृतोक्तं प्रजां हन्यात्ततः पापमवाप्नुयाम्। तस्माद्धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ॥ ४८ ॥ मा त्वं ब्रह्मगतिं हिंस्याः प्रायश्चित्तं कृतं त्वया। मद्वाक्यं नानृतं लोके कश्चित् कुर्यात् समाप्नुहि ॥४९॥ इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया। जानामि त्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

की प्रसन्नताको पानेका मैं भाग्यशाली नहीं हुआ ॥४५॥ अन्तको सकल कामनाओंसे भरपूर अपना समृद्धिवाला घर तथा मेरे पास जो कुछ भी धन था वह सब देकर उस ब्राह्मणका सत्कार करनेको मैं तयार था, परन्तु उसने उसकी भी इच्छा नहीं की ४६ इसप्रकार जब प्रयत्न करके मैं अपने अपराधके लिये क्षमा माँगने लगा, तब उस ब्राह्मणने कहा, कि–हे सूत ! मैंने तुझे जो शाप दिया है, यह शाप तो मिथ्या नहीं होगा, ऐसा ही होगा ॥ ४७ ॥ असत्य भाषण प्रजाका नाश करता है और मैं भी यदि असत्यभाषण करूँ तो मुझे पातक लगेगा, धर्मकी रक्षाके लिये मैं कभी भी असत्यभाषण करना नहीं चाहता ॥ ॥४८॥ परन्तु तू ब्राह्मण की हिंसा न करना और तूने जो मुझे गौएँ आदिका दान देनेको कहा, इससे तू गोहत्याका प्रायश्चित्त कर चुका है, ऐसा मान कर तू इससे ही सन्तुष्ट होजा मेरे वचनको जगत्‌में कोई भी मिथ्या नहीं कर सकता इसलिये, मैंने तुझसे जो कुछ कहा है उसको तू स्वीकार करले ॥ ४९ ॥ हे राजा शल्य ! यद्यपि तूने मेरा तिरस्कार किया है तो भी मैंने स्नेहके कारण तुझे अपनी सत्य-कथा कह सुनाई

सञ्जय उवाच । ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिन्दमः । अभ्य-
भाषत राधेयः सन्निवार्योत्तरं वचः ॥ १ ॥ यत्त्वं निदर्शनार्थं मां
शल्य जल्पितवानसि । नाहं शक्यस्त्वया वाचा विभीषयितुमा-
हवे॥२॥ यदि मां देवताः सर्वा योधयेयः सवासवाः । तथापि मे
भयं न स्यात् किमु पार्थात् सकेशवात्३नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्-
मात्रेण कथञ्चन । अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे४
नीचस्य बलमेतावत् पारुष्यं यत् त्वमात्थ माम् । अशक्तो मद्र-
गुणान् वक्तुं वल्गसे बहु दुर्मते ॥५॥ न हि कर्णः समुद्भूतो भया-
र्थमिह मद्रक । विक्रमार्थमहं जातो यशोऽर्थञ्च तथात्मनः ॥ ६ ॥
सखिभावेन सौहार्दान्मित्रभावेन चैव हि । कारणैस्त्रिभिरेतैस्त्वं

है, तेरे निन्दक स्वभावको मैं जानता हूँ तथापि तू अब चुप रहकर
मेरा उत्तर फिर सुन ॥ ५० ॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त । ४२ ।

संजय कहता है, कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! शत्रुओंका दमन
करनेवाला कर्ण, मद्रराजसे चुप रहनेके लिये कहकर स्वयं फिर
उसको उत्तर देनेलगा, कि-॥ १ ॥ हे शल्य ! तूने मुझे उदाहरण-
रूपसे एक कथा सुनायी है, परन्तु तू मुझे इस रणमें वातोंसे भय-
भीत नहीं करसकता ॥ २ ॥ अरे ! सब देवता और कदाचित् इन्द्र
भी मेरे साथ युद्ध करनेको आवे तो भी मुझे भय नहीं लगसकता
॥ ३ ॥ मैं केवल शब्दमात्रसे डरनेवाला नहीं हूँ जो तेरी वातोंसे
डर जाय ऐसा तो किसी दूसरेको ही समझना ॥ ४ ॥ तूने जो
मुझे कठोर वचन कहे वस नीच पुरुषका बल इतना ही होता है,
परन्तु अरे दुष्टबुद्धि ! तुझमें मेरे गुणोंका बखान करनेकी तो
शक्ति ही नहीं है, इसलिये ही तू बहुतसी बकवाद करता है,॥५॥
अरे नीच मद्रराज ! कर्ण इस जगत् में डरने के लिये नहीं जन्मा
है, मैं तो अपना पराक्रम दिखाने और अपना यश फैलानेके
लिये उत्पन्न हुआ हूँ ॥६॥ अरे शल्य ! तू अभीतक जो जीता

शल्य जीवसि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥ राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य कार्यं सुमहदुद्यतम्। मयि तच्चाहितं शल्य तेन जीवसि मे क्षणम् ॥ ८ ॥ कृतश्च समयः पूर्वं क्षन्तव्यं विप्रियं वचः। ऋते शल्यसहस्रेण विजयेयं परानहम्। मित्रद्रोहस्तु पापीयानिति जीवसि साम्प्रतम्॥९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसम्वादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

शल्य उवाच। ननु प्रलापाः कर्णैते यान् ब्रवीपि परान् प्रति। ऋते कर्णसहस्रेण शक्यं जेतु परान् युधि॥१॥ सञ्जय उवाच। तथा ब्रुवन्तं परुषं कर्णो मद्राधिपं तदा। परुषं द्विगुणं भूयः प्रोवाचाप्रियदर्शनम् ॥ २ ॥ कर्ण उवाच। इदन्तु ते त्वमेकाग्रः शृणु

बचरहा है, इसके तीन कारण हैं-एक तो मैं तुझे अपना सखा मानता हूँ दूसरे तेरे ऊपर मेरा स्नेह है और तीसरे इससमय तेरे साथ सात पगकी मित्रता होगई है ॥ ७ ॥ राजा दुर्योधनका बड़ा भारी काम करनेको सामने है और उस कामका भार मेरे ऊपर रक्खागया है, इस लिये ही हे शल्य ! तू इतने समयतक जीवित रहा है ॥ ८ ॥ मैं पहले तेरे साथ प्रतिज्ञा करचुका हूँ, कि-जो कुछ अप्रिय भी कहेगा, वह सब मैं सह लूँगा, उस प्रतिज्ञाका पालन करने के कारण ही तू जीवित है, परन्तु तुझसे हजारों शल्य सहायता करनेको आयें तो भी उनकी सहायता न लेकर मैं शत्रुओंका पराजय करसकता हूँ, मित्रसे द्रोह करना बड़ा पाप है, इसलिये ही तू अभीतक जी रहा है ॥ ९ ॥ तितालीसवाँ अध्याय समाप्त ४३

शल्यने कहा कि-हे कर्ण ! तू शत्रुओंके विषयमें जो कुछ भी कहता है, उसको मैं केवल तेरा बड़बड़ाना ही मानता हूँ, मैं तुझ जैसे हजारों कर्णोंके बिनाही शत्रुओंको जीत सकता हूँ ॥ १ ॥ संजयने कहा कि- हे राजा धृतराष्ट्र ! मद्रराजने इस प्रकार कठोर वचन कहे, तब कर्णने उसको अप्रिय (प्रतिपक्षी) समझ लिया

मद्रजनाधिप। सन्निधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥ ३ ॥
देशांश्च विविधांश्चित्रान् पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान्। ब्राह्मणाः कथयन्ति स्म धृतराष्ट्रनिवेशने ॥४॥ तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः कश्चिद् द्विजोत्तमः। वाह्लीकदेशान् मद्रांश्च कुत्सयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
वहिष्कृता हिमवता गङ्गया च वहिष्कृताः। सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि य ॥ ६ ॥ पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः। तान् धर्मबाह्यानशुचीन् वाहीकान् परिवर्जयेत् ॥ ७ ॥
गोवर्द्धनो नाम वटः सुभाण्डं नाम चत्वरम्। एतद्राजकुलद्वारमाकुमारात् स्मराम्यहम् ॥ ८ ॥ कार्येणात्यर्थगूढेन वाहकेषूषितं मया। ततस्तेषां समाचारः संवासाद्विदितो मम ॥ ९ ॥ शाकलं नाम

और फिर उससे पहलेसे भी दूने तीक्ष्ण वचन कहने लगा ॥२॥ कर्णने कहा कि—हे मद्रराज ! मैंने धृतराष्ट्रके सामने कही जाती हुई जो बात सुनी है, आज वह तुझे सुनाता हूँ, इसको तू एकाग्रचित्त होकर सुन ॥३॥ एक समय कितने ही ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रके घर आकर उस राजाको भिन्न २ देशोंकी विचित्र बातें तथा प्राचीनकालके राजाओंकी कथायें सुनाने लगे ॥४॥ उनमेंसे किसी एक वृद्ध ब्राह्मणने पुरानी कथायें सुनाते हुए वाहीक और मद्र देशके लोगोंकी निन्दा करके कहा था कि—॥ ५ ॥जो हिमालय, गङ्गा, यमुना, सरस्वती और कुरुक्षेत्रके बाहर है और जो सिन्ध तथा उसकी शाखायें मानी जानेवाली पाँच नदियोंके मध्यमें आया हुआ है, उस धर्महीन, अपवित्र वाहीक देशके लोगोंका सङ्ग तू कदापि न करना ॥६ ॥ ७॥ मैं बालकपनेसे ही वाहीक देशके राजाओंके द्वारपर खड़े हुए गोवर्धन (गोवधस्थान) नामक वड़को सुभद्र नामक चौतरे(मद्यपीनेके स्थान)को याद किया करता हूँ किसी गुप्तकामके लिये मैंने वाहीक देशमें कुछ थोड़े समय निवास किया था, तबसे उनके आचार विचारों के विषयमें मैं बहुत कुछ

नगरमापगा नाम निम्नगा । जर्त्तिका नाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम् ॥ १० ॥ धानागौडासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह । अपूपमांसवाटानमाशिनः शीलवर्जिता ॥ ११ ॥ गायन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रियो मत्ता विवाससः । नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२ ॥ मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः । अनावृता मथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः॥आहुरन्योऽन्यमुक्तानि प्रब्रुवाना मदोत्कटाः । हे हते हे हतेत्येवं स्वामिभर्तृ हतेति च ॥१४॥ आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यन्ति व्रात्याः पर्वस्वसंयताः । तासां किलाव-

---

जानकार होगया हूँ ॥८॥ ६ जहाँ शाकल नामका नगर और आपगा नामकी नदी है तहाँ आर्त्तिक नामके वाहीक रहते हैं, उनका चरित्र बड़ा ही निंदित है ॥१०॥ वे भुनेहुए जौ, गौड़ी नामकी मदिरा, लहसुन मिला गोमांस और मांस मिले आटेके पुए खाया करते हैं, और उनमें शील तो है ही नहीं॥११॥ इस देशकी स्त्रियें मदिरासे मतवाली तथा नङ्गी होकर शरीर पर चन्दन और पुष्पमालायें धारण कियेहुए नगरमें, अपने घरों में, किलोंमें और बाहरके स्थानोंमें नाचती और गाती हैं ॥ १२ ॥ तहाँकी स्त्रियें मदिरा पीकर मतवाली रहती हैं अपशब्दों वाले अनेकों प्रकारके गीत गा गधे और ऊँटोंकी समान ऊँची तान अलापकर गाया करती हैं,अपने और दूसरे पुरुषोंके सामने नङ्गी फिरा करती हैं,मनमाना विषयसेवन करती हैं ॥ १३ ॥ मदिराके मदसे उद्धत बनकर एक दूसरीसे विनोदके बीभत्स वचन कहती हैं तथा उत्सवके दिनोंमें अत्यन्त उद्धत बनकर अरी लिङ्ग ताडिते ! पतिलिङ्ग ताडिते २ इस प्रकार चिल्ला २ कर नाचती कूदती हैं ॥ १४ ॥ उस देशकी स्त्रियें स्त्रीजातिके धर्मको छोड़ बैठी हैं, अभिमानिनी और दोषोंसे भरीहुई वाहीक देशकी स्त्रियोंके मण्डल में रहनेवाला एक पुरुष कुरु जाङ्गल देशमें जाकर रहनेलगा, एक समय वह मनमें खिन्न

लिप्तानां निवसन् कुरुजाङ्गले ॥ १५ ॥ कश्चिद्वाहीकदुष्टानाग्नातिहृष्टमना जगौ । सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी॥१६॥ मामनुस्मरती शेते वाहीकं कुरुजाङ्गले । शतद्रुकामहं तीर्त्वा तां चरम्यामिरावतीम् ॥ १७ ॥ गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि स्थूलशंखाः शुभाः स्त्रियः । मनःशिलोज्वलापांगचो गौर्यस्त्रिककुदां जनाः १८ कम्बलाजिनसम्वीताः क्रन्दन्त्यः प्रियदर्शनाः । मृदङ्गानकशङ्खानां मर्दलानां च निःस्वनैः ॥ १९ ॥ खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम् । शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ॥ २० ॥ अपूपान्सक्तुपिण्डांश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान् । पथि सुप्रवला भूत्वा कदा सम्पततोऽध्वगान् ॥ २१ ॥ चेलापहारं कुर्वाणस्ता-

---

होकर बड़बड़ानेलगा, कि- ॥ १५ ॥ मैं वाहीक देशका निवासी होकर कुरुजाङ्गल देशमें ही आकर रहने लगा, मोटी ताजी, गौर रङ्गकी, सूक्ष्म कम्बल ओढ़नेवाली मेरी स्त्री, शयन करते समय मुझे याद कर २ कैसी रहती होगी, हाय रे ! मैं रमणीय शतद्रु और इरावती नदीके पार होकर अपने देशमें जा गण्डस्थलकी समान मस्तकके हाड़वालीं, मैनसिल धातुकेसे चमकीले रङ्गके नेत्रकोण में अञ्जन आँजनेवालीं, शाल और मृगचर्म ओढ़ने वालीं, विलाप करती हुई सुन्दर दर्शनीय स्त्रियोंको कब देखूँगा वह कौन समय होगा, कि- मैं मदमत्त होकर गधे ऊँट और खच्चरोंके ऊपर सवार होता हुआ मृदङ्ग भेरी, शंख और झाँझ की ध्वनियोंके साथ उस देशकी स्त्रियोंके संग आनन्द करूँगा ॥ १६ -१९ ॥ शमी, पीलु और करीरके वनोंके सुखदायक मार्गोंमें मट्ठेके साथ पुए और सत्तुओंके लड्डू खाऊँगा तथा हृष्ट पुष्ट होकर मार्गमें जानेवाले बहुतसे बटोहियों के वस्त्रोंको छीनूँगा और उनको पीटूँगा, वह दिन कौनसा होगा ॥ २० ॥ २१ ॥ कौनसा बुद्धिमान् मनुष्य ऐसे दुष्ट चरित्रवाले, संस्कारहीन

डयिष्यामभूयसः । एवं शीलेषु व्रात्येषु वाहीकेषु दुरात्मसु ॥२२॥
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्त्तमपि मानवः। ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता वाही-
का मोघचारिणः ॥२३॥ येषां षड्भागहर्त्ता त्वमुभयोः शुभपा-
पापयोः । इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान् ॥ २४ ॥
वाहीकेष्ववनीतेषु प्रोच्यमानं निबोध तत् । तत्र स्म राक्षसी गाति
सदा कृष्णचतुर्दशीम् ॥ २५ ॥ नगरे शाकले स्फीते आहत्य
निशि दुन्दुभिम् । कदा वाहेयिका गाथाः पुनर्गास्यामि शाकले२६
गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं सुरासवम् । गौरीभिः सह
नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृता ॥ २७ ॥ पलाण्डुगण्डूषयुतान्
खादन्ती चैडकान् बहून् । वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौ-
ष्ट्रिकम् ॥ २८॥ ऐडञ्च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ।
इति गायन्ति ये मत्ता सीधुना शाकलाश्च ये ॥ २९ ॥ सबाल-

दुष्टात्मा वाहीकोंके साथ एक मुहूर्त्तभर भी रहना चाहेगा ? ।२२।
उस ब्राह्मणने धृतराष्ट्रके सामने इसप्रकार दुराचारी वाहीकोंका
वर्णन किया था ऐसे वाहीकोंके पुण्य और पाप दोनोंके छटे
भागको हे शल्य ! तू ग्रहण करता है, उस महात्मा ब्राह्मणने इस
प्रकार कथा कहकर उसने फिर भी अविनयी वाहीकोंके विषयमें
एक कथा कही थी, हे शल्य तू उसको सुन ॥ २३ ॥ २४ ॥
समृद्धिमान् शाकल नगर में एक राक्षसी रहती है वह हरएक कृष्ण
चतुर्दशी के दिन रातमें ढोल बजाकर गाती है, कि—मैं गहनोंसे
सजी हुई, गोमांसके भोजनसे तृप्त हुई गौड़ी सुरा और गुड़के
सरबतको पीकर शलजमके साथ बहुतसा छागमांस खाती २
गौर वर्णकी और ऊँचे शरीरवाली वाहीकदेशकी स्त्रियोंके
साथ वाहीकोंकी गाथाओंका गान कब करूँगी, हे शल्य!मद्रदेशके
निवासी और शाकल मदिरा पीनेसे मदमत्त होकर कहते हैं, कि—
जो शूकर, मुरगा, गौ, गधा, ऊँट और बकरेका मांस नहीं खाते

व्रुद्धः क्रन्दन्तस्तेषु धर्मः कथं भवेत् । इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते॥३०॥यदन्योऽप्युक्तवानस्मान्ब्राह्मणः कुरुसंसदि । पञ्चनद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत ३१ शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा । चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा वहिर्गिरेः३२ आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मान्न तान् व्रजेत्।व्रात्यानां दासमीयानां वाहीकानामयज्वनाम् ॥ ३३ ॥ न देवा प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा । तेषां प्रनष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः ३४ ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधुसंसदि । काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृन्मयेषु च भुञ्जते ॥ ३५ ॥ सक्तुमद्यावलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः । आविकं चौष्ट्रिकञ्चैव क्षीरं गार्दभमेव च ॥ ३६ ॥

उनका जन्म निरर्थक है, ऐसे पुरुषोंमें धर्मकी संभावना कैसे कीजासकती है ? ॥ २५-३१ ॥ हे शल्य ! यह सब तू अच्छी तरह जान रख, एक दूसरे ब्राह्मणने कौरवोंकी सभामें वाहीक देशके अविवेकी लोगोंके विषयमें जो बात हमसे कही था वह मैं तुझे फिर सुनाता हूँ, उसको सुन, हिमालयके बाहरके भागमें जहाँ सिंधु और उसकी शाखारूप शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता नदी वहती हैं और जहाँ पीलुके वन हैं उस देशको आरट्ट कहते हैं, वहाँ धर्मका नाश होगया है, इस कारण उन देशोंमें नहीं जाना चाहिये,जनश्रुति ऐसी है,कि–देवता पितर और ब्राह्मण, उपनयन आदि संस्कारोंसे भ्रष्टहुए धर्महीन यज्ञयागके अनधिकारी तथा घरके दासोंसे मैथुन करा उत्पन्न हुए वाहीक देशके पुरुषोंके हव्य और कव्यको ग्रहण नहीं करते हैं३१-३४ उस विद्वान् ब्राह्मणने सत्पुरुषोंकी सभामें, यह भी कहा था, कि निर्दयी वाहीक कुत्तोंके चाटेहुए तथा सत्तू और मद्यसे सने हुए लकड़ी और मट्टीके पात्रोंमें भोजन करते हैं, भेड़, ऊँटनी और गधैयाका दूध तथा उसमेंसे उत्पन्न हुआ मक्खन, घी आदि खाते

तद्विकारांश्च वाहीकाः खादन्ति च पिबन्ति च । पुत्रसंकरिणो जाल्मा सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥३७॥ आरट्टा नाम वाहीका वर्जनीया विपश्चिता । हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ३८ यदन्योऽप्युक्तवान्मह्यं ब्राह्मणः कुरुसंसदि । युगन्धरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ॥ ३९ ॥ तद्वद्भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति । पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ॥४०॥ आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् । वहिश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ ॥ ४१ ॥ तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः । ते कथं विविधान् धर्मान् ज्ञास्यन्ते हीनयोनयः ॥४२॥ कारस्करान् माहिषकान् कलिङ्गान् केरलांस्तथा । कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥ इति तीर्था-

---

पीते हैं, वे वर्णसङ्कर सन्तानको उत्पन्न करते हैं, कपटी होते हैं, सब प्रकारका अन्न और दूध खालेते हैं, वाहीक ऐसे आरट्ट देश में रहनेवाले हैं, विद्वानोंको इनका त्याग करदेना चाहिये, हे शल्य ! एक शोकजनक बात है, उसको भी तू सुन, मैं फिर भी तुझसे शोकके साथ कहता हूँ, तू उसको सुन ॥ ३५-३८ ॥ एक दूसरे ब्राह्मणने भी मुझसे कौरवोंकी सभामें कहा था, कि-युगन्धर नगरमें दूधका पान, अच्युत नामक स्थानमें निवास और भूतिलयमें स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गमें कैसे जासकता है ? जहाँ पाँच नदियें पहाड़मेंसे निकलकर वहती हैं, उस सब देशका आरट्टक वाहीक नाम जानो, उस देशमें आर्यजातिके पुरुषको दो दिन भी नहीं रहना चाहिये, विपाशा नदीके किनारे पर वहि और हीक नामके पिशाच और पिशाचनी रहते थे, उनसे ही वाहीक उत्पन्न हुए हैं, वे प्रजापतिकी सृष्टिमें ही नहीं हैं, ऐसे नीच जातिके वाहीक वेद शास्त्रमें बताये हुए विविध धर्मोंको कैसे जानसकते हैं? ३९-४२ कारस्कर, माहिषक, कालिङ्ग, केरल, कर्कोटक, वीरक और दुधर्म

नुसर्त्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् । एकरात्रिशयी गेहे महोलूखलमेखला ॥ ४४ ॥ आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम् । ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ वेदा न तेषां वेद्यश्च यज्ञा यजनमेव च । व्रात्यानां दासमीयानामन्नं देवा न भुञ्जते ॥ ४६ ॥ प्रस्थला मद्रगान्धारा आरट्टा नामतः खशाः । वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायेतिकुत्सिताः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

कर्ण उवाच । हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते । उच्यमानं मया सम्यक् त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥ १ ॥ ब्राह्मणः किल नो गेहमभ्यगच्छत्पुराऽतिथिः । आचारं तत्र सम्प्रेक्ष्य प्रीतो

नामके सब देशोंका त्यागही करना चाहिये ॥ ४३ ॥ बड़ीभारी ओखलीकी मेखला पहरनेवाली राक्षसीने किसी तीर्थयात्रा करने वाले पुरुषके अपने घरमें एक रात सोने पर उस मनुष्यको उपदेश दिया था, कि-॥ ४४ ॥ जहाँ अधम ब्राह्मण प्रजापतिकी सृष्टिसे बाहर उत्पन्न हुए हैं, उन सब देशोंका नाम आरट्ट हैं और तहाँ रहनेवाले लोगोंका नाम वाहीक है ॥४५॥ वे वैदिक संस्कारोंसे हीन होते हैं, उनकी स्त्रियोंने उनको दास के समागमसे उत्पन्न किया है, वे वेद, ज्ञान, यज्ञ और यजन कुछ भी नहीं जानते,देवता भी उनके हव्यको ग्रहण नहीं करते,॥४६॥ प्रस्थल, मद्र, गांधार, आरट्ट, खश, वसाति, सिन्धु सौवीर देश प्रायः अत्यन्त निन्दाके योग्य और अपवित्र मानेजाते हैं ॥४७॥ चौंवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

कर्णने कहा, कि-हे शल्य ! शोकके साथ कहता हूँ, कि-तू इस बातका विचार कर और फिर भी मैं तुझसे जो बात कहता हूँ उसको एकाग्रचित्त होकर अच्छी तरह सुन ॥ १ ॥ पहले एक

वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ मया हिमवतः शृंगमेकेनाध्युषितं चिरम् । दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमावृताः ॥ ३ ॥ न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः । सर्वं हि तेऽब्रुवन् धर्मं यदुक्तं वेदपारगैः ॥ ४ ॥ अटता तु ततो देशान्नानाधर्मसमाकुलान् । आगच्छता मद्रराज वाहीकेषु निशामितम् ॥ ५ ॥ तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा पुनर्भवति क्षत्रियः । वैश्यः शूद्रश्च वाहीकस्ततो भवति नापितः ॥६॥ नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः । द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासश्च जायते ॥ ७ ॥ भवन्त्येककुले विप्राः प्रसृष्टाः कामचारिणः । गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाल्पचेतसः ॥ ८ ॥ एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंस्कारकारकम् । कृत्स्नामटित्वा पृथिवीं वाहीकेषु विपर्ययः ॥ ९ ॥ हन्त शल्य विजानीहि

ब्राह्मण मेरे घर अतिथिके रूपमें आया था, वह मेरे आचारको देखकर प्रसन्न हो कहने लगा, कि—॥ २ ॥ मैं अकेला बहुत दिनों तक हिमालयके शिखर पर रहा हूँ और मैंने धर्मसे भरेहुए बहुतसे देश भी देखे हैं ॥ ३ ॥ उनकी प्रजाओंमें भी किसीप्रकार का धर्मका विरोध देखनेमें नहीं आया, फिर मेरे बूझनेपर उन देशोंके मनुष्योंने, वेदके पारङ्गत मनुष्योंने जो २ धर्म कहे हैं वे सब धर्म मुझे सुनाये ॥ ४ ॥ हे महाराज ! फिर मैं अनेकों प्रकार के धर्मोंवाले देशोंमें घूमता२ वाहीक नामक देशमें जापहुँचा, तहाँ मैंने सुना, कि—॥ ५ ॥ वाहीक पहले ब्राह्मण थे, परन्तु पीछे क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और नापित होगये, तहाँ नापितोंमेंसे ब्राह्मण बन बैठता है और ब्राह्मणोंमेंसे दास बनजाता है ६॥७ गांधार, मद्र और वाहीक देशके ओछी समझके ब्राह्मण अपने कुलमेंही विवाह करके सन्तान उत्पन्न करडालते हैं और वे स्वेच्छाचारी होते हैं, मैं सब भूमण्डल पर घूमता २ वाहीकोंके देशमें गया, वहाँ मैंने धर्ममें सङ्करता डालनेवाली यह बात सुनी थी,

वचो भूयो ब्रवीमि ते । यदप्यन्योऽब्रवीद्वाक्यं वाहीकानाञ्च कुत्सितम् ॥ १० ॥ सती पुरा हृता काचिदारट्टात्किल दस्युभिः । अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्याशपत्ततः ॥ ११ ॥ बालां बन्धुमतीं यन्मामधर्मेणोपगच्छथ । तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति बन्धक्यो वै कुलस्य च ॥ १२ ॥ न चैवास्मात्प्रमोक्ष्यध्वं घोरात्पापान्नराधमाः । तस्मात्तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः ॥ १३ ॥ कुरवः सह पञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः । कोसलाः काशपौण्ड्राश्च कालिङ्गा मागधास्तथा ॥ १४ ॥ चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम् । नानादेशेष्वसन्तश्च प्रायो बाह्यनयादृते ॥ १५ ॥ आमत्स्येभ्यः कुरुपाञ्चालदेश्या आनैमिषाच्चेदयो येऽवशिष्टाः । धर्मं पुराण-

---

वहाँ मैंने धर्म उलटा ही देखा ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे शल्य ! इस बात को तू खेदके साथ ध्यानमें रख तथा दूसरे एक ब्राह्मणने वाहीकोंके विषयमें खोटी बात कही है, जो कि–मैं तुझे सुनाता हूँ, उसको सुन ॥ १० ॥ पहले चोर आरट्ट देशमेंसे किसी एक सती स्त्रीको उठाकर लेगये और उन्होंने उसके ऊपर अधर्मसे बलात्कार किया, तब उस स्त्रीने उन चोरोंको शाप दिया ॥ ११ ॥ कि–मैं बालक अवस्थाकी और बांधवोंवाली स्त्री हूँ, तुम मेरे ऊपर बलात्कार करनेको तयार होगये हो, इसलिये जाओ आज से तुम्हारे कुलकी स्त्रियें व्यभिचारिणी होंगी ॥ १२ ॥ अरे नराधमो ! तुम इस घोर पापमेंसे कभी भी नहीं छूटोगे, उस स्त्रीके शापके कारण ही अब भी आरट्ट देशमें उत्पन्न होनेवाले पुत्र पैतृक सम्पत्तिके भागीदार नहीं होते, किन्तु बहिनका लड़का भागीदार होता है ॥ १३ ॥ कुरु, पांचाल, शाल्व मत्स्य, नैमिष, कोसल, काशी, अङ्ग, कलिङ्ग मगध और चेदी देशके महाभाग्यशाली लोग अर्थात् वाहीकोंके सिवाय और बहुतसे देशोंके लोग प्रायः सनातनधर्मको जानते हैं ॥ १४–१५ ॥ और मत्स्यदेशसे लेकर कुरु

मुपजीवन्ति सन्तो मद्राद्दते पाञ्चनदाश्च जिह्मान् ॥ १६ ॥ एवं विद्वान् धर्मकथासु राजंस्तूष्णीं भूतो जडवच्छल्य भूयः । त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा षड्भागहर्ता शुभदुष्कृतस्य ॥ १७ ॥ अथवा दुष्कृतस्य त्वं हर्ता तेषामरक्षिता । रक्षिता पुण्यभाग्राजा प्रजानां त्वं ह्यपुण्यभाक् ॥ १८ ॥ पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते । धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः ॥ १९ ॥ व्रात्यानां दासमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम् । ब्रह्मणा निन्दिते धर्मे स त्वं लोके किमब्रवीः ॥ २० ॥ इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः । स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु सोऽप्येतान्नभ्यपूजयत् ॥ २१ ॥

तथा पांचाल देशके लोग, ऐसे ही नैमिषारण्यसे लेकर चेदी देश तकके शिष्ट पुरुष ही प्राचीन सनातनधर्मका आचरण करके अपना अपना जीवन विताते हैं,केवल मद्र और पंजाब देश के कपटी लोग ही सनातनधर्मका पालन नहीं करते ॥ १६ ॥ हे राजा शल्य ! तू इस बातको जानता है, इसलिये धर्मसंबन्धी बातोंमें तू गूँगे मनुष्य की समान चुप होगया है, क्यों कि--तू मद्रदेशके लोगोंकी रक्षा करने वाला राजा है और उनके पुण्य पापके छठे भागका भोक्ता है ॥१७॥ अथवा यदि तू उनकी रक्षा न करे तो उसके पापका भागी होजाय और यदि उनकी रक्षा करता हो तो उनके पुण्यका भागी होय. परन्तु मद्रदेशकी प्रजा पुण्यहीन है इसलिये तू तो प्रजाके पापको ही भोगता है ॥ १८ ॥ एक समय जब सब देशोंके सनातनधर्मकी प्रशंसा होनेलगी तब ब्रह्माने पंजाबके लोगोंके धर्मको देखकर उनको धिक्कार दिया था ॥१९॥ सत्युगमें भी अधर्म करनेवाले, संस्कारहीन और दाससे उत्पन्न हुए उन लोगोंके धर्म की ब्रह्माने स्वयं ही निन्दा की है फिर तू संसारके सामने क्या कह सकता है ? ॥ २० ॥ ब्रह्माने पंजाब देशके धर्मका अपमान ही किया है, सब वर्ण

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते। कल्माषपादः सरसि निमज्जन् राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥ क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्। मलं पृथिव्या वाहीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम् ॥ २३ ॥ निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद्राजा निशाचरम्। आपृच्छत्तेन चाख्यातं प्रोक्तवांस्तन्निबोध मे ॥२४॥ मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानामौष्ट्रिकं मलम्। औष्ट्रिकाणां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः ॥ २५ ॥ राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणाञ्च यन्मलम्। तद्भ भवेद्वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥ २६ ॥ इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च। राक्षसं भेषजं प्रोक्तं संसिद्धि-

---

अपने २ वर्ण धर्मका आचरण करते हैं, परन्तु मद्र और वाहीक देश उसके विरुद्ध ही चलता है, इस लिये ब्रह्माने उस देशके निवासियों की प्रशंसा नहीं की ॥ २१ ॥ हे शल्य! तू इस बातको खेदके साथ ध्यानमें रखना, और अब भी मैं जो तुझसे खेदके साथ कहता हूँ उसको तू सुन, पहले एक कल्माषपाद नामके राक्षसने सरोवरमें डूबते २ कहा था, कि—॥ २२ ॥ भिक्षा क्षत्रिय के लिये मलरूप है, ब्रह्मचर्य आदि व्रतको धारण न करना ब्राह्मण का मल गिना जाता है, पृथ्वीका मल वाहीक है और स्त्रियोंका मल मद्रदेशकी स्त्रियें हैं॥२३॥ वह राक्षस समुद्रमें डूबा जाता था उसको एक राजाने वाहर निकालकर बूझा, तब उसने राजासे जो कुछ कहा, वह भी कहता हूँ, उसको सुन ॥ २४ ॥ मनुष्योंका मल म्लेच्छ है, म्लेच्छोंका मल तेली है, तेलियोंका मल नपुंसक है, राजाओंका होकर यज्ञ करानेवाला उनका भी मल है, उन नीचों में भी मद्रदेशके लोग बहुत बुरा मल गिने जाते हैं, तू मुझे नहीं छोड़ेगा तो तुझे भी वही पाप लगेगा (अर्थात् मद्रदेशवाले बड़े पापी हैं) ॥ २५ ॥ २६ इस प्रकार राक्षसके उपद्रवसे तथा विषके प्रभावसे प्रजाका नाश

वचनोत्तरम् ॥ २७ ॥ ब्राह्मं पाञ्चाला कौरवेयास्तु धर्मं सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम् । प्राच्यदासा वृषला दाक्षिणात्याः स्तेना बाह्लीकाः संकरा वै सुराष्ट्राः ॥ २८ ॥ कृतघ्नता परवित्तापहारो मद्यपानं गुरुदारावमर्दः । वाक्पारुष्यं गोवधो रात्रिचर्या बहिर्गेहं परवस्त्रोपभोगः ॥ २९ ॥ येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्मो ह्यारट्टानां पञ्चनदान् धिगस्तु । आपाञ्चालेभ्यः कुरवो नैमिषाश्च मत्स्याश्चैवेतेऽप्यथ जानन्ति धर्मम् ॥ अथोदीच्याश्चाङ्गका मागधाश्च शिष्टान् धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः ॥ ३० ॥ प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः । दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन

होनेलगे उस समय सिद्ध पुरुषका राक्षसको नष्ट करनेवाला जो यह वचन कहा है, इसको पढ़नेसे वह दुःख मिटजाता है ॥२७॥ पंचालके लोग वेदधर्मका आश्रय लेनेवाले हैं, कुरुदेशके लोग दानधर्मका आश्रय लेते हैं, मत्स्यदेशके लोग सत्यधर्मका अवलम्ब लेते हैं, शूरसेन देशके लोग यज्ञ याग करते हैं, पूर्वदेशके लोग दासकर्म करते हैं, दक्षिणके लोग वृषल हैं, बाह्लीक देशके लोग चोर हैं और सौराष्ट्रके लोग वर्णसङ्कर हैं ॥ २८ ॥ कृतघ्नता, दूसरे का धन छीन लेना, मदिरा पीना, गुरुपत्नीके साथ सहवास करना गालीगलौच करना, गोहत्या, रात्रिमें बाहर फिरकर लम्पटपना करना तथा दूसरेके वस्त्र पहरलेना, इतनी बातोंको जो धर्म मानते हैं उनमें भी आरट्टदेशसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है॥२९॥ इन आरट्टदेशके लोगोंको तथा पंचनददेशके लोगोंको धिक्कार है, पंचालदेशसे लेकर कुरुनैमिष और मत्स्यदेश पर्यंत सब देशोंके लोग धर्मको यथावत् जानते हैं, उत्तरदेश, अङ्गदेश और मगधदेशके वृद्ध लोग यद्यपि स्वयं धर्मके तत्त्वको नहीं जानते हैं, परन्तु वे शिष्टोंके धर्मका आचरण करते हैं ॥ ३० ॥ अग्नि आदि देवता पूर्व दिशाकी रक्षा करते हैं, पितृगण पुण्य कर्म करनेवाले प्रेतपतिसे

शुभकर्मणा ॥३१॥ प्रतीचीं वरुणः पाति पालयानः सुरान् बली। उदीचीं भगवान् सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति ॥३२॥ तथा रक्षः-पिशाचाश्च हिमवन्तं नगोत्तमम्। गुह्यकाश्च महाराज पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ३३ ॥ ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुः पाति जनार्दनः। इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः॥३४॥ अर्धोक्ताः कुरुपञ्चालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः। पार्वतीयाश्च विषमा यथैव शिवयस्तथा ॥ ३५ ॥ सर्वज्ञा यवना राजन् शूराश्चैव विशेषतः। म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्तमितरे जनाः ॥३६॥ प्रतिरब्धास्तु वाहीका न च केचन मद्रकाः। स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरं

रक्षा की हुई दक्षिणदिशाका पालन करते हैं, बलवान् और सब देवताओंका पालन करनेवाला वरुणदेव पश्चिमदिशा का पालन करता है और भगवान् चन्द्रदेव ब्राह्मणमण्डलीको साथमें लियेहुए उत्तर दिशाका पालन करते हैं ॥ २१ ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार पिशाच और निशाचर गिरिराज हिमाचलका, गुह्यक गन्धमादन पर्वतका और सनातन जनार्दन विष्णुभगवान् सब प्राणियोंका पालन करते हैं, मगधदेशके लोग इशारे सेही परखे जाते हैं, कोसलदेशके लोग दिखावेसे परखे जाते हैं, कुरु पंचालदेशके लोग आधी बातसे परख लिये जाते हैं तथा शाल्वदेशके लोग पूरी २ बात कहते हैं तब ही परखे जाते हैं, हे राजन् ! शिवि देशके लोग पहाड़ी लोगोंकी समान मूर्ख होते हैं, यवन सर्वज्ञ और विशेषकर शूर होते हैं, म्लेच्छ अपने सङ्केतके आधीन होकर वर्त्ताव करते हैं तथा इनके सिवाय और जो लोग हैं वे बिना कहे बातको समझ ही नहीं सकते, ऐसे मूढ़ होते हैं ॥ ३३-३६ ॥ वाहीकदेशके लोग अपने हितू पुरुषोंके प्रतिकूल वर्त्ताव करते हैं, परन्तु मद्रदेशके लोग तो किसीप्रकार बात का मर्म समझही नहीं सकते, हे शल्य ! तू भी ऐसा ही है,

वक्तुमर्हसि । पृथिव्यां सर्वदेशानां मद्रको मलमुच्यते ॥ ३७ ॥ सीधोः पानं गुरुतल्पावमर्दो भ्रूणहत्या परवित्तापहारः । येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्म आरट्टजान्पञ्चनदान् धिगस्तु ॥३८॥ एतज्ज्ञात्वा जोषमास्व प्रतीपं मास्म वै कृथाः। मा त्वां पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥ शल्य उवाच । आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः । अंगे प्रवर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥ ४० ॥ रथातिरथसंख्यायां यत्त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत् तान् विदित्वात्मनो दोषान्निर्मन्युर्भव मा क्रुधः ॥ ४१ ॥ सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः । वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः ॥ ४२ ॥ रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः

क्योंकि–तुझमें उत्तर देनेकी योग्यता नहीं है, पृथिवी पर सब देशोंका मलरूप कोई पापी देश है तो वह मद्रदेश ही है ॥३७॥ मदिरापान, गुरुपत्नीके साथ गमन, गर्भहत्या, दूसरोंका धन चुराना, ऐसी बातोंको जो धर्म मानते हैं, उन आरट्ट देशके निवासियोंको तथा पञ्चनदके लोगोंको धिक्कार है, वे इनमेंकी किसी बातको अधर्म मानते ही नहीं ॥ ३८ ॥ यह समझकर तू चुपचाप बैठा रह, मेरे साथ विरुद्धता न कर, नहीं तो मैं पहले तुझे मारकर पीछेसे कृष्ण और अर्जुनको मारूँगा ॥३९॥ शल्यने कहा, कि–अरे कर्ण ! जिस अङ्गदेशके ऊपर तू राज्य करता है, उस अङ्गदेशमें रोगसे पीड़ित हुए अपने सम्बन्धियोंको त्याग दिया जाता है और अपनी स्त्री तथा पुत्रोंको खुले बाजार बेचा जाता है ॥ ४० ॥ इस दुर्गुणके कारणही भीष्मजीने रथी और अतिरथियोंकी गिनती करते समय तुझे निकाल दिया था, उस बातको तू याद कर और अपने दोषों पर ध्यान देकर क्रोध न कर, किन्तु शान्त हो ॥ ४१ ॥ हे कर्ण ! जैसे सब देशोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र रहते हैं, ऐसेही सब देशोंमें

पुरुषैः सह । अन्योऽन्यमवरक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥ ४३ ॥ परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा । आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति ॥ ४४ ॥ सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः। दुर्मनुष्यान्निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः॥४५॥ न कर्ण देशसामान्यात्सर्वः पापं निषेवते । यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः ॥ ४६ ॥ सञ्जय उवाच । ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत् । सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च ॥४७ ॥ ततो निवारितः कर्णो धार्त्तराष्ट्रेण मारिष । कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्यऽप्यभिमुखः परान् । ततः प्रहस्य राधेयः पुनर्याहीत्यचोदयत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

सदाचारवाली पतिव्रता स्त्रियें भी रहती हैं ॥ ४२ ॥ हरएक देशमें पुरुषोंके साथ ही उपहास करके क्रीडाकरनेवाले मनुष्य रहते हैं ऐसे ही एक दूसरेके मर्मको पीड़ा देनेवाले तथा मैथुन करनेवाले पुरुष भी रहतेहैं ॥ ४३ ॥ सदा दूसरा की निन्दा करनेमें सब ही मनुष्य प्रवीण होते हैं और अपने दोषको तो कोई देखता ही नहीं तथा देखने पर भी ऐसे भोले वन जाते हैं, कि-मानो जानते ही नहीं ॥ ४४ ॥ सब देशोंमें अपने धर्मका पालन करनेवाले राजे हैं और वह दुष्ट मनुष्योंको दण्ड भी देते हैं तथा सब देशोंमें धार्मिक मनुष्य भी रहते हैं ॥ ४५ ॥ अरे कर्ण! एक देशमें साथ२ रहनेवाले सब मनुष्य पापी नहीं होते हैं, बहुत से देशोंमें ऐसे सदाचारी भी होते हैं, कि-जो अपने सच्चरित्र के कारण देवताओंसे भी श्रेष्ठ होते हैं ॥ ४६ ॥ संजय कहता है, कि-इसप्रकार कर्ण और शल्यको लड़ते देखकर दुर्योधनने कर्णको मित्रभावसे और शल्यको हाथ जोड़कर लड़नेसे रोका४७

सञ्जय उवाच। ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतम्। समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम् ॥१॥ प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च। वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥२ वेपमान इव क्रोधाद्युद्धशौण्डः परन्तपः। प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावदरतर्षभ ॥३॥ व्यधमत् पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव। युधिष्ठिरञ्चाभ्यहनदपसव्यञ्चकार ह ॥४॥ धृतराष्ट्र उवाच। कथं सञ्जय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान्। धृष्टद्युम्नमुखान् सर्वान् भीमसेनाभिरक्षितान् ॥५॥ सर्वानेव महेष्वासानजय्यानमरैरपि।

हे राजन्! जब दुर्योधनने कर्णको लड़नेसे रोका तब फिर कर्णने उत्तर नहीं दिया और शल्य शत्रुओंकी ओरको मुख करके रथकी अगली बैठक पर बैठ गया, तब कर्णने एक बार फिर हँसकर शल्यसे कहा, कि-रथको आगेको बढ़ा॥ ४८ ॥ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

संजय कहता है, कि–हे महाराज! युद्ध करनेमें चतुर और शत्रुओंको ताप देनेवाले महातेजस्वी कर्णने पाण्डवोंके बनायेहुए और धृष्टद्युम्नके रक्षा कियेहुएहुए, शत्रुकी सेनाके सामने टक्कर झेलनेवाले अनुपम व्यूहको देखा और रथकी घरघराहटके साथ सिंहकी समान गरजताहुआ तथा बाजोंकी गर्तोको सुनता और भूमण्डलको कम्पायमान करताहुआ शत्रुसेनाके सामनेको रणमें बढ़ता चलागया, क्रोधसे काँपनेहुए इन्द्रने जैसे सामने व्यूह बना कर आसुरी सेनाका संहार किया था तैसेही कर्णने भी क्रोधके आवेशमें आकर सामने व्यूह रचा और पांडवोंकी सेनाका संहार करतेहुए बाणोंके प्रहारसे युधिष्ठिरको अपने दाहिनी ओर लाडाला ॥ १–४॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि–हे संजय! धृष्टद्युम्न जिनके मुहाने पर खड़ा था, भीमसेन जिनकी रक्षा कररहा था, और जिनको देवता भी नहीं जीत सकते थे ऐसे पांडव तथा

के च पक्षौ प्रपक्षौ वा मम सैन्यस्य सञ्जय ॥ ६ ॥ प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः । कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान् ॥ ७ ॥ कथञ्चैव महद्युद्धं प्रावर्त्तत सुदारुणम् । क्व च बीभत्सुरभवत् यत् कर्णोऽयाद् युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥ को ह्यर्जुनस्य सान्निध्ये शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम् । सर्वभूतानि यो ह्येकः खाण्डवे जितवान् पुरा । कस्तमन्यस्तु राधेयात् प्रतियुध्येज्जिजीविषुः ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथागतः । परिवार्य नृपं स्वं स्वं संग्रामश्चाभवद्यथा ॥ १० ॥ कृपः शारद्वतो राजन्मागधाश्च तरस्विनः । सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ ११ ॥ तेषां प्रपक्षौ शकुनिरुलूकश्च महा-

---

दूसरे बड़े२ धनुषधारी सब महारथियोंके सामने कर्णने अपने व्यूहको कैसे आकारमें चुना था ? और हे संजय ! हमारी सेनाके दोनों करवटोंमें और उनके समीपमें कौन २ खड़े थे ? ॥४॥६॥ वे उचित रचना करके, सेनाको कैसे२ विभागोंमें बाँटकर खड़े हुए थे तथा पांडवोंने मेरे पुत्रोंके सामने कैसा व्यूह रचा था? ७ उनका आपसमें महादारुण युद्ध कैसे हुआ था ? युद्धके समय अर्जुन कहाँ था, कि-जिससे कर्णने युधिष्ठिरके ऊपर चढ़ायी करदी ॥ ८ ॥ यदि अर्जुन पास होता तो युधिष्ठिरके ऊपर चढ़ायी कौन करसकता था ? पहले अकेलेही अर्जुनने खांडववनमें सब प्राणियोंको जलाकर भस्म करदिया था ऐसे अर्जुनके सामने कर्णके सिवाय जीवित रहनेकी इच्छा करनेवाला दूसरा कौन युद्ध करसकता है ? ॥ ९ ॥ संजय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! व्यूहरचना जिसप्रकार हुई थी और अर्जुन जैसे आया था तथा सेनाएँ अपने२राजाओंको घेरकर किसप्रकार युद्ध करती थीं यह सब सुनो ॥ १० ॥ हे राजन ! शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य, वेगवाले मगधदेशके योधा, सात्वतवंशी कृतवर्मा दाहिने पक्ष पर

रथः । सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम् ॥ १२ ॥ गान्धारिभिरसंभ्रान्तैः पार्वतीयैश्च दुर्जयैः । शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः ॥ १३ ॥ चतुर्त्रिंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्त्तिनाम् । संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १४ ॥ समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः । तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह ॥ १५ ॥ निदेशात् सूतपुत्रस्य सारथाः साश्वपत्तयः । आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवञ्च महाबलम् ॥ १६ ॥ मध्ये सेनामुखे कर्णोऽप्यवातिष्ठत दंशितः । चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन् वाहिनीमुखम् ॥१७॥ रक्ष्यमाणः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः । वाहिनीप्रमुखे वीरः संप्रकर्षन्नशोभत ॥ १८ ॥ अभ्यवर्त्तन्महाबाहुश्चन्द्रवैश्वानरप्रभः । महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रिय

खड़े थे ॥ ११ ॥ महारथी उलूक और शकुनि चमकती तलवार हाथमें लियेहुए गांधारदेशके और पहाड़ी टीड़ीदलके समान और पिशाचोंके झुण्डोंकी समान कठिनसे देखने योग्य दुर्जय न घबड़ानेवाले योधाओंको साथमें ले, तुम्हारी सेनाकी रक्षा कर रहे थे ॥ १२–१३ ॥ कृष्ण तथा अर्जुनको मारनेकी इच्छावाले युद्धकुशल, रणमें पीछेको पैर न देनेवाले ३४ सहस्र संशप्तक रथी तुम्हारे पुत्रोंके साथ बायें पक्षकी रक्षा कररहे थे, उनके पीछे काम्बोज,शक और यवनोंके सेनादल,पैदल,रथी और घुड़सवारोंको लिये हुए खड़े हुए और कर्णकी आज्ञासे महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुनको बुलारहे थे ॥ १४–१६ ॥ सेनाके मुहानेपर ठीक बीचमें विचित्र कवच और बाजूबन्द और माला पहिरे कर्ण सेनाके मुहानेकी रक्षा कररहा था ॥ १७ ॥ क्रोधमें भरे उसके पुत्र उसकी रक्षा कररहे थे जब वह अपनी सेनाको शत्रुसेनाके सामने ले जारहा था तब उसकी बड़ी शोभा होरही थी ॥ १८ ॥ सूर्य और अग्निकी समान प्रभाववाला, पीली आँखोंवाला, प्रियदर्शन, बड़े

दर्शनः ॥ १६ ॥ दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः । तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥ चित्रास्त्रैश्चित्रसन्नाहैः सोदर्य्यैरभिरक्षितः । रक्ष्यमाणो महावीर्य्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः ॥ २१ ॥ अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः । अश्वत्थामा कुरूणाञ्च ये प्रवीरा महारथाः ॥ २२ ॥ नित्यमत्तांश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः । अन्वयुस्तद्रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः ॥ २३ ॥ ते ध्वजैर्वैजयन्तीभिर्ज्वलद्भिः परमायुधैः । सादिभिश्चास्थिता रेजुर्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥ तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः । पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्त्तिनः ॥ २५ ॥ सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलंकृतैः । स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः ॥२६॥ बार्हस्पत्यः सुविहितो

भारी हाथीके ऊपर बैठाहुआ महाभुज दुःशासन सब सेनाओंको साथमें ले व्यूहके पृष्ठभागमें खड़ाहुआ था और हे महाराज ! राजा दुर्योधन उसके पीछे स्वयं चलरहा था ॥ १६-२०॥ विचित्र कवच और अद्भुत अस्त्रोंवाले उसके भाई और महाबली मद्र और कैकयदेशके योधा दुर्योधनकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे ॥ २१ ॥ हे महाराज ! इन्द्र जैसे देवताओंके बीचमें शोभा पाता है तैसेही उनके बीचमें दुर्योधन शोभित होरहा था, अश्वत्थामा, कौरवों के महारथी योधा तथा शूर म्लेच्छ और मदमें भरेहुए हाथी बादलोंके जल बरसानेकी समान मद बरसातेहुए दुर्योधनकी रथसेनाके पीछे २ चल रहे थे ॥२२-२३॥ वे जिस समय वैजयन्ती ध्वजा,चमचमाते आयुध और घुड़सवारोंकी टुकडियोंके साथ रणमें आकर खड़ेहुए, उस समय वृक्षोंसे लदे हुए पर्वतोंसे दीखते थे ॥ २४ ॥ उन पैदल और हाथीसवारोंके भी रणमें पीछेको न हटनेवाले,पट्टिश और तलवारधारी सहस्रों शूरवीर पादरक्षक थे२५ अच्छी प्रकार सजेहुए घुडसवार, रथी और हाथीसवारोंसे भरा

नायकेन विपश्चिता । नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत् २७
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः । पत्त्यश्वरथमातङ्गाः
प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २८ ॥ ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा
युधिष्ठिरः । धनञ्जयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥ २९ ॥ पश्या-
र्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे । युक्तं पक्षप्रपक्षैश्च परानीकं
प्रकाशते ॥ ३० ॥ तदेतद्वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महाबलम् । यथा
नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तोऽर्जुनो
राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् । यथा भवानाह तथा तत् सर्वं न तद-
न्यथा ॥ ३२ ॥ यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत ।
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिर
उवाच । तस्मात्त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम् । वृषसेनञ्च

हुआ वह व्यूह देवासुरसेनाके व्यूहसा शोभित होरहा था ॥२६॥
बृहस्पतिका बनायाहुआ, चतुर सेनापतिसे मोटा हुआ वह व्यूह
नाचता हुआ सा शत्रुओंको भय देनेलगा ॥ २७ ॥ वर्षा ऋतुमें
जैसे वादल तला ऊपर निकले चले आते हैं तैसेही उस व्यूहके
कोने दरकोनेमेंसे रण करनेकी उत्कण्ठावाले हाथीसवार घुड-
सवार रथी और हाथी निकले पडते थे ॥२८॥ सेनाके मुहाने पर
कर्णको देखकर राजा युधिष्ठिर शत्रुनाशी इकड वीर अर्जुनसे
कहने लगे ॥ २९ ॥ कि-हे अर्जुन ! रणमें कर्णके रचे बड़े
भारी व्यूहको देख यह व्यूह पक्ष और प्रपक्षोंसे शत्रुकी सेनाको
दिपारहा है ॥ ३० ॥ शत्रुसेनाके बड़े भारी बलको देखकर ऐसी
नीति वर्तनी चाहिये जिससे यह हमको दवा न सके ॥ ३१ ॥
जब राजा युधिष्ठिरने ऐसा कहा तब अर्जुन हाथ जोडकर राजा
से कहने लगा कि-आपने जैसा कहा सब वैसाही होगा उसमें
कुछ भी अन्तर न होगा ॥ ३२ ॥ जो इसका तोड है हे भारत !
मैं उसको करूँगा, प्रधान व्यक्तिका मारडालना ही इसका तोड
है वही मैं करूँगा ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिर कहने लगे, कि-इसलिये

नकुलः सहदेवोऽपि सौवलम् ॥३४॥ दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः। धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम् ॥३५॥ द्रौपदेया धार्त्तराष्ट्रान् शिष्टान् सह शिखण्डिना। ते ते च तांस्तान् सहितानस्माकं घ्नंतु मामकाः ॥ ३६ ॥ सञ्जय उवाच। इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनञ्जयः। व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम्॥३७॥ अग्निर्वैश्वानरः पूर्वो ब्रह्मेन्दुः सप्तितां गतः। तस्माद्यः प्रथमं जातस्तं देवा ब्राह्मणाः विदु ॥३८॥ ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान क्रमशो योऽवहत् पुरा। तमाद्यं रथमास्थाय प्रयातौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥ अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वा चाद्भुतदर्शनम्।

तुम कर्णके साथ, भीमसेन दुर्योधनसे, नकुल वृषसेनसे सहदेव शकुनिसे शतानीक दुःशासनसे सात्यकि हार्दिक्यसे धृष्टद्युम्न अश्वत्थामासे लड़े और मैं स्वयम् कृपाचार्यसे लड़ूँगा ३४—३५ और द्रौपदीके पुत्र शिखण्डीको साथले शेष धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ युद्ध करें और हमारे शत्रुओंका संहार करें ॥ ३६॥ सञ्जयने कहा कि—हे राजा धृतराष्ट्र! धर्मराजने आज्ञा दी तब अर्जुनने तथास्तु कहकर सेनाको कार्य करनेकी आज्ञा दी और सेनाके मुहानेपर स्वयं चलागया।३७विश्वका नेता अग्नि प्रजापतिके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण ब्राह्मण कहाता है और वही जलके उछलनेके कारण इन्दुहै,और वही वरुण कहाता है और सोम भी वही है,वह पहले घोडा वना था'वारुणो वा अश्व इति श्रुतेः'सोमकी भी अश्वरूपसे स्तुतिकी जाती है'अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः'इस पदमें,जो अत्य शब्द है उसका पर्याय अश्व किया है उस अश्वको देवता और ब्राह्मण जानते हैं, वह एकही देव अपने आपको चार रूपमें विभक्त करके अर्जुनके रथको खेंचता है।।३८।। जिस रथने पहिले ब्रह्मा रुद्र और वरुणको क्रमसे सवारी दी थी उस सबसे प्रथम उत्पन्न हुए रथ पर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन चले ३९

उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ॥ ४० ॥ अयं स रथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः । दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥ ४१ ॥ निघ्नन्नमित्रान् कौन्तेयो यं कर्ण परिपृच्छसि । श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् ॥४२॥ ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनञ्जयौ । एष रेणुसमुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ४३ ॥ चक्रनेमिप्रणुन्नेव कम्पते कर्ण मेदिनी । प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ॥ ४४ ॥ क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः क्रन्दन्ति भैरवम् । पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ॥ ४५ ॥ कबन्धं मेघसंकाशं भानुमावृत्य संस्थितम् । पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतो दिशम् ॥ ४६ ॥ बलिभिर्दर्पशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते । पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च सम-

विचित्र दिखावट वाले उस रथको आता देख शल्य युद्धदुर्मद कर्णसे कहने लगा॥४०॥अरे कर्ण! जैसे कर्मफलके भोगको कोई नहीं रोक सकता तैसे ही जिसको सम्पूर्ण सेनाको भी अटकाना कठिन है वह सफेद घोडोंवाला और श्रीकृष्ण जिसके सारथी हैं ऐसा अर्जुनका रथ यह आगया ॥ ४१ ॥ अरे ! जिसको तू वार२ बूझता था वह अर्जुन शत्रुओंको मारता हुआ आपहुँचा मेघकी गडगडाहटकी समान तुमुल शब्द सुनाई आरहा है इससे प्रतीत होता है कि-(रथमें बैठे)महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन ही आरहे हैं इस उठीहुई धूलिसे आकाश छा गया है४२-४३रथके पहियेकी धारका आघात होरहा हो इसप्रकार पृथ्वी काँप रही है तेरी सेनाके आसपास आँधी आरही है ॥ ४४ ॥ मांसाहारी प्राणी बोल रहे हैं मृग डरावनी चीखें मार रहे हैं और हे कर्ण! यह महाघोर भयंकर रोमाञ्चजनक और मेघकी समान श्यामवर्ण का केतु नामक ग्रह सूर्यको घेरे खड़ा है और देख ! नानाप्रकारके मृगोंकी टोलियें और बली घमण्डी सिंह सब दिशाओं

वेतान् सहस्रशः ॥ ४७ ॥ स्थितानभिमुखान् घोरानन्योऽन्यमभिभाषतः । रञ्जिताश्चामरा युक्तास्तव कर्ण महारथे ॥ ४८ ॥ प्रवराः प्रचलन्त्येते ध्वजाश्चैव प्रकम्पते । सवेपथून् हयान् पश्य महाकायान्महाजवान् ॥ ४९ ॥ प्लवमानान् दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव । ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमाश्रित्य पार्थिवाः ॥ ५० ॥ स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः । शंखानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ ५१ ॥ आनकानाञ्च राधेय मृदङ्गानाञ्च सर्वशः । बाणशब्दान् बहुविधान् नराश्वरथवाजिनाम् ॥ ५२ ॥ ज्यातलत्रेषु शब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम् । हेमरूप्यप्रमृष्टानां वाससां शिल्पनिर्मिताः ॥ ५३ ॥ नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः । सहेमचन्द्रताराकाः पताकाः किङ्किणीयुताः ॥ ५४ ॥ पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामिन्य इवा-

---

में सूर्यकी ओर देखरहे हैं, इकट्ठे हुए सहस्रों कंक और गीधोंको देख ॥ ४५ –४७ ॥ ये एक दूसरेके सामने खड़े होकर भयंकर शब्द कर रहे हैं, हे कर्ण ! तुम्हारे महारथमें लगे हुए ये श्रेष्ठ रंगीन चँवर जलसे रहे हैं और ध्वजाएँ काँप रही हैं, बड़े शरीरवाले, महावेगवान्, आकाशमें जैसे गरुड़ दौड़ते हैं, तैसे दौड़ने वाले ये तेरे दर्शनीय घोड़े थरथर काँप रहे हैं, हे कर्ण ! इन सब अशुभ शकुनोंको देख कर मुझे प्रतीत होता है कि–सैंकड़ों और सहस्रों राजे मरकर भूमिमें सोवेंगे, रोमांचकारी शंखोंका तुमुल शब्द सुनाई आरहाहै ॥ ४८–५१ ॥ हे राधेय ! नगाड़े, मृदङ्ग,बाण योधा,हाथी घोड़े और उनके सवारोंके,तथा महात्माओं की धनुषोंकी डोरियोंपर लगनेसे होते हुए हथेलियोंके शब्दोंको सुन,सोने चान्दीके काम वाली और जिनमें शिल्पविद्याकी चातुरी से सुवर्णके चन्द्रमा और तारे बनाये गये हैं और घुंघरू लगरहेहैं वे अनेक वर्णोंकी ध्वजाएँ पवनसे फड़फड़ा रहीहैं ५२–५४ हे कर्ण !

म्बुदे । ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः ॥ ५५ ॥ विभ्राजन्ति रणे कर्ण विमाने देवता यथा । सपताका रथाश्चैते पञ्चालानां महात्मनाम् ॥ ५६ ॥ पश्य कुन्तीसुतं वीरं बीभत्सुमपराजितम् । प्रधर्षयितुमायान्तं कपिप्रवरकेतनम् ॥ ५७ ॥ एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षणीयः समन्ततः । दृश्यते वानरो भीमो द्विषता-मघवर्द्धनः ॥५८॥ एतच्चक्रं गदा शार्ङ्गं शंखं कृष्णस्य धीमतः । अत्यर्थं भ्राजते कृष्णे कौस्तुभस्तु मणिस्ततः ॥५६ ॥ एष शार्ङ्ग-गदापाणिर्वासुदेवोऽतिवीर्यवान् । वाहयन्नेति तुरगान् पाण्डुरान् वातरंहसः ॥६०॥ एतत् कूजति गाण्डीवं विकृष्टं सव्यसाचिना । एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्रान् शिताः शराः ॥६१ ॥ विशा-लायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः । एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरो-

---

देख ! अर्जुनकी ध्वजाएँ बादलोंमें बिजलियोंकी समान पवन लगनेसे कड़कड़ा रहीं हैं॥५५॥ और अर्जुनके रथमें ध्वजाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे देवताओंके विमानमें लगरहीहों और देख ये पताकावाले महात्मा पाञ्चालोंके रथ खड़े हैं ॥ ५६ ॥ और देख! वानरध्वज अपराजित कुन्तीपुत्र अर्जुन हमें दबानेके लिये ऊपर चढ़ा आरहा है ॥ ५७ ॥ अर्जुनकी ध्वजाके अग्रभागमें शत्रुओंका दुःख बढ़ानेवाला, चारों ओरसे सबका ध्यान अपनी ओर खेंचलेनेवाला वानर दीखरहा है ॥ ५८ ॥ जिन बुद्धिमान् श्रीकृष्णके शरीर पर चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और पाञ्चजन्य शंख तथा वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणि दिपरही है ॥ ५६ ॥ वह हाथमें शार्ङ्ग धनुष और गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्ण वायुवेगी श्वेत घोड़ोंको हाँकते हुए आरहे हैं ॥ ६० ॥ देख यह अर्जुनका खेंचा गाण्डीव धनुष शब्द कर रहा है और देख! ये फुर्तीले अर्जुन के छोड़े हुए तेज बाण शत्रुओंका संहार कर रहे हैं ॥ ६१॥ और देख युद्धमेंसे न भागनेवालोंके लम्बे चौड़े लाल नेत्रोंवाले पूर्ण

भिरपलायिनाम् ।।६२।। एते परिघसंकाशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्यतायुधशौण्डानां पात्यन्ते सायुधा भुजाः ।। ६३ ।। निरस्तनेत्र-
जिह्वान्त्रा वाजिनः सह सादिभिः । पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ
क्षीणाश्च शेरते ।।६४।। एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्यरूपा हता द्विपाः ।
संच्छिन्नभिन्नाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा ६५ गन्धर्वनगराकारा
रथा हतनरेश्वराः । विमानानीव पुण्यान्ते स्वर्गिणां निपतन्त्यमी ६६
व्याकुलीकृतमत्यर्थं पश्य सैन्यं किरीटिना । नानामृगसहस्राणां
यूथं केशरिणा यथा ।। ६७ ।। घ्नन्त्येते पार्थिवान् वीराः पाण्डवाः
समभिद्रुताः । नागाश्वरथहस्त्योघांस्तावकान् समभिघ्नतः ।।६८।।
एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते । ध्वजाग्रं दृश्यते
त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते ।। ६९ ।। अद्य द्रष्टासि तं वीरं श्वे-

---

चन्द्रमाकी समान शोभावाले मस्तकोंसे भूमि पटरही है ।। ६९ ।।
ये देख ! चन्दनचर्चित परिघकी समान मोटे आयुधोंको उठाये
हाथ आयुधोंके सहित काटे जारहे हैं ।६३। कितनेही घोड़े सवारों-
सहित आँखें और जीभ निकाले हुए भूमिमें सोरहे हैं और
कितनों को अर्जुनने भूमिमें गिरादिया है वे क्षीण हो पृथ्वीमें
लोट रहे हैं ।।६४ ।। देख ! २ वहाँ पर्वतके शिखरकी समान
आकार वाले हाथी अर्जुनके बाणोंसे पिट छिन्न भिन्न हो पर्वतकी
समान इधर उधर दौड रहे हैं६५देखो २ जिनकेराजे मारे गए हैं,
ऐसे गन्धर्वनगरकी समान रथ पुण्यक्षीण होनेपर स्वर्गवासियोंके
विमानोंकी तरह पृथ्वी पर पड़े हैं ।। ६६ ।। जैसे सिंह सहस्रों
मृगोंकी टोलियोंको व्याकुल करदे तैसे अर्जुनकी मारसे बहुत ही
व्याकुल होती हुई सेनापर दृष्टि डाल ।। ६७ ।। देख पाण्डव
दौड़ २ कर राजाओंका संहार कररहे हैं और तेरे हाथीसवार,
घुडसवार रथी और पैदलोंका संहार कर रहे हैं ।। ६८ ।। देख!
देख !! बादलोंसे छिपे हुए सूर्यकी समान यद्यपि अर्जुन दिखाई

तारवं कृष्णसारथिम् । निघ्नन्तं शात्रवान् संख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि ॥ ७० ॥ अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परन्तपौ । वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ ७१ सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गाण्डीवं यस्य कार्मुकम् । तञ्चेद्धन्तासि राधेय त्वन्नो राजा भविष्यसि ॥ ७२ ॥ एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः । करोति कदनञ्चैषां संग्रामे द्विषतां बली ॥ ७३ ॥ इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युना । पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः ॥ ७४ ॥ एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते । एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नो योधसागरे ॥७५॥ शल्य उवाच । वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम् । को वानिलं निगृह्णीयात् पिबेद्वा को महार्णवम् ॥ ७६ ॥ ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य

नहीं देता, परन्तु उसकी ध्वजाका अग्रभाग दीखरहा है और धनुष की टंकार भी सुनाई देरही है ॥ ६९ ॥ हे कर्ण ! तू जिस अर्जुन को बूझ रहा था उस श्वेत घोड़े और कृष्णसारथीवाले शत्रुओं को मारते हुए अर्जुनको तू आज देखेगा ॥ ७० ॥ हे कर्ण ! आज तू शत्रुओंको तपाने वाले, रक्तनेत्रवाले, पुरुषव्याघ्र श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथमें बैठेहुए देखेगा ॥ ७१ ॥ जिसके सारथि श्रीकृष्ण हैं और धनुष गाण्डीव है उस अर्जुन को जो तू मार डालेगा, तो हमारा राजा बनेगा ॥७२॥ देख २ बलवान् अर्जुन अब संशप्तकों का निमंत्रण पा उनकी ओर को जाकर संहार करने लगा ॥७३॥ शल्यके कहनेको सुन कर्ण बड़े भारी क्रोधमें भर कहने लगा, कि–अरे देख ! संशप्तकोंने क्रोधमें भर अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया है । अहो हो! अब अर्जुन मेघोंसे घिरे सूर्यकी समान दिखाई भी नहीं पड़ता अहाहा! योधारूपी समुद्रमें फँसाहुआ अर्जुन अब डूब ही जायगा ॥ ७४॥ ॥ ७५ । शल्यने उत्तर दिया कि–अरे–जलसे वरुणको और

युधि निग्रहम् । न हि शक्योऽर्जुनो जेतुं युधि सेन्द्रैः सुरासुरैः॥७७
अथवा परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव । न स शक्यो युधा
जेतुमन्यं कुरु मनोरथम् ॥ ७८ ॥ बाहुभ्यामुद्धरेद्भूमिं दहेत् क्रुद्ध
इमाः प्रजाः । पातयेत्त्रिदिवाद्देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥७९॥
पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम् । प्रभासन्तं महाबाहुं
स्थितं मेरुमिवापरम् ॥ ८० ॥ अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरवैरमनु-
स्मरन् । एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ८१ ॥ एष
धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः । तिष्ठत्यसुकरः संख्ये परैः पर-
पुरञ्जयः ॥ ८२ ॥ एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥ ८३ ॥ अमी स्थिताः

ईंधनसे अग्निको कौन नष्ट कर सकता है? और वायुको कौन पकड सकता है तथा समुद्र को कौन पी सकता है ॥ ७६ ॥ पार्थका पकडना भी ऐसा ही है अरे! इन्द्रसहित सब देवता और असुर भी इकट्ठे हो अर्जुनको नहीं जीत सकते ॥ ७७ ॥ अथवा तू कुढता हो तो अपने मनमें मैं अर्जुनको जीतूँगा यह विचार कर ही प्रसन्न होले परन्तु अर्जुन को तू युद्धमें नहीं जीतसकेगा और ही किसी मनोरथको कर ॥ ७८ ॥ अरे! जो दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठासके जो क्रोधमें भर संसारको भस्म करसकता हो और जो स्वर्गसे देवताओंको गिरा सके वह ही अर्जुनको समरमें जीत सकता है ॥ ७९॥ वीर, भयं-कर, उत्तम कर्म करनेवाले दूसरे मेरुकी समान खड़े हुए महाभुज कुन्तीपुत्र, अर्जुनको देख! वह कैसे खडा है ॥८०॥ अरे देख! वैरको न भूलने वाला पराक्रमी और महाक्रोधी, भीम विजयकी इच्छासे ही युद्धभूमि में खड़ा है ॥८१॥ युद्धमें शत्रुओं को भाररूप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर वह खड़े हैं ॥ ८२ ॥ ये अश्विनीकुमारोंकी समान सहोदर पुरुषोंमें व्याघ्रसमान युद्धमें

द्रौपदेयाः पञ्च पञ्चाचला इव । व्यवस्थिता योद्धुकामाः सर्वेऽ-र्जुनसमा युधि ॥ ८४ ॥ एते द्रुपदपुत्राश्च धृष्टद्युम्नपुरोगमाः । स्फीताः सत्यजितो वीरास्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥ ८५ ॥ असा-विन्द्र इवासह्यः सात्यकिः सात्वतां वरः । युयुत्सुरुपयात्यस्मान क्रुद्धान्तकसमः पुरः॥८६॥इति सम्वदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः । ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद्‌ भृशम् ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च सञ्जय । संशप्तकान् कथं पार्थो गतः कर्णश्च पाण्डवान् ॥ १ ॥ एतद्वि-स्तरशो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि । न हि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान्वणे ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । तदा स्थितमवज्ञाय प्रत्य-

---

दुर्जय नकुल और सहदेव खड़े हैं ॥८३॥ युद्धमें अर्जुनकी समान पराक्रमी ये द्रौपदीके पाँचों पुत्र पाँच पर्वतोंकी समान युद्धमें अचल खड़े हैं ॥ ८४ ॥ ये धृष्टद्युम्न आदि परमबली, उज्ज्वल कीर्तिवाले द्रुपदपुत्र खड़े हैं ॥ ८५ ॥ सात्वतोंमें श्रेष्ठ इन्द्रकी समान असह्य सात्यकि, लड़नेकी इच्छा से यमराजकी समान क्रोधमें भर हमारे ऊपर चढ़ा आरहा है ॥ ८६ ॥ वे पुरुषसिंह इस प्रकार वातचीत कररहे थे कि-दोनों सेनाएँ गंगा और यमुनाकी समान आपसमें वेगसे टकरा गईं ॥ ८७ ॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा कि- हे सञ्जय ! जब सेनाएँ इस प्रकार रणमें व्यूहरचनासे खडी होगईं ८७ तब अर्जुन संशप्तकोंकी ओर तथा कर्ण पाण्डवोंपर किस प्रकार टूट पड़ा था ।१।तू इस युद्धको और विस्तारसे सुना; क्योंकि तू कथा कहनेमें चतुर है और मैं वीर पुरुषोंके चरित्रको सुनते २ नहीं अघाता हूँ ।२। सञ्जयने कहा

मित्रबलं महत् । अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥ ३ ॥ तत् सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् । धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महद्बलम् ॥ ४ ॥ पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः । पार्षतः प्रबभौ धन्वी-कालो विग्रहवानिव ॥५॥ पार्षतं जुगुपुः सर्वे द्रौपदेया युयुत्सवः । दिव्यवर्मायुधधराः शार्दूलसमविक्रमाः ॥ ६ ॥ सानुगा दीप्तवपुषश्चन्द्रं तारागणा इव। अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रेक्ष्य संशप्तका-न्रणे ॥ ७ ॥ क्रुद्धोऽर्जुनोऽभिदुद्राव व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः । अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन् वधैषिणः ॥ ८ ॥ विजये धृतसङ्कल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् । तन्नराश्वौघबहुलं मत्तनागरथाकुलम् ९ पत्तिमच्छूरवीरौघं द्रुतमर्जुनमार्दयत् । स संप्रहारस्तुमुलस्तेषामा-

---

कि-शत्रुकी बड़ी भारी सेना को डटी हुई देखकर, उसके सामने ही तुम्हारे पुत्रके अन्यायके कारण अर्जुनने भी सेना को व्यूहरचनासे खडा किया ॥३॥ उस व्यूहमें सवार और हाथी भर रहे थे तथा वह पैदल और रथियोंसे घिचपिच होरहा था, उसके मुहाने पर धृष्टद्युम्न खडा था, इस कारण वह व्यूह रणमें दिप रहा था ॥ ४ ॥ कबूतरोंकेसे वर्णके घोडों वाला चन्द्रमा और सूर्यकी समान कान्ति वाला धनुषधारी धृष्टद्युम्न मूर्तिमान कालकी समान दीखता था ॥ ५ ॥ सिंहकी समान पराक्रमी, दिव्य कवच और आयुधधारी युद्धकी उत्कण्ठावाले द्रौपदीके सब पुत्र चारों ओरसे उसकी रक्षाकर रहे थे ॥ ६ ॥ प्रदीप्त कान्ति वाले अनुचरों सहित वे चन्द्रमाकी सेवा करते हुए नक्षत्रोंकी समान दीखते थे, सेनाओंके व्यूहरचनासे खडा होने पर अर्जुन संशप्तकोंको देख क्रोधमें भरगया और गाण्डीवधनुषको घुमाता हुआ उनके ऊपर दौडा, मृत्युके सामने भी जीतनेकी इच्छावाले संशप्तकोंने अर्जुनको मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर धावा बोल दिया बहुतसे हाथी घोडोंवाले मदमत्त हाथियोंसे भरे पैदल और

सीत् किरीटिना ॥ १० ॥ तस्यैव नः श्रुतो यादृङ् निवातकवचैः सह । रथानश्वान् ध्वजान्नागान् पत्तीन् रणगतानपि ॥ ११ ॥ इषून् धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान् । सायुधानुद्यतान् बाहून् विविधान्यायुधानि च ॥ १२ ॥ चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः । तस्मिन् सैन्यमहावर्त्ते पातालतलसन्निभे ॥ १३ ॥ निमग्नं तं रथं मत्वा नेदुः संशप्तकास्तदा । स पुरस्तादरीन् हत्वा पुनरुत्तरतोऽवधीत् ॥ १४ ॥ दक्षिणेन च पश्चाच्च क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव । अत्र पांचालचेदीनां सृंजयानां च मारिष ॥ १५ ॥ त्वदीयैः सह संग्राम आसीत् परमदारुणः । कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १६ ॥ हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकप्रहारिणः । कोशलैः काशिमत्स्यैश्च कारूषैः कैकयैरपि ॥ १७ ॥ शूरसेनैः शूरवरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः । तेषामन्तकरं युद्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ १८ ॥ क्षत्रविट्शूद्रवीराणां धर्म्यं स्वर्ग्यं यशस्करम् । दुर्योधनोथ सहितो

शूर वीर संशप्तकोंने अर्जुनको पीडित करना आरंभ किया, अर्जुन और निवातकवचोंका जैसा युद्ध हमने सुना है तैसेही संशप्तकोंके साथ भी भयंकर युद्ध हुआ उन शत्रुओंको मार रुद्र की समान क्रोधमें भरा अर्जुन उत्तर दक्खिन और पूर्वमें सेना का संहार करने लगा हे राजन्। इसके पीछे पञ्चाल और चेदिदेशी तथा सृञ्जयदेशी योधाओंका तुम्हारे योधाओंके साथ परम दारुण युद्ध हुआ, युद्धदुर्मद रथसेनाका संहार करने वाले क्रोधमें भरे और जिनकी सेना प्रसन्न थी ऐसे कृपाचार्य कृतवर्मा और सुबलपुत्र शकुनि शूरवीर कोसल, काश्य, मत्स्य, कारूष केकय और शूरसेनोंके साथ युद्ध करने लगे शूरवीर क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके देह पाप और प्राणोंका संहारक धर्मका साधनरूप स्वर्ग और यशका देनेवाला युद्ध उस समय होने लगा, उसमें योधाओंका नाश होने लगा, हे भरतर्षभ,

भ्रातृभिर्भरतर्षभ ॥ १६ ॥ गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणाञ्च महारथैः । पाण्डवैः सह पंचालैश्चेदिभिः सात्यकेन च ॥ २० ॥ युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरोऽभ्यपालयत् । कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम् ॥२१॥ प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान् युधिष्ठिरमपीडयत् । विवर्मायुधदेहासून् कृत्वा शत्रून् सहस्रशः ॥२२॥ युक्त्वा स्वर्गयशोभ्यां च स्वेभ्यो मुदमुदावहत् । एवं मारिष संग्रामो नरवाजिरथक्षयः । कुरूणां सृञ्जयानाञ्च देवासुरसमोऽभवत् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

धृतराष्ट्र उवाच । यत्तत् प्रविश्य पार्थानां सैन्यं कुर्वन् जनक्षयम् । कर्णो राजानमभ्येत्य तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥ के च प्रवीराः पार्थानां युधि कर्णमवारयन् । कांश्च प्रमथ्याधिरथिर्युधिष्ठिरमपी-

---

कौरवोंसे और मद्रदेशके योधाओंसे रक्षित दुर्योधन भाइयोंको साथ ले, पाण्डव, पाञ्चाल और चेदियोंसे लड़ते हुए कर्णकी रणमें रक्षा करने लगा और कर्ण भी तीक्ष्ण बाण मार कर पाण्डवोंकी महासेनाका संहार करनेलगा, वह महारथियोंको भी मर्दन करता हुआ बाणोंसे युधिष्ठिरको पीड़ित करने लगा, उसने सहस्रों शत्रुओंको कवच, देह और प्राणोंसे रहित कर उनको यशसहित स्वर्ग भेजदिया और अपनी ओरके योधाओंको प्रसन्न किया, हे राजन ! इस प्रकार कौरव और सृञ्जयोंमें देवासुर संग्रामकी समान घोर युद्ध हुआ, इस संग्राममें बहुतसे पैदल, घुड़सवार और रथियोंका संहार होगया ॥ ७-२३ ॥ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-संजय ! कर्णने पाण्डवों की सेनामें घुसकर और राजा युधिष्ठिरके समीप पहुँचकर जो सेनाका संहार किया था वह मुझे सुना ॥ १ ॥ पाण्डवोंके किन २

ध्यत् ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । धृष्टद्युम्नमुखान् पार्थान् दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान् । समभ्यधावत्त्वरितः पञ्चालान् शत्रुकर्शिणः ॥३॥ तं तूर्णमभिधावन्तं पञ्चाला जितकाशिनः । प्रत्युद्ययुर्महात्मानं हंसा इव महार्णवम् ॥ ४ ॥ ततः शङ्खसहस्राणां निस्वनो हृदयङ्गमः । प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः ॥ ५ नानावाणनिपातश्च द्विपाश्वरथनिस्वनः । सिंहनादश्च वीराणामभवद्दारुणस्तदा ॥६॥ साद्रिद्रुमार्णवा भूमिः सवाताम्बुदमम्बरम् । सार्केन्दुग्रहनक्षत्रा द्यौश्च व्यक्तं विघूर्णिता ॥ ७॥ इति भूतानि तं शब्दं मेनिरे ते च विव्यथुः । यानि चाप्यल्पसत्त्वानि प्रायस्तानि मृतानि च ॥ ८ ॥ अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयन् । जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ॥ ९ ॥ स पाण्डववलं कर्णः प्रविश्य विसृजन् शरान् ।

योधाओंने रणमें कर्णको रोका था और किनको दबाकर कर्णने युधिष्ठिरको पीड़ित किया था ॥ २ ॥ सञ्जयने कहा कि-धृष्टद्युम्नको आगेकर खड़े हुए पाण्डवोंको देख कर्ण शत्रुतापी पाञ्चालोंकी ओर दूटा ॥ ३ ॥ कर्णको चढ़ते देखकर हंस जैसे समुद्रकी ओर जाँय,तैसेही विजयसे प्रदीप्त पाञ्चाल उस के सामने हुए ॥४॥ उस समय दोनों ओरसे सहस्रों शंखोंकी और भेरियोंकी भयंकर हृदयमें धँसती हुई ध्वनि होने लगी ॥ ५ ॥ अनेक प्रकारके बाणोंके गिरनेकी ध्वनि हाथी और घोड़े तथा रथियोंका शब्द होने लगा तथा वीर दारुण सिंहनाद करने लगे ॥ ६ ॥ उस भयंकर शब्दको सुन प्राणी समझने लगे कि-पर्वत, वृक्ष और समुद्रसहित पृथिवी, मेघ मण्डलसहित आकाश सूर्य. चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रोंसहित स्वर्ग काँप गया होगा, ऐसा समझकर वे डरगये तथा थोड़ी शक्तिवाले बहुतसे जीव मरगए७-८ तब तो कर्ण क्रोधमें भरगया और जैसे इन्द्र राक्षससेनाका संहार करे तैसे पाण्डवोंकी सेनाको शीघ्रतासे अस्त्र छोड़ छूँगलने

प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत् सप्तसप्ततिम् ॥१०॥ ततः सुपुंखैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः । अवधीत् पञ्चविंशत्या पञ्चालान् पञ्चविंशतिम् ॥ ११ ॥ सुवर्णपुंखैर्नाराचैः परकायविदारणैः । चेदिकानवधीद्वीरः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥ तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् । परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ १३ ॥ ततः सन्धाय विशिखान् पञ्च भारत दुःसहान् । पञ्चालानवधीत् पञ्च कर्णो वैकर्त्तनो नृपः ॥ १४ ॥ भानुदेवं चित्रसेनं सेनाविन्दुञ्च भारत । तपनं शूरसेनञ्च पञ्चालानहनद्रणे ॥ १५ ॥ पञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः । हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां महाहवे ॥ १६ ॥ परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथा दश । पुनरेव च तान् कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः ॥ १७ ॥ चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्ज्जयौ । सुषेणः सत्यसेनश्च त्य-

---

लगा॥९॥कर्णने पाण्डवोंकी सेनामें घुस बाण बरसाकर प्रभद्रकोंके सतत्तर श्रेष्ठ व्यक्तियोंको मारडाला ॥ १० ॥ फिर रथश्रेष्ठ कर्णने सुन्दर पूँछवाले पच्चीस बाण मार पञ्चालोंके पच्चीस योधाओंका संहार करडाला ॥ ११ ॥ फिर वीर कर्णने शत्रुओंके शरीरोंको विदीर्ण करनेवाले सुवर्णकी पूँछवाले बाण छोड सैंकड़ों और सहस्रों चेदियोंको यमधाम भेजदिया ॥१२॥ जब कर्ण रणमें इसप्रकार अमानुषिक कर्म करने लगा उस समय पञ्चालोंके रथियोंने उसको घेर लिया ॥ १३ ॥ हे भारत ! तब वैकर्तन कर्णने पाँच दुःसह बाण छोड़ भानुदेव, चित्रसेन, सेनाविन्दु, तपन और शूरसेन नामवाले पाँच पञ्चालोंको यमलोकमें भेजदिया ॥ १४–१५ ॥ जब इस प्रकार शूर पाञ्चाल मारे जाने लगे तब युद्धमें स्थित पञ्चालोंमें बड़ा हाहाकार होउठा १६ और हे महाराज ! तब पांचालोंके दश रथियोंने उसको घेरलिया, परन्तु कर्णने फिर फुर्तीसे उनको भी बाणोंसे मार गिराया १७

त्वा प्राणानयुध्यताम् ॥ १८ ॥ पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः । वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्य्यपालयत् ॥ १९ ॥ धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदराः । जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः ॥ २० ॥ चेदिकेकयपञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः । समभ्यधावन् राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम् ॥ २१ ॥ त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च । अभ्यवर्षन् विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥ २२ ॥ पितरन्तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः । त्वदीयाश्चापरे राजन् वीरा वीरानवारयन् ॥ २३ ॥ सुषेणो भीमसेनस्य छित्वा भल्लेन कार्मुकम् । नाराचैः सप्तभिर्विध्वा हृदि भीमं ननाद ह ॥ २४ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः । सज्यं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद्धनुः ॥२५॥

हे राजन् ! उस समय कर्णके पुत्र जो कर्णके चक्ररक्षक बने थे वे सुषेण और सत्यसेन प्राणोंका मोह छोड़ युद्ध करनेलगे ।१८। कर्णकी पीठकी ओरसे रक्षा करनेवाला कर्णका ज्येष्ठ पुत्र वृषसेन अपने आप कर्णकी रक्षा करता था ॥ १९ ॥ हे राजन् ! उस समय धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, प्रभद्रकोंके श्रेष्ठ योधा, चेदि,केकय और पाञ्चालदेशके योधा और नकुल सहदेव और द्वेषी मत्स्योंने कर्णको मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर धावा किया ॥ २०–२१ ॥ जैसे मेघ वर्षामें पर्वत पर जल वरसावें, तैसे वे घमासान मचातेहुए कर्णके ऊपर नानाप्रकारके शस्त्र मारनेलगे और वाणोंकी बौछार करनेलगे२२ तब पिताकी रक्षा करनेको उत्कण्ठित कर्णके पुत्र और तुम्हारे वीर पुत्रोंने पाण्डवोंके वीरोंको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ २३ ॥ सुषेणने भाला मारकर भीमसेनके धनुषको काटडाला फिर भीमसेनके हृदयमें सात बाण मारकर गर्जने लगा ॥ २४ ॥ तब तो भयङ्कर पराक्रमी भीमसेनने दूसरा दृढ़ धनुष ले उसको ठीककर

विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः । कर्णञ्च तूर्णं विव्याध सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ २६ ॥ भानुसेनञ्च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम् । पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥ २७ ॥ क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम् । शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥ २८ ॥ हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान् पुनरार्दयत् । कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा चापौ तावप्यथार्दयत् ॥ २९ ॥ दुःशासनं त्रिभिर्विध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः । उलूकञ्च पतत्रिञ्च चकार विरथावुभौ ॥ ३० ॥ सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम् । तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥ ३१ ॥ अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम् सुषेणायासृजद्भीमस्तम-

---

सुषेणके धनुषको काटडाला ॥ २५ ॥ फिर क्रोधमें भरकर नाचते हुए भीमसेनने दश बाणोंसे उसको घायल करदिया फिर शीघ्रता तासे तिहत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे फुर्तीके साथ कर्णको घायल करडाला ॥ २६ ॥ फिर सब मित्रोंके सामनेही भीमने कर्णके पुत्र भानुसेनको दश बाण मार, घोड़े, सारथी, और ध्वजासहित भूमिमें गिरादिया ॥ २७ ॥ तब क्षुरप्र नामके बाणसे काटाहुआ चन्द्रमाकी समान उसका मुख डण्डीमेंसे टूटे हुए कमल की समान सुन्दर दीखने लगा ॥ २८ ॥ कर्णके पुत्रको मारने के पीछे भीमने तुम्हारी सेनाको फिर पीड़ित करना आरम्भ करदिया और कृपाचार्य तथा हार्दिक्यके धनुषोंको काट उनको भी उत्पीड़ित किया ॥ २९ ॥ दुःशासनको तीन और शकुनिको छः लोहेके बाण मार घायल करडाला और उलूक तथा पतत्रि को रथहीन करडाला ॥३०॥ भीमने सुषेणसे यह कहकर, कि— "ले अब तुझे भी समाप्त किया" बाण हाथमें लिया, परन्तु कर्णने उस बाणको काट गिराया और उसके तीन बाण मारे ॥ ३१ ॥ तब भीमने दूसरा अच्छी गाँठवाला तीक्ष्ण बाण

ण्यस्याच्छिनद्द नृपः ॥ ३२ ॥ पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथे-
षुभिः । पुत्रं परीप्सन् विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥ ३३ ॥
सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम् । नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वो-
रुरसि चार्पयत् ॥ ३४ ॥ नकुलस्तन्तु विंशत्या विध्वा भारसहै-
र्दृढैः । ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥ ३५ ॥ तंसुषेणो
महाराज विध्वा दशभिराशुगैः । चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण
महारथः ॥३६ ॥ अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः । सुषेणं
नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥ ३७ ॥ स तु बाणैर्दिशो राजन्ना-
च्छाद्य परवीरहा । आजघ्ने सारथिञ्चास्य सुषेणञ्च ततस्त्रिभिः ३८
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा । अथान्यद्धनुरादाय

सुषेणकी ओर छोड़ा परन्तु कर्णने उसको भी काटदिया ।३२।
फिर पुत्रकी रक्षा करनेकी इच्छावाले कर्णने क्रूर भीमसेनको
मारनेकी इच्छासे तिहत्तर क्रूर बाण उसके मारे ॥ ३३॥ इतनेमें
ही सुषेणने बोझा सहसकनेवाले श्रेष्ठ धनुषको उठालिया और
नकुलकी छाती तथा भुजाओंमें पाँच बाण मारे ॥ ३४ ॥ तब
नकुलने भी भारको सहसकनेवाले और तीक्ष्ण बीस बाण सुषेण
के मार गर्जना की, तब कर्णको भय होने लगा ॥ ३५ ॥ महा-
रथी सुषेणने भी दश बाणोंसे नकुलको बींध डाला और
क्षुरप्र नामक बाणसे उसके धनुषको काट डाला ॥ ३६ ॥
तब तो नकुल क्रोधसे मूर्च्छित सा होगया और उसने दूसरा
धनुष ले नौ बाण मार सुषेणको आगे बढ़नेसे रोकदिया । ३७।
और हे राजन् ! उसने बाणोंसे आकाशको छादिया फिर पर-
वीरघ्न नकुलने उसके सारथिको मारडाला और उसको तीन बाणों
से घायल करडाला ॥ ३८ ॥ और तीन भल्ल नामक बाणोंसे
उसके धनुषको तीन स्थानों परसे काटडाला, तब क्रोधमें भरे सुषेण
ने दूसरा धनुषले नकुलको साठ बाणोंसे बींधकर सहदेवको भी

सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ३८ ॥ अविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवञ्च सप्तभिः ॥ ३९ ॥ तद्ध युद्धं सुमहद्ध घोरमासीद्देवासुरोपमम् ४० निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योऽन्यस्य वधं प्रति । सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४१ ॥ धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः । ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ४२ अथावसन्नः स रथे मुहूर्त्तात् पुनरुत्थितः । स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः ॥ ४३ ॥ कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्यात् । तस्य चाप्लवतः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः ॥ ४४ ॥ वाराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी । दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ॥ ४५ ॥ आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रथान्तरम् । अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ॥ ४६ ॥ द्रौपदेयांस्त्रि-

---

सात बाणोंसे बींधडाला, एक दूसरेको मारनेके लिये तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करते हुए उनका युद्ध देवासुरसंग्रामकी समान भयङ्कर रीतिसे हुआ, तब सात्यकिने तीन बाणोंसे उसके सारथिको मारकर भालेसे उसके धनुषको काटडाला और सात बाणोंसे उसके घोड़ोंको मारडाला और एक बाणसे उसकी ध्वजाको छिन्नभिन्न कर, उसकी छातीमें तीन बाणमारे ॥३९॥ ॥४२॥ रणमें जब सात्यकिने उसके सारथि, घोड़े और ध्वजाको छिन्न भिन्न कर नष्ट करदिया तब वह मूर्छित हो रथमें गिरगया कुछ समयमें चेतना पानेपर उठा ॥ ४३ ॥ और सात्यकिको मारने की इच्छासे ढाल तलवार ले उस पर झपटा, सात्यकिने वाराहकर्ण नामके दश बाण मारकर फुर्तीसें वृषसेनकी ढाल और तलवारके टुकड़े २ करडाले, दुःशासनने उसको आयुधहीन और रथहीन और घबड़ाया देख शीघ्रतासे उसको अपने रथ पर चढ़ालिया और रणमेंसे बाहर लेगया, कुछ ही देर पीछे महारथी वृषसेनने दूसरे रथमें बैठ ॥ ४४-४६ ॥ द्रौपदीके पुत्रोंके

सप्तत्या युयुधानञ्च पञ्चभिः । भीमसेनं चतुःषष्ट्या सहदेवञ्च पञ्चभिः ॥ ४७ ॥ नकुलं त्रिंशता बाणैः शतानीकञ्च सप्तभिः । शिखण्डिनञ्च दशभिर्धर्मराजं शतेन च ॥ ४८ ॥ एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र प्रवीरान् जयगृद्धिनः । अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशाम्पते ॥ ४९ ॥ कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत् । दुःशासनञ्च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः ॥५०॥ विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत् । स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ॥ ५१ ॥ युयुधे पाण्डवैः सार्द्धं कर्णस्याप्याययन् बलम् । धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद्दशभिः शरैः ॥ ५२ ॥ द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः । भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ॥ ५३ ॥ नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकश्च सप्तभिः । शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥ ५४ ॥ एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः । अभ्यर्दयन्महेष्वासं सूतपुत्रं महा-

तिहत्तर, सात्यकिके पाँच, भीमसेनके चौंसठ, सहदेवके पाँच, नकुलके तीस, शतानीकके पाँच, शिखण्डीके, दश, युधिष्ठिरके सौ बाण मारे; हे राजन् ! महाधनुर्धर कर्णपुत्र वृषसेनने इनको तथा विजयाभिलाषी दूसरे वीरोंको भी पीड़ित किया॥४७–४९॥ फिर वह दुर्धर्ष कर्णके पीछे आ उसकी रक्षा करने लगा फिर सात्यकिने लोहेके नौ बाणोंसे दुःशासनके घोड़े और सारथीको मारडाला तथा रथको तोड़डाला और उसके माथेमें तीनबाण मारे, फिर दुःशासन शास्त्रानुसार बने दूसरे रथमें बैठ, कर्णकी सेनाको बढ़ाता हुआ पाण्डवोंसे युद्ध करने लगा, फिर कर्णके ऊपर धृष्टद्युम्नने दश, द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, सात्यकिने सात भीमसेनने चौंसठ, सहदेवने सात, नकुलने तीस, शतानीकने सात, वीर शिखण्डीने दश और धर्मराजने सौ बाण मारे ॥ ५०–५४ ॥ हे राजेन्द्र ! ये तथा दूसरे जयाभिलाषी वीर

मृधे ॥ ५५ ॥ तान् सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभि शरैः । रथेनानुचरन् वीरः प्रत्यविध्यदरिन्दमः ॥ ५६ ॥ तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवञ्च महात्मनः । अपश्याम महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ५७ न ह्याददानं ददृशुः सन्दधानञ्च सायकान् । विमुञ्चन्तं च संरम्भाद्ददृशुस्तं हतानरीन् ॥ ५८॥ द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चैव प्रपूर्णा निशितैः शरैः । अरुणाभ्रावृताकारं तस्मिन्देशे बभौ वियत् ॥ ५९ ॥ नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान् । यैर्विद्धः प्रत्यविध्यत्तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः ॥ ६० ॥ दशभिर्दशभिश्चैतान् पुनर्विध्वा ननाद च । साश्वसूतरथच्छन्नास्ततस्ते विवरं ददुः ॥ ६१ ॥ तान् प्रमृद्य महेष्वासान्राधेयः शरवृष्टिभिः । गजानीकमसंबाधं प्राविशच्छत्रुकर्षणः ॥ ६२ ॥ स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्त्ति-

---

पुरुष महाधनुर्धर कर्णको महारणमें मसलने लगे ॥ ५५ ॥ तब शत्रुदमन वीर सूतपुत्रने रथमें बैठ घूम २ कर प्रत्येकको दश२ बाणसे घायल कर डाला ॥ ५६ ॥ हे महाभाग ! उस समय जो सूतपुत्रकी फुर्ती और अस्त्रोंका बल देखा, वह एक अचरज ही था ॥ ५७ ॥ वह कब बाणउठाता है, कब धनुषपर चढ़ाता है यह कोई नहीं जान सकता था, बस यह ही दीखता था कि वह बाण छोड़ रहा है और शत्रु मररहे हैं ॥ ५८ ॥ तीक्ष्ण बाणों से आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी और दिशायें भरगई और आकाश लाल रंगके बादलोंसे घिरा हुआसा प्रतीत होता था ॥ ५९ ॥ प्रतापी कर्ण हाथमें धनुष ले जैसे नाचता हो इसप्रकार रणमें घूमकर जिन्होंने उसके बाण मारे थे, उनके तिगुने२ बाण मारने लगा॥६०॥फिर उनके घोड़े सारथी और रथोंको लाखों बाणों से छाकर उनको घायल करडाला और गर्जना करनेलगा, तब शत्रुपक्षके योधाओंने कर्णको जानेके लिये मार्ग देदिया ॥६१॥ कर्ण उन महाधनुर्धरोंको बाणवर्षासे मथकर बिना रोकटोक

नाम् । राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्यच्छद्युधिष्ठिरम् ॥ ६३ ॥ ततस्तं पाण्डवा राजन् शिखण्डी च ससात्यकिः । राधेयात् परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन् ॥ ६४ ॥ तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे । यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः ॥६५॥ नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् विशाम्पते । सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणामभिगर्जताम् ॥ ६६ ॥ ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः । युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच । विदार्य कर्णस्तां सेनां धर्मराजमुपाद्रवत् । रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः ॥ १ ॥ नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्वृषः । छित्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यद-

---

हस्तिसेनामें घुसगया॥६२॥वह पीछेको पैर न रखनेवाले चेदियोंके तीस योधाओंको मार तीक्ष्ण बाणोंसे युधिष्ठिरको छाने लगा ॥ ६३ ॥ तब पाण्डव शिखण्डी और सात्यकि कर्णसे युधिष्ठिरको बचानेकी इच्छासे उनकी रक्षा करने लगे ॥ ६४ ॥ उसी प्रकार तुम्हारे धनुर्धर सब शूर भी सन्नद्ध हो कठिनतासे रणसे पीछेको हटनेवाले कर्णकी चारों ओरसे रक्षा करने लगे ॥६५॥ हे राजन् ! उस समय नानाप्रकारके बाजोंकी ध्वनि होने लगी और गर्जतेहुए शूरोंकी सिंहकी समान दहाड़ें सुनाई आने लगीं ॥ ६६ ॥ फिर युधिष्ठिरप्रमुख पांडव और कर्णप्रमुख हम निर्भय हो युद्ध करनेके लिये डट गये ॥ ६७ ॥ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ ॥ ॥

संजयने कहा कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! कर्ण उस सेनाका संहार कर सहस्रों रथ, घोड़े और हाथीसवार और पैदलोंसे घिर कर युधिष्ठिर पर दौड़ा ॥ १ ॥ और सैंकड़ों प्रचण्ड बाण

संभ्रमात् ॥ २ ॥ निचकर्त्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः । ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः ॥३॥ द्राविडास्तु निषादास्तु पुनः सात्यकिचोदिताः । अभ्यद्रवन् जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे ॥ ४ ॥ ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः । पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ॥ ५ ॥ एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च । हतानीयुर्महीं देहैर्यशसा पूरयन् दिशः॥६॥ अथ वैकर्त्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् । रुरुधुः पाण्डुपंचाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव ॥ ७ ॥ स तान् प्रमृद्याभ्यपतत् पुनरेव युधिष्ठिरम् । मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्बणो यथा ॥ ८ ॥ स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपञ्चालकेकयैः । नाशकत्तानतिक्रान्तुं

मारकर शत्रुओंके मारेहुए सहस्रों प्रकारके आयुधोंके टुकड़े२ करडाले और विना घवड़ाये हुए ही उसने शत्रुओंको बींध दिया ॥ २ ॥ कर्णने उनके शिर, भुजा और जंघाओंको काट दिया तब वे मरकर भूमिमें गिरगये और बहुतसे चोट खाकर भाग गये ॥३॥ परन्तु सात्यकिकी प्रेरणासे द्रविड और निपाद-देशी योधा कर्णको मारनेकी इच्छासे पैरों ही उसके ऊपर चढ़ गये ॥४॥ कर्णके मारे बाणोंसे भुजा और टोपशून्य हुए वे काटेहुए सालके वनकी समान भूमिमें गिरपड़े ॥ ५ ॥ इसप्रकार कर्णके मारेहुए सैंकडों और लाखों योधा अपने यशसे दिशाओंको भरतेहुए देहसे पृथ्वीमें गिर गये ॥ ६ ॥ तब यमकी समान क्रोधमें भरे विकर्त्तनके पुत्र कर्णको,व्याधिको मंत्र और औषधियोंसे भगानेकी समान, पांडव और पांचाल रोकने लगे ॥ ७ ॥ परन्तु वह मंत्र और औषधियोंको उल्लंघन करनेवाली उग्र व्याधिकी समान उनका तिरस्कार युधिष्ठिरके ऊपर टूट ही पड़ा ॥ ८ ॥ परन्तु मृत्यु जैसे ब्रह्मवेत्ताओंको नहीं दबा सकती तैसेही वह राज्याभिलाषी पांडव, पांचाल और केकयोंके

मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ॥ ९ ॥ ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारिणम् । अब्रवीत् परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १० ॥ कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु । सदा स्पर्द्धसि संग्रामे फाल्गुनेन तरस्विना ॥११॥ तथास्मान् बाधसे नित्यं धार्त्तराष्ट्रमते स्थितः । यद्बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यश्च पाण्डुषु ॥ १२ ॥ तत् सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः । युद्धश्रद्धाञ्च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा । सुवर्णपुंखैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः ॥१४॥ तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविध्यदरिन्दमः । वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत १५ सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष । प्रजज्वाल महाक्रोधाद्धविषेव हुताशनः ॥ १६ ॥ ज्वालामालपरिक्षिप्तो राज्ञो देहो व्य-

---

रोकने पर उनको लाँघ नहीं सका ॥ ९ ॥ तब युधिष्ठिर पासमें खड़े, पीछेको हटाये जाते हुए शत्रुहन्ता कर्ण से आँखों को क्रोध से लाल २ कर कहने लगे ॥ १० ॥ ॥ अरे ओ ! मिथ्याविचारके कर्ण ! मेरी बात सुन ! तू सदा अर्जुनसे रणमें स्पर्धा किया करता है ॥११॥ और दुर्योधनके मतमें रह कर हमें सदा पीड़ा दिया करता है, अरे ! तुझमें जो बल हो पराक्रम हो और जो तू पांडवोंसे द्वेष रखता हो उस सबको आज बड़ाभारी पुरुषार्थ कर दिखा ! आज मैं तेरी युद्धकी हाँस को नष्ट कर दूँगा ॥ १२-१३ ॥ हे महाराज ! पांडुपुत्र युधिष्ठिरने कर्णसे ऐसा कह कर उसको सुनहरी पूँछवाले लोहेके दश बाणोंसे बींध दिया ॥१४॥ हे भारत ! अरिदमन कर्णने हँस कर वत्सदन्त नामक दश बाणोंसे युधिष्ठिरको बींध दिया। १५। हे राजन्! कर्णने अपमानके साथ धर्मराजको घायलकिया तब घी डालनेसे अग्निकी समान युधिष्ठिर क्रोधमें भर गये ॥ १६ ॥ उस समय प्रलयकालमें संसारको भस्म करनेकी इच्छावाले दूसरे संव-

दृश्यत । युगान्ते दग्धुकामस्य सम्वर्त्ताग्नेरिवापरः ॥१७॥ ततो विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपरिष्कृतम् । समाधत्त शितं वाणं गिराणामपि दारुणम् ॥ १८ ॥ ततः पूर्णायतोत्सृष्टं यमदण्डनिभं शरम् । मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया ॥ १९ ॥ स तु वेगवता मुक्तो वाणो वज्राशनिस्वनः । विभेद सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम् ॥ २० ॥ स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै । स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने ॥ २१ ॥ गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत् । राजापि भूयो नाजघ्ने कर्णं पार्थहितेप्सया ॥ २२ ॥ ततो हाहाकृतं सर्वं धार्त्तराष्ट्रबलं महत् । विवर्णमुखभूयिष्टं दृष्ट्वा कर्णं तथागतम् ॥ २३ ॥ सिंहनादश्च सञ्जज्ञे च्वेडाः किलकिलास्तथा । पांडवानां महाराज दृष्ट्वा राज्ञः पराक्रमम् ॥ २४ ॥ प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव ।

र्तक अग्निकी समान युधिष्ठिरका शरीर ज्वालाओंसे घिराहुआ दीखने लगा ॥ १७ ॥ तब युधिष्ठिरने अपना सुवर्णका बना बडा भारी धनुष खेंचा और पहाडोंकोभी तोडनेवाला तेज बाण उस पर चढ़ाया ॥ १८ ॥ तब पूर्ण तौर पर खींचे हुए यमदंडकी समान बाणको युधिष्ठिरने कर्णको मारनेकी इच्छासे छोडा ॥ १९ ॥ वेगमें भर युधिष्ठिरसे छोडा हुआ वह बाण वज्र और अशनिकी समान गर्जताहुआ महारथी कर्णकी दाहिनी कोखमें एक साथ घुसगया ॥ २० ॥ उस प्रहारके लगनेसे महाबाहु कर्णको मूर्च्छा आगई और वह हाथ पैर ढीले कर, धनुषको छोड प्राणहीनकी समान निश्चेष्ट हो कर शल्यके सामने रथमें गिरगया, फिर युधिष्ठिरने अर्जुनके हितकी इच्छासे उसके ऊपर प्रहार नहीं किया, कर्णकी ऐसी दशा देख कर दुर्योधनकी सेनामें हाहाकार मचगया और उनमेंसे बहुतोंके मुख फीके पडगये ॥ २३ ॥ और हे महाराज ! राजाके पराक्रमको देखकर पांडव सिंहनाद

दध्रे राजन् विनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः ॥२५॥ स हेमविकृत-
चापं विस्फार्य विजयं महत् । अवारयदमेयात्मा पांडवन्निशितैः
शरैः ॥ २६ ॥ ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः ।
जघान चन्द्रदेवञ्च दण्डधारञ्च संयुगे ॥ २७ ॥ तावुभौ धर्म-
राजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः । रथाभ्यासे चकाशेते चन्द्रस्येव
पुनर्वसू ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविध्यत्त्रिंशता शरैः ।
सुषेणं सत्यसेनञ्च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ २९ ॥शल्यं नवत्या
विव्याध त्रिसप्तत्याथ सूतजम् । तांश्चास्य गोप्तॄन् विव्याध त्रिभि-
स्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ३० ॥ ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स्वका-
र्मुकम् । छित्वा भल्लेन राजानं विध्वा षष्ट्यानदत्तदा ॥ ३१ ॥
ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्नमर्षिताः । युधिष्ठिरं परीप्सन्तः
कर्णमभ्यर्दयञ्छरैः ॥ ३२ ॥ सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः

करनेलगे और कोलाहल मचाने लगे ॥ २४ ॥ थोड़ेही समयमें
कर्णकी मूर्छा दूर होगई तब क्रूरपराक्रमी कर्णने मनमें युधिष्ठिर
के नाश करनेका विचार किया ॥ २५ ॥ वह अमेयात्मा कर्ण
अपने सुवर्णके बने विजय नामक बड़ेभारी धनुषको खेंच युधि-
ष्ठिरके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा ॥ २६ ॥ और महात्मा
युधिष्ठिरके पंचालदेशी चन्द्रदेव और दण्डधार नामक चक्ररक्षकों
को क्षुर नामक बाणोंसे मार दिया ॥ २७ ॥ धर्मराजके रथके
दायें बायें खड़ेहुए वे दोनों वीर चन्द्रमाके पासमें खड़े पुनर्वसु
नामक नक्षत्रोंसे दीखते थे ॥ २८ ॥ तब युधिष्ठिरने कर्णको
तीस बाणोंसे बींधडाला और सुषेण तथा सत्यसेनको तीन बाणों
से ताडित किया ॥२९ ॥ शल्यको नब्बे, कर्णको तिहत्तर और
उसके रक्षकोंको तीन२ बाणोंसे बींध दिया ॥ ३० ॥ तब
कर्णने हँस धनुषको घुमा भल्ल नामक एक फिर और साठ बाण
मार गर्जना की ॥ ३१ ॥ तब पाण्डवोंके वीर योधा क्रोधमें भर
युधिष्ठिरकी रक्षा करनेको कर्ण पर बाण बरसाने लगे ॥ ३२ ॥

पाण्ड्य एव च । धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ३३
यमौ च भीमसेनश्च शिशुपालस्य चात्मजः । कारूषा मत्स्य-
शेषाश्च केकयाः काशिकोशलाः ॥ ३४ ॥ एते च त्वरिता वीरा
वसुषेणमताडयन् । जनमेजयश्च पाञ्चाल्यः कर्णं विव्याध
सायकैः ॥ ३५ ॥ वाराहकर्णैर्नाराचैर्नालीकैर्निशितैः शरैः । वत्स-
दन्तैर्विपाठैश्च क्षुरप्रैश्चटकामुखैः ॥ ३६ ॥ नानाप्रहरणैश्चोग्रै रथ-
हस्त्यश्वसादिभिः । सर्वतोऽभ्यद्रवन् कर्णं परिवार्य जिघांसया ३७
स पांडवानां प्रवरैः सर्वतः समभिद्रुतः । उदीरयन् ब्राह्ममस्त्रं
शरैरापूरयन् दिशः ॥३८॥ ततः शरमहाज्वालो वीर्योष्मा कर्ण-
पावकः । निर्दहन् पाण्डववनं वीरः पर्यचरद्रणे ॥ ३९ ॥ स
सन्धाय महास्त्राणि महेष्वासो महामनाः । प्रहस्य पुरुषेन्द्रस्य शरै-
श्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ४० ॥ ततः सन्धाय नवतिं निमेषान्नत-

सात्यकि, चेकितान, युद्धाभिलाषी पाण्ड्य, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, नकुल, सहदेव, भीमसेन, शिशुपालका पुत्र, कारूष, मत्स्य, काशी, केकय, कोसल इत्यादि वीर शीघ्रतासे वसुषेणको मारने लगे, पञ्चालदेशी जनमेजय कर्णको बाणोंसे बींधने लगा ॥ ३३–३५ ॥ वह कर्णका नाश करनेकी इच्छासे हाथीसवार और घुड़सवारोंके साथ उस पर चारों ओर से वाराहकर्ण नामक बाण, बन्दूक, वत्सदन्त और विपाठ नामक तीक्ष्ण बाण, चटकामुख नामक क्षुरप्र तथा और बहुतसे उग्र आयुध बरसाने लगा ॥ ३६-३७ ॥ जब पाण्डवोंके सर्व वीर चारों ओरसे उस पर चढ़ आये, तब उसने ब्रह्मास्त्रको छोड़ बाणोंसे दिशाओंको भरदिया ॥ ३८ ॥ तब बाणरूपी बड़ी२ लपटोंवाला, वीर्यरूपी गरमीवाला, कर्णरूपी अग्नि रणमें पांडवरूपी वनको जलाता हुआ घूमने लगा ॥ ३९ ॥ उदारमनवाले महाधनुर्धर कर्णने बड़े२ अस्त्रोंको धनुष पर रख हँसते २ उनसे

पर्वणाम् । बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः ॥४१॥ तद्वर्म हेमविकृतं रत्नचित्रं बभौ पतत् । सविद्युदभ्रं सवितुःश्लिष्टं वातहतं यथा ४२ तदङ्गात् पुरुषेन्द्रस्य भ्रष्टं वर्म व्यरोचत । रत्नैरलंकृतं चित्रैर्व्यभ्रं निशि यथाम्बरम् ॥ ४३ ॥ छिन्नवर्मा शरैः पार्थो रुधिरेण समुक्षितः । क्रुद्धः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति ॥ ४४ ॥ तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः । सा छिन्ना भूमिमगमन्महेष्वासस्य सायकैः ॥ ४५ ॥ ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः । चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वानदन्मुदा ॥ ४६ ॥ उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् । ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम् ॥ ४७ ॥ इषुधी चास्य चिच्छेद रथञ्च

युधिष्ठिरके धनुषको काटडाला ॥ ४० ॥ फिर कर्णने क्षणभरमें धनुष पर नमीहुई गाँठवाले नभै बाण रख युधिष्ठिरके कवचको तोड़ डाला ॥ ४१ ॥ सुवर्णका बना और रत्नजटित राजा युधिष्ठिरका गिरता हुआ कवच बिजलीवाले और सूर्यसे सम्बन्ध रखनेवाले पवनसे गिरतेहुए मेघसा दीखा ॥ ४२ ॥ पुरुषेन्द्र युधिष्ठिरके शरीरसे गिरता हुआ रत्नोंसे अलंकृत वह विचित्र कवच, मेघरहित रात्रिके स्वच्छ आकाशकी समान शोभित हुआ ॥४३॥ राजा युधिष्ठिरका कवच टूटने पर वे शस्त्रोंके प्रहारसे लोहूलुहान होगये, तब उन्होंने ठोस लोहेकी बनी शक्ति कर्णके ऊपर फेंकी ॥ ४४ ॥ परन्तु कर्णने उस झलझलाती हुई शक्तिके सात बाण मार टुकड़े २ करदिये, वह शक्ति महाधनुर्धर कर्णके बाणोंसे छिन्न भिन्न हो भूमिपर गिर पड़ी ४५ तब युधिष्टिर कर्णकी भुजा ललाट और मस्तकमें चार तोमर मार दर्पमें भर गरजने लगे ॥ ४६ ॥ उनके प्रहारसे कर्ण रक्तमें लथपथ होगया और क्रोधमें भरे सर्पकी समान फुङ्कारें भरने लगा, फिर उसने भाला मार युधिष्ठिरकी ध्वजाको काट उनके

तिलशोऽच्छिनत् । कालवालास्तु ये पार्थ दन्तवर्णावहन् हयाः४८
तैर्युक्तं रथमास्थाय प्रायाद्राजा पराङ्मुखः । एवं पार्थोऽभ्यपा-
यात् स निहतः पार्ष्णिसारथिः ॥ ४९ ॥ अशक्नुवन्
प्रमुखतः स्थातुं कर्णस्य दुर्मनाः । अभिद्रुत्य तु राधेयः पाण्डुपुत्रं
युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥ वज्रछत्रांकुशैर्मत्स्यैर्ध्वजकूर्माम्बुजादिभिः ।
लक्षणैरुपपन्नेन पाडुना पाण्डुनन्दनम् ॥ ५१ ॥ पवित्रीकर्तुमा-
त्मानं स्कन्धे संस्पृश्य पाणिना । गृहीतुमिच्छन् स बलात्कुन्ती-
वाक्यं च सोऽस्मरत् ॥ ५२ ॥ तं शल्यः प्राह मा कर्ण गृहीथाः
पार्थिवोत्तमम् । गृहीतमात्रो हत्वा त्वां मा करिष्यति भस्मसात्५३
अब्रवीत् प्रहसन्राजन् कुत्सयन्निव पाण्डवम् । कथं नाम कुले जातः
क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥ ५४ ॥ प्रजह्यात् समरं भीतः प्राणान्रक्षन्म-

तीन बाण मारे ॥ ४७ ॥ और उनके भार्थोंको काटडाला तथा उनके रथके तिलरके समान टुकडे करडाले तब राजा युधिष्ठिर काली पूँछवाले, दाँतोंकी समान श्वेतवर्णके घोड़ोंसे जुते एक दूसरे रथमें बैठ रणमेंसे पराङ्मुख हो भाग गये, पार्श्वरक्षक और सारथिके मारेजानेसे युधिष्ठिर अनमने हो जब कर्णके सामने खड़े न होसके और भाग चले, तब कर्णने दौड़कर वज्र, छत्र, अंकुश, मत्स्य, ध्वजा, कूर्म, कमल आदिसे चिन्हित अपने श्वेत और रक्त वर्णके हाथको अपनी आत्माको पवित्र करनेके लिये युधिष्ठिरके कंधेपर रख उनको पकड़नेका विचार किया, इतनेमें ही उसको कुन्तीके वचनका स्मरण आगया और शल्यने भी उससे कहा कि-ओ कर्ण ! तू महाराज युधिष्ठिरके ऊपर हाथ न रखना, पकड़तेही वह तुझे मारकर कहीं भस्म न कर डालें४८ ५३ तब कर्ण युधिष्ठिरका तिरस्कार करताहुआ हँसकर कहने लगा कि-अरे ! तू कैसे कुलमें उत्पन्न हुआ है और क्षत्रियधर्मको क्या पालता है ? कि-जो डरकर प्राणोंको बचा रणको छोड़े भागा

हाहवे । न भवान् क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः ॥५५॥ ब्राह्मे बले भवान् युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि । मा स्म युध्यस्व कौन्तेय मा स्म वीरान् समासदः ॥ ५६॥ मा चैनानप्रियं ब्रूहि मा वै व्रज महारणम् । वक्तव्या मारिषान्ये तु न वक्तव्यास्तु मादृशाः॥५७॥ मादृशान्विब्रुवन् युद्धे एतदन्यच्च लप्स्यसे । स्वगृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ॥५८॥ न हि त्वां समरे राजन् हन्यात्कर्णः कथञ्चन । एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः ॥ ५९ ॥ न्यहनत् पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम् । ततोऽपायाद् द्रुतं राजन् व्रीडन्निव जनेश्वरः ॥ ६० ॥ अथापयातं राजानं मत्वाऽन्वीयुस्तमच्युतम् । चेदिपाण्डवपञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः ६१

जाता है, अतः मुझे निश्चय होता है, कि—तू क्षत्रियके धर्मको ठीक२ पालन नहीं कर सकता ॥ ५४–५५ ॥ किन्तु तू ब्राह्मणके स्वाध्यायके और यज्ञ करनेके ही योग्य है, अरे कुन्तीके पुत्र ! तू किसीसे लड़ा मत कर तथा वीरोंकी ओर जाया भी न कर ॥ ५६ ॥ और उनसे अप्रिय बात भी न कहना, तथा कभी महारणमें भी न झाँकना, हे राजन् ! तुम दूसरोंका ही तिरस्कार किया करो, हम सरीखे योद्धाओंसे न अटकना ॥५७॥ यदि तुम हम सरीखोंसे बातें बनाओगे तो ऐसा तथा इससे भी अधिक फल पाओगे, जाओ ! जाओ !! जहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण हों तहाँ जाओ अथवा अपनी छावनीमें को भाग जाओ ॥ ५८॥ हे राजन् ! कर्ण रणमें तुमको किसी प्रकार भी नहीं मारेगा, महाबली कर्णने इतना कहकर युधिष्ठिरको छोड़ दिया, और इन्द्रने जैसे असुरसेनाका संहार किया था तैसे ही पाण्डवसेनाका नाश करने लगा, हे राजन् ! तब राजा युधिष्ठिर लज्जितसे होकर शीघ्र ही हट गये ॥ ५९––६० ॥ राजा युधिष्ठिरको भागा हुआ मान चेदि, पाण्डव और पाञ्चाल योधा महारथी सात्यकि तथा

द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम् ॥ ६२ ॥ कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात् । भेरीशंखमृदङ्गानां कार्मुकाणाञ्च निस्वनैः ६३ बभूव धार्त्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तथा । युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम् ॥ ६४ ॥ श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान् कर्णविक्रमम् । काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥ स्वान् योधानब्रवीत् क्रुद्धो निघ्नतैतान् किमासत । ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पांडवानां महारथाः ॥ ६६ ॥ भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् । अभवत्तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ॥ ६७ ॥ रथहस्त्यश्वपत्तीनां शस्त्राणाञ्च ततस्ततः । उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ॥ ६८ ॥ इति ब्रुवाणा ह्यन्योऽन्यं जघ्नुर्योधा महारणे । अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ॥ ६९ ॥ समावृतैर्नरवरै-

---

द्रौपदीके शूरवीर पुत्र और माद्रीके पुत्र उनके पीछे २ चलदिये, कर्ण युधिष्ठिरकी सेनाको पराङ्मुख हुई देखकर ६१प्रसन्न हुआ और कौरवोंको साथ ले उनके पीछे होलिया उस समय दुर्योधन के सैनिक भेरी,शंख और मृदङ्ग बजाने लगे धनुषोंका शब्द करने लगे तथा दहाड़ने लगे, हे कुरुवंशी महाराज! युधिष्ठिर श्रुतकीर्ति के रथमें बैठ कर्णके पराक्रमको देखने लगे, अपनी सेनाको खदेड़ी जाती देख धर्मराज युधिष्ठिर अपने योधाओंसे क्रोधमें भरकर कहने लगे कि—अरे बैठे २ क्या कररहे हो इनको मारो इसप्रकार राजाके आज्ञा देने पर भीमसेन आदि पाण्डवोंके सब महारथी तुम्हारे पुत्रों पर टूट पड़े.हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! योधा रथ औरहाथियोंका तुमुल शब्द होने लगा कि—उठोमारो, बढ़ चलो, दबालो, इस प्रकार कहते हुए योधा आपसमें मारकाट करने लगे, आकाश बादलोंकी छायाकी समान बाणोंसे छागया ।६१। ॥६९॥ श्रेष्ठ मनुष्योंके द्वारा बाणोंसे आहत हुए योधा

निघ्नद्भिरितरेतरम् । विपताकध्वजच्छत्रा व्यश्वसूतायुधा रणे ७०
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः क्षितौ क्षीणाः क्षितीश्वराः । प्रवणादिव
शैलानां शिखराणि द्विपोत्तमाः ॥ ७१ ॥ सारोहा निहताः पेतु-
र्वज्रभिन्ना इवाद्रयः । छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालङ्कारभूषणैः॥७२॥
सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः । विप्रविद्धायुधाश्चैव विर-
थाश्वरथैर्हताः ॥ ७३ ॥ प्रतिवीरैश्च संमर्द्दे पत्तिसंघाः सहस्रशः ।
विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ॥ ७४ ॥ शिरोभिर्युद्ध-
शौण्डानां सर्वतः संवृता मही । यथा भुवि तथा व्योम्नि निःस्वनं
शुश्रुवुर्जनाः ॥ ७५ ॥ विमानैरप्सरःसंघैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
हतानभिमुखान् वीरान् वीरैः शतसहस्रशः ॥ ७६ ॥ आरोप्या-
रोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः । तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं
स्वर्गलिप्सया ॥७७॥ प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जघ्नुः परस्परम् ।

पताका, ध्वजा, छत्र घोड़े सारथी और रथोंसे शून्य हो अङ्ग प्रत्यङ्गोंके कट जाने पर क्षीण हो, पृथ्वीमें गिरने लगे, हाथी तथा हाथीसवार भी वज्रसे तोड़े हुए पर्वतोंकी समान मरण पाकर, पर्वतों के शिखरसे ऊपरसे भरराकर गिरने लगे, सहस्रों मरे हुए छिन्न भिन्न अलंकार और कवचोंवाले घोड़े सवारों सहित टपाटप गिरने लगे, रथियोंने बहुतसे पैदलोंके आयुध तथा रथ तोड़, उनको मार डाला, ॥ ७०-७३ ॥ शूरोंने पैदलोंकी सहस्रों टोलियोंका संहार करडाला, युद्धचतुर योधाओंके ताँबेकी समान लाल२ विशाल नेत्रोंवाले, कमल और चन्द्रमाकी समान मुखोंसे पृथ्वी पट गई जैसे पृथ्वीमें भयङ्कर शब्द होरहा था, तैसेही आकाशमें भी विमानोंसे, अप्सराओंके झुँडोंसे और गाने बजानेकी ध्वनियों से, बड़ा द्वन्द मच रहा था, वीरोंके सामने लड़नेको आ उनके हाथों से मारे गये सैंकड़ो और सहस्रों योधाओंको अप्सरायें विमानों पर बैठा स्वर्गको लेजा रहीं थीं, उस बड़े आश्चर्यको प्रत्यक्ष देख,

रथिनो रथिभिः सार्द्धं चित्रं युयुधुराहवे ॥ ७८ ॥ पत्तयः पत्तिभिर्नागाः सह नागैर्हयैर्हयाः। एवं प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये७९ सैन्येन रजसा व्याप्ते स्वे स्वान् जघ्नुः परे परान्। कचाकचि युद्धमासीद्दन्तादन्ति नखानखि ॥ ८० ॥ मुष्टियुद्धं नियुद्धञ्च देहपाप्मासुनाशनम्। तथा वर्त्तति संग्रामे गजवाजिनरक्षये ८१ नराश्वगजदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा। नराश्वगजदेहान् सा व्युवाह पतितान् बहून् ॥ ८२ ॥ नराश्वगजसम्बाधे नराश्वरथसादिनाम्। लोहितोदा महाघोरा मांसशोणितकर्द्दमा ॥ ८३ ॥ नराश्वगजदेहानां वहन्ती भीरुभीषणा। तस्याः पारमपारञ्च व्रजन्ति विजयैषिणः ॥ ८४ ॥ गाधेन चोत्प्लवन्ति स्म निमज्यो-

योधा प्रसन्न हो स्वर्गकी उत्कंठाके साथ शीघ्रतासे एक दूसरेको मारनेलगे,युद्धमें रथी रथीसे विचित्र युद्ध करनेलगे,हाथी हाथियोंसे लड़ने लगे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे लड़ने लगे पैदल पैदलोंसे भिड़ गये युद्धमें इसप्रकार हाथी, घोड़े और मनुष्योंका संहार होने लगा, इस समय सेनाके पैरोंसे उड़ी धूलि आकाशमें छागई, तब अन्धकारके कारण कौरव कौरवों को ही और पांडव पांडवोंको ही मारने लगे, इतना ही नहीं हुआ वे एक दूसरेके बाल पकड़कर खसोटने लगे, दांतोंसे काटने लगे, नाखूनोंसे बकोटने लगे, एक दूसरेके घूँसे मारने लगे थप्पड़ मारने लगे; इसप्रकार शरीर, पाप और प्राणोंका नाश करनेवाला युद्ध होने लगा, इस प्रकार हाथी घोड़े और मनुष्योंके संहारका युद्ध चलरहा था,कि-हाथी घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंसे रुधिरकी नदी बहने लगी और उसमें पड़ेहुए बहुतसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीर तैरने लगे ॥ ७४-८२ ॥ सैनिक, घोड़े, और हाथियोंमें युद्ध चल रहा था,कि-तहाँ मांसरूपी कीचडवाली,डरपोकोंको डरानेवाली रक्तकी नदी बह निकली, विजयाभिलाषी शूर अपार नदीके पार पहुँचनेका प्रयत्न करने लगे ॥८३-८४॥

न्मज्य चापरे । ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ८५
सस्नुस्तस्यां पपुस्तस्यां मम्लुश्च भरतर्षभ । रथानश्वान्नरान्नागा-
नायुधाभरणानि च ॥ ८६ ॥ वसनान्यथ वर्माणि वध्यमानान्
हतानपि । खं द्यां भूमिं दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहितम् ॥८७॥
लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च । रूपेण चातिरिक्तेन
शब्देन च विसर्पता ॥८८॥ विषादः सुमहानासीत् प्रायः सैन्यस्य
मारिष । तत्तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखास्तदा ॥ ८९ ॥ भूयः
समाद्रवन् वीराः सात्यकिप्रमुखास्तदा । तेषामापततां वेगमविषह्यं
निरीक्ष्य च ॥ ९० ॥ पुत्राणां ते महत् सैन्यमासीद्राजन् पराङ्
मुखम् । तत् प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ॥९१॥ विध्वस्त-
चर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् । व्यद्रवत्तावकं सैन्यं लोड्यमानं

हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! उस नदीमें बहुतसे योधा तैरा रहे थे और बहुतसे योधा डुबकी मार उसकी तलीको छू आते थे, उनके शरीर, कवच, अस्त्र और वस्त्र लोहूलुहान होगए, कभी वे उसमें स्नान करने लगते थे कभी उसको पीने लगते थे और बहुतसे तो उसमें डूबकर मरगये, हमें उससमय मरेहुए और मारे जातेहुए रथ, घोड़े, हाथी तथा आयुध, गहने, वस्त्र, कवच, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिशा आदि सब ही रक्तमय दीखे ॥ ८५-८७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस रक्तकी गन्धसे, उसके स्पर्शसे उसके रस और रूपसे तथा उसके बहतेहुए सरसर शब्दसे सब सैनिकोंके चित्तमें बड़ा खेद होरहा था, इतनेमें ही भीम और सात्यकि आदि वीर पुरुष उस नष्टभ्रष्ट सेना पर फिर चढ़ आये, उनको आता देख अबकी बार अपनेमें उनके आक्रमणको सहनेकी शक्ति न होनेसे तुम्हारे पुत्रों की बड़ी भारी सेना भागने लगी, पांडवोंसे पीडित तथा जिसके कवच टूटगये थे, आयुध छिन्न भिन्न होरहे थे ऐसी हाथी घोड़े और सैनिकोंसे भरीहुई तुम्हारी सेना, वनमें सिंहसे दुःखित होतेहुए

समन्ततः ॥ सिंहार्दितमिवारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥४६॥

सञ्जय उवाच । तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम् । दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः ॥ १ ॥ योधांश्च स्वबलञ्चैव समन्ताद्भरतर्षभ । क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन्नयवर्त्तत ॥ २ ॥ ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः । तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन्रणे ॥ ३ ॥ कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्त्तराष्ट्रान् सराजकान् । मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति ४ एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा । हंसवर्णान् हयानग्र्यान् प्रैषीद्यत्र वृकोदरः ॥५॥ ते प्रेरिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।

हाथियोंके झुँडकी समान भागने लगी ॥८८-६२॥ उनञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन पांडवोंकी सेनाको चारों ओरसे तुम्हारी सेना पर चढकर आयी हुई देख कर तथा अपनी सेना और सहायक योधाओंको चारों ओरसे भागते हुए देखकर उनको रोकनेका उद्योग करने लगा वह चिल्लार कर पुकारने लगा परन्तु सेना पीछेको न लौटी ।१।२ तब तो सुबलपुत्र शकुनि दायें बायें और उनके पासमें खड़े हुए शस्त्रधारी कौरवोंको तथा उनके योधाओंको साथ लेकर भीमसेनसे लड़नेको आया ॥ ३ ॥ कर्णने भी दुर्योधनकी सेनाको राजाओंके साथ भागती हुई देखकर मद्रराजसे कहा, कि-हे शल्य ! तू अपने रथको भीमसेनके रथके पास लेचल ॥४॥ मद्रराज शल्यसे कर्णने कहा तब युद्धमें दिपते हुए शल्यने हंसकी समान श्वेतवर्ण के और उत्तम जातिके घोड़ोंको भीमके रथकी ओरको हाँका घोड़े भीमसेनके रथके सामने पहुँच सटकर खड़े

भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः । मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥ ७ ॥ सोऽब्रवीत् सात्यकिं वीरं, धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम् । यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥ संशयान्महतो मुक्तं कथञ्चित् प्रेक्षतो मम । अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ॥ ९ ॥ दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना । अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत ॥ १० ॥ हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति । संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥ राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददामि वै । तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति । सिंहनादेन महता सर्वाः सन्नादयन्दिशः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभि-

---

होगये ॥ ५ ॥ ६ ॥ भीमसेन कर्णको आतेहुए देखकर क्रोधमें भरगया और हे भरतसत्तम ! उसने कर्णको मार डालनेका विचार करके वीर सात्यकी तथा धृष्टद्युम्नसे कहा, कि-धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर बड़े भारी सङ्कटमेंसे बाल २ बचे हैं, अब तुम उनकी रक्षा करो, दुष्टात्मा कर्णने दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये मेरे सामने राजा युधिष्ठिरके रथका और उनकी सब युद्धसामग्रीका नाश करडाला इससे मुझे जो दुःख हुआ है, उस दुःखका आज मैं बदला लूँगा ॥ ७-१० ॥ आजके भयङ्कर संग्राममें या तो मैं कर्णका नाश करूँगा, नहीं तो वही मेरा नाश करेगा, यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ११ ॥ मैं आप सबोंको राजा युधिष्ठिर की रक्षाका काम सौंपता हूँ, इसलिये दूसरी सब चिन्ताओंको त्यागकर तुम उनकी ही रक्षाका यत्न करो ॥ १२ ॥ महाबाहु भीमसेन ऐसा कहकर सिंहनादसे सब दिशाओंको गुञ्जारताहुआ कर्णके सामने युद्ध करनेको चलदिया ॥ १३ ॥ भीमको युद्ध

नन्दिनम् । सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥१४॥ शल्य उवाच । पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम् । दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम् ॥ १५ ॥ ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन । अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे १६ त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे । बिभर्त्ति यादृशं रूपं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ १७॥ सञ्जय उवाच । इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप । अभ्यवर्त्तत वै कर्णं क्रोधदीप्तो वृकोदरः॥ १८ ॥ तथागतन्तु संप्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम् । अब्रवीद्वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥ १९ ॥ यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर । भीमसेनं प्रति विभो तत् सत्यं नात्र संशयः२० एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः । निरपेक्षः शरीरे च प्राण-

करनेके लिये हर्षके साथ झपटताहुआ आते देखकर मद्रराज शल्यने कर्णसे कहा ॥ १४ ॥ शल्य बोला, कि-हे कर्ण! देख, देख, महाबाहु भीमसेन बहुत दिनोंसे इकट्ठा कियाहुआ क्रोध तेरे ऊपर छोड़नेकी इच्छासे बड़ेही कोपमें भरकर चढ़ा चला आरहा है १५ पहले अभिमन्यु और राक्षस घटोत्कच मारेगये थे तब तथा और कभी किसी दिन भी मैंने भीमसेनका ऐसा रूप नहीं देखा था १६ भीमसेन ऐसा है, कि यदि क्रोध करे तो एकसाथ तीनों लोकोंको पीछेको हटा सकता है, उसने इस समय प्रलयकालके अग्निकी समान रूप धारण किया है ॥ १७ ॥ संजय कहता है, कि-हे राजन्! इसप्रकार मद्रराज कर्णसे कहरहा था, कि-इतनेमेंही क्रोधसे प्रदीप्त हुआ भीम कर्णके सामने आकर खड़ा होगया ॥१८॥ युद्धके चावमें भरेहुए भीमको चढ़कर आयाहुआ देखते ही कर्णने हँसते२ शल्यसे कहा, कि-१९ हे मद्रराज! तूने मुझसे भीमके विषयमें जो कहा है, वह सब सत्य है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, ॥ २० ॥ यह वृकोदर, वीर, क्रोधी, शरीर और प्राणों

तश्च बलाधिकः ॥ २१ ॥ अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा ।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ॥ २२ ॥ गूढभावं समा-
श्रित्य कीचकः सगणो हतः । सोऽद्य संग्रामशिरसि सन्नद्धः
क्रोधमूर्च्छितः ॥ २३ ॥ किंकरोद्यतदण्डेन मृत्युनापि व्रजेद्रणे ।
चिरकालाभिलषितो ममायन्तु मनोरथः ॥ २४ ॥ अर्जुनं समरे
हन्यां मां वा हन्याद्धनञ्जयः । स मे कदाचिदद्यैव भवेद्भीमसमा-
गमात् ॥ २५ ॥ निहते भीमसेने तु यदि वा विरथीकृते । अभि-
यास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति ॥ २६ ॥ अत्र यन्मन्यसे
प्राप्तं तच्छीघ्रं संप्रधारय । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौ-
जसः ॥२७॥ उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम् । अभियाहि
महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ॥ २८ ॥ निरस्य भीमसेनन्तु ततः

की परवाह न करने वाला तथा महाबली है, ॥ २१ ॥ इसने
विराटनगरमें अज्ञातवासके समय द्रौपदीको प्रसन्न करने के लिये
अपने मनके भावको गुप्त रखकर केवल बाहुबलसे ही कीचकको
और उसके आदमियोंको मारडाला था, वही भीम आज क्रोधमें
भरकर संग्राम के मुहाने पर लड़ने के लिये तयार हुआ खड़ा है
॥२२॥२३॥ यह संग्राममें हाथमें दण्ड लेकर खड़े हुए मृत्युके साथ
भी युद्ध कर सकता है, या तो मैं रणमें अर्जुन को मारूँगा, नहीं
तो अर्जुन ही मुझे मारडालेगा, यह मनोरथ बहुत दिनोंसे मेरे मन
में चला आता है, मालूम होता है वह मेरा मनोरथ भीमसेन के
समागमसे आजही पूरा होजायगा ॥ २४ ॥ २५ ॥ मैं भीमसेन
को मारडालूँगा अथवा उसको विना रथ का करडालूँगा, ऐसा
होते ही अर्जुन मेरे ऊपर चढ़कर आवेगा, बस मेरा काम सिद्ध
होजायगा॥२६॥इस विषयमें तुम्हें जो काम उचित मालूम होता हो वह
विचार करके मुझे झट बता, अपारतेजस्वी कर्णकी इस बातको सुन
कर॥२७॥शल्यने कर्णसे कहा कि–हे महाबाहु कर्ण! तू पहले महाबली
भीमसेनके साथ युद्धकर ॥ २८॥ उसको मारडालनेके बाद अर्जुन

प्राप्स्यसि फाल्गुनम् । यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात्प्रभृति हृद्गतः२९
स वै संपत्स्यते कर्ण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते । एवमुक्ते ततः कर्णः
शल्यं पुनरभाषत ॥ ३० ॥ हन्ताऽर्जुनमहं संख्ये मां वा हन्याद्ध-
नञ्जयः । युद्धे मनः समाधाय याहि यत्र वृकोदरः ॥ ३१ ॥
सञ्जय उवाच । ततः प्रायाद्रथेनाशु शल्यस्तत्र विशाम्पते । यत्र
भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम् ॥ ३२ ॥ ततस्तूर्यनिनादश्च
भेरीणाञ्च महास्वनः । उदतिष्ठच्च राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ३३
भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तव सैन्यं दुरासदम् । नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णै-
र्दिशः प्राद्रावयद्बली ॥३४॥ स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशा-
म्पते । आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३५ ॥ ततो

के साथ लडनेको जाना ऐसा करनेसे तेरे मनमें बहुत दिनोंसे जो चाहना चली आती है वह पूरी होजायगी, यह बात मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, इसप्रकार शल्यके कहने पर कर्णने शल्यसे फिर कहा कि- ॥ २९ ॥ ३० ॥ या तो मैं अर्जुनको मारूगा, नहीं तो अर्जुन ही मुझे मारेगा, जो होना है वह होगा परन्तु अब तो तू युद्धमें मनलगाकर जहाँ भीमसेन खड़ा है तहाँ मेरे रथको लेचल ॥ ३१ ॥ संजय कहता है कि- हे राजा धृतराष्ट्र ! जहाँसे महा-धनुषधारी भीमसेनने तुम्हारी सेनाको रणमेंसे भगाया था वहाँ रथको शल्य बड़ा फुर्तीसे लेगया ॥ ३२ ॥ हे राजेंद्र! जब कर्ण और भीमसेनका आमनेसामनेसे मुचैटा हुआ, उस समय नगाड़े और बिगुलोंका बड़ाभारी शब्द होनेलगा ॥ ३३ ॥ क्रोधमें भरेहुए भीमसेनने चमकते हुए तेज बाण मारकर कर्णकी दुरासद सेनाको चारों ओरको भगादिया ॥ ३४ ॥ हे महाराज धृतराष्ट्र ! कर्ण और पाण्डवोंके संग्राममें दोनों ओरके योधा एक दूसरेके ऊपर बड़े ही घोर और भयानक रूपसे टूट पड़े ॥ ३५ ॥

मुहूर्त्ताद्राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत् । तथापतन्तं संप्रेक्ष्य कर्णो वैकर्त्तनो वृषः ॥ ३६ ॥ आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३७ ॥ स विद्धः सूतपुत्रेण छादयामास पत्रिभिः । विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः ३८ तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः । अथैनं छिन्नधन्वानं मत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ३९ ॥ नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरण-भेदिना । सोऽन्यत् कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः ॥४०॥ राज-न्मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः । ननाद बलवन्नादं कम्प-यन्निव रोदसी ॥ ४१ ॥ तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत् । मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ४२ ॥ ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्छितः । सरम्भामर्षताम्राक्षः

एक मुहूर्त्तके बाद भीमने कर्णके ऊपर धावा किया, सूर्यपुत्र कर्ण भीमको चढ़कर आतेहुए देखकर बड़े क्रोधमें भरगया, उसने बाण मारकर भीमकी छाती चीरडाली, उसके ऊपर बहुतसे बाणोंकी वर्षा करडाली ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ भीमने भी कर्णको बाणोंसे छादिया और उसके नमेहुए पर्ववाले नौ तीखे बाण मारे ॥ ३८ ॥ कर्णने बाणोंके प्रहारसे भीमसेनके धनुषके दो टुकड़े करडाले और फिर सब प्रकारके आवरणोंको फोडदेनेवाले नाराच(फौ-लाद)के तीखे बाणोंसे उसकी छातीको बींधदिया, भीमने दूसरा धनुष हाथमें लेकर मर्मका जानकार होनेसे कर्णके मर्मस्थानोंको बाण मारकर चीरडाला और फिर आकाश तथा पृथ्वीको कम्पा-यमान करतेहुए उसने बड़ीभारी गर्जना की ॥ ३९-४१ ॥ वनमें मदोन्मत्त तथा घमण्डमें भरेहुए हाथीको जैसे उल्मुकोंसे (आग के ऊकोंसे) जलाया जाता है तैसेही कर्णने पचीस बाण मारकर भीमको झुलसा दिया ॥ ४२ ॥ कर्णके बाण लगनेसे भीमके अङ्ग घायल होगए, तब तो भीमको बड़ा क्रोध आया, आवेश तथा

सूतपुत्रवधेप्सया ॥ ४३ ॥ स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम् । गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत् ॥ ४४ ॥ विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादति मारुतिः । तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया ॥ ४५ ॥ स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः । अदारयद्रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम् ॥ ४६ ॥ स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह । निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः ॥४७ ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम् । अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम् ॥ ४८ ॥ ततः पराजिते कर्णे धार्त्तराष्ट्रीं महाचमूम् । व्यद्रावयद्भीमसेनो यथेन्द्रो दानवान् पुरा ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि,कर्णमूर्छायां पंचाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन सञ्जय । येन

क्रोधसे उसकी आँखे लाल लाल होगयीं, फिर बोझको सह सकने वाला तथा पहाड़को भी फाड़डालने वाला, बड़े वेगसे भरा उत्तम बाण धनुष पर चढ़ाकर उसको जोर से कानतक खींचा और महाबली भीमने कर्णको मारनेके लिये वह बाण उसके ऊपर छोड़ा, वज्रकी समान शब्द करनेवाले उस बाणने, जैसे वज्रका वेग पहाडको बींध डालता है तैसे ही रणमें खड़े हुए कर्णको बींधडाला ॥ ४३-४६ ॥ हे कुरुवंशी धृतराष्ट्र ! भीमके प्रहारसे सेनापति कर्ण मूर्छित होकर रथकी बैठक पर बैठ गया॥ ४७ ॥ युद्धमें दिपते हुए कर्णको मूर्छित हुआ देखकर मद्रराज शल्य उसके रथको रणभूमिमेंसे दूर लेगया ॥ ४८ ॥ कर्णकी पराजय हुई, कि- इन्द्रने जैसे पहले दानवोंकी सेनाको रणमेंसे भगादिया था तैसे ही भीमसेनने दुर्योधनकी सेनाको रणमेंसे भगादिया ॥ ४९ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय ! भीमने महाबाहु कर्णको

कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः ॥१॥ कर्णो ह्येको रणे हन्ता पांडवान् सृञ्जयैः सह । इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥ पराजितन्तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे । ततः परं किम-करोत् पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच विमुखम्प्रेक्ष्य-राधेयं सूतपुत्रम्महाहवे । पुत्रस्तव महाराज सोदर्य्यान् समभाषत ॥४॥ शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत । भीमसेनभयागाधे मज्ज-न्तं व्यसनार्णवे ॥ ५ ॥ ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनजिघांस-वः । अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गाः पावकं यथा ॥ ६ ॥ श्रुतर्वा-दुर्द्धरः क्राथो विविंत्सुर्विकटः समः । निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ७ ॥ दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्च्चसौ । धनुर्ग्राहो दुर्मदश्च जलसन्धः शलः सह ॥ ८ ॥ एते रथैः परि-वृता वीर्यवन्तो महाबलाः । भीमसेनं समासाद्य समन्तात् पर्य्य-

मूर्छित करके रथकी बैठकमें गिरा दिया यह बड़ा कठिन काम किया था ॥ १ ॥ दुर्योधन मुझसे वारंवार कहता था, कि—कर्ण अकेला ही रणमें पांडवोंको और सृञ्जयोंको मार सकता है ॥२॥ परन्तु कर्ण को तो भीमसेनने ही हरा दिया, यह देखकर मेरे पुत्र दुर्यो-धनने क्या किया ? ॥ ३ ॥ सञ्जयने कहा कि— हे राजन धृत-राष्ट्र ! महारणमें सूतपुत्र कर्णका पीठको हटाहुआ देखकर दुर्योधनने अपने सगे भाइयोंसे कहा, कि—॥ ४ ॥ हे भाई ! कर्ण भीमसेनके भयरूपी अगाध दुःखसागरमें डूबगया है, इसलिये तुम शीघ्र ही जाकर उसको इस दुःखमेंसे छुडाओ ॥ ५॥ दुर्योधन के आज्ञा देते क्षण ही पतङ्गे जैसे अग्निके ऊपर झुकपड़ते हैं तैसे ही अत्यन्त क्रोधमें भरहुए और महाबली श्रुतर्वा, दुर्धर क्राथ-विवित्सु, विकट, सम, कवची, पाशी , नन्द, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चस, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसन्ध, शल और सह रथियों से घिरकर भीमसेनके ऊपर को दौड़पड़े और उसके

वारयन् ॥ ९ ॥ ते व्यमुञ्चन् शरव्रातान् नानालिङ्गान् समन्ततः ।
स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः ॥ १० ॥ तेषामापततां
क्षिप्रम्पुत्राणां ते जनाधिप । रथैः पञ्चशतैः सार्द्धं पञ्चाशदहन-
द्रथान् ॥ ११ ॥ विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः ।
भीमसेनो महाराज तत् पपात हतम्भुवि ॥ १२ ॥ सकुण्ड-
लशिरस्त्राणम्पूर्णचन्द्रोपमन्तदा । तन्दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः
सर्वतः प्रभो ॥ १३ ॥ अभ्यद्रवन्त समरे भीमम्भीमपराक्रमम् ।
ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे ॥ १४ ॥ जहार समरे
प्राणान् भीमो भीमपराक्रमः । तौ धरामन्वपद्येतां वातरुग्णाविव
द्रुमौ ॥ १५ ॥ विकटश्च सहश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप । ततस्तु
त्वरितो भीमः क्राथन्निन्ये यमक्षयम् ॥ १६ ॥ नाराचेन सुती-
क्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि । हाहाकारस्ततस्तीव्रः सम्बभूव जनेश्वर

चारों ओरसे घेरलिया ॥ ६-९ ॥ अनेकों प्रकारके चिन्होंवाले वाण चारों ओरसे भीमसेनके ऊपर छोड़ने लगे और महाबली भीमसेन पीड़ा पानेलगा परन्तु भीमने तुरन्त ही चढ़कर आये हुए तुम्हारे पुत्रोंके पाँच सौ रथोंका और पचास रथियोंका नाश करडाला तथा क्रोधमें भरकर भल्लसे विवित्सु का मस्तक उडा दिया, कुण्डल और टोप पहरे, पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान वह मस्तक एकसाथ भूमिपर गिरपड़ा, हे राजन् ! दूसरे भाई अपने वीर भाईको रणमें मराहुआ देखते ही भयानक पराक्रम करनेवाले भीमसेनके ऊपर चारोंओरसे टूटपड़े, तदनन्तर उस महासंग्राममें भयानक पराक्रमी भीमने भल्लजातिके दूसरे दो वाण मारकर तुम्हारे दो पुत्रोंको मार डाला वे दोनों पवनके तोड़ेहुए दो वृक्षों की समान पृथिवी पर गिरगये ॥ १०-१५ ॥ हे राजन् ! देवपुत्रों की समान विकट और सह नामके वे दोनों राजकुमार मरगये तब तुरन्त ही भीमने क्राथको यमपुरीमें भेजदिया ॥१६॥ वह नाराच

॥ १७ ॥ वध्यमानेषु वीरेषु तव पुत्रेषु धन्विषु । तेषां संलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः ॥ १८ ॥ नन्दोपनन्दौ समरे प्रैषयद्यमसादनम् । ततस्ते प्राद्रवन् भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः ॥ १९ ॥ भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् । पुत्रांस्ते निहतान् दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः ॥ २० ॥ हंसवर्णान् हयान् भूयः प्राहिणोद्यत्र पाण्डवः । ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ॥ २१ ॥ भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः । स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ॥ २२ ॥ आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे । दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ॥२३॥ आसीद्बुद्धिः कथं युद्धमेतदद्य भविष्यति । ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः ॥ २४ ॥ कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तव पश्यताम् । ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ॥ २५ ॥

नामके वडे तेज वाणसे मरकर भूमिमें ढहपडा हे राजन् ! उस समय रणमें वडाही हाहाकार मचा ॥ १७ ॥ इसप्रकार भीमसेन तुम्हारे धनुषधारी पुत्रोंका तथा सेनाका संहार करने लगा, फिर जब महावली भीमने नन्द उपनन्द नामके तुम्हारे पुत्रोंको यमपुरीमें भेजदिया, तब तो तुम्हारे पुत्र भयभीत और विह्वल होकर रणमेंसे भागगये ॥१८॥१९॥ भीमको प्रलय कालके यमराजकी समान रणमें घूमताहुआ और तुम्हारे पुत्रोंको मराहुआ देखकर कर्णके मनमें वडा खेद हुआ२०और उसके आज्ञा देने पर शल्य ने हंसकी समान श्वेत रङ्गके घोडोंको आगे वढ़ाया, वे वेगवाले घोड़े कर्णके रथको भीमसेनके रथके वहुत समीप लेगये और हे राजन् ! कर्ण तथा भीममें महाभयानक युद्ध होने लगा, हे महाराज ! उन दोनों महारथियोंको इकट्ठे हुए देखकर मेरे मनमें यह विचार उठा, कि–आज इन दोनोंमें न जाने कैसा युद्ध होगा ? इतनेमेंही रणमें प्रशंसा पानेवाले भीमने तुम्हारे पुत्रोंको देखतेही वाण मार

विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः सन्नतपर्वभिः । आहतः स महाबाहु-
र्भीमो भीमपराक्रमः ॥२६॥ आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध
सप्तभिः । ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन् ॥ २७ ॥
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम् । भीमोऽपि तं शरव्रातै-
श्छादयित्वा महारथम् ॥ २८ ॥ पश्यतां कौरवेयाणां विननाद
महाबलः । ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम् ॥२९॥
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः । कार्मुकञ्चास्य
चिच्छेद भल्लेन निशितेन च ॥ ३० ॥ ततो भीमो महाबाहुर्हेम-
पट्टपरिष्कृतम् । परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ ३१ ॥
कर्णस्य निधनाकांक्षी चिक्षेपातिबलो नदन् । तमापतन्तं परिघं वज्रा-

---

कर कर्णको छादिया, इसपर कर्णको बडा क्रोध चढआया, अस्त्र-
विद्यामें परमकुशल कर्णने लोहेके भल्ल नामक नौ बाण मारकर
भीमसेनको अच्छे प्रकारसे बींधदिया, भयानकपराक्रमी महाबाहु
भीमने कर्णके बाणोंसे घायल होकर ॥२१-२६॥ धनुषको कान
तक खींचकर कर्णके सात बाण मारे, हे महाराज ! तब तो कर्ण
विषधर सर्पकी समान फुङ्कारें मारनेलगा ॥ २७ ॥ और बाणों
की बडी भारी वर्षासे भीमसेनको ढकदिया, तब भीमने भी उस
महारथीको बाणोंकी मारसे ढकदिया ॥ २८ । और कौरवोंके
सामने वह महाबली बड़े जोरसे गरजा, तब तो कर्णने बड़े ही क्रोधमें
भरकर एक दृढ धनुष उठाया ॥ २९ ॥ और उसके ऊपर कङ्क
पक्षीके परोंवाले तथा सानपर तेज किये हुए दश बाण चढाकर
उसको बींध दिया तथा भल्ल नामक तेजबाणसे उसके धनुषको
काटडाला ॥३०॥ तब तो महाबली और महाबाहु भीमने सोनेकी
पट्टीसे शोभायमान और यमराजके दूसरे दण्डकी समान एक
घोर परिघ हाथमें उठाया ॥३१॥ और उस महाबलीने कर्णको-
मार डालनेकी इच्छासे बडीभारी गर्जना करके उसको फेंका, वज्र-

शनिसमस्वनम् ॥ ३२ ॥ चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषो-
पमैः । ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा ॥ ३३ ॥ छादया-
मास विशिखैः कर्णं परबलार्दनः । ततो युद्धमभूद् घोरं कर्ण-
पाण्डवयोर्मृधे ॥ ३४ ॥ हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः ।
ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३५ ॥ आकर्णमूलं
विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम् । सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन
बलिनाम्वरः ॥ ३६ ॥ घोरमादत्त विशिखं कर्णकायविदारणम् ।
तस्य छित्वा तनुत्राणं भित्वा कायञ्च सायकः ॥ ३७ ॥ प्रावि-
शद्धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः । स तेनातिप्रहारेण व्यथितो
विह्वलन्निव ॥ ३८ ॥ सञ्चचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथा-
चलः । ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः ॥ ३९ ॥ भीमं
तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् । आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वे-

पातकी समान शब्द करनेवाले उस परिघको आता देखकर। ३२। कर्णने विषधर सर्पोंकी समान बाण मारकर उसके बहुतसे टुकड़े करडाले तब तो भीमने उस समय और भी दृढ़ धनुष लिया।३३। और शत्रुसेनाका नाश करनेवाले कर्णको बाणोंसे दबादिया, इस प्रकार युद्ध चलनेपर एक दूसरेका नाश करना चाहनेवाले कर्ण और भीमसेनमें वाली और सुग्रीवकी समान महाघोर युद्ध होने लगा, हे महाराज ! कर्णने दृढ़ धनुषको कानों तक खींच महाबली भीमको तीन बाण मारकर बींधदिया और महाधनुषधारी भीमने कर्णकी कायाको चीर डालनेवाला भयानक बाण मारा, जो कर्णके कवच और शरीरको फोड़कर साँपके बिलमें घुसनेकी समान भूमिमें घुसगया, भूचाल होनेके समय जैसे पहाड़ डगमगाने लगता है तैसेही कर्ण भी इस महाप्रहारकी पीड़ासे विह्वल होकर रथमें काँपने लगा, परन्तु हे महाराज ! अगलेही क्षणमें कर्ण बड़े क्रोधमें भरगया और उससे यह अपमान सहा नहीं गया ॥ ३४-३९ ॥ उसने भीमसेनके पचीस नाराच बाण मारे,

जमेकेषुणाहनत् ॥४०॥ सारथिञ्चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे । छित्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा ॥ ४१ ॥ ततो मुहूर्त्ताद्राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव । विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥ ४२ ॥ विरथो भरतश्रेष्ठ प्रहसन्ननिलोपमः । गदां गृह्य महाबाहुरपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४३ ॥ अवप्लुत्य तु वेगेन तव सैन्यं विशाम्पते । व्यधमद् गदया भीमः शरन्मेघानिवानिलः ४४ नागान् सप्तशतान्राजन्नीषादन्तान् प्रहारिणः । व्यधमत् सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परन्तपः ॥ ४५ ॥ दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु च कटेषु च । मर्मस्वपि च मर्मज्ञस्तान्नागानहनद्बली ॥ ४६ ॥ ततस्ते प्राद्रवन् भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः । महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव

फिर बहुतसे बाण मारकर एक बाणसे उसकी ध्वजा काट डाली ॥ ४० ॥ भल्लसे उसके सारथीको यमलोकमें भेजदिया, और एक तीरसे फुरतीके साथ भीमसेनके धनुषको भी काट डाला ॥ ४१ ॥ और हे राजेंद्र ! फिर एक मुहूर्त्तमें ही मानो खेल कररहा हो, इसप्रकार हँसतेर कर्णने भयङ्कर कर्म करनेवाले भीम को रथहीन करडाला ॥ ४२ ॥ हे भरतसत्तम ! पवनकी समान वेगवाला भीमसेन रथके टूटतेही खिलखिलाके हँसता हुआ गदा लेकर वेगके साथ अपने बड़ेभारी रथपरसे नीचे कूदपड़ा और पवन जैसे शरद्ऋतुके मेघोंको नष्टभ्रष्ट करडालता है तैसेही गदासे तुम्हारी सेनाका संहार करनेलगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! क्रोधमें भरेहुए परन्तप भीमने हलके अग्रभागकी समान दाँतोंवाले युद्ध करते हुए सातसौ हाथियोंको जराही देरमें मारडाला॥४५॥ मर्मस्थानोंको जाननेवाले बलवान् भीमने हाथियोंके होठ, आँखें, शिर और कनपटियोंपर तथा मर्मस्थानों पर प्रहार करना आरंभ करदिया ॥ ४६ ॥ तब तो हाथी भयके मारे रणमेंसे भागने लगे, परन्तु महावतोंने उनको फिर शत्रुओंकी ओरको हाँका, तब तो

दिवाकरम् ॥ ४७ ॥ तान् स सप्तशतान् नागान् सारोहायुधकेतनान् । भूमिष्ठो गदया जघ्ने वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ४८ ॥ ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान् पुनः । पोथयामास कौन्तेयो द्वापञ्चाशदरिन्दमः ॥ ४९ ॥ तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान् । न्यहनत् पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम् ॥ ५० ॥ प्रताप्यमानं सूर्य्येण भीमेन च महात्मनः । तव सैन्यं सञ्चुकोच चर्माग्नावाहितं यथा ॥ ५१ ॥ ते भीमभयसन्त्रस्तास्तावका भरतर्षभ । विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ ५२ ॥ रथाः पञ्चशताश्चान्ये हार्दिनश्च सुवर्मिणः । भीममभ्यद्रवन् घ्नन्तः शरपूगैः समन्ततः ॥ ५३ ॥ तान् स पञ्चशतान् वीरान् सपताकाध्वजायुधान् । पोथयामास गदया भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥ ५४ ॥ ततः शकुनिनिर्दिष्टाः

जैसे मेघ सूर्यको घेरलेते हैं तैसेही उन हाथियोंने भीमसेनको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ४७ ॥ परन्तु जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतोंके ऊपर प्रहार किये थे, तैसेही भीमने भूमिपर खड़े२ सातसौ हाथियों को और उनके महावतोंको गदाके प्रहारसे मारडाला और उनके आयुधों तथा ध्वजाओंके टुकड़े २ करडाले ॥ ४८ ॥ फिर शकुनिके महाबली बावन हाथियोंको मारडाला, एकसौ एक रथों का तथा सैंकड़ों पैदलोंका रणमें संहार करडाला और फिर भीमने तुम्हारी सेनाको घबड़ादिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सूर्यकी धूपसे घबड़ायी हुई तुम्हारी सेनाको महात्मा भीमने संताप देना आरंभ करदिया, उस समय जैसे अग्निमें डालाहुआ चमड़ा सुकड़ जाता है, तैसेही तुम्हारा सेनादल सुकड़ने लगा ॥ ५१ ॥ हे भरतसत्तम ! तुम्हारी सेनाके वे सब लोग भीमसेनके भयसे घबड़ा लड़ाईके मैदानमेंसे भीमसेनको छोड़कर चारों ओरको भाग निकले ॥ ५२ ॥ तो भी ढाल और कवचधारी पाँचसौ रथी भीमसेनके ऊपर चढ़ायी करके चारों ओरसे उसके ऊपर

सादिनः शूरसम्मताः । भिसांहस्राभ्ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः
॥ ५५ ॥ प्रत्युद्गम्य जवेनाशु साश्वारोहांस्तदारिहा । विविधान्
विचरन्मार्गान् गदया समपोथयत् ॥ ५६ ॥ तेषामासीन्महाञ्छब्द-
स्ताडितानाञ्च सर्वशः।अश्मभिर्भिद्यमानानां नागानामिव भारत५७
एवं सुबलपुत्रस्य भिसाहस्रान् हयोत्तमान्। हत्वान्यं रथमास्थाय
क्रुद्धो राधेयमभ्ययात् ॥ ५८ ॥ कर्णोऽपि समरे राजन् धर्मपुत्र-
मरिंदमम् । स शरैश्छादयामास सारथिञ्चाप्यपातयत् ॥ ५९ ॥
ततः स प्रद्रुतः संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः । अन्वधावत् किरन्वाणैः

वाणोंकी मारामार करते ही रहे, परन्तु जैसे विष्णुने असुरोंका संहार किया था तैसेही भीमने गदाकी मारसे उन पाँचसौ शूरों को भी मारडाला और उनकी पताकायें ध्वजायें तथा आयुधोंके टुकड़े करडाले, तव शकुनिने शूरोंमें संमान पायेहुए तीनहजार घुडसवारोंको भीमसेनके ऊपर धावा करनेकी आज्ञा दी, वह सेना हाथमें शक्ति, ऋष्टि और प्रास ,लेकर भीमसेनके सामने गयी ॥ ५३-५५ ॥ शत्रुनाशक भीमने फुरतीसे उन घुड़सवारोंके सामने पहुंचकर और युद्ध करनेकी अनेकों रीतियोंसे रणमें घूमकर उस घुडसवार सेनाको गदासे कुचलडाला ॥ ५६ ॥ जव भीमसेन उस सेनाको गदासे मारने लगा उस समय हे भारत ! जैसे पत्थरोंकी मार पडने पर हाथी शब्द करते हैं तैसे ही वे सव आर्त्तशब्द करने लगे ॥ ५७ ॥ शकुनिके तीन हजार श्रेष्ठ घुडसवारोंको मारनेके अनन्तर दूसरे रथमें वैठ क्रोधमें भरा हुआ भीमसेन फिर कर्णके ही सामने लड़नेको जापहुँचा ॥ ५८ ॥ परन्तु इस समय कर्ण और युधिष्ठिरका आपसमें युद्ध चल रहा था उसमें हे राजन् ! कर्णने शत्रुहन्ता राजा युधिष्ठिरको वाणोंके समूहसे ढकदिया और उनके सारथीको मारडाला, इस लिये धर्मराज स्वयं ही रथको हाँककर रणमेंसे लेजाने लगे, तव

कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥६०॥ राजानमभिधावन्तं शरैरावृत्य रोदसि। क्रुद्धः प्राच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥६१॥ संनिवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्षणः। भीमं प्राच्छादयामास समन्तान्निशितैश्शरैः ॥६२॥ भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः। अभ्यर्द्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ६३ ॥ अभ्यवर्त्तत कर्णस्तमर्द्दितोऽपि शरैर्भृशम्। तावन्योऽन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥ ६४ ॥ विसृजन्तौ शरांश्चित्रान् विभ्राजेतां मनस्विनौ। ताभ्यां वियति राजेन्द्र विततं भीमदर्शनम् ॥ ६५ ॥ क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत। नैव सूर्य्यप्रभा राजन् न दिशः प्रदिशस्तथा ६६

महारथी कर्ण कङ्क पक्षीके परोंवाले और सीधे जानेवाले बाणोंकी मारामार करताहुआ उनके पीछे पड़गया उस समय कर्ण बाणोंकी वर्षासे पृथ्वी और आकाशको भरकर राजा युधिष्ठिरके पीछे दौड़रहाथा, परन्तु इतनेमें ही पवनपुत्र भीमसेनने क्रोधमें भरकर बाणोंके जालसे उसको ढकदिया ॥ ५६– ६१॥ तुरन्त ही शत्रुहन्ता राधापुत्र कर्ण युधिष्ठिरके पीछे न जाकर पीछेको लौटपड़ा और तेज किये हुए तीर मारकर भीमसेनको चारों ओरसे ढकदिया ॥६२॥ हे भरतवंशी राजन्! कर्णको भीमके रथके ऊपरको चढाई करते देख दृढ मनवाले सात्यकीने पकड़ने के लिये उसके ऊपर पीछेको धावा करदिया और बाणों की मारसे उसको बहुत ही पीडा देनेलगा, तो भी कर्ण जरा भी विचलित नहीं हुआ, किन्तु भीमसेनके ऊपर चढायी करता ही रहा बड़े मनवाले और महाधनुषधारी कर्ण तथा भीमसेनका आमनेसामने मुचेटा हुआ भीम तेज बाणोंकी मारामार करनेलगा, दोनोंने आकाशमें क्रौंच पक्षीकी पीठकी समान लाल रङ्गके बाणोंका जाल पूरदिया हजारों भयानक बाण छोड़े जारहे थे, इसलिये हे राजन्! हम या वह सूर्यके प्रकाशको दिशाओंको तथा तथा उपदिशाओंको

प्राज्ञासिष्म वयं ते वा शरैर्मुक्तैः सहस्रशः । मध्यान्हे तपतो राजन्
भास्करस्य महाप्रभाः ॥ ६७ ॥ हृताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णपा-
ण्डवयोस्तदा । सौबलं कृतवर्माणं द्रौणिमाधिरथिं कृपम् ॥ ६८ ॥
संसक्तान् पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ता कुरवः पुनः । तेषामापततां शब्द-
स्तीव्र आसीद्विशाम्पते ॥ ६९ ॥ उद्वृत्तानां यथा वृष्ट्या साग-
राणां भयावहः । ते सेने भृशसंसक्ते दृष्ट्वान्योऽन्यं महाहवे ॥७०॥
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम् । ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते
दिवाकरे ॥ ७१ ॥ तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।
बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे ॥ ७२ ॥ उपासर्पत
वेगेन वार्योघ इव सागरम् । आसीन्निनादः सुमहान् बाणौघानां
परस्परम् ॥ ७३ ॥ गर्ज्जतां सागरौघानां यथा स्यान्निस्वनो

देख वा जान नहीं सकते थे, हे राजन् ! मध्यान्हका सूर्य तप रहा था तो भी कर्ण और भीमके बाणजालने सूर्यकी महाकान्ति को ढकही दिया था, कौरवोंकी जो सेना पहले भागगयी थी वह शकुनि, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यको पाण्डवोंके साथ युद्ध करते देखकर फिर लौट आयी, उस कौरवोंकी सेनाके पीछेको लौटते समय ऐसा भयानक कोलाहल हुआ, कि–मानो जलकी वर्षासे उफनतेहुए महासागरका भयानक शब्द होरहा है, दोनों सेनायें एक दूसरेको देखकर बड़े हर्षमें भरगयीं, एक दूसरीके सामने आकर सटगयीं, समय मध्यान्हका था, उस समय दोनोंमें युद्ध होने लगा, वह युद्ध ऐसा हुआ कि–हमने पहले कभी ऐसा घमासान न देखा था न सुना था, जैसे जलका प्रवाह वेगके साथ समुद्रमें जाकर मिलता हो तैसेही एक सेनाका समूह दूसरी सेनाके साथ बड़े जोरसे जाभिड़ा और एक दूसरेके ऊपर बड़ी मारामार करने लगे, जैसे गर्जना करतेहुए समुद्रका बड़ाभारी शब्द होता है तैसेही युद्ध करनेवाले योधाओंके आपसमें छोड़े

महान् । ते तु सेने समासाद्य वेगवत्यौ परस्परम् ॥७४॥ एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे । ततः प्रवृत्ते युद्धं घोररूपं भयानकम् ॥ ७५ ॥ कुरूणां पाण्डवानाञ्च लिप्सतां सुमहद्यशः । शूराणां गर्जतां तत्र ह्यविच्छेदकृता गिरः ॥ ७६ ॥ श्रूयन्ते त्रिविधा राजन्नामान्युद्दिश्य भारत । यस्य यद्धि रणे व्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा ॥ ७७ ॥ कर्मतः शीलतो वापि स तच्छ्रावयते युधि । तान् दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जमानान् परस्परम् ॥ ७८ ॥ अभवन्मे मती राजन्नैषामस्तीति जीवितम् । तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम् ॥ ७९ ॥ अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद्भविष्यति । ततस्ते पाण्डवा राजन् कौरवाश्च महारथाः ॥८० ॥ ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम् ॥ ८१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकपंचाशोऽध्यायः॥५१॥

हुए बाणोंका वडाभारी शब्द होनेलगा ॥ ६३–७३ ॥ जैसे दो नदियें एक दूसरीके साथ मिलती हों तैसेही कौरव और पांडवों की दोनों सेनायें एक दूसरीके साथ रेलमेल होगयीं, वड़ेभारी यशको चाहनेवाले कौरव और पाण्डवोंमें महाभयानक युद्ध होने लगा ॥७४-७५॥ हे राजन् ! वीर पुरुष रणमें अपना२ नाम लेकर गरज रहे थे, उनकी भाँतिरकी बोलियें वरावर सुननेमें आरही थीं, जिनको अपने माता पिताके कर्म और शीलका जो कुछ गौरव था वे उसको युद्धमें वारम्वार सुनारहे थे, जब वे युद्धमें एक दूसरेका तिरस्कार करते थे, उस समयही मेरे मनमें यह विचार उठता था, कि–ये योधा अव जीवित नहीं रहसकते, अपारतेजस्वी और क्रोधमें भरेहुए उन शूरोंके शरीरोंको देखकर मेरे मनमें वडा भय हुआ, कि–ये शूर अब कैसे जीवित रह सकेंगे? हे राजन् ! पाण्डवोंकी ओरके तथा कौरवोंकी ओरके महारथी एक दूसरेको तेज तीर मारकर घायल करनेलगे॥७९–८१॥

इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः । अन्योऽन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम् ॥ १ ॥ रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः । गजौघाश्च महाराज संशक्ताश्च परस्परम् ॥ २ ॥ गदानां परिघानाञ्च कुणपानाञ्च क्षिप्यताम् । प्रासानां भिन्दिपालानां भुशुण्डीनाञ्च सर्वशः ॥ ३ ॥ सम्पातं चानुपश्यामः संग्रामे भृशदारुणे । शलभा इव सम्पेतुः शरवृष्ट्या समन्ततः ॥ ४ ॥ नागा नागान् समासाद्य व्यधमन्त परस्परम् । हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा ५ पत्तयः पत्तिसंघांश्च हयसंघांश्च पत्तयः । पत्तयो रथमातङ्गान् रथा हस्त्यश्वमेव च ॥ ६ ॥ नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप । वध्यतां तत्र शूराणां क्रोशताञ्च परस्परम् ॥ ७ ॥ घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा । रुधिरेण समास्तीर्णा भाति

संजय कहता है, कि-हे महाराज! जिनका आपसमें वैरभाव था वे क्षत्रिय एक दूसरेका नाश करनेकी इच्छासे आपसमें मारकाट करने लगे ॥ १ ॥ रथ, घोड़े, मनुष्य और हाथियोंके समूह आपसमें भिड़कर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥ उस संग्राममें गदा, परिघ, कुणप, प्रास, भिन्दिपाल और भुशुण्डियोंकी दारुण मारामार भी होनेलगी इसको हमने प्रत्यक्ष देखा था, चारों ओरसे टीडीदलकी समान बाणवर्षा होनेलगी ॥ ३ ॥ ४ ॥ हाथी हाथियोंके सामने, घुडसवार घुडसवारोंके सामने, रथी रथियोंके सामने, पैदल पैदलोंके सामने, ऐसेही पैदल घुडसवारोंके सामने तथा रथी और हाथीसवार योधाओंके सामने जाकर, ऐसेही रथी हाथी तथा घुडसवारोंके सामने होकर एक दूसरेका संहार करनेलगे, हे राजन् ! हाथी, घोड़े तथा पैदल बड़ी शीघ्रतासे आपसमें एक दूसरेको मार काट रहे थे, योधा परस्परका वध करते हुए चिल्ला रहे थे ॥ ५-७ ॥ इसकारण रणभूमि पशुओं

भारत मेदिनी ॥ ८ ॥ शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा ।
यथा वा वाससी शुक्ले महारञ्जनरञ्जिते ॥ ९ ॥ बिभ्रयाद्युवती
श्यामा तद्वदासीद्वसुन्धरा । मांसशोणितचित्रेव शातकुम्भमयीव
च ॥ १० ॥ भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनाञ्चोरुभिः सह ।
कुण्डलानां मवृद्धानां भूषणानाञ्च भारत ॥ ११ ॥ निष्काणा-
मथ शूराणां शरीराणाञ्च धन्विनाम् । चर्मणां सपताकानां संघा-
स्तत्रापतन् भुवि ॥ १२ ॥ गजा गजान् समासाद्य विषाणैरार्द-
यन्नृप । विषाणाभिहतास्तत्र भ्राजन्ते द्विरदास्तथा ॥ १३ ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव । यथा भ्राजन्ति स्यन्दन्तः
पर्वता धातुमण्डिताः ॥ १४ ॥ तोमरान् सादिभिर्मुक्तान् प्रतीपा-
नास्थितान् बहून् । हस्तैर्विचेरुस्ते नागा बभञ्जुश्चापरे तथा १५

के वधस्थानकी समान भयानक दीखने लगी थी, हे भरत-वंशी राजन् ! वर्षाकालमें इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक लाल जीवोंसे लाल२ हुई भूमिकी समान लोहूलुहान हुई रणभूमि भी लाल२ दीखरही थी अथवा कुसुम्भी रङ्गसे रँगीहुई दो स्वेत साड़ियों को पहरकर खडीहुई तरुणी स्त्री जैसी शोभा पाती है तैसेही मांस और रुधिरसे विचित्र मालूम होनेवाली रणभूमिभी सुवर्णमयीसी सुशोभित होरही थी८–१०हे भरतवंशी राजन् ! इस लड़ाईमें धनुष-धारी वीरोंके मस्तक, भुजदण्ड, जङ्घायें, कवच, पताकायें, कुण्डल, कण्ठे तथा दूसरे उत्तमोत्तम गहने छिन्न भिन्न होकर इधर उधर बिखरे पड़े थे, हाथी हाथियोंके साथ भिड़कर दाँतोंसे आपस में वार कररहे थे, दाँतोंसे घायल हुए हाथियोंके शरीर लोहूलुहान होगये थे, इसलिये ये गेरुआ झरनोंको बहाने वाले भाँति २ की धातुओंसे शोभायमान पर्वतोंसे मालूम होतेथे ॥११–१४ ॥ कितने ही हाथी घुड़सवारोंके मारे हुए भालोंको तथा बहुतसे शत्रुओं को अपनी शुण्डोंमें लेकर रणभूमिमें दौडरहे थे, कितनेही उनके

नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ति स्म गजोत्तमाः । हिमागमे महाराज व्यभ्रा इव महीधराः ॥ १६ ॥ शरैः कनकपुंखैश्च जिता रेजुर्गजोत्तमाः । उल्काभिः संप्रदीप्ताग्राः पर्वता इव भारत ॥ १७॥ केचिदभ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः । विनेशुः समरे तस्मिन् पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ १८ ॥ अपरे प्राद्रवन्नागाः शल्यार्त्ता व्रणपीडिताः । प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १६ ॥ विनेदुः सिंहवच्चान्ये नन्दतो भैरवान् रवान् । बभ्रमुर्बहवो राजंश्चुक्रुशुश्चापरे गजाः ॥ २० ॥ हयाश्च निहता बाणैः स्वर्णभाण्डपरिच्छदाः । निपेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ २१ ॥ अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले । भावान् बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः

टुकड़े २ करके फेंकरहे थे ॥ १५ ॥ और कितने ही हाथियोंके बख्तर बाणोंसे कटगये थे, वे शीतकालमें विना बादलोंके पर्वतों की समान सुन्दर मालूम होरहे थे ॥ १६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! पर्वतोंके शिखर जैसे मसालोंसे चमकने लगते हैं तैसेही शरीरोंमें गुभे हुए सोनेके परोंवाले बाणोंसे बड़े २ हाथी शोभा पारहे थे ॥ १७ ॥ रणमें कितनेही हाथियोंने पहाड़ोंकी समान ऊँचे हाथियोंको घायल करडाला था, वे हाथी पंखोंवाले पहाडोंकी समान रणभूमिसे भागरहे थे ॥ १८ ॥ कितनेही हाथी शरीरोंमें गुभेहुए शल्योंसे होनेवाले व्रणोंकी पीडाके कारण दाँतोंके मध्यभाग तथा शिरसे महासंग्राममें पृथिवी पर गिररहे थे ॥ १६ ॥ कितने ही हाथी सिंहोंकी समान गर्जना कर रहे थे, कितने ही रणभूमिमें इधर उधरको दौडभाग कररहे थे और कितने ही हाथी चिल्लारहे थे ॥ २० ॥ सोनेके साजसे सजेहुए कितने ही घोड़े तीरोंकी मारसे घायल होकर भूमिपर बैठे जाते थे, कितने ही मररहे थे और कितने ही दशोंदिशाओंमेंको भागे जारहे थे ॥ २१ ॥ बाणोंसे और भालों से घायल कियेहुए कितनेही घोड़े

शरतोमरैः ॥ २२ ॥ नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष । दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितृनन्ये पितामहान् ॥ २३ ॥ धावमानान् परांश्चान्यान् दृष्ट्वान्ये तत्र भारत । ख्यातानि गोत्रनामानि शशंसुरितरेतरम् ॥२४॥ तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः । उद्वेष्टंते विचेष्टंते पतन्ते चोत्पतंति च ॥ २५ ॥ निपतन्ति तथैवान्ये स्फुरन्ति च सहस्रशः । वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥२६॥ ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशाम्पते । लोहिताद्र्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥ २६ ॥ वर्त्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतो दिशम् । अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ २८ ॥ भौमेन रजसाकीर्णे शस्त्रसम्पातसंकुले । नैव

भूमिपर लोटे पड़े थे और अनेकों प्रकारकी चेष्टायें कररहे थे।२२। हे राजन्! कितनेही योधा शस्त्रोंके प्रहारोंसे घायल होकर भूमिपर गिर पड़े थे और वे अपने बांधव, पिता और पितामहोंको देखकर अड़खड़ाती हुई वाणीमें पुकार रहे थे ॥ २३ ॥ और कितने ही योधा दूसरे योधाओंको भागते हुए देखकर अपने प्रसिद्ध गोत्र और नामोंका परिचय देरहे थे ॥२४॥ हे राजन् ! इस लड़ाईमें सोनेके गहनोंसे सजेहुए सहस्रों भुजदण्ड, जो साँपोंके शरीरसे दीखते थे और चन्दनसे चर्चित थे वे रणभूमिमें गिरकर ऊपरको उछल जाते थे और फिर नीचे आकर गिरजाते थे,कितनेही भुजदण्ड वेगसे फड़क रहे थे और कितने ही पाँच शिरवाले सर्पोंकी समान रणमें वेगमें भरकर फड़कते थे, लोहूलुहान हुए और सर्पों के शरीरसे दीखते हुए वे भुजदण्ड सोनेके ध्वजदण्डोंकी समान बडी शोभा पारहे थे ॥ २५-२७ ॥ इसप्रकार सब दिशाओं में घोर युद्ध होनेलगा, योधा एक दूसरेको न पहचाननेके कारण आपस में एक दूसरेका संहार करने लगे ॥ २८ ॥ पृथिवीकी धूलि से रणभूमि ढकगयी, भूमि शस्त्रोंके प्रहारसे भयानक होगयी इस

स्वे न परे राजन् व्यज्ञायन्त तमोवृताः ॥ २९ ॥ तथा तदभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् । शोणितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत् ॥ ३० ॥ शीर्षपाषाणसंछन्ना केशशैवलशाद्वला । अस्थिमीनसमाकीर्णा धनुःशरगदोडुपाः ॥ ३१ ॥ मांसशोणितपङ्किन्यो घोररूपाः सुदारुणाः।नदीःप्रावर्त्तयामासुः शोणितौघप्रवर्त्तिनीः ३२ भीरुवित्रासकारिण्यः शूराणां हर्षवर्द्धनाः । ता नद्यो घोररूपास्तु नयन्त्यो यमसादनम् ॥ ३३ ॥ अवगाढान्मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन् भयम् । क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ॥३४॥ घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम् । उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥३५॥ नृत्यन्ति च भूतगणाः सुतृप्ता मांसशो-

---

लिये अन्धकारसे ढकेहुए योधा अपने या परायेको पहचानभी न सके॥ २९ ॥ यह युद्ध ऐसा घोर और भयानक था, कि-रणभूमिमें वारंवार रुधिरकी नदियें वहती थीं ॥ ३० ॥ महाभयानक और दारुण रुधिरकी नदियें शिररूप पाषाणोंसे भरीहुई थीं, केशरूप सेवारोंसे नीली २ दीख रही थीं, उनमें हाडरूप मछलियें भरी हुई थीं तथा धनुष वाण और गदारूप डोगियें तैर रही थीं ॥ ३१ ॥ उनमें मांस और रुधिरकी कीच होरही थी इस रणभूमिमें लडनेवाले वीरोंने रुधिरके प्रवाहको वहानेवाली नदियोंको वहादिया था, वे नदियें डरपोकोंको भयभीत करतीहुई वीरोंके हर्षको बढ़ा रही थीं, वे घोर नदियें अपनेमें घुसनेवाले पुरुषोंको डुवाकर यमलोकमेंको पहुँचा रही थीं ये नदियें क्षत्रियोंके चित्तोंको भी भयभीत कररही थीं, हे नरव्याघ्र ! श्मशानसमान हुई उस रणभूमिपर मांसाहारी प्राणी भी गर्जना करते २ भयानक युद्ध कर रहे थे, चारोंओर पड़ेहुए असंख्यों धड़ उठ २ कर खड़े होजाते थे ॥३२-३५ ॥ भूतोंके गण मांस और रुधिरके भक्षण तथा पानसे अच्छेप्रकार तृप्त होकर नाचरहे थे हे भरतवंशी राजन्!

णितैः । पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत ॥ ३६ ॥
मेदामज्जावसामत्तास्तृप्ता मांसस्य चैव हि । धावमानाः स्म दृश्य-
न्ते काकगृध्रबकास्तथा ॥ ३७ ॥ शूरास्तु समरे राजन् भयं त्य-
क्त्वा सुदुस्त्यजम् । योधव्रतं समाख्याताश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ३८
शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले । व्यचरन्त रणे शूराः
ख्यापयन्तः स्वपौरुषम् ॥ ३९ ॥ अन्योऽन्यं श्रावयन्ति स्म नाम-
गोत्राणि भारत । पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि वा विभो४०
श्रावयाणाश्च बहवस्तत्र योधा विशाम्पते । अन्योऽन्यमवमृद्नन्तः
शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ४१ ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदा-
रुणे । व्यषीदत् कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

कौए, गिद्ध और बगले रुधिर, वसा, मेद और मज्जाके पान तथा मांसके भक्षणसे तृप्त होकर चारों ओरको दौडते हुए दीख रहे थे ॥ ३६ –३७॥ और हे राजन् ! योधाओंके व्रतके कारण प्रसिद्ध हुए वीर पुरुष न त्यागने योग्य भयको त्यागकर निर्भय पुरुषकी समान रणमें पराक्रम दिखारहे थे ॥ ३८ ॥ बाणोंसे, शक्तियोंसे तथा मांसाहारी प्राणियोंसे भरीहुई रणभूमिमें अपनी वीरताको दिखातेहुए योधा घूमरहे थे ॥ ३९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! वे योधा रणभूमिमें अपना तथा पिताका नाम और गोत्र प्रतिपक्षियोंको सुना रहे थे तथा आपसमें एक दूसरेके ऊपर शक्ति तोमर और पट्टिशोंके प्रहार करके संहार कररहे थे ॥४०॥ ॥४१॥ हे राजन् ! वह महादारुण और भयानक युद्ध चल रहा था उस समय जैसे टूटी हुई नौका समुद्रमें डूबनेको हो ऐसे ही कौरवोंकी सेना रणभूमिमें मृतप्राय होरही थी ॥४२ ॥ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने । गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष ॥ १ ॥ संशप्तकानां कदनमकरोद्यत्र पाण्डवः । कोशलानां तथा राजन्नारायणबलस्य च ॥ २ ॥ संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः । अपातयन् पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३ ॥ ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा वारयन् प्रभुः । व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन रथिनां वरान् ॥ ४ ॥ विगाह्य तु रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः । आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं महारथम् ॥ ५ ॥ स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः । तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन् ६ सुशर्मा तु ततः पार्थं विध्वा दशभिराशुगैः । जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद्दक्षिणे भुजे ॥७॥ ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष।

सञ्जय कहता है, कि हे महाराज धृतराष्ट्र ! क्षत्रियोंका नाश करनेवाला युद्ध चल रहाथा उस समय अर्जुन संशप्तक गणोंका कोशलोंका तथा नारायणी सेनाका संहार कररहा था तहाँसे उसके बड़ेभारी गांडीव धनुषका शब्द सुनायी आनेलगा ॥ १-२ ॥ अत्यन्त क्रोधमें भरे संशप्तक विजय पानेकी इच्छासे इस युद्धमें चारों ओरसे अर्जुनके शिरपर बाणोंकी वर्षा कररहे थे ॥ ३ ॥ समर्थ अर्जुन एकायकी वेगके साथ होती हुई उनकी बाणोंकी वर्षाको सहनेलगा और सानपर धरकर तेज किये हुए कङ्कपक्षीके परोंवाले बाणोंसे बड़े २ रथियोंका और कौरवोंकी रथसेनाका संहार करके, उत्तम आयुधोंको धारण करके खड़े हुए सुशर्माके सामने जापहुँचा ॥ ४-५ ॥ महारथी सुशर्मा तथा संशप्तक अर्जुनके ऊपर बाणोंकी मारामार करनेलगे, सुशर्माने अर्जुनके दश बाण मारे, श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजापर तीन बाण मारे और हे राजन् ! भल्ल नामका बाण मार कर अर्जुनकी ध्वजाके दंडेको बींध दिया, विश्वकर्माके बनाये उस

स वानरवरो राजन् विश्वकर्मकृतो महान् । ननाद सुमहानादं भीषयाणो जगर्ज च । कपेस्तु निनदं श्रुत्वा सन्त्रस्ता तव वाहिनी ॥ ९ ॥ भयं विपुलमाधाय निश्चेष्टा समपद्यत । ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टावस्थिता नृप ॥ १० ॥ नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम् । प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वीरास्ते कुरुसत्तम ॥ ११ ॥ अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव । परिवव्रुस्ततः सर्वे पांडवस्य महारथम् ॥ १२ ॥ निगृह्य तं प्रचुक्रुशुर्वध्यमानाः शितैः शरैः । ते हयान् रथचक्रे च रथेषाञ्चापि मारिष ॥ १३ ॥ निगृहीतुमुपाक्रामन् क्रोधाविष्टाः समन्ततः । निगृह्य तं रथं तस्य योधास्ते तु सहस्रशः ॥ १४ ॥ निगृह्य बलवत् सर्वे सिंहनादमथोऽनदन् । अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ॥ १५ ॥ पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा । केशवस्तु ततो बाहू विधुन्वन् रणमू-

---

महान् ध्वजदंडके ऊपर बैठेहुए वानरने बडी जोरसे किलकारी मारकर तुम्हारी सेनाको भयभीत करदिया, तुम्हारी सेना वानर की किलकारीको सुनकर त्रास और महाभयके मारे जड़सी बनगयी, हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ महाराज ! अनेकों प्रकारके पुष्पोंसे भरे हुए चैत्ररथ वनकी समान तुम्हारी सेना इससमय चेष्टारहित दीखने लगी, परन्तु थोडी ही देरमें तुम्हारी सेनाके योधा सावधान होगये, उन्होंने एकसाथ अर्जुनके बडेभारी रथको घेरलिया जैसे मेघ पर्वतके ऊपर पानीकी वर्षा करते हैं तैसे ही अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥९-१२॥अर्जुनके तीखे बाणोंसे घायल होते हुए भी वे अर्जुनके रथको घेरकर द्वन्द मचाने लगे, क्रोधमें भरेहुए सहस्रों योधा अर्जुनके रथके घोडोंको, पहियोंको और रथकी ईषाको पकडकर सिंहकी समान गरजने लगे, दूसरे योधाओंने आकर श्रीकृष्णके विशाल भुजदंडोंको पकडलिया१३-१५हे महाराज!कितनों हीने रथमें बैठेहुए अर्जुनको पकडलिया

र्द्धनि ॥ १६ ॥ पातयामास तान् सर्वान् दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ।
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ॥ १७ ॥ निगृहीतं रथं
दृष्ट्वा केशवञ्चाप्यभिद्रुतम् । रथारूढांश्च सुबहून् पदातींश्चाप्यपा-
तयत् ॥ १८ ॥ आसन्नांश्च तथा योधान् शरैरासन्नयोधिभिः ।
च्छादयामास समरे केशवञ्चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ पश्य कृष्ण महा-
बाहो संशप्तकगणान् बहून् । कुर्वाणान् दारुणं कर्म वध्यमानान्
सहस्रशः ॥ २० ॥ रथबन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यः सहेत पुमांल्लोके मदन्यो यदुपुङ्गव ॥ २१ ॥ इत्येवमुक्त्वा
बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत् । पाञ्चजन्यञ्च कृष्णोपि पूरयन्निव
रोदसी ॥ २२॥ तन्तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनीं । सञ्च-

उससमय जैसे मरखना हाथी महावतोंको भूमिपर पटकदेता है तैसे ही श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंको घुमाकर हाथ पकडने वालोंको रणके मुहानेपर पटकदिया, महारथियोंके घेरेमें घिरा हुआ अर्जुन अपने रथको घिरा हुआ देखकर तथा श्रीकृष्णके ऊपर शत्रुओं के किये हुए धावेको देखकर बडे ही क्रोधमें भरगया उसने रथ पर चढ़आनेवाले कितने ही पैदलोंको नीचेको ढकेलकर गिरा दिया और पासके योधाओंको समीपमें ही चोट करनेवाले बाण मारकर पृथिवी पर सुलादिया और फिर श्रीकृष्णसे कहा, कि—॥ १६–१९ ॥ हे महाबाहु केशव ! देखिये २, दारुण कर्म करने वाले सहस्रों संशप्तकगण मर रहे हैं हे यदुवंशी कृष्ण ! इस भूमण्डलपर मेरे सिवाय ऐसा दूसरा कौनसा पुरुष है जो इस महाभयानक रथोंके बन्धेजवाली सेना को सहसके ? तदनन्तर अर्जुनने देवदत्त नामका शंख बजाया श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया, दोनों शङ्खोंकी ध्वनिसे पृथ्वी और आकाश गूँजनेलगे ॥२०–२२ ॥ हे महाराज !उन शंखोंकी ध्वनि को सुनकर संशप्तकोंकी सेना काँप उठी और

चाल महाराज वित्रस्ता चाभवद् भृशम् ॥ २३ ॥ पादवन्धं तत-
श्चक्रे पाण्डवः परवीरहा । नागमस्त्रं महाराज संप्रकीर्य्यं मुहु-
र्मुहुः ॥ २४ ॥ ते बद्धाः पादवन्धेन पाण्डवेन महात्मना । निश्चे-
ष्टाश्चाभवन्राजन् अश्मसारमया इव ॥ २५ ॥ निश्चेष्टांस्तु ततो
योधानवधीत् पांडुनन्दनः । यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे
पुरा ॥२६॥ ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम् । आयुधानि
च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः॥२७॥ते बद्धाः पादवन्धेन न शेकुश्चे
ष्टितुं नृप । ततस्तानवधीत् पार्थः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२८॥ सर्वे
योधा हि समरे भुजगैर्वेष्टिताभवन् । यानुद्दिश्य रणे पार्थः पादवन्धं
चकार ह ॥ २६ ॥ ततः सुशर्मा राजेन्द्र गृहीतां वीक्ष्य वाहि-
नीम् । सौपर्णमस्त्रं त्वरितः प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ ३० ॥ ततः

बड़ाभारी त्रास पाकर रणमें से भागने लगी ॥ २३ ॥ शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुनने वारम्वार नागास्त्रका प्रयोग करके सबके पैरोंको बाँधदिया ॥ २४ ॥ महात्मा अर्जुनने ज्योंही शत्रुसेनाके पैरोंको पादवन्धन से बाँधा, कि- वे पत्थरकी पुतली की समान निश्चेष्ट होगये ॥ २५ ॥ जैसे पहले इन्द्रने तारकासुर वधके समय दैत्योंका नाशकिया था तैसे ही अर्जुनभी रणमें जड़समान हुए योधाओंका नाश करने लगा, तुरन्तही संशप्तकोंके योधाओंने अर्जुनके महारथको छोड़दिया और अपने सब आयु-धोंको भी फेंककर रणमेंसे भागजानेका विचार किया, परन्तु उन के पैर नागपाशसे बँधगये थे इसलिये वे दौड़ नहीं सके,तदनन्तर अर्जुनने उन योधाओंके नमेहुए पर्ववाले बाण मारना आरम्भ करदिये, अर्जुनने रणभूमिमें जिनको नागपाशसे बाँधदिया था उन सब योधाओंके पैर नागपाशसे निश्चेष्ट होगये थे॥२६-२६॥ हे राजेन्द्र ! महारथी सुशर्माने अपनी सेनाको बन्दी हुई देखकर तुरन्त गारुडास्त्रको प्रकट किया ॥ ३० ॥ उसमेंसे गरुड बाहर

सुपर्णाः सम्पेतुर्भक्षयन्तो भुजङ्गमान्। ते वै विदुद्रुवुर्नागा दृष्ट्वा तान्
खचरान्नृप ॥ ३१ ॥ बभौ बलं तद्विमुक्तं पादबन्धाद्विशाम्पते ।
मेघवृन्दाद्यथा मुक्तो भास्करस्तापयन् प्रजाः३२विप्रमुक्तास्तु ते योधाः
फाल्गुनस्य रथं प्रति।ससृजुश्शस्त्रसङ्घांश्च बाणसङ्घांश्च मारिष३३
विविधानि च शस्त्राणि प्रत्यविध्यन्त सर्वशः तां महास्त्रमयीं वृष्टिं
संच्छिद्य शरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥ न्यवधीच्च ततो योधान् वासविः
परवीरहा । सुशर्मा तु ततो राजन् बाणेनाननपर्वणा ॥ ३५ ॥
अर्जुनं हृदये विद्ध्वा विव्याधान्यैस्त्रिभिः शरैः । स गाढविद्धो
व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ३६ ॥ तत उच्चुक्रुशुः सर्वे
हतः पार्थ इति स्म ह । ततः शंखनिनादाश्च भेरीशब्दाश्च
पुष्कलाः ॥ ३७ ॥ नानावादित्रनिनदाः सिंहनादाश्च जज्ञिरे ।

निकलकर सर्पों खाने लगे, हे राजन्! सर्प गरुड़ोंको देखकर एक साथ भागगये ॥ ३१ ॥ और जैसे मेघमण्डलमेंसे छूटाहुआ सूर्य प्रजाको तपाताहुआ शोभा पाता है तैसे ही नागपाशमेंसे छूटा हुआ सुशर्माका सेनादल भी फिर शोभा पानेलगा ॥ ३२ ॥ उस सेनाके छूटेहुए योधा अर्जुनके रथके ऊपर बाणोंकी और शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥और अर्जुनके नानाप्रकारके शस्त्रोंको चारों ओरसे काटनेलगे, शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करने वाले इन्द्रपुत्र अर्जुनने सामनेसे बाणोंकी वर्षाकर, उनकी बड़ीभारी अस्त्रवर्षाका नाशकरडाला तथा दूसरे योधाओंका नाशकरनेलगा सुशर्माने अर्जुनकी छातीमें नमेहुए पर्ववाला एक बाण मारा तथा दूसरे तीन बाणोंसे अर्जुनको घायल करदिया, उस चोटसे अर्जुन के बड़ी पीड़ा हुई, वह रथके भीतर ही बैठगया, सुशर्माकी ओरके सब योधा पुकार उठे, कि- अर्जुन मारागया २ यह सुनकर अनेकों शङ्ख और भेरियोंकी तथा अनेकों प्रकारके बाजोंकी ध्वनिसे रणभूमि गूँजउठी, योधा सिंहोंकी समान गरजनेलगे

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ ३८ ॥ ऐन्द्रमस्त्र ममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः । ततो बाणसहस्राणि समुत्पन्नानि मारिष॥३९॥सर्वदिक्षु व्यदृश्यन्त निघ्नन्ति तव वाहिनीम् हयान्रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः ॥ ४० ॥ वध्यमाने ततः सैन्ये भयं सुमहदाविशत् । संशप्तकगणानाञ्च गोपालानाञ्च भारत ॥ ४१ ॥ न हि तत्र पुमान् कश्चिद्योऽर्जुनं प्रत्ययुध्यत । पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत बलं तव ॥ ४२ ॥ हन्यमानमपश्यञ्च निश्चेष्टं स्म पराक्रमे। अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डसुतो रणे४३ व्यभ्राजत महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् । चतुर्दश सहस्राणि यानि दृष्टानि भारत ॥ ४४ ॥ रथानामयुतञ्चैव त्रिसाहस्राश्च दन्तिनः । ततः संशप्तका भूयः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ४५ ॥ मर्त्त-

---

परन्तु थोड़ी देरमें जिसके सफेद घोड़े और श्रीकृष्ण सारथी हैं ऐसा अर्जुन सचेत होगया ॥ ३४–३८ ॥॥ और उस महात्माने फुरतीसे इन्द्रास्त्र छोड़ा, हे राजन्! उसमेंसे हजारों बाण निकलपड़े ॥ ३९ ॥ वे सब दिशाओंमें फैलगये तथा तुम्हारी सेनाके सैंकड़ों और सहस्रों घोड़ोंका सवारोंका तथा रथियोंके साथ रथोंका संहार करते हुए दीखने लगे ४० हे भारत! इसप्रकार अर्जुनके सेनाका संहार करने पर संशप्तकगण और गोपालोंको बड़ा भय उत्पन्न होगया ॥ ४१ ॥ उस समय तहाँ ऐसा एक भी पुरुष नहीं था, कि–जो अर्जुनके सामने आकर शस्त्र चलासके, वीरोंकी आँखोंके सामने तुम्हारी सेना पराक्रमहीन होकर शत्रुके हाथसे मररही थी, यह घटना हमने अपनी आँखोंसे देखी थी,हे महाराज! अर्जुनने उस युद्धमें दश हजार योधाओंको मारडाला था और रणभूमि धुँएसे रहित अग्निसी दीखरही थी, हे भारत ! शेष बचे हुए चौदह सहस्र योधा, दश सहस्र रथ और तीन हजार हाथियोंके साथ संशप्तकों ने यह निश्चय किया, कि–या तो मरजायँगे, नहीं तो मारकर विजय

व्यमिति निश्चित्य जयं वापि निवर्त्तनम् । तत्र युद्धं महच्चासीत्ताव-कानां विशाम्पते ॥ शूरेण बलिना सार्द्धं पाण्डवेन किरीटिना ४६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

सञ्जय उवाच । कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष । उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः ॥ १ ॥ सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् । समुज्जहुश्च वेगेन भिन्नां नाव-मिवार्णवे ॥२॥ ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्त्तमिव भारत । भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमु-क्तानि संयुगे । सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव ॥ ४ ॥ शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ । ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद्द्विजपुङ्गवम् ॥ ५ ॥ कृपस्तु शरवर्षन्तद्विनिहत्य महास्त्र-

---

करेंगे परन्तु पीछे को नहीं हटेंगे, ऐसा निश्चय करके वे फिर अर्जुन के ऊपर टूटपडे उस समय तुम्हारे योधाओंका वीर बलवान् अर्जुनके साथ घोर युद्ध हुआ था॥४२-४६॥तिरेपनवाँ अध्याय समाप्त॥५३॥

सञ्जय कहता है कि–हे महाराज धृतराष्ट्र! तदनन्तर कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, उलूक सुबलका पुत्र शकुनि, राजा दुर्योधन और उसके सब भाई॥ १ ॥ समुद्रमें डूबती हुई नौकाकी समान, कौरवसेनाको अर्जुनके भयसे पीड़ा पाती तथा खिन्न होती देखकर तुरन्त उसकी सहायताको गये ॥२ ॥ और हे भारत! जरा ही देरमें वह डरपोकोंको भयभीत करनेवाला और वीरोंके हर्षको बढ़ानेवाला युद्ध आरम्भ होगया, कृपाचार्यके छोड़े हुए बाणोंने इस लड़ाईमें टीड़ीदलकी समान सृञ्जयोंको ढकदिया ३।४ तब शिखण्डीने क्रुद्ध होकर गौतमपुत्र कृपाचार्यके ऊपर बड़ी शीघ्रतासे धावा किया और उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके ऊपर चारों ओरसे बाणोंकी मारामार करनेलगा ॥ ५ ॥ कृपाचार्य अस्त्रविद्यामें बड़े

वित् । शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः ॥ ६ ॥ ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे । कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ७ ॥ ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः । व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः ॥ ८ ॥ हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः । खड्गञ्चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ ॥ ९ ॥ तमापतन्तं सहसा शरैः सन्नतपर्वभिः । छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत् ॥१०॥ तत्राद्भुतपश्याम शिलानां प्लवनं यथा । निश्चेष्टो यद्रणे राजन् शिखण्डी समतिष्ठत ॥११॥ कृपेणाच्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम् । प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १२ ॥ धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं

प्रवीण थे, उन्होंने शिखण्डी की बाणवर्षाका नाश करडाला और क्रोधमें भरकर इस रणमें शिखण्डीके दश बाण मारे ॥ ६ ॥ इससे कुपित हुए शिखण्डीने सीधे जानेवाले कङ्कपक्षीके परोंसे युक्त सात बाण कुपित कृपाचार्यके मारे ॥ ७ ॥ इन बाणोंसे महारथी ब्राह्मण कृपाचार्य बड़े ही बिधगये, तब उन्होंने तेज बाण मारकर शिखंडीके सारथीको और घोड़ोंको काटडाला ॥ ८ ॥ घोड़ोंके और सारथीके मरते ही महारथी शिखंडी रथपरसे नीचे उतर पड़ा और ढाल तलवार लेकर एकसाथ कृपाचार्यके सामने गया ॥ ९ ॥ उसको एकसाथ अपने ऊपर टूटते देख कृपाचार्यने नमे हुए पर्ववाले बाण मारकर उस युद्धमें शिखंडीको ढकदिया, यह काम अद्भुतसा हुआ ॥१०॥ हेराजन् ! उस संग्राममें पानीमें पत्थरों के तैरने की समान बड़ी अचरजकी बात तो हमने यह देखी कि-बाणोंसे ढकाहुआ शिखंडी रणभूमिमें जड़सा खड़ा रहगया ११ हे महाराज ! इस प्रकार शिखंडीको कृपाचार्यके बाणोंसे ढका हुआ देखकर महारथी धृष्टद्युम्न तुरन्त उनके सामने चढ़ आया ॥ १२ ॥ परन्तु धृष्टद्युम्नको कृपाचार्यके रथपर धावा करते

मति । मतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं मति । सपुत्रं सहसैन्यञ्च द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥ नकुलं सहदेवञ्च त्वरमाणौ महारथौ । मतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन् ॥ १५ ॥ भीमसेनं करूषांश्च कैकयान् सह सृञ्जयैः । कर्णो वैकर्त्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १६ ॥ शिखण्डिनस्ततो वाणान् कृपः शारद्वतो युधि । माहिणोत्त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष ॥ १७ ॥ ताञ्छरान् प्रेषितांस्तेन समन्तात् स्वर्णभूषितान् । चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः ॥ १८ ॥ शतचन्द्रं ततश्चर्म गौतमः पार्षतस्य ह । व्यधमत् सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १९ ॥ स विचर्मा महाराज

करते देखकर महारथी कृतवर्मा फुरतीसे उसके सामने आगया ॥ १३ ॥ और राजा युधिष्ठिरने पुत्रोंके तथा सेनाके साथ कृपाचार्यके ऊपर चढायीकी, परन्तु उनको अश्वत्थामाने आगे बढने से रोकदिया ॥ १४ ॥ महारथी नकुल और सहदेव कृपाचार्यके ऊपर चढकर आये उनको वाणोंकीवर्षाके द्वारा आगे बढनेसेरोकता हुआ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन उनके सामने आगया ॥१५॥ भीमसेन, करूष, केकय और सृञ्जयोंको युद्धमें आगे बढ़नेसे वैकर्त्तन कर्णने रोकदिया ॥ १६ ॥ हे महाराज ! कृपाचार्य शिखंडीको भस्म करडालनेकी इच्छासे बड़ी फुरतीके साथ रणमें उसके ऊपर वाणोंकी मारामार करने लगे ॥ १७ ॥ परन्तु शिखंडीने कृपाचार्यके छोड़ेहुए सोनेकी सजावट वाले उनके वाणोंको वार २ तलवार घुमाकर उससेही काटडाला तब कृपाचार्यने शिखण्डीकी सौ फुल्लियोंवाली ढालको वाण छोडकर फुरतीसे काटडाला, उस समय हे भारत ! कृपाचार्यके योधा हर्षमें भरकर कोलाहल मचाने लगे॥१८-१९॥ढालरहित हुआ शिखंडी, हाथमें तलवार लेकर, मौतके पास पहुँचा हुआ मनुष्य जैसे मौतके मुखमें सामनेको

खड्गपाणिरुपाद्रवत् । कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः२०
शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः । चित्रकेतुसुतो राजन्
सुकेतुस्त्वरितो ययौ ॥ २१ ॥ विकिरन् ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निं-
शितैः शरैः । अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा
च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् । अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी
राजसत्तम ॥ २३ ॥ सुकेतुस्तु ततो राजन् गौतमं नवभिः शरैः ।
विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २४ ॥ अथास्य
सशरञ्चापं पुनश्चिच्छेद मारिष । सारथिञ्च शरेणास्य भृशं मर्म-
स्वताडयत् ॥ २५ ॥ गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम् ।
सुकेतुं विंशता वाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ २६ ॥ स विह्वलित-
सर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे । भूमिकम्पे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो

दौडता हो तैसे कृपाचार्यके सामनेको दौडा ॥ २० ॥ महात्मा
कृपाचार्यने वाण मारकर उसको पीडित करना आरम्भ किया,
कि- उसकी सहायता करनेको चित्रकेतुका पुत्र महावली सुकेतु
वडी शीघ्रतासे दौड आया और तेज किये हुए वहुतसे वाण
कृपाचार्यके ऊपर फेंककर उनके रथ पर चढ आया ॥२१॥२२॥
हे श्रेष्ठ राजन् ! व्रतधारी कृपाचार्यको सुकेतुके साथ लडनेमें लगे
हुए देखकर शिखंडी तहाँसे तुरन्त भागगया ॥ २३ ॥ सुकेतुने
कृपाचार्यके पहले नौ और फिर सत्तर वाण मारे तथा फिर तीन
वाणमारे ॥ २४ ॥ तदनन्तर उस राजकुमारने कृपके धनुष और
वाणको काटडाला तथा उनके सारथीके मर्मस्थानोंमें जोरसे
दूसरे वाण मारे ॥ २५ ॥ इससे गौतमनन्दन कृपाचार्यको कोप
आगया और एक नया तथा दृढ धनुष हाथमें लेकर सुकेतुके मर्म-
स्थानोंमें तीस वाणमारे ॥ २६ ॥ उससे जैसे भूकम्पके समय वृक्ष
बडे जोरसे काँपकर डगमगाने लगते हैं तैसे ही सुकेतुके भी सब
अङ्ग कम्पसे विह्वल होगये और वह अपने उत्तम रथमें हिलने

भृशम् ॥ २७ ॥ चलतस्तस्य कायात्तु शिरो ज्वलितकुण्डलम् । सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेण त्वपातयत् ॥ २८ ॥ तच्छिरः प्रापतद्भूमौ श्येनाहृतमिवाभिषम् । ततोऽस्य कायं वसुधां पश्चात् प्रापतदच्युतः ॥२९॥ तस्मिन् हते महाराज त्रस्तास्तस्य पुरोगमाः । गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ ३० ॥ धृष्टद्युम्नन्तु समरे संनिवार्य्य महाबलम् । कृतवर्मानदद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ तदभूत्तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे । आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप ॥ ३२ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः । आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन् हृदिकात्मजम् ॥ ३३ ॥ कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः । पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ॥ ३४ ॥ सरथश्छादितो राजन्

लगा ॥ २७ ॥ कृपाचार्य ने यह दशा देखते क्षण ही क्षुरप्र नाम का बाण मारकर उसके चमकते हुए कुंडलोंवाले तथा पगडी और टोपीवाले मस्तकको शरीर परसे अलग करके पृथ्वी पर गिरादिया जैसे शिकरेका झपटाहुआ माँस भूमिपर गिरपड़ताहै तैसे ही सुकेतु का शिर भूमिपर गिरपड़ा और पीछेसे उसका धड़ भी गिरपड़ा हे महाराज ! रणमें सुकेतुके मरते ही उसके आगे चलनेवाले उस की सेनाके योधा घबड़ागये और कृपाचार्यको छोड़कर दशों दिशाओंमेंको भागगये ॥ २८-३० ॥ दूसरी ओर महारथी कृतवर्माने युद्धमें धृष्टद्युम्नको हरादिया था और युद्धकी हुमहुमीमें आकर उससे कहा, कि- अरे ओ धृष्टद्युम्न ! खड़ा रह २ ॥ ३१ ॥ धृष्टद्युम्नको शिखण्डीकी सहायताके लिये जातेमें रोककर, क्रोधमें भरेहुए दो शिकरे जैसे मांसके लिये लडते हैं तैसे ही कृतवर्मा और धृष्टद्युम्न घोरयुद्ध करनेलगे ॥ ३२ ॥ धृष्टद्युम्नने क्रोधमें आकर कृतवर्माकी छातीमें नौ बाण मारे और उसको कष्ट देनेलगा, कृतवर्माने भी रणमें धृष्टद्युम्नके हाथसे कठिन मार खाकर धृष्ट-

धृष्टद्युम्नो न दृश्यते मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलधारिभिः ३५ विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः । व्यरोचत रणे राजन् धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ३६ ॥ ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शरवृष्टिं सुदारुणाम् । कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत् पृतनापतिः ॥ ३७ ॥ तामापतन्तीं सहसा शरवृष्टिं सुदारुणाम् । शरैरनेकसाहस्रै र्हार्दिक्यो व्यधमद्युधि ॥३८॥ दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शरवृष्टिं दुरासदाम् । कृतवर्माणमभ्येत्य वारयामास पार्षतः ॥ ३९ ॥ सारथिञ्चास्य तरसा प्राहिणोद्यमसादनम् । भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ४० ॥ धृष्टद्युम्नस्तु बलवान् जित्वा शत्रुं महाबलम् । कौरवान् समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ॥ ४१ ॥ ततस्ते तावका

द्युम्नको, उसके रथको और घोडोंको बाणोंसे ऐसा ढकदिया कि- जलवाले मेघमण्डलसे ढकाहुआ सूर्य जैसे नहीं दीखता है धृष्टद्युम्न और उसका रथ भी बाणोंसे ढकजानेके कारण रणमें दीखना बन्द होगया ॥ ३३-३५ ॥ फिर जिसके शरीरमें घाव होगये थे ऐसे धृष्टद्युम्नने सोनेसे सजे बाण मारकर कृतवर्माके बाणोंको काटडाला और वह रणमें अत्यन्त दिपनेलगा ॥ ३६ ॥ सेनापति धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर कृतवर्माके ऊपर शस्त्रोंकी महादारुण वर्षा करनी आरंभ करदी ॥ ३७ ॥ परन्तु शस्त्रोंकी उस महादारुण वर्षाको कृतवर्माने रणमें हजारों बाण मारकर रोकदिया ॥ ३८ ॥ जब कृतवर्माने युद्धमें दुरासद शस्त्रवर्षाको रोकदिया तब धृष्टद्युम्नने कृतवर्माके ऊपर धावा कर उसको आगे बढनेसे रोक दिया और तेज धारवाले भल्ल जातिके बाण मारकर उसके सारथी को यमलोकमें भेजदिया, सारथी मरकर रथके ऊपरसे नीचे गिरपडा ॥ ३९-४० ॥ इसप्रकार बली धृष्टद्युम्नने महाबली शत्रुको जीतनेके अनन्तर युद्धमें बाण मारकर कौरवोंको आगे बढने से एक साथ रोकदिया तब तो तुम्हारे योधा सिंहकी समान गरज

योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन् । सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्त्तत४२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलसंग्रामे
चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

संजय उवाच । द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम् । द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्त्तत हृष्टवत् ॥ १ ॥ किरन्निषुगणान् घोरान् स्वर्णपुंखाञ्छिलाशितान् । दर्शयन् विविधान् मार्गान् शिक्षाश्च लघुहस्तवत् ॥२॥ ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः । युधिष्ठिरन्तु समरे पर्य्यवारयदस्त्रवित् ॥ ३ ॥ द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन । बाणभूतमभूत् सर्वमायोधनशिरो महत् । ४ । बाणजालं दिविच्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम् । शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम् ॥ ५ ॥ तेन छन्नं नभो राजन् बाणजालेन

कर धृष्टद्युम्नके ऊपर टूटपड़े और उन दोनोंमें फिर युद्ध होनेलगा ॥ ४१ -४२ ॥ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥

सञ्जय कहता है, कि हे महाराज धृतराष्ट्र ! सात्यकी और द्रौपदीके वीर पुत्र युधिष्ठिरकी रक्षा कररहे थे, यह देख बड़ा अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामा हर्षमें भरकर उनके सामने लड़नेलगा ।१। और सोनेकी पूँछवाले, सानपर धरकर तेज किये हुए घोर बाणोंकी वर्षा करनेलगा तथा अनेकों प्रकारकी गतियें, युद्धकी शिक्षायें तथा हाथकी फुरती दिखाते हुए उसने दिव्य अस्त्रोंसे अभिमंत्रित बाणोंके द्वारा आकाशको भरकर राजा युधिष्ठिरको घेरलिया ॥२-३॥ उस समय अश्वत्थामाके बाणोंसे रणाङ्गण का विशाल शिरोभाग छागया था, तहाँ कुछ भी न दीखता था न जानाजाता था, सोनेकी मीनाकारी वाले बाणोंसे आकाश ढकगया था, इससे उस समय ऐसा मालूम होता था कि-मानो सोनेकी किनारीसे शोभायमान चँदोवा तानदिया है ॥४।.५ ॥ हे राजन् ! चमकते हुए बाणोंके समूहसे आकाश ढकाहुआ था

भास्वता । अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥ ६ ॥ तत्रा-
श्चर्य्यमपश्याम बाणभूते तथा विधे । न स्म सम्पतते भूतं किञ्चि-
देवान्तरीक्षगम् ॥ ७ ॥ सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः ।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुःपराक्रमम् ॥८॥ लाघवं द्रोण-
पुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः । व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रत्युदी-
क्षितुम् ॥९॥ शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम् । वध्यमाने
ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः ॥ १० ॥ सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चा-
लाश्चापि सङ्गताः । त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ११
सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विध्वा शिलीमुखैः । पुनर्विव्याध
नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ १२ ॥ युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रति-
विन्ध्यश्च सप्तभिः । श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्त्तिश्च सप्तभिः १३

इसलिये ऐसा मालूम होता था कि—मानो रणभूमिमें ऊपर बाद-
लोंकी छाया पड़ी हुई है ॥ ६ ॥ जब आकाश बाणोंसे ढकगया
उस समय हमने यह आश्चर्यकी बात देखी, कि-तहाँ आकाशचारी
कोई भी प्राणी नहीं उडता था॥ ७ ॥ उस समय सात्यकी, पांडु-
पुत्र युधिष्ठिर तथा दूसरे योधाओंमेंसे कोई भी उद्योग करने पर
भी किसी प्रकारका पराक्रम नहीं करसके थे ॥८॥ हे महाराज !
लड़नेको इकट्ठेहुए महारथी तथा सब राजे, अश्वत्थामाकी युद्ध
करनेकी फुरतीको देखकर आश्चर्य में होगये और तपते हुए सूर्य
की समान उसके सामनेको दृष्टि तक न करसके, जब पांडवोंकी
अपनी सेनाका संहार होनेलगा, तब द्रौपदाके महारथी पुत्र,
सात्यकी, धर्मराज और पंचाल देशके योधा मृत्युके भी भयको
त्याग, इकट्ठे होकर भयङ्कर, अश्वत्थामाके सामने लडनेको चढ
गये ॥ ९–११ ॥ सात्यकीने अश्वत्थामाके पहले सत्ताईस और
फिर सुवर्णसे शोभायमान सात बाण मारे ॥ १२ ॥ युधिष्ठिरने
तिहत्तर, प्रतिविंध्यने सात, श्रुतकर्माने तीन, श्रुतकीर्त्तिने सात,

सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः । अन्ये च बहवः शूरा विविधुस्तं समन्ततः ॥ १४ ॥ स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् । सात्यकिं पंचविंशत्या माविध्यत् सशिलीमुखैः ॥ १५ ॥ श्रुतकीर्त्तिञ्च नवभिः सुतसोमं च पंचभिः । अष्टाभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥ १६ ॥ शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः । तथेतरांस्ततः शूरान् द्वाभ्यां द्वाभ्यामताड़यत् १७ श्रुतकीर्त्तिस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः । अथान्यद्धनुरादाय श्रुतकीर्त्तिर्महारथः ॥ १८ ॥ द्रौणायनिं त्रिभिर्विध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः । ततो द्रौणिर्महाराज शरवर्षेण मारिष ॥ १९ ॥ छादयामास तत् सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ । ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् ॥ २० ॥ द्रौणिश्चिच्छेद विहसन् विव्याध च शरैस्त्रिभिः ततो धर्मसुतो राजन् प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः २१ द्रौणिं विव्याध सप्तत्या

सुतसोमने नौ शतानीकने सात तथा दूसरे बहुतसे वीरोंने भी चारों ओरसे बहुतसे बाणमारकर अश्वत्थामाको वींधदिया १३ ॥ १४ ॥ हेराजन् ! अश्वत्थामा क्रोधमें भरगया और विषधर सर्पकी समान फुङ्कारे मारनेलगा तथा उसने भी सात्यक़ीके पचीस, श्रुतकीर्त्तिके नौ, सुतसोमके पाँच, श्रुतकर्माके आठ, प्रतिविंध्यके तीन, शतानीकके नौ, धर्मराजके पाँच और दूसरे योधाओंके दो२ बाण मारे ॥ १५-१७ ॥ फिर तीन बाण मारकर श्रुतकीर्तिके धनुषको काट दिया, तब महारथी श्रुतकीर्तिने दूसरा धनुष हाथमें लिया ॥ १८ ॥ और अश्वत्थामाके तेज किये हुए तीन बाण मार कर और फिर अनेकों बाण मारकर वींध दिया हे राजन् !तदनन्तर अश्वत्थामाने भी बाणोंकी वर्षा करके ॥१९॥ पाण्डवोंकी सेनाको चारों ओरसे ढकदिया और हे भरतसत्तम ! उस महात्माने हँसतेर धर्मराजके धनुषको काटडाला और उनके तीन बाण मारे, हे राजन् ! तब धर्मराजने दूसरा बड़ाभारी धनुष

वाह्वोरुरसि चैव ह । सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे २२
अर्द्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्वानदद्भृशम् । छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ २३ ॥ सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद्द्रुतम् । अथान्यद्धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान् २४
शैनेयं शरवर्षेण छादयामास भारत । तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ ॥२५॥ तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत । युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृताम्वरम् ॥ २६ ॥ अभ्यवर्त्तन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान् । आगच्छमानांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान् परन्तपः ॥ २७ ॥ प्रहसन् प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे । ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः ॥ २८ ॥ द्रौणिर्ददाह

हाथमें लिया ॥ २० ॥ २१ ॥ और अश्वत्थामाके दोनों भुजदण्डों पर तथा छाती पर सत्तर वाण मारे, तव क्रोधमें भरे हुए सात्यकीने रणमें प्रहार करतेहुए अश्वत्थामाके धनुषको अर्धचन्द्राकार तीखे वाणसे काटडाला और वड़ी जोरसे गर्जना की, धनुषके कटजाने पर महावली प्रतापी अश्वत्थामाने शक्तिका प्रहार करके सात्यकी के सारथीको रथ परसे तुरन्त नीचे गिरादिया और द्रोणके प्रतापी पुत्रने दूसरा धनुष हाथमें उठालिया ॥२२—२४॥ और हे भारत! वाणोंकी वर्षा करके सात्यकीको ढकदिया, रथके सारथीके गिर जानेपर उसके घोड़े रणभूमिमें इधर उधरको भागने लगे ॥ २५ ॥ हे भारत! उनको जिधर तिधर को दौड़ते हुए हमने देखा, तव युधिष्ठिर आदिने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाके ऊपर २६ वड़े वेग से तेज वाण छोड़कर वर्षा करडाली, क्रोधमें भरेहुए उनको चढ़े आते देखकर शत्रुतापी द्रोणपुत्रने हँसतेर उस महारणमें उनका सामना किया और जैसे दावानल वनमें घासके ढेरको जलाकर भस्म करडालता है तैसे ही सैंकड़ों वाणरूप ज्वालावाला महारथी अश्वत्थामारूप अग्नि पांडवोंकी सेनारूप तृणोंके ढेरको जलाने

समरे कत्तमग्निर्यथा वने । तद्बलं पांडुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् २६ चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम् । दृष्ट्वा ते च महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ॥ ३० ॥ निहतान्मेनिरे सर्वान् पांडून् द्रोणसुतेन वै । युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रोणिशिष्यो महारथम् ॥ ३१ ॥ अब्रवीद् द्रोणपुत्राय रोषामर्षसमन्वितः । नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ॥ ३२ ॥ यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि । ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ॥ ३३ ॥ क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान् ब्राह्मणब्रुवः । मिषतस्ते महाबाहो जेष्यामि युधि कौरवान् ॥ ३४ ॥ कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम् । एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ॥३५ ॥ युक्तं तत्त्वं च सञ्चि-

---

लगा, तब तो पांडवोंका वह सेनादल द्रोणपुत्रसे सन्ताप पाकर ॥ २७-२६ ॥ हे भरतसत्तम ! मगरके घँघोले हुए नदीके मुखकी समान क्षुभित हो उठा, हे महाराज ! द्रोणपुत्रके पराक्रमको देखकर ॥ ३० ॥ देखने वालोंने समझा, कि-यह अश्वत्थामा निःसन्देह पांडुके सब पुत्रोंको मारडालेगा, अश्वत्थामा को अपनी सेनाका संहार करतेहुए देखकर द्रोणके शिष्य महारथी युधिष्ठरने रोष तथा अमर्षमें आकर अश्वत्थामासे शीघ्रही कहा कि-तुझमें प्रीति नाम मात्रको भी नहीं है तथा हमारी ओरकी कृतज्ञता भी नहीं है ३१-३२ क्योंकि-हे नरव्याघ्र! आजतू स्वयंही हमारा नाश करनेको तयार हुआ है, ब्राह्मणको तो तप, दान और वेद शास्त्रका अध्ययन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ धनुषका नमाना तो क्षत्रियका ही काम है, इसलिये तू तो कहने मात्रका ब्राह्मण है,तो भी हे महाबाहु अश्वत्थामा ! तू देखता ही रह जायगा और हम रणमें कौरवोंको जीतलेंगे॥३४॥युद्धमें तुझे जो कुछ करना हो, भले ही करले, यह मैं इसलिये कहता हूँ, कि-तू ब्राह्मणोंमें अधम है, हे महाराजायुधिष्ठिरके ऐसा कहने पर अश्वत्थामा हँसनेसा लगा॥३५॥और उनकी

न्य नोत्तरं किञ्चिदब्रवीत् । अनुक्त्वा च ततः किञ्चिच्छर-
वर्षेण पांडवम् ॥३६॥ छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
संछाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष ॥ ३७ ॥ पार्थोऽपयातः
शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम् । अपयाते ततस्मिन् धर्मपुत्रे युधि
ष्ठिरे ॥ ३८ ॥ द्रोणपुत्रस्ततो राजन् प्रत्यगात् स महामनाः । ततो
युधिष्ठिरो राजंस्त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे । प्रययौ तावकं सैन्यं
युक्तः क्रूराय कर्मणे ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरापयाने
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

सञ्जय उवाच । भीमसेनं सपाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम् ।
वैकर्त्तनः स्वयं रुद्ध्वा छादयामास सायकैः ॥ १ ॥
ततस्तु चेदिकारूषान् सृञ्जयांश्च महारथान् । कर्णो जघान समरे
भीमसेनस्य पश्यतः ॥ २ ॥ भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथ-

बातका यथार्थ विचार करके उत्तर कुछ भी नहीं दिया, परन्तु कोपमें भरेहुए कालकी समान रणमें युधिष्ठिरके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके उनको ढकनेलगा. ज्योंही अश्वत्थामा बाणोंकी वर्षासे उनको ढकनेलगा, कि—कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर उस बड़ीभारी सेनाको छोड़कर तहाँसे भागगये, हे राजन् ! उन धर्मपुत्र युधिष्ठिरके तहाँसे चलेजाने पर ॥ ३६—३८ ॥ महामना अश्वत्थामा भी तहाँसे पीछेको लौटा, राजा युधिष्ठिर रणमें अश्वत्थामाको छोड़कर तुम्हारी सेनाका संहार करनेका दृढ निश्चय करके तुम्हारी सेनाकी ओरको गये ॥ ३९ ॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त । ५५ ।

संजय कहता है, कि—हे महाराज धृतराष्ट्र ! कर्णने भीमसेनको पञ्चालदेशके योधाओंको, चेदियोंको और केकयोंको बाणोंकी मारसे आगे बढ़नेसे रोकदिया और भीमसेनके देखतेहुए महारथी चेदी, करूष और सृंजयोंके ऊपर उस रणमें प्रहार करने

सत्तमम् । प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥३॥ सूतपुत्रोऽपि समरे पञ्चालान् केकयांस्तथा । सृञ्जयांश्च महेष्वासान् निजघान सहस्रशः ॥ ४ ॥ संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः । पञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥ ५ ॥ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः । जग्मुर्विनाशं समरे राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६ ॥ ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नवभिर्नकुलं शरैः । विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥ ७ ॥ ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप । क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥८॥ नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं त्रिसप्तभिः । जघान समरे राजन् सहदेवश्च पञ्चभिः ॥ ९ ॥ तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पंचभिश्शरैः ॥ १० ॥

लगा ॥ १ ॥ २॥ भीमसेन महारथी कर्णको तहाँही छोड़कर, जैसे धकधकाताहुआ अग्नि घासके ढेरकी ओरको बढने लगता है तैसेही कौरवोंकी सेनाकी ओरको बढ़नेलगा ॥ ३ ॥ सूतपुत्र कर्णने भी युद्धमें महाधनुषधारी पांचाल, केकय और सृञ्जय नामके सहस्रों योधाओंको मारडाला ॥ ४ ॥ महारथी अर्जुनने संशप्तकोंका संहार किया, भीमने कौरवोंका संहार किया और कर्णने पंचाल योधाओंका संहार किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी कपटभरी सलाहके कारणसे ही अग्निकी समान जाज्वल्यमान इन तीन महारथियोंने रणभूमिमें क्षत्रियोंका नाश करडाला ।६। तदनन्तर दुर्योधनने क्रोधमें भरकर नौ बाण नकुलके मारे, चार बाण उसके घोड़ोंके मारे ॥ ७ ॥ और हे राजन् ! अगाध मनवाले तुम्हारे पुत्रने क्षुरके प्रहारसे सहदेवके सुवर्णसे जड़े ध्वजदंडको काटडाला ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तब तो नकुलको भी क्रोध आगया और उसने तुम्हारे पुत्रके सात बाण मारे तथा सहदेवने पाँच बाण मारे ॥ ९ ॥ तब तुम्हारे पुत्रको क्रोध आगया और

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत । यमयोः सहसा राजन् विव्याध च त्रिसप्तभिः ॥ ११ ॥ तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे । प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रोपमौ युधि ॥ १२ ॥ ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं नृप । शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम् ॥ १३ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः । पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः ॥ १४ ॥ धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत । सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः १५ आच्छादयन् दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवस्तदा । बाणभूते ततस्तस्मिन् संछन्ने च नभस्तले ॥ १६ ॥ यमयोर्ददृशे रूपं कालान्तक-

उसने भी सब धनुषधारियोंमें और भरतवंशमें श्रेष्ठ नकुलकी तथा सहदेवकी छातीमें पाँच२ बाण मारे ॥ १० ॥ फिर भल्लनामके दो बाण और मारकर एकसाथ दोनोंके धनुषोंको काटडाला और फिर दोनोंके इक्कीस२ बाण मारे ॥ ११ ॥ जब उन दोनों भाइयोंने इन्द्रके धनुषकी समान श्रेष्ठ और शुभ दूसरे दो धनुष हाथोंमें लिये तब वे दोनों वीर युद्धमें देवकुमारोंकी समान शोभा पानेलगे जैसे बड़े २ दो मेघ पहाडके ऊपर जलकी वर्षा करते हों तैसेही क्रोधमें भरेहुए वे दोनों भाई अपने भाई दुर्योधनके ऊपर भयानक बाणवर्षा करनेलगे ॥ १३ ॥ हे महाराज ! इस पर तुम्हारे महारथी पुत्रको भी बड़ा क्रोध आया और वह उनके सामने बाणोंकी मारामार करके महाधनुषधारी पांडुपुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोकने लगा ॥ १४ ॥ हे भारत ! इस समय दुर्योधनका धनुष रणमें मंडलाकारही दीखता था और जैसे सूर्यकी किरणें सब दिशाओंको ढकदेती हैं तैसेही धनुषमेंसे चारों ओरको निकलतेहुए बाण सब दिशाओंको ढकते हुए दीखरहे थे, उन बाणोंसे गगनतल ढककर बाणमय बनगया था ॥ १५-१६ ॥ नकुल, सहदेव तथा दूसरे महारथी उस समय दुर्योधनको प्रलयकालके

यमोपमम् । पराक्रमन्तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः ॥ १७ ॥ मृत्यो-रुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे । ततः सेनापती राजन् पाण्ड-वस्य महारथः ॥ १८ ॥ पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः । माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ॥ १९ ॥ धृष्टद्युम्न-स्तव सुतं वारयामास सायकैः । तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रस्त्व-मर्षणः ॥ २० ॥ पांचाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहस्य पुरुषर्षभः । ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रोह्यमर्षणः ॥२१॥ विध्वा ननाद पांचाल्यं षष्ट्यापंचभिरेव च। अथास्य सशरञ्चापं हस्तावापं च मारिष२२ क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे । तदपास्य धनुश्छिन्नं पांचाल्यः शत्रुकर्षणः ॥ २३ ॥ अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् । प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद्रुधिरेक्षणः ॥ २४ ॥ अशोभत

कालकी समान देखने लगे और तुम्हारे पुत्रके पराक्रमको देखकर माद्रीके दोनों महारथी पुत्र यह समझने लगे, कि—हम मृत्युके पास आपहुंचे हैं अर्थात् अब मरनेही वाले हैं तब पांडवोंका महारथी सेनापति धृष्टद्युम्न, जहाँ राजा दुर्योधन युद्ध कररहा था तहाँ चढ़ आया और वीर, महारथी दोनों माद्री पुत्रोंके आगे आकर दुर्यो-धनके आगे खड़ा होगया और वाण मारकर तुम्हारे पुत्रको आगे बढ़नेसे रोकदिया, उस समय तुम्हारे असहनशील तथा अतोल मनवाले पुत्रने खिलखिलाहटके साथ हँसकर धृष्टद्युम्नके पचीस वाण मारे ॥ १७–२१ ॥ और फिर पैंसठ वाण मारकर बडी गर्जना की तथा अति तेज क्षुरप्र मारकर धृष्ट-द्युम्नके वाणसहित धनुषको तथा हाथोंके मोजोंको काटडाला, धृष्टद्युम्न क्रोधसे जलउठा, उसकी आँखें लाललाल होगयीं और उसने तुरन्त कटेहुए धनुषको फेंककर शत्रुकी मारको सहने वाला नया धनुष हाथमें लिया, उस समय जिसका शरीर वाणों के प्रहारसे घायल होरहा था वह महाधनुषधारी धृष्टद्युम्न रणमें

महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः । स पंचदश नाराचान् श्वसतः पन्नगानिव ॥ २५ ॥ जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यवासृजत् । ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः ॥ २६ ॥ विविशुर्वसुधां वेगात् कङ्कबर्हिणवाससः । सोऽतिविद्धो महाराज पुष्पस्तेऽतिव्यराजत ॥ २७ ॥ वसन्तकाले सुमहान् सपुष्प इव किंशुकः ॥ स भिन्नवर्मा नाराचैः महारैर्जर्जरीकृतः ।२८। धृष्टद्युम्नस्तु भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् । अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ॥ २९ । सायकैर्दशभी राजन् भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् । तस्य तेऽशोभयन् वक्त्रम् कर्मारपरिमार्जिताः ॥ ३० ॥ प्रफुल्लं पङ्कजं यद्वद्‌भ्रमरा मधुलिप्सवः । तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ३१ ॥ अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लाँश्च षोडश ।

बडा सुन्दर दीख रहा था, उसने दुर्योधनको मारनेकी इच्छासे फुङ्कारते हुए सर्पोंकी समान पन्द्रह बाण उसके मारे, कङ्क और मोरके परोंवाले और सान पर घिसकर तेज किये हुए वे बाण दुर्योधनके सोनेके झोल किये कवचको फोडकर वेगके साथ पृथिवी में घुसगये, बाणोंकी मारसे दुर्योधनका कवच टूटगया था और उसका सब शरीर लोहूलुहान तथा जर्जरित होगया था, उस समय वह वसन्त ऋतुमें फूले हुए ढाकके बड़े वृक्षकी समान मालूम होता था ॥ २३–२८ ॥ दुर्योधनने क्रोधमें भरकर भल्ल नामक बाणसे धृष्टद्युम्नका कवच काटडाला और तुरन्त उसकी दोनों भ्रकुटियोंके मध्यमें दश बाण मारे ॥ २९ ॥ जिनको कारीगरोंने घिस २ कर स्वच्छ किया था वे बाण धृष्टद्युम्नकी भ्रकुटिके मध्य में घुसगये और मधुकी चाहनावाले भौंरे जैसे प्रफुल्लित-कमल पर जा बैठते हैं तैसे मालूम होनेलगे ॥३०॥ बड़े मनवाले धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंकदिया और तुरन्त दूसरा धनुष लेकर उसपर ऊपर तले सोलह भल्ल बाण चढाये ३१

ततो दुर्योधनस्याश्वान् हत्वा सूतञ्च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥ धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् । रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ॥ ३३ ॥ भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः । तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ॥ ३४ ॥ वज्रं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः । दुर्योधनन्तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे ॥३५॥ भ्रातरः पर्य्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ । तमारोप्य रथे राजन् दण्डधारो नराधिपम् ॥ ३६ ॥ अपोवाह रणादाशु धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः । कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राज्यगृद्धी महाबलः ॥ ३७ ॥ द्रोणहन्तारमुग्रेषु ससाराभिमुखो रणे । तं पृष्ठतोऽभ्ययात्तूर्णं शैनेयो वितुदञ्छरैः ॥३८॥ वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपाः । स भारत महानासीत् योधानां

पाँच भल्लोंसे दुर्योधनके घोड़ोंको और सारथीको मारडाला, एक भालेसे उसके सुनहरी धनुषको काटडाला और दश भल्लोंसे कुरुपति दुर्योधनके सब प्रकारकी सामग्रीसहित रथको, छत्रको, शक्तिको, तलवारको, गदाको तथा ध्वजाको काटडाला, धृष्टद्युम्न ने तुम्हारे पुत्रके सोनेके बाजूबन्दोंवाले, विचित्र प्रकारकी मणियोंसे जड़े, हाथीके चिन्हवाले ध्वजदंडको काटडाला, यह सब राजाओंने देखा था, हे भरतसत्तम राजन्! दुर्योधन रथहीन होगया, उसका कवच और शस्त्र कटगये, उसकी ऐसी दशाको देखते ही उसके भाइयोंने चारों ओरसे उसकी रक्षाकी, दंडधार नामका राजा निर्भय होकर धृष्टद्युम्नकी आँखोंके सामने रथमें बैठालकर उसको रणमेंसे लेगया, राज्यको चाहनेवाले महाबली कर्णने सात्यकीका पराजय करके कुरुराजकी रक्षा करनेके लिये द्रोणको मारनेवाले उग्रधनुषधारी धृष्टद्युम्नके ऊपर धावा किया, शिनिके पुत्रने भी तुरन्त बाणोंका प्रहार करते २ उसके पिछले भागपर चढ़ायी करदी ॥ ३२-३८ ॥ और जैसे एक हाथी शत्रु

सुमहात्मनाम् ॥ ३९ ॥ कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारणः । न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित् पराङ्मुखः ॥४०॥ ददृशे चाप्रतः कर्णः पञ्चालांस्त्वरितो ययौ । तस्मिन् क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिजनक्षयः ॥ ४१ ॥ प्रादुरासीदुभयतो राजन्मध्यगतेऽहनि । पञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः ॥ ४२ ॥ ते सर्वेऽभ्यद्रवन्कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् । तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान्मनस्विनः ॥ ४३ ॥ विचिन्वन्निव बाणौघैः समासादयदग्रगान् । व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रञ्चोग्रायुधं जयम् ॥ ४४ ॥ शुक्लञ्च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ।

हाथीकी जाँघोंमें दोनों दाँत घुसेड़कर पीछेसे प्रहार करता है तैसेही सात्यकी भी पीछेसे चढ़ाई कर, उसके बाण मारने लगा, हे भरतवंशी राजन् ! उस समय कर्ण और धृष्टद्युम्नमें तथा तुम्हारे और उनके महासमर्थ योधाओंमें महायुद्ध होनेलगा, इस युद्धमें पांडवोंके या आपके किसी भी योधाको पीछेको पैर देते नहीं देखा ॥ ३९-४० ॥ फिर कर्णने एकसाथ वेगसे पंचाल देशके योधाओंके ऊपर चढायी करदी, मध्याह्नके समय दोना पक्षमें घोर मारकाट चलने लगी, इस युद्धमें हाथी घोड़े और मनुष्योंका संहार होनेलगा और जैसे पक्षी इकट्ठे होकर वृक्षके ऊपर धावा करते हैं तैसेही पंचाल देशके सब योधा फुरतीसे कर्णके ऊपर चढायी करके उसका नाश करनेका उद्योग करनेलगे, तब तो महाबली अधिरथके पुत्र कर्णको क्रोध आगया ॥ ४१-४३ ॥ और उसने सेनाके मुहाने पर खड़ेहुए योधाओंको खोज २ कर बाण मारना आरम्भ करदिया तथा व्याघ्रकेतु, सुशर्मा (१) चित्र, उग्रायुध, जय शुक्ल रोचमान और दुर्जय सिंहसेनके ऊपर

(१) यह सुशर्मा पाण्डवपक्षका योधा है कौरवपक्षका। संशप्तकोंका सेनापति सुशर्मा दूसरा है।

ते वीरा रथवेगेन परिवव्रुर्नरोत्तमम् ॥ ४५ ॥ सृजन्तं सायकान् क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम् । युध्यमानांस्तु तान् शूरान्मनुजेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥ अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः । अथापरान् महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥४७॥ जघान बहुसाहस्रान् योधान् युद्धविशारदान् । जिष्णुञ्च जिष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च ॥४८ ॥ दण्डञ्च राजन् समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम् । सिंहकेतुं रोचमानं शलभञ्च महारथम् ॥ ४९ ॥ निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनाञ्च महारथान् । तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः ॥ ५० ॥ शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्ज्जितं महत् । तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः ॥ ५१ ॥ सर्वतोऽभ्यद्रवन् भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम् । निपेतुरुर्व्यामपरे कर्णसायक-

चढाई करदी, इनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदिया तब इन वीरोंने भी मनुष्योंमें श्रेष्ठ और युद्धमें दिपतेहुए कर्णको चारों ओरसे रथोंके द्वारा घेरलिया, तब उनके साथ युद्धका शृङ्गाररूप राधाका पुत्र युद्ध करनेलगा ॥ ४४–४६ ॥ हे राजन! प्रतापी कर्णने भी तेज कियेहुए आठ बाण इन आठों योधाओंके मारकर इनको खूब घायल कर पीडित करदिया॥४७॥ और अनुपमवली सूतपुत्रने दूसरे हजारों युद्धचतुर योधाओंको युद्धमें मार डाला, हे राजन! उसने बड़े ही क्रोधमें भरकर युद्धमें जिष्णुकी समान पराक्रम करनेवाले महारथी जिष्णुको घायल करके फिर देवापि भद्र, दंड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान, महारथी शलभ तथा चेदियोंके महारथियोंको मारडाला ॥ ४८–५० ॥ कर्ण जब उनका नाश करने लगा तब कर्णका रुधिरसे लाल २ हुआ शरीर रुद्रकेसा महाउग्र और तेजका पुञ्जरूप मालूम होता था, हे भरतवंशी राजन्! उस समय कर्णके बाणोंकी मारसे हाथियोंने भयभीत होकर रणभूमिमें बड़ी ही गड़बड मचातेहुए

ताड़िताः॥ ५२ ॥ कुर्वन्तो विविधान्नादान् वज्रनुन्ना इवाचलाः । गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः ॥ ५३ ॥ रथैश्चाधिरथेर्मार्गे समास्तीर्य्यत मेदिनी । नैव भीष्मो न च द्रोणो नाप्यन्ये युधि तावकाः ॥ ५४ ॥ चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे । सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च ॥ ५५ ॥ नरेषु च नरव्याघ्र कृतं स्म कदनं महत् । मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयंश्चरन् ॥ ४६ ॥ पञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत् । यथा मृगगणांस्त्रस्तान् सिंहो द्रावयते दिशः ॥ ५७ ॥ पञ्चालानां रथव्रातान् कर्णो व्यद्रावयत्तथा । सिंहास्यञ्च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित् ॥ ५८ ॥ तथा कर्णमनुप्राप्य न जीवन्ति महारथाः । वैश्वानरं यथा दीप्तं प्राप्य दह्यन्ति वै जनाः ॥ ५९ ॥

चारों ओरको भागना आरम्भ करदिया, कितनेही हाथी कर्णके बाणोंके प्रहारसे अनेकों प्रकारके शब्द करतेहुए वज्रसे तोड़ेहुए पर्वतोंकी समान भूमिपर गिरपड़े कर्ण जिधरको जाता था, उधरकी रणभूमि चारों ओर पड़ेहुए असंख्यों हाथी, घोड़े, योधा और रथोंसे भरजाती थी, हे राजन् ! इस लड़ाईमें कर्णने रणमें जैसा पराक्रम कर दिखाया था, ऐसा पराक्रम न भीष्मने, न द्रोणने, न तुम्हारी सेनाके किसी दूसरे योधानेही दिखाया था, कर्णने हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका बड़ाभारी संहार किया था, हे मनुष्योंमें व्याघ्रसमान राजन् ! जैसे सिंह मृगोंकी टोलीके बीचमें निर्भय घूमता है तैसेही कर्णभी पंचालयोधाओंके बीचमें निर्भय घूमताहुआ देखनेमें आता था और जैसे सिंह भयभीत हुए मृगोंको भगादेता है तैसेही कर्णने भी पंचालदेशके रथियोंकी टुकड़ियोंको युद्धमेंसे भगादिया था, जैसे मृग सिंहके मुखके पास आकर जीवित नहीं रहते हैं तैसेही महारथी लोग कर्णके पास पहुंचते ही जीवित नहीं रहते थे, हे भरतवंशी राजन् ! मनुष्य अग्निके

कर्णाग्निना रणे तद्वद्दग्धा भारत सृञ्जयाः । कर्णेन चेदिकैकेय-पञ्चालेषु च भारत ॥ ६० ॥ विश्राव्य नाम निहता बहवः शूर-सम्मताः । मम चासीन्मती राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥६१ ॥ नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन् पांचाल्यो मोक्षते युधि । पञ्चालान् व्यध-यत् संख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः ॥ ६२ ॥ पञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे । अभ्यधावत संक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः६३ धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष । परिवव्रुरमित्रघ्नं शत-शश्चापरे जनाः ॥ ६४ ॥ शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलि-स्तथा । जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥ ६५ ॥ एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे । कर्णमस्यन्त इष्वस्त्रैर्विरेजुर-मितौजसः ॥६६॥ तांस्तथाधिरथिः संख्ये चेदिपांचालपांडवान् । एको बहूनभ्यपतद्गरुत्मान् पन्नगानिव ॥ ६७ ॥ तैः कर्णस्याभव-

पास जाकर जैसे भस्म होजाते हैं तैसेही कर्णरूपी अग्निने भी रणमें सृञ्जयोंको जलाडाला था और रणभूमिमें सबोंको अपना नाम सुना बहुतसे प्रतिष्ठित वीरोंको मारडाला था, कर्णके ऐसे पराक्रमको देखकर मेरे मनमें विचार हुआ, कि–अब युद्धमें कर्णके हाथसे एक भी पंचालयोधा नहीं बचेगा जीवित कर्ण तले ऊपर पञ्चाल योधाओंका संहार किये चलाजाता था ॥ ५१–६२ ॥ रणमें कर्णको पंचालोंका संहार करते देखकर युधिष्ठिरको बडा ही क्रोध आया और वह उसके ऊपर चढ़ आये ॥ ६३ ॥ तथा धृष्ट-द्युम्न, द्रौपदीके पुत्र एवं और भी सैंकड़ों सैनिकोंने शत्रुओंका संहार करने वाले कर्णको घेरलिया ६४ जब शिखंडी, सहदेव, नकुल, नकुलका पुत्र, जनमेजय, सात्यकी, बहुतसे प्रभद्रक ये सब महापराक्रमी योधा धृष्टद्युम्नके आगे आकर कर्णके ऊपर बाणों का प्रहार करने लगे तब जैसे गरुड साँपोंके ऊपर टूट पड़ता है तैसे ही कर्ण अकेला ही युद्धमें चेदी, पञ्चाल और पांडव आदि

युद्धं घोररूपं विशाम्पते । तादृक् यादृक् पुरो वृत्तं देवानां दानवैः सह ॥ ६८ ॥ तान् समेतान् महेष्वासान् शरवर्षौघवर्षिणः । एको ऽव्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः ॥ ६९ ॥ भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह । सर्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो यमदण्डनिभैः शरैः॥ वाह्लीकान्केकयान्मत्स्यान् वासात्यान्मद्रसैंधवान् ॥ ७० ॥ एकः संख्ये महेष्वासो योधयन्वह्वशोभत । तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ॥ ७१ ॥ प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् । वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ॥ ७२ ॥ शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु । सहस्रशश्च रथिनः पातिता पतितायुधाः। ॥ ७३ ॥ ते क्षताः समदृश्यन्त भीमाद् भीता गतासवः । रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः ७४

बहुतसे योधाओंके ऊपर टूटपड़ा ६५-६७ पहले देवताओंका दानवोंके साथ जैसा युद्ध हुआ था तैसा ही महाभयानक युद्ध कर्ण का पांडवोंके साथ होने लगा ६८ जैसे अकेला ही सूर्य अंधकारका नाश करडालता है तैसे अकेले ही कर्णने सावधान होकर बाणों की वर्षा करनेवाले उन सब इकट्ठे हुए बड़े २ धनुषधारियोंको मारना आरम्भ करदिया ॥ ६९ ॥ इसप्रकार जब कर्ण पांडवों के साथ संग्राममें गुथरहा था उस समय भीम बड़े क्रोधमें भरकर यमदण्डकी समान बड़े २ बाण वाह्लीक, केकय, वासात्य, मद्र और सैंधव योधाओंके माररहा था ॥ ७० ॥ महाधनुषधारी भीम रणमें अकेला ही खड़ा होकर युद्ध कररहा था, उस समय बड़ी ही शोभा होरही थी, इस युद्धमें भीमने नाराच जातिके बाणोंसे हाथियों पर बैठनेवालोंको और हाथियोंको मारडाला तथा उन्होंने गिरते २ रणभूमिको कम्पायमान करडाला, इसप्रकार ही घुड़सवार तथा पैदल भी युद्धमें बाणोंके प्रहारोंसे मरकर बहुतसा रुधिर ओकते हुए रणभूमिमें गिरगये थे, तथा जिनके शस्त्र हाथोंमें

भीमसेनशरच्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाभवत् । तत् स्तम्भितमिवातिष्ठ-
द्भीमसेनभयार्दितम् ॥ ७५ ॥ दुर्योधनबलं राजन् निरुत्साहं
कृतव्रणम् । निश्चेष्टं तद्बलं दीनं बभौ तस्मिन् महारणे ॥ ७६ ॥
प्रसन्नसलिले काले यथा स्यात् सागरो नृप । तद्वत्तव बलं तद्वै
निश्चलं समवस्थितम् ॥ ७७ ॥ मन्युवीर्यबलोपेतं दर्पात् प्रत्य-
वरोपितम् । अभवत्तत्र पुत्रस्य तत् सैन्यं निष्प्रभं तदा ॥ ७८ ॥
तद्बलम्भरतश्रेष्ठ वध्यमानम्परस्परम् । रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं
बभूव ह ॥ ७९ ॥ जगाम भरतश्रेष्ठ वध्यमानम्परस्परम् । सूतपुत्रो
रणे क्रुद्धः पांडवानामनीकिनीम् ॥ ८० ॥ भीमसेनः कुरूंश्चापि
द्रावयन्तौ विरेजतुः । वर्त्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥८१॥
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान्बहून् । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो

से छूटपड़े ऐसे भीमसे भयभीत हुए सहस्रों रथी घायल होकर रणमें पड़ेहुए दीखते थे, रथी, घुड़सवार, सारथी, पैदल, घोड़े तथा हाथी भीमसेनके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर रणभूमिमें पड़े थे, सब भूमि उनसे भररही थी इस महासंग्राममें घायल हुआ दुर्योधनका सब सेनादल भीमसेनके भयसे निरुत्साह होकर चेष्टाशून्य होरहा था और बड़ा ही दीनसा हुआ मालूम होता था ॥ ७१ ॥ ७६ ॥ हे राजन्! जैसे शरद् ऋतुमें समुद्र स्थिर होजाता है तैसे ही तुम्हारा सेनादल भी स्थिर होगया था ॥ ७७ ॥ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी सेना क्रोध, वीरता और बलसे भरी हुई थी, परन्तु उस समय तो वह गर्वरहित होकर निस्तेज होगयी ॥ ७८ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! उस समय दोनों सेनादल आपसमें युद्ध होनेसे लोहूलुहान होगये थे तो भी एक दूसरेको मारनेके लिये एक दूसरेके ऊपर चढ़जाते थे, कर्ण क्रोधमें भरकर पाण्डवों की सेनाको और भीम क्रोधमें भर कौरवोंकी सेनाको रणमेंसे भगा रहे थे, इसप्रकार एक ओर महाभयानक युद्ध चलरहा था और

वासुदेवमथाब्रवीत् ॥ ८२ ॥ प्रभग्नम्बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन । एते द्रवन्ति सगणा संशप्तकमहारथाः ॥ ८३ ॥ अपारयन्तो मद्बाणान् सिंहशब्दम्मृगा इव । दीर्यते च महत् सैन्यं सृञ्जयानां महारणे ॥ ८४ ॥ हस्तकक्षो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः । दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा ॥ ८५ ॥ न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः । जानीते हि भवान् कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥८६॥ तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम् । वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रम्महारथम् ॥ ८७ ॥ एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते । एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव ॥ ८८ ॥ अब्रवीदर्जुनन्तूर्णं कौरवाञ्जहि पांडव ।

और दूसरी ओर महाविजयी अर्जुनने संशप्तकोंके बहुतसे योधाओंको मारकर श्रीकृष्णसे कहा, कि-॥७९ –८२ ॥ हे जनार्दन कृष्ण! इस युद्धको करतेमें सेनामें भागड़ पड़गयी है और ये महारथी संशप्तक, सिंह जैसे मृगोंके शब्दोंको नहीं सहसकते तैसे ही मेरे बाणोंको सहन न करसकनेके कारण युद्धमेंसे भागेजाते हैं तथा सृञ्जयोंकी (हमारी) बड़ी भारी सेना भी महासंग्राममेंसे भाग निकली है ॥ ८३ ॥ ८४॥ और हे कृष्ण! देखो उधर बुद्धिमान् कर्ण सेनामें घूमरहा है, वह देखो-उसकी हाथीकी जंजीर के चिन्हवाली पताका दीखरही है वहाँ वहअपना पराक्रम दिखारहा है, हमारी सेनाका कोई दूसरा महारथी लड़ाईमें कर्णको नहीं जीतसकता, आप कर्णके बल विक्रमको खूब जानते हैं ॥ ८५ ८६ ॥ इसलिये यह वीर पुरुष जहाँ हमारे सामने खड़ा होकर युद्धमें से हमारी सेनाको भगारहा है वहाँ आप रथको लेचलिये हे कृष्ण! मेरी समझमें अब संशप्तकोंको छोड़कर सूतपुत्रके पास चलना चाहिये, आगे आपकी जैसी रुचि हो सो ठीक है अर्जुनकी इस बातको सुनकर श्रीकृष्णने हँसते२ कहा कि-हे अर्जुन!

ततस्तव महासैन्यङ्गोविन्दप्रेषिता हयाः । हंसवर्णाः प्रविविशुर्ब-
हन्तः कृष्णपाण्डवौ । केशवप्रेषितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः९०
प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत । मेघस्तनितनिर्ह्रादः स रथो
वानरध्वजः ॥ ९१ ॥ चलत्पताकस्तां सेनां विमानन्द्यामिवाविशत् । तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ ॥ ९२ ॥ क्रुद्धौ
संरम्भरक्ताक्षौ व्यभ्राजेतां महाद्युती । युद्धशौंडौ समाहूतावागतौ
तौ रणाध्वरम् ॥९३॥ यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ ।
क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ वेगवन्तौ बभवतुः ॥ ९४ ॥ तलशब्देन
रुषितौ यथा नागौ महावने । विगाह्य तु रथानीकमश्वसङ्घांश्च
फाल्गुनः ॥ ९५ ॥ व्यचरत् पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः ।
तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ॥ ९६ ॥ संशप्तक-

अब तू शीघ्र ही कौरवोंका नाश कर, ऐसा कहकर श्रीकृष्णने हंसोंकी समान स्वेत रङ्गके घोड़ोंको (जिधर कर्ण लड़रहा था उधरको) हाँका, वे सुनहरी साज़वाले घोड़े कृष्ण और अर्जुन को लेकर तुम्हारी महासेनामें जापहुंचे, उसी समय तुम्हारी सेना चारों ओरको भागने लगी, जिसकी ध्वजामें वानर था और जिसकी पताकायें फहरारही थीं ऐसा अर्जुनका रथ मेघकी समान गर्जना करता हुआ जैसे विमान स्वर्गमें पहुँचता हो, तैसे ही तुम्हारी सेनामें जापहुँचा और यज्ञ करनेवालोंके द्वारा विधिसे बुलायेहुए अश्वनीकुमार जैसे यज्ञमें जाते हैं तैसेही क्रोधसे लाल लाल नेत्रोंवाले बड़ीभारी कान्तिसे युक्त युद्धमें प्रवीण श्रीकृष्ण और अर्जुन निमंत्रण पा उस रणयज्ञमें जापहुँचे,बड़ेभारी वनमें तालियोंके शब्दसे जैसे दो हाथी क्रोधमें आजाते हैं तैसे ही कृष्ण और अर्जुन भी क्रोधमें भरकर युद्धके लिये उद्यत होगये, अर्जुन तुम्हारी रथसेनाको तथा घुड़सवारोंको लाँघकर पाशधारी काल की समान सेनाके बीचमें घूमनेलगा, हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारे

गणान् भूयः पुत्रस्ते समचूचुदत् । ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ॥ ९७ ॥ चतुर्दशसहस्रैस्तु तुरगाणां महाहवे । द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां पदातीनाञ्च धन्विनाम् ॥ ९८ ॥ शूराणां लब्धलक्षाणां विदितानां समन्ततः । अभ्यवर्त्तन्त कौन्तेयञ्छादयन्तो महारथाः ॥ ९९ ॥ शरवर्षैर्महाराज सर्वतः पाण्डुनन्दनम् । संछाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः ॥ १०० ॥ दर्शयात्रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः । निघ्नन् संशप्तकान् पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत् ॥ १०१ ॥ ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्त्तस्वरविभूषितैः । निरन्तरमिवाकाशमासीच्छन्नं किरीटिना ॥ १०२ ॥ किरीटिभुजनिर्मुक्तैः सम्पतद्भिर्महाशरैः । समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥ १०३ ॥ रुक्मपुंखान् प्रसन्नाग्राञ्छरान् सन्नतपर्वणः । अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ॥ १०४ ॥

पुत्र दुर्योधनने पराक्रमी अर्जुनको अपनी ओर घूमता देखकर फिर संशप्तकगणोंको उसके ऊपर चढ़ाई करनेकी आज्ञादी, संशप्तक योधा एक हजार रथ,तीन सौ हाथी, चौदह हजार घुड़सवार तथा दो लाख प्रसिद्ध शूरताभरे, धनुषधारी, निशान वेधनेवाले पैदलों की सेनाके सहित अर्जुनके ऊपर जाचढ़े और सब ओरसे बाणों की वर्षा करके उसको ढकनेलगे, शत्रुकी सेनाका संहार करनेवाला अर्जुन युद्धमें बाणोंके जालसे ढकगया, वह पाशधारी कालकी समान भयानकमूर्ति दिखाता हुआ संशप्तकोंका संहार कररहा था, उस समय अत्यन्त ही दर्शनीय होरहा था ॥ ८७-१०० ॥ तदनन्तर अर्जुनने बिजलीकी समान कान्तिवाले और सोनेसे शोभायमान कियेहुए बाणोंसे आकाशको ढककर अवकाशशून्य करदिया ॥ १०२ ॥ हे प्रभो ! अर्जुनके हाथसे छूटेहुए बड़े २ बाणोंसे ढकाहुआ सब आकाश सर्पोंसे ढकाहुआसा मालूम होता था१०३उस समय वह सेनाके ऊपर पंखोंवाले, चमकती हुई धार

मही वियद्दिशः सर्वाः समुद्रो गिरयोऽपि वा। स्फुटन्तीति जना जज्ञुः पार्थस्य तलनिस्वनात् ॥१०५॥ हत्वा दश सहस्राणि पार्थिवानां महारथः। संशप्तकानां कौन्तेयः प्रत्यक्षं त्वरितोऽभ्ययात्॥१०६ प्रत्यक्षञ्च समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम्। प्रममाथ बलाद्बाणैर्दानवानिव वासवः॥ १०७ ॥ प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम्। शस्त्रं पाणींस्तथा बाहूंस्तथा जङ्घाः शिरांसि च१०८ अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन् भुवि। विश्वग्वाताभिसंभग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः॥ १०९ ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान्निघ्नन्तमर्जुनम्। सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत्॥ ११० ॥ तस्यास्यतोऽर्द्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसन्निभौ। पूर्णचन्द्राभवक्त्रञ्च

और नमेहुए पर्वोंवाले बाणोंको सब दिशाओंमेंको छोड़ता ही चलाजाता था॥ १०४ ॥उस समय अर्जुनके हाथकी तालीके शब्दको सुनकर सब लोग यह समझने लगे, कि-क्या पृथिवी, आकाश, सब दिशायें, सब समुद्र और पहाड फटरहे हैं? ।१०५। महारथी कुन्तीपुत्र अर्जुन दश सहस्र योधाओंका संहार करके तत्काल ही संशप्तकोंके पासको दौड़ा और कंबोजोंकी सेनासे रक्षित शत्रुपक्षके सामने आकर जैसे इन्द्रने दानवोंका संहार किया था, तैसे ही अर्जुन बलात्कारसे शत्रुओंका संहार करने लगा ॥ ६ ॥ ७॥वह भल्ल जातिके बाण चलाताहुआ आततायी शत्रुओंके शस्त्रसहित भुजदण्डोंको तथा मस्तकोंको सपासप काटनेलगा शत्रु भी शस्त्रहीन होकर कटेहुए देह और अङ्गोंके सहित, प्रबल पवनके झपटोंसे टूटे हुए बड़े २ गुदोंवाले वृक्षोंकी समान पृथिवी पर ढहनेलगे॥ ८-९॥ इसप्रकार अर्जुन घुड़सवार, हाथीसवार रथी तथा पैदलोंका नाश कररहा था, इतनेमें ही सुदक्षिणका छोटा भाई उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ १० ॥ उस को बाणवर्षा करते देख अर्जुनने दो अर्धचन्द्र बाण मारकर उस

क्षुरेणास्यहरच्छिरः ॥ १११ ॥ स पपात हतो वाहान् स्वलोहित-
परिस्रवः । मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेव विदारितम् ॥ ११२ ॥
सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम् । प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं
प्रियदर्शनम् ॥ ११३ ॥ कांचनस्तम्भसदृशं भिन्नं हेमगिरिं यथा ।
ततोऽभवत् पुनर्युद्धं घोरमत्यर्थमद्भुतम् ॥ ११४ ॥ नानावस्थाश्च
योधानां बभूवुस्तत्र युध्यताम् । एकैपुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः
शकैः ॥ ११५ ॥ शोणितार्क्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद्विशाम्पते ।
रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ॥११६॥ द्विरदैश्च हतारोहै-
र्महामात्रैर्हतद्विपैः । अन्योऽन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ११७
तस्मिन् प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना । अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं

की परिघसमान दोनों भुजाओंको काटडाला तथा क्षुर नामक बाण
से उसका पूर्णचन्द्रसमान मुखवाला मस्तक उड़ादिया ॥ ११ ॥
वह लोहूलुहान होकर मरते ही वज्रसे तोड़कर गिरायेहुए मैनसिल
पहाडके शिखरकी समान वाहनपरसे नीचे गिरपड़ा ॥ १२ ॥
जिस समय दर्शकोंने ऊँचे देह और कमलकी समान नेत्रों
वाले, मनोहर परम दर्शनीय, सुदक्षिणके छोटे भाई
कांबोज—कुमारको मरकर सुवर्णके खंभेकी समान रथपरसे
नीचे गिरतेहुआ देखा, कि उसी समय महाभयानक युद्धका
आरम्भ होगया ॥१३॥१४॥ उस युद्धमें लडते हुए योधाओंकी
अनेकों प्रकारकी दुर्दशायें हुई थीं, हे महाराज! कांबोज, यवन
और शकोंके घोड़ोंको अर्जुनने एक २ बाण मारकर मारडाला
और सब योधा लोहूलुहान होगये, उनके रुधिरसे सब रणभूमि
लाल २ होगयी और हे महाराज! इस मारकाटमें जिनके सारथी
और घोड़े मरगये थे ऐसे रथी, जिनके सवार मरगये थे ऐसे घोड़े
तथा हाथी और जिनके हाथी मरगये थे ऐसे महावत आपसमें
युद्ध करनेलगे ॥ १५—१७॥ इसप्रकार अर्जुनने पक्ष तथा प्रपक्षका

त्वरितो द्रौणिरभ्ययात् ॥ ११८ ॥ विधुन्वानो महच्चापं कार्त्त-
स्वरविभूषितम् । आददानः शरान् घोरान् स्वरश्मीनिव
भास्करः ॥ ११९ ॥ क्रोधामर्षाद्विवृत्तास्यो लोहिताक्षो वभौ वली ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धो मृत्युः किङ्करदण्डभृत् ॥ १२० ॥
ततः मासृजदुग्राणि शरवर्षाणि सङ्घशः । तैर्विसृष्टैर्महाराज
व्यद्रवत् पांडवी चमूः ॥ १२१ ॥ स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्द-
नस्थं विशाम्पते । पुनः मासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष १२२
तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः । संछादितौ
रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनञ्जयौ ॥ १२३ ॥ ततः शरशतैस्तीक्ष्णै-
रश्वत्थामा प्रतापवान् । निश्चेष्टौ तावुभौ चक्रे युद्धे माधवपांडवौ १२४
हाहाकृतमभूत् सर्वं जङ्गमं स्थावरं तथा । चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा

नाश किया तब जैसे सूर्य अपनी किरणोंको ग्रहण करता हो
तैसे ही भाथोंमेंसे भयानक वाणोंको ग्रहण करता तथा सुवर्णसे
शोभायमान बड़ेभारी धनुषको घुमाताहुआ अश्वत्थामा बड़े वेग
से उसके सामने चढ़आया १८-१९ हे महाराज! इस समय क्रोध
और अमर्षके मारे अश्वत्थामाका मुख फैलरहा था, नेत्र लाल२
होरहे थे और वह बलवान् अश्वत्थामा उस समय प्रलयकाल
में किंकर नामक दण्डको धारण करनेवाले कुपित कालकी समान
मालूम होताथा २० हे महाराज ! अश्वत्थामाने वाणोंके समूहकी
भयानक वर्षा करना आरम्भ करदी. तब तो पांडवोंकी सेना रण
मेंसे भागनेलगी २१ और हे राजन् ! रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णको
देखते ही अश्वत्थामाने फिर उग्र वाणोंकी मारामार आरंभ करदी,
अश्वत्थामाके चौतरफी आनेवाले वाणोंसे रथमें बैठेहुए श्रीकृष्ण
और अर्जुन ढकगये ॥ २२ ॥ २३ ॥ तदनन्तर प्रतापी अश्वत्थामा
ने सैंकड़ों तेज वाण मारकर उन दोनों श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको
युद्धमें जड़की समान चेष्टारहित करदिया ॥ २४ ॥ चराचर के

संछादितौ शरैः ॥ १२५ ॥ सिद्धचारणसङ्घाश्च संपेतुस्ते समन्ततः चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीति च ॥ १२६ ॥ न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः । संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ संछादयिष्यतः ॥१२७॥ द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे । अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य नदतो यथा ॥ १२८ ॥ ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः । विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत् ॥ १२९ ॥ स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः । प्रमोहं परमङ्गत्वा प्रैक्षत तं द्रोणजं ततः ॥ १३० ॥ स विक्रमं हृतं मेने ह्यात्मनः सुमहात्मना । तथास्य समरे राजन् वपुरासीत् सुदुर्दर्शम् ॥ १३१ ॥ द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्त्तमाने महारणे । वर्द्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ॥१३२॥ हीयमाने च कौन्तेये

स्वामी श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे ढकाहुआ देखकर स्थावर जङ्गम सब जगत् हाहाकार करनेलगा, अब लोगोंका कल्याण कैसे होगा, ऐसा विचार करते हुए सिद्ध तथा चारण भी चारों ओरसे वहाँको दौड आये, श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे ढक देनेवाले अश्वत्थामाका जैसा पराक्रम मैंने इस समय देखा ऐसा पहले कभी नहीं देखा था ॥ २५–२७ ॥ हे राजन् ! शत्रुओंको त्रास देनेवाले अश्वत्थामाके धनुषका शब्द अनेकोंवार सिंहकी गर्जनाकी समान सुनायी आता था २८ ॥ जब अश्वत्थामा युद्धमें दायीं बायीं ओरको बाण फेंकता था तब उसके धनुषकी डोरी मेघके भीतर चमकती हुई बिजलीसी दीखती थी ॥ २९ ॥ हे राजन् ! युद्धमें अश्वत्थामाका शरीर ऐसा भयानक होरहा था कि– दृढ़ और फुरतीले हाथवाला महायशस्वी अर्जुन भी उसको देखते ही बड़ीभारी मूर्छामें आगया था और वह अपने मनसे समझनेलगा कि– इसने मेरे पराक्रमको हरलिया ॥३०–३१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार अश्वत्थामा और अर्जुनमें युद्ध चलरहा था,

कृष्णे रोषः समाविशत् । स रोषान्निश्वसन्राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ १३३ ॥ द्रौणिं ह्यपश्यत् संग्रामे फाल्गुनञ्च मुहुर्मुहुः ॥ ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा ॥ १३४ ॥ अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे । अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत ॥ १३५ ॥ कच्चिद्वीर्यं यथा पूर्वं भुजयोर्वा बलं तव । कच्चित्ते गांडिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन ॥ १३६ ॥ कच्चित् कुशलिनौ बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत । उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे ॥ १३७॥ गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ । उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम् ॥ १३८ ॥ एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश । त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत् ॥ १३९ ॥ ध्वजं छत्रं पताकाञ्च रथं शक्ति

उस समय अश्वत्थामा जोर पर चढ़गया और अर्जुन कमजोर पड़गया, यह देख श्रीकृष्णको क्रोध चढ़आया और उस क्रोधके कारण लम्बे साँस छोडने लगे नेत्रसे मानो भस्म कियेडालते हो इसप्रकार क्षणमें अश्वत्थामाकी ओर क्षणमें अर्जुनकी ओरको ओरको देखनेलगे तथा क्रोधमें भर प्रेमके साथ अर्जुनसे कहनेलगे कि-अरे ओ अर्जुन! तेरे विषयमें मैं यह कैसा महा-आश्चर्य देखरहाहूँ ? आज अश्वत्थामा तुझसे बढ़गया ! ॥ ३२-३५ ॥ हे धनञ्जय! तेरी वीरता और बाहुबल पहलेकेसा आज क्यों नहीं है ? तेरे हाथमें गांडीव धनुष है या नहीं ? तेरे दोनों भुजदण्ड कुशलसे तो हैं ? तेरी मुट्ठी कहीं खुली तो नहीं जाती है ? मैं अश्वत्थामाको पराक्रममें तुझसे बढ़ाहुआ देखरहा हूँ, इसका कारण मेरी समझमें नहीं आता, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन! यह गुरुका पुत्र है, ऐसा समझकर इसकी उपेक्षा करनेका यह समय नहीं है ॥ ३६-३८ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णके कहने पर अर्जुनने भल्ल जातिके चौदह बाण लेकर एकसाथ अश्वत्थामाके धनुष, ध्वजा, छत्र, पताका, रथ, शक्ति और गदाको काटडाला तथा

गदां तथा । जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ॥ १४० ॥ स मूर्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः । तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम् ॥ १४१ ॥ अपोवाह रणात् सूतो रक्षमाणो धनञ्जयात् । एतस्मिन्नेव काले च विजयः शत्रुतापनः ॥ १४२ ॥ न्यहनत्तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः । पश्यतस्तस्य वीरस्य तव पुत्रस्य मारिष ॥ १४३ ॥ एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह । क्रूरो विशसनो घोरो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ १४४ ॥ संशप्तकांश्च बीभत्सुः कुरूंश्चापि वृकोदरः । वसुषेणश्च पञ्चालान् क्षणेन व्यधमद्रणे ॥ १४५ ॥ वर्त्तमाने तथा रौद्रे राजन् वीरवरक्षये । उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥ १४६ ॥ युधिष्ठिरोऽपि संग्रामे प्रहारैर्गाढवेदनः क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ भरतसत्तम ॥ १४७ ॥ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

उसकी गर्दनकी हँसली पर वत्सदन्त नामके बाण ऐसी जोरसे मारे, कि-अश्वत्थामाको महामूर्च्छा आगयी और वह ध्वजाके दंडेको पकडकर बैठगया तथा शत्रुकी मारसे अचेत होगया, तुरन्त उसका सारथी अश्वत्थामाकी अर्जुनसे रक्षा करनेकेलिये उसको रणमेंसे दूर लेगया, उसी समय शत्रुको सन्ताप देनेवाला अर्जुन तुम्हारे वीर-पुत्रके सामने ही तुम्हारे सहस्रों योधाओंका संहार करनेलगा ३६ ॥४३॥ हे राजन्! तुम्हारे ही अन्यायसे तुम्हारे पुत्रोंका शत्रुओंके साथ ऐसा भयानक युद्ध होनेलगा, उसमें मनुष्योंका बड़ा ही नाश हुआ था ॥ ४४ ॥ तदनन्तर अर्जुनने संशप्तकोंका, भीमने कौरवों के योधाओंका और वसुषेणने पँचालोंका रणमें एक क्षणमें ही संहार कर डाला ॥४५॥ शूरोंके उस महाभयानक संहारके समय असंख्यों धड़ चारों ओरसे उठकर रणमें दौडनेलगे ॥४६॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्!-इस संग्राममें बाणोंकी चोटसे युधिष्ठिर को बडी वेदना होरही थी, इसलिये वह रणभूमिसे एक कोस पीछे को हटकर विश्रामलेनेलगे ॥४७॥ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥

सञ्जय उवाच । दुर्य्योधनस्ततः कर्णमुपेत्य भरतर्षभ । अब्र-वीन्मद्रराजञ्च तथैवान्यांश्च पार्थिवान् ॥ १ ॥ यदृच्छयैतत् संप्राप्तं स्वर्गद्वारमपावृतम् । सुखिनः क्षत्रियाः कर्ण लभन्ते युद्धमीदृशम् २ सदृशैः क्षत्रियैः शूरैः शूराणां युध्यतां युधि । इष्टं भवति राधेय तदिदं समुपस्थितम् ॥ ३ ॥ हत्वा वा पाण्डवान् युद्धे स्फीतामुर्वीमवाप्स्यथ । निहता वा परैर्युद्धे वीरलोकमवाप्स्यथ ॥ ४ ॥ दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा वचनं क्षत्रियर्षभाः । हृष्टा नादानुदक्रोशन् वादित्राणि च सर्वशः ॥ ५ ॥ ततः प्रमुदिते तस्मिन् दुर्य्योधनबले तदा । हर्षयंस्तावकान् योधान् द्रौणिर्वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षं सर्वसैन्यानां भवताञ्चापि पश्यताम् । न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्ट-द्युम्नेन पातितः ॥ ७ ॥ स तेनाहममर्षेण मित्रार्थे चापि पार्थिवाः ।

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर दुर्योधन कर्णके पास गया और मद्रराज तथा दूसरे राजाओंकी ओरको देखकर कहनेलगा, कि-॥१। हे कर्ण ! आपको यह युद्ध दैवेच्छा से मिला है, क्योंकि-युद्ध करनेवालेके लिये स्वर्गका द्वार सदा खुला रहता है, भाग्यशाली क्षत्रियोंको ही ऐसे युद्धका लाभ होता है॥२॥युद्धमें लड़नेवाले वीरोंको अपने समान वीर क्षत्रियोंके साथ ही युद्ध करना अच्छा लगता है, वही युद्ध हे कर्ण ! आपलोगोंको मिला है ॥३॥ इसलिये हे राजाओं ! यदि तुम युद्धमें पाण्डवोंको मारसकोगे तो संपूर्ण पृथ्वीको पाओगे और पांडवोंने तुम्हें मारडाला तो वीर पुरुषोंके पुण्यलोकोंको पाओगे ॥४॥ दुर्यो-धनकी बात सुनकर वीर क्षत्रिय हर्षमें भरकर गर्जना करनेलगे तथा भाँति २ के बाजे बजाने लगे ॥ ५ ॥ दुर्योधनके उस सेना-दलमें हर्ष आगया, उस समय अश्वत्थामा तुम्हारे योधाओंको और भी हर्षित करता हुआ कहनेलगा, कि-॥६॥ हे राजाओं ! सब योधाओंके और तुम्हारे सामने जिन्होंने हथियार धरदिये थे ऐसे मेरे पिताजीको धृष्टद्युम्नने मारडाला है ॥७॥इसलिये हे राजाओं !

सत्यं वः प्रतिजानामि तद्वाक्यं मे निबोधत ॥ ८ ॥ धृष्टद्युम्नमहत्वाहं न विमोक्ष्यामि दंशनम्। अनृतायां प्रतिज्ञायां च न हि स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥ अर्जुनो भीमसेनश्च यश्च मां प्रत्युदेष्यति। सर्वांस्तान् प्रमथिष्येहमिति मे नात्र संशयः ॥ १० ॥ एवमुक्ते ततः सर्वा सहिता भारती चमूः। अभ्यद्रवत कौन्तेयौस्तथा ते चापि पाण्डवाः ॥ ११ ॥ स सन्निपातो रथयूथपानां बभूव राजन्नतिभीनरूः जनक्षये कालयुगान्तकल्पः प्रावर्त्तताग्रे कुरुसृञ्जयानाम् ॥ १२ ॥ ततः प्रवृत्ते युधि संप्रहारे भूतानि सर्वाणि सदैवतानि। आसन् समेतानि सहाप्सरोभिर्दिदृक्षमाणानि नरप्रवीरान् ॥ १३ ॥ दिव्यैश्च माल्यैर्विविधैश्च गन्धैर्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैर्नराग्र्यान्। रणे स्वकर्मोद्वहतः प्रवीरानवाकिरन्नप्सरसः

मैं उस अमर्षके कारण तथा अपने मित्रका काम सिद्ध करनेके लिये आज तुम सबोंके सामने जो प्रतिज्ञा करता हूँ उसको तुम सुनो ॥८॥ मैं धृष्टद्युम्नको मारे विना अपने शरीरपरसे इस कवचको नहीं उतारूँगा, यदि मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या हो तो मुझे स्वर्ग न मिले ॥ ९ ॥ लड़ाईमें अर्जुन भीमसेन अथवा और जो कोई भी योधा धृष्टद्युम्नकी रक्षा करेगा तो उसको भी मैं बाण छोड़कर मार ही डालूँगा ॥१०॥ अश्वत्थामाके ऐसा कहने पर भरतवंशके राजाकी सब सेनाने पांडवोंके ऊपर फिर चढ़ायी की, पांडवोंने भी उनके ऊपर धावा किया ॥ ११ ॥ कौरव और सृञ्जयोंके सामने रथियोंका सेनापतियोंके साथ मुचैटा होने पर आपसमें महाभयानक युद्ध होनेलगा, इस युद्धमें प्रलयकालकी समान मनुष्योंके नाश होरहा था ॥ १२ ॥ कौरव पांडवोंके योधा आपसमें युद्ध करनेलगे, उस समय सब प्राणी, देवता और अप्सरायें बड़े २ वीरोंका दर्शन करनेके लिये तहाँ आकर इकट्ठे होगये थे ॥ १३ ॥ अप्सरायें हर्षमें भरकर अपना २ काम करने

महृष्टाः ॥ १४ ॥ समीरणस्तांश्च निषेव्य गन्धान् सिषेव सर्वानपि योधमुख्यान् । निषेव्यमाणास्त्वनिलेन योधाः परस्परघ्ना धरणीं निपेतुः ॥ १५ ॥ सा दिव्यपुष्पैरवकीर्य्यमाणा सुवर्णपुंखैश्च शरैर्विचित्रैः । नक्षत्रसंघैरिव चित्रिता द्यौः क्षितिर्बभौ योधवरैर्विचित्रा ॥ १६ ॥ ततोऽन्तरीक्षादपि साधुवादैर्वादित्रघोषैः समुदीर्यमाणः । ज्याघोषनेमिस्वननादचित्रः समाकुलः सोऽभवत् संप्रहारः ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामप्रतिज्ञायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

संजय उवाच । एवमेष महानासीत् संग्रामः पृथिवीक्षिताम् । क्रुद्धेऽर्जुने तथा कर्णे भीमसेने च पाण्डवे ॥ १ ॥ द्रोणपुत्रं

वाले वीरोंके ऊपर दिव्य फूलोंकी, भाँति २ की दिव्य सुगंधियों की और अनेकों प्रकारके दिव्य रत्नोंकी वर्षा कर रही थीं ।१४। दिव्य सुगन्धिवाला पवन भी सब मुख्य २ योधाओंकी सेवा कररहा था, और पवनके सेवा किये हुए योधा एक दूसरेका नाश करते हुए पृथिवी पर गिररहे थे ॥ १५ ॥ भूमि पर दिव्य पुष्प और सुवर्णके परोंवाले भाँति २ के बाण पड़े हुए थे तथा बड़े २ योधा मरकर पड़ेहुए थे, इस लिये रणभूमि नक्षत्रोंके समूहसे चित्र विचित्र दीखते हुए आकाशकी समान शोभा पारही थी ॥ १६ ॥ आकाशमें धन्यवादकी ध्वनि होरही थी और पृथिवी पर बाजोंके विचित्र शब्द होरहे थे,धनुषकी डोरियोंके टङ्कारशब्द होरहे थे तथा रथके पहियोंके घरघराहटका शब्द भी होरहा था, इस प्रकार रणभूमिमें दोनों सेनाओंका विचित्र प्रकारका संकुल युद्ध फिर होनेलगा ॥१७॥ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

सञ्जय कहता है कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! पांडुपुत्र अर्जुन, भीमसेन तथा कर्ण बड़े क्रोधमें भरगये,राजाओंमें महायुद्ध आरम्भ

पराजित्य जित्वा चान्यान् महारथान् । अब्रवीदर्जुनो राजन् वासुदेवमिदं वचः ॥ २ ॥ पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम् । कर्णञ्च पश्य संग्रामे कालयन्तं महारथान् ॥ ३ ॥ न च पश्यामि दाशार्ह धर्मराजं युधिष्ठिरम् । नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मपुत्रस्य दृश्यते ॥ ४ ॥ त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन । न च मां धार्त्तराष्ट्रेषु कश्चिद्युध्यति संयुगे ॥ ५ ॥ तस्मात्त्वं मत्प्रियं कुर्वन्याहि यत्र युधिष्ठिरः । दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम् ॥ ६ ॥ पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे । ततः प्रायाद्रथेनाशु बीभत्सुवचनाद्धरिः ॥ ७ ॥ यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः । अयुध्यन्त महासत्त्वा मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ८ ॥ ततः संग्रामभूमिं तां वर्त्तमाने जनक्षये । अवे-

होगया, जब अर्जुनने अश्वत्थामाको तथा दूसरे वीरोंको हरादिया तब श्रीकृष्णसे इसप्रकार कहा, कि— हे महाबाहु श्रीकृष्ण ! देखो उधर हमारी सेना रणभूमिमेंसे भागरही है उसको देखिये, तथा कर्ण रणभूमिमेंके महारथियोंको दुःख देरहा है उसको भी देखिये ॥ १–३ ॥ परन्तु हे कृष्ण ! मैं इस घेरेमें युधिष्ठिर को तथा उनके ध्वजदण्डको नहीं देखता हूँ ॥४॥ और हे जनार्दन ! दिनके तीन भागमेंसे अब केवल एक ही भाग शेष रहगया है, तो भी धृतराष्ट्रके योधाओंमेंसे कोई भी मेरे साथ युद्ध नहीं करता है (यह अचरजकी बात है ?) ॥ ५ ॥ इसलिये आप मेरा प्रिय काम करनेके लिये जहाँ युधिष्ठिर हों तहाँ मुझे लेचलिये, अब युधिष्ठिरको अपने भाइयोंके सहित कुशलके साथ देखलूँगा तब फिर युद्ध करूँगा, अर्जुनके ऐसा कहने पर जहाँ राजा युधिष्ठिर तथा महारथी सृञ्जय मृत्युको कुछ न गिनकर तुम्हारे योधाओंके साथ युद्ध कररहे थे तहाँ श्रीकृष्ण अर्जुनके रथको तुरन्त लेगये ।६–८। उस संग्रामभूमिमें मनुष्योंका बड़ाभारी संहार होता देखकर श्रीकृष्ण

क्षमाणो गोविंदः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ पश्य पार्थ महा-रौद्रो वर्त्तते भरतक्षयः।पृथिव्यां क्षत्रियाणां वै दुर्योधनकृते महान्१० पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् । मृतानामपविद्धानि कलापांश्च महाधनान् ॥ ११ ॥ जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्चानत-पर्वणः । तैलधौतांश्च नाराचान् निर्मुक्तान् पन्नगानिव ॥ १२ ॥ हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् जातरूपपरिष्कृतान् । चर्माणि चाप-विद्धानि रुक्मगर्भाणि भारत ॥ १३ ॥ सुवर्णविकृतान् प्रासान् शक्तीः कनकभूषणाः। जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः१४ जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषितान् । दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ १५ ॥ अयस्कुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च । शतघ्नीः पश्य चित्रांश्च विपुलान् परिघाँस्तथा१६ चक्राणि चापविद्धानि तोमरांश्च महारणे । नानाविधानि शस्त्राणि

अर्जुनसे कहनेलगे, कि हे धनञ्जय ! देख; देख, दुर्योधनके लिये पृथिवी पर क्षत्रियोंका कैसा महाभयानक संहार होरहा है।९।१०। हे भारत ! यह देख, मरेहुए धनुषधारी योधाओंके सुवर्णकी पीठवाले धनुष तथा बहुमूल्य भाथे खंभों परसे गिरगये हैं ।११। सोनेके पंख और नमेहुए पर्वोंवाले तथा तेल चुपड़ेहुए नाराच जातिके बाण देख, कंचुली से छूटेहुए सर्पोंकी समान बाहर पड़े हैं ॥ १२ ॥ हे भारत ! हाथीदाँतकी मूठवालीं और सोनेसे जड़ी हुई तलवारें तथा सुवर्णसे मढ़ीहुई ढालें, प्रास, सुवर्णसे सुशोभित की हुई शक्तियें, सुवर्णकी पट्टियोंसे जड़ी हुई बड़ी २ गदायें, सुवर्णकी ऋष्टियें सोनेसे मढ़े दण्डोंवाले फरसे, लोहेके भाले, भारी१ मूसल,भाँति२ की शतघ्नियें, बहुतसे परिघ चक्र और तोमर रणभूमिमें बिखरे पड़े हैं, इनको भी देख विजयके अभिलाषी योधा मरगये हैं तो भी वे हाथोंमें अभीतक शस्त्रोंको धारण किये हुए हैं ये अब भी जीवितसे मालूम होते हैं, कितनों हीके शरीर

प्रगृह्य जयगृद्धिनः ॥ १७ ॥ जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः । गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ॥ १८ ॥ गजवाजिरथक्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः । मनुष्यहयनागानां शरशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ॥ १९ ॥ परिघैरायसैर्घोरैरयस्कुन्तैः परश्वधैः । शरीरैर्बहुभिश्छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ २० ॥ गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः । बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैर्हेमभूषितैः ॥ २१ ॥ सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी । सांगुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ॥२२॥ हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् । बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥२३॥ पतितैर्ऋषभाक्षाणां विराजति वसुन्धरा । कबन्धैः

गदाओं की चोटोंसे भुरकस होरहे हैं, कितनोंहीके मस्तक मूसलों से कुचले हुए हैं ॥१३-१८॥ और हाथी, घोड़े तथा रथोंके नीचे आजानेसे कितने ही तो कुचलगये हैं, हे शत्रुओंका संहार करनेवाले अर्जुन ! जो मनुष्योंकी घोड़ोंकी तथा हाथियोंकी ल्हासोंसे और शक्ति, ऋष्टि, पट्टिश, तलवार, परिघ, प्रास, लोहे के भाले तथा फरसे आदि शस्त्रोंके प्रहारोंसे कटेहुए और रुधिरके प्रवाहमें लथड़ पथड़ हुए असंख्यों शवोंसे सब रणभूमियें कैसी भरगयी हैं ! हे भरतवंशी अर्जुन ! बाजूबन्द और केयूर आदि सुवर्णके गहनोंसे सुशोभित तथा चन्दनसे चर्चित, चमड़ेके मोजोंवाले वीरोंके भुजदण्डोंसे यह रणभूमि इस समय दिपरही है १९-२१ और बैलकी समान विशाल नेत्रवाले वीरोंके बिखरे पड़ेहुए चमड़ेके मोजोंसे शोभायमान हाथोंके अग्रभाग, हाथीकी शुण्डकी समान कटी हुई साँथलें तथा उत्तम प्रकारके मुकुट और कुण्डलोंसे सजेहुए मस्तकासे यह रणभूमि कैसी शोभायमान मालूम होरही है।२२-२३। हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन ! लपटें शान्त होजाने पर अग्नि जैसा मालूम होता है तैसे ही स्वरूपवाले और लोहूलुहान हुए तथा

शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः॥२४॥भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शांतार्चि
भिरिवाग्निभिः॥रथांश्च वहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान् २५
वाजिनश्च हतान् पश्य विनिकीर्णान्त्रैर्हतान्। अनुकर्षानुपासङ्गान्
पताकाविविधध्वजान् ॥ २६ ॥ रथिनाञ्च महाशङ्खान् पांडुरांश्च
प्रकीर्णकान्। निरस्तजिह्वान् मातङ्गान् शयानान् पर्वतोपमान् २७
वैजवन्तीर्विचित्राश्च हताँश्च गजवाजिनः। वारणानां परिस्तोमा-
स्तथैवाजिनकम्बलान्॥ २८ ॥ विपाटितविचित्रांश्च रूपचित्राः
कुथास्तथा। भिन्नाश्च वहुधा घंटा महद्भिः पतितैर्गजैः॥ २९ ॥
वैदूर्यदंडांश्च शुभान् पतितानंकुशान् भुवि। वद्धाः सादिभुजाग्रेषु
सुवर्णविकृताः कशाः॥ ३० ॥ विचित्रमणिचित्रांश्च जातरूप-
परिष्कृतान्। अश्वास्तरपरिस्तोमान् रांकवान् पतितान् भुवि।३१।

जिनके कन्धे और शरीर कटगये हैं ऐसे धड़ोंसे रणभूमि अत्यन्त दिपरही है॥ २४ ॥ सोनेकी घंटियोंवाले उत्तम रथ भी जगह २ परसे टूटेहुए पड़े हैं, घोड़ेभी वाणोंकी मारसे मरे पड़े हैं और उनके शरीरोंमें से आँतें वाहर निकली पड़ी हैं, रथोंके नीचेके उपकर्ष, उपासङ्ग, आदि भाग, पताकाएँ तथा भाँति २ के ध्वजदण्ड भी टूटे पड़े हैं, रथियोंके स्वेत रङ्गके वडे २ शङ्ख फूटगये हैं, स्वेत चँवर टूट फूटगये हैं और वे सव रणभूमि में पड़े हैं,जिनकी जीभ वाहरको निकल आयी है ऐसे पहाड़की समान वड़ी २ कायावाले हाथी रणभूमिमें लंवे होकर सोरहे हैं, इनकोभी तू देखले२५-२७ भाँति२की वैजयन्त मालाओं वाले मरेहुए हाथी,और घोड़े हाथियों की पीठोंपर विछानेके फटेहुए चमड़ेके विछौने, वड़े २ हाथियोंके नीचे दवजानेसे पिचकर भुरकस हुए घण्टे, वैदूर्य मणियोंसे जड़े दाँतके हाथों वाले मनोहर अँकुश, सवारों के हाथोंमें रहने वाली सोनेकी चावुक, सुनहरी चित्रकारीसे भरी घोड़ोंके ऊपर विछानेकी रुरु नामक मृगोंके चमडेकी गद्दियें, रांजाओंके

चूडामणीन्नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः । छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ॥ ३२ ॥ चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः । क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ॥ ३३ ॥ वदनैः पश्य संछन्नां महीं शोणितकर्दमाम् । सजीवांश्च परान् पश्य कूजमानान् समन्ततः ॥ ३४ ॥ उपास्यमानान् बहुशो न्यस्तशस्त्रैर्विशाम्पते । ज्ञातिभिः सहितांस्तत्र रोदमानैः पुनः पुनः ३५ व्युत्क्रान्तानपरान् योधांश्छादयित्वा तरस्विनः । पुनर्युद्धाय गच्छन्ति जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३६ ॥ अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानवाः । ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम् । ३७। जलार्थञ्च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन । सन्निवृत्ताश्च

मुकुट, भाँति २ के सुवर्णके हार, छत्र, चँवर और पंखे चारों ओर पड़े हैं उनको भी तू देख ॥ २८–३२ ॥ वीरपुरुषोंके शोभायमान चन्द्रमा और नक्षत्रोंकी समान कान्तिमान् सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित बिना डाढीके मुखोंसे तथा उनके रुधिरकी कीचसे रणभूमि ढकीहुई है, इसको देख हे अर्जुन ! कितने ही योधा जीवित हैं, वे चारों ओरको देखकर समझमें न आनेवाले अव्यक्त शब्द कररहे हैं उनके संबन्धी अस्त्र शस्त्रोंको छोड़कर उनके पास आगये हैं और वारंवार रोकर उनकी टहल सेवाकर रहे हैं, उनको भी तू देखले ॥ ३३–३५ ॥ देख, कितने ही योधा रणमें मर गये हैं, तब भी विजयकी इच्छासे अत्यन्त क्रोधमें भरेहुए शत्रुपक्ष के योधा उनके ऊपर बाणोंका प्रहार कररहे हैं, तथा युद्ध करनेके लिये उनके ऊपरको चढ़ेजाते हैं, देख, देख, कितने ही योधा रणमें पड़े २ पानी २ की पुकार मचारहे हैं उन के लिये उनके संबन्धी पुरुष पानी लानेके लिये इधर उधरको दौड़ जारहे हैं ॥ ३६–३७ ॥ हे अर्जुन ! कितने ही सैनिक रणभूमिमें प्राणहीन हुए पड़े हैं, देख प्यासेकी प्यास बुझानेके

ते शूरास्तान् वै दृष्ट्वा विचेतसः ॥ ३८ ॥ जलं त्यक्त्वा प्रधावन्ति क्रोशमानाः परस्परम् । जलं पीत्वा मृतान् पश्य पिबन्तोऽन्यांश्च भारत ॥ ३९ ॥ परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान् बान्धवप्रियाः । व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे ॥ ४० ॥ तथापरान्नरश्रेष्ठ सन्दष्टौष्ठपुटान् पुनः । भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान् समन्ततः ॥ ४१ ॥ एवं ब्रुवंस्तदा कृष्णो ययौ यत्र युधिष्ठिरः । अर्जुनश्चापि नृपतेर्दर्शनार्थं महारणे ॥ ४२ ॥ याहि याहीति गोविन्दं पुनः पुनरचोदयत् । तां युद्धभूमिं पार्थस्य दर्शयित्वा च माधवः ॥४३॥ त्वरमाणस्ततः कृष्णः पार्थमाह शनैरिदम् । पश्य कौरवराजानमुपयातांश्च पार्थिवान् ॥४४॥ कर्णं पश्य महारंगे ज्वलन्तमिव पावकम् । असौ भीमो महेष्वासः सन्निवृत्तो रणं प्रति ४५

लिये पानी लेनेको गये हुए वीर लौटके आकर देखते हैं तो प्यासा मरगया है, इसलिये पानीको फेंककर एक दूसरेके ऊपर आक्षेप करते हुए रणभूमिमें दौड़भाग कररहे हैं, हे भरतवंशी राजन् ! देख कितने ही योधा जल पीकर मररहे हैं, कितने ही जल पीते २ मररहे हैं. बांधवों पर प्रेम रखनेवाले कितने ही योधा अपने बांधवोंको त्यागकर महारणमें जहाँ तहाँ अपने प्रियप्राणोंको त्याग गये हैं ॥ ३८-४० ॥ हे नरश्रेष्ठ अर्जुन ! देख कितने ही योधा अपने होठको दाँतसे काटकर तिरछी भ्रकुटी वाले मुखसे चारों ओरको देखरहे हैं ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अर्जुनसे कहते २ श्रीकृष्ण जहाँ युधिष्ठिर खडे थे उधरको रथ हाँकने लगे अर्जुन भी उस महारणमें युधिष्ठिरका दर्शन करनेके लिये श्रीकृष्णजीसे वारंवार कहने लगा, कि-आगे चलिये, आगे चलिये, माधव अर्जुनको युद्धभूमि दिखलाते हुए शीघ्रतासे आगेको बढ़ते चलेगये धीमे स्वर से अर्जुनसे कहनेलगे, कि- हे अर्जुन ! देख, राजा युधिष्ठिर वह खड़े हैं, जो राजे पहले चढ़कर आये थे उनको भी देख देख वह जलते अग्निकी समान कर्ण रणभूमिमें खड़ा है, वह देख महाधनुषधारी

तमेते विनिवर्त्तन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः । पाञ्चालसृञ्जयानाञ्च पाण्डवानां च ये मुखम् ॥ ४६ ॥ निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् । कौरवान् द्रवतो ह्येष कर्णो रोधयतेऽर्जुन ॥ ४७ ॥ अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः । असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिः शस्त्रभृतांवरः ॥ ४८ ॥ तमेव प्रद्रुतं संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः । अनुप्रयाति संग्रामे हतान् पश्य च सृञ्जयान् ॥ ४९ ॥ सर्वमाह सुदुर्द्धर्षो वासुदेवः किरीटिने । ततो राजन् प्रादुरासीन्महाघोरो महारणः ॥ ५० ॥ सिंहनादरवाश्चैव प्रादुरासन् समागमे । उभयोः सेनयो राजन् मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ५१ ॥ एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते । तावकानां परेषाञ्च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ५२ ॥
इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये ष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

भीमसेन युद्धके लिये पीछेको लौट रहा है ॥ ४२-४५ ॥ देख, पंचाल, सृञ्जय और पाण्डवोंके मुख्य मुख्य योधा तथा धृष्टद्युम्न आदि योधा उसके पीछे २ जारहे हैं, वह देख पांडवोंके योधा पीछेको लौटकर शत्रुकी महासेनामें भागड़ डालरहे हैं, और रणमें से भागेजाते हुए कौरवोंके योधाओंको कर्ण रोकरहा है ४६-४७ हे अर्जुन ! वह देख कालकी समान वेग वाला और इन्द्र की समान पराक्रमियोंमें तथा शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा युद्धभूमि में को जारहा है ॥ ४८ ॥ देख, रणभूमिमेंको दौड़ते हुए अश्वत्थामाके पीछे २ वह महारथी धृष्टद्युम्न जारहा है तथा वह देख सृञ्जय रणमें मररहे हैं इस प्रकार बड़े निडर श्रीकृष्ण अर्जुनको सब योधाओंकी दशा दिखा और बता रहे थे, इतनेमें ही दोनों पक्षोंमें फिर महाभयानक युद्ध आरम्भ होगया, दोनों पक्षके योधा मृत्युको कुछ न गिनकर युद्ध करने लगे और सिंहकी समान गर्जना करने लगे, सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! इस प्रकार तुम्हारे अन्यायसे तुम्हारे पक्षके और शत्रुपक्षके योधाओंका रणमें बड़ा भारी संहार हुआ था ॥ ४९-५२ ॥ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जय उवाच । ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुसृञ्जयाः । युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ १ ॥ तत प्रवृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः । कर्णस्य पाण्डवानाञ्च यमराष्ट्रविवर्द्धनः २ तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके । संशप्तकेषु शूरेषु किंचिच्छिष्टेषु भारत ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः । कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ४ ॥ आगच्छमानांस्तान् संख्ये प्रहृष्टान् विजयैषिणः । दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः ॥ ५ ॥ समासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्य्यन्त महारथाः । यथाचलं समासाद्य वार्य्योघाः सर्वतो दिशम् ॥ ६ ॥ तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः । धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेणानतपर्वणा ॥ ७ ॥ ताड़यामास समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्र-

सञ्जय कहता है कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! कौरव और सृञ्जय निर्भयताके साथ युद्ध करनेके लिये आमने सामने डट गये, उस समय पांडवोंके पक्षमें युधिष्ठिर और हमारे पक्षमें कर्ण मुख्य थे ॥ १ ॥ और पांडवोंके रोमांचकारी महाभयानक युद्धमें हजारों योधाओंका कचर घांस होगया था ॥ २ ॥ महाघोर संग्राम होनेलगा, रुधिरकी धारें वहनेलगीं और हे महाराज ! वीर संशप्तक थोड़ेसे ही शेष रहगये थे, उस समय धृष्टद्युम्न और महारथी पांडवोंने सब राजाओंको साथ लेकर कर्णके ऊपर ही चढाई करदी ३-४ विजय चाहनेवाले और प्रसन्नचित्त उन सबोंको अपने ऊपर चढ़कर आतेहुए देखकर कर्णने रणमें ऐसे रोकदिया जैसे पहाड़ पानीके अहलेको रोक देता है ५ और पानीका अहला जैसे पर्वतके ऊपर गिरकर चारोंओरको फैलजाता है तैसे ही महारथी भी कर्णके ऊपर चढायी करनेके अनन्तर सब दिशाओंमेंको फैलगये अर्थात् भागने लगे ॥ ६ ॥ परन्तु धृष्टद्युम्न रणमें खड़ा रहा, उसने नमेहुए पर्ववाले बाण मारकर कर्णसे कहा कि-

वीत् । विजयञ्च धनुः श्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः ॥ ८ ॥ पार्ष-
तस्य धनुश्छित्त्वा शरांश्चाशीविषोपमान् । नाडयामास संक्रुद्धः
पार्षतं नवभिः शरैः ॥ ९ ॥ ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा तस्य महा-
त्मनः । शोणिताक्ता व्यराजन्त शक्रगोपा इवानघ ॥ १० ॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः । अन्यद्धनुरुपादाय
शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ११ ॥ कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः
सन्नतपर्वभिः । तथैव राजन् कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम् ॥१२॥
छादयामास समरे शरैराशीविषोपमैः । द्रोणशत्रुर्महेष्वासो विव्याध
निशितैः शरैः ॥ १३ ॥ तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषि-
तम् । प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ १४ ॥ तमाप-
तन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते । चिच्छेद सप्तधा राजन् शैनेयः

खड़ा रह २ अब कहाँको भागजाता है ? महारथी कर्णने क्रोध
में भरकर अपने विजय नामके उत्तम धनुषके ऊपर टङ्कार दी
और विषधर सर्पोंकी समान बाण मारकर धृष्टद्युम्नके धनुषको
काटडाला और उसके नौ बाण मारे, जिनसे उस महात्माका
सुनहरी कवच कटगया, हे निर्दोष राजन् ! लोहूलुहान वे बाण
वीरबहुट्टीकी समान मालूम होते थे ॥ ७-१० ॥ फिर धृष्टद्युम्नने
वह कटाहुआ धनुष हाथमेंसे फेंककर दूसरा धनुष लेलिया और
विषैले साँपोंकी समान नमेहुए पर्वोंवाले सत्तर बाण कर्णके मारे
हे राजन् ! कर्णने भी उसीप्रकार विषैले साँपोंकी समान बाण मार
कर शत्रुको सन्ताप देनेवाले धृष्टद्युम्नको ढकदिया, द्रोणके शत्रु
महाधनुषधारी धृष्टद्युम्नने तेज कियेहुए बाण मारकर कर्णको बींध
दिया ॥ ११-१३ ॥ कर्णको बड़ा क्रोध चढ़आया, उसने भी
सोनेका पानी चढ़ाहुआ और दूसरे मृत्युदंडकी समान बाण
धृष्टद्युम्नके मारा॥१४॥हे राजन् ! धृष्टद्युम्नके ऊपर आतेहुए उन
भयानक बाणोंके सात्यकीने फुरतीले हाथवाले योधाकी समान

कृत्तहस्तवत् १५ दृष्ट्वा विनिहतं वाणं शरैः कर्णो विशाम्पते। सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात् पर्य्यवारयत्। १६। विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः। तमभ्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमविभूषितैः ॥ १७ ॥ ततो युद्धं महाराज चक्षुश्रोत्रभयावहम्। आसीद्धोरञ्च चित्रञ्च प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥ १८ ॥ सर्वेषां तत्र भूतानां रोमहर्षोऽभ्यजायत। तद्द दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप॥१९॥ एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात् सुमहाबलम्। पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्य्यासुनाशनम्॥२०॥ अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुञ्जयः। तिष्ठ तिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः। पार्षतं छादयामास घोररूपैः

सैंकड़ों टुकड़े करडाले ॥ १५ ॥ सात्यकीने वाण मारकर मेरे वाणोंको काटडाला यह देख कर्णने वाणोंकी वर्षा करके सात्यकीको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ६ ॥ और फिर नाराच जातिके सात वाण मारकर सात्यकीको वींधडाला, सात्यकीने भी सुवर्ण से मँढ़ेहुए वाण मारकर कर्णको वींधडाला ॥१७॥ हे महाराज ! तदनन्तर उन दोनोंमें नेत्रों और कानोंको भयदेनेवाला महाभयानक परन्तु देखने योग्य विचित्र युद्ध होनेलगा १८ और हे राजन् ! इस युद्धमें कर्णके तथा सात्यकीके भयानक कर्मको देखकर सब प्राणियोंके शरीरोंमें रोमाञ्च खड़े होगये १९ इतनेमें ही शत्रुओं का दमन करनेवाले और शत्रुओंकी वीरता तथा प्राणोंकी समाप्ति करनेवाले महाबली धृष्टद्युम्नके ऊपर अश्वत्थामा चढ़ आया और बड़े क्रोधमें भरकर उससे कहनेलगा, कि—अरे ओ ब्रह्महत्यारे ! खडा रह, आज तू मेरे हाथसे जीता बचकर नहीं जासकता ॥ २० ॥ २१ ॥ ऐसा कहकर अश्वत्थामाने चमकदार और तेज कियेहुए वाण फुरतीसे छोड़कर अपनी शक्तिभर उद्योग करतेहुए धृष्टद्युम्नको वाणोंकी वर्षासे ढककिया, हे राजन् ! जैसे

स्तुतेजनैः ॥ २२ ॥ यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः । यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ॥ २३ ॥ तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा । नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यमानः मृत्युमात्मनः ॥ २४ ॥ स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु । जवेनाभ्यद्रवद् द्रौणिं कालः कालमिव क्षये ॥ २५ ॥ द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम् । क्रोधेन निश्वसन् वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ २६ ॥ तावन्योऽन्यन्तु दृष्ट्वैव संरम्भं जग्मतुः परम् । अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २७ ॥ धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते । पांचालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे॥२८ पापं हि यत्त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम् । अद्य त्वां तप्स्यते तद्वै यथा न कुशलं तथा ॥२९॥ अरक्ष्यमाणः

महारथी द्रोणाचार्य रणमें धृष्टद्युम्नको देखते ही मनमें उदास होकर उसको अपना काल मानते थे, ऐसे ही धृष्टद्युम्न भी अश्वत्थामाको देखकर मनमें उदास होजाता था और उसको अपना काल मानता था ॥ २२– २४ ॥ परन्तु धृष्टद्युम्न जानता ही था, कि-मैं शस्त्रसे नहीं माराजासकता इसलिये प्रलयके समय जैसे काल कालके ऊपर चढायी करता है तैसे ही धृष्टद्युम्नने फुरतीसे अश्वत्थामाके ऊपर धावा करदिया ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नको अपने ऊपर चढकर आयाहुआ देखकर क्रोधसे लम्बे २ सांस छोड़ताहुआ उसके सामने आया ॥ २६ ॥ अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्न एक दूसरेको रणमें देखकर बड़े क्रोधमें भरगये प्रतापी अश्वत्थामाने शीघ्रतासे पास आये हुए धृष्टद्युम्न से कहा, कि–अरे नीच पंचाल ! आज मैं तुझे मृत्युके पास भेज दूँगा ॥ २७ ॥२८॥ अरे मूढ ! यदि अर्जुन तेरी रक्षा नहीं करेगा अथवा यदि तू रणमेंसे न भागकर मेरे सामने खडा रहेगा तो तूने द्रोणाचार्यको मारकर जो पापकर्म किया है वह पापकर्म

पार्थेन यदि तिष्ठति संयुगे। नापक्राम स वा मूढ़ सत्यमेतद्ब्रवी-
मि ते ॥ ३० ॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्। प्रतिवा-
क्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥ ३१ ॥ येनैव ते पितुर्दत्तं
यतमानस्य संयुगे। यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ३२
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात्। एवमुक्त्वा महा-
राज सेनापतिरमर्षणः ॥ ३३ ॥ निशितेनाथ वाणेन द्रौणिं
विव्याध पार्षतः। ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ३४
आच्छादयद्दिशो राजन् धृष्टद्युम्नस्य संयुगे। नैवान्तरीक्षं न दिशो
नापि योधाः समन्ततः ॥ ३५ ॥ दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः
सहस्रशः। तथैव पार्षतो राजन् द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३६ ॥
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः। राधेयोऽपि महाराज
पंचालान् सह पाण्डवैः ॥ ३७ ॥ द्रौपदेयान् युधामन्युं सात्य-

आज तुझे सकुशल नहीं रहनेदेगा, किन्तु तुझे सन्ताप ही देगा यह बात मैं तुझसे सत्य कहताहूँ ॥२९॥ ३०॥ यह सुनकर प्रतापी धृष्टद्युम्नने उत्तर दिया कि—युद्धमें विजयके लिये बड़ा भारी उद्योग करनेवाले तेरे पिताको मेरी जिस तलवारने उत्तर दियाथा, वही मेरी यह तलवार तुझे भी उत्तर देगी, यदि मैंने पहले ब्राह्मण नामधारी द्रोणको ही मारडाला तो फिर अब मैं पराक्रम करके रणमें तुझे क्यों नहीं मारूँगा? हे महाराज! पांडव-सेनाके असहनशील सेनापति धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामासे इसप्रकार कहकर उसके तेज किये हुए वाण मारे, इससे द्रोणपुत्र अश्व-त्थामाको बड़ा ही क्रोध आया उसने नमेहुए पर्ववाले वाण मार कर युद्धमें धृष्टद्युम्नकी सब दिशाओंको ढकदिया, उससे अन्तरिक्ष, दिशायें और चारो ओर खड़ेहुए योधा दीखना बन्द होगये दूसरी ओरसे पृषत्के पुत्रने कर्णके देखतेहुए शोभायमान अश्वत्थामाको रणमें वाणोंके जालसे ढकदिया हे महाराज! कर्ण

क्षिञ्च महारथम् । एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ३८
धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् । तदपास्य धनुर्द्रौ-
णिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ३९ ॥ वेगवान् समरे घोरे शरांश्चा
शीविषोपमान् । स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम् ४०
हयान् सूतं रथं चैव निमेषाद्व्यधमच्छरैः । स छिन्नधन्वा विरथो
हताश्वो हतसारथिः ॥ ४१ ॥ खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च
भानुमत् । द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः ॥ ४२ ॥
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः । रथादनवरूढस्य तद-
द्भुतमिवाभवत् ॥ ४३ ॥ धृष्टद्युम्नन्तु विरथं हताश्वं छिन्नकार्मु-
कम् । शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम् ॥ ४४ ॥ नाशक-

ने भी अकेले ही पंचाल योधाओंको, पांडवोंको, द्रौपदीके पुत्रोंको
युधामन्युको तथा महारथी सात्यकीको आगे बढनेसे रोकदिया
उस समय चारों ओरसे सब कर्णको देखरहे थे ॥ ३१-३८ ॥
फिर धृष्टद्युम्नने युद्धमें अश्वत्थामाके धनुषको काटडाला, द्रोण-
पुत्रने उस धनुषको फेंककर दूसरा धनुष हाथमें लेलिया और
उसपर विषैले सर्पोंकी समान बाण चढाकर उस घोर युद्धमें वेगसे
बाण छोड़कर धृष्टद्युम्नके धनुष शक्ति' गदा, ध्वजा, घोड़े और
सारथीको एक पलक मारने मात्र समयमें काटडाला. सारथी और
घोड़े मरगये, धनुष तथा रथ टूटगया-तब धृष्टद्युम्नने शतचन्द्र
नामकी चमकती हुई एक बडी तलवार हाथमें ली. परन्तु महारथी
अश्वत्थामाने उसको भी भल्ल जातिके बाण मारकर एक सपाटे
में काट डाला, तो भी धृष्टद्युम्न टूटेहुए रथमें ही बैठारहा, अश्व-
त्थामाके शस्त्र बड़े दृढ थे और उसका हाथ भी बड़ा फुरतीला था,
उसका पराक्रम आश्चर्यसा मालूम होता था ॥ ३९-४३ ॥
धृष्टद्युम्नके घोड़े और सारथी मरगये, उसके रथ और
धनुषको भी शत्रुने काटडाला, तदनन्तर महारथी अश्व-

ऽवरतश्रेष्ठ यतमानो महारथः। तस्यान्तर्मिपुभी राजन् यथा द्रौणिर्न जग्मिवान् ॥ ४५ ॥ अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः पार्षतं त्वरितोऽन्वगात् । आसीदासवतो वेगस्तस्य राजन्महात्मनः ॥ ४६ ॥ गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम् । एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति । यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः॥ ४८ ॥ तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्षण । द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् । प्रैषयत्तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ॥ ५० ॥ ते हयाश्चन्द्रसङ्काशाः केशवेन प्रचोदिताः । आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं

त्थामाने बाण मारकर धृष्टद्युम्नको बडा ही घायल करदिया, उसको मारनेके लिये बड़े २ उद्योग किये, परन्तु जब उससे कुछ फल न निकला तब उसने धनुषको फेंककर धृष्टद्युम्न के ऊपर बड़े वेगसे चढाई की, हे राजन् ! महात्मा अश्वत्थामा जिस समय धृष्टद्युम्नको पकड़नेके लिये दौडा उस समय उसका वेग सर्पको पकडनेके लिये दौडनेवाले गरुडकी समान था, अश्वत्थामाको धृष्टद्युम्नके ऊपर झपटते देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, कि-॥ ४४-४७ ॥ हे धनञ्जय ! वह देख, अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये बडाभारी उद्योग कररहा है, अरे ! यह इसको अवश्य ही मारडालेगा ॥ ४८ ॥ इसलिये हे महाबाहु शत्रुदमन अर्जुन ! कालके मुखकी समान अश्वत्थामाके मुखमेंसे धृष्टद्युम्नको बचा ॥ ४९ । ऐसा कहकर प्रतापी श्रीकृष्णने जहाँ अश्वत्थामा खडा था उधरको घोडे दौडाये ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णके दौडाये हुए चन्द्रसमान श्वेत रङ्गके वे घोडे मानो आकाशको पीरहे हों इसप्रकार अश्वत्थामाके रथकी ओरको वेगसे जानेलगे महापराक्रमी श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको चढकर आतेहुए देखकर

प्रति ॥ ५१ ॥ दृष्ट्वायान्तौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनंजयौ । धृष्ट-
द्युम्नवधे यत्नमकरोत् स महाबलः ॥ ५२ ॥ विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव
धृष्टद्युम्नं जनेश्वर । शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः॥५३
ते शरा हेमविकृता गांडीवप्रेषिता भृशम् । द्रौणिमासाद्य विविशु-
र्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ५४ ॥ स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः
प्रतापवान् । उत्सृज्य समरे राजन् पांचाल्यममितौजसम् ॥ ५५ ॥
रथमारुरुहे वीरो धनंजयशरार्दितः । प्रगृह्य च धनुःश्रेष्ठं पार्थं विव्याध
सायकैः ॥ ५६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप । अपो-
वाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ५७ ॥ अर्जुनोऽपि महाराज
द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः । तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि
चार्पयत् ॥ ५८ ॥ क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसम्मितम् ।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥५९॥ ब्राह्मणस्यांसदेशे

महाबली अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये पृथिवी पर घसीटना आरम्भ करदिया, यह देखकर महाबली अर्जुन गांडीव धनुषके ऊपर सोना जड़े हुए बाणोंको चढ़ाकर बाणोंसे अश्वत्थामाको मारनेलगा, वे बाण जैसे साँप बिलमें घुसते हों तैसे अश्वत्थामाके शरीरमें घुसरहे थे ॥ ५२-५४ ॥ इसप्रकार अर्जुनने भयानक बाणोंसे अश्वत्थामाको बींधडाला, प्रतापी अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंकी मारकी पीड़ाके कारण महाबली धृष्टद्युम्नको छोड़कर अपने रथपर चढ़गया और बहुत बड़ा धनुष लेकर अर्जुनके ऊपर बाण छोड़नेलगा ॥५५-५६॥ इस अवसरको पाकर वीर सहदेव शत्रुतापी धृष्टद्युम्नको रथमें बैठालकर रणमेंसे दूर लेगया ॥ ५७ ॥ अर्जुन अश्वत्थामाके बाण माररहा था, इसलिये अश्वत्थामा क्रोधमें भरगया और उसने अर्जुनके दोनों भुज-दण्डों पर तथा छाती पर बाण मारे ॥ ५८ ॥ अर्जुनभी क्रोधमें भरगया और उसने अश्वत्थामाके ऊपर दूसरे कालदंडकी समान कालरूप नाराचजातिका और एक बाण छोड़ा ॥ ५९ ॥ वह

स निपपात महाद्युतिः । स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ६०।
निषसाद रथोपस्थं वैक्लव्यं च परं ययौ । ततः कर्णो महाराज
व्याक्षिपद्विजयं धनुः ॥ ६१ ॥ अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहु-
र्मुहुः । द्वैरथञ्चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥ ६२ ॥ विह्वलं
तन्तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रस्य सारथिः । अपोवाह रथेनाजौ त्वर-
माणो रणाजिरात् ॥ ६३ ॥ अथोत्क्रुष्टं महाराज पञ्चालैर्जित-
काशिभिः । मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रञ्च पीड़ितम् ॥ ६४ ॥
वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः । सिंहनादांश्च चक्रु-
स्ते दृष्ट्वा संख्ये तदद्भुतम् ॥ ६५ ॥ एवं कृत्वाब्रवीत् पार्थो वासुदेवं
धनञ्जयः । याहि संशप्तकान् कृष्ण कार्यमेतत् परम्मम ॥ ६६ ॥

बडाचमकताहुआ नाराच अश्वत्थामाके खभेमें लगा, उस बाणके वेगसे लगनेके कारण अश्वत्थामा विह्वल हो रथकी बैठकमें बैठ गया तथा अत्यन्तही मूर्छित होगया, ऐसे महासंग्राममें कर्णने अर्जुनके साथ द्वन्द्वयुद्ध करना चाहा, इसलिये वह वारंवार अर्जुन के मुखकी ओरको देखकर अपने विजय नामक धनुषके ऊपर टङ्कार देरहा था, इतनेमें ही अश्वत्थामाको विह्वल हुआ देखकर उसका सारथी उसको एकसाथ रणभूमिमेंसे दूर लेगया ६०-६३ हे महाराज ! इसप्रकार धृष्टद्युम्नको बचा हुआ देखकर और अश्वत्थामाको विह्वल हुआ देखकर विजयके उत्साहमें भरेहुए पंचालदेशके योधा बडीभारी गर्जना करनेलगे ॥ ६४ ॥ हजारों दिव्य बाजे बजनेलगे और योधा युद्धमें अद्भुत कर्म देखकर सिंह-नाद करनेलगे ॥ ६५ ॥ऐसा पराक्रम करनेके अनन्तर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि-हे कृष्ण ! संशप्तकोंको मारना मेरा मुख्य कर्म है, इसलिये आप मेरे रथको संशप्तकोंकी तरफ लेचलिये ६६ अर्जुनकी इस बातको सुनकर दशार्हवंशी श्रीकृष्ण बडी पताका वाले तथा मन और पवनकी समान वेगवाले रथको संशप्तकोंके

ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम् । रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्रौण्यप्रयाने
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

सञ्जय उवाच । एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत् । दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥ ॥ एष पांडव ते भ्राता धार्त्तराष्ट्रैर्महाबलैः । जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थोऽनुसार्यते ॥२॥ तञ्चानुयान्ति संरब्धाः पंचाला युद्धदुर्मदाः । युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥ एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः । राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ४ जिघांसुः पुरुषव्याघ्र भ्रातृभिः सहितो बली । आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥५॥ एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः ।

मण्डलकी ओर लेगये ॥ ६७ ॥ उनसठवाँ अध्याय समाप्त। ५९।

सञ्जय कहता है कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णने रथको हाँकते हाँकते कुन्तीनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरको दिखाकर अर्जुनसे कहा, कि-॥ १ ॥ हे पाण्डव ! वह देख धृतराष्ट्रके महाबली योधा बड़े बड़े धनुषोंको लेकर तेरे भाईको मारनेके लिये उनके ऊपर बड़ी शीघ्रतासे धावा कररहे हैं ॥ २ ॥ और देख वह युद्धदुर्मद, महाबली पंचाल योधा क्रोधमें भरकर युधिष्ठिरकी रक्षाकरनेके लिये उनके पीछे २ जारहे हैं॥३ ॥ और यह देख सब लोकका राजा दुर्योधन द्वेषके कारण रथसेनाके सहित राजा युधिष्ठिरके पीछे दौड़ रहा है ॥४॥ हे पुरुषव्याघ्र ! यह राजा युधिष्ठिरको मारना चाहता है, युद्ध करनेमें प्रवीण और विषधर सर्पोंकी समान स्पर्शवाले इसके भाई भी इसके साथ ही जारहे हैं ।५॥ वह देख, धृतराष्ट्रकी तरफके हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल, जैसे याचक धन लेनेकी इच्छासे दाता पुरुषको पकड़नेके लिये

युधिष्ठिरं धार्त्तराष्ट्रा नरोत्तममिवार्थिनः ॥ ६ ॥ पश्य सात्वत-भीमाभ्यां निरुद्धा धिष्ठिताः पुनः। जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः शक्राग्नि-भ्यामिवासकृत् ॥७॥ एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पांडवम्। समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥ ८ ॥ नदन्तः सिंह-नादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान्। बलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥ ९ ॥ मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्। हुत-मग्नौ च कौन्तेयं दुर्योधनवशं गतम् ॥ १० ॥ यथाविधमनीकन्तु धार्त्तराष्ट्रस्य पाण्डव। नास्य शक्रोऽपि मुच्येत संप्राप्तो बाणगो-चरम् ॥ ११ ॥ दुर्योधनस्य वीरस्य शरौघान् शीघ्रमस्यतः। संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद्रणे ॥१२॥ दुर्योधनस्य वीरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च। कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि शातयेत् १३

उसके पीछे दौड़ते हैं तैसे ही युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये उनके पीछे दौड़रहे हैं ॥ ६ ॥ परन्तु अमृतको लेना चाहनेवाले दैत्योंको जैसे इन्द्र और अग्निने एकसाथ रोकलिया था तैसे ही भीमसेन और सात्यकीने उनको आगे बढ़नेसे रोकदिया है ।७। तो भी जैसे वर्षा ऋतुमें जलके प्रवाह समुद्रकी ओरको बड़े वेगके साथ दौड़ेहुए जाते हैं तैसे ही शत्रुपक्षके महाबली असंख्यों महा-रथी योधा सिंहोंकी समान गर्जना तथा शङ्खोंके शब्द करतेहुए और धनुषोंको घुमाते हुए बड़े वेगसे युधिष्ठिरके ऊपरको चढ़े चलेजारहे हैं, अरे ! इस दशामें तो मैं युधिष्ठिरको दुर्योधनके वश में हुआ या अग्निमें होमाहुआ अथवा मृत्युके मुखमें पहुँचाहुआ समझता हूँ ॥ ८-१० ॥ हे धनञ्जय ! धृतराष्ट्रकी सेना ऐसी बलवती है कि- इसके बाणोंके सपाटेमें आजाने पर इन्द्र भी नहीं छूटसकता ॥ ११ ॥ वीर दुर्योधन जब फुरतीसे बाणोंको फेंकता है उस समय कुपित हुए कालकी समान उसके वेगको रणमें कौन सहसकता है ? ॥ १२ ॥ वीर दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य

कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः । बलवांल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥ १४ ॥ राधेयः पांडवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे । सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरैर्महाबलैः ॥ १५ ॥ तस्यैभियुध्यमानस्य संग्रामे शंशितात्मनः । अन्यैरपि च पार्थस्य कृतं कर्म महारथैः ॥ १६ ॥ उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तम । ब्राह्मये बले स्थितो नृप न क्षात्रे हि बले विभुः ॥ १७ ॥ कर्णेन चाभियुक्तोऽयं भूपतिः शत्रुतापनः । संशयं समनुप्राप्तः पांडवो वै युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥ न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः । यद्भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥१९ ॥ नर्दतां धार्त्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिन्दमः । धमताञ्च महाशंखान् संग्रामे जितका-

और कर्णके बाणोंका वेग ऐसा है, कि—पर्वतोंको भी तोड़सकता है ॥ १३ ॥ शत्रुको दवानेवाले राजा युधिष्ठिर बलवान् हैं, फुरतीले हाथवाले, कार्यकुशल और युद्धमें प्रवीण हैं, तो भी कर्णने युद्धमें उनका मुख फेरदिया है ॥ १४ ॥ कर्ण जब धृतराष्ट्रके शूर और महाबली पुत्रोंकी सहायता पाजायगा तब वह तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिरको रणमें अवश्य ही दुःख देगा ॥ १५ ॥ इन सबोंने तथा दूसरे महारथियोंने भी इकट्ठे होकर संग्राममें युद्ध करनेवाले उदारचित्त राजा युधिष्ठिरका पराजय किया है ॥ १६ ॥ हे भरतसत्तम राजन् ! राजा युधिष्ठिर एक तो उपवास करनेसे बड़े ही दुर्बल होगये हैं, दूसरे ब्राह्मबलवाले (क्षमाशील) हैं, क्षात्रबलवाले (क्रूर कर्म करनेवाले) नहीं हैं ॥ १७ ॥ जबसे कर्णने शत्रुतापी राजा युधिष्ठिरके ऊपर चढायी की है तबसे ही यह सङ्कटमें पडगये हैं १८ हे अर्जुन ! मेरी समझमें तो महाराज युधिष्ठिर अब जीवित नहीं हैं, इसलिये ही तो युद्धमें विजय पानेवाले धृतराष्ट्रके पुत्र बारम्बार शंखोंके शब्द तथा सिंहोंकी समान गर्जनायें कररहे हैं और असहनशील भीमसेन उन सिंहनादोंको सह

शिनाम् ॥ २० ॥ युधिष्ठिरं पांडवेयं हतेति पुरुषर्षभ । सञ्चोदयत्यसौ कर्णो धार्त्तराष्ट्रान् महारथान् ॥ २१॥ स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च । प्रच्छादयन्ति राजानं शस्त्रजालैर्महारथाः२२ आतुरो हि कृतो राजा सन्निपेव्यश्च भारत । यथैनमनुवर्त्तन्ते पञ्चालाः सह पांडवैः ॥ २३ ॥ त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृताम्वराः । मज्जन्तमिव पाताले बलिनोप्युजिहीर्षवः ॥ २४ ॥ न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः । पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः ॥ २५ ॥ धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो । पञ्चालानाञ्च सर्वेषां चेदीनाञ्चैव भारत २६ एष कर्णो रणे पार्थ पांडवानामनीकिनीम् । शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ २७ ॥ एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पांडु-

---

रहा है ॥ १९–२०॥ यह कर्ण धृतराष्ट्रके पुत्रोंको तथा योधाओंको युधिष्ठिरका नाश करनेकी प्रेरणा करता हुआ कहता है, कि-इनको मारडालो ॥ २१ ॥ हे धनञ्जय ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंके महारथियोंने स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल तथा पाशुपत नामके बाणोंकी वर्षा करके राजा युधिष्ठिरको ढकदिया है और उनको बडी पीडा देरहे हैं, हे धनंजय ! इस समय इनकी दशा वैद्योंसे चिकित्सा कराने योग्य होगयी है, उधर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ बलवान पांचाल तथा पांडवोंके योधा, यदि राजा युधिष्ठिर पातालमें डूबगये होंगे तो वहाँसे भी हम उनको निकालकर लावेंगे, ऐसा कहतेहुए युधिष्ठिरके पीछेर बढेचलेजारहे हैं और नकुल, सहदेव, सात्यकी, शिखंडी, धृष्टद्युम्न, भीम, शतानीक, सब पंचाल और चेदिदेशके राजाओंके देखतेहुए कर्णने बाण मारकर राजा युधिष्ठिरके ध्वजदण्डको काटडाला है,इसलिये वह दीखते नहीं हैं और इसीलिये मेरी समझमें वह मरगये हैं ॥२२॥ जैसे हाथी कमलोंसे भरे सरोवरका नाश करडालता है तैसे ही यह कर्ण भी रणमें पांडवोंकी सेना

नन्दन । पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः ॥ २८ ॥
एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहता रणे । आर्त्तनादान् विकुर्वाणा
विद्रवन्ति दिशो दश ॥ २९ ॥ रथानां द्रवते वृन्दमेतच्चैव सम-
न्ततः । द्राव्यमाणं रणे पार्थ कर्णेनामित्रकर्षिणा ॥ ३० ॥ हस्ति-
कक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह । रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं
केतुमतां वर ॥ ३१ ॥ असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति ।
किरन् शरशतान्येव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम् ॥ ३२ ॥ एतांश्च पश्य
पञ्चालान् द्राव्यमाणान् महारथान् । शक्रेणेव यथा दैत्यान्
हन्यमाना महाहवे ॥ ३३ ॥ एष कर्णो रणे जित्वा पंचालान्
पांडुसृञ्जयान् । दिशो वै प्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः ॥३४॥
पश्य पार्थ धनुःश्रेष्ठं विकर्षन् साधु शोभते । शत्रुं जित्वा यथा

का बाणोंसे संहार कररहा है२७हे धनंजय ! इसप्रकार तेरी सेनाके सेनापति दौड़ते २ जारहे हैं, हे पार्थ ! देख २ वे बड़े २ योधा कैसे पीछेको हटरहे हैं ॥ २८ ॥ हे भारत ! कर्णके बाणोंसे विंधे हुए ये हाथी दुःखके कारण चिंघाड़ते हुए दशों दिशाओंमेंको भाग रहे हैं ॥२९॥ हे पार्थ ! शत्रुओंका नाश करनेवाले कर्णके भगाये हुए रथोंका यह समूह चारों ओरको भागरहा है ३० हे ध्वजाधारियोंमें श्रेष्ठ धनंजय ! देख रणमें सूतपुत्रके रथके ऊपर हाथीकी जंजीरके चिन्हवाली ध्वजा इधर उधरको फहरारही है३१वह कर्ण सैंकड़ों बाणोंकी वर्षासे तेरी सेनाका संहार करता हुआ भीमसेनके रथके ऊपरको दौड़रहा है, उसको भी देख ३२ जैसे महासंग्राममें इन्द्रके हाथसे मरतेहुए दैत्य भागने लगे थे, तैसे ही पंचाल देशके महारथी योधा भी रणभूमिमेंसे भागरहे हैं, इन को भी देख ॥ ३३ ॥ यह कर्ण रणमें पंचाल, पांडव और सृञ्जयों के सब योधाओंको जीतकर मेरी समझमें तुझे ढूँढनेके लिये सब दिशाओंको देखरहा है ॥ ३४ ॥ हे अर्जुन ! शत्रुओंको जीतनेके

शक्रो देवसंघैः समावृतः ॥ ३५ ॥ एते नर्दन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् । त्रासयन्तो रणे पांडून् सृञ्जयांश्च समन्ततः ३६ एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे । अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानद ॥३७॥ अभिद्रवत भद्रं वो द्रुतं द्रवत कौरवाः । यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्येत युधि सृञ्जयः ॥ ३८ ॥ तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः । एवमुक्त्वा गतो ह्येष पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ ३९ ॥ पश्य कर्णं रणे पार्थ श्वेतच्छत्रविराजितम् । उदयं पर्वतं यद्वत् शशाङ्केनोपशोभितम् ॥ ४० ॥ पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्नि छत्रेण भारत । ध्रियमाणेन समरे श्रीमच्छतशलाकिना ॥ ४१ ॥ एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षं विशाम्पते ।

अनन्तर जैसे देवताओंकी मण्डलीसे घिराहुआ इन्द्र शोभा पाता है,तैसेही उत्तम धनुषको खैंचता हुआ कर्ण भी रणभूमिमें शोभा पारहा है, उसको तू देख ॥ ३५ ॥ वह कौरव पक्षके योधा युद्धमें कर्णके पराक्रमको देखकर पाण्डव और सृञ्जयोंके योधाओंको डरानेके लिये चारों ओरसे गर्जना कररहे हैं ॥३६॥ हे मान देने वाले ! वह देख, कर्ण महारणमें पांडवोंको पूरा २ त्रास देताहुआ अपने सब योधाओंसे कहरहा है, कि-॥ ३७ ॥ हे कौरव पक्षके योधाओं ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम ऐसी फुरतीसे चढ़ायी करो, कि-कोई भी सृञ्जय तुम्हारे हाथमें से जीता बच कर न निकल जाय ॥ ३८ ॥ हम तयार होकर पीछे के भाग से चढ़ायी करते हैं (तुम बढो) ऐसा कह कर हे अर्जुन ! स्वेत छत्रसे शोभायमान कर्ण रणमें बाणोंकी वर्षा करताहुआ पीछेकी ओरसे चढ़ायी कर रहा है, इस पर भी तू दृष्टि दे, जैसे चन्द्रमासे उदयाचल शोभा पाता है तैसे ही शोभायमान सौ शलाका वाले और पूर्णिमा के चन्द्रमाकी समान स्वेत रङ्गके शिरपर लगे हुए छत्रसे कर्ण शोभा पारहा है, हे कुमार ! यह कर्ण कटाक्षके साथ तेरी ओरको देख

उत्तमञ्जवमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ॥ ४२ ॥ पश्य चैनम्महा-
बाहो विधुन्वानम्महद्धनुः । शरांश्चाशीविषाकारान् विसृजन्तं
महारणे ॥ ४३ ॥ असौ निवृत्तो राधेयो दृष्ट्वा ते वानरध्वजम् ।
प्रार्थयन् समरे पार्थ त्वया सह परन्तप ॥ ४४ ॥ वधाय चात्म-
नोऽभ्येति दीप्तास्यं शलभो यथा । कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन
भारत ॥ ५४ ॥ रिरक्षिषुः सुसंवृत्तो धार्त्तराष्ट्रो निवर्त्तते । सर्वैः
सहैभिर्दुष्टात्मा वध्यतास्त्व प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥ त्वया यशश्च
राज्यञ्च सुखञ्चोत्तममिच्छता । अदीनयोर्विश्रुतयोर्युवयोर्योत्स्य-
मानयोः ॥ ४७ ॥ देवासुरे पार्थ मृधे देवदानवयोरिव । पश्यन्तु
कौरवाः सर्वे तव पार्थ पराक्रमम् ॥ ४८ ॥ तत्त्वाञ्च दृष्ट्वातिसं-

रहा है, यह अवश्य ही तेरे ऊपर बड़े वेगसे चढ़ायी करेगा॥३९-४२
हे महाबाहु अर्जुन! कर्ण महारणमें अपने बड़े धनुषको घुमारहा
है और विषधर सर्पकी समान बाणोंको फेंके चलाजाता है, उसको
भी तू देख ॥ ४३ ॥ देख यह राधाका पुत्र कर्ण तेरी वानर के
चिह्नवाली ध्वजाको देखकर तेरे साथ युद्ध करनेकी प्रार्थना करने
के लिये पीछे को लौट रहा है ॥ ४४ ॥ निःसन्देह जैसे पतङ्गा
अपने नाशके लिये दीपककी लौकी ओरको जाता है तैसे ही
कर्ण अपने नाशके लिये तेरे सामनेको चढ़ा आरहा है तथा
कर्णको अकेला चढ आते हुए देखकर दुर्योधन रथसेनासे
भलेप्रकार रक्षित हो कर्णकी रक्षा करनेके लिये लौटा चला आ
रहा है, इसलिये तुझे यदि यश, राज्य और उत्तम सुखकी इच्छा
हो तो दुष्टात्मा कर्णका उसके सहायक सब योधाओं के सहित,
उद्योग करके वध करडाल, हे धनञ्जय! तुम और वह दोनों प्रचण्ड
तथा बलवान् हो, तुम दोनों प्रसिद्ध पराक्रमी हो और तुम दोनोंको
लड़ने की इच्छा भी है, इस लिये जैसे देवासुरसंग्राममें देव
दानवोंने युद्ध किया था तैसे ही तुम दोनों युद्ध करो, हे पार्थ !

रुधं कर्णञ्च भरतर्षभ। असौ दुर्योधनः क्रुद्धो नोत्तरं प्रतिपद्यते४९
आत्मानञ्च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ। कृतागसञ्च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे। प्रतिपद्यस्व कौन्तेय प्राप्तकालमनन्तरम् ५०
आर्य्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम्। पञ्च ह्येतानि मुख्यानि रथानां रथसत्तम ॥ ५१ ॥ शतान्यायान्ति समरे बलिनां तिग्मतेजसाम्। पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा ॥ ५२ ॥ अभिसंहृत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि षट्। अन्योऽन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्त्तते ॥ ५३ ॥ द्रोणपुत्रं पुरस्कृत्य तच्छीघ्रं सन्निसूदय। निकृत्यैतद्रथानीकं बलिनं लोकविश्रुतम् ॥५४ ॥ सूतपुत्रं महेष्वासं दर्शयात्मानमात्मना। उत्तमं जवमास्थाय प्रत्येहि भरत-

सब कौरव तेरे पराक्रम को देखें ॥४५-४८॥ हे भरतसत्तम ! तुझे तथा कर्णको क्रोधमें भराहुआ देखकर कुपित हुए दुर्योधनको यह नहीं सूझता, कि--अब क्या करना चाहिये ॥ ४९ ॥ इसलिये हे भरतवंशमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दन ! तुझे अपनेको शस्त्रविद्या में सफलता पानेवाला देखकर तथा कर्णको धर्मात्मा युधिष्ठिरका अपराधी मानकर अब आगेको जो कुछ करना उचित जचे वह कर ॥ ५० ॥ युद्ध करनेके लिये उदार विचार करके फिर इन दलोंके सेनापतियोंके ऊपर चढ़ायी कर, हे रथियोंमें श्रेष्ठ धनञ्जय ! देख वह प्रचण्ड तेजस्वी और महावली पाँच सौ मुख्य२ रथी युद्ध करनेके लिये हमारी ओरको बढे चले आरहे हैं, हे वीर अर्जुन ! देख पाँच हजार हाथी दश हजार घोड़े और एक अयुत पैदल सेना इकट्ठी होकर आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करतीहुई हमारे ऊपर चढ़ी चली आरही है ॥ ५१-५३ ॥ अश्वत्थामा उस सेनाके मुहाने पर चलरहा है, इसलिये अब तू इस लोकप्रसिद्ध और बलवान् सेनाका शीघ्र नाश कर ॥५४॥ हे भरतसत्तम ! तू महावेगवाले तथा महाधनुषधारी कर्णके ऊपर चढ़ायी

र्षभ ॥ ५५ ॥ असौ कर्णः सुसंरब्धः पञ्चालानभिधावति । केतु-
मस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति ॥ ५६ ॥ समुपैष्यति पञ्चा-
लानिति मे धीयते मतिः । आचक्षे प्रियं पार्थ तवेदं भरत-
र्षभ ॥ ५७ ॥ राजा जीवति कौरव्यो धर्मराजो युधिष्ठिरः । असौ
भीमो महाबाहुः सन्निवृत्तश्चमूमुखे ॥ ५८ ॥ वृतः सृञ्जयसैन्येन
सात्यकेन च भारत । वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः ५६
भीमसेनेन कौन्तेय पञ्चालैश्च महात्मभिः । सेना हि धार्त्तराष्ट्रस्य
विमुखा विद्रवद्व्रणा ॥ ६० ॥ विप्रधावति वेगेन भीमस्य निहता
शरैः । विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता ॥ ६१ ॥ भारती
भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना । निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधा-
म्पतिम् ॥ ६२ ॥ आशीविषमिव क्रुद्धं द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।

करके उसको अपना पराक्रम दिखा ॥ ५५ ॥ वह देख कर्ण अत्य-
न्त क्रोधमें भरकर पंचालोंकी ओरको चढ़ायी कररहा है, इस
समय मैं कर्णके रथकी ध्वजाको धृष्टद्युम्नके रथकी ओरको जाती
हुई देखरहा हूँ ॥ ५६ ॥ हे परन्तप ! इससे मुझे मालूम होता
है, कि-वह पंचाल योधाओंके ऊपर चढ़ाई करेगा, हे भरतवंशमें
श्रेष्ठ कुमार ! मैं तुझे एक शुभ समाचार सुनाता हूँ, कि-श्रीमान्
धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर सकुशल हैं, वह महाबाहु भीम, सृञ्जय
तथा सात्यकीको साथ लेकर सेनाके मुहाने पर पीछेको लौटकर
खड़ा है और भीम तथा महात्मा पंचाल योधा तेज बाणोंसे
कौरवोंके ऊपर मारामार कररहे हैं और उनके बाण लगनेसे दुर्यो-
धनकी सेना घायल हो रणमेंसे वेगके साथ भागरही है, देख उसके
शरीरमेंसे रुधिर वहरहा है ५७-६१ जैसे अन्नका नाश होजानेसे
पृथिवी उजड़ीहुईसी मालूम होती है, ऐसे ही लोहूलुहान हुई भरत-
वंशी राजाओंकी सेना दीनसी मालूम होरही है, वह देख योधा-
ओंका स्वामी भीमसेन फुङ्कारें भरता हुआ शत्रुकी सेनाको रणमेंसे

पीतरक्तासितसितास्तारा चन्द्रार्कमण्डिताः ॥ ६३ ॥ पताका विप्रकीर्य्यन्ते छत्राण्येतानि चार्जुन । सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः ॥ ६४ ॥ केतवोऽभिनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं च प्रकीर्यते । रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः॥६५॥ नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः। निर्मनुष्यान् गजानश्वान्रथांश्चैव धनंजय६६ समाद्रवन्ति पञ्चाला धार्त्तराष्ट्रांस्तरस्विनः। विमृद्नन्ति नरव्याघ्रा भीमसेनबलाश्रयात् ॥ ६७ ॥ बलं परेषां दुर्द्धर्षास्त्यक्त्वा प्राणानरिन्दम । एते नर्दन्ति पञ्चाला ध्मापयन्ति च वारिजान् ॥६८॥ अभिद्रवन्ति च रणे मृद्नन्तः सायकैः परान्। पश्यस्वैषां च माहात्म्यं पञ्चाला हि पराक्रमात् ॥ ६९ ॥ धार्त्तराष्ट्रान् विनिघ्नन्ति क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान्। शस्त्रमाच्छिद्य शत्रूणां सायुधानां निरा-

भगारहा है और विषधर सर्पकी समान क्रोधमें भरकर पीछेको लौट रहा है, जरा उसको भी देख, और हे अर्जुन! यह चित्रमें बनाये हुए चन्द्र, सूर्य, तारा आदिसे शोभायमान पीले, लाल, स्वेत और श्यामवर्णकी पताकायें तथा छत्र रणभूमिमें इधर उधर बिखरे पड़े हैं, इनको देख, सोने, चाँदी तथा दूसरी धातुओंके बनायेहुए ध्वजदण्ड भी रणभूमिमें पड़े हैं, हाथी और घोड़े भी मरकर युद्धभूमिमें पड़े हैं, रथी मरकर रथों परसे नीचे गिररहे हैं उनको देख ॥ ६२-६५ ॥ और रणमें पीछेको पैर न देनेवाले पंचाल राजोंने अनेकों प्रकारके बाण छोड़कर रथियोंके प्राण लेलिये हैं और हे शत्रुदमन अर्जुन! बड़े वेगवाले पंचालोंके योधा, दुर्योधनके सवारोंसे सूने घोड़े हाथी तथा रथोंके उपर दौड़रहे हैं और वे दुराधर्ष महात्मा पुरुष भीमसेनके बलका आश्रय लेकर मृत्युको स्वीकार करतेहुए शत्रुओंकी सेनाका संहार कररहे हैं, शंखोंको बजारहे हैं और बाणोंकी मारसे शत्रुओंका संहार करतेहुए रणमें दौड़भाग कररहे हैं, पंचालके योधाओंका प्रभाव देख, वे क्रोधमें

युधाः ॥ ७० ॥ तेनैवैतानमोघास्त्रा निघ्नन्ति च नदन्ति च । शिरां-
स्येतानि पात्यन्ते शत्रूणां बाहवोऽपि च ॥७१॥ रथनागहया वीरा
यशस्याः सर्व एव च । सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्त्तराष्ट्री महाचमूः ॥७२॥
पंचालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगितैः । सुभृशं च पराक्रान्ताः पंचा-
लानां निवारणे ॥७३॥ कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः ।
भीमास्त्रेण सुनिर्भग्नान् धार्त्तराष्ट्रान् महारथान् ॥७४॥ धृष्टद्युम्न-
मुखा वीरान् घ्नन्ति शत्रून् सहस्रशः । पंचालेष्वभिभूतेषु द्विपद्भिरप-
भीर्नदन् ॥७५॥ शत्रुपक्षमवस्कन्द्य शरानस्यति मारुतिः । विषण्ण-

---

भरकर जैसे सिंह हाथियोंका शिकार करते हैं तैसे ही दुर्योधनकी सेनाका संहार कर रहे हैं, स्वयं शस्त्ररहित हैं तो भी शस्त्रधारी शत्रुओंके हाथोंमेंसे शस्त्र छीनकर एक भी प्रहार खाली न जाय इस प्रकार शस्त्रोंसे शत्रुओंका संहार कररहे हैं, और गरज रहे हैं अरे! वह देख,शत्रुओंके मस्तक भुजदंड भी काटकर गिरायेजारहे हैं७१ रथी, हाथीसवार और घुड़सवार इन सब ही यश पानेवाले वीरों का रणमें संहार होरहा है, जैसे हंस वेगके साथ मानसरोवरमेंसे आकर गङ्गा को घँघोलडालते हैं तैसे ही पंचाल देशके योधाओंने दुर्योधनकी बडी भारी सेनाके ऊपर चढाथी करके उसको घँघोल कर व्याकुल करडाला है देख जैसे बैल बैलोंको हटानेके लिये पराक्रम करते हैं तैसे ही कृपाचार्य कर्ण आदि वीर पुरुष पंचाल योधाओंको पीछे हटानेके लिये बड़ा पराक्रम कररहे हैं और वह देख धृष्टद्युम्न आदि वीर पुरुष भीमके शस्त्रोंसे अत्यन्त घायल हुए दुर्योधनकी सेनाके हजारों महारथी योधाओंका संहार कर रहे हैं, और वह देख, दूसरी ओर पंचाल योधा शत्रुके योधाओंके सामने जब हारगये हैं तब वह पवनपुत्र भीम निर्भय होकर गरज रहा है और शत्रुओंके ऊपर चढाई करके उनके ऊपर बाणोंकी मारामार कररहा है, वह

भूयिष्ठतरा धार्त्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७६ ॥ रथाश्चैते सुवित्रस्ता भीमसेनभयार्दिताः । पश्य भीमेन नाराचैर्भिन्ना नागाः पतन्त्यमी ॥ ७७ ॥ वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि धराभृताम् । भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ७८ ॥ स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः । अभिजानीहि भीमस्य सिंहनादं सुदुःसहम् ॥७९॥ नदतोर्ऽजुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः । एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ॥ ८० ॥ जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः । सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्ज्जतः ॥ ८१ ॥ तीक्ष्णैरग्निरविप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः । हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान् प्रहारिणः ॥ ८२ ॥ पश्य नीलाम्बुद-

देख, इसकारण दुर्योधनकी बड़ीभारी सेना बड़े सङ्कटमें आपड़ी है, रथी, घुड़सवार तथा हाथीसवार यह सबही सेना भीमसेनके भयसे पीड़ा पाकर सहमगयी है, भीमके नाराचोंकी मारसे हाथियोंके शरीर चिरगये हैं और जैसे इन्द्रके वज्रके प्रहारसे पर्वतके शिखर पृथिवीपर गिर पड़ते हैं,तैसेही पृथिवीपर गिरपड़े हैं, वह देख बड़े२ हाथी भीमसेनके नमेहुए पर्ववाले बाणोंके लगनेसे घायल होगये हैं, इसकारण अपनी ही सेनाको कुचलतेहुए रणमें भागरहे हैं, हे अर्जुन! वीर और युद्धमें विजय पानेसे शोभा पाताहुआ भीमसेन अत्यन्त दुःसह सिंहनाद कररहा है, उसको तू सुनले, वह भिल्लराजका पुत्र बड़ेभारी हाथी पर बैठकर क्रोधमें भराहुआ भीमसेनका नाश करनेकी इच्छासे हाथमें सब प्रकारके तोमर लेकर दण्डधारी कालकी समान भीमसेनके ऊपरको चढ़ा चला आरहा है और गरज रहा है, ओः! वह देख तोमरोंवाले दोनों हाथोंको भीमसेनने बाणोंसे काटडाला और अग्निकी समान तीक्ष्ण दश बाण मारकर भिल्लराजको भी मारडाला ७२—८१ तेरा बड़ा भाई भीमसेन, जिनके ऊपर बड़े२ महावत बैठे हैं और जो काल-

निभान् महामात्रैरधिष्ठितान् । शक्तितोमरसंघातैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम् ॥ ८३ ॥ सप्त सप्त च नागांस्तान् वैजयन्तीश्च सध्वजाः । निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते ॥ ८४ ॥ दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः । न चासौ धार्त्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा ॥ ८५ ॥ पुरन्दरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभ । अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्त्तराष्ट्रस्य संहताः । क्रुद्धेन नरसिंहेन भीमसेनन वारिताः ॥८६॥ न शक्नुवन्ति वै पार्थ पार्थिवाः समुदीक्षितुम् । मध्यंदिनगतं सूर्यं यथा दुर्बलचक्षुषः ॥ ८७ ॥ एते भीमस्य सन्त्रस्ताः सिंहस्येवेतरे मृगाः । शरैः संत्रासिताः संख्ये न लभन्ते सुखं क्वचित् ॥ ८८ ॥ संजय उवाच । एतच्छ्रुत्वा महा-

---

मेघकी समान दीखते हैं ऐसे हाथियोंके सामनेको तथा योधाओंके ऊपरको चढ़ा चला जारहा है और शक्तियोंसे तथा तोमरोंसे उन का संहार कररहा है और वह देख अर्जुन ! तेरे बड़े भाई भीमने उनंचास हाथियोंको मारडाला, अरे ! तेज बाण मारकर ध्वजदण्ड सहित पताकाओंको भी काटडाला और एकर हाथीको दशर बाण मारकर मारडाला, हे भरतवंशके श्रेष्ठ कुमार अर्जुन ! अब इन्द्रके युद्धकी समान यह युद्ध शान्त होगया, क्योंकि-कौरवों की पहलेकीसी गर्जना सुनायी नहीं आती, दुर्योधनके साथमें तीन अक्षौहिणी सेना थी, परन्तु नरोंमें सिंहसमान भीमसेनने क्रोधमें भरकर अकेले ही इस सब सेनाको आगे बढनेसे रोकदिया ॥ ८२-८६ ॥ इस समय भीमसेन का रूप ऐसा भयानक होरहा है, कि-जैसे कमजोर आँखवाला मनुष्य मध्यान्हकालके सूर्यको नहीं देखसकता ऐसे ही-लड़नेवाले राजे भीमसेनकी ओरको नहीं देखसकते ॥ ८७ ॥ और जैसे सिंहसे भयभीत हुए हिरन कहीं भी सुख नहीं पासकते, ऐसे ही भीमसेनके बाणोंकी मारसे दुःखी हुए कौरवपक्षके योधा भी इस समय रणमें त्राहि२ पुकार

बाहुर्वासुदेवाद्धनञ्जयः । भीमसेनेन तत् कर्म कृतंदृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥८९॥अर्जु नो व्यधमच्छिष्टानहितान्निशितैः शरैः । ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ॥९०॥ प्रभग्नाः समरे भीता दिशो दश महाबलाः । शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा ॥ ९१ ॥ पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः सन्नतपर्वभिः । जघान धार्त्तराष्ट्रस्य चतुरंगिबलां चमूम् ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसम्वादे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे । वध्यमाने बले चापि मामके पांडुसृञ्जयैः ॥ १ ॥ द्रवमाणे बलौघे च निरानन्दे मुहुर्मुहुः । किमकुर्वन्त कुरवस्तन्ममाचक्ष्व संजय।२।

रहे हैं ८८ संजय कहतो, कि-हे राजन् ! श्रीकृष्णसे महाबाहु अर्जुनने इसप्रकार युद्धकी बात और भीमसेनके कियेहुए महाकठिन कर्मको सुनकर तेज बाणोंसे शेष बचेहुए संशप्तकोंको रणमें मारना आरम्भ करदिया, संशप्तक बड़े बलवान् थे तो भी भयके मारे अपनी सेनामें भागड़ डालकर दशों दिशाओंमें को भागगये, कितने ही तो उसही समय इन्द्रके अतिथि होकर शोकरहित होगये ८९-९१ संशप्तकोंके मारेजाने पर पुरुषोंमें व्याघ्र समान अर्जुन नमेहुए पर्ववाले बाणोंसे धृतराष्ट्रके हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से बनीहुई चतुरङ्गिनी सेनाका संहार करने लगा ॥९२॥ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय ! पांडुपुत्र युधिष्ठिर और भीमसेन युद्ध करनेके लिये पीछेको लौटे और मेरी सेना पाण्डवोंकी सेनाके हाथसे तथा सृञ्जयोंकी सेनाके हाथसे मार खानेके कारण बारम्बार उदास होकर जब रणमेंसे भागनेलगी, उस समय कौरवोंने क्या उपाय किया था, वह मुझे बता ॥ १-२ ॥ संजयने

संजय उवाच । दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रं प्रतापवान् । क्रोध
रक्तेक्षणो राजन् भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३ ॥ तावकन्तु बलं दृष्ट्वा
भीमसेनात् पराङ्मुखम् । यत्नेन महता राजन् पर्य्यवस्थापयद्बली ४
व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् । प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः
पांडवान् युद्धदुर्मदान् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पांडवानां महा-
रथाः । धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान् ॥६॥
भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः । धृष्टद्युम्नश्च बलवान्
सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥ ७ ॥ नरव्याघ्राः जिघांसन्तो समन्तात्तव
वाहिनीम् । अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः समरे जितकाशिनः ॥ ८ ॥
तथैव तावका राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् । अभ्यद्रवन्त
त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः ॥ ९ ॥ रथनागाश्वकलिलं पत्ति-
ध्वजसमाकुलम् । बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥

उत्तर दिया, कि–कर्णने महाबाहु भीमसेनको देखकर लाललाल आँखेंकर उसके ऊपर धावा करदिया ॥ ३ ॥ परन्तु तुम्हारी सेना भीमसेनके डरके मारे रणमेंसे भागरही थी उसको बलवान् कर्णने बडा उद्योग करके रणभूमिमें खडा रक्खा ॥ ४ ॥ इसप्रकार तुम्हारे पुत्रकी सेनाकों सम्हाल करके कर्णने युद्धदुर्मद पाण्डवोंके ऊपर को धावा बोलदिया ॥ ५ ॥ पांडवोंके महारथी भी तुरन्त ही धनुषोंको खेंच उनके ऊपर बाण चढ़ाकर युद्धमें शत्रुके ऊपर टूटपडे६ महाबली और विजयसे तेजस्वी दीखताहुआ भीमसेन, सात्यकी, शिखंडी, जनमेजय, धृष्टद्युम्न, तथा सब प्रभद्रक क्रोधमें भरकर तुम्हारी सेनाका नाश करनेकी इच्छासे चारों ओरको उसके ऊपर दौड पडे ॥ ७।।८ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार ही तुम्हारे महारथी भी आवेशमें आकर मारनेकी इच्छासे पांडवोंकी सेनाके ऊपर जाकूदे ॥ ९ ॥ हे पुरुषोंमें व्याघ्रसमान राजन् ! इस लड़ाईमें रथ, हाथी, घोडे, पैदल और ध्वजाओंसे भरेहुए उन दोनोंके सेना-

शिखंडी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव। दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम् ॥ ११ ॥ नकुलो वृषसेनन्तु चित्रसेनं युधिष्ठिरः। उलूकं समरे राजन् सहदेवः समभ्ययात् ॥ १२ ॥ सात्यकिः शकुनिं चापि द्रौपदेयाश्च कौरवान्। अर्जुनञ्च रणे यत्तो द्रोणपुत्रो महारथः ॥ १३ ॥ युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतद्रणे। कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥ १४ ॥ भीमसेनः कुरून् सर्वान् पुत्रांश्च तव मारिष। सहानीकान्महाबाहुरेक एव न्यवारयत् १५ शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत्। भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥ १६ ॥ प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात् प्रस्फुरिताधरः। शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत् ॥ १७॥ धारयंस्तु स तान् बाणान् शिखण्डी बहुशोभत। राजतः पर्वतो

दलोंकी रणभूमिमें अद्भुत शोभा होरही थी ॥ १० ॥ इस युद्धमें शिखंडीने कर्णके ऊपर चढ़ायी करदी, धृष्टद्युम्नने बडीभारी सेना से घिरेहुए तुम्हारे पुत्र दुःशासनके ऊपर चढ़ाई करदी ॥ ११ ॥ हे राजन्! नकुलने वृषसेनके ऊपर, युधिष्ठिरने चित्रसेनके ऊपर और उलूकने सहदेवके ऊपर चढ़ाई करदी ॥ १२ ॥ सात्यकीने शकुनिके ऊपर, द्रौपदीके पुत्रोंने कौरवोंके ऊपर, महारथी अश्वत्थामाने अर्जुनके ऊपर, कृपाचार्यने महाधनुषधारी युधामन्युके ऊपर, बलवान् कृतवर्माने उत्तमौजाके ऊपर और महाबाहु भीमसेनने अकेलेही सेनासहित कुरुवंशी तुम्हारे सब पुत्रोंके ऊपर चढ़ाई करके उनको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ १३–१५ ॥ हे महाराज! भीष्मको मारनेवाले शिखंडीने निर्भयताके साथ रणमें घूमतेहुए कर्णको बाण मारकर आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ १६ ॥ कर्णको आगे बढ़नेसे रोकनेके कारण उसको क्रोध आगया और क्रोधके मारे जिसके ओंठ फड़करहे थे ऐसे कर्णने शिखंडीकी भ्रकुटीके बीचमें तीन बाण मारे ॥ १७ ॥ भ्रकुटीके मध्यमें घुसे

यद्वत्रिभिः शृङ्गैरिवोत्थितैः ॥१८॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूत-पुत्रेण संयुगे। कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः ॥१९॥ तस्य कर्णो हयान् हत्वा सारथिञ्च त्रिभिः शरैः। उन्ममाथ ध्व-जञ्चास्य क्षुरप्रेण महारथः ॥ २० ॥ हताश्वात्तु ततो यानादव-प्लुत्य महारथः। शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः २१ तां छित्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः। शिखण्डिनमथाविध्य-न्नवभिर्न्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥ कर्णचापच्युतान् वाणान् वर्ज-यंस्तु नरोत्तमः। अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः ॥२३॥ ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यपातत्। तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः ॥ २४ ॥ धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण

हुए उन तीनों बाणोंके कारण ऊपरको उठेहुए तीन शिखरोंसे जैसे चाँदीका पर्वत शोभा पाता हो तैसेही वह भी उस समय बड़ी शोभा पानेलगा, महाधनुषधारी शिखंडीने रणमें कर्णके तेज कियेहुए नब्बे बाण मारे ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब महारथी कर्ण ने तीन बाण मारकर शिखंडीके घोड़ोंको और सारथीको मार डाला तथा क्षुरप्रनामके बाणसे उसकी ध्वजाके दंडको काट डाला ॥ २० ॥ महारथी शिखंडीको बड़ा क्रोध चढ़ आया, शत्रु-तापी शिखण्डी, जिसके घोड़े मरगये थे, ऐसे अपने रथ परसे नीचे उतर पड़ा तथा उसने कर्णके शक्ति मारी ॥ २१ ॥ कर्णने तीन बाण मारकर उसकी शक्तिके टुकड़े करडाले और फिर उसके तेज कियेहुए नौ बाण मारे ॥२२॥ महात्मा शिखण्डी इससमय बड़ा ही घायल होगया, इसलिये कर्णके इन बाणोंको चुकाकर वह तुरन्त रणमेंसे निकल गया ॥ २३ ॥ फिर जैसे महाबली वायु बड़े भारी रुईके ढेरके ऊपर धावा करके उस को उड़ादेता है तैसे ही हे महाराज! कर्ण भी पांडवोंकी सेनाको भगानेलगा २४ दूसरी ओर तुम्हारा पुत्र दुःशासन धृष्टद्युम्नके ऊपर धावाकरके

पीडितः । दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः मत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ २५ ॥ तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष । शितेन रुक्मपुंखेन भल्लेनानतपर्वणा ॥२६॥ धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः । दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ २७ ॥ आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् । शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशाम्पते ॥ २८ ॥ अथापरैः सप्तदशभिर्भल्लैः कनकभूषणैः । धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २९ ॥ ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष । क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३० ॥ अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव । धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात् पर्य्यवारयत् ॥ ३१ ॥ तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा विक्रमं सुमहात्मनः । व्यस्मयन्त रणे योधाः सिद्धाश्चा-

उसको रगड़नेलगा, धृष्टद्युम्नने दुःशासनकी छातीमें तीन वाण मारे ॥ २५ ॥ दुःशासनने सोनेकी पूँछ और नमेहुए पर्ववाला भल्ल मारकर धृष्टद्युम्नके वायें हाथको चीरडाला ॥ २६ ॥ असहनशील धृष्टद्युम्नने भी घायल होजाने पर क्रोधमें भरकर दुःशासनके ऊपर भयानक वाण छोड़ा ॥ २७ ॥ धृष्टद्युम्नका छोडाहुआ वह वाण वड़े वेगसे दुःशासनकी ओरको जानेलगा, परन्तु उसको तुम्हारे पुत्र दुःशासनने तीन वाण मारकर काट डाला ॥ २८ ॥ तथा सोनेसे मढेहुए भल्ल जातिके और सत्रह वाण धृष्टद्युम्नके ऊपर चढाई करके उसकी भुजा और छातीमें मारे ॥ २९ ॥ तव तो धृष्टद्युम्नको क्रोध चढ़ आया और उसने अत्यन्त तीक्ष्ण क्षुरप्र मारकर दुःशासन के धनुषको काटडाला, उस समय उसके पक्षके योधा गर्जना करने लगे ॥३० ॥ तुरन्त ही तुम्हारे पुत्रने दूसरा धनुष लेकर हँसते २ धृष्टद्युम्नके ऊपर वाणोंकी मारामार करना आरम्भ करदिया और उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३१ ॥ तुम्हारे महात्मा पुत्रके

प्सरस्तथा ॥ ३२ ॥ धृष्टद्युम्नमपश्याम घटमानं महाबलम् । दुःशासनेन संरुद्धं सिंहेनेव महाद्विपम् ॥ ३३ ॥ ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज । सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव ३४ ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह । घोरं प्राणभृतां काले भीमरूपं परन्तप ॥ ३५ ॥ नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः । पितुः समीपे तिष्ठन् वै त्रिभिरन्यैरविध्यत ॥ ३६ ॥ नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव । नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम् ॥ ३७ ॥ सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण । शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः ॥ ३८ ॥ ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ । आच्छादयेतामन्योन्यमथाभ-

---

इस पराक्रमको देखकर रणमें खड़े हुए योधाओंके और अप्सराओंके दल आश्चर्य में होगये ॥ ३२ ॥ जैसे सिंह बड़े हाथीको घेर लेय तैसे ही दुःशासनने धृष्टद्युम्नको घेरलिया, इससे महाबली धृष्टद्युम्न पराक्रम करते २ रुकगया, यह हमने देखा था ॥ ३३ ॥ हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर पंचाल देशके योधाओंने रथी, हाथीसवार तथा घुड़सवारोंके साथ चढ़ाई करके सेनापति धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेके लिये तुम्हारे पुत्रको घेरलिया ॥ ३४ ॥ तब तुम्हारे तथा शत्रुपक्षके योधाओंमें प्रलयकालमें प्राणियोंके नाशसा घोर भय उत्पन्न करने वाला युद्ध होने लगा ॥ ३५ ॥ इस समय वृषसेन अपने पिताके पास खड़ा था, उसने नकुलको पाँच तथा तीन बाण मारकर बींध दिया ॥ ३६ ॥ वीर नकुलने हँसते हँसते अतितेज नाराच बाणसे वृषसेनकी छातीको चीरडाला ॥ ३७ ॥ हे शत्रुकर्षण ! नकुलने बलवान् शत्रुके पुत्र वृषसेनको बड़ा ही घायल कर दिया, तब तो वृषसेनने शत्रुके बीस बाण मारे और नकुलने वृषसेनके पाँच बाण मारे ॥ ३८ ॥ इसप्रकार परस्पर युद्ध होनेके अनन्तर दोनों महायोधा एक दूसरेके ऊपर हजारों बाणों

ज्यत वाहिनी ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वा तु प्रद्रुतां सेनां धार्त्तराष्ट्रस्य सूतजः । निवारयामास बलादनुद्रुत्य विशाम्पते ॥ ४० ॥ निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान् ययौ । कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु ॥ ४१ ॥ जुगोप चक्रं त्वरितो राधेयस्यैव मारिष । उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः ॥ ४२ ॥ तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान् । सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ।४३। उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशाम्पते । त्रिगर्त्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः ॥ ४४ ॥ सात्यकिः शकुनिं विध्वा विंशत्या निशितैः शरैः । ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ४५ सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन् प्रतापवान् । विदार्य्य कवचम्भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ४६ ॥ तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः

की वर्षा करके एक दूसरेको ढकनेलगे, परन्तु इतने में ही कौरवोंकी सेनामें भागड़ पड़ गयी ॥ ३६ ॥ दुर्योधन की सेनामें भागड़ पड़ी देखकर कर्ण उसके पीछे गया और उसकी सेनाको बड़े परिश्रम से पीछेको लौटा कर लाया ॥ ४० ॥ कर्ण कौरवोंकी सेनाको लौटानेके लिये लौटा, कि—नकुल कौरवोंके योधाओंके ऊपर टूटपड़ा और कर्णका पुत्र वृषसेन नकुलको छोड़कर एकसाथ कर्णके रथके पहियेकी रक्षा करनेमें लग गया, इतनेमें ही उलूक क्रोधमें भराहुआ रणमें चढ़ आया, उसको प्रतापी सहदेवने आगे बढ़ने से रोकदिया और उसके चारों घोड़ोंको तथा सारथीको यमलोक में पहुँचा दिया ॥ ४१–४३ ॥ उलूक तुरन्तही रथपरसे नीचेउतर पड़ा और पिताको प्रसन्न करता हुआ त्रिगर्त्तोंकी सेनामें घुसपड़ा ॥ ४४ ॥सात्यकीने तेज कियेहुए वीस वाण मारकर शकुनिको वींध दिया और हँसते २ भल्ल जातिके वाण मार कर उसकी ध्वजाको काटडाला ॥ ४५ ॥ प्रतापी शकुनिको इससे वड़ा क्रोध चढ़ा, उसने भी वाणसे सात्यकीके कवचको फाड़डाला और उस

प्रत्यविध्यत । सारथिञ्च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत् ॥ ४७ ॥ अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम् । ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥ आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महारथः । अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद्युद्धशालिनः ॥ ४६ ॥ सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम् । अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत ५० शैनेयशरसंच्छिन्नं तव सैन्यं विशाम्पते । भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ॥ ५१ ॥ भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे। तन्तु भीमो मुहूर्त्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम् ॥ ५२ ॥ चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः । ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात् ५३ कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् । तत्र नादो महानासीद्भीम-

के सोनेके ध्वजदण्डके टुकड़े२ करडाले ॥ ४६ ॥ फिर तेज किये हुए वाण मारकर सात्यकीने शकुनिको घायल कर डाला और तीनवाण मारकर उसके सारथीको मार डाला और तुरन्त दूसरे वाणछोड़कर उसके घोड़ोंको भी मारडाला, हे भरतवंशके श्रेष्ठराजन्! शकुनि एकदम रथमेंसे नीचे कूदपड़ा और महात्मा उलूकके रथ के ऊपरको जावैठा तथा युद्ध करनेमें चतुर सात्यकीके पाससे तुरन्त दूर भागगया ॥ ४७–४६ ॥ हे राजन् ! फिर सात्यकीने तुम्हारी सेनाके ऊपर वड़े ही वेगसे धावा किया और तुम्हारी सेनामें फिर भागड पड़गयी ॥ ५० ॥ सात्यकीके वाणोंसे घायल हुई तुम्हारी सेना एकसाथ दशों दिशाओंमेंको भागनेलगी और प्राणहीन मुरदेकी समान रणभूमिमें घायल हो २ कर टपाटप गिरनेलगी ॥ ५१ ॥ परन्तु तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने भीमको आगे वढनेसे रोकदिया, तव उसने एक मुहूर्त्तमें तुम्हारे पुत्रके घोड़े और सारथीको मारडाला तथा रथ और ध्वजदण्डको तोड़फोड़ कर उडादिया, यह देखकर पांडवपक्षके दर्शक प्रसन्न हुए और दुर्योधन भीमसेनसे छिपकर रणभूमिसे भागगया ॥ ५२ ॥ ५३॥

सेनं जिघांसताम् ॥ ५४ ॥ युधामन्युः कृपं विध्वा धनुरस्याशु चिच्छेदे । अथान्यद्धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५५ ॥ युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रञ्चापातयत् क्षितौ । ततोऽपायाद्रथेनैव युधामन्युर्महारथः ॥ ५६ ॥ उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम् । छादयामास सहसा वृष्ट्या मेघ इवाचलम् ॥ ५७ ॥ तद्युद्धं सुमहच्चासीद् घोररूपं परन्तप । यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशांपते ५८ कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे। हृदि विव्याध सहसा स रथोपस्थ आविशत् ॥ ५९ ॥ सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम् । कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ६० ॥ दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम्। महता पारवार्यैव क्षुद्रकै-

परन्तु कौरवोंका सब सेनादल भीमसेनके ऊपर जाचढा और उसको मारनेकी इच्छासे बड़ी गर्जना करनेलगा ॥ ५४ ॥ युधामन्युने कृपाचार्यके धनुषको काटकर उनको घायल करदिया तब महाशस्त्रधारी कृपाचार्यने दूसरा धनुष ले ॥ ५५ ॥ बाणोंकी मारसे युधामन्युके रथकी ध्वजाको,सारथीको और छत्रको काटकर भूमिमें गिरादिया,तुरन्त ही महारथी युधामन्यु रथको दौडाता २ युद्धमेंसे भागगया ॥ ५६ ॥ जैसे मेघ जलकी वर्षा करके पर्वतको एक साथ ढकदेता है तैसेही उत्तमौजाने भयानक पराक्रमी कृतवर्माको बाणोंसे एकसाथ ढकदिया ॥५७॥ हे शत्रुतापन राजन् ! उन दोनोंमें ऐसा भयानक युद्ध हुआ था, कि-मैंने पहले कभी ऐसा युद्ध देखा ही नहीं था ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! कृतवर्माने रणमें बाण मारकर उत्तमौजाके हृदयको वींधदिया और उत्तमौजा उस रथके भीतरके भागमें बैठगया ॥ ५९ ॥ इस समय उस महारथीको उसका सारथी संग्राममेंसे दूर लेगया और फिर कौरवों की सब सेनाने मिलकर भीमसेनके ऊपर धावा किया था, दुःशासन और शकुनिने बड़े२ हाथियोंकी सेनासे भीमसेनको चारों ओरसे

रभ्यताडयत् ।६१। ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम् । विमुखी-
कृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत्६२ तमापतन्तं सहसा गजानीकं वृकोः-
दरः। दृष्ट्वैव सुभृशं क्रुद्धो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ६३ गजैर्गजानभ्य-
हनद्वज्रेणेन्द्र इवासुरान् । ततोन्तरीक्षं बाणौघैः शलभैरिव पादपम्
॥६४ ॥ छादयामास समरे गजान्निघ्नन् वृकोदरः । ततः कुञ्जर-
यूथानि समेतानि सहस्रशः ॥ ६५ ॥ व्यधमत्तरसा भीमो मेघसङ्घा
निवानलः । सुवर्णजालपिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः ॥ ६६ ॥
रेजुरभ्यधिकं सङ्ख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः । ते वध्यमानाः भीमेन
गजा राजन् विदुद्रुवुः।६७।केचिद्विभिन्नहृदयाः कुञ्जराः न्यपतन्भुवि।

घेरलिया था और उसके चुद्रक नामके बाण मारनेलगे ६०-६१
परन्तु दूसरी ओर भीमसेन सैंकड़ों बाण मारकर क्रोधी दुर्योधन
को विमुख करके एकसाथ हाथियोंकी सेनाके सामने जापहुँचा ६२
और हाथियोंकी सेनाको एकायकी अपने ऊपर चढकर आती
हुई देखकर बड़े क्रोधमें भरकर उसके ऊपर दिव्य अस्त्र फेंकने
लगा॥ ६३ ॥ जैसे इन्द्र वज्रसे असुरोंको मारता है तैसे ही
हाथियोंसे हाथियोंका संहार करनेलगा तथा बाणोंकी मार
चलानेलगा तब तो जैसे टीडियोंसे वृक्ष ढकजाते हैं तैसेही बाणों
के समूहसे आकाश ढकगया और जैसे पवन मेघमण्डलोंको एक
साथ नष्ट करदेता है तैसे ही भीमसेनने भी हाथियोंकी हजारों
टोलियोंका नाश करडाला, मणियोंसे जड़ीं हुईं और सुनहरी कार-
चोबीकी झूलोंसे शोभायमान हाथी रणभूमिमें बिजलियोंवाले
मेघोंकी समान शोभापारहे थे, उनको जब भीमसेन मारनेलगा
तब वे रणमेंसे भागनेलगे॥६४—६७॥ इस दशामें कितने ही हाथियों
के हृदय फटगये वे पृथिवी पर ढहगये, उस समय पहाड़ोंके टूट
पड़नेसे पृथिवी जैसे शोभा पाती है तैसे ही गिरते हुए,सोनेके गहनों
से सजे हाथियोंसे रणभूमि बहुत ही दिपरही थी और रत्न जड़े

पातितैर्निपतद्भिश्च गजैर्हेमविभूषितैः ॥ ६८ ॥ अशोभत मही तत्र विशीर्णैरिव पर्वतैः । दीप्ताभै रत्नवद्भिश्च पतितैर्गजयोधिभिः ।६९। रराज भूमिः पतितैः क्षीणपुण्यैरिव ग्रहैः । ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा ॥७०॥ दुद्रुवुः शतशः सङ्ख्ये भीमसेनशराहताः । केचिद्वमन्तो रुधिरं भयार्त्ताः पर्वतोपमाः ॥७१॥ व्यद्रवन् शरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः । महाभुजगसङ्काशौ चन्दनागुरुरूषितौ ॥ ७२॥ अपश्यन् भीमसेनस्य धनुर्विक्षिपतो भुजौ । तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाऽशनिसमस्वनम् ॥ ७३ ॥ विमुच्यन्त शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम् । भीमसेनस्य तत् कर्म राजन्नेकस्य

गहने पहननेवाले हाथियोंपर चढकर युद्ध करनेवाले योधा भी रणभूमिमें पड़े थे, उनसे रणभूमि ऐसे शोभा पारही थी जैसे पुण्य क्षीण होजानेके कारण नीचे गिरेहुए ग्रहोंसे भूमि शोभा पाती है ॥ ६८॥६९ ॥ इस युद्धमें बाण मारकर भीमने सैंकडों हाथियोंके गण्डस्थल फोड़डाले और कुम्भस्थल तथा शुण्डें काटडालीं, इस लिये वे रणभूमिमें इधर उधरको भागरहे थे, कितने ही पहाड़ोंकी समान ऊँचे हाथी भयभीत होकर मुखमेंसे रुधिर ओक रहे थे, कितने ही हाथी, कि—जिनके शरीर बाणोंकी मारसे चिरगये थे और जो गेरू आदि धातुओंसे विचित्र दीखनेवाले पहाड़ोंकी समान मालूम होते थे वे रणभूमिमें भागरहे थे,उससमय भीम चंदन और अगरसे चर्चित बड़े २ सर्पोंकी समान अपनी दोनों भुजाओं से धनुषको खेंचताहुआ रणमें खड़ा था, यह मैं देखरहा था वज्रपातके कड़ाकेकी समान भीमके धनुषकी डोरीके शब्दको सुन कर हाथियोंके मलमूत्र निकल पड़े थे और वे बड़े वेगसे इधर उधरको भागरहे थे, हे राजन् ! बुद्धिमान् भीमसेन अकेला ही यह काम कररहा था, इससे उस समय वह सब प्राणि-

धीमतः । निघ्नतः सर्वभूतानि रुद्रस्येव च निर्बभौ ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥

सञ्जय उवाच । ततः श्वेताश्वसंयुक्ते नारायणसमाहिते । तिष्ठन्नथवरे श्रीमानर्जुनः समपद्यत ।१। तद्बलं नृपतिश्रेष्ठ तावकं विजयो रणे ।व्यक्षोभयदुदीर्णाश्वं महोदधिमिवानिलः२ दुर्य्योधनस्तव सुतः प्रमत्ते श्वेतवाहने । अभ्येत्य सहसा क्रुद्धः सैन्यार्द्धेनाभिसंवृतः ३ पर्य्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम् । क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोविध्यत पांडवम् ४ अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । स भल्लांस्त्रिंशतस्तूर्णं नव पुत्रे न्यवेशयत् ।।५।।ततोऽधावन्त कौरव्या

योंका संहार करनेवाले रुद्रकी समान दीखता था ॥७०-७४॥
इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! श्रीमान् अर्जुन, सफेद घोड़ोंसे जुते हुए और जिसको नारायण हाँक रहे थे ऐसे रथमें बैठकर रणभूमिमें आपहुँचा ॥ १ ॥ और हे राजसत्तम ! जैसे प्रबल पवन महासागरको हिलोड डालता है, तैसे ही अर्जुन ने भी बड़े घोड़ोंसे भरीहुई तुम्हारी महासेनाको हिलोड़डाला २ जब सफेद घोड़ोंवाले रथमें बैठाहुआ अर्जुन इस प्रकार युद्धमें तत्पर होकर मतवाला होरहा था उस समय असहनशील युधिष्ठिरको चढकर आते हुए देखकर आपका पुत्र दुर्योधन क्रोध में भरगया और आधी सेनाको साथमें ले वैरका बदला चुकानेके लिये एकसाथ युधिष्ठिरके सामने पहुँचगया और उनको घेर लिया, फिर क्षुरप्र नामके बहुतसे अस्त्र मारकर उनको बींधडाला ॥ ३-४ ॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर इससे बड़े ही क्रोधमें भरगये उन्होंने तुरन्त ही आपके पुत्रके भल्ल जातिके तीस बाण मारे॥५ ॥और कौरवपक्षके योधा एक साथ युधिष्ठिरको पकडनेकी इच्छासे तहाँ

जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम् ।दुष्टभावान् परान् ज्ञात्वा समवेता महारथाः६
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । नकुलः सहदेवश्च
धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ७अक्षौहिण्या परिवृतास्तेऽभ्यधावन् युधिष्ठिरम्
भीमसेनश्च समरे मृद्नंस्तव महारथान्।अभ्यधावदभिप्रेप्सू राजानं
शत्रुभिर्वृतं ॥८॥ तांस्तु सर्वान्महेष्वासान् कर्णो वैकर्त्तनो नृपः।
शरवर्षेण महता प्रत्यवारयदागतान्९शरौघान् विसृजन्तस्ते प्रेरय-
न्तश्च तोमरान् । न शेकुर्यतन्तोऽपि राधेयं प्रतिवीक्षितुम् १०
तांश्च सर्वान्महेष्वासान् सर्वशस्त्रास्त्रपारगः । महता शरवर्षेण
राधेयः प्रत्यवारयत् ॥११॥ दुर्योधनञ्च विंशत्या शीघ्रमस्त्रमुदी-
रयन् । अविध्यत्तूर्णमभ्येत्य सहदेवो महामनाः ॥१२॥ स

दौडते२ आये और शत्रुओंके खोटे विचारको जानकर पांडवपक्षके महारथी भी महारथी युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये इकट्ठे होकर वहाँ आपहुँचे, नकुल, सहदेव और पृषतपुत्र धृष्टद्युम्न अक्षौहिणी सेनाको साथले युधिष्ठिरके पास दौड आये और भीमसेन आपके महारथियोंका संहार करनेलगा, पांडवपक्षके दो महारथी, शत्रुओंके घेरेमें घिरेहुए राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये उनकी ओरको दौडनेलगे॥ ६-८॥ हे राजन् ! कर्णने उन चढ कर आयेहुए बड़े २ धनुषधारियोंको बाणोंकी बडीभारी वर्षा करके आगे बढ़नेसे रोकदिया॥ ९ ॥ तब पांडवोंके योधा कर्णके ऊपर बाण तथा तोमर छोड़नेलगे और आगे बढनेके लिये बड़े २ उद्योग किये, परन्तु वे कर्णके सामनेको देख भी न सके ॥ १० ॥ सबप्रकारके अस्त्रशस्त्रोंके पारगामी कर्णने बाणोंकी बडीभारी वर्षा करके सब बड़े २ धनुषधारियोंको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ११ ॥ प्रतापी सहदेव, जहाँ दुर्योधन खड़ा था तहाँ शीघ्रताके साथ गया और फुरतीके साथ अस्त्र छोडकर उसके बीस बाण मारे ॥ १२ ॥ सहदेवने दुर्योधनको बींधडाला तब वह

विद्धः सहदेवेन रराजाचलसन्निभः । प्रभिन्न इव मातङ्गो रुधिरेण परिप्लुतः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा तव सुतं तत्र गाढविद्धं सुतेजनैः । अभ्यधावत संक्रुद्धो राधेयो रथिनां वरः १४ दुर्योधनं तथा दृष्ट्वा शीघ्रमस्त्रमुदैरयत् । तेन यौधिष्ठिरं सैन्यमवधीत् पार्षतं तथा ॥ १५ ॥ ततो यौधिष्ठिरं सैन्यं वध्यमानं महात्मना । सहसा प्राद्रवद्राजन् सूतपुत्रशरार्दितम् ॥ १६ ॥ विविधा विशिखास्तत्र संपतन्तः परस्परम् । फलैः पुंखान् समाजग्मुः सूतपुत्रधनुश्च्युताः ॥ १७ ॥ अन्तरीक्षे शरौघाणां पततांञ्च परस्परम् । संघर्षणान्महाराज पावकः समजायत । १८ । ततो दश दिशः कर्णः शलभैरिव यायिभिः । अभ्यघ्नंस्तरसा राजन् शरैः परशरीरगैः १९ रक्तचन्दनसन्दिग्धौ मणिहेमविभूषितौ । बाहू व्यत्यक्षिपत् कर्णः परमास्त्रं विदर्श-

पर्वतकी समान तथा लोहूलुहान होनेसे मद टपकानेवाले हाथीकी समान शोभा पानेलगा ॥ १३ ॥ अतितीव्र बाणोंसे तुम्हारे पुत्रको बड़ा ही गहरा घायल हुआ देखकर महारथी कर्ण बड़ेही क्रोधमें भरगया और दौड़पड़ा तथा फुरतीसे अस्त्रोंको छोड़कर युधिष्ठिरकी तथा धृष्टद्युम्नकी सेनाको मारनेलगा ॥ १४-१५ ॥ हे राजन् ! महात्मा कर्ण युधिष्ठिरकी सेना को मारने लगा, कि-उसी समय वह सेना कर्णके बाणोंसे पीड़ित हो एक साथ रणमेंसे भागगयी॥ १६ ॥ इस समय संग्राममें कर्णके धनुष मेंसे छूटतेहुए भाँति २ के बाण आपसमें टकरारहे थे और फल धनुषोंके पंखोंके साथ युद्ध कररहे थे तथा अन्तरिक्षमें आपसमें टकरानेवाले बाणोंके संघर्षणसे अग्नि उत्पन्न होरहा था १७-१८ फिर कर्ण, टीडीदलकी समान जानेवाले और शत्रुओंके शरीरोंमें प्रवेश करनेवाले बाणोंको दशोंदिशाओंमें फैलेहुए शत्रुओंके ऊपर फुरतीसे छोड़नेलगा तथा अपनी अस्त्रोंकी उत्तम जानकारी दिखानेके लिये लाल चन्दनसे चर्चित, मणियोंसे तथा सुवर्णसे

यन् ॥ २० ॥ ततः सर्वा दिशो राजन् सायकैर्विप्रमोहयन् ।
अपीडयद्भृशं कर्णो धर्मराजं युधिष्ठिरम् २१ ततः क्रुद्धो महाराज
धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥ निशितैरिषुभिः कर्णं पञ्चाशद्भिः
समार्पयत् । बाणान्धकारमभवत्तद्युद्धं घोरदर्शनम् ॥ २३ ॥ हाहा-
कारो महानासीत्तावकानां विशाम्पते । वध्यमाने यथा सैन्ये धर्म-
पुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥ सायकैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिला-
शितैः । भल्लैरनेकैर्विविधैः शक्त्यृष्टिमुसलैरपि ॥ २५ ॥ यत्र यत्र
स धर्मात्मा दुष्टां दृष्टिं व्यसर्जयत् । तत्र तत्र व्यशीर्यन्त तावका
भरतर्षभ २६ कर्णोऽपि भृशसंक्रुद्धो धर्मराजं युधिष्ठिरम् । नारा-
चैरर्द्धचन्द्रैश्च वत्सदन्तैश्च संयुगे २७ अमर्षी क्रोधनश्चैव रोष-
प्रस्फुरिताननः । सायकैरप्रमेयात्मा युधिष्ठिरमुपाद्रवत् २८ युधि-
ष्ठिरश्चापि शतं स्वर्णपुङ्खैः शितैः शरैः । प्रहसन्निव तं कर्णः कङ्क-

---

शोभायमान दोनों भुजाओंको घुमानेलगा और सब दिशाओंको वाणोंकी मारसे ढकदिया, फिर राजा युधिष्ठिरको बडी पीडा देने लगा, हे महाराज! तब तो युधिष्ठिरको भी क्रोध चढ़आया १६–२२ उन्होंने कर्णके पचास वाण मारे, तदनन्तर दोनोंमें महाभयानक युद्ध होनेलगा, वाणोंके छाजानेसे अन्धकार होगया, हे राजन् युधिष्ठिर, सानसे तेज कियेहुए कङ्कपक्षीके पंखोंवाले भाँति २ के वाण, भल्ल, शक्ति, ऋष्टि, मूसल आदिसे आपकी सेनाका नाश करनेलगे ॥ २३–२५ ॥ हे भरतसत्तम ! युधिष्ठिर जिस २ दिशामेंको दृष्टि डालते थे तथा वाण छोडते थे उस दिशामें आपके योधा भागते ही दीखते थे ॥ २६ ॥ इधर कर्णको भी वडा क्रोध चढ आया था, वह नाराच, अर्धचन्द्र और वत्सदन्तोंसे संग्राममें धर्मराज युधिष्ठिरको पीडा देनेलगा॥२७॥कर्ण असहनशील तथा क्रोधी था, क्रोधसे उसके होठ फडक रहे थे, वह युधिष्ठिरके ऊपर वाण चलानेलगा ॥२८॥ युधिष्ठिरने भी सुनहरी पंखों वाले, तेज

पत्रैः शिलाशितैः २६ उरस्यविध्यद्राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पांडवम्। स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ३० उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत्। प्राक्रोशन्त ततः सर्वे धार्त्तराष्ट्राः सराजकाः ३१ गृह्णीध्वमिति राजानमभ्यधावन्त सर्वशः। ततः शता सप्तदश कैकेयानां महारिणाम् ३२ पञ्चालैः सहिता राजन् धार्त्तराष्ट्रान्न्यवारथन्। तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्त्तमाने महाभये। दुर्योधनश्च भीमश्च समेयातां महाबलौ॥ ३३॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरापयाने द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

सञ्जय उवाच। कर्णोऽपि शरजालेन कैकेयानां महारथान्। व्यधमत् परमेष्वासानग्रतः पर्य्यवस्थितान्॥ १॥ स तेषां यतमा-

किये हुए बाणोंसे कर्णको घायल किया, कर्ण भी हँसते २ सानसे तेज कियेहुए कङ्कपक्षीके परोंवाले बाण युधिष्ठिरके मारनेलगा।२६। उसने तीन भल्ल मारकर राजा युधिष्ठिरकी छाती बींधदी, उससे धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ी पीड़ा हुई॥ ३०॥ उन्होंने रथके भीतर बैठकर सारथीसे कहा, कि–घोड़ोंको भगा, तब तो दुर्योधन सहित कौरवोंके सब योधा दुन्द मचानेलगे, कि–॥ ३१॥ इसको पकड़ो पकड़ो तथा सब उनके पीछे दौड़पड़े, तब हे राजन्! कुशल केकयोंके सत्रह सौ योधाओंने पंचाल योधाओंके साथ मिल कर दुर्योधनकी सब सेनाको संग्राममेंसे पीछेको हटादिया, ऐसा मनुष्योंका संहार करनेवाला महातुमुल युद्ध जिस समय होरहा था, उस समय महाबली भीम और दुर्योधन आपसमें जूझरहे थे॥ ३१–३५॥ बासठवाँ अध्याय समाप्त॥ ६२॥ ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र! बड़े धनुषधारी केकयोंके महारथी आगे आकर खड़ेहुए, कि–कर्णने बाणोंकी वर्षासे उनका नाश करना आरम्भ करदिया॥ १॥ उन्होंने कर्ण

नानां राधेयस्य निवारणे। रथान् पञ्चशतान् कर्णः प्राहि-
णोद्यमसादनम् ॥२॥ अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः।
भीमसेनमुपागच्छन् कर्णबाणप्रपीडिताः ॥ ३ ॥ रथानीकं विदा-
र्येव शरजालैरनेकधा। कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥४॥
सेनानिवेशमार्च्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम्। यमयोर्मध्यगं वीरं
शनैर्यान्तं विचेतसम् ॥ ५ ॥ समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहिते-
प्सया। सूतपुत्रस्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥ तथैव
राजा राधेयं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे। शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतु-
र्भिश्चतुरो हयान् ॥७॥ चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परन्तपौ।
तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति ॥ ८ ॥ तौ पृथक् शर-
वर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम्। नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमा-

को पीछेको हटानेके लिये बड़ा उद्योग किया, किन्तु उससे कुछ फल न निकला तथा उनके पाँचसौ रथियोंको कर्णने यमलोकमें भेजदिया ॥ २ ॥ संग्रामभूमिमें जूझनेवाले योधा कर्णको असह्य जानकर तथा उसके बाणोंसे पीड़ा पाकर भीमसेनके पासको दौड़गये ॥ ३ ॥ इसप्रकार कर्ण अनेकों बाणोंसे रथसेनाका नाश करके अकेला ही युधिष्ठिरके पासको दौड़गया ॥ ४ ॥ उस समय पराक्रमी राजा युधिष्ठिर बाणोंके लगनेसे घायल होगये थे तथा नकुल सहदेवके बीचमें होकर अचेत दशामें धीरे२ छावनीकी ओरको जारहे थे ॥ ५ ॥ कर्ण युधिष्ठिरके पासमें पहुंचगया तथा दुर्योधनका हित करनेकी इच्छासे बहुत बड़े और तेज तीन बाण मारकर राजा युधिष्ठिरको बींधडाला ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरने भी बाण मारकर कर्णकी छातीको बींधदिया तथा उसके सारथीके तीन तथा घोड़ोंके चार बाण मारे ॥ ७ ॥ यह देख युधिष्ठिरके चक्ररक्षक माद्रीके दोनों पुत्र भी युधिष्ठिरको कर्ण मारे नहीं, इसलिये कर्णके सामनेको दौड़गये ॥ ८ ॥ वे नकुल और सहदेव दोनों भाई बड़े

स्थितौ ॥९॥ तथैव तौ प्रत्यविध्यत् सूतपुत्रः प्रतापवान् । भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिन्दमौ ॥१०॥ दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान् । युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान् हयोत्तमान् ॥१०॥ ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत् । कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः ॥ १२ ॥ तथैव नकुलस्यापि हयान् हत्वा प्रतापवान् । ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥ १३ ॥ तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ । भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा ॥ १४ ॥ तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा । अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकम्पया १५ योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह । किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः॥१६॥क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबा-

---

उद्योगके साथ अलग२ कर्णके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ।९। प्रतापी कर्णने भी शत्रुओंको दबानेवाले उन दोनों भाइयोंको तीखी धारवाला एक२ भल्ल मारकर वींधदिया ॥ १० ॥ कर्णने युधिष्ठिरके श्याम रङ्गकी पूँछ, मनकी समान वेग तथा श्वेत रङ्गके घोडोंको मारडाला ॥ ११ ॥ तथा फिर बड़े धनुषधारी कर्णने हँसते२ दूसरा भल्ल मारकर राजा युधिष्ठिरके टोपको नीचे गिरा दिया ॥ १२ ॥ तथा ऐसेही माद्रीके बुद्धिमान् पुत्र नकुलके घोडों को मारडाला तथा उसके रथकी ईषा और धनुषके टुकड़े२ कर डाले ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर और नकुल बड़े ही घायल होगये,उनका रथ टूटगया, घोडे मरगये तब वे दोनों सहदेवके रथमें जाबैठे१४ शत्रुहन्ता मद्रराज अपने दोनों भानजोंको रथहीन देख दया आजानेके कारण कर्णसे कहनेलगा, कि-॥ १५ ॥ तुझे तो इस समय अर्जुनके साथ युद्ध करना है, फिर भी उसको छोड बड़े ही क्रोधमें होकर युधिष्ठिरके साथ क्यों लडरहा है ? ॥ १६ ॥ तेरे अस्त्र, शस्त्र तथा कवच टूट जायँगे, बाण निबड़ जायँगे, भाथा

णधिः । आन्तसारथिवाहश्च छन्नोऽस्त्रैरिभिस्तथा ॥ १७ ॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि । एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु
मद्रराजेन संयुगे ॥१८॥ तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत् ।
शरैस्तीक्ष्णैः पराविध्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥१९॥ प्रहस्य समरे
कर्णश्चकार विमुखं शरैः। ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह २०
रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम् । यदर्थं धार्त्तराष्ट्रेण सततं
मानितो भवान् ।२१। तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम् ।
शंखयोः ध्मातयोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः ॥२२॥ श्रूयते चाप-
घोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह । असौ निघ्नन्नथोदारानर्जुनः
शरवृष्टिभिः ॥ २३ ॥ सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे ।

नहीं रहेगा, सारथी तथा घोड़े थकजायँगे, शत्रु तुझे बाणोंसे ढक देंगे ॥१७॥ तेरी ऐसी दशा होजाने पर तू अर्जुनके साथ युद्धकरने को जायगा तो तू उपहासका ही पात्र होगा, इसप्रकार मद्रराजने कर्णसे कहा ॥ १८ ॥ तब भी क्रोधमें भराहुआ कर्ण युधिष्ठिरके ऊपर ही बाण छोड़तारहा तथा पांडुनन्दन माद्रीके दोनों पुत्रोंको तीखे बाणों से बींधता रहा ॥ १९ ॥ और खूब हँस कर उसने बाणोंकी मारसे युधिष्ठिरको विमुख करदिया, तब शल्यने हँसकर कर्णसे फिर कहा ॥ २० ॥ उस समय रथमें बैठेहुए कर्णको बड़ा क्रोध चढ़ रहा था और उसने युधिष्ठिर को मार डालने का निश्चय कर लिया था, उससे शल्यने कहा, कि-जिसके लिये दुर्योधनने सदा तेरा सन्मान किया है ॥ २१ ॥ हे कर्ण ! उस अर्जुनको मार, युधिष्ठिरको मारनेसे तेरा क्या काम चलेगा ? वर्षा ऋतुमें मेघके गर्जनेकी समान जो शङ्खोंकी ध्वनि सुनाई आरही है, यह श्रीकृष्ण और अर्जुनके शंखों की ध्वनि है, यह देख अर्जुन बाणोंकी वर्षासे शत्रुओंका संहार कर रहा है ॥ २२-२३ ॥ हे कर्ण ! देख यह संग्राममें हमारी सब सेनाका ग्रासकरे डालता

पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २४ ॥ उत्तरञ्चास्य वै शूरश्चक्रं रक्षति सात्यकिः । धृष्टद्युम्नस्तथा चास्य चक्रं रक्षति दक्षिणम् ॥ २५ ॥ भीमसेनस्तु वै राज्ञा धार्त्तराष्ट्रेण युध्यते । यथा न हन्यात्तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम् ॥ २६ ॥ तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा । पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिना ॥ २७ ॥ यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान् भवेत् । परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम् ॥ २८ ॥ किन्नु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं वा युधिष्ठिरम् । इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा दुर्योधनञ्चैव भीमग्रस्तं महाहवे । राजगृद्धी भृशञ्चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः ॥ ३० ॥ अजात-

---

है, नीर अर्जुनकी पीठपर युधामन्यु तथा उत्तमौजा रक्षा कर रहे हैं, शूर सात्यकी अर्जुनके बायें पहियेकी रक्षा कर रहा है और धृष्टद्युम्न दाहिने पहियेकी रक्षा कररहा है ॥ २४–२५ ॥ भीमसेन दुर्योधनके सामने युद्ध कररहा है, इसलिये हे कर्ण ! तू ऐसी युक्ति कर, कि–भीमसेन हमारे सबोंके देखते हुए दुर्योधन को मार न डाले और राजा दुर्योधन भीमसेनके सपाटेमें से बचजाय, युद्धमें शोभायमान दीखते हुए दुर्योधनको वह देख भीमसेनने घेर लिया है ॥ २३–२७ ॥ दुर्योधन यदि भीमसेनके चुङ्गलमेंसे छूटजाय तो यह बड़े आश्चर्यकी बात होगी, माद्री के दोनों पुत्रोंको और युधिष्ठिर को मारनेसे तुझे क्या लाभ होगा? दुर्योधन मरनेकी अनीपर आपहुँचा है, इस लिये उसके पास जाकर रक्षा कर ॥ २८ ॥ हे राजन् ! कर्णने शल्यकी इस बातको सुना तथा महायुद्धमें भीमने दुर्योधनको घेर लिया था, यह देख तथा पराक्रमी कर्ण शल्यके कहनेके अनुसार राजा दुर्योधनकी रक्षा करनेके लिये युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवको तहाँ ही छोडकर, आपके पुत्रकी रक्षा करनेके लिये, मद्रराजके

शत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पांडवौ ॥ तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान्। मद्रराजमणुदितैरश्वैराकाशगैरिव ॥ ३१ ॥ गते कर्णे तु कौन्तेयः पांडुपुत्रो युधिष्ठिरः। अपायाज्जवनैरश्वैः सहदेवस्य मारिष ॥ ३२ ॥ ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः। प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥ ३३ ॥ अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम्। अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः ॥ ३४ ॥ सोऽब्रवीद् भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ। अनीकं भीमसेनस्य पाण्डवावाशु गच्छताम् ॥ ३५ ॥ जीमूत इव नर्दंस्तु युध्यते स वृकोदरः। ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः ॥ ३६ ॥ सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ। तुरगैरग्र्यरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ। अनीकं सहितौ तत्र भ्रातरौ पर्यवस्थितौ ॥ ३७ ॥ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

रथको हाँकने पर मानों आकाशमें जारहा हो, ऐसे वेगसे दौड़ते हुए घोड़ोंवाले रथसे वह आपके पुत्रके पास गया ॥ २९-३१ ॥ हे राजन्! कर्णके दुर्योधनकी ओर चले जाने पर, बाणोंसे अत्यन्त ही घायल हुए पांडुपुत्र युधिष्ठिर शीघ्रगामी घोड़ोंवाले रथमें नकुल और सहदेवके साथ बैठगये तथा तुरन्त ही संग्रामभूमिमेंसे छावनीकी ओरको चलेगये, वह रथमेंसे उतरकर तुरन्तही एक सुन्दर पलँगपर लेट गये, तत्काल वैद्योंने उनके देहमेंसे बाणोंके शल्य निकालडाले तो भी छातीमें घुसेहुए शल्यसे उनको पीड़ा होने लगी ३२-३३ उन्होने पलँगपर सोते २ माद्रीके पुत्र अपने महारथी दोनों भाइयोंसे कहा, कि- भीमसेन अकेला ही मेघकी सान गरजता हुआ शत्रुओंके साथ युद्ध कररहा है, इसलिये तुम दोनों उसकी सेनामें पहुँचकर उसको सहायतादो, युधिष्ठिरकी आज्ञा होते ही शत्रुओं का संहार करनेवाले और क्रोधमें भरेहुए दोनों वीर भाई शीघ्रगामी घोड़ोंवाले रथमें बैठकर भीमसेनकी सेनामें जापहुँचे ३४- ॥ ३७ ॥ तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥

सञ्जय उवाच । द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः । आपतत् सहसा राजन् यत्र पार्थो व्यवस्थितः ॥ १ ॥ तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान् । दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम् ॥ २ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् । अर्जुनं वासुदेवञ्च छादयामास सायकैः ३ अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथः । विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा ४ अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव । तदस्त्रं ब्राह्मणो युद्धे वारयामास भारत ॥ ५ ॥ यद्यद्धि व्याक्षिपद्युद्धे पाण्डवोऽस्त्रं जिघांसया । तत्तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत् ॥ ६ ॥ अस्त्रयुद्धे ततो राजन् वर्त्तमाने भयावहे । अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ७ ॥ स दिशः प्रदिशश्चैव छादयित्वा

सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! इसी समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा बड़ीभारी रथसेनाको साथमें लेकर जहाँ अर्जुन खड़ा था, तहाँ एकसाथ चढ़आया ॥ १ ॥ अश्वत्थामाको एकायकी चढ़कर आया देखकर जैसे किनारा समुद्रको अटकाये रखता है तैसे ही अर्जुनने एकसाथ उसको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ २ ॥ हे राजन् ! द्रोणके प्रतापी पुत्र अश्वत्थामाने क्रोधमें भरकर बाणोंकी मारसे अर्जुन तथा श्रीकृष्णको ढकदिया ॥ ३ महारथी कौरव श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको बाणोंसे ढकाहुआ देखकर बड़े आश्चर्यमें होगये ४ हे भारत ! फिर अर्जुनने हँसते २ युद्धमें दिव्य अस्त्र छोड़ा, परन्तु अश्वत्थामाने उसको रोकदिया ॥५॥ अर्जुन अश्वत्थामाको मारने की इच्छासे युद्धमें जो २ अस्त्र छोड़रहा था, उन सब अस्त्रों को महाधनुषधारी अश्वत्थामा काट डालता था ॥६॥ इस लड़ाई में महाभयानक अस्त्रयुद्ध चलरहा था, उस समय हमने अश्वत्थामाको रणमें मुख फाड़ेहुए कालकी समान देखा था ७ उसने सीधे जानेवाले बाण मारकर दिशाओंको तथा उपदिशा-

ह्यजिह्मगैः । वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद्दक्षिणे भुजे ॥८॥ ततोऽर्जुनो हयान् हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः । चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ९ ॥ सर्वप्राणिवहां रौद्रां परलोकवहां नदीम् । सरथांन्रथिनः सर्वान् पार्थचापच्युतैः शरैः ॥ १० ॥ द्रौणेरपहतान् संख्ये ददृशुः स च तांस्तथा । प्रावर्त्तयन्महाघोरां नदीं वीरवहां तदा ॥ ११ ॥ तयोस्तु व्याकुले युद्धे द्रौणेः पार्थस्य दारुणे । अमर्यादं योधयन्तः पर्यधावन्त पृष्ठतः ॥ १२ ॥ रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः । द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ॥ १३ ॥ पार्थेन समरे राजन् कृतो घोरो जनक्षयः । निहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः ॥ १४ ॥ हयाश्च पर्य-

ओंको घेरलिया और कृष्णकी दहिनी भुजाको तीन बाण मार कर बींधदिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर अर्जुनने महात्मा अश्वत्थामा के सब घोड़ोंको मारडाला तथा संग्रामभूमिको रुधिरके प्रवाहोंसे सबलोकोंको परलोकमें लेजानेवाले भयानक नदीके आकारमें बहादिया, अर्जुनके धनुषमेंसे छूटनेवाले बाणोंसे अश्वत्थामाकी सेनाके सब रथी अपने रथोंके सहित युद्धमें मरतेहुए हमारे देखने में आये, उससमय अर्जुनने रणभूमिमें महाभयानक और शत्रुओंको परलोकमें लेजानेवाले रुधिर की महानदी बहादी थी९-११ जिस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा पांडुपुत्र अर्जुन इन दोनों में महादारुण युद्ध होनेलगा, उस समय योधा मर्यादाको छोडकर युद्ध करते हुए इधर उधरको दौडनेलगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस युद्धमें सब रथोंके घोड़े और सारथी मरगये, हाथी तथा घोड़े सवारोंसे शून्य होगये और बड़े २ हाथियोंके महावत विना हाथियोंके होगये, इस लड़ाईमें अर्जुनने मनुष्योंका महाभयानक रूपसे संहार करडाला, इस समय अर्जुनके धनुषमेंसे छूटनेवाले बाणों से मरकर रथी भूमि पर टपाटप गिरनेलगे ॥ १३-१४ ॥ और

धावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः । तद् दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः ॥ १५ ॥ अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान् । विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ १६ ॥ अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः । भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा १७ वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम् । सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत ॥ १८ ॥ गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः । संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम् ॥ १९ ॥ स छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि । आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने ॥ २० ॥ तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम् । चिच्छेद सहसा राजन् प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ २१ ॥ स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः ।

जोतोंमेंसे छूटकर चारों ओरको दौडनेलगे, इसप्रकार युद्धमें दिपतेहुए अर्जुनके पराक्रमको देखकर पराक्रमी अश्वत्थामाने एकसाथ विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ मानेजानेवाले अर्जुनके ऊपरको धावाकिया तथा सोनेसे मँढेहुए बडेभारी धनुषको खेंचकर अर्जुनके चारों ओरसे बाण मारना आरम्भ करदिये और हे महाराज ! फिर धनुषको खेंचकर बडे जोर से अर्जुनकी छातीमें निर्दयीपनसे बाण मारा, इसप्रकार अश्वत्थामाने संग्राममें अर्जुनको बड़ाही घायल करडाला, तब उदारबुद्धिवाले अर्जुनने भी गांडीवधनुषमेंसे बाणोंकी मारामार आरम्भ करके अश्वत्थामाको ढकदिया और फिर उसके धनुषको काट डाला ॥ १५-१९ ॥ ज्योंही अश्वत्थामाका धनुष कटा, कि—उसने वज्रकी समान घोर प्रहार करनेवाला परिघ अर्जुनके ऊपर फेंका ॥ २० ॥ अर्जुनने अपनी ओर आतेहुए सुवर्णसे मढ़े उस परिघको हँसतेर एकसाथ धज्जीरकरके उड़ादिया ॥ २१ ॥ और जैसे वज्रके प्रहारसे पहाड टुकडेर होकर भूमि पर गिर पडना

विकीर्णः पर्वतो राजन् यथा वज्रेन ताड़ितः ॥ २२ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः । ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन वीभत्सुं समवाकिरत् ॥ २३ ॥ तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य पार्थो राजन् गाण्डिवमाददे सः । ऐन्द्रं जालं प्रत्यहनत्तरस्वी वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम् ॥ २४ ॥ विदार्य्य तज्जालमहेन्द्रयुक्तं पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन । प्राच्छादयामास तथाभ्युपेत्य द्रौणिस्तथा पार्थशराभिभूतः ॥ २५ ॥ विगाह्य तां पांडववाणवृष्टिं शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य । शतेन कृष्णं सहसाभ्यविध्यत्त्रिभिः शतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम् ॥ २६ ॥ ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद । अश्वांश्च सूतञ्च तथा धनुर्ज्यामवाकिरत् पश्यतां तावकानाम् ॥२७॥ स विध्वा मर्मसु द्रौणिं पांडवः परवीरहा । सार-

है तैसेही वह परिघ अर्जुनके बाणोंसे कटकर उसी समय भूमि पर जापड़ा ॥ २२ ॥ हे महाराज ! यह देखकर महारथी अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध आया, उसने वेगके साथ धनंजयके ऊपर इन्द्रास्त्र छोड़ा ॥ २३ ॥ हे राजन ! इन्द्रास्त्रकी वर्षाको देखकर अर्जुनने गांडीव धनुषको हाथमें ले उसके ऊपर महेन्द्रके अस्त्रको चढ़ाकर उससे अश्वत्थामाके अस्त्रको काटडाला ॥ २४ ॥ इन्द्रके अस्त्रको काटडालने पर अर्जुन, अश्वत्थामाके रथके पास जा पहुंचा और एक क्षणमें अश्वत्थामाको बाणोंसे ऐसा ढकदिया, कि-अश्वत्थामा अर्जुनके उन बाणोंकी वर्षासे तिरस्कृत होगया २५ परन्तु उसने सामनेसे बाण मारकर अर्जुनकी बाणवर्षाको बखेर दिया और अपना नाम प्रकट करके एकसाथ श्रीकृष्णके क्षुद्रक जातिके सौ और अर्जुनके तीनसौ बाण मारे ॥ २६ ॥ अर्जुनने भी गुरुपुत्र अश्वत्थामाके मर्मस्थानोंमें सौ बाण मारे और आपकी ओरके योधाओंके देखतेहुए उसके घोड़ोंको, सारथीको तथा धनुषकी डोरीको काटडाला ॥ २७ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले

थिञ्चास्य भल्लेन रथनीड़ादपातयत् ॥ २८ ॥ स संगृह्य स्वयं वाहान् कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः । तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥ २९ ॥ प्रायच्छत्तुरगान् यच्च फाल्गुनञ्चाप्ययोधयत् । तदस्य समरे राजन् सर्वे योधा न्यपूजयन् ॥ ३० ॥ ततः प्रहस्य वीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे । क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥३१॥ प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः । ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत ॥ ३२ ॥ पांडवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन् । समन्तान्निशितान् बाणान् विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥ ३३ ॥ पांडवैस्तु महाराज धार्त्तराष्ट्री महाचमूः । पुनः पुनरथो वीरैरभञ्जि जितकाशिभिः ॥ ३४ ॥ पश्यतां ते महा-

अर्जुनने अश्वत्थामाके मर्मस्थानोंको बाणोंसे बींधडाला, और तदनन्तर उसके सारथीको भल्ल जातिका एक बाण मारकर रथकी बैठकपरसे नीचे गिरादिया ॥ २८ ॥ उस समय अश्वत्थामाने अपने आपही घोडोंको थामलिया और बाणोंकी मारसे कृष्ण तथा अर्जुनको ढकदिया, अश्वत्थामाके ऐसे फुर्तीसे भरे पराक्रमको हमने देखा था ॥ २९ ॥ अश्वत्थामाने युद्धके समय अपने घोडोंको पकडकर जब अर्जुनके साथ युद्ध किया उस समय हे राजन् ! सब योधा उसकी प्रशंसा कररहे थे ॥ ३० ॥ फिर अर्जुनने खिलखिलाहटके साथ हँसकर क्षुरजातिके बाण मार तुरन्त ही घोडोंकी रासोंको काटदिया ॥ ३१ ॥ अर्जुनके बाण लगतेही उसकी वेदनासे भडककर घोडे रणमें दौडनेलगे, हे राजन् ! उस समय आपकी सेनामें भयानक गर्जनायें होरही थीं ॥ ३२ ॥ विजय चाहनेवाले पांडवोंने विजय पाकर चारों ओर को तेज बाणोंकी मारामार करतेहुए तुम्हारी सेनाके ऊपर धावा बोलदिया ॥ ३३ ॥ युद्धमें विजयसे शोभा पानेवाले वीर पांडवोंने विचित्र प्रकारका युद्ध करनेवाले तुम्हारे पुत्रके, कर्णके तथा

राजपुत्राणां चित्रयोधिनाम् । शकुनेः सौवलेयस्य कर्णस्य च विशाम्पते ॥ ३५ ॥ वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर । न चातिष्ठत संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः ॥ ३६ ॥ ततो योधैर्महाराज पलायद्भिः समन्ततः । अभवद् व्याकुलं भीतं पुत्राणां ते महद्बलम् ॥ ३७ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः । नानतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः ॥ ३८ ॥ अथोत्क्रुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः । धार्त्तराष्ट्रैर्बलं दृष्ट्वा विद्रुतं वै समन्ततः ॥ ३९ ॥ ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत् प्रणयादिव । पश्य कर्ण महासेना पाण्डवैरर्दिता भृशम् ॥ ४० ॥ त्वयि तिष्ठति संत्रासात् पलायनपरायणा । एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिन्दम ॥ ४१ ॥ सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम । क्रोश-

शकुनिके देखतेहुए तुम्हारी सेनाको ऐसा व्याकुल करडाला, कि-तुम्हारे पुत्रोंके रोकने पर भी तुम्हारी सेना संग्राममें खडी न रहसकी, किन्तु भागही निकली ॥ ३४-३६ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार तुम्हारे पक्षके योधा जब चारों ओरसे भागनेलगे उस समय तुम्हारे पुत्रोंकी बड़ीभारी सेना भी भयभीत तथा व्याकुल होगयी ॥ ३७ ॥ खड़े रहो, खड़े रहो, ऐसा कर्णने बहुतही कहा, परन्तु महात्माओंके प्रहार करनेसे तुम्हारी सेना रणभूमिमें खड़ी न रहसकी; किन्तु भागही गयी, दुर्योधनकी सेनाको चारों ओरसे भागते देखकर हे महाराज ! विजयी पाण्डवोंने बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यह देखकर दुर्योधनने विनयके साथ कर्णसे कहा, कि-हे कर्ण ! पंचाल राजाओंने बडाही दुःख दिया, इस लिये तेरे देखतेहुए हमारी सेना घबडाकर रणमेंसे भागी जारही है, इसलिये हे शत्रुदमन ! अब तू जो करना उचित समझता हो वह कर ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पाण्डवोंके भगायेहुए हजारों योधा, हे महान् वीर ! युद्धमें चिल्ला२ कर तुझकोही पुकार रहे हैं,

न्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः ॥ ४२ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु राधेयो दुर्योधनवचो महत् । मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव ॥ ४३ ॥ पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणाञ्च जनेश्वर । अद्य हन्मि रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह ॥ ४४ ॥ वाहयाश्वान्नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः । एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥ प्रगृह्य विजयं वीरो धनुःश्रेष्ठं पुरातनम् । सज्यं कृत्वा महाराज संमृज्य च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ संनिवार्य्य च योधान् स सत्येन शपथेन च । प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ॥ ४७ ॥ ततो राजन् सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन्महामृधे ॥ ४८ ॥ ज्वलितैस्तैः शरैर्घोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः । सञ्छन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४९ ॥ हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां विशाम्पते ।

इसलिये तू उनकी रक्षा कर ॥ ४२ ॥ राधाका पुत्र कर्ण राजा दुर्योधनकी इस बातको सुनकर हँसतेर मद्रराज शल्यसे कहने लगा, कि–हे शल्य ! आज तू इन दोनों भुजाओंके और अस्त्रोंके पराक्रमको देखना, आजकी लडाईमें मैं सब पंचाल राजाओंको और पाण्डवोंको मारडालूँगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसमें तू जरा भी सन्देह न करना हे नरव्याघ्र ! रथके घोडोंको शीघ्र ही हाँक, ऐसा कहकर प्रतापी वीर सूतपुत्र, विजय नामके पुरातन और उत्तम धनुषको हाथमें ले,उसके ऊपर डोरी चढ़ाकर बारम्बार खेंचताहुआ तयार करनेलगा,फिर सत्यकी शपथ खिलाकर रणमें भागतेहुए योधाओंको पीछेको लौटाया और महाबली उदारचित्त कर्णने अपने धनुष पर भार्गव अस्त्र चढ़ाया, हे राजन् ! उस धनुषमें से लाख,दश लाख और करोडों तेज बाण तत्काल उस महासंग्राममें छूटनेलगे ॥ ४५–४८ ॥ जलते हुए, घोर, कङ्क-और मोर पक्षीके परोंवाले उन बाणोंसे पांडवोंकी सेना ऐसी ढकगयी,

पीड़ितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे ॥ ५० ॥ निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः।रथैश्चापि महाराज नरैश्चापि समन्ततः ५१ प्राकम्पत मही राजन्निहतैस्तैस्ततस्ततः । व्याकुलं सर्वमभवत् पाण्डवानां महद्बलम् ॥ ५२ ॥ कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः । दहन् शत्रून् नरव्याघ्रः शुशुभे स परन्तपः ॥ ५३ ॥ ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह । तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः ॥ ५४ ॥ चुक्रुशुश्च नरव्याघ्र यथा व्याघ्रा नरोत्तमाः । तेषान्तु क्रोशतामासीद्भीतानां रणमूर्द्धनि ॥ ५५ ॥ धावताञ्च दिशो राजंस्त्रस्तानां च समन्ततः । आर्त्तनादो महां-स्तत्र भूतानामिव संप्लवे ॥ ५६ ॥ वध्यमानांस्तु तान् दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष । वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्य्यग्योनिगतान्यपि ॥ ५७ ॥

कि—उस समय रणभूमिमें कुछ भी नहीं दीखता था ।४६॥ महा-बलवाले भार्गव अस्त्रके प्रहारसे पीड़ा पाते हुए पंचाल देशके योधा संग्राममें बड़ा हाहाकार करने लगे ॥ ५० ॥ हे राजन् ! सहस्रों हाथी घोड़े, रथ और सिंहसमान पैदल मरकर चारों ओर गिरने लगे, तब तो रणभूमि काँपउठी तथा पांडवों की सब सेना व्याकुल होगयी ॥ ५१-५२ ॥ हे नरेन्द्र ! इस समय बड़ा योधा अकेला कर्ण ही धुएँसे रहित अग्निकी समान शत्रुओंका नाश करता हुआ रणमें शोभा पारहा था।।५३॥इस समय कर्णके हाथसे मरते हुए पंचाल और चेदी देशके योधा, जैसे वनमें दौं लगने पर हाथी भौंचक्केसे होजाते हैं तैसेही रणभूमियें मूढ़से बनगये ॥५४॥ और व्याघ्रोंकी समान जोरसे दहाड़ने लगे, हे राजन् !पंचाल तथा चेदी देशके योधा भय और त्रासके मारे चारोंओरको भागनेलगे औरजैसे प्रलयके समय प्राणी चिल्लाते हैं तैसे ही बडी २ चीखें मारनेलगे ५५-५६ हे राजन् ! कर्ण,पंचाल तथा चेदि देशके योधाओंका संहार कररहा था, यह देखकर पशु पक्षी तक सब प्राणी सहमगये ॥५७॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः । अर्जुनं वासुदेवञ्च क्रोशन्ति स्म मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥ प्रेतराजपुरे यद्वत् प्रेतराजं विचेतसः । श्रुत्वा तु निनदं तेषां वध्यतां कर्णसायकैः ॥ ५९ ॥ अथाब्रवीद्वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनंजयः । भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥ ६० ॥ पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम् । नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन ॥ ६१ ॥ सूतपुत्रञ्च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे । अन्तकप्रतिमं वीर्य्यं कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥ ६२ ॥ अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान् प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः । न च पश्यामि समरे कर्णस्प्रतिपलायितुम ॥ ६३ ॥ जीवन् प्राप्नोति पुरुषः संख्ये जयपराजयौ । मृतस्य तु हृषीकेश भङ्ग एव कुतो जयः ६४

जैसे अचेत हुए नरकके जीव यमलोकमें बार २ यमराजका नाम लेकर पुकारते हैं तैसे ही कर्णके हाथसे मार खाते हुए सृञ्जय वारम्बार चिल्ला २ कर अर्जुन और कृष्णको पुकार रहे थे, कर्णके बाणोंसे नष्ट होते हुए सृञ्जयोंका शब्द सुनकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने कर्णके मारेहुए भार्गव अस्त्रको देखते ही श्रीकृष्णसे कहा, कि- ॥ ५८-६० ॥ हे महाबाहु कृष्ण ! आप इस भार्गव अस्त्रके पराक्रमको देखिये, युद्धमें इस अस्त्रको किसीप्रकार भी प्रहारसे पीछेको नहीं हटायाजासकता ॥ ६१ ॥ हे कृष्ण ! सूतपुत्र कर्ण क्रोधमें भरा खडा है, देखिये दारुण कर्म करनेवाले इस कर्णका पराक्रम कालकेसा है ॥६२॥ यह घोडोंको टिटकारता हुआ बार २ मेरी ओरको देखतरहा है, अब मैं कर्णको युद्धमें छोडकर चलाजाऊँ यह मेरी समझमें नहीं आता ॥ ६३ ॥ जो जीवित होता है वह युद्धमें जय या पराजय पाता है, परन्तु हे कृष्ण ! मरजाने वालेकी जय पराजय कहाँसे होसकती है? अर्थात् मैं जीतेजी कर्णको छोडकर चलाजाऊँ तो मेरा पराजय है, परन्तु कर्णके साथ लडते २ मरजाऊँ तो मेरा पराजय नहीं है, किंतु जय ही है, इसलिये

एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां परम् । धनंजयमुवाचेदं प्राप्तकालमरिन्दमः ॥ ६५ ॥ कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षतः । तं दृष्ट्वाश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि ॥ ६६ ॥ ततो जनार्दनः प्रायात् द्रष्टुमिच्छन् युधिष्ठिरम् । श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च कर्णं युद्धे विशाम्पते ॥ ६७ ॥ ततो धनञ्जयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् । रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामात् केशवाज्ञया ॥ ६८ ॥ गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया । सैन्यमालोकयामास नापश्यत्तत्र चाग्रजम् ॥ ६९ ॥ युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत । दुःसहं वज्रिणा संख्ये पराजित्य गुरोः सुतम् ॥ ७० ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरान्वेषणे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

चाहे सो हो अब मैं पीछेको नहीं हटूँगा ॥ ६४ ॥ अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने, महाबुद्धिमान् और शत्रुओंका दमनकरनेवाले अर्जुनसे समयोचित यह बात कही कि-॥ ६५ ॥ हे अर्जुन ! कर्णने राजा युधिष्ठिरको बहुत ही घायल करदिया है, इसलिये उनसे मिलकर धीरज देनेके बाद तू कर्णको मारना ६६ हे राजन् ! युद्धमें कर्णका थकाडालनेके लिये कृष्णने अर्जुनसे ऐसा कहकर युधिष्ठिरको देखनेके लिये जानेकी इच्छा दिखायी ॥ ६७ ॥ अर्जुन कृष्णकी आज्ञा होते ही तुरन्त रथमें बैठगया और बाणोंकी मारसे पीड़ित राजा युधिष्ठिरको देखनेकेलिये संग्राममें राजा युधिष्ठिरकी छावनीकी ओरको चलदिया ॥६८॥ हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके साथ युद्ध करके और उसको युद्धमें हराकर अपने बड़े भ्राता युधिष्ठिरकी ओरको चलदिया, इस समय जाते २ धर्मराजको देखनेकी इच्छासे सेनाकी ओरको देखा, परन्तु तहाँ बड़ेभाई युधिष्ठिर कहीं दृष्टि नहीं पड़े ६९-७० चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । द्रौणिं पराजित्य ततोऽग्रधन्वा कृत्वा महद् दुष्करं शूरकर्म । आलोकयामास ततः स्वसैन्यं धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ १ ॥ सोऽयुध्यमानान् पृतनामुखस्थान् योधान् शूरो हर्षयन् सव्यसाची । पूर्वप्रहारैः प्रथितान् प्रशंसन् स्थितान्महात्मा स रथाननेकान् ॥ २ ॥ अपश्यमानस्तु किरीटमाली युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम् । उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा ॥ ३ ॥ भीम उवाच । अपयात इतो राजा धर्मराजो युधिष्ठिरः । कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत् कथञ्चन ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच । तस्माद्भवान् शीघ्रमितः प्रयातु राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य । नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः कर्णेन राजा शिबिरं

संजय कहता है, कि- हे राजा धृतराष्ट्र ! शत्रु जिसको दवा न सकें ऐसा उग्र धनुषको धारण करनेवाला महात्मा धनञ्जय, वीरताका बड़ा दुष्कर काम करके तथा युद्धमें अश्वत्थामाको हराकर फिर अपनी सेनाकी ओरको देखनेलगा । १ । वीर अर्जुनने पहले प्रहारासे घायलहुए जो वीर रथी युद्ध न करके सेनाके मुहाने पर खड़े थे उनको प्रशंसा करके प्रसन्न किया ॥ २ ॥ परन्तु सेनामें चारों ओरको दृष्टि डालने पर भी अजमीढ़के वंशज बड़े भाई राजा युधिष्ठिर कहीं भी देखनेमें नहीं आये, इसलिये किरीटमाली अर्जुन एकसाथ भीमसेनके पास गया और उससे बूझने लगा, कि-मुझे बता, कि-राजा युधिष्ठिर कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥ भीम बोला, कि-धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर कर्णके बाणोंसे शरीर घायल होजानेके कारण यहाँसे छावनी की ओरको चलेगये हैं, वह अब जीवित हों चाहे न हों ॥ ४ ॥ अर्जुनने कहा, कि-यदि ऐसा है तो तुम यहाँसे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका समाचार लेनेके लिये शीघ्र जाओ, मालूम होता है कर्णने युधिष्ठिरको बाणोंसे बहुत ही घायल करदिया है, इसलिये ही वह छावनीकी

गतोऽसौ ॥ ५ ॥ यः संप्रहारे निशितैः पृषत्कैर्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी । तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो द्रोणोऽपि यावन्न हतः किलासीत् ॥ ६ ॥ स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः कर्णेन संख्येऽद्य महानुभावः । ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम स्थास्याम्यहं शत्रुगणान्निरुध्य ॥ ७ ॥ भीम उवाच । त्वमेव जानीहि महानुभाव राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य । अहं हि यद्यर्जुन यामि तत्र वक्ष्यन्ति मां भीत इति प्रवीराः ॥ ८ ॥ ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं संशप्तकाः प्रत्यनीकस्थिता मे । एतानहत्वाऽद्य मया न शक्यमितोऽपयातुं रिपुसङ्घगोष्ठात् ॥९॥ अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः स्ववीर्यमास्थाय कुरुप्रवीर । संशप्तकान् प्रतियोत्स्यामि संख्येसर्वानहं

ओरको चलेगये होंगे ॥ ५ ॥ फुरतीसे युद्ध करनेवाले राजा युधिष्ठिरको द्रोणने तीखे वाण मारकर बहुत ही घायल करदिया था तब भी द्रोणाचार्य जबतक मरे नहीं थे तब तक युधिष्ठिर विजय पानेकी वाट देखते हुए उनके सामने ही खडे रहे थे ॥ ६ ॥ उन ही महानुभाव, पाण्डवों के वड़े भाई युधिष्ठिरको आज कर्णने मरण के संशयमें डालदिया है, इसलिये हे भीम ! तू युधिष्ठिरका कुशल समाचार जाननेके लिये शीघ्र ही छावनीमें जा, मैं तेरे लौटकर आनेतक शत्रुओंके दलोंको रोके खड़ा रहूँगा ॥ ७ ॥ भीमने कहा, कि– हे अर्जुन ! मैं यदि इस समय युद्धको छोड़कर युधिष्ठिरकी खबर लेनेको जाऊँगा तो शत्रु कहेंगे, कि– भीमसेन डर कर भाग गया, इसलिये भरतसत्तम युधिष्ठिरकी खबर लेनेको तुम ही जाओ ॥ ८ ॥ यह सुनकर अर्जुनने भीमसेनसे कहा, कि–मेरे सामने खड़ीहुई शत्रुकी सेनामें संशप्तक खड़े हैं, उस शत्रुओंके वड़ेभारी दलको मारेविना, मैं यहाँसे हटकर आज कहीं नहीं जासकता ॥ ९ ॥ भीमने अर्जुनसे कहा, कि– हे कुरुवंशके महावीर पुरुष ! तुम आनन्दसे राजा युधिष्ठिरके पास चलेजाओ

याहि धनञ्जय त्वम् ॥ १० ॥ संजय उवाच । तद्भीमसेनस्य वचो निशम्य सुदुर्वचं भ्रातुरविश्रमध्ये । संशप्तकानीकमसह्यमेकः सुदुष्करं धारयामीति पार्थः ॥ ११ ॥ उवाच नारायणमप्रमेयं कपिध्वजः सत्यपराक्रमस्य । श्रुत्वा वचो भ्रातुरदीनसत्वस्तदाहवे सत्यवचो महात्मा। द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयास्यन् प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥ १२ ॥ अर्जुन उवाच । चोदयाश्वान् हृषीकेश विहायैतद्बलार्णवम् । अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव ॥ १३ ॥ सञ्जय उवाच । ततो हयान् सर्वदाशार्हमुख्यः प्रचोदयन् भीममुवाच चेदम् । नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम यास्याम्यहं जहि पार्थारिसङ्घान् ॥ १४ ॥ ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः । शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन् वाजिभिर्गरुडोपमैः १५

मैं अपने पराक्रमसे सब संशप्तकोंके साथ रणमें लडता रहूँगा १० और मैं अकेला ही इन संशप्तकोंकी असह्य सेनाके सामने प्रचण्ड पराक्रम करके टक्कर लूँगा, अपने भाई भीमकी इस बातको सुन कर जिसकी ध्वजामें वानर है ऐसे उदारपराक्रमी अर्जुनने अपने भाई भीमका सत्य वचन, जिनकी किसीसे तुलना न होसके ऐसे वृष्णिवीर श्रीकृष्णको कह सुनाया और फिर श्रीकृष्णसे कहा कि– मैं युधिष्ठिरके पास जाता हूँ ॥ ११॥ १२ ॥ अर्जुनने कहा, कि– हे हृषीकेश ! मैं अजातशत्रुसे मिलना चाहता हूँ, इसलिये आप इस सेनासागरको छोड़कर घोड़ोंको अपनी छावनीकी ओरको हाँकिये ॥ १३ ॥ संजय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! अर्जुन के ऐसा कहने पर दशार्हकुलभूषण कृष्णने पांडवोंकी छावनी की ओरको घोड़े हाँकते २ कहा, कि–अरे ओ भीम ! अब तुम पराक्रम दिखाओगे इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है, हम युधिष्ठिरके पास जाते हैं और तू पार्थके शत्रुओंका संहार करना १४ इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले भीमको शत्रुसेनाके सामने

प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिन्दमम् । सन्दिश्य चैनं राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम् ॥ १६ ॥ ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ राजानमासाद्य शयानमेकम्।रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥ १७ ॥ तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं क्षेमिणं पुरुषर्षभम् । मुदाभ्युपगतौ कृष्णावश्विनाविव वासवम् ॥ १८ ॥ तावभ्यनन्दद्राजापि विवस्वानश्विनाविव । हते महासुरे जम्भे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥ १९ ॥ मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः । हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परन्तपः ॥ २० ॥ सञ्जय उवाच । अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ । समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे ॥ २१ ॥ महास-

---

खड़ा करके संशप्तकोंके साथ लडनेकी आज्ञा दी, श्रीकृष्ण, गरुड की समान वेगवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर बड़ी फुरतीसे राजा युधिष्ठिरके पासको गये ॥१५॥१६॥ छावनीमें पहुँचते ही दोनोंने रथमेंसे नीचे उतर कर अकेले सोते हुए राजा युधिष्ठिरके पासजा उनके चरणोंमें प्रणाम किया ॥१७॥ और जैसे अश्विनीकुमार इन्द्रको कुशलक्षेमसे देख कर प्रसन्न होते हों तैसे ही श्रीकृष्ण और अर्जुन पुरुषोंमें व्याघ्रसमान महात्मा युधिष्ठिरको कुशल क्षेम से देख कर प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥ जैसे जम्भासुरका नाश करने पर बृहस्पतिने इन्द्र और विष्णु को अभिनन्दन (धन्यवाद) दिया था तथा जैसे सूर्यने अश्विनी कुमारोंको अभिनन्दन दिया था तैसे ही राजा युधिष्ठिरने कृष्ण और अर्जुनको अभिनन्दन दिया ॥ १९ ॥ और फिर कर्णको मारा गया मानकर परन्तप राजा युधिष्ठिर प्रसन्न होकर हर्षसे गद्गद हुई वाणीमें बूझने लगे ॥ २० ॥ संजय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! उस समय युधिष्ठिरने उन दोनों महापुरुषोंकी विशाल आँखोंको लोहूलुहान देखा और शरीरको गुभेहुए बाणोंसेभरा

रथौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ । हतमाधिरथिं मेने संख्ये गाण्डीवधन्विना॥२२॥तावभ्यनन्दत्कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना। स्मितपूर्वममित्रघ्नं पूजयन् भरतर्षभ ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनस्य युधिष्ठिर-
समीपगमने पञ्चषष्टिमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

युधिष्ठिर उवाच । स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनञ्जय । प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ १ ॥ अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः । आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २ ॥ अग्रगं धार्त्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च । रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥ ३ ॥ अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रे सुदुर्जयम् । अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम् ४

हुआ तथा लालताल देखा, इससे उन्होंने समझा, कि—अर्जुनने युद्धमें कर्णको मारडाला है ॥ २१ ॥ २२ ॥ और इसही कारणसे युधिष्ठिरने परम मधुर शान्तिभरे वचनोंसे हँसते २ दोनोंको अभिनन्दन दिया और उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २३ ॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ छ ॥ छ ॥

राजा युधिष्ठिरने कहा, कि— हे देवकीनन्दन ! हे धनञ्जय ! तुम अच्छे आये, आओ हे अच्युत ! हे अर्जुन ! तुम्हारादर्शन मुझे बड़ा ही प्यारा लगता है ॥ १ ॥ मैं देखता हूँ, कि—तुम दोनोंने सकुशल रहकर महारथी कर्णको मारडाला है, वह युद्धमें विषधर सर्पकी समान था, सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें प्रवीण था, दुर्योधन आदि सबमें वह अगुआ था और उनका कल्याणरूप तथा कवचरूप था वह जब लड़ता था तब वृषसेन तथा सुषेण उसकी रक्षा किया करते थे, परशुरामने अस्त्रविद्या देकर उसके ऊपर अनुग्रह किया था, इसलिये लड़ाईमें अजित था, सब लोगोंमें वह मुख्य बलवान् गिनाजाता था, महारथी होनेसे लोकोंमें प्रसिद्ध

त्रातारं धार्त्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे । हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम् ॥ ५ ॥ दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम् । अप्रधृष्यं महायुद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ६ ॥ अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च । पातालमिव गम्भीरं सुहृदां नन्दिवर्द्धनम् ७ अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महाहवे । दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥ ८ ॥ घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ । कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ॥ ९ ॥ तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी । हतवाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः । पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानाञ्च सर्वशः ॥ ११ ॥ एतान् जित्वा महावीर्यः कर्णः शत्रुगणान् बहून् । जितवान् मां

था, वह धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी रक्षा करता था और सेनाके मुहाने पर चला करता था, वह शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाला और शत्रुओंका मर्दन करनेवाला था, वह दुर्योधनका हितकारी था इसलिये ही हमें दुःख देनेको तत्पर रहता था, महासंग्राममें इन्द्रादि देवता भी उसको नहीं दबासकते थे तेजमें अग्निकी समान और बलमें पवनकी समान था, वह पातालकी समान गंभीर और स्नेहियोंके आनन्दको बढाने वाला था तथा मेरे मित्रोंके लिये कालसमान था ऐसे बली कर्णको, जैसे दो देवता असुरोंको जीतकर आवें तैसे ही तुम दोनों उसका नाश करके मेरे पास आये हो यह बहुत ठीक हुआ ॥ २-८ ॥ जैसे काल सब प्रजाका संहार करनेकी इच्छासे उसके साथ युद्ध करता है तैसेही हे अच्युत! हे अर्जुन ! कर्णने मुझसरीखे वीरके साथ आज घोर युद्ध किया था ॥९॥ युयुधान, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, वीर शिखण्डी तथा सब पञ्चाल योधा और द्रौपदीके पुत्रोंके सामने कर्णने मेरे रथकी ध्वजाके दण्डेको काटडाला था, मेरे दोनों ओरके रक्षकोंको

मां महाबाहो यतमानं महारणे ॥ १२ ॥ अभिसृज्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान् बहु । तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः १३ भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनञ्जय । बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत् सोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥ त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद्भीतो धनञ्जय । न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित् ॥१५॥ तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनञ्जय । आत्मनो मरणे यातो वाध्रीणस इव द्विपः ॥ १६ ॥ तस्यायमागमत् कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम् । कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षययितुं भवेत्१७

और मेरे सारथीको भी उसने मारडाला था तथा मेरे बड़ेभारी रथके घोड़ोंको भी काटडाला था, हमारे पक्षके इन सब योधाओं को तथा दूसरे भी सब शत्रुओंको जीतकर उस महायुद्धमें उसने बड़े उद्योगसे मेरा भी पराजय किया था, उसने युद्धमें मेरे ऊपर चढाई करके मुझे बड़े तीखे वचन कहे थे, मेरे इस कहनेमें तुम जरा भी सन्देह न रखना ॥ ९–१३ ॥ हे अर्जुन ! मैं जो इस समय जीरहाहूँ सो भीमके पराक्रमसे ही बचा हूँ, इस विषयमें अधिक क्या कहूँ ? मुझसे यह अपमान सहा नहींजाता ॥ १४ ॥ हे अर्जुन ! तेरह वर्षतक कर्णके डरसे मैं रात्रिमें सुखके साथ सोया भी नहीं तथा दिनमें सुखसे बैठ भी नहीं सका ॥ १५ ॥ हे धनञ्जय ! उसके साथ द्वेष होनेसे मैं रातदिन जला करता था, कान और मुखसे जल पीनेवाला वार्ध्रीणस (१) नामक बकरा जैसे यज्ञ भूमिमें मरनेके लिये जा पहुँचता है तैसे ही मैं भी कर्णके सामने मरनेके लिये लड़नेको गया था, परन्तु मरणका समय आनेसे पहले ही मैं यहाँको भाग आया हूँ ॥ १६ ॥ मैं बहुत दिनोंसे मनमें विचार ही किया करता था; कि-युद्धमें मैं कर्णको

(१) ताड वर्ष पानी पीते समय जिस बकरे के दोनों कान और जीभ जलसे छूजायँ, जो श्वेत रङ्गका वृषण फटा तथा लटकते चमड़े की नाक वाला हो उस को वार्ध्रीणस कहते हैं

जाग्रत् स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम् । पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥ १८ ॥ यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद्भीतो धनञ्जय । तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम् ॥ १९ ॥ सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना । सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ २० ॥ को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत् पुनः।ममैवं धिक्कृतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना॥२१॥ न मासपूर्वं यद्भीष्मात् कृपाद्द्रोणाच्च संयुगे । तत् मासमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥ २२ ॥ स त्वां पृच्छामि कौन्तेय यथाद्य कुशलन्तथा । तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन यथा कर्णो हतस्त्वया २३ शक्रतुल्यबलो युद्धे यमतुल्यः पराक्रमे । रामतुल्यस्तथास्त्रेण स

कैसे मारसकूँगा ? ॥ १७ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! सोतेमें वा जागतेमें सदा सब जगह मैं कर्णको ही देखा करता हूँ और मैं चाहे तहाँ होऊँ सब जगह मुझे यह जगत् कर्णमय ही दीखता है १८ हे अर्जुन ! मैं कर्णसे डरकर जहाँ २ जाता हूँ तहाँ २ सब जगह मुझे कर्ण ही सामने खड़ा दीखता है ॥ १९ ॥ रणमें पीछेको न हटनेवाला यह वीर पुरुष युद्धमें कभी भी पीछेको पैर नहीं देसकता, उसने रणमें मुझे हराकर मेरे घोड़े और रथसहित मुझे जीवित जाने दिया है ॥ २० ॥ युद्धमें दिपतेहुए कर्णने मुझे घायल करके दयावश जीवित छोड़ दिया है, अब मुझे जीवित रहकर क्या करना है ? और अब मैं राज्य का भी क्या करूँगा ? ॥ २१ ॥ भीष्म , कृपाचार्य और द्रोणाचार्यने भी पहले मेरा ऐसा अपमान नहीं किया था, जैसा मेरा अपमान आज युद्धमें महारथी कर्णने किया है ॥ २२ ॥ इस लिये हे अर्जुन ! मैं तुझसे बूझता हूँ, कि—तूने क्षेम कुशलके साथ कर्णको कैसे मारा, यह सब मुझे सुना ॥ २३ ॥ कर्ण बलमें इन्द्रकी समान, पराक्रममें यम

कथं वै निषूदितः ॥२४॥ महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशा-
रदः । धनुर्द्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥ २५ ॥ पूजितो धृत-
राष्ट्रेण सपुत्रेण विशाम्पते । त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहत-
स्त्वया ॥ २६ ॥ धार्त्तराष्ट्रो हि युद्धेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन । तव
मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥ स त्वया पुरुषव्याघ्र
कथं युद्धे निषूदितः । तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया२८
युध्यमानस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हृतम् । त्वया पुरुषशार्दूल
शार्दूलेन यथा रुरुः ॥ २९ ॥ यः पर्युपासीत् प्रदिशो दिशश्च
त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन् । दित्सुः कर्णः समरे हस्तिषड्गवं
स इदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः ॥ ३० ॥ त्वया रणे निहतः सूत-
पुत्रः कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा । प्रियश्च मे परमो वै कृतोऽयं

की समान तथा शस्त्रविद्यामें रामकी समान है, उसे अस्त्रसे कैसे
मारा ? ॥ २४ ॥ कर्ण महारथी कहलाता है, सब प्रकारके युद्धोंमें
प्रवीण, धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ और सबोंमें इक्कड़ है ॥२५॥ राजा
धृतराष्ट्र और उनका पुत्र दुर्योधन तुझे मारनेके लिये उसका
सम्मान किया करते हैं, ऐसे कर्णको तूने कैसे मारडाला ॥ २६॥
हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन! दुर्योधन सदा सब योधाओंमें कर्णको ही रण
तेरा मृत्युरूप मानता है ॥२७॥ हे पुरुषव्याघ्र ! उसको तूने युद्धमें
कैसे मारडाला, हे कुन्तीनन्दन ! जैसे युद्धमें तूने कर्णको मारा हो
मुझे सुना ॥ २८ ॥ हे पुरुषसिंह ! जैसे सिंह रुरुजातिके मृगकी
गरदन तोड़ डालता है तैसेही तूने उसके सब स्नेहियोंके सामने
युद्ध करतेहुए उसका शिर कैसे काटडाला ? कर्णने तेरे साथ
लड़नेके लिये दिशाओंमें और कोनोंमें रहनेवाले बहुतसे लोगों
की सेवा की थी, तेरा समाचार देनेवालेको वह हाथीकी समान
छः बैल देनेको भी तयार था, ऐसे कर्णको इस समय तूने कङ्क
पक्षीके परोंवाले बहुतसे तीखे बाण मारकर रणमें मारडाला और

त्वया रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥ ३१ ॥ यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे सदार्चितो गर्वितः सूतपुत्रः । स शूरमानी समरे समेत्य कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽसौ ॥ ३२ ॥ रौक्मं वरं हस्तिगवाश्वयुक्तं रथं प्रदित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे । सदा रणे स्पर्द्धते यः स पापः कच्चि-त्त्वया निहतस्तात युद्धे ॥ ३३ ॥ योऽसौ सदा शूरमदेन मत्तो विकत्थते संसदि कौरवाणाम् । प्रियोऽत्यर्थं तस्य सुयोधनस्य कच्चित् स पापो निहतस्त्वयाद्य ॥३४॥ कच्चित् समागम्य धनुः-प्रयुक्तैस्त्वत्प्रेरितैर्लोहिताङ्गैर्विहङ्गैः । शेते स पापः सुविभिन्नगात्रः कच्चिद्भग्नौ धार्त्तराष्ट्रस्य बाहू ॥ ३५ ॥ योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये दुर्योधनं हर्षयन् दर्पपूर्णम् । अहं हन्ता फाल्गुनस्येति मोहात् कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत् ॥ ३६ ॥ नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचित् यावत् स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धेः । व्रतं तस्यैतत्

वह दुष्टात्मा रणभूमिमें लंबा २ सोरहा है, तूने युद्धमें सूतपुत्र कर्णको मारकर मेरा बड़ा प्यारा काम किया है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ घमंडी और कौरवोंमें सन्मान पानेवाला कर्ण नित्य तुझे खोजने के लिये चारों ओर घूमा करता था, हे तात ! वीरताका अभि-मान रखनेवाले उस कर्णको तूने युद्धमें कैसे मारा ? ॥ ३२ ॥ जो कर्ण तेरा समाचार पानेके लिये, समाचार देनेवालेको उत्तम सुवर्ण, हाथी, घोड़े तथा रथ देनेको तयार रहता था, जो कर्ण सदा युद्धमें तेरे साथ स्पर्धा किया करता था, उस पापी कर्णको आज तूने रणमें मारडाला ? ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ क्या पापी कर्ण तेरे गांडीव धनुषमेंसे छूटेहुए लाल रङ्गके बाणोंसे छिन्न भिन्न शरीर होकर मरा है ? और क्या दुर्योधनके दोनों हाथ कटगये । ३५ । जो दुष्टबुद्धि कर्ण, राजाओंकी सभामें तथा कौरव वीरोंके बीचमें घमण्ड तथा मूर्खतासे बातें बघार कर कहता था, कि-मैं अर्जुन को मारडालूँ गा, उसकी इस बातको तूने मिथ्या करदिया ? ३६

सर्वदा शक्रसूनो कच्चित्त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः ॥ ३७ ॥
योऽसौ कृष्णामब्रवीद्दुष्टबुद्धिः कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये । किं पांडवांस्त्वं न जहासि कृष्णे सुदुर्बलान् पतितान् हीनसत्त्वान् ॥३८॥
योऽसौ कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे नाहत्वाहं सह कृष्णेन पार्थम् । इहोपयातेति स पापबुद्धिः कच्चिच्छेते शरसंभिन्नगात्रः ॥ ३९ ॥
कच्चित् संग्रामो विदितो वै तवायं समागमे सृञ्जयकौरवाणाम् । यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं कच्चित्त्वया सोऽद्य हतो दुरात्मा ४०
कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धेर्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः । सकुण्डलं भानुमदुत्तमांगं कायात् प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन् ॥ ४१ ॥
यत्तन्मया बाणसमर्पितेन ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय वीर । तन्मे

और हे इंद्रनंदन!कर्ण कहा करता था, कि-जबतक अर्जुन जीवित है तबतक मैं अपने पैर दूसरेसे नहीं धुलवाऊँगा, अल्पबुद्धि कर्ण ने ऐसी जो प्रतिज्ञाकी थी, उस कर्णको क्या आज तूने मारडाला ॥ ३७ ॥ जिस दुष्टबुद्धि कर्णने बीच सभामें कुरुवंशी वीर पुरुषों के सामने द्रौपदीसे कहा था, कि-अरी कृष्णे ! तू अतिदुर्बल हुए, पराक्रमहीन और पतित इन पांडवोंको क्यों नहीं छोड़देती है ॥३८॥ और जिस कर्णने तेरे लिये पहले प्रतिज्ञा की थी, कि मैं कृष्णके सहित अर्जुनको मारे बिना यहाँसे हस्तिनापुरमें नहीं जाऊँगा, इसलिये मैं तुझसे बूझता हूँ, कि-वह पापबुद्धि कर्ण इस समय बाणोंसे छिन्न भिन्न शरीर होकर क्या रणमें सोरहा है ? ॥ ३९॥ सृञ्जय और कौरवोंमें जो हमारा संग्राम चलरहा है वह तुझे मालूम ही है, उस संग्राममें कर्णने मेरी दुर्दशा करके मुझे भगादिया, इसलिये उस दुष्टात्मा कर्णको क्या आज तूने मारडाला ? ॥ ४० ॥ हे अर्जुन! तूने गांडीव धनुषमेंसे अग्निकी समान जलतेहुए बाण छोड़कर महामन्दबुद्धि कर्णका कुण्डलों वाला तेजस्वी मस्तक उसके धड़परसे काटकर गिरा दिया क्या? ॥ ४१ ॥ मैं जब कर्णके बाणोंसे अत्यन्त घायल होगया था, उस

त्वया कच्चिदमोघमद्य ध्यानं कृतं कर्णनिपातनेन ॥ ४२ ॥ यद्दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मानुदीक्षते कर्णसमाश्रयेण। कच्चित्त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य ॥ ४३ ॥ यो नः पुरा षण्ढतिलानवोचत् सभामध्ये कौरवाणां समक्षम् । सुदुर्मतिः कच्चिदुपेत्य संख्ये त्वया हतः सूतपुत्रोऽत्यमर्षी ॥ ४४ ॥ यः सूतपुत्रः प्रहसन् दुरात्मा पुराब्रवीत् निर्जितां सौबलेन । स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनीमपीह कच्चित् स हतस्त्वयाद्य ॥ ४५ ॥ यः शस्त्रभृत् श्रेष्ठतमं पृथिव्यां पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः । संख्यायमानोऽर्द्धरथः स कच्चित्त्वया हतो ह्याधिरथिर्महात्मन् ॥ ४६ ॥ अमर्षजं निकृतिसमीरणेरितं हृदि स्थितं ज्वलनमिमं सदा मम ।

समय हे वीर! कर्णका नाश करनेके लिये मैंने तुझे ही याद किया था, उस मेरे स्मरणको तूने आज कर्णको मारकर सफल करदिया क्या? ॥ ४२ ॥ घमण्डमें भराहुआ दुर्योधन कर्णका आश्रय लेकर नित्य ही हमें तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा करता है, उस दुर्योधनके आधाररूप कर्णको पराक्रमसे मारकर क्या तूने दुर्योधनके उस आधारको तोड़डाला? ४३ जिस दुर्बुद्धिने पहले राजसभाके बीचमें कौरवोंके सामने हमें तेलरहित तिलोंकी समान षण्ढ (निरर्थक) बताया था, उस असहिष्णु कर्णके ऊपर चढ़ाई करके तूने उसको मारडाला क्या? ॥४४॥ पहले शकुनिने हमें जुएमें हरा दियाथा. उसके बाद जिस दुष्टात्माने खिलखिलाहटके साथ हँसकर दुःशासनसे कहा था, कि-द्रौपदीको घसीटकर राजसभामें ले आ, उस कर्णको क्या आज तूने मारडाला? ॥ ४५ ॥ पृथिवी पर सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म पितामहने, जिस दुष्टबुद्धि कर्णको अर्धरथी कहा था और इस पर जिसने भीष्म पितामहका अपमान किया था, हे महात्मन्! वह कर्ण आज तेरे हाथसे मरकर रणमें सोरहा है ॥ ४६ ॥ हे अर्जुन! तिरस्काररूप पवनसे बढ़ाहुआ

हतो मया सोऽद्य समेत्य कर्ण इति ब्रुवन् प्रशमयसेऽद्य फाल्गुन४७
ब्रवीहि मे दुर्लभमेतदद्य कथं त्वया निहतः सूतपुत्र । अनुध्याये
त्वां सततं प्रवीरः वृत्रे हतेऽसौ भगवानिवेन्द्रम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सञ्जय उवाच । तद्धर्मशीलस्य वचो निशम्य राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा । उवाच दुर्द्धर्षमदीनसत्वं युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्य्यः ॥१॥ अर्जुन उवाच । संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन् । आशीविषाभान् खगमान् प्रमुञ्चन् द्रौणिः पुरस्तात् सहसाभ्यतिष्ठत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव समस्तसेना च रणेऽभ्यतिष्ठत् । तेषामहं पञ्च शतानि

और अमर्षसे उत्पन्न हुआ अग्नि मेरे हृदयमें रातदिन धधका करता है इसलिये 'मैंने आज कर्णके साथ मुचैटा लेकर उसको मारडाला' ऐसा कहकर तू आज मेरे हृदयमें धधकतेहुए अग्निको शान्त कर ॥ ४७ और उस कर्णको रणमें किस प्रकार मारा, यह महादुर्लभ वृत्तान्त तू मुझे सुना, वृत्रासुरके मारनेसे भगवान् ब्रह्माजीने जैसे इन्द्रको बड़ा वीर माना था तैसे ही मैं भी तुझे अपने मनमें बड़ा वीर समझताहूँ ॥ ४८ ॥ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ६६

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! महापराक्रमी और अतिरथी महात्मा अर्जुन, उन महाबली दुराधर्ष और क्रोधके आवेशमें आयेहुए धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरकी बात सुनकर इस प्रकार कहनेलगा ॥१॥ अर्जुन बोला, कि-हे महाराज ! आज मैं जिस समय संशप्तक राजाओंके साथ युद्ध कररहा था, उस समय कौरवोंकी सेनाके मुहाने पर चलनेवाला अश्वत्थामा विषैले सर्पकी समान बाणोंकी वर्षा करता हुआ एकाएकी मेरे सामने चढ़ आया और मेघकी समान गर्जनेवाले मेरे रथको

हत्वा ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य ॥ ३ ॥ स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः समभ्ययात् सिंहमिव द्विपेन्द्रः । अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां महाराज वध्यतां कौरवाणाम् ॥ ४ ॥ ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम् । मामर्दयामास शितैः पृषत्कैर्जनार्दनञ्चैव विषाग्निकल्पैः ॥ ५ ॥ अष्टौ गवामष्टशतानि वाणान् मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य । तांस्तेन मुक्तानहमस्य वाणैर्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम् ॥ ६ ॥ ततोऽपरान् वाणसंघाननेकाना कर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् । ससर्ज्ज शिक्षास्त्रवलप्रयत्नैस्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥ ७॥ नैवाददानं न च संदधानं जानीमहे

देखते ही सब सेना भी युद्ध करनेको मेरे ऊपर चढआयी मैं उनके पाँच सौ योधाओंको मारकर अश्वत्थामाके सामने जापहुंचा ॥ २ ॥ ३॥ हे नरेन्द्र ! गजेन्द्र जैसे मृगेन्द्र (सिंह) के ऊपर चढाई करता हो तैसे ही अश्वत्थामाने मेरे ऊपर चढाई करके और सावधान होकर वड़े उद्योगके साथ युद्ध करना आरम्भ करदिया, मैंने कौरवोंके रथियोंका संहार करडाला था, हे महाराज ! उसका बदला चुकानेकी उसने अपने मनमें ठानली थी ४ हे भरतवंशी राजन् ! फिर युद्धमें न डिगनेवाला कौरवोंका महारथी द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा, विषैले और अग्निकी समान तीक्ष्ण वाणोंसे मुझे तथा श्रीकृष्णको पीडा देनेलगा ॥ ५ ॥ जिस समय अश्वत्थामा मेरे साथ युद्ध कररहा था उस समय जिस में आठ बैल जुतेहुए थे ऐसे आठ छकड़े उसके हजारों वाणोंको रणमें खेंचकर लारहे थे, परन्तु जैसे वायु मेघमण्डलको बखेरदेता है तैसे ही मैंने भी वाण मारकर उसके सब वाणोंको काटडाला ६ तब तो अश्वत्थामा अपनी अस्त्रविद्याकी शिक्षासे और अस्त्र छोड़नेके बलसे उद्योगके साथ वर्षाकालके मेघकी समान, कानों तक धनुषको खेंचकर दूसरे बहुतसे वाण मेरे ऊपर वरसानेलगा ७

कतरेणास्यतीति । वामेन वा यदि वा दक्षिणेन स द्रोणपुत्रः समरे पर्य्यवर्त्तत् ॥ ८ ॥ तस्याततं मण्डलमेव सज्यं प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः । सोऽविध्यन्मां पत्रिभिर्द्रोणपुत्रः शितैश्शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम् ॥ ६ ॥ अहन्तु तं त्रिंशता वज्रकल्पैः समार्दयं निमिषस्यान्तरेण । क्षणात् श्वावित्सदृशरूपो बभूव स मर्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः ॥१०॥ स विक्षरन् रुधिरं सर्वगात्रै रथानीकं सूतसूनोर्विवेश । मयाभिभूतान् सैनिकानां प्रवर्हानसौ प्रपश्यन्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ११ ॥ ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् । पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य कर्णस्त्वरन्मामुपायात् प्रमाथी । तान् सूदयित्वाहमपास्य कर्णं द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः ॥ १२ ॥ सर्वे पञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं दृष्ट्वा

उस समय अश्वत्थामा रणमें इस प्रकार घूमरहा था, कि-वह बाणोंको किस समय लेता है, कब चढ़ाता है और कब बायें या दायें हाथसे छोड़ता है, यह कुछ भी मुझे नहीं दीखता था ८ केवल अश्वत्थामाका प्रत्यञ्चावाला विशाल मण्डलाकार धनुष ही दिखाई पड़ता था इसके सिवाय और कुछ भी नहीं दीखता था, उसने मेरे तथा श्रीकृष्णके पाँच २ तेज बाण मारे ॥ ६ ॥ परन्तु मैंने एक पलक मारने मात्र समयमें उसके वज्रकी समान तीस बाण मारे, इन मेरे छोड़ेहुए बाणोंसे क्षणभरमें छिदाहुआ अश्वत्थामा सेहीकेसे रूपका होगया ॥ १० ॥ सब शरीरसे रुधिर टपकाता हुआ वह कर्णकी रथसेनामें घुसगया उस समय उसने अपने मुख्य २ सैनिकोंको भी मेरी मारसे रुधिरमें सनेहुए शरीर वाले ही देखा ॥ ११ ॥ तब तो शत्रुओंका संहार करनेवाला कर्ण, सब सेना हार गयी है, योधा बहुत ही त्रास खागये हैं और हाथी घोड़े रणमेंसे भागरहे हैं, यह देखकर पचास उत्तम रथियोंको साथले मेरे सामने युद्ध करनेको चढ़ आया ॥ १२ ॥

गात्रः केशरिणं यथैव ॥ १३ ॥ मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभ्यपद्य
प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन् । रथास्तु तान् सप्तशतान्निमग्नां-
स्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म ॥ १४ ॥ न चाप्यभूत् क्लान्त-
मनाः स राजन् यावन्नास्मान् दृष्टवान् सूतपुत्रः॥ श्रुत्वा तु त्वां तेन
दृष्टं समेतमश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतञ्च ॥ १५ ॥ मन्ये कालमपया-
नस्य राजन् क्रूरात् कर्णात्तेऽहमचिन्त्यकर्मन् । मया कर्णस्यास्त्रमिदं
पुरस्ताद्युद्धे दृष्टं पाण्डव चित्ररूपम् ॥ १६ ॥ नह्यन्ययोद्धा विद्यते
सृञ्जयानां महारथं योऽद्य सहेत कर्णम् । शैनेयो मे सात्यकिश्च-
क्ररक्षौ धृष्टद्युम्नश्चापि तथैव राजन् ॥ १७ ॥ युधामन्युश्चोत्तमौ-

---

परन्तु मैं योधाओंका संहार करके कर्णको रणमें छोडकर तुम्हारा दर्शन करके लिये शीघ्रताके साथ यहाँ चलाआया हूँ, हे राजन्! जैसे गौएँ सिंहकी गाँस आनेसे घवड़ाहटमें पड़जाती हैं, तैसेही पंचालदेशके योधा कर्णको देखकर घवडाहटमें पडगये और प्रभद्रक कर्णके सामने आकर ऐसे होगये मानो कालके फैलेहुए मुखमें आपडे हों, हे महाराज! कर्णने महाविपत्तिमें पड़ेहुए उन योधाओं मेंसे सात सौ रथियोंको यमलोकमें भेजदिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन्! कर्णने जबतक हमें नहीं देखा था तबतक उसका मन प्रसन्न था, परन्तु हमें देखतेही उसका मन उदास होगया, हे अचिन्त्यपराक्रमी राजन! मैंने सुना है, कि–उसने आपके साथ युद्ध किया था, अश्वत्थामाने पहले ही युद्धमें आपको घायल कर दिया था; यह सुनकर और अवसर पाकर अभी कर्णको छोड कर मैं यहाँको चलाआया हूँ, हे पाण्डुनन्दन राजन्! युद्धमें मैंने भी पहले कर्णके इस विचित्र अस्त्र को देखा है, कि–जिस भार्गव अस्त्रसे उसने आपको पीडा दी थी॥१५॥१६॥और इस समय आपके सृञ्जयोंमें ऐसा कोई भी योधा नहीं है, कि जो रणमें महारथी कर्णके पराक्रमके सामने सुचैष्टा लेसके हे भरत-

जाश्च शूरौ पृष्ठतो मां रक्षतां राजपुत्रौ। रथप्रवीरेण महानुभाव द्विषत्सैन्ये वर्त्तता दुस्तरेण ॥ १८ ॥ समेत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य। योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्रमस्मिन् संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य ॥ १९ ॥ आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं मां सूतपुत्रञ्च रणे जयाय। महर्षभस्येव मुखं प्रपन्नाः प्रभद्रकाः कर्णमभिद्रवन्ति ॥ २० ॥ षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः स्वर्गाय लोकाय रणे निमग्नाः। कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन् सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य ॥ २१ ॥ प्रतिश्रुत्याकुर्वन्तो वै गतिर्या कष्टायाता तामहं राजसिंह। आमन्त्रये त्वां ब्रूहि रणे जयं मे

वंशी राजन्! आप आज्ञा दीजिये, कि-सात्यकी और धृष्टद्युम्न मेरे रथके पहियोंकी रक्षा करें और शूर राजकुमार युधामन्यु तथा उत्तमौजा मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें तब हे महानुभाव! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके सामने युद्ध किया था तैसे ही मैं शत्रुसेनामें विद्यमान तथा जिससे पार पाना कठिन है ऐसे पराक्रमी महारथी कर्णके साथ रणभूमिमें युद्ध करूँगा, यदि आपको देखना हो तो आइये, मैं विजयके लिये आज कर्णके साथ युद्ध करनेवाला हूँ, उसको देखना हो तो आप पधारिये और देखिये २, वहाँ प्रभद्रक जैसे एक बड़े साँडके सामनेको दौडते हों तैसे ही कर्णके सामनेको चढाई कररहे हैं ॥ १७-२०॥ देखिये उनमेंके छः हजार राजपुत्र तो कभीके स्वर्गमें जानेके लिये रणसिंधुमें डूब गये हैं,मैं आज युद्ध करनेके लिये आयेहुए कर्णको उसके बाँधवों के सहित यदि नहीं मारडालूँ तो प्रतिज्ञाका भङ्ग करनेवाले पुरुषको जो गति मिलती है वह दुःखदायक गति मेरी भी हो यदि मैं नहीं होऊँगा तो धृतराष्ट्रके पुत्र भीमको मार डालेंगे,इस शङ्का से अब मैं आपके पाससे जानेकी आज्ञा माँगता हूँ, मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये और मुझे आशीर्वाद दीजिये, कि-रणमें मेरी

पुरा भीमं धार्त्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ॥ २२॥ सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा कर्णं कल्पमुदारवीर्यं क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः । धनञ्जयं वाक्यमुवाच चेदं युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ १ ॥ विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु । भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम् ॥ २ ॥ स्नेहस्त्वया पार्थ कृतः पृथाया गर्भं समाविश्य यथा न साधु । त्यक्त्वा रणं यदपायाः स भीमं यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३ ॥ यत्तद्वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम् । तं त्यक्त्वा त्वं कथमद्यापयातः

विजय हो, हे नरेन्द्रसिंह ! मैं कर्णका उसकी सेनाका तथा सब शत्रुओंका संहार करूँगा २१-२३ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ६७

सञ्जयने कहा, कि--हे राजा धृतराष्ट्र ! अपार तेजस्वी कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर कर्णके बाणोंसे बड़े ही पीड़ित होरहे थे, वह उदार पराक्रमवाले युधिष्ठिर, यह देखकर, कि—महापराक्रमी कर्ण अभी जीता है, अर्जुनके ऊपर बड़े क्रोधमें होकर कहनेलगे, कि--॥ १ ॥ हे तात अर्जुन ! तेरी सेना रणमेंसे भागगयी है और तू कर्णसे डरकर उसको मार नहीं सका, इसलिये भीमसेनको रणमें अकेला छोड़कर यहाँ भाग आया है, यह तूने अच्छा नहीं किया ॥ २ ॥ तू रणमें कर्णको मार नहीं सका और भीमसेनको रणमें घायल होता छोड़ आया, इसलिये तूने कुन्तीकी कोखमें जन्म लेकर उस को वृथा ही दुःख दिया ! ॥ ३ ॥ पहले तूने द्वैतवनमें सबके सामने सत्य बोलकर कहा था, कि मैं अकेला ही कर्णको मारूँगा, तो भी उसको मारा नहीं और उससे डरकर भीमसेनको छोड़

कर्णाद्भीतो भीमसेनं विहाय ॥ ४ ॥ इदं यदि द्वैतवनेऽप्यवक्ष्यः कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति । वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे कृत्याभ्युपैष्याम तथैव पार्थ ॥ ५ ॥ मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य न वै कृतं तच्च तथैव वीर । आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात् समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिष्टाः ॥ ६ ॥ अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि यियासवो बहु कल्याणमिष्टम् । तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः ॥ ७ ॥ प्रच्छादितं बडिशम् आमिषेण संच्छादितं गरलमिवाशनेन । अनर्थकं दर्शितवानसि त्वं राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम् ॥ ८ ॥ त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं त्वामन्वजीविष्म धनञ्जयाशया । काले वर्षं देवमिवोप्त-

---

यहाँ किस लिये चला आया है ? ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! यदि तू हमसे द्वैतवनमें ही कहदेता, कि-हे राजन् ! मैं कर्णके साथ युद्ध नहीं करसकूँगा तो हम सब उसके साथ लड़नेका समयानुसार उपाय भी करलेते५परन्तु हे वीर ! तूने हमसे कर्णका वध करने की प्रतिज्ञा की थी, तथापि उस प्रतिज्ञाका तू पालन नहीं कर सका तूने हमें शत्रुओंके बीचमें ला ऊँचे आकाशमेंको उछाल कर तहाँसे पृथिवी पर क्यों पटकदिया ? ॥ ६ ॥ हे अर्जुन ! हमको युद्ध की यात्रा करने लिये उत्साह था तथा तेरी ओरसे परमप्रिय कल्याण होनेकी आशा बाँधे बैठे थे, परन्तु हे राजपुत्र ! जैसे फूलोंसे खूब भराहुआ सनका वृक्ष फलोंकी आशा करके बैठे हुओंको निराश करडालता है,तैसे ही तूने भी हमारे मनोरथोंको निष्फल करदियाहै ॥ ७ ॥ अरे ! मांसमें ढकाहुआ काँटा और अन्नमें छिपाहुआ विष जैसे खानेवालेका नाश करदेता है, तैसे ही तूने भी राज्यकी चाहनावाले मुझे राज्यका लालच दे पीछेसे मार कर उस आशाका नाश करदिया ॥ ८ ॥ हे धनञ्जय ! तेरह वर्ष होगये, हम सदा तेरे ऊपर ही विजयकी आशा रखकर जीरहे थे

बीजं तन्नः सर्वान् नरके त्वं न्यमज्जः ॥ ९ ॥ यत्तत् पृथां वागुवाचान्तरीक्षे सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धौ। जातो पुत्रो वासवविक्रमोऽयं सर्वान् शूरान् शात्रवान् जेष्यतीति ॥ १० ॥ अयं जेता खाण्डवे देवसंघान् सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः। अयं जेता मद्रकलिङ्गकेकयानयं कुरूञ्राजमध्ये निहन्ता ॥ ११ ॥ अस्मात् परो न भविता धनुर्द्धरो नैनं भूतं किञ्चन जातु जेता। इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद्वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ १२ ॥ कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः। सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः १३

परन्तु अवसर आते ही, जैसे वोयेहुए वीजको वर्षा वरसकर नाश करदेती है तैसे ही तूने भी हम सवोंको निराश करके नरकमें डुवो दिया है ॥९॥ अरे मन्दबुद्धि अर्जुन ! तू जव सात दिनका हुआ था, उस समय आकाशवाणीने कुन्तीसे कहा था, कि—यह तेरा पुत्र इन्द्रकी समान पराक्रमी होगा और यह सव शूर शत्रुओंको हरादेगा ॥ १० ॥ और यह महावली पुत्र खाण्डव वनमें सव देवताओंका, सव प्राणियोंका, मद्रराजका, कलिङ्गराजका और केकय भाइयोंका पराजय करेगा तथा राजाओंके वीचमें कौरवोंका भी संहार करेगा ॥ ११ ॥ इससे वढ़कर धनुषधारी दूसरा कोई भी नहीं होगा और कोई भी प्राणी तेरे पुत्रका किसी दिन भी पराजय नहीं करसकेगा, यह सव विद्याओंको पूर्णरीतिसे सीखजायगा तथा यह जितेन्द्रिय पुत्र यदि चाहेगा तो सव प्राणियोंको अपने वशमें करलेगा ॥ १२ ॥ तेरा यह महात्मा पुत्र चन्द्रमाकी समान कान्तिवाला, वायुकी समान वेगवाला, मेरुकी समान स्थिर, पृथिवीकी समान क्षमाशील, सूर्यकी समान तेजस्वी, कुवेरकी समान लक्ष्मीवान्, इन्द्रकी समान शूर और विष्णुकी समान बलवान् होगा ॥ १३ ॥ हे कुन्ती ! जैसे अदितिके यहाँ

तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता ।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता॥१४॥
इत्यन्तरीक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच । एवं विधं
तच्च नाभूत्तथा च देवापि नूनमनृतं वदन्ति॥१५॥तथापरेषामृषि-
सत्तमानां श्रुत्वा गिरः पूजयतां सदा त्वाम् । न सन्नतिं मैमि
सुयोधनस्य न त्वां जानाम्याधिरथेर्भयार्त्तम् ॥ १६ ॥ पूर्वं यदुक्तं
हि सुयोधनेन न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति । कर्णस्य युद्धे
हि महाबलस्य मौर्ख्यात्तु तन्नावबुद्धं मयासीत् ॥ १७ ॥ तेनाद्य
तप्स्ये भृशमप्रमेयं यच्छत्रुवर्गे नरकं प्रविष्टः । तदैव वाच्योऽस्मि
ननु त्वयाहं न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथञ्चित् ॥ १८ ॥ ततो नाहं

शत्रुओंका नाश करनेवाले विष्णुने जन्म लिया था तैसेही यह तेरे यहाँ जन्मा है, यह अपने पक्षकी विजय, शत्रुपक्षका संहार तथा कुलकी वृद्धि करेगा ॥ १४ ॥ इसप्रकार शतशृङ्ग पर्वतके ऊपर तेरे जन्मके समय आकाशवाणी हुई थी, जिसको सब तपस्वियोंने सुना था, परन्तु वह आकाशवाणी भी सत्य नहीं हुई, शोकके साथ कहना पड़ता है, कि-देवता भी मिथ्या बोलते हैं ॥१५॥ सदा तेरी पूजा करनेवाले महात्मा ऋषियोंकी बातें सुनकर दुर्योधनकी उन्नतिके विषयमें मुझे विश्वास नहीं था तथा तू कर्णके भयसे घबड़ाजायगा, इस बातको भी मैं नहीं जानता था ॥१६॥ दुर्योधनने तो पहले कहा ही था, कि-अर्जुन महाबली कर्णके सामने रणमें खड़ाभी नहीं रहसकेगा,परन्तु यह बात मैंने मूर्खतावश सत्य नहीं मानी थी ॥ १७॥ इसलिये ही आज शत्रुओंके सामने मेरे नरकमें पड़नेको अवसर अब आलगा है ! अरे ! इस दशामें आज मेरे मनमें बड़ीही आग सुलग रही है, उस समयही तुझे मुझसे कहदेना चाहिये था, कि-मैं कर्णके साथ किसी प्रकार भी नहीं लड़ूँगा ॥ १८ ॥ तो मैं अपने स्नेही सृञ्जयोंको

सृञ्जयान् केकयांश्च समानयेयं सुहृदो रणाय। एवं गते किञ्च मयाद्य शक्यं कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य ॥ १६ ॥ तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य ये वापि मां योद्धुकामाः समेताः। धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण योऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः ॥२०॥ मध्ये कुरूणां सुहृदाञ्च मध्ये ये चाप्यन्ये योद्धुकामाः समेताः। यदि स्म जीवेत्स भवेन्निहन्ता महारथानां प्रवरो नरोत्तमः॥ तवाभिमन्युस्तनयोऽत्र पार्थ न चाभिगन्ता समरे पराभवम् ॥२१॥ अथापि जीवेत्समरे घटोत्कचस्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः। मम ह्यभाग्यानि पुरा कृतानि पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे ॥ २२ ॥ तृणञ्च कृत्वा समरे भवन्तं ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना। वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं यथा ह्यशक्तः क्रियते ह्यबान्धवः ॥ २३ ॥ आपद्गतं कश्चन यो विमोक्तेत्स बान्धवः स्नेहयुक्तं सुहृच्च । एवं

तथा केकयोंको भी युद्धके लिये रणमें नहीं लाता, आज अब मेरी दशा वास्तवमें खराब होगयी है, कर्ण, राजा दुर्योधन तथा युद्ध करनेकी इच्छासे इकट्ठेहुए दूसरे राजाओंके सामने अब मैं कैसे युद्ध करसकूँगा? मैं कौरवोंके सगे संबन्धियोंके तथा युद्ध की इच्छासे इकट्ठेहुए दूसरे राजाओंके सामने आज कर्णके वशमें होगया था, इसलिये मेरे जीवनको धिक्कार है! हे अर्जुन! तेरा महारथी पुत्र अभिमन्यु यदि आज जीता होता तो वह महारथियोंका नाश करडालता और युद्धमें मेरा पराजय भी नहीं होता१६-२१तथा भीमका पुत्र घटोत्कच भी जीवित होता,तो रण मेंसे पीछेको पैर नहीं रखता, परन्तु मेरे पूर्वजन्मके पाप बड़े ही बलवान् मालूम होते हैं, तबही तो जैसे किसी बान्धवहीन असमर्थ पुरुषको जीत लिया जाता है तैसेही दुष्टात्मा कर्णने युद्धमें तुझे तृणकी समान समझकर मेरा पराजय किया है।। २२॥२३॥ जो पुरुष आपत्तिमें पड़ेहुएको आपत्तिमेंसे छुटाता है,उसको प्राचीन

पुराणा मुनयो वदन्ति धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च ॥ २४ ॥ त्वष्ट्राकृतं वाहमकूजनाक्षं शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम् । खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टावनद्धं धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम् ॥ २५ ॥ स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं कर्णाद्भीतो व्यपयातोऽसि पार्थ । धनुश्चैतत् केशवाय प्रदाय यन्ताभविष्यस्त्वं रणे केशवस्य॥२६॥ ततोऽहनिष्यत् केशवः कर्णमुग्रं मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः । राधेयमेतं यदि नाद्य शक्तश्चरन्तमुग्रं प्रतिवाधनाय ॥ २७ ॥ देह्यन्यस्मै गाण्डिवमेतदद्य त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिको नरेन्द्रः । अस्मान्नैवं पुत्रदारैर्विहीनान् सुखाद् भ्रष्टाच्चाऽयनाशाच्च भूयः ॥ २८ ॥ द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधं पापैर्जुष्टे नरके पाण्डवेय । मासेऽपतिष्यः

कालके मुनि बन्धु तथा स्नेही कहते हैं और सत्पुरुषोंने सदा इस ही धर्मका अनुष्ठान किया है ॥ २४ ॥ परन्तु हे अर्जुन ! तू सोनेकी मूठवाली तलवार और विश्वकर्माके बनायेहुए ताड़की समान मोटे गाण्डीव धनुषको लेकर, जिसकी धुरी जरा भी शब्द नहीं करती है तथा जिसके ध्वजदण्डमें वानर विराज रहा है ऐसे सुन्दर रथमें बैठा है तथा कृष्ण तेरे रथको हाँकते हैं, तो भी तू कर्णसे डरकर यहाँको क्यों भाग आया ? अरे कठोरहृदय ! अब तू अपना धनुष श्रीकृष्णको देदे और रणमें श्रीकृष्णका सारथी बनजा, तब मरुतोंके स्वामी इन्द्रने जैसे वज्रको धारण करके वृत्रासुरको मारा था, तसेही कृष्ण भी प्रचण्डपराक्रमी कर्णको मारडालेंगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे अर्जुन ! यदि तू अपने सामने रणमें घूमतेहुए राधापुत्र कर्णको मारनेकी शक्ति न रखता हो तो जो राजा अस्त्रविद्यामें तुझसे अधिक चतुर हो उसको आज यह गाण्डीव धनुष देदे, तू ऐसा करेगा तो, पुत्रोंसे तथा स्त्रियोंसे छूटेहुए तथा राज्यभ्रष्ट हो अत्यन्त दुःखदशामें पड़ेहुए हमको, पापियोंसे सेवित अगाध नरकमें पड़तेहुए लोग न देखेंगे,

पञ्चमे त्वं सुकृच्छ्रे न वा गर्भेऽप्यभविष्यः पृथायाः ॥ २९ ॥ तत्ते श्रेयो राजपुत्राभविष्यन्न चेत्संग्रामादपयानं दुरात्मन्। धिक् गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्यमसंख्येयान् बाणगणांश्च धिक् ते। धिक् ते केतुं केशरिणः सुतस्य कृशानुदत्तञ्च रथञ्च धिक् ते ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

संजय उवाच। युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः। असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् ॥ १ ॥ तस्य कोपं समुद्रीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा। उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत २ न हि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चिद्धनञ्जय। ते ग्रस्ता धार्त्त-

---

हे दुष्टात्मा राजपुत्र! तू महादुःखदायक पाँचवें महीनेमें ही गर्भ मेंसे गिरगया होता अथवा कुन्तीके पेटसे तेरा जन्म ही नहीं हुआ होता तो संग्राममेंसे भाग आनेकी अपेक्षा तेरे लिये यह बड़ा अच्छा होता, धिक्कार है तेरे गाण्डीव धनुषको! धिक्कार है तेरी भुजाओंके पराक्रमको! धिक्कार है तेरे असंख्य बाणोंको! धिक्कार है तेरे वानरकी ध्वजावाले केतुको! और धिक्कार है तेरे अग्निके दियेहुए रथको! ॥ २७-३० ॥ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! इसप्रकार युधिष्ठिरकी बातको सुनकर श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनको क्रोध आगया और उसने राजा युधिष्ठिरको मारनेकी इच्छासे तलवार उठायी ॥१॥ परन्तु इतनेमें ही श्रीकृष्ण, अर्जुनके क्रोध और उसके मनके अभिप्रायको जानकर कहनेलगे, कि-हे अर्जुन! तूने तलवार क्यों पकड़ी है? ॥२॥ हे धनञ्जय! मैं नहीं देखता, कि-तुझे इस समय किसीके साथ लड़ना हो, कि-जिसमें तुझे तलवारका

राष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता ॥ ३ ॥ अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि । स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥४॥ स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् । हर्षकाले च संप्राप्ते किमिदं मोहकारितम् ॥ ५ ॥ न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति । प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात् किं वा ते चित्तविभ्रमः ॥६॥ कस्माद्भवान् महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः । तत् त्वां पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ७ ॥ परामृशसि यत् क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम । एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ८ अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् । अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां योऽभिचोदयेत् ॥ ९ ॥ छिन्द्यामहं तस्य शिरः इत्युपांशुव्रतं मम । तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम ॥ १० ॥

काम पड़े,बुद्धिमान् भीमसेनने कौरवोंको घेरलिया है ॥ ३ ॥ तू तो यहाँ संग्रामको छोडकर युधिष्ठिरकी कुशल बूझनेके लिये आया था, तूने युधिष्ठिरको कुशल मङ्गल भी देखलिया ४ सिंहसमान पराक्रमी राजा युधिष्ठिरको सकुशल देखकर जिस समय प्रसन्न होना चाहिये,उस समय तुझमें यह मोहका काम कैसे दीखता है ५ यहाँ मैं तेरे मारनेयोग्य किसी पुरुषको नहीं देखता हूँ तथापि तू प्रहार करना क्यों चाहरहा है ? तेरे चित्तमें भ्रम तो नहीं होगया है ? ॥ ६ ॥ तूने उतावला होकर तलवार क्यों खेंची है ? तू क्या करना चाहता है ? मुझे बता, मैं तुझसे बूझता हूँ ॥ ७ ॥ हे अद्भुत पराक्रमवाले अर्जुन ! तूने क्रोधमें भरकर तलवार क्यों खेंची है ? श्रीकृष्णने इसप्रकार बूझा, कि-क्रोधमें भराहुआ अर्जुन सर्पकी समान फुङ्कारें भरनेलगा और युधिष्ठिरके सामने को देखकर श्रीकृष्णसे कहनेलगा, कि-हे अपारपराक्रमी गोविंद! मेरा यह गुप्त व्रत है, कि-जो कोई पुरुषभी मुझसे कहे, कि-तू अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको देदे, उसका शिर काटडालूँगा,

समक्षं तव गोविन्द न तत् क्षन्तुमिहोत्सहे । तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम् ॥ ११ ॥ प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम् । एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥ १२ ॥ सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्यस्यानृण्यतां गतः । विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन ॥ १३ ॥ किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन् काले समुत्थिते । त्वमस्य जगतस्तात वेत्थ सर्वं गतागतम् ॥ १४ ॥ तत्तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यसे भवान् । सञ्जय उवाच । धिग्धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत् पुनः १५ कृष्ण उवाच । इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया । काले न पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद्भवानगात् ॥ १६ ॥ न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनञ्जय । यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरप-

---

आपके सामने राजा युधिष्ठिरने मुझसे ऐसा कहा है, इसको मैं सह नहीं सकता, इसलिये धर्मभीरु राजाको मैं मारडालूँ गा ॥-११ और इनका नाश करके मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा, हे यदुनन्दन ! मैंने इसलिये ही तलवार खींची है ॥ १२ ॥ हे जनार्दन ! मैं राजा युधिष्ठिरको मारकर सत्यवादी बनूँगा और शोक तथा दुःखसे छूटूँगा ॥ १३ ॥ परन्तु मैं बूझता हूँ कि-इस आपड़ेहुए सङ्कटके समय में आपका क्या विचार है ? तुम इस जगत्के पिता तथा भूत भविष्यत्के जाननेवाले हो ॥१४॥ इसलिये आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा, सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! यह सुनकर कृष्णने कहा, कि-धिक्कार है ! धिक्कार है ! और फिर कहने लगे, कि-हे अर्जुन ! इस समय मुझे मालूम हुआ, कि-तूने वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है, इस लिये ही हे नरव्याघ्र ! तू विना अवसरके ही क्रोधमें भरगया है ॥ १५-१६ ॥ हे धनंजय ! तू धर्मभीरु और मूर्ख है, जो इस समय ऐसा क्रोध कररहा है, हे पाण्डुपुत्र ! धर्मके विभागको जानने

विडतः ॥ १७ ॥ अकार्य्याणां क्रियाणाञ्च संयोगं यः करोति वै । कार्य्याणामक्रियाणाञ्च स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १८ ॥ अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः । समासविस्तरविदो न तेषां वेत्थ निश्चयम् ॥ १९ ॥ अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्य्याकार्य्यविनिश्चये । अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु ॥ २० ॥ न हि कार्य्यमकार्य्यं वा सुखं ज्ञातुं कथञ्चन । श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ २१ ॥ अविज्ञानाद्भवान् यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित् । प्राणिनां त्वं वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यसे ॥२२॥ प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम । अनृतां वा वदेद्वाचं न तु

वाला ऐसा क्रोध कभी नहीं करेगा ॥ १७ ॥ हे पार्थ ! जो न करने योग्य काम तथा करने योग्य होतेहुए भी शास्त्रमें निषेध कियेहुए काम करता है, वह मनुष्य अधम मानाजाता है ॥१८॥ जब शिष्य उपासना करके प्रश्न करते हैं तब गुरु शिष्योंको धर्म का उपदेश देते हैं, उस धर्मके संक्षेप और विस्तारको जाननेवाले गुरुके निर्णयको तू जानता ही नहीं ॥ १९ ॥ जो मनुष्य कार्य और अकार्यके ठीक२ निर्णयको नहीं जानता है वह मूढ पुरुष तेरी समान ही पराधीन होकर धर्म अधर्मका निर्णय करनेमें मोहमें पड़जाता है ॥ २० ॥ परन्तु कार्य अकार्यका स्वरूप सहज में नहीं जाना जासकता, यह सब तो शास्त्रका अभ्यास करनेसे ही समझमें आता है, परन्तु तूने तो शास्त्रका अभ्यास किया ही नहीं ॥ २१ ॥ तू अपनेको धर्मका ज्ञाता समझकर धर्मकी रक्षा करनेको तयार हुआ है, परन्तु तू अज्ञानके कारण अधर्मको ही धर्म समझरहा है, तू अपनेको धार्मिक समझता है, परन्तु प्राणियोंका वध करनेमें अधर्म है, इस वातको तू जानता ही नहीं ॥२२॥ हे तात ! किसी प्राणियोंका वध न करना इस अहिंसा धर्मको मैं सबसे श्रेष्ठ मानता हूँ, भले ही मिथ्या बोलना पड़े, परन्तु प्राणि-

हिंस्यात् कथञ्चन ॥ २३ ॥ स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम् । हन्याद्भवान्नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव ॥ २४ ॥ अयुध्यमानस्य वधस्तथा शत्रोश्च भारत । पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणञ्चापि गच्छतः ॥ २५ ॥ कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च । न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव ॥ २६ ॥ त्वया चैव व्रतं पार्थ बालेनेव कृतं पुरा । तस्मादधर्मसंयुक्तं मौढ्यात् कर्म व्यवस्यसि ॥२७॥ स गुरुं पार्थ कस्मात्त्वं हन्तुकामोऽभिधावसि । असंप्रधार्य्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ इदं धर्मरहस्यञ्च तव वक्ष्यामि पाण्डव । यद् ब्रूयात्तव भीष्मो हि धर्मज्ञो वा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥ विदुरो वा तथा क्षत्ता कुन्ती वापि यशस्विनी ।

योंकी हिंसा तो किसीप्रकार भी नहीं करनी चाहिये ॥ २३ ॥ हे अर्जुन ! तुझसरीखा श्रेष्ठ पुरुष साधारण मनुष्यकी समान, धर्मात्मा, बड़े भाई चक्रवर्ती राजाको (धर्मको जानता होगा तो) मारनेको कैसे तयार होजायगा ? ॥ २४ ॥ हे बड़ोंका सन्मान करनेवाले अर्जुन ! जो युद्ध न करता हो, जो शत्रुता न रखता हो, जो रणसे हटरहा हो, जो भागरहा हो, जो शरणमें आया हो, जो हाथ जोड़ रहा हो तथा जो पागल होगया हो उसका वध करनेको सत्पुरुष अच्छा नहीं कहते, तेरे बड़े भाईमें सबही गौरवकी बातें हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ तूने पहले यह प्रतिज्ञा नासमझ बालककी समान करली थी, उस मूर्खताके कारणसे ही इस समय तू अधर्म करनेको तयार होगया है ॥ २७ ॥ परन्तु हे अर्जुन ! धर्मोंकी गति ऐसी सूक्ष्म है, कि-जाननेमें नहीं आती, उसका विचार किये विना तू अपने बड़े भाईको मारनेके लिये उनके ऊपर कैसे टूटा पड़ता है ? ॥ २८ ॥ हे धनञ्जय ! मैं तुझसे धर्मका रहस्य कहता हूँ-जो धर्मका रहस्य भीष्मपितामह, युधिष्ठिर, विदुर अथवा यश पानेवाली कुन्तीको तुझसे कहना चाहिये, वही धर्मका यथार्थ

तत्ते वक्ष्यामि तत्त्वेन निबोधेदं धनञ्जय ॥ ३० ॥ सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम् । तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ३१ भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् । यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यञ्चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३२ ॥ विवाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे । विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ ३३ ॥ सर्वस्वस्यापहारे च वक्तव्यमनृतं भवेत् । तत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यञ्चाप्यनृतं भवेत् ॥ तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ भवेत्सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम् । सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥ ३५ ॥ किमाश्चर्य्यं कृतमज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः । सुमहत् प्राप्नुयात् पुण्यं बलाकोऽ-

---

रहस्य मैं तुझसे कहता हूँ, उसको तू सुन ॥ २९ ॥ ३० ॥ जो सत्य बोलता है वह सत्पुरुष कहलाता है, सत्यसे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है, जो लोग सत्य बोलते हैं वे भी उसके तत्त्वको ठीकर नहीं समझसकते अर्थात् किसी समय सत्य बोलने पर भी उसमेंसे असत्यका परिणाम निकल आता है ॥ ३१ ॥ जहाँ सत्यका परिणाम असत्य निकलता हो और असत्यका परिणाम सत्यरूप निकलता हो वहाँ सत्य न बोलकर असत्य ही बोलना चाहिये ३२ विवाहके समय, स्त्रीप्रसङ्गके समय, किसीका प्राण जाता हो या सब धन छिनाजाता हो और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये भी मिथ्या बोलदेय, इन पाँचों अवसरों पर मिथ्या बोलनेसे पाप नहीं लगता ॥ ३३ ॥ किसीका सर्वस्व छिनाजाता हो और असत्य बोलनेसे बचता हो तो असत्य बोलनेमें पाप नहीं लगता, क्योंकि ऐसे अवसर पर असत्य ही सत्य मानाजाता है, जो मनुष्य अकेले सत्यको ही लिपटा रहता है वह अज्ञानी मानाजाता है, परन्तु जो मनुष्य सत्य और असत्यके परिणामको विचार करके सत्य तथा असत्य बोलता है वही धर्मको जाननेवाला मानाजाता है ३४-३५

न्धवधादिव ॥३६॥ किमाश्चर्य्यं पुनर्मूढो धर्मकामो ह्यपण्डितः ।
सुमहत् प्राप्नुयात् पापमापगास्विव कौशिकः ॥ ३७ ॥ अर्जुन
उवाच । आचक्ष्व भगवन्नेतद् यथा विन्द्याम्यहं तथा । बला-
कस्यापि सम्बन्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥३८॥ वासुदेव उवाच ।
मृगव्याधोऽभवत् कश्चित् बलाको नाम भारत । यात्रार्थं पुत्रदारस्य
मृगान् हन्ति न कामतः ॥ ३९ ॥ वृद्धौ च मातापितरौ बिभर्त्त्य-
न्यांश्च संश्रितान् । स्वधर्मनिरतो नित्यं सत्यवागनसूयकः ४०
स कदाचिन्मृगं लिप्सुर्नाभ्यविंदत् प्रयत्नवान् । अपः पिबन्तं

अतिकठोर मनुष्य भी यदि अपनी बुद्धिसे विचारके साथ काम लेता है तो बड़ा पुण्य पाता है,कैसे आश्चर्यकी बात है, कि–बलाक नामक व्याध महाकठोर था।तो भी अंधे पशुको मारकर बड़ा पुण्य-वान् होगयाथा३६इसप्रकार ही कैसे आश्चर्यकी बात है। कि-धर्माच-रण करनेका इच्छावाला होकर भी धर्मके स्वरूपको न जाननेवाला मूर्ख मनुष्य महापापका भागी हुआ था, इस विषयमें नदीके सङ्गम पर रहनेवाले कौशिक मुनिका दृष्टान्त जगत्में प्रसिद्ध है ३७ अर्जुनने बूझा, कि–हे भगवन्! मुझे ज्ञान होजाय, ऐसी रीतिसे बलाक पारधी तथा नदीके सङ्गम पर रहनेवाले कौशिक ब्राह्मण की कथा सुनाइये ॥ ३८ ॥ वासुदेव बोले कि–हे भरतवंशी अर्जुन! पहले बलाक नामका एक व्याधा था, वह अपने मनसे पशुहिंसा करना नहीं चाहता था, परन्तु पुत्रोंकी और स्त्रीकी आजीविका के लिये मृगोंका शिकार किया करता था ॥ ३९ ॥ वह व्याधा सत्यवादी था, सदा अपने धर्ममें तत्पर रहता था, किसीसे ईर्षा नहीं करता था और बूढे माता पिताका तथा दूसरे आश्रितोंका भरण पोषण किया करता था ॥ ४० ॥ एक दिन वह मृगोंको मारनेके लिये वनमें गया, परन्तु कहीं भी मृग उसके हाथ नहीं आया, इतनेमें ही पहले कभी न देखाहुआ एक नया अन्धा पशु

ददृशे श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥ ४१ ॥ अदृष्टपूर्वमपि तत् सत्त्वं तेन हतं तदा । अन्धे हते ततो व्योम्नः पुष्पवर्षं पपात च ॥ ४२ ॥ अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितञ्च मनोरमम् । विमानमगमत् स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ॥ ४३ ॥ तद्भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन । तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयम्भुवा ॥ ४४ ॥ तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम् । ततो बलाको स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ॥ ४५ ॥ कौशिकोऽप्यभवद्विप्रस्तपस्वी न बहुश्रुतः । नदीनां सङ्गमे ग्रामाद् दूरात् स किलावसत् ॥ ४६ ॥ सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद्व्रतम् । सत्यवादीति विख्यातः स तदासीद्धनञ्जय ॥ ४७ ॥ अथ दस्युभयात् केचित्तदा तद्वनमा-

पानी पीताहुआ उसको दीखा, उस व्याधने उसी समय उसके बाण मार दिया, ज्यों ही उसके बाण लगा, कि—आकाशमेंसे फूलोंकी वर्षा होनेलगी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ और अप्सराओंके गीतोंसे तथा बाजोंके शब्दोंसे गुञ्जारताहुआ एक मनोहर विमान उस व्याधेको लेनेके लिये स्वर्गमेंसे नीचे उतर आया ॥ ४३ ॥ हे अर्जुन ! उस प्राणीने, सब प्राणियोंका नाश करसकनेकी शक्ति पानेके लिये तपस्या की थी, उससे प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उसको ऐसाही वरदान देदिया था, परन्तु उसको अन्धा करदिया था ॥ ४४ ॥ इसप्रकार सब प्राणियोंका नाश करनेका निश्चय करनेवाले उस प्राणीको मारडालनेसे वलाक स्वर्गमें गया था, इसलिये धर्मको जानलेना, यह बड़ा कठिन काम है ॥४५॥ ऐसे ही कौशिक नामक एक तपस्वी था, वह बहुत पढा नहीं था, वह एक ग्रामके पास नदियोंके सङ्गमपर कुटी बनाकर रहता था ४६ हे अर्जुन ! उसने यह व्रतकर लियाथा, कि—मैं सदा सत्य बोलूँगा, इससे वह ब्राह्मण उस समय सत्यवादी कहलाने लगा था ।४७। एक दिन कितने ही निरपराध मनुष्य चोरोंके डरसे उस वनमेंको

विशन् । तत्रापि दस्यवः क्रुद्धास्तान्मार्गन्त यत्नतः ॥ ४८ ॥ अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्ते सत्यवादिनम् । कतमेन पथा याता भगवन् बहवो जनाः ॥ ४९ ॥ सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान् वेत्थ शंस नः । स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ॥ ५० ॥ बहुवृक्षलतागुल्ममेतद्वनमुपाश्रिताः । इति तान् ख्यापयामास तेभ्यः पार्थ स कौशिकः ॥ ५१ ॥ ततस्ते तान् समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः । तेनाधर्मेण महता , वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ॥ ५२ ॥ गतः स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः । यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित् ॥ ५३ ॥ वृद्धानपृष्ट्वा सन्देहं महच्छ्वभ्रमिवार्ऽहति । तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेवं भविष्यति ॥ ५४ ॥

भाग आये थे, चोर उसके ऊपर क्रोधमें भरेहुए थे और उस वनमें उसकी बड़े उद्योगके साथ खोज कररहे थे ॥ ४८ ॥ परन्तु चोरोंको उन लोगोंका पता नहीं लगा, तब तो वे चोर सत्यवादी कौशिकके पास आकर बूझनेलगे, कि–हे भगवन् ! इधरको बहुत से मनुष्य आये थे वे कौनसे मार्गसे होकर गये हैं ॥ ४९ ॥ यदि आप जानते हों तो जैसी बात हो वह हमें बतादीजिये, इस प्रकार कौशिकसे बूझा, तब उसने सत्य कहदिया, कि–वे घने वृक्ष लता और झाड़ोंसे ढकेहुए इस गहन वनमेंको चलेगये हैं ५०-५१ यह सुनकर वे घातकी चोर उनके पीछे लगगये और उन निरपराधोंको पकड़कर तुरन्त मारडाला, वह कौशिक धर्मकी सूक्ष्मता को नहीं समझता था, इसलिये उसने सत्य बात कहदी, परन्तु सत्य कहकर उसने बड़ा अधर्म किया, इस कारण वह दुःखदायक नरकमें पड़ा ऐसा लोगोंमें सुनाजाता है, शास्त्रमें थोड़े अभ्यासवाला मूर्ख और धर्मके विभागोंको न जाननेवाला पुरुष यदि ज्ञानवृद्ध पुरुषोंसे अपने सन्देहको नहीं बूझता है, तो वह नरकमें पडता है, धर्मका निर्णय करनेमें तेरा भी यही प्रयोजन

दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति। श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥ ५५ ॥ तत्ते न प्रत्यसूयामि न च सर्वं विधीयते। प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५६ ॥ यत् स्यादहिंसा-संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः। अहिंसार्थाय हिंस्राणां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५७ ॥ धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत् स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ ५८ ॥ ये न्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित्। अकूजनेन वा मोक्षं नानुकूजेत् कथञ्चन ॥ ५९ ॥ अवश्यं कूजितव्यम्वा शङ्केरन् वाप्य-

---

होना चाहिये ॥ ५२—५४ ॥ कितनेही लोग बड़ी ही कठिनतासे जानने योग्य ज्ञानको तर्कसे जाननेका उद्योग करते हैं और कितने ही लोग वेदमेंसे धर्मको जाननेका प्रयत्न करते हैं,मैं तेरे विचारको ईर्षाकी दृष्टिसे नहीं देखता हूँ तथा श्रुतिमें कहे हुए सब धर्म विहित हैं, यह भी कहता हूँ, परन्तु प्राणियोंके कल्याणके लिये धर्म शब्दका अभिप्राय इस प्रकार दिखाया गया है कि-॥५५॥५६॥ जिसमें हिंसा न हो उसका नाम धर्म है, यह बात बहुमतसे निश्चय की गई है और हिंसकोंको हिंसासे रोकनेके लिये धर्म शब्दकी व्याख्या कीगयी है ॥ ५७ ॥ धर्म सब प्रजाको धारण करता है अर्थात् उसकी रक्षा करता है, इसलिये पण्डित धारणावाले उत्तम कर्मको धर्म कहते हैं ॥ ५८ ॥ कितनेही लोग, मनुष्योंके सन्तुष्ट रखनेको ही ईश्वरका पूजनरूप धर्म मानकर, परस्परको सुख देनारूप व्यभिचारको भी धर्म मानते हैं, वे वेदविरुद्ध धर्माचरण करके मोक्ष पाना चाहते हैं, ऐसे मनुष्योंके साथ तो भाषण भी नहीं करना चाहिये, ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि—वेदानुकूल दूसरेको सुख पहुंचानेवाले कर्मका नाम धर्म है ॥ ५९ ॥ जहाँ कोई बात कहनी पड़ती हो, परन्तु उसके कहनेसे किसीकी हिंसा होती हो तो मौन हो रहना

कूजतः । श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् ॥ ६० ॥ यः कार्येभ्यो व्रतं कृत्वा तस्य नानोपपादयेत्। न तत् फलमवाप्नोति एवमाहुर्मनीषिणः ॥ ६१ ॥ प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये । नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत् ॥ ६२ ॥ अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः। यत् स्तेनैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि ॥ ६३ ॥ श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् । न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथञ्चन६४पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत् । तस्माद्धर्मार्थमनृतमुक्त्वानानृतवाग्भवेत् ॥ ६५ ॥ एष ते लक्षणोद्देशो मयोद्दिष्टो यथाविधि ।

चाहिये और मौन रहनेसे भी कार्य सिद्ध न होता हो तो असत्य ही बोलना चाहिये, ऐसा असत्यभाषण भी सत्य बोलनेकी समान ही मानाजाता है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य किन्हीं कार्मोंके करनेकी प्रतिज्ञा करता है, परन्तु उन कामोंको पूरा नहीं करसकता तो उसको उनका फल नहीं मिलता है, ऐसा विद्वान् कहते हैं ।६१। परन्तु प्राण जानेके समयमें, विवाहके अवसर पर, सब जातियों के वधके अवसर पर और हास्यमें मिथ्याभाषण किया हो तो वह असत्य नहीं मानाजाता ॥ ६२ ॥ और धर्मके तत्त्वको जाननेवाले विद्वान् उसको अधर्म भी नहीं गिनते हैं, कोई मनुष्य चोरों के हाथमें पड़गया हो तो उसको शपथ खाकर भी उनके चुङ्गल मेंसे छूट आना चाहिये ॥ ६३ ॥ और उस समय यदि असत्य बोलना पड़े तो असत्य भी बोलना चाहिये, क्योंकि-वास्तवमें वह असत्य भी सत्य ही मानाजाता है, जहाँ तक होसके चोरोंको धन नहीं देना चाहिये ॥ ६४ ॥ क्योंकि-पापियोंको दियाहुआ धन दाताको भी नरकमें डालता है, इसकारण धर्म के लिये असत्य बोलनेसे भी मनुष्य मिथ्यावादी नहीं मानाजाता ॥६५॥मैं तेरा हित चाहनेवाला हूँ ,इसलिये मैं आज तुझे अपनी

यथाधर्मं यथाबुद्धि मयाद्य वै हितार्थिना ॥ ६६ ॥ एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः । अर्जुन उवाच । यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः ६७ हितञ्चैव यथास्माकं तथैतद्वचनं तव । भवान्मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च६८गतिश्च परमा कृष्ण तेन ते वाक्यमुत्तमम् । न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित् ॥ ६९ ॥ तस्माद्भवान् परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम् । अवध्यं पांडवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७० ॥ अस्मिंस्तु मम सङ्कल्पे ब्रूहि कञ्चिदनुग्रहम् । इदञ्चापरमत्रैव शृणु हृत्स्थं विवक्षितम् ॥ ७१ ॥ जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं यो मां ब्रूयात् कश्चन मानुषेषु । अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ यस्त्वत्तोऽस्त्राद्वीर्यतो वा विशिष्टः ॥७२॥ हन्यामहं केशव तं प्रसह्य भीमो हन्या-

बुद्धिके अनुसार तथा धर्मके अनुसार विधिपूर्वक धर्मका लक्षण कहकर सुनाता हूँ यह सुनकर हे अर्जुन ! यदि युधिष्ठिर मारनेके योग्य हों तो मुझे बता ॥ ६६ ॥ अर्जुनने कहा, कि–हे महाबुद्धिमान् तथा महामतिवाले कृष्ण ! तुमने मुझसे यह बात कही है जिसमें मेरा हित हो, तुम मेरे माता पिताकी समान हो, तथा तुम मेरी परमगति और परम प्राप्त करने योग्य स्थान भी हो, इस त्रिलोकीमें कोई भी बात आपकी अनजानी नहीं है६७-६८ इसलिये ही तुम परमधर्मको पूर्णरीतिसे यथावत् जानते हो, मैं राजा युधिष्ठिरको मारने योग्य नहीं मानता ॥ ७० ॥ इसलिये मेरे ऊपर ऐसा अनुग्रह करिये, कि– मेरी प्रतिज्ञा भी बनी रहे और राजा युधिष्ठिरकी भी रक्षा होजाय, मैं इस प्रतिज्ञाके विषय में आपसे अपने हृदयकी एक बात कहना चाहता हूँ, उसको आप सुन लीजिये ॥ ७१ ॥ हे कृष्ण ! आप जानते ही हैं, कि– मेरी यह प्रतिज्ञा है, कि कोई भी मनुष्य मुझसे कहे, कि–हे अर्जुन ! अपनेसे अधिक अस्त्रविद्या जाननेवालेको अथवा किसी

तूवरकेति चोक्तः । तन्मे राजा प्रोक्तवांस्ते समक्षं धनुर्देहीत्यसकृद्द वृष्णिवीर ॥ ७३ ॥ तं हन्याञ्चेत् केशव जीवलोके स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम् । ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः ॥ ७४ ॥ यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ भवेत् सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ । यथा जीवेत् पाण्डवोऽहञ्च कृष्ण तथा बुद्धिं दातुमद्यार्हसि त्वम् ॥ ७५ ॥ वासुदेव उवाच । राजा श्रान्तो दुःखितो विक्षतश्च कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसंघैः । यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर शरैर्भृशं ताडितोऽयुध्यमानः ॥ ७६ ॥

अधिक बलवान्को तू गांडीव धनुप देदे ॥ ७२ ॥तो हे केशव ! मैं एकसाथ उसको मारडालूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है और भीमको कोई तूवरक (विना मूछों वाला या बहुभोजी) कह देय तो वह भी कहनेवालेको एकदम मारडाले, यह उसकी प्रतिज्ञा है, हे वृष्णिवीर कृष्ण ! राजा युधिष्ठिरने आपके सामने मुझसे कई वार कहा, कि-तू धनुष दूसरेको देदे ॥ ७३ ॥ इसप्रकार इन्होंने मेरी प्रतिज्ञा भङ्गकी है, इसलिये मेरा कर्त्तव्य है, कि-मैं इनको मारडालूँ,परन्तु हे केशव! इनको मारडालने पर मैं इस मृत्युलोक में एक क्षणभरको भी जीवित नहीं रहसकता, इस समय मेरा पराक्रम नष्ट होगया है, और मुझे कुछ नहीं सूझता, कि-क्या करूँ, और विशेषकर राजा युधिष्ठिरके वधका विचार करके भी मैं पापी होगया हूँ, चाहे जैसा प्रायश्चित्त करने पर धर्मात्मा भी मैं इस पापसे नहीं छूटसकता ॥ ७४ ॥ इसलिये हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ कृष्ण ! लोगोंकी दृष्टिमें मेरी प्रतिज्ञा सच्ची रहे और राजा युधिष्ठिर भी जीवित रहें, ऐसी कोई संमति मुझे दीजिये ।७५। श्रीकृष्णने कहा, कि-हे वीर ! कर्णने युद्धमें अनेकों तीखे बाण मारकर राजा युधिष्ठिरको वींधदिया है, और युधिष्ठिर थकगये हैं तथा घवड़ागये हैं ॥ ७६ ॥ इसलिये ही दुःखित हुए राजा

अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपम् । आकोपितो ह्येष यदि स्म संख्ये कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत्सः ॥ ७७ ॥ जानाति तं पाण्डव एव चापि पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः । ततस्त्वमुक्तो भृशरोपितेन राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ ॥ ७८ ॥ नित्योद्युक्ते सततञ्चाप्यसह्ये कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम् । तस्मिन् हते कुरवो निर्जिताः स्युरेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे ॥ ७९ ॥ ततो वधं नार्हति धर्मपुत्रस्त्वया प्रतिज्ञाऽर्जुन पालनीया । जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि तन्मे निबोधेह तवानुरूपम् ॥ ८० ॥ यदा मानं लभते माननार्हस्तदा स वै जीवति जीवलोके । यदापमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥८१॥ सम्मानितः पार्थिवोऽयं

युधिष्ठिरने क्रोधमें आकर तुझे अनुचित वचन कहदिये हैं, यदि कर्णने उनको युद्धमें कुपित नहीं किया होता तो वह तुझसे कर्णको मारनेके लिये भी न कहते ॥ ७७ ॥ हे अर्जुन ! राजा युधिष्ठिर जानते हैं, कि-पापी कर्णके साथ तेरे सिवाय और कोई नहीं लड़सकता, इसलियेही उन्होंने बड़े क्रोधमें आकर मेरे सामने तुझसे कठोर बातें कही हैं ॥ ७८ ॥ नित्य युद्धके लिये तयार रहनेवाले और जिसको सहा न जासके ऐसे कर्णके साथ आज रणमें युद्धरूप जुआ खेलना है और यदि कर्णको मारलिया जाय तो कौरव हारजायँगे, यह धर्मपुत्रका विचार है, इसलिये ही उन्होंने तुझसे ऐसी बातें कहीं हैं ॥ ७९ ॥ और इसलिये ही धर्मराजको मारना उचित नहीं है तथा हे अर्जुन ! तुझे अपनी प्रतिज्ञाका भी पालन करना चाहिये, तेरी प्रतिज्ञा पूरी होजाय और युधिष्ठिर भी जीवित रहजायँ ऐसी युक्ति तू मुझसे सुन ८० जो पुरुष आदर करने योग्य होता है वह जबतक आदर पाता रहता है तबतक ही मृत्युलोकमें जीवित रहता है, परन्तु जब उसका बड़ाभारी अपमान होता है, तब वह जीताहुआ भी मरे

सदैव त्वथा च भीमेन तथा यमाभ्याम् । वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरैस्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व ॥ ८२ ॥ त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् । त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत८३ एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे । अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैवं कुरूद्वह ॥ ८४ ॥ अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः । अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयस्कामैर्नरैः सदा ॥ ८५ ॥ अवधेन वधः प्रोक्तो यद्द गुरुस्त्वमिति प्रभुः । तद्द ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित् ॥ ८६ ॥ वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराजस्त्वत्तो युक्तं वेत्स्यते नैवमेषः। ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात् समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम् ॥ ८७ ॥ भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु कुर्य्याद्राजा

हुएकी समान ही समझा जाता है ॥ ८१ ॥ इस जगत्में तू, भीम नकुल,सहदेव,वृद्ध पुरुष तथा वीर पुरुष सदाही राजा युधिष्ठिरका सन्मान करते हैं, इस लिये तू किसी युक्तिसे इनका अपमान करदे,बस मानो इनका वध होगया ॥ ८२ ॥ हे भरतवंशी अर्जुन ! तू राजा युधिष्ठिरको तू कहकर पुकार गुरुजनको तू कहकर पुकारना यह ही उसको मारडालने की समान है ॥८३॥ हे कुरुवंशी अर्जुन ! तू मेरे कहनेके अनुसार धर्मराजको तू कहकर बुला ८४ अथर्व और अङ्गिरा जिसके देवता हैं ऐसी वेदकी उत्तम श्रुतिके कथनानुसार श्रेय चाहनेवाले पुरुषोंको सदा विना विचार किये ही वर्त्ताव करना चाहिये ॥ ८५ ॥ वह श्रुति कहती है, कि-समर्थ गुरुजनको तू कहकर पुकारना यह विना मारे ही मारना है. तू धर्मको जाननेवाला है, इसलिये मेरे कहनेके अनुसार धर्म-राजको तू कहकर पुकार ॥ ८६ ॥ धर्मराज भी धर्मको जानने वाले तेरी ओरसे अयोग्य तुङ्कारको सुनकर उसको अपना वध मानलेंगे और वह इसको अपराध नहीं मानेंगे,फिर तू राजा युधि-ष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम करके और उनको समझाकर अपनी अनु-

धर्ममवेक्ष्य चापि । मुक्तोऽनृतात् भ्रातृवधाच्च पार्थ हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे
एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सञ्जय उवाच । इत्येवमुक्तस्य जनार्दनेन पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत् । ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराजमनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ १ ॥ अर्जुन उवाच । मा त्वं राजन् व्याहर व्याहरस्व यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद्वै । भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥ २ ॥ काले हि शत्रून् परिपीड्य संख्ये हत्वा च शूरान् पृथिवीपतींस्तान् । रथप्रधानोत्तमनागमुख्यान् सादिप्रवेकानमितांश्च

चित बातकी क्षमा माँगलेना ॥ ८७ ॥ राजा युधिष्ठिर धर्मको जाननेवाले हैं, वह तेरे ऊपर कदापि क्रोध नहीं करेंगे और तू मिथ्याभाषण तथा भाईके वधसे छूटकर आनन्दके साथ सूतपुत्र कर्णको मारना ॥ ८८ ॥ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥

सञ्जय कहता है, कि हे राजा धृतराष्ट्र! श्रीकृष्णने अर्जुनसे ऐसा कहा तब परमहितू श्रीकृष्णकी बातकी प्रशंसा कर आवेशमें भरा हुआ अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिरसे जो पहले कभी नहीं कहे थे ऐसे कठोरवचन कहनेलगा १ अर्जुन बोला, कि—अरे राजा! अब तू अधिक न बोल, क्यों कि—तू तो लड़ाईमेंसे भागकर रणसे एक कोशसे भी दूर आबैठा है, इसलिये मुझे वृथा उलाहना देनेका तुझे कुछ अधिकार नहीं है, जिसने समय पर युद्धमें शत्रुओंको पीड़ित किया है, जो शूर है, जो अनेकों राजाओंको, बड़े २ रथियोंको घुड़सवारोंको, असंख्यों वीर पुरुषोंको, हजारों हाथियोंको, दश हजार कंबोजोंको तथा पहाड़ी योधाओंको युद्धमें ऐसे माररहा है, जैसे सिंह मृगोंको मारता है, जो रणमें सिंहकी समान घोररूपसे दहाड़ रहा है तथा जो जगत्के बड़े २ वीर पुरुषोंके साथ

वीरान् ॥ ३ ॥ यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं हत्वानदत्तुमुलं सिंहनादम् । काम्बोजानामयुतं पार्वतीयान् मृगान् सिंहो विनिहत्येव चाजौ ॥ ४ ॥ सुदुष्करं कर्म करोति वीरः कर्त्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित् । रथादवप्लुत्य गदां परामृशंस्तया निहन्त्यश्वरथद्विपाञ्रणे ॥ ५ ॥ वरासिना वाजिरथाश्वकुञ्जरांस्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन् । प्रगृह्य पद्भ्यामहितान्निहन्ति पुनस्तु दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः ॥ ६ ॥ महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः प्रसह्य हन्ता द्विपतामनीकिनीम् । स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः ॥ ७ ॥ महारथान्नागवरान् हयांश्च पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य । एको भीमो धार्त्तराष्ट्रेषु मग्नः स मामुपालब्धुमरिन्द-

---

युद्ध करता है वह भीम यदि मेरी निन्दा करे तो ठीक भी है, परन्तु तुझको मेरी निन्दा करनेका कुछ अधिकार नहीं है२--४ वीर भीमसेन रथमेंसे कूदकर हाथमें गदाले उससे युद्धमें अनेकों रथ, घोड़े और हाथियों का संहार करके जैसा बडाभारी काम कररहा है, ऐसा बड़ा काम तू कभी नहीं करसका है ॥ ५ ॥ इन्द्रकी समान पराक्रमी और बडा वीर भीमसेन बहुमूल्य तलवारसे और रथके पहियोंसे युद्धमें घोड़ों सहित अनेकों रथ, घोड़े और हाथियोंका नाश कररहा है, धनुपसे शत्रुकी मारकाट कर रहा है, शत्रुओंके दोनों पैरोंको दोनोंहाथोंसे पकड़ शत्रुओंका संहार कररहा है, जो कुबेर तथा यमकी समान महाबली है और जो भीमसेन आवेशके साथ शत्रुसेनाका संहार करनेमें लगा हुआ है वह भीमसेन यदि चाहे तो मेरी निन्दा करसकता है, परन्तु तू मेरी निन्दा करनेके योग्य नहीं है,तुझे तो तेरें भाई और सम्बन्धी नित्य रक्षा करके बचाया करते हैं ॥ ६ ॥७ ॥आवेशमें भराहुआ भीमसेन कौरवोंकी सेनामें घुसकर अकेला ही मुख्य२ महारथी, बड़े २ हाथी, घोड़े तथा मुख्य २ पैदलोंका नाश कर

मोऽर्हति ॥८॥ कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान् सदा मदान्नीलबलाहकोपमान् । निहन्ति यः शत्रुगणाननेकान् स मामुपालब्धुमरिन्दमोऽर्हति ॥ ९ ॥ स युक्तमास्थाय रथं हि काले धनुर्विधुन्वन् शरपूर्णमुष्टिः । सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥१०॥ शतान्यष्टौ वारणानामवश्यं विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः । भीमेनाजौ निहतान्यद्य बाणैः स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यरिघ्नः ॥ ११ ॥ बलन्तु वाचि द्विजसत्तमानां क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति । त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च त्वमेव मां वेत्थ यथाविधोऽहम् ॥ १२ ॥ यतेह नित्यं तव कर्त्तुमिष्टं दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च । एवं यन्मां वाग्विशिखेन हंसि त्वत्तः सुखं न वयं विद्म

रहा है, वह शत्रुओंको दबानेवाला भीमसेन मुझे उलाहना देय तो ठीक है, परन्तु तू मुझे उलाहना देनेके योग्य ही नहीं है ८ जिसने अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, निषाद और मगधदेशके सदा मदमत्त रहनेवाले काली घनघटाकी समान श्यामवर्ण शत्रु राजाओंको मार डाला है वह भीम मुझे उलाहना देय तो ठीक है ॥ ९ ॥ क्योंकि-यह भीमसेन युद्धकी सामग्रीसे पूर्ण भरेहुए रथमें बैठकर हाथमें बहुतसे बाण ले युद्धके समय धनुषको खेंचकर महासंग्राममें बाणोंकी ऐसी वर्षा कररहा है जैसे मेघ जलकी धारायें बरसाता है और उसने मेरी आँखोंके सामने बाण मारकर आठ सौ हाथियोंके कुम्भस्थल और शुण्डोंके टुकड़े२ करके उनको युद्धमें मार डाला है, ऐसा शत्रुनाशक भीमसेन मुझे कठोर वचन कह सकता है,परन्तु तू मुझे उलाहना नहीं देसकता ॥ १० ॥ ११ ॥ विद्वान् कहते हैं, कि-ब्राह्मणोंकी वाणीमें बल होता है और क्षत्रियोंकी भुजाओंमें बल होता है, हे भरतवंशी ! तू बोलनेमें वीर और निठुर है, मैं तेरासा बलरहित हूँ, ऐसा मुझे एक तू ही जानता है ॥ १२ ॥ परन्तु मैं अपनी स्त्री, पुत्र तथा जीवनकी

किञ्चित् ॥ १३ ॥ मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो महारथान् प्रतिहन्मि त्वदर्थे । तेनाभिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किञ्चित् ॥ १४ ॥ प्रोक्तः स्वयं सत्यसन्धेन मृत्युस्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे । वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन ॥ १५ ॥ न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः । स्वयं कृत्वा पापमनार्य्यजुष्टमस्माभिर्वै तर्त्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥ १६ ॥ अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीत्तान् । तान्नैषित्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टांस्तेन

भी परवाह न करके तेरा हित करनेके लिये उद्योग किया करता हूँ, तो भी मेरे वाणीरूप बाण मारा करता है,इससे मालूम होता है, कि- हम तुझसे ज़रा भी सुख नहीं पासकेंगे ॥ १३ ॥ तू द्रौपदीके पलँग पर बैठा २ मेरा अपमान न कियाकर, मैं तेरे ही लिये महारथियोंका संहार कररहा हूँ इसलिये ही तू निःशङ्क होकर कठोर बनगया है, परन्तु मैं समझता हूँ, कि-तुझसे मुझे कुछ भी सुख मिलनेवाला नहीं है ॥१४॥ अरे राजा! सत्यप्रतिज्ञा वाले भीष्म पितामहने युद्धमें तेरा प्रिय काम करनेके लिये मुझसे कहा था, कि-शिखण्डीके हाथसे मेरा मरण होनेवाला है इसलिये मैंने वीर शिखण्डीकी रक्षा करके उसके हाथसे महात्मा भीष्मको मरवादिया, यह सब तेरे ही लिये किया ॥ १५ ॥ परन्तु अब मैं तेरे इस अधिराजपनेको अच्छा नहीं मानता, क्योंकि- तू अहित करनेवाले जुएमें लिपटा रहता है और तूने स्वयं नीच पुरुषोंके करने योग्य पापकर्म भी किये हैं, क्या अब भी हमारी सहायतासे शत्रुओंके सङ्कटके पार होना चाहता है ॥ १६ ॥ फाँसोंके खेलमें जो दोष और अधर्म भरेहुए हैं,वे सब तुझे सहदेव सुनाचुका है, तो भी जिसको अधम मनुष्य खेला करते हैं ऐसे जुएके खेलको तूने छोड़ना नहीं चाहा, इस कारणसे ही हम

स्मः सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ १७ ॥ सुखं त्वत्तो नाभिजानीम किञ्चिन्यतस्त्वमक्षैर्देवितुं संप्रवृत्तः। स्वयं कृत्वा व्यसनं पाण्डव त्वं भूयस्तीक्ष्णाः श्रावयस्यद्य वाचः ॥ १८ ॥ शेतेऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती। त्वया हि तत् कर्म कृतं नृशंसं यस्माद्दोषः कौरवाणां वधश्च ॥ १९ ॥ हता उदीच्या निहताः प्रतीच्या नष्टाः प्राच्याः दाक्षिणात्या विशस्ताः। कृतं कर्माप्रतिरूपं महद्भिस्तेषां योधैरस्मदीयैश्च युद्धे ॥ २० ॥ त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाशस्त्वत्सम्भवं नो व्यसनं नरेन्द्र। मास्मान् क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुद त्वं भूयो राजन् कोपयेस्त्वल्पभाग्यः ॥ २१ ॥ सञ्जय उवाच। एता वाचः परुषाः सव्यसाची स्थिरप्रज्ञः श्रावयित्वाति-

---

सब दुःखरूप नरकमें डूबे हुए हैं १७ तू स्वयं ही जब जुआ खेलने लगा, तब तुझसे हमें कुछ भी सुख मिलेगा, यह हम कैसे मानलें, अरे युधिष्ठिर! तूने आप ही यह सब दुःख खड़ा करलिया है और अब तू हमें कठोर बातें सुनानेको तयार होगया है ? १८ हमने शत्रुकी सेनाके शरीरोंको घायल कर डाला है, तू देखले, कि-शत्रुकी सेना रोतीहुई रणभूमिमें कैसी पड़ी है ? यह दारुण काम तूने ही करवाया है और तेरे ही कारणसे कौरवोंका नाश करके हमें गोत्रनाशका पाप बटोरना पड़ा है ॥ १९ ॥ कौरवपक्ष के और हमारे पक्षके बड़े २ योधाओंने युद्धमें अलौकिक पराक्रम दिखाया है, उन्होंने उत्तर, पश्चिम, पूर्व, और दक्षिण दिशाके वीर पुरुषोंका संहार करडाला है ॥ २० ॥ अरे राजा! तूने जुआ खेला, इसलिये ही हमारा राज्य नष्ट हुआ और हम बड़ेभारी सङ्कटमें आपड़े, अरे ओ मन्दभागी राजन्! अब तू हमें चाबुककी समान कठोर बातोंकी चोट देकर अधिक कुपित न कर ॥ २१ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! इसप्रकार स्थिर बुद्धिवाले अर्जुनने राजा युधिष्ठिरको तिरस्कारकी बातें सुनायीं, परन्तु वह

रूक्षाः । बभूवासौ विमना धर्मभीरुः कृत्वा प्राज्ञः पातकं किञ्चिदेवम् ॥ २२॥ ततोऽनुतेपे सुरराजपुत्रो विनिश्वसंश्चाप्यसिमुद्बबर्ह । तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवान् विकोपमाकाशनिभं करोत्यसिम् ॥ २३ ॥ ब्रवीहि मां त्वं पुनरुत्तरं वचस्तथा प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये । इत्येवमुक्तः पुरुषोत्तमेन सुदुःखितः केशवमर्जुनोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥ अहं हनिष्ये स्वशरीमेव प्रसह्य येनाहितमाचरं वै । निशम्य तत् पार्थवचोऽब्रवीदिदं धनञ्जयं धर्मभृतां वरिष्ठः २५ राजानमेनं त्वमितीदमुक्त्वा किं कश्मलं प्राविशः पार्थ घोरम् । त्वञ्चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न नेदं सद्भिः सेवितं वै किरीटिन् ॥ २६ ॥ धर्मात्मानं भ्रातरं ज्येष्ठमद्य खड्गेन चैनं यदि हन्याः

धर्मभीरु था, इसलिये मुझसे कोई पातक बनगया है, ऐसा समझकर मनमें उदासहोगया ॥२२॥ अर्जुन सन्ताप करने लगा लंबे श्वास छोड़नेलगा, और तुरन्त उसने म्यानमेंसे तलवार बाहर निकालली, यह देखकर श्रीकृष्णने कहा, कि-हे अर्जुन ! तू आकाशकी समान निर्मल तलवारको म्यानमेंसे बाहर क्यों निकाल रहा है ? ॥ २३ ॥ मैं तेरा काम सिद्ध करनेके लिये तुझसे बूझता हूँ, इसलिये तू मुझे उत्तर दे, इसप्रकार पुरुषोत्तमने बूझा, तब अर्जुनने बड़े ही खिन्न होकर श्रीकृष्णसे कहा, कि- ॥ २४ ॥ मैंने क्रोधमें आकर अनुचित काम करडाला है, इसलिये अब मैं अपने शरीरको ही नष्ट करडालूँगा, अर्जुनकी इस बातको सुन कर बड़ेभारी धर्मवेत्ता श्रीकृष्णने उससे कहा, कि-॥ २५ ॥ हे अर्जुन ! तू धर्मराजको तुङ्कारसे पुकार कर ऐसे महाघोर दुःखमें क्यों पड़गया ? और हे शत्रुओंका नाश करनेवाले अर्जुन ! अब तू आत्महत्या करनेको क्यों उद्यत होरहा है ? हे किरीटी ! सत्पुरुष ऐसा काम नहीं करते हैं ॥२६॥ हे मानव वीर ! तू धर्मभीरु है, इसलिये यदि तूने बड़ेभाई धर्मात्मा युधिष्ठिरको तलवारसे

नृवीर। धर्माद्भीतस्तत् कथं नाम ते स्यात् किञ्चोत्तरं व्याकरिष्य-
स्त्वमेव ॥ २७ ॥ सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ विशेषतोऽज्ञैः
प्रोच्यमानं निबोध। हत्वात्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं वधाद् भ्रातु-
र्नरकञ्चातिघोरम् ॥ २८ ॥ ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मनस्तथा
हतात्मा भवितासि पार्थ। तथास्तु कृष्णेत्यभिनन्द्य तद्वचो धन-
ञ्जयः प्राह धनुर्विनाम्य ॥२६॥ युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं शृणुष्व
राजन्निति शक्रसूनुः। न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते धनुर्द्धरो
देवमृते पिनाकिनम् ॥ ३० ॥ अहं हि तेनानुमतो महात्मना क्षणेन
हन्यां सचराचरं जगत्। मया हि राजन् सदिगीश्वरा दिशो विजि-
त्य सर्वा भवतः कृता वशे ॥ ३१॥ स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः

मार डाला होता तो तेरा यह काम कैसा समझाजाता और इसका
तू क्या उत्तर देता ? ॥ २७ ॥ हे अर्जुन ! धर्मका विषय बड़ा ही
सूक्ष्म है, अज्ञानी उसको विशेषरूपसे नहीं जान सकते इसलिये
मैं तुझे धर्मका स्वरूप फिर समझाता हूँ तू उसको सुन, तू जैसे
भाईकी हत्यासे महाभयानक नरकमें पड़ता तैसे ही तू अपनी
हत्या करनेसे भी नरकमें ही पड़ेगा२८इसलिये हे अर्जुन! अब तू
अपने गुणोंका अपने आपही बखान कर तो ऐसा समझाजायगा,
कि-तूने आत्महत्या करडाली, यह सुनकर अर्जुनने कहा, कि-
हे कृष्ण ! ठीक है, मैं ऐसा ही करता हूँ, ऐसा कहकर कृष्णका
अभिनन्दन करतेहुए धनुषको नमाकर इन्द्रपुत्र धनञ्जय, धर्म-
वेत्ताओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे कहनेलगा, कि-हे राजन् ! अब तुम मेरे
गुणोंको सुनो, पिनाकधारी शिवके सिवाय दूसरा कोई भी मेरी
समान धनुषधारी नहीं है॥२६-३०॥मैं ऐसा महात्मा हूँ, कि-उन
शङ्करकी संमतिसे एक क्षणमें इस स्थावर जङ्गम जगत्का नाश
कर सकता हूँ, हे राजन् ! मैं वही हूँ, जिसने दिशाओंको और
उनके स्वामियोंको जीतकर सब पृथिवी तुम्हारे वशमें करदी थी

सभा च दिव्या भवतो ममौजसा । पाणौ पृषत्का निशिता ममैव
धनुश्च सज्यं विततं सबाणम् ॥ ३२ ॥ पादौ च मे सरथौ
सध्वजौ च न मादृशं युद्धगतं जयन्ति । हता उदीच्या निहताः
प्रतीच्याः प्राच्या निरस्ता दाक्षिणात्या विशस्ताः ॥ ३३ ॥ सं-
शप्तकानां किञ्चिदेवावशिष्टं सर्वस्य सैन्यस्य हतं मयार्द्धम् । शेते मया
निहता भारतीयं चमू राजन् देवचमूप्रकाशा ॥ ३४ ॥ ये चास्त्र-
ज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रैस्तस्माल्लोकान्नेप करोमि भस्मसात् । जैत्रं
रथं भीममास्थाय कृष्ण यावः शीघ्रं सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३५ ॥
राजा भवत्वद्य सुनिर्वृतोऽयं कर्णं रणे नाशयितास्मि बाणैः ।
इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ॥ ३६ ॥

॥ ३१ ॥ मेरे ही पराक्रमसे आपका राजसूययज्ञ दक्षिणाके साथ पूरा हुआ था, मैने अपने ही पराक्रमसे आपको दिव्य सभा दिलवायी थी, मेरे ही हाथमें तेज किये हुए बाण चढ़ाया हुआ बड़ा धनुष और रोदेका चिह्न है ॥ ३२ ॥ मेरे ही चरणोंमें रथके और ध्वजाके चिह्न हैं, मुझे रणमें कोई भी नहीं जीत सकता, मैंने उत्तर, पश्चिम, पूर्व और दक्षिण दिशाके राजाओंका संहार करडाला है ॥ ३३ ॥ संशप्तकोंमेंसे कुछ थोड़ेसे ही बचे हैं, मैंने सेनाके आधे भागको मारडाला, हे राजन् ! देवसेनाकी समान तेजस्वी यह भरतवंशके राजाओंकी सेना मेरे ही हाथसे मरकर रणमें सोरही है ॥ ३४ ॥ जो अस्त्रविद्यामें कुशल होते हैं उनको मैं अस्त्रोंसे मारडालता हूँ, इसलिये ही मैं इन लोकोंको जलाकर भस्म करडालनेकी शक्ति रखता हूँ, हे कृष्ण ! चलिये अब हम विजयी रथमें बैठकर कर्णको मारनेके लिये शीघ्र ही रणभूमिमें चलें ॥ ३५ ॥ राजा युधिष्ठिर आज भले ही निश्चिन्त होकर विश्राम लें, परन्तु मैं रणमें बाण मारकर कर्णको मारडालूँगा, इसप्रकार श्रीकृष्णसे कहकर अर्जुनने फिर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ

अद्यापुत्रा सूतमाता भवित्री कुन्ती वाथो मया वा तेन वापि ॥
सत्यं वदाम्यत्र न कर्णमाजौ शरैरहत्वा कवचं विमोच्ये ॥३७॥
सञ्जय उवाच । इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् । विमुच्य शस्त्राणि धनुर्विसृज्य कोशे च खड्गं विनिधाय तूर्णम् ॥३८॥ स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच । प्रसीद राजन् क्षमयन् मयोक्तं काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते ॥ ३९ ॥ प्रसाद्य राजानममित्रसाहं स्थितोऽब्रवीच्चैव पुनः प्रवीरः । नेदं चिरात् क्षिप्रमिदं भविष्यत्यावर्त्ततेऽसावभियामि चैनम् ॥ ४० ॥ याम्येष भीमं समरात् प्रमोक्तुं सर्वात्मना सूतपुत्रञ्च हन्तुम् । तव प्रियार्थं मम जीवितं हि ब्रवीमि सत्यं तद-

---

राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि—॥ ३६ ॥ आज या तो कर्णकी माता मेरे हाथसे पुत्रहीन होगी अथवा कुन्ती ही कर्ण की मारसे पुत्रहीन होगी. हे राजन् ! मैं आपसे सत्य कहता हूँ, कि—आज युद्धमें कर्णको मारे विना अपने देहपरसे कवच नहीं उतारूगा ३७ इसप्रकार अर्जुनने फिर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरसे कहा और फिर शस्त्रोंको तथा धनुषको हाथसे पृथिवी पर धर दिया, तलवारको तुरन्त ही म्यानके भीतर करदिया, ॥ ३८ ॥ फिर पृथिवी पर लेट, दोनों हाथ जोड़कर लज्जाके साथ शिर झुकातेहुए राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगा, कि—हे राजन ! मैंने जो कुछ कहा है उसको क्षमा करिये और मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइये, समयपर जो कुछ होगा वह आपको मालूम हो जायगा, मैं आपको प्रणाम कर ता हूँ ॥ ३९ ॥ इसप्रकार शत्रुके सामने टक्कर लेनेवाले राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके वीर अर्जुनने कहा कि—अब इस कामके होने में विलम्ब नहीं लगेगा, यह अब शीघ्र ही होजायगा, कर्ण मेरे सामने चढकर आरहा है, इसलिये अब मैं उसके सामने लड़ने को जाता हूँ ॥ ४० ॥ हे राजन् !

वेहि राजन् ॥ ४१ ॥ इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी । एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य ॥४२॥ उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः । कृतं मया पार्थ यथा न साधु येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम् ॥ ४३ ॥ तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य । पापस्य पापव्यसनान्वितस्य विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ॥ ४४ ॥ वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव किन्ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम् । गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः सुखं भवान् वर्त्ततां मद्विहीनः ॥ ४५ ॥ योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा

में पूरा २ पराक्रम करके भीमसेनको युद्धमेंसे छुटानेके लिये और और कर्णका नाश करनेके लिये अब रणमें जाता हूँ, हे राजन् ! मेरा जीवन आपका प्रिय काम करनेके लिये ही है, आपको मालूम रहे, कि—यह बात मैं सत्य ही कहता हूँ ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर तमतमाते हुए तेजवाले अर्जुनने राजा युधिष्ठिरके दोनों चरणोंको छुआ और फिर पृथिवी परसे खड़ा हो रणमें जानेको तयार हुआ, उस समय राजा युधिष्ठिर अर्जुनके कठोर वचनोंको याद करके मनमें खिन्न होगये थे, वह पलँग परसे उठकर खड़े होगये और अर्जुनसे कहनेलगे कि—हे पार्थ ! मैंने अच्छे काम नहीं किये हैं, इसलिये ही तुम सबोंके ऊपर महाघोर दुःख आकर पड़ा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मैं कुलका कालरूप हूँ अधम हूँ, पापी हूँ, खोटे व्यसनोंमें फँसा रहता हूँ, मेरी बुद्धि मूढ़ होगयी है, मैं आलसी और डरपोक हूँ, वृद्धोंका अपमान करने वाला और कठोर हृदय हूँ, इसलिये तू मेरा शिर काटले, तुम्हें मेरी रूखी बातें चिरकालतक सुननेकी क्या आवश्यकता है ? मैं पापी हूँ इसलिये आज ही वनको जाता हूँ, मेरे चलेजाने पर तुम सुखसे रहना ॥४४॥ ४५॥ महात्मा भीमसेन ही राजा होनेके

क्लीवस्य वा मम किं राज्यकृत्यम्। न चास्मि शक्तः परुषाणि सोढुं
पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य ॥ ४६ ॥ भीमोऽस्तु राजा मम जीवि-
तेन न कार्यमद्यावमतस्य वीर। इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात राजा
ततस्तच्छयनं विहाय ॥ ४७ ॥ इयेष निर्गन्तुमथोवनाय तं वासु-
देवाः प्रणतोऽभ्युवाच ॥ ४८॥ राजन् विदितमेतद्वै यथा गांडीव-
धन्वनः। प्रतिज्ञा सत्यसन्धस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता। ब्रूयाद्य एनं
गाण्डीवं देह्यन्यस्मै त्वमित्युत ॥ ४९ ॥ वध्योऽस्य स पुमांल्लोके
त्वया चोक्तोऽयमीदृशम्। ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन प्रति-
रक्षता ॥ ५० ॥ मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते। गुरूणा-
मवमानो हि वध इत्यभिधीयते ॥ ५१ ॥ तस्मात्त्वं वै महाबाहो
मम पार्थस्य चोभयोः। व्यतिक्रममिमं राजन् सत्यसंरक्षणं प्रति ५२

योग्य है, मैं तो नपुंसक हूँ, इसलिये मुझे राज्यकार्य लेकर क्या करना है? तथा मुझमें फिर तेरे क्रोधभरे कठिन वचनोंको सुननेकी शक्ति भी नहीं है ॥ ४६ ॥ इसलिये हे वीर! भले ही भीमसेन राजा होजाय, मुझे अब अपमानित होकर जीवित रहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिरने एकसाथ कुलाँच मारकर पलँगको छोड़दिया ॥ ४७ ॥ और वनमें जानेको तयार होगये, तुरन्त ही श्रीकृष्णने प्रणाम करके युधिष्ठिरसे कहा, कि ॥ ४८ ॥ हे राजन्! यदि कोई अर्जुनसे कहदेय, कि–तू अपना गांडीव धनुष दूसरेको देदे, तो अर्जुनकी सत्यप्रतिज्ञा है कि–वह उस पुरुषको मारडालेगा, इस बातको जानते हुए भी तुमने उससे कहदिया, कि–अपना गांडीव धनुष दूसरेको देदे, इस पर हे राजन्! अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये अर्जुनने मेरे कहनेके अनुसार आपका अपमान किया है, बड़ेका अपमान करना ही उसका मारडालना मानाजाता है ४९–५१ इसलिये हे महाबाहु राजेन्द्र! प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये मैंने और

शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि । क्षन्तुमर्हसि मे राजन् प्रणतस्याभियाचतः ॥ ५३ ॥ राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितम् । सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्धचद्य सूतजम् ५४ यस्येच्छसि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम् । इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ५५ ॥ ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा । कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः ॥ ५६ ॥ एवमेव यथात्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम । अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव ॥ ५७ ॥ मोक्षिता व्यसनाद्व घोराद्वयमद्य त्वयाच्युत । भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात् ॥ ५८ ॥ घोरादद्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ । त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य

अर्जुनने दोनोंने ही आपका अपमान किया है, उसको आप क्षमा करिये ॥५२॥ हम दोनों आपके शरणागत हैं, हे राजन्! मैं प्रणाम करके आपसे प्रार्थना करता हूँ. कि-आप मुझे क्षमा करिये ॥ ५३ ॥ आज रणभूमि पापी कर्णके रुधिरको पियेगी और आज सूतपुत्रको मारा गया समझिये, यह मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ ॥५४॥ आप जिसका माराजाना चाहते हैं, उस का जीवन तो अब समाप्त होचुका, श्रीकृष्णकी इस बातको सुन कर राजा युधिष्ठिरने ॥ ५५ ॥ संभ्रमके साथ उसी समय पृथिवी पर लेटकर प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णको हाथ पकड़कर उठा खड़ा करदिया और शीघ्रतासे दोनों हाथ जोड़कर कहनेलगे, कि-॥५६॥ हे गोविन्द! हाँ! हाँ!! आप जैसा कहते हैं ऐसा ही है यह मेरी भूल थी हे माधव! आपने मुझे समझाकर बड़ी कृपाकी और मुझे तारदिया है॥ ५७ ॥ हे अच्युत ! आज आपने केवल हमारी इस घोर सङ्कटमेंसे मुक्ति ही नहीं की है, किन्तु अज्ञानसे मोहमें पड़े हुए हम, अपने नाथरूप आपकी बुद्धि नौकाका आश्रय लेकर मंत्रियों सहित घोर दुःखसागरके पार

दुःखशोकार्णवाद्वयम् ॥ ५९ ॥ समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स्म त्वयाच्युत ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरसमाश्वासने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

सञ्जय उवाच । धर्मराजस्य तच्छ्रुत्वा प्रीतियुक्तं वचस्ततः । पार्थं प्रोवाच धर्मात्मा गोविन्दो यदुनन्दनः ॥ १ ॥ इति स्म कृष्णवचनात् प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम् । बभूव विमनाः पार्थः किञ्चित्कृत्वेव पातकम् ॥ २ ॥ ततोऽब्रवीद्वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम् । कथं नाम भवेदेतद्यदि त्वं पार्थ धर्मजम् ॥३॥ असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम् । तमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः ॥ ४ ॥ हत्वा तु नृपतिं पार्थ अकार्ष्यः किमुत्तरम् । एवं हि दुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ५ ॥ स भवान् धर्मभीरुत्वात् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः । नरकं घोररूपञ्च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य

होगये हैं हे अच्युत ! हम आपसे ही सनाथ हैं ॥ ५८–६० ॥ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! कुन्तीके पुत्र धनञ्जयने कृष्णके कथनानुसार युधिष्ठिरसे अपमानके वचन कहे, परन्तु ऐसा करनेमें अपनेसे कोई पापकर्म बनगया हो ऐसा मानकर वह मनमें उदास होगया, यह देख श्रीकृष्ण उसका उपहास करते हुएसे उससे कहने लगे कि–हे पार्थ ! यदि तू धर्मकी दुहाई देकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको तेज धारवाली तलवारसे मारडालता तो तेरा यह काम कैसा समझा जाता ? धर्मराजको तू कहकर जब तू ऐसे शोकमें पड़गया तो उनको मारडालने पर आगेको तू क्या करता है हे अर्जुन! धर्मको जानना बड़ा कठिन काम है उसमें भी मन्द बुद्धि वाले पुरुष तो धर्मको बिलकुल जान ही नहीं सकते५ विचार करके देख; तू जो धर्म भीरुपनेके कारण सगे बड़े भाईको

वै वधात् ॥ ६ ॥ स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम् । प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥ ७ ॥ प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे । प्रयांवस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥८॥ हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः । विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥ ९ ॥ एतदत्र महाबाहो प्राप्तकालं मतं मम । एवं कृते कृतञ्चैव तव कार्यं भविष्यति ॥ १० ॥ ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः । धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः ॥ ११ ॥ उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः । क्षमस्व राजन् यत् प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा ॥ १२ ॥ सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिरः । धनञ्जय-

---

मारडालता तो इससे तुझे महापातक लगता और भयानक नरक मिलता, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ इस विषयमें मेरा यह विचार है कि–तू धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ और धर्मात्मा, कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न कर, राजा युधिष्ठिरको भक्ति के साथ प्रसन्न करके हम तुरन्त ही युद्ध करनेके लिये सूतपुत्र कर्णके रथकी ओरको चढायी करेंगे ॥ ७-८ ॥ और हे मान देनेवाले अर्जुन ! आज तू तेज किये हुए बाणोंसे कर्णका वध करके धर्मराजकी बड़ीभारी प्रीतिको प्राप्त करना ॥ ९ ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! इस समय ऐसा ही करनेका मेरा विचार है और ऐसा करनेमें तेरा काम भी सफल होजायगा ॥ १० ॥ हे महाराज श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर अर्जुन लज्जित होता हुआ धर्मराजके दोनों चरणोंमें शिर रखकर गिरपडा और भरतवंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे बारम्बार कहने लगा, कि–प्रतिज्ञाके भङ्गसे डर कर मैंने आपको जो अपमानके वचन कहे हैं, उनके लिये आप मुझे क्षमा करिये और मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इस समय धर्मराज

ममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ ॥ १३ ॥ उत्थाप्य भ्रातरं राजा धर्मराजो धनञ्जयम् । समाश्लिष्य च सस्नेहं मरुरोद महीपतिः ॥ १४ ॥ रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती । कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः ॥ १५ ॥ तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः । प्रीत्या परमया युक्तः विस्मयंश्च पुनः पुनः ॥ अब्रवीत्तं महेष्वासं धर्मराजो धनञ्जयम् ॥ १६ ॥ कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः । कवचञ्च ध्वजञ्चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः ॥ १७ ॥ शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे । सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन ॥ १८ ॥ व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं

युधिष्ठिरने अपने चरणोंमें गिरकर रोतेहुए शत्रुओंका नाश करनेवाले अर्जुनको उठाकर खड़ा किया और स्नेहके साथ अपनी छातीसे लिपटाकर रोनेलगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ महाकान्ति और और परस्पर प्रीतिवाले दोनों भाई बहुत देरतक आमने सामने रोकर शोकरहित हुए और फिर एक दूसरेके ऊपर प्रसन्न होगये ॥ १५ ॥ धर्मराजने फिर प्रेमके साथ आलिङ्गन करके अर्जुनके मस्तक को सूँघा और उसके ऊपर अत्यन्त प्रीति दिखातेहुए आश्चर्यके साथ कहनेलगे, कि-हे महाधनुषधारी हे महाबाहु अर्जुन! मैं युद्धमें बड़ी सावधानीसे लड़रहा था, परन्तु कर्णने बाणोंसे मेरे कवच, ध्वजा, शक्ति, बाण, धनुष और घोड़ोंको सब सेनाके सामने छिन्न भिन्न करडाला था, हे अर्जुन! मैं उसके इस दारुण कर्मका विचार करके तथा मैंने जो रणमें उसका अत्यन्त पराक्रम देखा था उस दुःखसे मैं पीडित होरहा हूँ, मुझे अब जीवन अच्छा नहीं लगता, यदि आज तू रणमें उस वीरको नहीं मारडालेगा तो मैं अवश्य ही अपने प्राणोंको त्यागदूँगा, उससे अपमानित होजाने पर मेरा जीवन किस कामका है? हे भरतसत्तम! इसप्रकार

प्रियम् । न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे ॥ १९ ॥ प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम । एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ ॥ २० ॥ सत्येन ते शपे राजन् प्रसादेन तथैव च । भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते २१ यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा । महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे २२ एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः । अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः ॥ २३ ॥ तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः । एवमुक्तोऽब्रवीत् पार्थं केशवो राजसत्तम ॥ २४ ॥ शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम् । एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ॥ २५ ॥ कथं भवान्रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम । भूयश्चोवाच मतिमान् माधवो धर्मनन्दनम् ॥२६॥ युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि । अनु-

---

युधिष्ठिरके कहने पर अर्जुनने उत्तर दिया, कि-हे महीपते ! मैं सत्यकी, आपकी प्रसन्नताकी, भीमकी और हे नरश्रेष्ठ ! नकुल और सहदेवकी तथा आपकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि-या तो आज मैं युद्धमें कर्णको मारडालूँगा नहीं तो उसके हाथसे मरकर भूमिपर पड़ूँगा, मैं यह बात आपसे सत्यकी शपथ खाकर और अपने शस्त्रको छूकर कहता हूँ ॥ १९-२२ ॥ इस प्रकार राजा युधिष्ठिरसे कहकर उसने माधवसे कहा, कि-हे कृष्ण ! आज मैं संग्राममें कर्णको अवश्य ही मारूँगा, इसमें सन्देह नहीं है, आपकी बुद्धिकी चातुरीसे तथा आपके आशीर्वादसे वह दुष्टात्मा निःसन्देह माराजायगा, अर्जुनके ऐसा कहने पर हे राजसत्तम ! केशवने पार्थसे कहा, कि-हे भरतसत्तम ! तू ही महाबली कर्णको मारसकता है, हे महारथी ! मेरे चित्तमें नित्य यह चाहना जागती रहती है, कि—तू कर्णको किसप्रकार मारसकेगा ? ऐसा कहकर बुद्धिमान् कृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरसे

ज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः ॥ २७ ॥ श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम् । प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन ॥२८॥ दिष्ट्यासि राजन्न हतो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः । परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ ॥ २९ ॥ युधिष्ठिर उवाच । एह्येहि पार्थ बीभत्सो मां परिष्वज पाण्डव । वक्तव्यमुक्तोऽस्मि हितं त्वया क्षान्तश्च तन्मया ॥ ३० ॥ अहं त्वामनुजानामि जहि कर्णं धनञ्जय । मन्युञ्च मां कृथाः पार्थ यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥ ३१ ॥ सञ्जय उवाच । ततो धनञ्जयो राजन् शिरसा प्रणतस्तदा । पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष ॥ ३२ ॥ तमुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम् ।

फिर कहा कि-२३-२६हे युधिष्ठिर! अब आप इस अर्जुनको शांत करके दुष्टात्मा कर्णको मारनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २७ ॥ हे युधिष्ठिर! तुम कर्णके बाण लगनेसे पीड़ा पारहे हो,यह सुनकर मैं और अर्जुन तुम्हारी खबर लेनेको यहाँ आये थे ॥ २८ ॥ हे निर्दोष राजन्! तुम युद्धमें मारे नहीं गये तथा उसके हाथमें पड़कर कैद नहीं हुए यही बड़े भाग्यकी बात है। अब आप धनञ्जयको धीरज दीजिये और ऐसा आशीर्वाद दीजिये, कि-जिसमें विजय हो ॥ २९ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-अरे अर्जुन! आ, आ, अरे पार्थ! यहाँ आ, हे पाण्डुनन्दन! तू फिर मेरी छातीसे लग, तूने मुझसे हितकी बात कही थी और उसके लिये मैं तुझे क्षमा करता हूँ, हे कुन्तीके पुत्र धनञ्जय! मैं तुझे आज्ञा देता हूँ, कि-जा और कर्णका नाश कर, मैंने तुझसे जो कठोर वचन कहे हैं, उनके लिये तू क्रोध न कर ३०-३१ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन्! अर्जुनने उसी समय बड़े भाई युधिष्ठिरके चरणोंमें शिर नवाया और उनके दोनों चरणोंको हाथसे छुआ ॥३२॥ राजा युधिष्ठिरने खिन्न हुए अर्जुनको

मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥ ३३ ॥ धनञ्जय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया । माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम् ॥ ३४ ॥ अर्जुन उवाच । अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः । नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥ ३५ ॥ येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम् । तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलं प्राप्स्यति दारुणम् ॥ ३६ ॥ अद्य त्वामनु पश्यामि कर्णं हत्वा महीपते । सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥ नाहत्वा विनिवर्त्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात् । इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ॥ ३८ ॥ सञ्जय उवाच । इति ब्रुवाणं सुमनाः किरीटिनं युधिष्ठिरः प्राह वचो बृहत्तरम् । यशोऽक्षयं

पृथिवी परसे उठाकर खडा किया और हृदयसे लगा उसके मस्तकको सूँघकर कहा, कि—॥ ३३ ॥ हे महाबाहु धनञ्जय ! तूने मेरा बडा मान रक्खा है, इसलिये तेरी महाकीर्त्ति बढे और तुझे अविचल विजय मिले ॥ ३४ ॥ अर्जुनने कहा, कि—आज मैं रणमें बलके घमण्डी पापी कर्णको बाण मारकर परिवार-सहित मारडालूँगा ॥ ३५ ॥ मैं कहता हूँ, कि—जिस कर्णने धनुषको खूब खेंचकर बाणोंके प्रहारसे आपको दुःखी किया है वह कर्ण आज उस कर्मका दारुण फल पावेगा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! आपको दुःखमेंसे शान्त करनेके लिये कर्णको मारनेके बाद ही मैं आपके चरण छूने आऊँगा, यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ३७ ॥ हे पृथिवीपते ! मैं आज कर्णको मारे विना रणमेंसे लौटकर नहीं आऊँगा, यह बात मैं आपके दोनों चरणोंको छूकर सत्य कहता हूँ ॥ ३८ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! अर्जुनके ऐसा कहने पर राजा युधिष्ठिरने प्रसन्नमनसे अर्जुनसे बडा उत्तम वचन कहा, कि—तू सदा अक्षय यश, पूरी आयु, इच्छित कामनायें, जय तथा वीरताको

जीवितमीप्सतं ते जयं सदा वीर्य्यमरिक्षयं तथा ॥ ३९ ॥ प्रयाहि वृद्धिञ्च दिशन्तु देवता यथाहमिच्छामि तवास्तु तत्तथा। प्रयाहि तूर्णं जहि कर्णमाहवे पुरन्दरो वृत्रमिवात्मवृद्धये ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

संजय उवाच। प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना। पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥ १ ॥ कल्प्यतां मे रथो भूयो युज्यन्तां च हयोत्तमाः। आयुधानि च सर्वाणि सज्यन्तां वै महारथे ॥ २ ॥ उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्वाश्वसादिभिः। रथोपकरणैः सज्जा उपायान्तु त्वरान्विताः ॥ ३ ॥ प्रयाहि शीघ्रं गोविन्द सूतपुत्रजिघांसया। एवमुक्तो महाराज फाल्गुनेन महात्मना ४

पावेगा, तू वृद्धि पावेगा और देवता तुझे समृद्धि देंगे, मैं तेरेलिये जो कुछ चाहता हूँ, तुझे वह सब प्राप्त होगा, अब तू शीघ्र ही रणभूमिमें जा और इन्द्रने जैसे अपनी उन्नतिके लिये वृत्रासुरको मारा था तैसे ही तू भी अपने अभ्युदयके लिये शीघ्र ही कर्ण का नाश कर ॥३९-४०॥ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! प्रसन्नचित्तसे धर्मराजको प्रसन्न करनेके अनन्तर कर्णको मारनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनने गोविन्दसे कहा, कि-हे कृष्ण ! मेरे बड़े भारी रथको फिर तयार करिये, उसमें उत्तम घोड़ोंको जोडिये और सब शस्त्रोंको उसमें रखिये ॥ २ ॥ जिन्होंने भूमिमें लोटकर थकावट दूर कर ली है ऐसे घुड़सवारोंके शिक्षा दिये हुए घोड़ोंको रथके सरञ्जामके साथ तयार करके शीघ्रताके साथ रथके पास लाइये ॥ ३ ॥ और हे गोविन्द ! कर्णको मारनेके लिये आप शीघ्र ही चलदीजिये, हे महाराज धृतराष्ट्र ! इस प्रकार महात्मा अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा तब उन्होंने दारुकको आज्ञा दी, कि-

उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाब्रवीत् । अर्जुनो भरतश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ५ ॥ आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम । योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम् ॥ ६ ॥ सज्जं निवेदयामास पाण्डवस्य महात्मनः । युक्तन्तु तं रथं दृष्ट्वा दारुकेण महात्मना ॥ ७ ॥ आपृच्छ्य धर्मराजानं ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च । सुमङ्गलं स्वस्त्ययनमारुरोह रथोत्तमम् ॥ ८ ॥ तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः । आशिषोऽयुङ्क्त स ततः प्रायात् कर्णरथं प्रति ॥ ९ ॥ तमायान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत । निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना ॥ १० ॥ बभूवुर्विमनः सर्वा दिशो राजन् समन्ततः । चाषाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव

सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन जैसा कहरहा है, उसके अनुसार तू युद्धकी सब सामग्री तयार करदे४-५श्रीकृष्णने दारुकको यह आज्ञा दी, कि-उसी समय हे महाराज! महात्मा दारुकने शत्रुको सन्ताप देनेवाले तथा व्याघ्रके चमडेसे मढे रथमें घोडे जोड़कर रथको तयार किया और महात्मा अर्जुनके पास लाकर खडा करदिया तथा पांडुके प्रतापी पुत्रसे कहा, कि-आपका रथ सब सामग्रीसे सजा तयार है, अर्जुनने देखा, कि-दारुक रथको सब प्रकारसे ठीक करके लेआया, बस तुरन्त उसने धर्मराजसे आज्ञा माँगी और ब्राह्मणोंसे माङ्गलिक स्वस्तिवाचन कराकर रथमें बैठगया६-८उस समय महाबुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनको आशीर्वाद दिया और अर्जुन वेगके साथ कर्णके रथकी ओरको चलदिया९हे भरतवंशी राजन्! लोग महाधनुषधारी अर्जुनको कर्णकी ओरको चढ़कर आताहुआ देख यह समझने लगे, कि-अब महात्मा अर्जुनके हाथसे कर्ण अवश्य ही माराजायगा ॥ १० ॥ हे राजन् ! उस समय सब दिशायें चारों ओरसे निर्मल होगयी थीं, चाष, सारस, क्रौंच आदि

जनेश्वर ॥ ११ ॥ प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम् ।
बहवः पक्षिणो राजन् पुन्नामानः शुभाः शिवाः ॥ १२ ॥ त्वर-
यन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे । कङ्का गृध्रा बकाः श्येनाः वाय-
साश्च विशाम्पते ॥ १३ ॥ अग्रतस्तस्य गच्छन्ति मांसहेतोर्भया-
नकाः । निमित्तानि च धन्यानि पाण्डवस्य शशंसिरे ॥ १४ ॥
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं प्रति । प्रयातस्याथ पार्थस्य
महान् स्वेदो व्यजायत ॥ १५ ॥ चिन्ता च विपुला जज्ञे कथ-
न्वेदं भविष्यति । ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः । १६ ।
दृष्ट्वा पार्थं तथा यान्तं चिन्तापरिगतं तदा । वासुदेव उवाच ।
गाण्डीवधन्वन् संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः । न तेषां मानुषो
जेता त्वदन्य इह विद्यते ॥ १७ ॥ दृष्टा हि बहवः शूराः शक्र-
तुल्यपराक्रमाः । त्वां प्राप्य समरे शूरं ये गताः परमां गतिम् १८

अर्जुनकी दाहिनी ओर उडरहे थे, सुन्दर माङ्गलिक नरपक्षी मानो संग्रामके लिये शीघ्रता कररहे हों इसप्रकार प्रसन्न होकर बोल रहे थे, भयानक कङ्क, गीध, बगले, शिकरे और कौए मांस खाने के लिये अर्जुनके आगे २ उडकर अर्जुनको लाभदायक शकुन बतला रहे थे और शत्रुसेनाके तथा कर्णके नाशकी सूचना देरहे थे, यात्राके समय अर्जुनके शरीरमेंसे बहुत ही पसीना बहने लगा ॥ ११–१५ ॥ और उसके मनमें बडी चिन्ता होनेलगी, कि–मेरी प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी ? गांडीवधनुषधारी अर्जुनको चिन्तामें पडा हुआ देखकर मधुसूदन कहनेलगे ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण बोले, कि–हे गांडीवधनुषधारी अर्जुन ! तूने संग्राममें धनुषसे जिनको जीता है, उनको जीतनेवाला संसारमें तेरे सिवाय दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं है ॥१७॥ इन्द्रकी समान पराक्रमी बहुतसे वीर पुरुष इस रणभूमिमें तुझसरीखे शूरके सामने आकर परमगतिको प्राप्त होगये हैं ॥१८॥ हे समर्थ अर्जुन !

को हि द्रोणञ्च भीष्मञ्च भगदत्तञ्च मारिष । विन्दानुविन्दावावन्तयौ काम्बोजञ्च सुदक्षिणम् ॥ १६ ॥ श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुपमेव च । मत्युद्गम्य भवेत् क्षेमी यो न स्यात् त्वमिव प्रभो ॥ २० ॥ तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च । असम्मोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संनतिः ॥ २१ ॥ वेधः पातश्च लक्ष्येषु योगश्चैव तथार्जुन । भवान् देवान् सगन्धर्वान् निहन्यात् सचराचरान् ॥ २२ ॥ पृथिव्यां हि रणे पार्थ न योद्धा त्वत्समः पुमान् । धनुर्ग्राहा हि ये केचित् क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥२३॥ आदेवात्त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि वा । ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्ट्वा गाण्डीवञ्चं महद्धनुः ॥ २४ ॥ येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मा-

---

रणभूमिमें द्रोणाचार्य, भीष्म, भगदत्त, अवन्ती नगरीके विन्द और अनुविन्द, कांबोज, सुदक्षिण, महापराक्रमी श्रुतायु तथा अच्युतायुष आदि महापराक्रमी पुरुषोंके साथ युद्ध करतेमें, जो तेरी समान न हो ऐसा कौनसा पुरुष कुशलक्षेमसे रहसकता है? १६-२० हे अर्जुन! तेरे सव अस्त्र दिव्य हैं, तुझमें शस्त्रोंको छोडनेकी फुरती है, बल है और तू युद्ध करते समय जरा भी नहीं घबडाता है, तुझमें अविच्छिन्न ज्ञान है ॥ २१ ॥ तुझमें सब लक्ष्यों (निशानों) पर अस्त्र चलानेकी चतुरता, लक्ष्य पर अस्त्र गिरानेकी कुशलता और बींधनेकी प्रवीणता भी है, तू गन्धर्वों सहित देवताओंका और स्थावर जङ्गमरूप सकल जगत्का नाश करसकता है ॥ २२ ॥ हे अर्जुन! इस पृथिवी पर संग्राम करनेमें तेरी समान कोई भी योधा नहीं है, युद्धदुर्मद क्षत्रियोंसे लेकर देवताओं पर्यन्त जो कोई भी धनुपधारी हैं, उनमें तुझसा कोई और पुरुष तो मैंने देखा ही नहीं तथा सुना भी नहीं है, हे अर्जुन! ब्रह्माने जब प्रजाको रचा, उसके साथ ही गांडीव नामके धनुष को भी रचदिया था ॥ २३ ॥ २४ ॥ और उस धनुषसे तू युद्ध

न्नास्ति त्वया समः । अवश्यन्तु मया वाच्यं यत् पथ्यं तव पांडव २५
मावमंस्था महावाहो कर्णमाहवशोभिनम् । कर्णो हि बलवान् दृप्तः
कृतास्त्रश्च महारथः ॥ २६ ॥ कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य
कोविदः । बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव ॥ २७ ॥
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा मन्ये कर्णं महारथम् । परमं यत्नमास्थाय
त्वया वध्यो महाहवे २८ तेजसा वह्निसदृशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः कोपे सिंहसंहननो बली ॥ २९ ॥ अष्टरत्निर्महाबा-
हुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः । अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रिय-
दर्शनः ॥ ३० ॥ सर्वैर्योधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयङ्करः । सततं

करहा है, इसलिये हे पार्थ ! तेरी समान कोई भी वीर पुरुष नहीं है, तो भी हे अर्जुन ! मुझे तुझसे तेरे हितकी बात अवश्य कहनी चाहिये ॥ २५ ॥ हे महावाहु अर्जुन ! तू युद्धमें दिपते हुए कर्णको अपमान न करना, क्योंकि–कर्ण बलवान् अभिमानी, अस्त्रविद्यामें चतुर और महारथी है ॥ २६ ॥ यह कार्यकुशल, अनेकों प्रकारके युद्ध करना जाननेवाला, और देश तथा कालका ज्ञान रखनेवाला है, हे अर्जुन! इस विषयमें तुझसे अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है? तो भी मैं तुझसे संक्षेपमें जो कुछ कहता हूँ उस को सुन ॥ २७ ॥ मैं महारथी कर्णको तेरी समान अथवा तुझसे भी अधिक बलवान् मानता हूँ, इसलिये तू महायुद्धमें खूब साव-धान तथा दृढ़ रहकर कर्णको मारना ॥२८॥ यह तेजमें अग्निकी समान, वेगमें वायुकी समान, क्रोधमें कालकी समान, शरीरकी दृढतामें सिंहकी समान और बलवान् है ॥ २९ ॥ इसका शरीर आठ रत्नि (एक सौ अडसठ अंगुल)का है, इसके दोनों भुज-दण्ड घुटनों तक लंबे हैं, इसका वक्षःस्थल दृढ और विशाल है, इसको जीतना बड़ा कठिन काम है तथा यह अभिमानी, महाशूर और दर्शनीय है ॥ ३० ॥ इसमें योधाओंके सब गुण हैं, यह

पाण्डवद्वेषी धार्त्तराष्ट्रहिते रतः ॥ ३१ ॥ सर्वैरवध्यो राधेयो देवै-रपि सवासवैः । ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्तदद्य जहि सूतजम् ।३२। देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम् । अशक्यस्सरथो जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥ ३३ ॥ दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् । हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य ॥ ३४ ॥ तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं निष्कालिकं कालवशं नयाद्य । तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं हत्वा प्रीतिं धर्मराजे कुरुष्व ॥ ३५ ॥ जानामि ते पार्थ वीर्यं यथावद् दुर्वारणीयं च सुरासुरैश्च । सदावजानाति हि पाण्डुपुत्रानसौ दर्पात् सूतपुत्रो दुरात्मा ॥ ३६ ॥ आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः ।

मित्रोंको अभय देनेवाला, कौरवोंके हितमें तत्पर और पांडवोंका सदा द्वेषी है॥३१॥इसलिये यदि देवता इन्द्रको साथ लेकर इसके सामने लड़नेको आवें तो वे भी इसको नहीं मारसकते, परन्तु मेरी समझमें तू इसको मारसकता है, इसलिये तू आज ही सूत-पुत्रको मारडाल ॥ ३२ ॥ मनुष्योंकी बात तो दूर रही, किन्तु मांस और रुधिरको धारण करनेवाले सब देवता भी यदि इस महारथीसे युद्ध करना चाहें तो वे भी इसको नहीं जीत सकते ॥ ३३ ॥ जो पांडवोंके साथ सदा दुष्टबुद्धिसे वर्त्ताव किया करता है और पांडवोंके साथ विरोध करनेमें जिसका कोई स्वार्थ नहीं है ऐसे दुष्टात्मा पापी और क्रूर कर्णको आज ही मारकर तू अपने कामको सर्वथा सिद्ध कर ॥३४॥ दुष्टात्मा सूतपुत्र कर्ण अभिमानके साथ सदा पांडवोंका अपमान किया करता है,इसलिये तू रथियोंमें श्रेष्ठ और अजित सूतपुत्र कर्णको आज ही कालके हाथमें देदे और धर्मराजकी प्रसन्नताको प्राप्त कर ॥३५॥ हे अर्जुन! देवता और दैत्य भी जिसको नहीं रोकसकते ऐसे तेरे पराक्रमको मैं जानताहूँ दुष्टात्मा सूतपुत्र बड़ेभारी घमंडके साथ पांडवोंका अपमान किया

तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनञ्जय ॥ ३७ ॥ खड्गजिह्वं धनुरास्यं शरदंष्ट्रं तरस्विनम् । दृप्तं पुरुषशार्दूलं जहि कर्णं धनञ्जय ॥ ३८ ॥ अहन्त्वामनुजानामि वीर्य्येण च बलेन च । जहि कर्णं रणे शूरं मातङ्गमिव केसरी॥३९॥यस्य वीर्य्येण वीर्य्यं ते धार्त्तराष्ट्रोऽवमन्यते । तमद्य पार्थ संग्रामे कर्णं वैकर्त्तनं जहि ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

सञ्जय उवाच । ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत् । कृतसङ्कल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत ॥ १ ॥ अद्य सप्तदशाहानि वर्त्तमानस्य भारत । विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् २

करता है ॥३६॥ और हे धनञ्जय! पापी दुर्योधन जिसके कारणसे अपनेको वीर मानता है उस पापोंके मूलरूप सूतपुत्र कर्णका तू आज नाश कर ॥३७॥ हे अर्जुन ! तलवार जिसकी जिह्वा है धनुष जिसका मुख है और बाण जिसकी डाढ़ें हैं ऐसे, पुरुषोंमें सिंहसमान और वेगसे लड़नेवाले घमण्डी कर्णको तू झटमारदे ३८ हे अर्जुन ! मैं तुझे आज्ञा देता हूँ, कि-जैसे सिंह बल वीरतासे हाथीको मार डालता है तैसे ही तू भी बल और वीरतासे रणमें वीर कर्णका नाशकर ॥३९॥ हे अर्जुन जिसके पराक्रमसे दुर्योधन पराक्रमी बनकर तेरे पराक्रमका अपमान करता है उस वैकर्त्तन नामसे प्रसिद्ध कर्णको तू आज ही रणमें मारडाल ॥ ४० ॥ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन्! अर्जुन कर्णको मारनेका विचार करके आगेको बढ़नेलगा, उसकी ओरको देखकर अमेयात्मा कृष्णने कर्णको मारनेका आवेश चढानेके लिये उससे फिर कहा, कि- ॥१॥ हे भरतकुलतिलक अर्जुन ! मनुष्य हाथी और घोड़ोंका भयानक संहार करते २ आज सत्रह दिन

युध्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह। अन्योऽन्यं समरं प्राप्य किञ्चिच्छेषा विशाम्पते ॥ ३ ॥ भूत्वा हि कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः। त्वां वै शत्रु समासाद्य विनष्टा रणमूर्द्धनि ४ एते ते पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः। त्वां समासाद्य दुर्द्धर्ष पांडवाश्च व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥ पञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूपैश्चेदिभिः सह। त्वया गुप्तैरमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः ॥ ६ ॥ को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे। अन्यत्र पांडवान् युद्धे त्वया गुप्तान् महारथान् ॥ ७ ॥ शक्तस्त्वं हि रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान्। त्रींल्लोकान् समरे युक्तान् किं पुनः कौरवं बलम् ॥ ८ ॥ भगदत्तञ्च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना। जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद्वासवोपमः ॥ ९ ॥ तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयाऽनघ। न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि

बीतगये हैं ॥ २ ॥ और हे राजन्! तेरी बड़ीभारी सेना भी शत्रुओंके सामने युद्ध करते २ मरगयी है और अब वह थोडी ही बाकी रहगयी है ॥ ३ ॥ तथा हे पार्थ! कौरवोंकी सेनामें भी बहुतसे हाथी और घोड़े थे, परन्तु रणके मुहाने पर तेरे सामने युद्ध करतेमें वे भी सब मारे गये ॥ ४ ॥ यहाँ आयेहुए ये राजे, सृञ्जय और पांडवोंके योधा तुझ दुराधर्पके सहारेसे रणमें जूझ रहे हैं ५ तेरी रक्षामें रहकर ही शत्रुओंको मारनेवाले पंचालराजे, पांडव,मत्स्य,कारूष और चेदी देशके राजोंने शत्रुपक्षका संहार करडाला है६ हे तात! तेरी रक्षामें रहनेवाले महारथी पाण्डवोंके सिवाय रणमें कौरवोंको दूसरा कौन जीत सकता है?७तू तो रणमें सुर, असुर और मनुष्यों सहित तीनों लोकोंको जीत सकता है, फिर कौरवोंकी सेना तो बात ही क्या? ॥८॥ हे पुरुषसिंह! जो इन्द्रकी समान बलवान् था उस राजा भगदत्तको तेरे सिवाय और कौन जीत सकता था? ॥ ९ ॥ तथा हे निर्दोष अर्जुन !

वीक्षितुम् ॥ १० ॥ तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे ।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥११॥ को हि शक्तो
रणे पार्थ भारतानां महारथौ । भीष्मद्रोणौ युधा जेतुं शक्रतुल्यपरा-
क्रमौ ॥ १२ ॥ को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्त्तनं कृपम् ।
द्रौणिञ्च सौमदत्तिञ्च कृतवर्माणमेव च ॥ १३ ॥ सैन्धवं मद्रा-
जानं राजानञ्च सुयोधनम् । वीरान् कृतास्त्रान् समरे सर्वानेवा-
निवर्त्तिनः ॥ १४ ॥ अक्षौहिणीपतीनुग्रान् संहतान् युद्धदुर्मदान् ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह ॥ १५ ॥ श्रेण्यश्च
बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः । नानाजनपदाश्चोग्राः
क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥ १६ ॥ गोवासदासमीयानां वसा-
तीनाञ्च भारत । प्राच्यानां वाटधानानां भोजानाञ्चाभिमानि-
नाम् ॥ १७ ॥ उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत । त्वां

तू इस बड़ीभारी सेनाकी रक्षा कररहा है, इसलिये ये सब राजे तेरी सेनाकी ओरको दृष्टि उठाकर देख भी नहीं सकते ॥१०॥ तथा हे पार्थ ! तू बराबर रक्षा करता रहा, इसलिये ही धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने रणमें द्रोणाचार्य और भीष्मपितामहको मार डाला ॥ ११ ॥ नहीं तो इन्द्रकी समान पराक्रमी भरतवंशियोंके महारथी भीष्म और द्रोणाचार्यको रणभूमिमें युद्ध करके कौन जीतसकता था ? ॥ १२ ॥ हे पार्थ ! युद्धमें पीछेको पैर न रखने वाले, अक्षौहिणी सेनाके स्वामी, प्रचण्ड स्वभाव वाले तथा आपसमें एक संमति रखनेवाले शन्तनुके पुत्र भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सौमदत्ति, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य और राजा दुर्योधन इन अस्त्रविद्यामें प्रवीण सब युद्धदुर्मद वीरोंको लड़ाईके मैदान में तेरे सिवाय दूसरा कौनसा पुरुष जीतसकता है ? ॥ १३-१५ ॥ हे भारत ! क्रोधमें भरेहुए गोवास, दासमीय और वसाती नामके राजाओंकी, पूर्वदिशाके राजाओंकी, वाटधान राजाओंकी, और

समासाद्य निधनं गता भीमञ्च भारत ॥ १८ ॥ उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः । दार्वाभिसारा दरदाः शकाः माठरतङ्गणाः ॥ १६ ॥ अन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः । म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः ॥ २० ॥ संरम्भिणो युद्धशौण्डा वलिनो दण्डपाणयः । एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह । न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परन्तप २१ धार्त्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद्बलम् । यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात् को नु मानवः ॥ २२ ॥ तत् सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं वलम् । विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो ॥ २३ ॥ मागधानामधिपतिर्जयत्सेनो महावलः । अद्य पञ्चैव चाहानि हतः

अभिमानी भोजराजाओंकी वहुतसी कम्पनियोंके घुड़सवार, हाथीसवार रथी और पैदल तेरे और भीमके सामने युद्ध करतेहुए यमलोकको पधारगये ॥ १६-१८ ॥ महाभयानक युद्ध करने वाले और उग्र स्वभावके तुषार, यवन, खस, दार्वाभिसार, दरद शक, माठर, तङ्गण, आन्ध्र पुलिन्द उग्रपराक्रमी किरात, म्लेच्छ पहाड़ी लोग, समुद्रके तटपर रहनेवाले और जलवाले देशमें रहने वाले योधा, ये सव युद्धमें आनन्द माननेवाले, महावली और क्रोधमें भरे वड़ी२ गदायें लेकर इकट्ठे हो दुर्योधनकी सहायता करने के लिये कौरवोंके साथ वड़े आवेशमें भरेहुए आये थे, हे परन्तप ! ऐसे योधाओंको तेरे सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष युद्धमें नहीं जीतसकताथा॥१६-२१॥ यदि तू पाण्डवोंकी सेनाका रक्षक न होता तो कौरवोंकी व्यूहरचनामें खड़ीहुई वड़ीभारी सेनाके सामने कौन चढ़ायी करसकता ? ॥ २२॥ धूलिके ढेरसे ढकाहुआ कौरवोंका सेनादल समुद्रकी समान उछल रहा था उसका क्रोधमें भरेहुए पाण्डवोंने तेरी रक्षामें रहकर ही संहार किया था ॥२३॥ आज पाँच ही दिन हुए, कि-अभिमन्युने मागधोंके महावली राजा

संख्येऽभिमन्युना ॥ २४ ॥ ततो दशसहस्राणि गजानां भीमकर्म-
णाम् । जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम् ॥ २५ ॥
ततोऽन्येऽभिहता नागा रथाश्च शतशो बलात् ॥ २६॥ तदेवं समरे
पार्थ वर्त्तमाने महाभये । भीमसेनं समासाद्य त्वाञ्च पाण्डव कौरवाः॥
सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः ॥२७॥ तथा सेनामुखे तत्र
निहते पार्थ पाण्डवैः। भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरजालानि मारिष२८
स चेदिकाशिपञ्चालान् करूषान्मत्स्यकेकयान् । शरैः प्रच्छाद्य
निधनमनयत् परमास्त्रवित् ॥ २९ ॥ तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेह-
विदारणैः । पूर्णमाकाशमभवत् रुक्मपुंखैरजिह्मगैः ॥ ३० ॥
हन्याद्रथसहस्राणि एकैकेन तु मुष्टिना । लक्षं नरद्विपान् हत्वा

जयत्सेनको मारडाला था ॥२४ ॥ तदनन्तर भीमसेनने उस राजाके
भयानक कर्म करनेवाले वाहनरूप दशहजार हाथियोंको गदाकी
मारसे मारडाला तथा सेनाके सैंकड़ों रथोंको और हाथियोंको भी
अपने बलसे मारडाला ॥ २५ ॥ २६ ॥ और हे अर्जुन ! जिस
समय महाभयानक युद्ध चलरहा था उस समय कौरवपक्षके योधा
और उनके घुड़सवार, रथी और हाथीसवार तेरे और भीमसेनके
सामने युद्ध करतेहुए यहाँ यमलोकको पधारगये॥ २७ ॥ और
हे अर्जुन ! पाण्डवोंने सेनाके मुहानेका संहार करडाला, उस समय
भीष्मजीने तीखे बाण छोड़कर जाल पूरदिया ॥२८॥ अस्त्रविद्यामें
परमप्रवीण भीष्मजीने चेदी, काशी, पञ्चाल, करूप, मत्स्य
और केकयदेशके योधाओंको बाणोंसे ढककर मारडाला ॥२९॥
शत्रुओंके शरीरोंको चीर डालनेवाले, जिनमें सोनेके पर लगेहुए
थे ऐसे भीष्मजीके धनुषमेंसे छूटेहुए सीधेजानेवाले बाणोंसे
आकाश छागया ॥ ३० ॥ भीष्मजी एक २ मुष्टिके प्रहारसे ही
दश २ हजार रथियोंको मारसकते थे, उन्होंने सब मिलाकर
एक लाख महाबली बड़े २ योधाओंका तथा रथियोंका रणमें

समेतान् स महाबलान् ॥ ३१ ॥ गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वा-
जिरथद्विपान् । हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेऽत्यजत् ॥३२॥
दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् । शून्याः कृता रथो-
पस्था हताश्च गजवाजिनः ॥ ३३ ॥ दर्शयित्वात्मनो रूपं रुद्रो-
पेन्द्रसमं युधि । पाण्डवानामनीकानि निगृह्यासौ व्यशातयत् ३४
विनिघ्नन् पृथिवीपालांश्चेदिपाञ्चालकेकयान् । अहनत् पाण्डवीं
सेनां रथाश्वगजसंकुलाम् ॥ मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयो-
धनम् ॥ ३५ ॥ तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् । पदाति
कोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः । न शेकुः सृञ्जया द्रष्टुं तथै-
वान्ये महीक्षितः ॥ ३६ ॥ विचरन्तं तथा तन्तु संग्रामे जितका-

कचरघाँस करडाला ॥ ३१ ॥ जो सब नवीन प्रकारकी थीं
ऐसी दोपंवाली नौ गतियोंको छोड़कर उन्होंने दशमी गतिके
अनुसार चढ़ायी करके रणमें हाथी, घोड़े तथा रथोंपर सवारी
करनेवाले योधाओंको मारकर बाणोंकी वर्षा करडाली थी ३२
और दश दिनतक युद्ध करके तेरी सेनाका संहार करडाला था,
रथोंकी बैठकोंको ऊजड करडाला था और हाथी घोड़ोंको मार
डाला था ॥ ३३ ॥ और युद्धमें अपना रुद्र तथा उपेन्द्र की समान
उग्र स्वरूप दिखाया था तथा पांडवोंकी सेनाको पकड़ २ कर
काट छाँटडाला था ॥३४॥ निराधार होनेके कारण रणसागरमें
डूबते हुए मूर्ख दुर्योधनका उद्धार करनेके लिये चेदी पंचाल
और केकय राजाओंका संहार करते हुए रथ, घोड़े और हाथि-
योंसे भरी हुई पांडवी-सेनाको मारडाला ॥ ३५ ॥ तपतेहुए सूर्य
की समान शत्रुसेनाको सन्ताप देनेवाले भीष्मजी जब रणमें घूमने
लगे उस समय हाथोंमें परमोत्तम शस्त्र लेकर खड़ेहुए असंख्यों
सृञ्जय तथा दूसरे राजाओंकी करोड़ों और हजारों पैदलसेना युद्धमें
घूमते हुए भीष्मजीकी ओरको दृष्टि भी नहीं करसकी थी३६इस

शिनम् । सर्वोद्योगेन महता पाण्डवाः समभिद्रवन् ॥ ३७ ॥ स
तु विद्राव्य समरे पाण्डवान् सृञ्जयानपि । एक एव रणे भीष्म
एकवीरत्वमागतः ॥ ३८ ॥ तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो
महाव्रतम् । जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३९ ॥ स
एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः । त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः
प्राप्येव वासवम् ॥ ४० ॥ द्रोणः पञ्च दिनान्युग्रो विधम्य रिपु-
वाहिनीम् । कृत्वा व्यूहमभेद्यञ्च पातयित्वा महारथान् ॥ ४१ ॥
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः । अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रि-
युद्धेऽदहत् प्रजाः ॥ ४२ ॥ दग्ध्वा योधाञ्छरैर्वीरो भारद्वाजः
प्रतापवान् । धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ॥ ४३ ॥

प्रकार संग्राममें विचरते और विजयसे शोभा पातेहुए भीष्मजीके ऊपर पाण्डवोंने सब प्रकारके महान् उद्योगसे धावा किया॥३७॥ परन्तु उन भीष्मजीने रणमें सब सृञ्जय और पाण्डवोंको भगा दिया,उस समय रणमें अकेले भीष्मजी ही अद्वितीय वीर मालूम होते थे ॥३८॥ परन्तु ऐसे महाव्रतधारी एकवीर भीष्मजीको शिखण्डीने तेरी रक्षामें रहकर नये हुए पर्ववाले बाणोंसे बींध डाला ॥ ३९ ॥ वह तुम्हारे पितामह यह देख शरशय्यापर पडे हुए सोरहे हैं, जैसे वृत्रासुर इन्द्रके साथ युद्ध करनेको जाकर मारा गया था तैसे ही यह तुम्हारे सामने युद्ध करनेको आकर बाण-शय्यापर पडेहुए हैं ॥ ४० ॥ और कालकी समान उग्र महारथी द्रोणाचार्यने अभेद्य व्यूहको रचकर पाँच दिनतक युद्ध किया और शत्रुसेनाका संहार करके तेरे महारथियोंको भी मारगिराया ॥ ४१ ॥ यमराजकी समान उग्ररूपधारी महारथी द्रोणाचार्यने संग्राममें कितने ही समय तक तो जयद्रथकी रक्षा की और फिर रात्रिके युद्धमें हजारों योधाओंको भस्म करडाला ॥४२॥ प्रतापी वीर द्रोणाचार्यने बाणोंसे योधाओंको भस्म करडाला,परन्तु वह

यदि पार्थ भवान् युद्धे सूतपुत्रमुखान्रथान् । नावारयिष्यत् संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनङ्क्ष्यत ॥ ४४ ॥ भवता तु बलं सर्वं धार्त्तराष्ट्रस्य वारितम् । ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनञ्जय ॥४५॥ क एवान्यो रणे कुर्यात्त्वदन्यः क्षत्रियो युधि । यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति ॥ ४६ ॥ निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान् । निहतः सैन्धवो राजा त्वयास्त्रबलतेजसा ॥ ४७ ॥ आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः । अनाश्चर्यं हि तत्त्वत्तस्त्वहं पार्थ महारथः ॥ ४८ ॥ त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाह्नादिति भारत । नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमिति मे मतिः॥४९॥ सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्त्तराष्ट्रस्य संयुगे । हतसर्वस्ववीरा हि भीष्म-

---

धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करके परमगतिको प्राप्त होगये ॥४३॥ उस दिन युद्धमें यदि तू कर्ण आदि रथियोंको आगे बढनेसे नहीं रोकता तो द्रोणाचार्य नहीं मारे जाते॥४४॥परन्तु तूने उस दिन कौरवोंकी सब सेनाको आगे बढनेसे रोकदिया था, हे धनञ्जय ! इसलिये ही धृष्टद्युम्न संग्राममें द्रोणाचार्यको मारसका था ४५ हे पार्थ ! जयद्रथको मारनेके लिये तूने जैसा पराक्रम किया था ऐसा पराक्रम तेरे सिवाय युद्धमें दूसरा कौनसा क्षत्रिय दिखासकता है?४६ कौरवोंकी बडीभारी सेनाको जयद्रथकी सहायताके लिये जानेसे रोककर तूने शूर राजाओंको मारडाला और फिर तूने अकेले रहे सिंधुराज जयद्रथको भी अपने अस्त्रके बल और तेजसे मारडाला४७ सिंधुराजके वधको सब राजे तेरा अद्भुत पराक्रम मानते हैं, परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता, क्योंकि-हे पार्थ ! तू महारथी है, इसलिये तुझमें यदि ऐसा पराक्रम हो तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है ४८ हे भारत ! मैं तो यहां तक ठीक समझता हूँ, कि-यदि सब क्षत्रिय इकट्ठे होकर तेरे सामने आजायँ तो वह एकही दिनमें नष्ट होजायँ ॥ ४९ ॥ हे पार्थ ! जिस समय रणमें भीष्म और द्रोणा-

द्रोणौ यदा हतौ ॥ ५० ॥ शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिरथद्विपा । हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती ॥ ५१ ॥ विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रम । आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ॥ ५२ ॥ तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः । अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ॥ ५३ ॥ तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् । हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञे सद्वीपपत्तनाम् ॥ ५४ ॥ साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ५५ प्राप्नोत्वमितवीर्य्यश्रीरद्य पार्थो वसुन्धराम् । एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् । प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायेव यथा हरिः ॥ ५६ ॥

चार्य मारेगये उसी समय मानों कौरवोंकी इस भयानक सेनाके सर्वस्वरूप सब वीर पुरुष मारेगये ॥ ५० ॥ कौरवोंकी सेनाके बड़े२ योधा, घुड़सवार, रथी और, हाथीसवार मरकर निवड़गये हैं, इसलिये क्षीणहुई कौरवोंकी यह सेना इस समय सूर्य, चन्द्रमा और तारागणोंसे शून्य आकाशसी निस्तेज दीखरही है ॥ ५१ ॥ हे पार्थ ! जैसे पहले इन्द्रके पराक्रमोंसे आसुरी सेनाका नाश होगया था, तैसेही हे भयानकपराक्रमी ! तेरे पराक्रमसे इस कौरवी सेनाका विध्वंस होगया है ॥ ५२ ॥ उनकी सेनाका नाश होते२ अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य और कृपाचार्य ये पाँचही महारथी बाकी रहगये हैं ॥ ५३ ॥ हे नरव्याघ्र ! तू आज इन पाँचों महारथियोंको भी मारकर एकवीरकी पदवीको प्राप्त कर और शत्रुशून्य होकर राजा युधिष्ठिरको द्वीप, नगर, आकाश, समुद्र, पाताल, पर्वत और बड़े२ वनों सहित सब पृथिवी अर्पण करदे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अपार वीरता और शोभावाले धर्मराज आजही इस पृथिवीको पाजायँ, पहले जैसे विष्णुने दैत्य और दानवोंको मारकर इन्द्रको स्वर्गपुरी देदी थी, तैसेही तू भी राजा युधिष्ठिरको पृथिवी अर्पण करदे ॥ ५६ ॥ विष्णुने दानवोंको

अद्य मोदन्तु पञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया । विष्णुना निहतेष्वेव दानवेष्विव देवताः ॥ ५७ ॥ यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम् । अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्य्यगौरवात् । ५८। अत्यन्तापचितान् वन्धून् मानयन् मातृवान्धवान् । कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ॥ ५९ ॥ भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् । यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान्न जिघांससि ।६०। इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान् प्रति । कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याशु निशितैः शरैः ६१ एतत्ते सुकृतं कर्म नात्र किञ्चन युज्यते । वयमप्यनुजानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ६२ ॥ दहने यत् सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ। द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्त्तत सुयोधनः ।

मारडाला उस समय जैसे देवता प्रसन्न हुए थे तैसेही आज तू शत्रुओंको मारडाल और पंचाल राजे प्रसन्न हों ॥ ५७ ॥ मनुष्योंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको गुरु माननेके कारण तुझे यदि अश्वत्थामाके ऊपर दया आती हो, यदि आचार्य होनेके कारण कृपाचार्यका गौरव करता हो, यदि माताके अत्यन्त वृद्धि पायेहुए भाइयोंके ऊपर सन्मानकी दृष्टि होनेसे सामने आये हुए भी कृतवर्माको यमलोकमें नहीं भेजना चाहता हो और हे कमलनयन ! यदि माताके भ्राता मद्रराज शल्यको भी तू दयावश न मारना चाहता हो तो मत मार ॥ ५८–६० ॥ परन्तु हे नरश्रेष्ठ अर्जुन ! पांडवोंके ऊपर परम वैरभाव रखनेवाले, क्षुद्रबुद्धि और महापापी इस कर्णको तो आज तेज बाणोंसे मारही डाल ॥ ६१ ॥ इस कामके करनेसे तुझे बड़ा पुण्यलाभ होगा, इसमें जराभी सन्देह नहीं है, मैं तुझे आज्ञा देता हूँ तथा इस कामके करनेमें तुझे कुछभी दोष नहीं लगेगा ॥ ६२ ॥ हे निर्दोष अर्जुन ! दुर्योधनने तुम पाँचों भाइयोंको और तुम्हारी माताको लाखभवनमें भेजकर जलाडाला था तथा तुम्हारे साथ जुआ खेलनेको उद्यत होगया

तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत ॥ ६३ ॥ कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः । ततो मामपि संरब्धो निगृहीतुं प्रचक्रमे ॥ ६४ ॥ स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्त्तराष्ट्रस्य मानद । कर्णः पार्थान् रणे सर्वान् विजेष्यति न संशयः ॥ ६५ ॥ कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्त्तराष्ट्रेण विग्रहः । रोचितो भवता सार्द्धं जानतापि वलं तव ॥६६॥ कर्णोऽपि भाषते नित्यमहं पार्थान् समागतान् । वासुदेवञ्च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम् ॥ ६७ ॥ प्रोत्साहयन् दुरात्मानं धार्त्तराष्ट्रं सुदुर्मतिः । समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ॥ ६८ ॥ यच्च युष्मासु पापं वै धार्त्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् । तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ॥ ६९ ॥ यच्च तद्धार्त्तराष्ट्रस्य क्रूरैः षड्भिर्महारथैः । अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्ष-

था, इस सबका मूल कारण यह दुष्टात्मा कर्ण ही था॥६३॥दुर्योधन सदा यह समझता है, कि–कर्ण मेरी रक्षा करेगा और इस लिये ही यह क्रोधमें भरकर मुझे भी कैद करनेको तयार होगया था ॥ ६४ ॥ हे मान देनेवाले अर्जुन ! कर्ण रणमें सब पांडवोंको अवश्यही हरादेगा, राजा दुर्योधनको यह पक्का निश्चय है ।६५। हे कुन्तीनन्दन ! तेरे वलको जानतेहुए भी दुर्योधनने कर्णके ऊपर आधार रखकर तुम्हारे साथ युद्ध करना अच्छा समझ लिया ॥ ६६ ॥ कर्ण भी सदा ही दुर्योधनसे कहा करता है, कि मैं अकेलाही इकट्ठे हुए पाण्डवोंके सहित अर्जुनको और महारथी दाशार्हवंशी श्रीकृष्णको जीतलूँगा ॥ ६७ ॥ जो दुष्टात्मा कर्ण ऐसा कहकर दुष्टबुद्धि दुर्योधनको राजसभामें सदा युद्धके लिये उकसाया करता है, हे भारत ! उस कर्णको आज तू मारडाल ॥ ६८ ॥ दुर्योधनने तुम्हारा जो कुछ भी बुरा किया है, उसका सब मूल दुष्टात्मा पापात्मा कर्ण ही है ॥६९॥ और जो वीर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि महापुरुषों

णम् ॥ ७० ॥ द्रोणद्रौणिकृपान् वीरान् कर्षयन्तं नरर्षभान् । निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान् विरथांश्च महारथान् ॥ ७१ ॥ व्यश्वारोहांश्च तुरगान् पत्तीन् व्यायुधजीवितान् । कुर्वन्तमृषभस्कन्धं कुरुवृष्णियशस्करम् ॥७२॥ विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् । मनुष्यवाजिमातङ्गान् प्रहिण्वन्तं यत्तयम् ॥ ७३ ॥ शरैः सौभद्रमायान्तं दहन्निमरिवाहिनीम् । तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ॥७४॥ यत्त्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो । अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः ॥ ७५ ॥ सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः । निःश्वसन् क्रोधसंदीप्तो विमुखः सायकार्दितः ॥ ७६ ॥ अपयानकृतोत्साहो निरुत्साहश्च जीविते । स्थितः स विह्वलः संख्ये प्रहारजनितश्रमः ॥७७॥ अथ द्रोणस्य

को रणमेंसे दूर खेंच लेगया था, जिसने हाथियोंको विना योधाओंका, रथोंको विना महारथियोंका, घोड़ाको विना सवारोंका और शस्त्रसे आजीविका करनेवाले पैदलोंको शस्त्रशून्य करडाला था, जिसके नेत्र विशाल और कन्धे बैलकेसे थे, जिसने सेनाओंका तथा महारथियोंका संहार करडाला था, जिसने बाणोंकी मारसे पैदल, घोड़े तथा हाथियोंको यमलोकमें भेजदिया था, उस महारथी सुभद्राके पुत्र अभिमन्युको छः निर्दयी महारथियोंने मारडाला, जबसे मैंने उसको देखा है तबसे मेरे अङ्गों में आगसी लगी रहती है, यह बात हे मित्र! मैं तुमसे सत्य की की शपथ खाकर कहता हूँ ॥ ७०–७४ ॥ हे समर्थ अर्जुन! दुष्टात्मा कर्ण अभिमन्युके साथ भी द्वेषभाव रखता था, इस युद्धमें कर्ण रणमें अभिमन्युके सामने खड़ा भी नहीं रहसका था क्योंकि–अभिमन्युने बाण मारकर कर्णको बींधडाला था, इसलिये वह लोहूलुहान और अचेत होगया था, जीवनकी आशा छोड़कर रणमेंसे भागनेको तयार होगया था, अभिमन्युकी मारसे उसको

समरे तत्कालसदृशं तदा । श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ७८ ॥ ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः । तच्चैव निकृतिप्रज्ञाः प्राहनञ्छरवृष्टिभिः ॥ ७९ ॥ तस्मिन् विनिहते वीरे सर्वेषां दुःखमाविशत् । प्राहसत् स तु दुष्टात्मा कर्णः स च सुयोधनः ॥८०॥ यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः । प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणाञ्च नृशंसवत् ॥८१॥ विनष्टाः पांडवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः । पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणि ॥ ८२ ॥ एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासीभूता निवेशनम् । प्रविशारालपक्ष्माक्षि न संति पतयस्तव ॥ ८३ ॥ न पाण्डवाः प्रभवन्ति तव कृष्णे कथञ्चन । दासभार्या च पांचाली स्वयं दासी

इतना परिश्रम पड़ा था, कि—वह विह्वल होगया था ॥७५-७७॥ परन्तु उससमय द्रोणाचार्यने समयके अनुसार कर्णसे कहा, कि—देखता क्या है ? अभिमन्युके धनुषको काटडाल, इस दारुण वचनको सुनते ही कर्णने अभिमन्युके धनुषको काटडाला, ॥७८॥ अभिमन्युका धनुष कटते ही रणमें खड़ेहुए पाँच महारथी,जो छल करनेमें चतुर थे, अभिमन्युको बाणोंकी वर्षासे घायल करने लगे७९ वीर अभिमन्यु मारागया, यह देखकर सब वीरोंको दुःख हुआ था केवल दुष्टात्मा कर्ण और दुर्योधन ही खूब हँसे थे ॥ ८० ॥ और कर्णने सभामें पाण्डव और कौरवोंके सामने द्रौपदीसे कठोर हृदयकी समान खोटी वाणी बोलकर कहा था, कि—हे द्रौपदी पांडव तो अब विनष्ट होकर सदाके लिये नरकमें जापड़े इसलिये ही हे विशाल नितम्ब और कोमल वाणीवाली ! तू दूसरेको अपना पति बनाले ॥ ८१ ॥८२ ॥ हे तिरछे कमल की समान नेत्रोंवाली द्रौपदी ! अब पांडव तेरे पति नहीं हैं तथा तेरे लिये कुछ कर भी नहीं सकते तू धृतराष्ट्रकी दासी होचुकी, इसलिये उनके राजभवनमें जाकर दासीका काम कर हे सुन्दरांगी

च शोभने ॥ ८४ ॥ अद्य दुर्योधनो ह्येकः पृथिव्यां नृपतिः स्मृतः । सर्वे चास्य महीपाला योगक्षेममुपासते ॥ ८५ ॥ पश्येदानीं यथा भद्रे विनष्टाः पाण्डवाः समम् । अन्योऽन्यं समुदीक्षन्ते धार्त्तराष्ट्रस्य तेजसा ॥ ८६ ॥ व्यक्तं षण्ढतिला ह्येते पुनर्नैवं निमज्जिताः । प्रेष्यवच्चापि राजानमुपस्थास्यन्ति कौरवम् ॥८७॥ इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः । पापः पापं वचः कर्णः शृण्वतस्तव भारत ॥ ८८ ॥ अद्य पापस्य तद्वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः । शमयन्तु शिलाधौतास्त्वयास्ता जीवितच्छिदः ॥ ८९ ॥ यानि चान्यानि दुष्टात्मा पापानि कृतवांस्त्वयि । तान्यद्य जीवितञ्चास्य शमयन्तु शरास्तव ॥ ९० ॥ गाण्डीवप्रहितान् घोरानद्य गात्रैः

पांचाली! तू अब दासोंकी स्त्री है और स्वयं दासी है ।८३-८४। अब यह एक दुर्योधन ही पृथिवी पर राजा है, दूसरे सब राजे उसके ही भरोसे पर अपना योगक्षेम चलाते हैं।।८५।।हे कल्याणी! देख तो सही ! ये पांडव दुर्योधनके तेजसे एक साथ विनष्ट होगये और आपसमें एक दूसरेका मुख देख रहे हैं ॥ ८६ ॥ वास्तवमें ये पांडव तिलखण्डोंकी समान निकम्मे होगये हैं इस समय ये जैसी दुःखकी दशामें आपड़े हैं ऐसी दुर्दशामें पहले कभी नहीं पड़े थे, अब आजसे ये दासकी समान राजा दुर्योधनके पास रह कर सेवा किया करेंगे ॥ ८७ ॥ इसप्रकार महादुष्टबुद्धिवाले अधर्मी कर्णने द्रौपदीसे खोटा वचन कहा था, हे भरतवंशी राजन्! पापी कर्णकी इस बातको उस समय तूने भी सुना था ॥ ८८ ॥ आज सान पर धरकर तेज किये हुए, प्राण हरनेवाले और सोना चढ़ायेहुए तेरे बाण कर्णके उन वचनोंकी शान्ति करें,इस दुष्टात्मा पापीने और भी जो २ पाप किये हों उनको तथा इसके जीवनको भी तेरे बाण शान्त करें ॥ ८९ ॥ ९०॥ आज तेरे गांडीव धनुषमें से छूटेहुए भयानक बाण ज्यों २ दुष्टात्मा कर्णके शरीरको

स्पृशञ्छरान् । कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः ॥६१॥ सुवर्णपुंखा नाराचा शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः । त्वयास्तास्तस्य मर्माणि भित्वा पास्यन्ति शोणितम् ॥ ६२ ॥ उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्वा महाशराः । अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम् ॥६३॥ अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः । प्रपतन्तं रथात् कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः ॥ ६४ ॥ अद्य शोणितसंमग्नं शयानं पतितं भुवि । अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः ॥ ६५ ॥ हस्तिकक्षो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया । प्रकम्पमानः पततु भूमावाधिरथेर्ध्वजः ॥ ६६ ॥ त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम् । हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम् ॥ ६७ ॥ स चेत्कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः । प्रतिज्ञावारणार्थाय निह-

स्पर्श करें त्यों २ इसको द्रोण और भीष्मके वचन याद आवेंगे॥६१॥ सुवर्णके परोंसे शोभित,शत्रुओंका संहार करनेवाले तथा विजलीकी समान कान्तिमान् तेरे छोड़ेहुए उग्र वाण कर्णके मर्मस्थानोंको फोड़तेहुए उसके रुधिरको पियेंगे॥६२॥तेरी भुजाओंमेंसे छूटेहुए महावेगवाले बड़े २ उग्र वाण आज कर्णके मर्मस्थानोंको फोड़कर उसको यमलोकमें भेजदेंगे ॥ ६३ ॥ तेरे वाणोंकी मारसे दीन और खिन्न हुए राजे भी कर्णको रथसे नीचे गिरताहुआ देख कर हाहाकार कर उठें ॥ ६४ ॥ आज जिसके शस्त्र टूटगये और जो रुधिरमें लथडपथड होकर भूमिपर सोरहा होगा, ऐसे कर्णको उसके वांधव खिन्न होकर देखेंगे ॥ ६५ ॥ आज हाथीकी जंजीरके चिह्नवाला कर्णके रथका ध्वजदण्ड भी तेरे भल्ल नामक वाणके प्रहारसे कम्पायमान होकर पृथिवी पर गिरजायगा ॥ ६६ ॥ तू सैंकड़ों वाण मारकर कर्णके सोनेसे सजायेहुए रथको तोडडालेगा और उसके सारथीको तथा घोडोंको मारडालेगा तव शल्य डरके मारे रथको छोड़कर भागजायगा ॥ ६७ ॥ तू जिस समय अपनी

निष्यति सायकैः ॥ ९८ ॥ हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान् । स्मरतां द्रोणभीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद ॥ ९९ ॥ ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया । निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः ॥ १०० ॥ एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः । कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥ १०१ ॥ पञ्चालान् द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ । धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम् ॥ १०२ ॥ नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् । सुधर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशं गतान् ॥ १०३ ॥ अभ्याहतानां कर्णेन पंचालानामसौ रणे । श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्बन्धूनां परन्तप ॥ १०४ ॥ न त्वेव भीताः

प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये कर्णके देखतेहुए वाण मारकर उसके पुत्रको मारडालेगा ॥ ९८ ॥ और हे मानदेनेवाले धनञ्जय ! दुष्टात्मा कर्ण जब अपने प्रिय पुत्रको मारागया देखेगा, उस समय द्रोण, भीष्म और विदुरकी बातको याद करेगा ॥ ९९ ॥ तदनन्तर तेरा शत्रु राजा दुर्योधन कर्णको तेरे हाथसे मारागया देखकर आज ही अपने जीवन और राज्यकी आशाको छोड देगा ॥ १०० ॥ हे भरतसत्तम ! पांडवोंको विजय दिलानेकी इच्छावाले पंचाल राजाओंको कर्ण तीखे वाणोंसे घायल कररहा है, इसलिये देख वे रणमेंसे भागे जारहे हैं ॥ १०१ ॥ आज पंचाल देशके योधा, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके पुत्र, नकुलका पुत्र शतानीक, नकुल, सहदेव, दुर्मुख, जनमेजय, सुधर्मा और सात्यकी ये सब युद्धमें कर्णके वशमें होगये मालूम होते हैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ और हे शत्रुओंको ताप देनेवाले अर्जुन ! यह जो भयानक दुन्द सुनायी आरहा है, यह कर्णकी मारके कारण तेरे भाई पञ्चालदेशके राजाओंका है । १०४। पंचालदेशके महाधनुषधारी राजे किसी दिन भी डरकर रणमेंसे

पञ्चालाः कथञ्चित्स्युः पराङ्मुखाः । न हि मृत्युं महेष्वासा गणयन्ति महारणे ॥ १०५ ॥ य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत् । तं समासाद्य पञ्चाला भीष्मं नासन् पराङ्मुखाः॥१०६ ते कथं कर्णमासाद्य विद्रवेयुर्महारथाः । यस्त्वेकः सर्वपञ्चालान- हन्यहनि नाशयन् ॥ १०७ ॥ कालवच्चरते वीरः पञ्चालानां रथव्रजे । तमप्यासाद्य समरे मित्रार्थे मित्रवत्सलाः ॥ १०८ ॥ तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम् । निर्दहन्तञ्च समरे दुर्द्धर्षं द्रोणमोजसा ॥ १०९ ॥ ते नित्यमुदिता जेतुं मृधे शत्रूनरिन्दम । न जात्वाधिरथेर्भीताः पञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः ११० तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम् । आदत्ताऽसून् शरैः

पीछेको पैर हटालें ऐसे नहीं हैं तथा रणमें मृत्युको भी कुछ नहीं गिनते हैं ॥ १०५ ॥ जिन अकेले भीष्मने पांडवोंकी सेनाको बाणोंसे ढकदिया था, उन भीष्मजीके सामने मुचैटा होने पर भी पंचाल देशके राजाओंने रणमेंसे पीछेको पैर नहीं दिया था १०६ वे महारथी पंचाल राजे कर्णके सामने मुचैटा होने पर कैसे भाग सकते हैं ? वीर द्रोणाचार्य अकेले ही पंचालोंकी रथसेनामें कालकी समान घूमरहे थे और प्रतिदिन पंचालोंका नाश कररहे थे हे शत्रुओंको दवानेवाले अर्जुन ! सब धनुषधारियोंके गुरु, प्रचण्ड अस्त्राग्निसे युद्धमें शत्रुओंको भस्म करनेवाले और तेजसे दुराधर्ष द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते समय, मित्रोंके ऊपर स्नेह करनेवाले जो पंचाल राजे अपने मित्रोंके लिये द्रोणाचार्यका पराजय करनेको तथा शत्रुओंका पराजय करनेको रणमें सदा खड़े रहते थे, वे पंचालदेशके वीर पुरुष कर्णसे डरकर कभी भी पीछेको पैर नहीं देसकते ॥ १०७–११० ॥ उन पञ्चाल देशके वीर योधाओंने कर्णके ऊपर बड़े वेगसे चढायी की है और अग्नि जैसे पतङ्गोंका नाश करता है तैसे ही वीर कर्ण बाणोंकी मारसे

कर्णः पतङ्गानामिवानलः ॥ १११ ॥ एते द्रवन्ति पञ्चाला द्राव्यन्ते योधिभिर्ध्रुवम् । कर्णेन भरतश्रेष्ठ पश्य पश्य तथा कृतान् ११२ तांस्तस्थाभिमुखान् वीरान् मित्रार्थे त्यक्तजीवितान्। क्षयं नयति राधेयः पंचालाञ्छतशो रणे ॥ ११३ ॥ तद्भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे । कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पंचालांस्त्रातुमर्हसि ॥११४॥ अस्त्रं हि रामात् कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात् । यदुपात्तं महाघोरं तस्य रूपमुदीर्यते ॥ ११५ ॥ तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम् । समावृत्य महासेनां ज्वलितं स्वेन तेजसा ॥११६ ॥ एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः। भ्रमराणामिव व्राताः स्तापयन्ति स्म तावकान् ॥ ११७ ॥ एते द्रवन्ति पञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत । कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवार्यमनात्मभिः ११८

उनके प्राण हररहा है ॥ १११ ॥ हे भरतसत्तम अर्जुन ! कर्ण और दूसरे योधा, वह देख पञ्चालदेशके योधाओंको रणमेंसे भगारहे हैं ॥ ११२ ॥ पञ्चालदेशके सैंकडों वीर योधा भी अपने मित्रके लिये प्राणोंकी परवाह न करके कर्णके सामने युद्ध कर रहे हैं और कर्ण उनका संहार कररहा है ॥ ११३ ॥ ये बड़े बड़े धनुषधारी पञ्चाल योधा आश्रय न मिलनेसे कर्णरूप महासागरमें डूबनेको उद्यत होरहे हैं, तुझे नौकारूप वनकर इनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ११४ ॥ कर्णने भृगुवंशी महर्षि परशुराम जीसे महाभयानक अस्त्रविद्या सीखी थी उन ही अस्त्रोंका इस समय यह प्रयोग कररहा है ॥११५॥ वह महाभयानक, अत्यन्त दारुण और सब सेनाको सन्ताप देनेवाला अस्त्र अपने तेजसे तेरी सब सेनाको घेरकर जलारहा है ॥ ११६ ॥ संग्राममें भौंरोंके झुण्डोंकी समान कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए वाण तेरे योधाओंको सन्ताप देरहे हैं ॥ ११७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! ये पञ्चाल योधा, जिसको अधीर पुरुष नहीं रोकसकते ऐसे,

एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः । सृञ्जयैर्योधयन् कर्णं पीड्यते निशितैः शरैः ॥ ११६ ॥ पाण्डवान् सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत । हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः १२० नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले । यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद्‌ गृहम् ॥ १२१ ॥ तमद्य निशितैर्बाणैर्वि-निहत्य नरर्षभ । यथाप्रतिज्ञं पार्थ स्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि १२२ त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान् । नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद्‌ ब्रवीमि ते ॥ १२३ ॥ एतत् कृत्वा महत् कर्म हत्वा कर्णं महारथम् । कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम १२४ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

कर्णके अस्त्रके सामने आते ही दशों दिशाओंमेंको भागरहे हैं ११८ और हे अर्जुन ! यह महाक्रोधी भीमसेन भी अपने चारों ओर सृञ्जयोंकी सेनाको साथ लेकर कर्णके सामने युद्धकररहा है और कर्ण तेज कियेहुए बाण मार कर उसको दुःख देरहा है । ११६ । हे भरतवंशी अर्जुन ! अब तू यदि कर्णकी ओर उपेक्षा रक्खेगा तो शरीर पर चढायी करनेवाला रोग जैसे शरीरका नाश कर देता है तैसे ही कर्ण अवश्य ही पांडव, सृञ्जय और पञ्चालोंका नाश करडालेगा ॥ १२० ॥ मैं युधिष्ठिरकी सेनामें तेरे सिवाय दूसरे किसी भी योधाको नहीं देखता कि—जो कर्णके सामने मुचेटा लेकर घरको क्षेम कुशलसे लौट आवे॥१२१॥इसलिये हे महापुरुष अर्जुन ! प्रतिज्ञाके अनुसार आज ही तू तेज किये हुए बाणोंसे कर्णको मारकर कीर्त्ति प्राप्त कर ॥१२२॥ हे महायोधा ! कर्ण और कौरवोंको रणमें एक तू ही जीतसकता है, दूसरा नहीं. यह बात मैं तुझसे सत्य कहता हूँ।१२३। इसलिये हे महात्मा अर्जुन ! तू महारथी कर्णको मारकर महाकार्य कर और अपने काममें विजय पाकर सुखी हो।१।२४।तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त७३

सञ्जय उवाच । स केशवस्य वीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम् ।
विशोकः संप्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ १ ॥ ततो ज्यामभिमृज्याशु
व्याक्षिपन् गांडिवं धनुः । दध्रे कर्णविनाशाय केशवञ्चाभ्यभाषत २
त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम । प्रसन्नो यस्य मेऽद्य
त्वं लोके भूतभविष्यकृत् ॥ ३ ॥ त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रींल्लो-
कान् वै समागतान् । प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्णं महाहवे ४
पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन । पश्यामि कर्णं समरे
विचरन्तमभीतवत् ॥ ५ ॥ भार्गवास्त्रञ्च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण
सर्वशः । सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव महाशनिम् ॥ ६ ॥ अयं
खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम् । कथयिष्यन्ति भूतानि
यावद्भूमिर्द्धरिष्यति ॥ ७ ॥ अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति

सञ्जय कहता है, कि—हे भरतवंशी राजन्! धनञ्जय श्रीकृष्ण की बात सुनकर एक क्षणमें शोकरहित और प्रसन्न होगया १ और तुरन्त ही मारनेके लिये धनुषकी डोरी साफ की, गांडीव धनुषको खींचकर टङ्कार किया और उसको हाथमें लेकर केशवसे कहा, कि—॥ २ ॥ हे गोविन्द ! तुम जगत्में भूत और भविष्यत्के कर्त्ता हो जब कि—आज तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो आपकी सहायतासे अवश्य ही मेरी विजय होगी ॥ ३ ॥ हे कृष्ण! आपकी सहायतासे महायुद्धमें कर्णको तो क्या यदि तीनों लोक इकट्ठे होकर आजायँ तो उनको भी परलोकमें भेजसकता हूँ ॥ ४ ॥ हे जनार्दन ! मैं देखता हूँ, कि—समरमें पञ्चालोंकी सेना भाग रही है और यह भी देख रहा हूँ, कि—कर्ण रणमें निर्भय पुरुषकी समान विचररहा है ॥ ५ ॥ हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! जैसे इन्द्र वज्रको छोड़ता है तैसे ही कर्णके छोड़ेहुए तथा प्रज्वलित भार्गव अस्त्रको भी देखरहा हूँ ६ जबतक पृथिवी प्राणियोंको धारण किये रहेगी तबतक लोग कहेंगे, कि—यह वह संग्राम है जहां अर्जुनने

मृत्यवे । गाण्डीवमुक्ताः क्षिपन्तो मम हस्तप्रचोदिताः ॥ ८ ॥ अद्य राजा धृतराष्ट्रःस्वां बुद्धिमवमस्यते । दुर्योधनमराज्यार्हं यथा राज्येऽभ्यषेचयत् ।९। अद्य राज्यात् सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात् तथा पुरात् । पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥ १० ॥ गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम् । स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये ॥ ११ ॥ यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्वा चाम्रवणं महत् । फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन ॥ सूतपुत्रे हते तत्र निराशो भविता प्रभुः ॥ १२ ॥ अद्य दुर्योधनो राज्यात् जीविताच्च निराशवान् । भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥१३॥ अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम् । स्मरतां तव वाक्यानि शुभं प्रति जनेश्वरः ॥ १४ ॥ अद्यासौ सौबलः कृष्ण

कर्णको मारा था ॥ ७ ॥ हे कृष्ण ! आज मेरे गांडीव धनुषमेंसे निकलेहुए विकर्ण नामके बाण कर्णको मृत्युके समीप लेजायँगे ८ धृतराष्ट्रने जिस बुद्धिसे राजसिंहासनके अयोग्य दुर्योधनका राज्याभिषेक किया था, उस अपनी बुद्धिका आज राजा धृतराष्ट्र तिरस्कार करेगा ॥९॥ हे महाबाहो ! आज धृतराष्ट्र राज्यसे, सुखसे, लक्ष्मीसे, देशसे, राजधानीसे और पुत्रोंसे जुदा होजायगा १० हे कृष्ण ! जो गुणवानोंसे द्वेष करता है और गुणहीनको राजा बनाता है वह राजा शीघ्र ही मरणका अवसर आनेपर शोक करता है ॥ ११ ॥ जैसे कोई पुरुष आमके बड़ेभारी वनको काटडालने पर उसके परिमाणको देखकर महादुःखित होता है ऐसे ही हे जनार्दन ! राजा धृतराष्ट्र भी कर्णके मरणके बाद दुःखी और निराश होगा ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! मैं सत्य कहता हूँ, कि-आज कर्णके मारेजाने पर दुर्योधन राज्य और अपने जीवनसे निराश होजायगा ॥ १३ ॥ आज मेरे बाणोंसे कर्णके टुकड़े २ हुए देखकर राजा दुर्योधन, आपने उससे सन्धिके लिये

ग्लहान् जानातु वै शरान्। दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं प्रति ॥ १५ ॥ अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम् व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः ॥ १६ ॥ अद्य कुन्तीसुतो राजा हते सूतसुते मया। सुप्रहृष्टमनाः प्रीतश्चिरं सुखमवाप्स्यति ॥ १७ ॥ अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम्। उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद् भ्रंशयिष्यति ॥१८॥ यस्यैतद्धि व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः। पादौ न धावये तावत् यावद्धन्यां न फाल्गुनम् ॥ १९ ॥ मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन। पातयिष्ये रथात् कायं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥ योऽसौ रणे

जो बातें कही थीं उनको याद करेगा ॥ १४ ॥ हे कृष्ण! आज सुवलका पुत्र शकुनि वाणोंको पाशे, गांडीव धनुषको जुआ और रथको गुट्टें रखनेका वस्त्र (चोपड) जाने अर्थात् आज उसको उस जुएके कारणसे युद्धका जुआ खेलनेके लिये तयार होजाना चाहिये १५ हे गोविन्द! आज मैं दृढ़ वाणोंसे कर्णको मारकर राजा युधिष्ठिरके वहुत दिनोंके उनींदेपनको दूर करदूँगा अर्थात् आज शत्रुओंका नाश होनेसे राजा युधिष्ठिर सुखकी नींद सोवें १६ मैं आज कर्णको मारडालूँगा, तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर मनमें बड़े ही प्रसन्न होंगे और चिरकालके लिये सुख पावेंगे ॥ १७ ॥ हे कृष्ण! आज मैं अनुपम और जिसको कोई भी पीछेको न हटा सके ऐसा वाण मारकर कर्णके जीवनको समाप्त करदूँगा १८ दुष्टात्मा कर्णने मुझे मारनेके लिये यह व्रत किया है, कि-जबतक अर्जुनको नहीं मार लूँगा तब तक मैं दूसरेसे अपने पैर नहीं धुलाऊँगा ॥ १९ ॥ परन्तु हे मधुसूदन! मैं उस दुष्टात्मा पापी कर्णको अतिनमेहुए पर्ववाले वाण मारकर उसके शरीरको रथसे नीचे गिराकर उस पापीके व्रतको मिथ्या कर दूँगा ॥ २० ॥ और जो कर्ण ऐसा मानता है, कि-इस पृथिवी

नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते । तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ २१ ॥ अपतिर्ह्यसि कृष्णेति सूतपुत्रो यदब्रवीत् । धृतराष्ट्रमते कर्णः श्लाघमानः स्वकान्गुणान् ॥ २२ ॥ अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः । आशीविषा इव क्रुद्धास्तस्य पास्यन्ति शोणितम् ॥२३॥ मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः । गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम् ॥ २४ ॥ अद्य तप्स्यति राधेयः पांचालीं यत्तदाब्रवीत् । सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन् पाण्डवान् प्रति ॥ २५ ॥ ये वै पण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः । हते वैकर्त्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि २६ अहं वः पांडुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत् । धृतराष्ट्रसुतान् कर्णः श्लाघमानोऽत्मनो गुणान् । अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ॥ २७ ॥ उद्योगः पांडुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति । हन्ताहं-

---

पर तथा रणमें मेरे सिवाय दूसरा पुरुष ही नहीं है, उस कर्णके रुधिरको आज रणभूमि पियेगी ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्रकी संमतिके अनुसार कर्णने अपने गुणोंकी प्रशंसा करतेहुए द्रौपदीसे कहा था कि—तू पतिहीना है, उसके उस कथनको आज मेरे तेज बाण मिथ्या करेंगे और क्रोधमें भरेहुए विषधर सर्पोंकी समान उसके रुधिरको पियेंगे ॥ २२ ॥२३ ॥ मेरे चतुराई भरे हाथसे गांडीव धनुषमेंसे छूटे हुएबिजलीकी समान चमकदार बाण कर्णको परम गति देंगे ॥ २४ ॥ जिस कर्णने बीच सभामें पाण्डवोंकी निन्दा करतेहुए द्रौपदीसे क्रूर वचन कहे थे, कर्ण आज उनके लिये पछतावेगा ॥ २५ ॥ दुष्टात्मा सूर्यपुत्र कर्णके मारेजाने पर जो पांडव पहले पण्ढतिल निष्फल तिल मानेजाते थे वे सफल तिल मानेजायँगे ॥ २६ ॥ कर्ण अपने गुणोंकी प्रशंसा करता हुआ कौरवोंसे कहा करता था कि मैं पाण्डुपुत्रोंसे तुम्हारी रक्षा करूँगा, परन्तु उसके उस कथनको मेरे तेज बाण मिथ्या करदेंगे २७

पांडवान् सर्वान् सपुत्रानिति योऽब्रवीत् ॥ २८ ॥ तमद्य कर्णं हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम्। यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्त्तराष्ट्रो महामनाः ॥ २९ ॥ अत्रामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान् दुरात्मवान्। हत्वाहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरम् ॥ ३० ॥ शरान्नानाविधान्मुक्त्वा त्रासयिष्यामि शात्रवान्। आकर्णमुक्तैरिषुभिर्यमराष्ट्रविवर्धनैः ॥ ३१ ॥ भूमिशोभां करिष्यामि पातितै रथकुञ्जरैः। तत्राहं वै महासंख्ये सम्पन्नं युद्धदुर्मदम् ॥ ३२ ॥ अद्य कर्णमहं घोरं मृदयिष्यामि सायकैः। अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्त्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३३ ॥ विद्रवन्तु दिशो भीता सिंहत्रस्ता मृगा इव। अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचताम् ॥ ३४ ॥ हते कर्णे मया संख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने। अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रोऽ-

---

जो कर्ण कहा करता था, कि-पांडवोंका उद्योग समाप्त होजायगा और मैं पांडवोंको तथा उनके पुत्रोंको मारडालूँगा २८ उस कर्णका आज मैं सब धनुषधारियोंके देखते हुए मार डालूँगा, धृतराष्ट्रका पुत्र दुष्टात्मा दुर्बुद्धि दुर्योधन जिसके पराक्रमका आश्रय लेकर नित्य हमारा अपमान किया करता है. उस कर्णको आज मैं रणमें समाप्त करके अपने बड़े भाईको सन्तुष्ट करूँगा ॥ २९-३० ॥ अनेकों प्रकारसे बाण छोड़कर शत्रुओंको व्याकुल करदूँगा और कानपर्यन्त खेंचकर छोड़ेहुए यमराजके नगरकी वृद्धि करनेवाले बाणोंसे रथों और हाथियोंको मार गिराकर पृथिवी की शोभा बढाऊँगा, उस महासंग्राममें युद्धदुर्मद और महाभयानक कर्णको बाणोंसे छेद कर आज मारडालूँगा, हे कृष्ण ! आज कर्णके मारेजाने पर, जैसे सिंहसे त्रास खाकर मृग चारों ओरको भागजाते हैं तैसे ही धृतराष्ट्रके पुत्र राजा दुर्योधनके साथ दशों दिशाओंमेंको भागजायँगे आज मैं युद्धमें कर्णको उसके पुत्र और मित्रोंके साथ मारडालूँगा। इसमे राजा दुर्योधन

त्यमर्पणः ॥ ३५ ॥ जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम् । सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यञ्च निराशिषम् ॥ ३६ ॥ अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् । अद्य कर्णस्य चक्राङ्गाः क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः ॥ ३७ ॥ शरैश्छिन्नानि गात्राणि विचरिष्यन्ति केशव । अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन ॥ ३८ ॥ शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनाम् । अद्य तीक्ष्णैर्विपाठैश्च शरैश्चमधुसूदन॥३९॥रणे छेत्स्यामि गात्राणि राधेयस्य दुरात्मनः। अद्य राजा महत् कृच्छ्रं सन्त्यक्ष्यति युधिष्ठिरः॥४०॥सन्तापं मानसं धीरश्चिरं संभृतमात्मनः । अद्य केशवराधेयमहं हत्वा सबान्धवम् ४१ नन्दयिष्यामि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । अद्याहमनुगान् कृष्ण कर्णस्य कृपणान् युधि ॥ ४२ ॥ हन्ता ज्वलनसङ्काशैः शरैः सर्पविषोपमैः । अद्याहं हेमकवचैराबद्धमणिकुण्डलैः । संस्तरिष्यामि

अपने लिये शोक करेगा और कर्णको मराहुआ देखकर बड़े क्रोधमें भरजायगा ॥३१-३५॥ हे कृष्ण! आजके रणमें दुर्योधन को मालूम होगा, कि-अर्जुन सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ है, मैं आज ही राजा धृतराष्ट्रको उसके पुत्र पौत्र, मंत्री तथा सेवकोंके साथ राज्यके विषयमें निराश कर दूँगा हे केशव ! आज बाणोंसे कटे हुए कर्णके शरीरको खानेके लिये चक्राङ्ग तथा दूसरे मांसाहारी प्राणी कर्णके आसपास घूमेंगे, हे केशव! हे मधुसूदन! आज मैं संग्राममें सब धनुषधारियोंके देखतेहुए विपाट और क्षुरनामके तेज बाण मारकर दुष्टात्मा कर्णके मस्तक और अङ्गोंको काटडालूँगा तब आज राजा युधिष्ठिर चिरकालके अपने मनके संतापको दूरकरेंगे और हे केशव!आजमें कर्णको और उसके बांधवों को मारकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करूँगा, हे केशव! आज मैं युद्धमें कर्णके कृपण सेवकोंको साँपके विषकी समान और अग्निकी समान प्रज्वलित बाणोंसे मारडालूँगा और हे गोविन्द!

गोविन्द वसुधां वसुधाधिपैः ॥ ४३ ॥ अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन । ममथिष्यामि गात्राणि शिरांसि च शितैः शरैः ॥ ४४ ॥ अद्य निर्धार्त्तराष्ट्रां च भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम् । निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि ॥ ४५ ॥ अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् । क्रोधस्य च कुरूणां च शराणां गाण्डिवस्य च ॥ ४६ ॥ अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् । हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ॥ ४७ ॥ अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः । कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि ॥४८॥ मम चैव कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव । भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ॥ ४९ ॥ अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रञ्चास्य महारथम् । प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः

आज ही मैं सुवर्णके कवच और मणिजटित कुण्डलोंको पहरनेवाले राजाओंके शवोंसे पृथिवीको ढकदूँगा ॥ २६–४३ ॥ और हे मधुसूदन ! आज मैं अभिमन्युके सब शत्रुओंके शरीरोंको और मस्तकोंको तेज वाणोंसे काट डालूँगा हे केशव ! या तो आज पृथिवीको कौरवोंसे शून्य करके भाईको अर्पण करता हूँ, नहीं तो तुम अर्जुनके विना अकेले ही इस पृथिवी पर विचरोगे, हे कृष्ण ! आज मैं धनुषधारियोंके, कोपके, वाणोंके तथा गाण्डीवधनुषके ऋणसे मुक्त होऊँगा और हे कृष्ण ! जैसे इन्द्र शंवरासुरको मारकर दुःखसे छूटा था तैसे ही मैं भी कर्णको मारकर आज तेरह वर्षसे इकट्ठेहुए दुःखसे छूटूँगा और आज युद्धमें कर्णके मारेजाने पर युद्धमें मित्रका काम करना चाहनेवाले सोमकवंशके महारथी अपना काम सिद्ध हुआ समझें, आज संग्राममें कर्ण माराजायगा और मेरी विजय होगी, मेरी समझमें नहीं आता, कि– इससे सात्यकीको कितना आनन्द होगा ? मैं रणमें कर्णको और उसके महारथी पुत्रको मारकर भीमसेन,

सात्यकस्य च ॥ ५० ॥ धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानाञ्च माधव । अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे ॥ ५१ ॥ अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् । युध्यन्तं कौरवान् संख्ये पातयन्तञ्च सूतजम् ॥ ५२ ॥ भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ॥ ५३ ॥ धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः । को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमावांस्तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥ ५४ ॥ अहं धनुष्मानसुरान् सुरांश्च सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि । स्वबाहुवीर्याद्गमये पराभवं मत्पौरुषं विद्धि परं परेभ्यः ॥ ५५ ॥ शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः सर्वान् कुरून् वाह्लिकांश्चाभिहत्य । हिमात्यये कक्षगतो यथाग्निस्तथा दहेयं सगणान् प्रसह्य ॥ ५६ ॥ पाणौ पृषत्का लिखिता ममैते

नकुल, सहदेव और सात्यकीको प्रसन्न करूँगा, हे मधुसूदन ! आज मैं महासंग्राममें कर्णको मारकर धृष्टद्युम्न शिखण्डी और पंचाल राजाओंके ऋणसे मुक्त होऊँगा, आज संग्राममें कौरवोंके साथ युद्ध करते हुए तथा कर्णका नाश करते हुए असहनशील धनञ्जयको दूसरे लोग आनन्दसे देखें, हे कृष्ण ! आपको मैं अपनी प्रशंसा सुनाता हूँ ॥ ४४-५३ ॥ इस पृथिवीपर मेरी समान धनुर्वेदको जाननेवाला दूसरा कोई भी नहीं है, पराक्रममें भी मेरी समान कौन है ? मेरी समान क्षमावान् भी दूसरा कौन है ? तथा मेरी समान क्रोधी भी दूसरा कोई नहीं है ५४ मैं यदि धनुषको धारण करूँ तो देवता, दानव और इकट्ठे हुए सब प्राणियोंका अपने भुजदण्डके पराक्रमसे तिरस्कार कर डालूँ, आप मेरे पराक्रमको सबोंसे श्रेष्ठ जानिये ॥५५॥ जैसे अग्नि गरमीके दिनोंमें घासके ढेरको जलाकर भस्म करडालता है तैसे ही मैं अकेला गांडीव धनुषके ऊपर चढ़ाये हुए बाणरूप अग्निकी ज्वालासे सब सेनासहित कौरवोंको तथा वाह्लीकोंके मण्डलको हराकर

धनुश्च दिव्यं विततं सवाणम् । पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ५७ ॥ इत्येवमुक्त्वाच्युतमेकवीरः क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः । भीमं मुमुक्षुः समरे मयातः कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनश्लाघायां
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । समागमे पांडवसृञ्जयानां महाभये मामकानामगाधे । धनञ्जये तात रणाय याते वभूव तद्युद्धमथो नु कीदृक् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । तेषामनीकानि बृहद्ध्वजानि रणे-समृद्धानि समागतानि । गर्जन्ति भेरीनिनदोन्मुखानि नादैर्यथा मेघगणास्तपान्ते ॥ २ ॥ महागजाभ्राकुलमस्त्रतोयं वादित्र-

---

भस्म करडालूँगा ॥ ५६ ॥ मेरे हाथमें वाणोंकी तथा वाणसहित दिव्य धनुषकी रेखायें पड़ी हुई हैं और मेरे पैरोंमें भी रथ तथा ध्वजाके चिन्ह हैं, मैं जिस समय युद्धमें जाकर खड़ा होऊँगा, उस समय मुझे कोई भी नहीं जीतसकेगा ॥ ५७ ॥ लालताल आँखें किये और शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रेष्ठ वीर अर्जुनने श्रीकृष्णजीसे ऐसा कहकर, भीमसेनकी रक्षा करनेके लिये और कर्णके धड़परसे शिरको काट गिरानेकी इच्छासे एकसाथ युद्धमें चढ़ायी करदी ॥५८ ॥ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे तात सञ्जय ! पांडव और सृञ्जयोंका मेरे योधाओंके साथ महासंग्राम होनेलगा, उस समय अर्जुन रणमें कर्णके सामने युद्ध करनेको गया, इस समय उनका युद्ध किस प्रकारका हुआ था यह मुझे सुना ॥ १ ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! पांडवोंकी सेनाके असंख्यों विभाग महावली और वड़ी २ ध्वजाओंवाले थे, वे भेरियोंके शब्द करतेहुए जैसे चौमासेमें मेघ गरजते हैं तैसे गरजनेवाले ॥ २ विना ही ऋतुके

नेमितलशब्दवच्च । हिरण्यचित्रायुधविद्युतञ्च शरासिनाराचमहा-
स्त्रधारम् ॥ ३ ॥ तद्भीमवेगं रुधिरौघवाहि खड्गाकुलं क्षत्रिय-
जीवघाति । अनार्त्तवं क्रूरमनिष्टवर्षं बभूव तत् संहरणं प्रजानाम् ४
एकं रथं संपरिवार्य मृत्युं नयन्त्यनेके च रथाः समेताः । एकस्त-
थैकं रथिनं रथाग्र्यास्तथा रथश्चापि रथाननेकान् ॥ ५ ॥ रथं
ससूतं सहयञ्च कञ्चित् कश्चिद्रथी मृत्युवशं निनाय । निनाय
चाप्येकगजेन कश्चिद्रथान् बहून् मृत्युवशं तथाश्वान् ॥ ६ ॥
रथान् ससूतान् सहयान् गजांश्च सर्वानरीन्मृत्युवशं शरौघैः।निन्ये
हयांश्चैव तथा ससादीन् पदातिसंघांश्च तथैव पार्थः ७ कृपः
शिखण्डी च रणे समेतौ दुर्योधनं सात्यकिरभ्यगच्छत् । श्रुतश्रवा

प्रजाका संहार करनेवाली युद्धरूप अनिष्ट सूचक भयानक वर्षा होनेलगी, जिसमें बड़े२ हाथी रूप मेघ भरेहुए थे, जिसमें अस्त्र-रूप जलकी वर्षा होरही थी, बाजे रथोंके पहिये तथा हाथोंकी हथेलियोंकी ध्वनियेंरूप गर्जनायें होरही थीं, सुवर्णसे चितेहुए आयुधरूप बिजलियें चमक रही थी, बाण तलवार और नाराच-रूप बड़े २ अस्त्रोंकी धारें गिररही थीं, उनका वेग बडा ही भया-नक था, रुधिरकी नदियें बहरही थीं, तलवारें उछल रही थीं और क्षत्रियोंका संहार होरहा था ॥ ३ ॥४ ॥ अनेकों रथी इकट्ठे हो एक रथी को घेरकर उसका नाश करनेलगे, ऐसे ही एक रथी एक रथीको अथवा अनेकों रथियोंको घेर कर उनका नाश करनेलगे५ कोई रथी सारथी और घोड़ों सहित कितने ही रथियोंको मरणकी शरणमें भेजनेलगा, कोई योधा एक हाथीसे बहुतसे रथी और घुड़सवारोंको मृत्युके अर्पण करनेलगा ॥ ६ ॥ इस समय अर्जुन बाणोंकी मारसे घोड़े और सारथियों सहित रथोंकी, हाथियोंका घुड़सवारों सहित घोडोंका और पैदलोंका संहार करनेलगा ७ कृपाचार्य और शिखण्डी रणमें युद्ध करनेलगे, सात्यकीने दुर्यो-

द्रोणसुतेन सार्द्धं युधामन्युश्चित्रसेनेन सार्द्धम् ॥ ८ ॥ कर्णस्य पुत्रन्तु रथी सुषेणं समागतं सृञ्जयश्चोत्तमौजाः । गान्धारराजं सहदेवः क्षुधार्त्तो महर्षभं सिंह इवाभ्यधावत् ॥ ९ ॥ शतानीको नाकुलिः कर्णपुत्रं युवा युवानं वृषसेनं शरौघैः । समार्पयत् कर्णपुत्रश्च शूरः पाञ्चालेयं शरवर्षैरनेकैः ॥ १० ॥ रथर्षभः कृतवर्माणमार्च्छन्माद्रीपुत्रो नकुलश्चित्रयोधी । पंचालानामधिपो याज्ञसेनिः सेनापतिः कर्णमार्च्छत् ससैन्यम् ॥ ११ ॥ दुःशासनो भारत भारती च संशप्तकानां पृतना समृद्धा । भीमं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठं भीमं समार्च्छत्तमसह्यवेगम् ॥१२॥ कर्णात्मजं तत्र जघान शूरस्तथाच्छिनच्चोत्तमौजाः प्रसह्य । तस्योत्तमाङ्गं निपपात भूमौ निनादयद्गां

धनके ऊपर चढायी करदी, श्रुतश्रवा अश्वत्थामाके साथ युद्ध करनेलगा और युधामन्यु चित्रसेनके साथ लडनेलगा ॥ ८ ॥ भूखसे घबडायाहुआ सिंह जैसे बड़े बैलके ऊपर जाचढता है तैसे ही सृञ्जयवंशका रथी उत्तमौजा कर्णके पुत्र सुषेणके सामने और सहदेव गांधारोंके राजा शकुनिके सामने जाचढा ९ नकुलका जवान पुत्र शतानीक कर्णके जवान पुत्र वृषसेनके साथ युद्ध करनेलगा और बाणोंकी वर्षा करके उसको पीडा देनेलगा, वीर वृषसेनने भी द्रौपदीके पुत्रके ऊपर बहुतसे बाणोंकी वर्षा करके उसको पीडा दी ॥ १० ॥ विचित्र प्रकारका युद्ध करनेवाले माद्रीके महारथी पुत्र नकुलने कृतवर्माके ऊपर चढायी करदी और पंचालसेनाके स्वामी सेनापति यज्ञसेनके पुत्र धृष्टद्युम्नने कर्णके और उसकी सेनाके ऊपर चढायी करदी ॥११॥ हे भरतवंशी राजन् ! दुःशासनने, भरतवंशी राजाओंकी सेनाने तथा संशप्तगणोंकी महाबलवती सेनाने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ असह्य वेगवाले तथा रणमें भयानक दीखनेवाले भीमसेनके ऊपर चढायी करदी ॥ १२ ॥ उधर उत्तमौजाने एक साथ सुषेणको मारकर उसके शिरको काटगिराया और वह शिर पृथिवी तथा आकाशको भयङ्कर

निनदेन खं च ॥ १३ ॥ सुषेणशीर्षं पतितं पृथिव्यां विलोक्य कर्णोऽथ तदार्त्तरूपः । क्रोधाद्धयांस्तस्य रथं ध्वजञ्च बाणैः सुधारैर्निशितैरकृन्तत् ॥ १४ ॥ स तूत्तमौजा निशितैः पृषत्कै-र्विव्याध खड्गेन च भास्वरेण । पार्ष्णिग्रहांश्चैव कृपस्य हत्वा शिखण्डिवाहं स ततोऽध्यरोहत् ॥ १५ ॥ कृपन्तु दृष्ट्वा विरथं रथ-स्थो नैच्छच्छरैस्ताडयितुं शिखण्डी । तं द्रौणिरावार्य रथं कृपस्य समुज्जहे पङ्कगतां यथा गाम् ॥ १६ ॥ हिरण्यवर्मा निशितैः पृष-त्कैस्तवात्मजानामनिलात्मजो वै । अतापयत् सैन्यमतीव भीमः काले शुचौ मध्यगतो यथार्कः ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलद्वन्द्वयुद्धे
पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

शब्दसे भरताहुआ पृथिवी पर आपड़ा ॥ १३ ॥ सुषेणके मस्त-कको पृथिवी पर पड़ाहुआ देखकर कर्ण बड़ा ही व्याकुल होगया और उसने क्रोधमें भरकर उत्तम धारवाले तेजकिये हुए बाणको छोड़ा, जिससे उत्तमौजाके घोड़ोंको, रथको तथा ध्वजाको काट कर पृथिवी पर गिरादिया ॥ १४ ॥ परन्तु वीर उत्तमौजाने तेज कियेहुए बाण मारकर कृपाचार्यके पृष्ठरक्षकोंको बींधडाला और उनके सब घोड़ोंको मारडाला तथा फिर अपने आप शिखंडीके रथपर चढबैठा ॥ १५ ॥ रथमें बैठेहुए शिखण्डीने कृपाचार्यको बिना रथका देखा, इसलिये उनको बाणोंके प्रहारसे पीड़ित करना नहीं चाहा, तदनन्तर अश्वत्थामाने कृपाचार्यके रथको पीछेको लौटाया और कँदनमें फँसी हुई गौकी समान रणमेंसे उनका उद्धार किया ॥ १६ ॥ उस समय दूसरी ओर जो सोनेका कवच पहरे हुए था ऐसा पवनकुमार भीमसेन तेज कियेहुए बाणोंकी मारामार करके जैसे गरमीमें आकाशके मध्यभागमें चढ़ाहुआ सूर्य लोकोंको तपाता है तैसे ही तुम्हारे पुत्रकी सेनाको अत्यन्त सन्ताप देनेलगा ॥ १७ ॥ पिचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥

सञ्जय उवाच। अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे द्विषद्भिरेको बहुभिः समावृतः। महारणे सारथिमित्युवाच भीमश्चमूं वाहय धार्त्तराष्ट्रीम् ॥ १ ॥ त्वं सारथे याहि जवेन वाहैर्नयाम्येतान् धार्त्तराष्ट्रान् यमाय। सञ्चोदितो भीमसेनेन चैवं स सारथिः पुत्रबलं त्वदीयम् २ प्रायात्ततः सत्वरमुग्रवेगो यतो भीमस्तद्बलं गन्तुमैच्छत्। ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः प्रत्युद्ययुस्तं कुरवः समन्तात् ॥ ३ ॥ भीमस्य वाहाग्र्यमुदारवेगं समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः। ततः शरानापततो महात्मा चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः। ते वै निपेतुस्तपनीयपुङ्खा द्विधा त्रिधा भीमशरैर्निकृत्ताः ॥ ४ ॥ ततो राजन्नागरथाश्वयूनां भीमाहतानां वरराजमध्ये। घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र वज्राहता

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! इसके बाद बड़ा भयानक युद्ध होनेलगा, उस महा संग्राममें बहुतसे शत्रुओंने मिल कर अकेले भीमको घेरलिया, उस समय भीमने अपने सारथीसे कहा कि-हे सारथी! तू घोड़ोंको हाँककर शीघ्र ही मुझे कौरवोंकी सेनामें लेचल, मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको यमलोकमें पहुँचाऊँगा, भीमसेनने अपने सारथीसे ऐसा कहा, तब भीम जिस सेनामें जाना चाहता था उस तेरे पुत्रकी सेनामें सारथी भीमको फुरतीसे लेगया तब तो कौरवपक्षके योधा हाथी, घोड़े, रथ, पैदलोंको साथ ले चारों ओरसे भीमसेनके ऊपर चढ आये और बड़े ही वेगवाले भीमके उत्तम घोड़ोंके ऊपर चारों ओरसे असंख्यों बाणोंकी मारामार करनेलगे ॥ १-३ ॥ तब महात्मा भीम भी सोनेके परोंवाले बाण छोड़कर सामनेसे आनेवाले बाणोंको काटने लगा और भीमके बाणोंसे सोनेकी पूँछवाले बाणोंके दो २ तीन २ टूकडे होकर गिरनेलगे ॥ ४ ॥ हे राजन्! बडे २ राजाओंके हाथी, रथ, घोडे और पैदलोंका भी भीमसेन संहार करनेलगा, तब तो जैसे वज्रसे फाटेहुए पर्वतोंका शब्द होता है

नामिव पर्वतानाम् ॥ ५ ॥ ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या निर्भि-
न्नन्तो भीमशरप्रवेकैः । भीमं समन्तात् समरेऽभ्यरोहन् वृक्षं शकु-
न्ता इव जातपक्षाः ॥ ६ ॥ ततोऽभियाते तव सैन्ये स भीमः प्रादु-
श्चक्रे वेगमनन्तवेगः । यथान्तकाले क्षपयन् दिधक्षुर्भूतान्तकृत्
काल इवात्तदण्डः ॥ ७ ॥ तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं नाशक्नु-
वन् वारयितुं त्वदीयाः । व्याचाननस्यापततो यथैव कालस्य काले
हरतः प्रजा वै ॥ ८ ॥ ततो बलं भारत भारतानां प्रदह्यमानं समरे
महात्मना । भीतं दिशोऽकीर्य्यत भीमनुन्नं महानिलेनाभ्रगणो
यथैव ॥ ९ ॥ ततो धीमान् सारथिमब्रवीद्बली स भीमसेनः पुन-
रेव हृष्टः । सूताभिजानीहि स्वकान् परान् वा रथान् ध्वजश्चाप-

तैसे ही उन हाथी घोड़ोंका घोर शब्द होने लगा ॥ ५ ॥ उस
समय भीम बाणोंकी मारसे मुख्य २ राजाओंके ऊपर प्रहार
कर रहा था तो भी जैसे पर निकले हुए पक्षी वृक्षोंके ऊपरको
झपटते हैं, तैसे ही उन्होंने चारों ओरसे भीमसेनके ऊपर धावा
करदिया ॥ ६ ॥ तब तो जैसे महावेगवाला और सकल प्राणि-
योंका संहार करनेवाला काल हाथमें दण्ड लेकर संहार करने
लगता है, तैसे ही भीम भी बड़े वेगसे शत्रुओंके ऊपर चढायी
करके उनका संहार करनेलगा ॥ ७ ॥ उस समय तुम्हारे पक्षके
योधा महावेगवान् भीमके बड़ेभारी वेगको रोक न सके, जैसे
प्रलयके समय काल प्रजाका संहार करनेके लिये मुख फाड
कर चढ आता है तैसे ही भीमसेन भी तुम्हारी सेनाके ऊपर
जाचढा ॥ ८ ॥ हे भारत ! तब तो तुम्हारा सेनादल महात्मा
भीमकी मारसे भस्म होनेलगा और जैसे प्रबल पवन चलने पर
घन घटायें बिखरकर चारों ओरको बिलाजाती हैं तैसे ही तुम्हारी
सेना भी भीमसेनसे डरगयी और बिखरकर चारों दिशाओंमेंको
भागनेलगी ॥ ९ ॥ यह देखकर बुद्धिमान् और बली भीमसेन

ततः समेतान् ॥ १० ॥ युध्यन् ह्यहं नाभिजानामि किञ्चिन्मा सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः । अरीन् विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो रथो ध्वजाग्राणि धुनोति मे भृशम् ॥ ११ ॥ राजातुरो नागमयत् किरीटी वहूनि दुःखान्यभियातोऽस्मि सूत । एतद्द दुःखं सारथे धर्मराजो यन्मां हित्वा यातवान् शत्रुमध्ये ॥ १२ ॥ नैनं जीवं नापि जानाम्यजीवं वीभत्सुम्वा तन्ममाद्यातिदुःखम् ॥ १३ ॥ सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं विनाशयिष्ये परमप्रतीतः । एतं निहत्याजिमध्ये समेतं प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाद्य ॥ १४ ॥ सर्वांस्तूणान् सायकाना-मवेक्ष्य किं शिष्टं स्यात् सायकानां रथे मे । का वा जातिः किं प्रमा-

---

प्रसन्न हुआ और अपने सारथीसे कहनेलगा, कि-हेसूत! रथ और ध्वजदण्ड इकट्ठे होकर हमारे सामनेको चढ़े चले आरहे हैं, इनमें हमारे कौनसे हैं और शत्रुपक्षके कौनसे हैं, इनको तू पहचान १० युद्ध करते समय मुझे अपनी और परायी सेनाका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, इसलिये मेरे हाथसे अपनी ही सेनाके वाण न लगजायँ, इसका तू ध्यान रखना, हे विशोक नामक सारथी! चारों ओर शत्रु खड़े दीखरहे हैं मेरा रथ ध्वजाके अग्रभागोंको वहुनही हिला रहा है ११ राजा युधिष्ठिर प्रहारोंसे घवड़ागये हैं और किरीटधारी अर्जुन अभी तक आया नहीं है, हे सूत! इस कारण मैं वड़े ही दुःखमें डूवरहा हूँ, हे सारथे! न्यायवान् धर्मराज मुझे शत्रुओंके घेरेमें छोड़कर चलेगये, इसलिये मुझे खेद होरहा है, वे आज जीते हैं या मारेगये तथा अर्जुन कहाँ है, यह न मालूम होनेसे आज मुझे वड़ा दुःख होरहा है ॥ १२ ॥ १३ ॥ आज मैं शत्रुकी भयानक सेनाका नाश करूँगा, यह मुझे पक्का निश्चय है और शत्रुकी सेनाका रणभूमिमें नाश करके मैं और तू दोनों प्रसन्न होंगे ॥ १४ ॥ हे सारथी! मेरे रथमें सव वाण और भाथों को देख उसमें कितने वाण और कितने भाथे वाकी रहे हैं,

णञ्च तेषां ज्ञात्वा व्यक्तं तन्ममाचक्ष्व सूत ॥१५॥विशोक उवाच ।
षण्मार्गणानामयुतानि वीर क्षुराश्च भल्लाश्च तथायुताख्याः ।
नाराचानां द्वे सहस्रे च वीर त्रीण्येव च प्रदराणां स्म पार्थ १६
अस्त्यायुधं पाण्डवेयावशिष्टं न यद्वहेच्छकटं षड्गवीयम् । एतद्वि-
द्वन् मुञ्च सहस्रशोऽपि गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति ॥१७॥प्रासाश्च
मुद्गराः शक्तयस्तोमराश्च मा भैषीस्त्वं संक्षयादायुधानाम् ॥ १८ ॥
भीम उवाच । सूताद्यैनं पश्य भीमप्रयुक्तैः संछिंदद्भिः पार्थिवानां
सुवेगैः । छन्नं बाणैराहवं घोररूपं नष्टादित्यं मृत्युलोकेन तुल्यम् १९
अद्यैतद्वै विदितं पार्थिवानां भविष्यति साकुमारञ्च सूत । निमग्नो
वा समरे भीमसेनो ह्येकः कुरून् वा समरे व्यजैषीत् ॥ २० ॥ सर्वे

किस किस जातिके बाण हैं और कितने हैं इसका ठीक २ निश्चय करके मुझे बता ॥ १५ ॥ विशोकने कहा-कि-हे वीर भीम ! हमारे पास साठ हजार मार्गण जातिके बाण, दश हजार क्षुर तथा भल्ल जातिके बाण, दो हजार नाराच और तीन हजार प्रदरजातिके बाण हैं ॥ १६ ॥ हे भीम ! हमारे पास अभी इतने अधिक शस्त्र बचेहुए हैं, कि-जिनको छः बैलोंसे जुता छकड़ा भी नहीं खेंचसकता, हे विद्वान् भीम ! तुम्हारे पास बहुतसा धन मानी जानेवालीं गदायें तथा तलवारें हजारोंकी संख्यामें हैं, उनको शत्रुओंके ऊपर छोड़ो ॥ १७ ॥ हजारों प्रास मुद्गर, शक्तियें और तोमर हैं, इसलिये यह भय मत करो, कि आयुध निबड़ जायँगे ॥ १८ ॥ भीमसेनने कहा, कि-हे सारथी ! मेरे हाथसे वेगके साथ छूटतेहुए और राजाओंका संहार करने वाले बाणोंसे ढकीहुई यह रणभूमि आज सूर्यरहित हुए मृत्युलोक की समान भयानक दीख रही है, इसको तू देख ॥ १९ ॥ आज कुमारोंसे लेकर सब राजे जानेंगे, कि-या तो भीमसेन रणमें मारागया अथवा अकेले भीमने ही सब कौरवोंको जीतलिया २०

संख्ये कुरवो निष्पतन्तु मां वा लोका कीर्त्तयन्त्वाकुमारम् । सर्वा-
नेकस्तानहं पातयिष्ये ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु ॥ २१ ॥ आशा-
स्तारः कर्म चाप्युत्तमं ये तन्मे देवाः केवलं साधयन्तु । आयात्वि-
हाद्यार्जुनः शत्रुघाती शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः ॥२२ ॥ ईक्षस्वैतां
भारतीं दीर्य्यमाणामेते कस्माद्विद्रवन्ते नरेन्द्राः । व्यक्तं धीमान्
सव्यसाची नराग्र्यः सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः ॥ २३ ॥ पश्य
ध्वजांश्च द्रवतो विशोक नागान् हयान् पत्तिसंघांश्च संख्ये ।
रथान् विकीर्णान् शरशक्तिताडितान् पश्यस्वैतान्रथिनश्चैव सूत२४
आपूर्य्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना ।
धनञ्जयस्याशनितुल्यवेगैर्ग्रस्ता शरैः काञ्चनबर्हिवाजैः ॥ २५ ॥

बालकों तक सब ही लोग या तो आज रणमें कौरवोंको मरा हुआ कहेंगे अथवा भीमको ही मारागया कहेंगे, या तो मैं ही अकेला सब कौरवोंको मारे डालता हूँ अथवा सब कौरव ही मुझे छेदे डालते हैं ॥२१॥ इस समय तो मेरी इतनी ही प्रार्थना है, कि-जो उत्तम कर्मके नियन्ता हैं वे देवता मेरी इतनी ही आशाको सिद्ध करदें, कि-जैसे आवाहन करने पर इन्द्र तुरन्त ही यज्ञमण्डपमें आजाता है, तैसे ही शत्रुओंका नाश करनेवाला अर्जुन अभी यहाँ आपहुँचे ॥ २२ ॥ हे विशोक ! तू इस छिन्न भिन्न हुई भारती सेनाकी ओरको देख, ये राजे क्यों भागरहे हैं ? मुझे तो ऐसा निश्चय होता है, कि-पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् अर्जुन बाणोंकी मारसे इन राजाओंकी सेनाको फुरतीके साथ ढकेदेता है ॥ २३ ॥ हे विशोक ! वह देख घुड़सवार, हाथीसवार, ध्वजावाले और पैदलोंका सब समूह रणमेंसे भागरहा है तथा रथ और रथी बाणोंकी और शक्तियोंकी मार खातेहुए इधर उधरको भागरहे हैं ॥ २४ ॥ और कौरवोंकी भरपूर सेना अर्जुनके वज्रकी समान वेगवाले, मोरके परोंसे शोभायमान सोने

एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः पदातिसङ्घानतिमर्दयन्तः । संमुह्य-
मानाः कौरवाः सर्व एव द्रवन्ति नागा इव दावभीताः ॥ २६ ॥
हाहाकृताश्चैव रणे विशोक मुञ्चन्ति नादान् विपुलान् गजेन्द्राः २७
विशोक उवाच । किं भीम नैनं त्वमिहाश्रृणोपि विस्फारितं गाण्डि-
वस्यातिघोरम् । क्रुद्धेन पार्थेन विकृष्यतोऽत्र कच्चिन्नेमौ तव कर्णौ
विनष्टौ ॥ २८ ॥ सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः कपिर्ध्वजो
दृश्यते हस्तिसैन्ये । नीलाद् घनाद्विद्युतमुच्चरन्तीं तथा पश्य
विस्फुरन्तीं धनुर्ज्याम् ॥ २९ ॥ कपिर्ह्यसौ वीक्षते सर्वतो वै ध्व-
जाग्रमारुह्य धनञ्जयस्य । वित्रासयन् रिपुसंघान् विमर्दे बिभेम्य-
स्मादात्मनैवाभिवीक्ष्य । ३० ॥ विभ्राजते चातिमात्रं किरीटं

की पूँछवाले वाणोंके बड़भारी महारको सहरही है, यह भी
देख ॥ २५ ॥ और हे विशोक ! ये रथ, घोड़े और हाथियोंके
दल रणमें असंख्यों पैदलोंको कुचलतेहुए दौडरहे हैं और सब
कौरव भी मूढ़से होकर दावानलसे घबडाये हुए हाथियोंकी समान
भागरहे हैं, हाथी रणभूमिमें जोरसे चिंघाडरहे हैं, उनकी इस
दशाको देखकर सब हाहाकार कररहे हैं, उधरको देख २६-२७
विशोकने कहा, कि—हे भीम ! क्रोधमें भराहुआ अर्जुन युद्धमें
गांडीव धनुषको खेंचकर उसके ऊपर टङ्कार देरहा है, उसका
महाप्रचण्ड शब्द क्या तुम्हें सुनाई नहीं आता ? और इस दारुण
शब्दसे क्या तुम्हारे दोनों कान फटे नहीं जाते ?॥२८॥ हे भीम!
तुम्हारी सब इच्छायें पूरी होगयीं,वह देखो, हाथियोंकी सेनामें
कपिध्वज(अर्जुन)दीखरहा है, जैसे काली घनघटामें बिजली चम-
कती हो तैसेही हाथियोंकी सेनामें गांडीव धनुषकी डोरी चमकरही
है ॥ २९ ॥ वह देखो, वानरराज(हनुमान्) अर्जुनके रथकी
ध्वजाके दण्डे पर चढ़कर सब शत्रुओंको त्रास देता चारों
ओरको निहारता हुआ दीखरहा है और मैं भी उसको देखकर

विचित्रमेतच्च धनञ्जयस्य । दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः ॥ ३१ ॥ पार्श्वे भीमं पाण्डुगभ्रप्रकाशं पश्यस्व शंखं देवदत्तं सुघोषम् । अभीषुहस्तस्य जनार्दनस्य विगाहमानस्य चमूं परेषाम् ॥ ३२ ॥ रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्द्दनस्य । चक्रं यशोवर्द्धनं केशवस्य सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर ॥ ३३ ॥ महाद्विपानां सरलद्रुमोपमाः करा निकृत्ताः प्रपतन्त्यमी क्षुरैः । किरीटिना तेन पुनः ससादिनः शरैः प्रभिन्नाः कुलिशैरिवाद्रयः ॥ ३४ ॥ तथैव कृष्णस्य च पाञ्चजन्यं महार्हमेतं द्विजराजवर्णम् । कौन्तेय पश्योरसि कौस्तुभञ्च जाज्वल्यमानं विजयां स्रजञ्च ॥ ३५ ॥ ध्रुवं रथाग्र्यः

भयभीत होरहा हूँ ॥३० ॥ अर्जुनका विचित्र मुकुट तथा उसके ऊपर सूर्यकी समान कान्तिवाला दिव्य मणि भी देखो बड़ी ही शोभा देरहा है ॥ ३१ ॥ और रथके घोड़ोंकी रासें पकड़कर शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करते श्रीकृष्णजीकी बगलके नीचे स्वेत मेघकी समान कान्ति और मनोहर शब्दवाले देवदत्त नामवाले शङ्खको देखो ॥३२॥ और हे वीर ! श्रीकृष्णजीके दूसरे कन्धेमें लटकते हुए सूर्यकी समान कान्तिवाले वज्रनाम नामक चक्रको देखो, यह चक्र कृष्णके यशको बढ़ानेवाला है और यादव इसकी नित्य पूजा करते हैं ॥ ३३ ॥ अर्जुन, देवदारुके वृक्षोंकी समान हाथियोंकी बड़ी२ शुण्डोंको छुरे मारकर काटरहा है और वे पृथिवी पर गिररही हैं तथा वज्रसे काटेहुए पर्वतोंकी समान, अर्जुनके बाणोंके प्रहार होते ही घुड़सवारों सहित घोड़े भी रणमें तले ऊपर गिररहे हैं ॥ ३४ ॥ हे कुन्तीनन्दन भीम ! श्रीकृष्णके चन्द्रमाकी समान सफेद बहुमूल्य पाञ्चजन्य शङ्खको देखो तथा उनके वक्षःस्थल पर उजाला करनेवाले चमकीले कौस्तुभ मणि और विजयमालाको भी देखो ॥३५॥ इससे निःसन्देह मालूम होता

समुपैति पार्थो विद्रावयन् सैन्यमिदं परेषाम् । सिताभ्रवर्णैरसित-
प्रयुक्तैर्हयैर्महार्हैं रथिनां वरिष्ठः ॥ ३६ ॥ रथान् हयान् पत्तिगणांश्च
सायकैर्विदारितान् पश्य पतन्त्यमी यथा । तवानुजेनामरराजतेजसा
महावनानीव सुपर्णवायुना ॥ ३७ ॥ चतुःशतान् पश्य रथानिमान्
हतान् सवाजिसूतान् समरे किरीटिना । महेषुभिः सप्तशतानि
दन्तिनां पदातिसार्दांश्च हताननेकशः ॥ ३८ ॥ अयं समभ्येति
तवान्तिकं बली निघ्नन् कुरूंश्चित्र इव ग्रहोऽर्जुनः । समृद्धकामोऽसि
हतास्तवाहिता बलं तवायुश्च चिराय वर्द्धताम् ॥ ३९ ॥ भीम
उवाच । ददानि ते ग्रामवरांश्चतुर्दश प्रियाख्याने सारथे सुप्रसन्नः ।

है, कि–काले और सफेद रङ्गके तथा बहुमूल्य घोड़ोंवाले रथमें बैठकर शत्रुओंकी सेनाको भगाताहुआ महारथी अर्जुन ही आरहा है और कृष्ण उसके घोड़ोंको हाँकरहे हैं इन्द्रकी समान तेजस्वी तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन बाणोंसे रथ, घोड़े और पैद-लोंका संहार कररहा है तथा गरुड़के परोंकी पवनकी झपेटसे जैसे बड़े२ वन टूट कर गिरजाते है तैसे ही ये घोड़े आदि भी पृथिवी पर गिररहे हैं, इनको देखो ॥ ३७॥ वह देखो अर्जुन बड़े २ बाणोंसे रणमें सारथी और घोड़ोंसहित चारसौ रथियोंका सात सौ हाथियोंका, अनेकों पैदलोंका, घुड़सवारोंका और रथोंका संहार कररहा है ॥ ३८ ॥ यह बलवान् अर्जुन, चित्रा नक्षत्रमें स्थित ग्रहकी समान कौरवोंका संहार करता २ तुम्हारे पासको चला आरहा है, इसलिये आज तुम्हारी सब कामनायें सफल होगयी हैं और तुम्हारे शत्रुओंका नाश होगया, तुम्हारा बल और आयु चिरकाल तक बढता रहे ॥ ३९ ॥ भीमसेनने कहा, कि–हे सारथी विशोक ! तूने मुझे अर्जुनके आपहुँचनेका शुभ-समाचार सुनाया, इससे मैं तेरे ऊपर बड़ा ही प्रसन्न हूँ और

दासीशतञ्चापि रथांश्च विंशतिं यदर्जुनं वेदयसे विशोक ॥४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि भीमसेनविशोकसंवादे
पट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं सिंहनादञ्च संयुगे । अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं चोदय वाजिनः ॥ १ ॥ अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दोऽर्जुनमब्रवीत् । एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ २ ॥ तं यान्तमश्वैर्हिमशंखवर्णैः सुवर्णमुक्तामणिजालनद्धैः । जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं जयाय देवेन्द्रमिवोग्रमन्युम् ॥ ३ ॥ रथाश्वमातङ्गपदातिसङ्घा बाणस्वनैर्नेमिखुरस्वनैश्च । संनादयन्तो वसुधां दिशश्च क्रुद्धा नृसिंहा जयमभ्युदीयुः ॥ ४ ॥ तेषाञ्च पार्थस्य च मारिषासीद्देहासुपापत्तपर्णं

तुझे बड़े २ चौदह गाँव, सौ दासी और बीस रथ पारितोषक (ईनाम) देताहूँ ॥ ४० छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥

सञ्जय कहता है, कि-युद्धमें रथोंकी घरघरहाट तथा सिंहकी समान गर्जनाको सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि-आप घोड़ोंको फुरतीसे हाँकिये ॥१॥ अर्जुनकी बात सुनकर गोविंदने अर्जुनसे कहा,कि-जहाँ भीमसेन खडा है तहाँ तेरे रथको शीघ्र ही पहुँचाये देता हूँ ॥ २ ॥ तदनन्तर जैसे इन्द्रने जम्भासुरको मारनेके लिये वज्र धारण करके बड़ेभारी क्रोधके आवेशसे विजययात्रा की थी, तैसे ही अर्जुन भी बरफ और शङ्खोंकी समान सफेद रङ्गके तथा मोती और मणियोंके गहनोंसे सजेहुए घोड़ोंसे जुड़े रथमें बैठकर विजययात्राके लिये चलपडा ॥ ३ ॥ मनुष्योंमें सिंह समान योधा क्रोधके आवेशमें आकर रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंके साथ बाणोंके, रथोंके पहियोंके और घोड़ोंकी खुरियोंके शब्दसे पृथिवी और दिशाओंको गुञ्जारते हुए अर्जुनके सामने चढ़आये ॥ ४ ॥ और पहले त्रिलोकीके लिये जैसे महाविजयी

सुयुद्धम् । त्रैलोक्यहेतोर्ह्यसुरैर्यथासीद्देवस्य विष्णोर्जयतां वरस्य ५
तैरस्तमुच्चावचमायुधन्तदेकः प्रचिच्छेद किरीटमाली । क्षुरार्द्धचन्द्रै-
र्निशितैश्च भल्लैः शिरांसि तेषां बहुधा च बाहून् ॥ ६ ॥ छत्राणि
वालव्यजनानि केतूनश्वान् रथान् पत्तिगणान् द्विपांश्च । ते पेतु-
रुर्व्यां बहुधा विरूपा वातप्रभग्नानि यथा वनानि ॥ ७ ॥ सुवर्ण-
जालावतता महागजाः सवैजयन्तीध्वजयोधकल्पिताः । सुवर्णपुंखै-
रिषुभिः समाचिताश्चकाशिरे प्रज्वलिता यथाचलाः ॥ ८ ॥
विदार्य्य नागाश्वरथान् धनञ्जयः शरोत्तमैर्वासववज्रसन्निभैः ।
द्रुतं ययौ कर्णजिघांसया तथा यथा मरुत्वान् बलभेदने पुरा ९
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यमरिन्दमः । प्रविवेश महाबाहुर्मकरः

विष्णुदेवका असुरोंके साथ युद्ध हुआ था तैसे ही अर्जुनका भी चढ़कर आयेहुए शत्रुपक्षके योधाओंके साथ देह, प्राण और पापोंका नाश करनेवाला महायुद्ध होनेलगा ॥ ५॥ इस युद्धमें शत्रुपक्षके योधाओंने छोटे बड़े बहुतसे शस्त्रोंकी जो वर्षा करी, उसको अकेले अर्जुनने क्षुर, अर्धचन्द्र और भल्ल जातिके तेज कियेहुए बाण मारकर काटडाला तथा उन योधाओंके मस्तक, भुजदण्ड, चँवर, पताकायें, घोड़े, रथ,पैदल और हाथियोंको भी काटडाला, वे सब प्रायः विरूप—भयानक होकर,पवनके झपटेसे जैसे बड़े२ वन टूटकर पृथिवी पर पड़ते हैं तैसे गिरनेलगे ६॥७ इस युद्धमें सुनहरी झूलोंसे ढकेहुए तथा वैजयन्ती मालाय और योधाओंकी उठायीहुई ध्वजाओंसे शोभायमान बड़े २ हाथी सोनेकी पूँछोंवाले बाणोंसे विंधगये थे, इसकारण वे जलतेहुए पर्वतोंकी समान शोभायमान दीखते थे ॥ ८ ॥ अर्जुन इन्द्रके वज्रकी समान उत्तम बाणोंसे हाथी, घोड़े, रथ, आदिके टुकड़े २ करके जैसे पहले इन्द्रने बल दैत्यका नाश किया था तैसे ही अर्जुन कर्णका नाश करनेके लिये एक साथ उसके ऊपर जाचढ़ा ९

सागरं यथा ॥ १० ॥ तं दृष्ट्वा तावका राजन् रथपत्तिसमन्विताः । गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन् ॥ ११ ॥ तेषामापततां पार्थमारावः सुमहानभूत् । सागरस्येव क्षुब्धस्य यथा स्यात् सलिलस्वनः ॥ १२ ॥ ते तु तं पुरुषव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः । अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम् ॥ १३ ॥ तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम् । अर्जुनो व्यधमत् सैन्यं महावातो घनानिव ॥ १४ ॥ तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः महारिणः । अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ १५ ॥ ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् । प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति ॥ १६ ॥ ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः

और जैसे मगर सागरमें घुसता हो तैसे वह पुरुषव्याघ्र, शत्रुओंका दमन करनेवाला महाबाहु अर्जुन तुम्हारी सेनामें घुसगया १० तब हे राजन् ! तुम्हारे योधाओंने हर्षमें भरकर बहुतसे रथ, पैदल, हाथी, घोड़े और घुड़सवार आदिको साथ लेकर पाण्डुपुत्र अर्जुनके ऊपर धावा करदिया ॥ ११ ॥ समुद्रमें क्षोभ होने पर (तोफान आने पर) जैसे उसके जलका शब्द होता है, तैसे ही अर्जुनके ऊपर चढ़ायी करनेवाले शत्रुपक्षके योधाओंका भी बडाभारी शब्द होनेलगा ॥ १२ ॥ वे महारथी युद्धमें प्राणोंके जानेका भय छोडकर व्याघ्रोंकी समान पुरुषोंमें व्याघ्रसमान अर्जुनके ऊपर जाचढ़े ॥ १३ ॥ और अर्जुनके ऊपर वाणोंकी वर्षा करनेलगे तब तो जैसे बडाभारी पवन बादलोंको बखेर देता है तैसे ही अर्जुन शत्रुसेनाका संहार करनेलगा ॥ १४ ॥ तब तो वे बडे २ धनुषधारी योधा रथोंकी टोलियें बनाकर अर्जुनके सामने जाचढ़े और उसके तीक्ष्ण वाण मारनेलगे ॥ १५ ॥ तब अर्जुनने वाणों की मारसे हजारों रथी, घुडसवार और हाथीसवारोंको यमलोकमें भेजदिया १६ युद्धमें अर्जुनके धनुषमेंसे छूटनेवाले

शरैः । तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः ॥ १७ ॥ तेषाञ्चतुःशतान् वीरान् यतमानान् महारथान् । अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥ १८ ॥ ते वध्यमानाः समरे नानालिंगैः शितैः शरैः । अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ १९ ॥ तेषां शब्दो महानासीत् द्रवतां वाहिनीमुखे । महौघस्येव जलधेर्गिरिमासाद्य दीर्य्यतः ॥ २० ॥ तान्तु सेनां भृशं त्रस्तां द्रावयित्वार्जुनः शरैः । प्रायादभिमुखः पार्थः सूतानीकाय मारिष ॥ २१ ॥ तस्य शब्दो महानासीत् परानभिमुखस्य वै । गरुडस्येव पततः पन्नगार्थे यथा पुरा ॥ २२ ॥ तन्तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः । बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः ॥ २३ ॥ श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान् । त्यक्त्वा प्राणान् महाराज

बाणोंसे महारथी ज्योंही घायल होनेलगे, कि–डरके मारे इधर उधर छिपनेलगे ॥ १७ ॥ उनमेंसे युद्धके लिये उद्योग करते हुए चार सौ महारथियोंको अर्जुनने तेजकियेहुए बाण मारकर यमलोकको भेजदिया ॥ १८ ॥ अर्जुन ज्योंही शत्रुपक्षके योधाओंको भाँति २ के तेज बाण मारनेलगा. तब वे योधा अर्जुनको छोड़कर दशों दिशाओंमेंको भागगये ॥ १९ ॥ समुद्रके बड़ेभारी प्रवाहके पर्वतके साथ टकराने पर जैसे बडाभारी शब्द होता है, तैसे ही सेनाके मुहाने पर भागते हुए योधाओंका बडा भारी कोलाहल होरहा था ॥ २० ॥ अर्जुनने इस प्रकार शत्रुओंकी सेनाको बाणोंकी मारामारसे अत्यन्त बींधकर भगादिया, फिर अर्जुनने कर्णकी सेनाके ऊपर धावा करदिया ॥ २१ ॥ इस समय ऐसा कोलाहल होरहा था, कि–जैसे पहले गरुडने सर्पोंको पकडनेके लिये चढाई की थी और उनमें कोलाहल मचगया था ॥ २२ ॥ अर्जुनकी चढायीके कोलाहलको सुनकर अर्जुनसे मिलना चाहने वाला महाबली भीमसेन बडा ही प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥ और हे

सेनां तव ममर्द ह ॥ २४ ॥ स वायुवीर्य्यप्रतिमो वायुवेगसमो जवे । वायुवद्व्यचरद्भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥ तेनार्द्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशाम्पते । व्यभ्राम्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे ॥ २६ ॥ तान्तु सेनां तदा भीमो दर्शयन् पाणिलाघवम् । शरैरवचकर्त्तोग्रैः प्रेषयिष्यन् यमक्षयम् ॥ २७ ॥ तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वातिमानुषम् । व्यभ्रमन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये ॥ २८ ॥ तथार्दितान् भीमबलान् भीमसेनेन भारत । दृष्ट्वा दुर्य्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥ सैनिकांश्च महेष्वासान् योधांश्च भरतर्षभ । समादिशद्रणे सर्वान् हतं भीममिति स्म ह । तस्मिन् हते हतं मन्ये पाण्डुसैन्यमशेषतः ३०

महाराज ! प्रतापी भीमने जब सुना, कि-अर्जुन आपहुँचा है तब तो वह प्राणोंकी भी परवाह न करके तुम्हारी सेनाका संहार करनेलगा ॥ २४ ॥ और वायुकी समान पराक्रमी तथा वेगवान् प्रतापी वायुपुत्र भीम वायुकी समान रणमें घूमने लगा ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! जिस समय भीमसेन तुम्हारी सेनाको पीडा देनेलगा उस समय जैसे टूटीहुई नौका समुद्रमें डगमगानेलगती है, तैसे ही तुम्हारी सेना भी रणभूमिमें विचलित होउठी ॥ २६ ॥ फिर भीमसेन तुम्हारी सेनाको अपने हाथकी फुरती दिखानेके लिये और उसको यमलोकमें भेजनेके लिये तेज बाणोंसे उसका संहार करनेलगा ॥ २७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय भीमके अमानुषी बलको देखकर, जैसे युगका प्रलय होनेके समय काल के बलको देखकर लोग भ्रममें पडजाते हैं तैसे ही रणके योधा भ्रममें पडगये२८और भीमसेनके हाथसे पीडा पातेहुए भयानक बलवाले योधाओंको देखकर हे भरत वंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दुर्योधन बड़े २ धनुषधारी सैनिकोंको तथा योधाओंको आज्ञा देता हुआ बोला, कि-तुम सब भीमको मारो ॥ २९ ॥ ३० ॥ क्यों

प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तत्र पुत्रस्य पार्थिवाः । भीमं प्राच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः ॥ ३१ ॥ गजाश्च बहुला राजन् नराश्च जयगृद्धिनः । रथस्थिताश्च राजेन्द्र परिवव्रुर्वृकोदरम् ॥३२॥ स तैः परिवृतः शूरैः शूरो राजन् समन्ततः । शुशुभे भरतश्रेष्ठो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ ३३ ॥ परिवेषी यथा सोमः परिपूर्णो विराजते ॥ ३४ ॥ स रराज तथा सङ्ख्ये दर्शनीयो नरोत्तमः । निर्विशेषो महाराज यथारिविजयस्तथा ॥ ३५ ॥ तस्य ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टिं समासृजन् । क्रोधरक्तेक्षणाः क्रूरा हन्तुकामा वृकोदरम् ॥ ३६ ॥ तां विदार्य महासेनां शरैः सन्नतपर्वभिः । निश्चक्राम रणाद्भीमो मत्स्यो जालादिवाम्भसि ॥ ३७ ॥ हत्वा दश सहस्राणि गजानामनिवर्त्तिनाम् । नृणां शतसहस्रे द्वे द्वेशते चैव

कि—जहाँ भीमसेन मारागया, कि पांडवोंकी बाकी सेनाको मैं मरी ही समझता हूँ, तुम्हारे पुत्रकी ऐसी आज्ञाको मान कर राजे चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करतेहुए भीमसेनको ढकने लगे और बहुतसे हाथी, विजय चाहनेवाले मनुष्य तथा रथोंमें बैठेहुए रथियोंने वीर भीमसेनको चारों ओरसे घेरलिया इस समय जैसे चन्द्रमा तारागणोंसे शोभा पाता है तैसे ही हे भरतसत्तम ! भीमसेन शोभा पारहा था ३१—३४ और जैसे पूर्णिमाका चन्द्रमा मण्डलसे शोभा पाता है तैसे युद्धमें उत्तम भीम भी ठीक अर्जुनकी समान ही शोभा पारहा था ॥ ३५ ॥ तदनन्तर क्रोधके कारण जिनकी आँखे लालताल होरही थीं ऐसे वीर राजे भीमसेनको मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३६ ॥ तब भी भीमसेनने अच्छे नमे पर्वोंवाले बाण मारकर कौरवोंकी महासेनाको बखेरडाला और जैसे मच्छ पानीमें पडेहुए जालको तोडकर बाहर निकल आता है तैसे ही रणभूमिमेंसे बाहर निकलआया ॥ ३७ ॥ और पीछेको न हटनेवाले दश हजार हाथियोंका दो लाख और दो सौ पैदलों

भारत ॥ ३८ ॥ पञ्च चाश्वसहस्राणि रथानां शतमेव च। हत्वा मात्स्यन्दयद्भीमो नदीं शोणितवाहिनीम् ॥ ३९ ॥ शोणितोदां रथावर्त्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम्। नरमीनाश्वनक्रान्तां केशशैवल-शाद्वलाम् ॥४०॥ संछिन्नभुजनागेन्द्रां बहुरत्नापहारिणीम्। ऊरु-ग्राहां मज्जपङ्कां शीर्षोपलसमावृताम् ॥ ४१॥ धनुःकाशां शरावापां गदापरिघकेतनाम्। हंसछत्रध्वजोपेतामुष्णीषवरफेनिलाम् ॥४२॥ हारपद्माकराञ्चैव भूमिरेणूर्मिमालिनीम्। आर्य्यवृत्तवतीं संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ ४३ ॥ योधग्राहवतीं संख्ये वहन्तीं पितृ-सादनम्। क्षणेन पुरुषव्याघ्रः प्रावर्त्तयत निम्नगाम् ॥ ४४ ॥ यथा वैतरणीमुग्रां दुस्तरामकृतात्मभिः। तथा दुस्तरणीं घोरां

का पाँच हजार घोड़ोंका और सौ रथोंका संहार करके रण भूमिमें फिर लोहूकी नदी बहादी ॥ ३८ ॥ ३९॥ इस नदीमें लोहूरूप जल भररहा था, रथरूप भवँर पडरहे थे, मनुष्यरूप नाके उसमें भररहे थे, मनुष्यरूप छोटी मछलियों वाली और घोड़ेरूप, मगर मच्छोंवाली तथा केशरूप हरे सेवाल वाली थी ॥ ४०॥ उसमें कटीहुई भुजायें ही मोटे सर्प थे, अनेकों रत्न बह रहे थे, जङ्घायें ही ग्राह थे, मज्जारूप कीच थी और मस्तक-रूप पत्थरोंसे भरीहुई थी ॥ ४१ ॥ इधर उधर धनुषरूप काँस दीखरही थी, बाण गदायें और परिघ नौकासे मालूम होते थे, छत्र और ध्वजायें हंससे मालूम होते थे और बहुमूल्य पगड़ियें झागसी मालूम होती थीं ॥ ४२ ॥ हार कमलसे मालूम होते थे और पृथिवी परसे उड़कर पड़ीहुई धूलि तरङ्गें बनरही थी, कुरु-वंशके व्याघ्रसमान भीमने संग्राममें एक ही क्षणमें अनेकों रत्नोंको हरकर पितृलोकमें पहुँचानेवाली—बड़े मनवाले योधा अनायास ही ही जिसके पार होसकते थे और डरपोक जिसके पार नहीं पहुँच सकते थे ऐसी—रुधिरकी महाभयानक नदी बहादी ॥४३ ॥ ४४॥

भीरूणां भयवर्द्धनीम् ॥ ४५ ॥ यतो यतः पाण्डवेयः प्रविष्टो रथसत्तमः । ततस्ततोऽपातयत योधान् शतसहस्रशः ॥ ४६ ॥ एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे । दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ जय मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम् । अस्मिन् जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम् ॥ ४८ ॥ ततः प्रायान्महाराज सौवलेयः प्रतापवान् । रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ४९ ॥ स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम् । वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥ संन्यवर्त्तत तं भीमो वार्य्यमाणः शितैः शरैः । शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामपार्श्वे स्तनान्तरे । प्रेषयामास नाराचान् रुक्मपुंखान् शिलाशितान् ५१

जैसे पापी प्राणी प्रचण्ड वैतरणी नदीके पार नहीं होसकते, ऐसे ही डरपोकोंको भय देनेवाली यह भयानक रुधिरकी नदी डरपोकोंके लिये दुस्तर होरही थी ॥ ४५ ॥ महारथी भीमसेन शत्रुसेनामें जिधर २ को घुसजाता था, उधर २ के लाखों योधाओंका संहार करडालता था ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! राजा दुर्योधन भीमसेनके ऐसे भयानक पराक्रमको देखकर शकुनिसे कहनेलगा कि—॥ ४७ ॥ हे मामाजी ! आप महाबली भीमसेनको संग्राममें जीतिये, भीमको जीतलेने पर मैं समझूँगा, कि—पांडवोंकी बडी भारी सेनाको जीतलिया ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! प्रतापी वीर शकुनिने यह सुनकर महासंग्राम करनेके लिये अपने भाइयोंके मण्डलको साथमें लेकर ॥ ४९ ॥ भीमसेनके ऊपर चढायी करदी और भयानक पराक्रमवाले भीमसेनके सामने जाकर जैसे किनारा समुद्रको रोकलेता है तैसेही भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोकदिया ५० उसने तेज कियेहुए बाणोंकी मारसे ज्योंही भीमको रोका, कि—भीम शकुनिके सामने होगया तब शकुनिने सान पर धरकर तेज कियेहुए और सोनेके परोंवाले नाराचजातिके बाण भीमके बायें

वर्म भित्वा तु ते घोराः पाण्डवस्य महात्मनः । न्यमज्जन्त महाराज कङ्कबर्हिणवाससः ॥ ५२ ॥ सोऽतिविद्धो रणे भीमः शरं रुक्मविभूषितम् । प्रेषयामास सरुषा सौबलं प्रति भारत ॥५३॥ तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः । चिच्छेद सप्तधा राजन् कृतहस्तो महाबलः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशाम्पते । धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥ ५५ ॥ तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान् । अन्यदादाय वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ॥ ५६ ॥ तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः सन्नतपर्वभिः । द्वाभ्यां स सारथिं ह्याच्छन् भीमं सप्तभिरेव च ॥ ५७ ॥ ध्वजमेकेन चिच्छेद छत्रं द्वाभ्यां विशाम्पते ॥ ५८ ॥चतुर्भिश्चतुरो वाहान् विव्याध सुबलात्मजः ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः

कङ्कपक्षोंसे बीच ह्रागीमें मारे, वे कङ्कपक्षी और मोरके परोंवाले भयानक बाण महात्मा भीमके कवचको फोड़कर उसके शरीरमें घुसगये और रणमें भीम अत्यन्त ही बिंधगया,तदनन्तर हे भरतवंशी राजन् ! भीमने भी सोनेसे शोभायमान एक बाण क्रोधमें भरकर शकुनिके मारा, महाबली शकुनि भी शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला और हाथका फुरतीला था, उसने भीमके भयानक बाणके सात टुकड़े करडाले और वह बाण ज्योंही पृथिवी पर गिरा, कि-भीमको क्रोध आगया और उसने हँसते २ शकुनिके धनुषको भल्ल मारकर काटडाला, तब प्रतापी शकुनिने कटेहुए धनुषको नीचे डालदिया,तुरन्त दूसरा धनुष लेलिया और सोलह भल्लजातिके बाण लेकर हे राजन् ! उनमेंसे नमेहुए पर्ववाले दो भल्ल बाण सारथीके मारे, सात भीमके मारे, एकसे ध्वजा काट डाली, दोसे छत्रको काटडाला ॥ ५१-५८ ॥ और चार बाणोंसे शकुनिने चारों घोड़ोंको बींधदिया, हे महाराज ! यह देखकर प्रतापी भीमसेनको क्रोध आगया और उसने

प्रतापवान् । शक्तिञ्चिच्छेद समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम् ॥५६ ॥ सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला । निपपात रणे तूर्णं सौवलस्य महात्मनः ॥ ६० ॥ ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम् । भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशां पते ॥ ६१ ॥ सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः । निपपात तदा भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता ॥ ६२ ॥ अथोत्क्रुष्टं महाराज धार्त्तराष्ट्रैः समन्ततः । न तु तं ममृषे भीमः सिंहनादं तरस्विनाम् ॥ ६३ ॥ अन्यद्व गृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महावलः । मुहूर्त्तादिव राजेन्द्र छादयामास सायकैः । सौवलस्य वलं संख्ये त्यक्त्वात्मानं महावलः ॥ ६५ ॥ तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशाम्पते । ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ६६ ॥ हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः । तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः

सोनेकी दण्डेवाली लोहेकी शक्ति रणभूमिमें शकुनिके मारी, सर्पकी जीभकी समान चञ्चल और भीमकी भुजामेंसे छूटी हुई वह शक्ति ज्योंही महात्मा शकुनिकी तरफ आकर गिरी, कि—सुवर्णसे जड़ीहुई उस शक्तिको ही पकडकर क्रोधमें भरेहुए शकुनिने भीमके ऊपर फेंका, वह महात्मा भीमसेनके वायें हाथको घायल करके हे राजन् ! जैसे आकाशमेंसे विजली गिरती हो तैसे पृथिवी पर आगिरी, हे महाराज ! यह देखकर कौरवपक्षके योधा चारों ओरसे हर्षकी पुकारें मचानेलगे ॥ ५६–६३ ॥ महावली भीम प्रबल योधाओंकी सिंहगर्जनाको न सहसका, किन्तु उसने तत्काल दूसरा धनुष लेकर उसके ऊपर डोरी चढ़ायी और प्राणोंकी कुछ परवाह न करके एकही मुहूर्त्तमें वाणोंकी मारसे शकुनिकी सेनाको ढकदिया उसके रथके चारों घोड़ोंको, सारथीको तथा ध्वजदण्डको एकसाथ भल्ल मारकर काटडाला ।६४-६६। तब नरोंमें श्रेष्ठ शकुनिने, जिसके घोड़े मरगये थे ऐसे रथको एक

श्वसन् ॥ ६७ ॥ शरैश्च बहुधा राजन् भीममार्च्छत् समन्ततः । प्रतिहृत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान् । धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः ॥ ६८ ॥ सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षणः । निपपात तदा भूमौ किञ्चित्प्राणो नराधिप ॥ ६९ ॥ ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशाम्पते । अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ७० ॥ रथस्थे तु नरव्याघ्रे धार्त्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः । प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता भीमाज्जाते महाभये ॥ ७१ ॥ सौबले निर्जिते राजन् भीमसेनेन धन्विना । भयेन महताविष्टः पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ७२ ॥ अपायाज्जवनैरश्वैः सापेक्षो मातुलं प्रति॥७३॥पराङ्मुखन्तु राजानं दृष्ट्वा सैन्यानि भारत । विप्रजग्मुः

साथ छोड़दिया और क्रोधसे लालताल आँखें करके फुङ्कारे भरता हुआ तथा धनुषपर टङ्कार देताहुआ एक ओरको खड़ा होगया और प्रायः चारों ओरसे भीमसेनके ऊपर बाणोंकी मारामार चलानेलगा, प्रतापी भीमसेनने बड़े वेगसे उसके बाणोंका नाश करडाला, धनुषको काटडाला और बड़ेही क्रोधमें भरकर तेज कियेहुए बाणोंसे शकुनिको बींधडाला. बलवान् शत्रुने शकुनिको बहुतही छेदडाला और जिसमें कुछ एकही प्राण रहगया था ऐसा शकुनि उस समय भूमिपर ढहपड़ा, हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र मामा शकुनिको अचेत हुआ जानकर भीमके देखतेहुए ही उसको अपने रथमें बैठालकर रणभूमिसे दूर लेगया, नरोंमें व्याघ्रसमान दुर्योधन ज्योंही रथमें बैठा, कि-कौरवोंके योधा भीमसे डरकर रणमेंसे चारों ओरको भागनेलगे, इसप्रकार धनुषधारी भीमने शकुनिको जीतलिया, तब तो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन बडाही भयभीत हुआ और बड़े वेगवाले घोड़ोंसे जुतेहुए रथमें बैठकर अपनी इच्छानुसार मामाके पास गया ॥ ६७-७३ ॥ हे महाराज ! राजा दुर्योधन ज्योंही रणको छोडकर गया, कि-सब सेनाने द्वन्द्वयुद्ध करना

समुत्सृज्य द्रुतैरथानि समन्ततः ॥ ७४ ॥ तान् दृष्ट्वा विद्रुतान् सर्वान्
धार्त्तराष्ट्रान्पराङ्मुखान् जवेनाभ्यपतद्भीमः किरञ्छरशतान् बहून् ७५
ते वध्यमाना भीमेन धार्त्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः । कर्णमासाद्य समरे
स्थिता राजन् समन्ततः ॥ ७६ ॥ स हि तेषां महावीर्यो द्वीपोऽ-
भूत् सुमहाबलः । भिन्ननौका यथा राजन् द्वीपमासाद्य निर्वृताः ७७
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये । तथा कर्णं समासाद्य
तावका भरतर्षभ ॥ ७८ ॥ समाश्वस्ताः स्थिता राजन् संप्रहृष्टाः
परस्परम् । समाजग्मुश्च युद्धाय मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ७९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शकुनिमूर्च्छायां
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । ततो भग्नेषु सैन्येषु भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनोऽब्रवीत् किन्नु सौबलो वापि सञ्जय ॥ १ ॥ कर्णो वा
जयतां श्रेष्ठो योधा वा मामका युधि । कृपो वा कृतवर्मा वा द्रौणि-

---

छोडदिया और सब योधा रणमेंसे भागनेलगे ॥ ७४ ॥ इसप्रकार धृतराष्ट्रके सब योधाओंको पीछेको मुखकर रणमेंसे भागतेहुए देखतेही भीमसेन उनके ऊपर सैंकडों बाणोंकी वर्षा करताहुआ एकसाथ उनके ऊपर जाचढा ॥ ७५ ॥ और कौरवोंको मारनेलगा, उस समय वे सब रणमेंसे इधर उधरको भागकर कर्णके पास पहुँचे, उस समय महावीर और महाबली कर्ण उनका रक्षक बना, हे महात्मा राजन्! जैसे समय पलटनेसे समुद्रमें नौकाके टूटजाने पर बटोही किसी टापूका आश्रय पाकर शान्त होते हैं ऐसे ही वे आपसमें मिल भेटकर बड़े ही प्रसन्नहुए और मृत्युके भयको त्याग कर युद्ध करनेके लिये इकट्ठे होगए ॥ ७६–७९ ॥ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय! युद्धमें भीमसेनके मारे सब सेना में भागड़ पड़गयी, इसके बाद दुर्योधन, शकुनि, विजय पानेवालोंमें

दुःशासनोऽपि वा ॥ २ ॥ अत्यद्भुतमहं मन्ये पांडवेयस्य विक्रमम्। यदेकः समरे सर्वान् योधयामास मामकान् ॥ ३ ॥ यथाप्रतिज्ञं योधानां राधेयः कृतवानपि । कुरूणामथ सर्वेषां कर्णः शत्रुनिषूदनः । शर्म वर्म प्रतिष्ठा च जीविताशा च सञ्जय ॥ ४ ॥ तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कौन्तेयेनामितौजसा । राधेयो वाप्याधिरथिः कर्णः किमकरोद्युधि ॥ ५ ॥ पुत्रा वा मम दुर्द्धर्षा राजानो वा महारथाः । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ६ ॥ सञ्जय उवाच । अपराह्णे महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् । जघान सोमकान् सर्वान् भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ७ ॥ भीमोऽप्यतिबलं सैन्यं धार्त्तराष्ट्रं व्यपोथयत् । अथ कर्णोऽब्रवीच्छल्यं पञ्चालान् प्रापयस्व माम् ॥ ८ ॥ द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता ।

श्रेष्ठ कर्ण, ये दूसरे योधा, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा और दुःशासनने क्या किया ? ॥ १-२ ॥ मेरी समझमें भीमका पराक्रम बड़ा अद्भुत था, क्यों कि-उस अकेलेने ही संग्राममें मेरे सब योधाओंके साथ युद्ध किया था ॥ ३ ॥ राधाके पुत्र कर्णने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार योधाओंके लिये काम किया था, वह कर्ण सब कौरवोंका कल्याण करने वाला, रक्षक, आश्रय और जीवनकी आशारूप था, अपारबली भीमने जब कौरवोंकी सेनामें भागड़ डाली, उस समय अधिरथ तथा राधाके पुत्र कर्णने युद्धमें कैसा पराक्रम किया था? मेरे निडर पुत्रोंने तथा महारथी योधाओंने कैसा पराक्रम किया था ? यह सब मुझे सुना, क्यों कि-हे सञ्जय! तू कथा कहनेमें बड़ा चतुर है ॥४-६॥ सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! तीसरा पहर होने पर प्रतापी कर्णने भीमसेनके देखते हुए सब सोमकोंको मारडाला ॥ ७ ॥ दूसरी ओर भीमने भी कौरवोंके महाबली सेनादलका संहार करडाला, फिर कर्णने अपने सारथी शल्यसे कहा, कि-मुझे पञ्चाल राजाओंके पास

यन्तारमब्रवीत् कर्णः पञ्चालानेव मां वह ॥ ९ ॥ मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान् मनोजवान् । प्राहिणोच्चेदिपञ्चालान् करूपांश्च महाबलः ॥ १० ॥ प्रविश्य च महत् सैन्यं शल्यः परबलार्दनः । न्ययच्छत्तुरगान् हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः ॥ ११ ॥ तं रथं मेघसङ्काशं वैयाघ्रपरिवारणम् । संदृश्य पाण्डुपञ्चालास्त्रस्ता ह्यासन् विशाम्पते ॥ १२ ॥ ततो रथस्य निनदः प्रादुरासीन्महारणे । पर्जन्यसमनिर्घोषः पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १३ ॥ ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः कर्ण आकर्णनिःसृतैः । जघान पाण्डवबलं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥ तत्तथा समरे कर्म कुर्वाणमपराजितम् । परिवव्रुर्महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १५ ॥ तं शिखण्डी

लेचल ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् भीम कौरवोंकी सेनाको भगानेलगा, यह देखकर कर्णने सारथी शल्यसे कहा, कि-तू मुझे पञ्चाल राजाओंकी सेनाकी तरफ लेचल ॥ ९ ॥ तब बलवान् और शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाला राजा शल्य बड़े वेगवाले सफेद घोड़ोंको पंचाल और करूप देशके राजाओंकी सेनाकी ओरको हाँक कर लेगया और शत्रुओंके बड़े भारी सेनादलमें रथके पहुँच जाने पर कर्णने जहाँ २ घोड़ोंको खडा रखनेकी इच्छाकी तहाँ२ शल्यने प्रसन्नताके साथ घोड़ोंको खडारक्खा ॥ १० ॥ ११ ॥ उस समय व्याघ्रके चमड़ेसे मढ़ेहुए मेघकी समान कर्णके रथको देखकर पांडव और पंचाल योधा डरगये ॥ १२ ॥ उस महारणमें कर्णके रथका महाशब्द मेघके गरजने की समान और पहाड़के फटनेकी समान होरहा था ॥ १३ ॥ तदनन्तर कर्णने धनुषको कानतक खेंचकर सैंकड़ों तीखे बाणोंसे पांडवोंके सैंकड़ों और सहस्रों योधाओंका नाश करना आरम्भ करदिया । १४ । इसप्रकार अजेय कर्ण जब पांडवपक्षका संहार करनेलगा, उस समय पांडवोंके बहुतसे महारथी और धनुषधारियोंने कर्णको

च भीमश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च सात्यकिः ॥ १६ ॥ परिवव्रुर्जिघांसन्तो राधेयं शरवृष्टिभिः १७ सात्यकिस्तु तदा कर्णं विंशत्या निशितैः शरैः । अताडयद्रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः ॥ १८ ॥ शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नस्तु सप्तभिः । द्रौपदेयाश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः । नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः ॥ १६ ॥ भीमसेनस्तु राधेयं नवत्या नतपर्वणाम् । विव्याध समरे क्रुद्धो जत्रुदेशे महाबलः २० अथ प्रहस्याधिरथिर्व्याक्षिपन् धनुरुत्तमम् । मुमोच निशितान् बाणान् पीडयन् सुमहाबलः ॥ तान् प्रत्यविध्यद्राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ २१ ॥ सात्यकेस्तु धनुश्छित्वा ध्वजं च भरतर्षभ । तथैव नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे । भीमसेनं ततः क्रुद्धो विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ २२ ॥ सहदेवस्य भल्लेन ध्वजं

घेरलिया ॥ १५ ॥ शिखण्डी, भीम, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और सात्यकी आदि पांडवोंके बड़े २ धनुषधारी महारथी कर्णको घेर बाणोंकी वर्षा करतेहुए उसको मारडालनेकी इच्छासे शस्त्रोंकी मारामार करनेलगे, इस लडाईमें वीर सात्यकीने तेज कियेहुए बीस बाण कर्णके गलेकी हँसलीमें मारे शिखण्डीने पचीस और धृष्टद्युम्नने सात बाण मारे द्रौपदीके पुत्रोंने साठ बाण मारे, सहदेवने सात मारे, नकुलने रणमें कर्णके सौ बाण मारे ॥ १६ ॥ १६ ॥ महाबली भीमने संग्राममें नमेहुए पर्ववाले नब्बे बाण कर्णके कण्ठकी हँसलीमें मारकर बींधदिया ॥ २० ॥ उस समय महाबली कर्ण खूब हँसा और उसने उत्तम धनुषपर टङ्कार देकर तेज कियेहुए बाण छोड़े और पांच २ बाण मारकर उनको बींधदिया, सात्यकीके धनुष और ध्वजाको काटडाला तथा उसकी बीच छातीमें नौबाण मारे, हे भरतसत्तम ! तदनन्तर क्रोधमें भरकर तीस बाणोंसे भीम-

चिच्छेद मारिष । सारथिञ्च त्रिभिर्वाणैराजघान परन्तपः २४
विरथान् द्रौपदेयांश्च चकार भरतर्षभ । अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तद्-
द्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥ विमुखीकृत्य तान् सर्वान् शरैः सन्नत-
पर्वभिः । पञ्चालानहनत् शूरश्चेदीनाञ्च महारथान् ॥ २६ ॥
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते । कर्णमेकमभिद्रुत्य
शरसंघैः समार्पयन् ॥ २७ ॥ तान् जघान शितैर्वाणैः सूतपुत्रो
महारथः । ते वध्यमाना समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ॥ २८ ॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव । एतदत्यद्भुतं कर्म
दृष्टवानस्मि भारत ॥ २९ ॥ यदेकः समरे शूरान् सूतपुत्रः
प्रतापवान् । यतमानान् परं शक्त्या योधयानांश्च धन्विनः ।३०।

सेनको बीच छातीमें बींधदिया ॥ २१—२३ ॥ भल्ल जातिका बाण मारकर सहदेवकी ध्वजाको काटडाला और तीन बाणोंसे उसके सारथीको मारडाला ॥ २४ ॥ हे भरतसत्तम ! द्रौपदीके पुत्रों के रथको तोडकर उनको रथहीन करदिया, यह सब काम पलक मारनेमात्र समयमें करके देखनेवालोंको आश्चर्यमें डालदिया २५ फिर द्रौपदीके सब पुत्रोंको खूब नमेहुए पर्ववाले बाण मारकर उनको रणमेंसे पीछेको हटादिया, फिर वीर पञ्चालराजाओंको तथा चेदियोंके महारथियोंको मारनेलगा, हे राजन् ! तब कर्णके हाथसे मार खातेहुए चेदिदेश और मत्स्यदेशके योधाओंने अकेले कर्णके ऊपरही धावा करके उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदी ॥ २६ ॥ २७ ॥ तब महारथी कर्णने भी उनके तीखे बाण मारना आरम्भ करदिया, उस मारसे पीडा पाकर जैसे मृग सिंहसे डरकर भागजाते हैं तैसेही वे भयभीत होकर रणमेंसे भागगये, हे भरतवंशी राजन् ! इस अद्भुत कामको मैंने अपनी दृष्टिसे देखा था ॥ २८ ॥ २९ ॥ सूतके प्रतापी पुत्र कर्णने अकेलेही पूरी शक्ति लगाकर उद्योगके साथ युद्ध करनेवाले धनुषधारियोंको बाणोंकी

पाण्डवेयान् महाराज शरैर्वारितवान्रणे। तत्र भारत कर्णस्य लाघवेन महात्मनः ॥ ३१ ॥ तुतुषुर्देवताः सर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः। अपूजयन्महेष्वासा धार्त्तराष्ट्रा नरोत्तमम् ॥ ३२ ॥ कर्णं रथवरश्रेष्ठं श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम्। ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम् ॥ ३३ ॥ कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान्। ते वध्यमानाः कर्णेन पाण्डवेयास्ततस्ततः ॥ ३४ ॥ प्राद्रवन्त रणे भीताः कर्णं दृष्ट्वा महारथम्। तत्राक्रन्दो महानासीत् पञ्चालानां महारणे ॥ ३५ ॥ वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः। तेन शब्देन वित्रस्ता पाण्डवानां महाचमूः ॥ ३६ ॥ कर्णमेकं रणे योधं मेनिरे तत्र शात्रवाः। तत्राद्भुतं पुनश्चक्रे राधेयः शत्रुकर्षणः ॥ ३७ ॥ यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरभिवीक्षितुम्। यथौघः पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते ॥ ३८ ॥ तथा

मारसे आगेको बढनेसे रोकदिया था, हे भरतवंशी राजन्! महात्मा कर्णकी फुरतीको देखकर तहां आयेहुए सब देवता, सिद्ध तथा चारण प्रसन्न होगये और कौरवपक्षके बडे२ धनुषधारी योधा, सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ और महारथियोंके नायक कर्णकी पूजा करनेलगे ॥ ३०-३२ ॥ फिर बढाहुआ और धकधकाता हुआ अग्नि गरमीके दिनोंमें जैसे घासके ढेरको जलाकर भस्म करडालता है तैसेही कर्णभी शत्रुओंकी सेनाको जलानेलगा तब पांडवपक्षके योधा भी महारथी कर्णके हाथसे मार खानेके कारण कर्णको देखतेही डरकर रणमेंसे भागगये, फिर कर्ण धनुषमेंसे तीखे बाण छोडकर महासंग्राममें पञ्चाल राजाओंको मारनेलगा और वे जोर२ से चीखें मारने लगे, उनकी चीखोंको सुनकर पांडवोंकी बडीभारी सेना सहमगयी और शत्रु संग्राममें एक कर्णको ही योधा मानने लगे, शत्रुको पीडा देनेवाले कर्णने फिर तहां ऐसा अचरजका काम किया ॥ ३३-३७ ॥ कर्णके पराक्रमको देखकर पांडवोंकी

तत् पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते। कर्णोऽपि समरे राजन् विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३९ ॥ ददहंस्तरथौ महाबाहुः पाण्डवानां महाचमूम्। शिरांसि च महाराज कर्णांश्चैव सकुण्डलान् ४० बाहूंश्च वीरो वीराणां चिच्छेद लघु चेषुभिः। हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् ध्वजान् शक्तीर्हयान् गजान् ॥ ४१ ॥ रथांश्च विविधा-न्राजन् पताका व्यजनानि च। अक्षञ्च युगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च ॥ ४२ ॥ चिच्छेद बहुधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः। तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः ॥ ४३ ॥ अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा। विषमञ्च समञ्चैव हतैरश्वपदा-तिभिः ॥ ४४ ॥ रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन। नापि स्वे न परे योधाः प्राज्ञायन्त परस्परम् ॥ ४५ ॥ घोरे शरा-

---

ओरके सब योधा कर्णकी तरफको दृष्टिभी नहीं करसके, जैसे जलका प्रवाह एक उत्तम पर्वतके साथ टकराकर इधर उधरको बिखरजाता है तैसेही पांडवोंकी सेना भी कर्णके साथ भुचैटा होतेही रणमेंसे भागनेलगी, हे राजन्! उस समय संग्राममें महा-बाहु कर्णभी धुँएरहित अग्निकी समान तमतमा रहा था और पांडवोंकी महासेनाको जलाये डालता था, उस योधाओंके व्रतको धारण करनेवाले कर्णने शत्रुपक्षके योधाओंके मस्तकोंको कुण्डलों सहित कानोंको, वीरोंके भुजदण्डोंको, हाथीदाँतकी मूठवाली तलवारोंको, ध्वजा, शक्ति, घोड़े, हाथी भाँति२ के रथ, पताकायें पंखे, रथोंकी धुरियें, रासें, जोत और भाँति२ के पहियोंको बाण मारकर अनेकों प्रकारसे काटडाला, कर्णके मारेहुए हाथी घोड़ों के मांस और रुधिरकी रणमें इतनी कीच होगयी थी, कि-वहाँ चलना कठिन था, मारेहुए घोड़े; पैदल, रथ और हाथी रणभूमि में पड़े थे, इससे भूमिका ऊँचा नीचापनही नहीं मालूम होता था तथा कर्णके अस्त्रोंके शब्दोंसे तथा बाणोंके भयानक अन्धकारसे

न्धकारे तु कर्णास्त्रे च विजृम्भिते। राधेयचापनिर्मुक्तैर्शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ ४६ ॥ संछादिता महाराज पाण्डवानां महारथाः। ते पाण्डवेयाः समरे राधेयेन पुनः पुनः ॥ ४७ ॥ अभज्यन्त तदा राजन् यतमाना महारथाः। मृगसंघान् यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने ॥ ४८ ॥ पञ्चालानां रथश्रेष्ठान् द्रावयन् शात्रवान् युधि। कर्णस्तु समरे योधांस्त्रासयन् सुमहायशाः ॥ ४९ ॥ कालयामास पाण्डूनां यथा पशुगणान् वृकः। दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां धार्त्तराष्ट्राः पराङ्मुखीम् ॥५०॥ अभिजग्मुर्महेष्वासा रुवन्तो भैरवान्रवान्। दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः ॥ ५१ ॥ वादयामास संहृष्टो नानावाद्यानि सर्वशः। पञ्चालापि महेष्वासा भग्नास्तत्र नरोत्तमाः ॥ ५२ ॥ न्यवर्त्तन्त

योधा अपने या पराये योधाओंको पहचान नहीं सकते थे, राधाके पुत्र कर्णके धनुषमेंसे छूटे हुए सुवर्णके झोलवाले बाणोंसे हे महाराज! पांडवोंके महारथी ढकगये थे और उन महारथियोंके बडा भारी उद्योग करने पर भी कर्णने उनमें बार २ भागड़ डालदी थी, जैसे क्रोधमें भराहुआ सिंह मृगोंके झुण्डको वनमेंसे निकालदेता है, ऐसे ही कर्णने भी रणभूमिमेंसे पंचालोंके महारथियोंको भगा दिया था अथवा एक नाहर जैसे वनमेंसे पशुओंकी टोलियोंको भगादेता है तैसे ही महायशस्वी कर्णने भी युद्धमें शत्रुओंके योधाओंको त्रास देकर रणमेंसे उनके सेनादलोंको भगादिया था, पाण्डवोंकी सेनाको रणमेंसे भागती हुई देखकर कौरवपक्षके बड़े२ धनुषधारी योधा भयानक गर्जना करते हुए तहाँ आपहुँचे और हे राजेन्द्र! दुर्योधन परम आनन्द तथा हर्षमें भरकर चारों ओर से अनेकों प्रकारके बाजे बजवाने लगा, यह सुनकर बड़े २ धनुषधारी पंचाल देशके योधाभी मृत्युकी परवाह न करके लडनेके लिये फिर लौट आये, पुरुषोंमें श्रेष्ठ शत्रुओंको तापदेने-

यथाशूरं मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् । तान्निवृत्तान् रणे शूरान् राधेयः शत्रुतापनः ॥ ५३ ॥ अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः । तत्र भारत कर्णेन पञ्चाला विंशती रथाः ॥ ५४ ॥ निहताः सायकै-र्योधाश्चेदयश्चापरंः शताः । कृत्वा शून्यान् रथोपस्थान् वाजि-पृष्ठांश्च भारत ॥ ५५ ॥ निर्मनुष्यान् गजस्कन्धान् पादातांश्चैव विद्रुतान् । आदित्य इव मध्यान्हे दुर्निरीक्ष्यः परन्तपः ॥ ५६ ॥ कालान्तकवपुः शूरः सूतपुत्रो व्यराजत । एवमेतन्महाराज नर-वाजिरथद्विपान् ॥ ५७ ॥ हत्वा तस्थौ महेष्वासः कर्णोऽरिगणसू-दनः । यथा भूतगणान् हत्वा कालस्तिष्ठेन्महाबलः ॥ ५८ ॥ तथा स सोमकान्हत्वा तस्थावेको महारथः । तत्राद्भुतमपश्याम पञ्चालानां पराक्रमम् ॥ ५९ ॥ वध्यमानापि यत् कर्णं नाजहू रणमूर्द्धनि । राजा दुःशासनश्चैव कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ६० ॥

वाले राधाके पुत्र कर्णने उनमेंसे अनेकों शत्रुओंको पीछे हटादिया और क्रोधमें भरकर बीस पंचाल रथियोंको तथा सैंकड़ों चेदियोंको बाणोंसे मारडाला, रथियोंकी बैठकोंको घोड़ोंकी पीठोंको योधा-ओंसे शून्यकरके पैदलोंको रणमेंसे भगादिया, इस समय जैसे मध्याह्नके सूर्यकी ओरको नहीं देखाजाता है तैसे ही परन्तप कर्ण की ओरको देखना कठिन होरहा था और उसका शरीर कालकी समान दिपरहा था, जैसे महाबली काल प्राणियोंका संहार करके विश्राम लेता है तैसे ही शत्रुओंका नाश करनेवाला महाधनुष-धारी कर्ण भी मनुष्य, घोड़े, रथ, हाथी तथा सोमकोंका नाश करके विश्राम लेनेलगा, तहाँ हमने पंचाल देशके योधाओंका बड़े ही अचरजमें डालनेवाला पराक्रम देखा था ॥ ५८—५९ ॥ कर्ण उनका संहार कररहा था तो भी वे रणके मुहाने पर खड़े हुए कर्णको छोड़कर संग्राममेंसे भागे नहीं थे, राजा दुर्योधन, दुःशासन कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और महाबली शकुनिने इस चढ़ायी

अश्वत्थामा कृतवर्मा शकुनिश्च महाबलः। न्यहनन् पाण्डवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६१ ॥ कर्णपुत्रौ तु राजेन्द्र भ्रातरौ सत्यविक्रमौ। निजघ्नाते बलं क्रुद्धौ पाण्डवानामितस्ततः ॥ ६२ ॥ तत्र युद्धं महच्चासीत् क्रूरं विशसनं महत्। तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ६३ ॥ द्रौपदेयाश्च संक्रुद्धा अभ्यघ्नंस्तावकं बलम्। एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डवानामितस्ततः। तावकानामपि रणे भीमं प्राप्य महाबलम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

सञ्जय उवाच। अर्जुनस्तु महाराज हत्वा सैन्यं चतुर्विधम्। सूतपुत्रञ्च संरब्धं दृष्ट्वा चैव महारणे ॥ १ ॥ शोणितोदां महीं कृत्वा मांसमज्जास्थिपङ्किलाम्। मनुष्यशीर्षपाषाणां हस्त्यश्वकृत-

---

में पांडवोंके सैंकड़ों और सहस्रों योधाओंको मारडाला था६०।६१ हे राजेन्द्र! कर्णके सत्यपराक्रमी दो पुत्र भी क्रोधमें भरकर चारों ओरसे पांडवोंकी सेनाका नाश कररहे थे, दूसरी ओर से वीर पांडव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा द्रौपदीके पुत्र क्रोधमें भरकर तुम्हारी सेनाका नाश कररहे थे, इस प्रकार तहाँ प्रलय करनेवाला महाभयानक युद्ध होरहा था, इस प्रकार पांडवोंके योधाओंका क्षय होगया था और तुम्हारे योधाओंका भी महाबली भीमके सामने युद्ध करते हुए क्षय होगया था ॥६२-६४॥ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! तदनन्तर अर्जुन हाथी, घोड़े, रथ और पैदल इन चार प्रकारकी सेनाका संहार करके कर्णका नाश करनेके लिये उसके सामने चढ़आया, उस समय उसने महारणमें सूतपुत्र कर्णको क्रोधमें भराहुआ देखा १ फिर शत्रुओंका संहार करनेवाले अर्जुनने रणभूमिमें मांस मज्जा

रोधसम् ॥ २ ॥ शूरास्थिचयसंकीर्णां काकगृध्रानुनन्दिताम् ।
छत्रहंससरोपेतां वीरवृक्षापहारिणीम् ॥ ३ ॥ हारपद्माकरवतीमु-
ष्णीषवरफेनिलाम् । धनुःशरझषोपेतां नरक्षुद्रकपालिनीम् ॥४॥
चर्मवर्मभ्रमोपेतां रथोडुपसमाकुलाम् । जयैषिणान्तु सुतरां भीरू-
णाञ्च सुदुस्तराम् ॥ ५ ॥ तां नदीं प्रापयित्वा तु वीभत्सुः पर-
वीरहा । वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ६ ॥ अर्जुन
उवाच । एष केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते । भीमसेनादय-
श्चैते योधयन्ति महारथान् ॥ ७ ॥ एते द्रवन्ति पञ्चालाः कर्ण-
त्रस्ता जनार्दन । एष दुर्य्योधनो राजा श्वेतछत्रेण धार्यता ॥८॥
कर्णेन भग्नान् पञ्चालान् द्रावयन् बहुशोभत । कृपश्च कृतवर्मा

और हाडोंकी कीचवाली, खोपड़ीरूप पत्थरोंवाली, हाथी घोड़ोंके शवरूप किनारोंवाली, जिसमें रुधिररूप जल था, वीरोंकी हड्डियेंरूप पत्थर भरेहुए थे, जो कौए और गिद्धोंके शब्दोंसे गूँज रही थी, जिसमें पड़ेहुए छत्र हँसोंसे मालूम होते थे, जो वीर-रूप वृक्षोंको तोड़रही थी, जिसमें राजाओंके हाररूप कमल थे, उत्तम पगडियें झागसी दीखरही थीं, धनुष, बाण और ध्वजायें भर रही थीं, जिसमें छोटे २ मनुष्य कपालसे मालूम होते थे, ढाल और कवच जिसमें भँवरसे मालूम होते थे, रथ नौकासे मालूम होते थे, विजय चाहनेवाले सहजमें ही उसके पार होरहे थे और डरपोकोंके लिये वह दुस्तर थी ऐसी रुधिरकी नदी वहादी तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने वासुदेवसे कहा ॥ २—६ ॥ अर्जुन बोला, कि—हे कृष्ण ! वह देखिये कर्णके रथकी ध्वजा पताका दीखरही है, वह देखिये भीमसेन आदि योधा महारथी कर्णके सामने युद्ध कररहे हैं ॥ ७ ॥ और हे जनार्दन ! वे पंचालदेशके योधा भी कर्णसे त्रास खाकर रणमेंसे भागेजारहे हैं, वह देखिये—राजा दुर्योधन कि—जिसके शिरपर श्वेत छत्र

च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ९ ॥ एते रक्षन्ति राजानं सूतपुत्रेण रक्षिताः । अवध्यमानास्तेऽस्माभिः घातयिष्यन्ति सोमकान्॥१०॥ एष शल्यो रथोपस्थे रश्मिसंचारकोविदः । सूतपुत्ररथं कृष्ण वाहयन् बहु शोभते ११ तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम् । नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथश्चन ॥ १२ ॥ राधेयोऽप्यन्यथा पार्थान् सृञ्जयांश्च महारथान् । निःशेषान्समरे कुर्य्यात् पश्यतां नो जनार्द्दन ॥ १३ ॥ ततः प्रायाद्रथेनाशु केशवस्तत्र वाहिनीम् । कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥१४॥ प्रयातश्च महाबाहुः पाण्डवानुज्ञया हरिः । आश्वासयन्रथेनैव पांडुसैन्यानि सर्वशः ॥ १५ ॥ रथघोषः स संग्रामे पांडवेयस्य संबभौ । वास-

लगाहुआ है, कर्णसे हारेहुए पंचाल देशके योधाओंको रणभूमिमेंसे भगारहा है और कृप, कृतवर्मा तथा महारथी अश्वत्थामा कर्णसे रक्षित हो राजा दुर्योधनकी रक्षा कर रहे हैं, यदि हम उनको नहीं मारेंगे, तो वह सम्पूर्ण सोमकोंको मार डालेंगे ८-१० हे कृष्ण ! लगामोंको पकड़नेमें चतुर राजा शल्य कर्णके रथकी बैठक पर बैठ रथको चलाता हुआ बडी ही शोभा पारहा है ११ अब मेरा ऐसा विचार है कि—मैं समरमें कर्णको मारे बिना नहीं लौटूँगा, अतः तुम मेरे महारथको कर्णकी ओरको हाँको १२ यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो हे जनार्दन ! यह राधापुत्र कर्ण हम दोनोंके सामने ही महारथी पाण्डव और सृञ्जयोंका जड़ मूलसे नाश करडालेगा ॥ १३ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्ण, जहाँ तुम्हारी सेनामें महारथी कर्ण खड़ा था, तहाँ उससे अर्जुनके साथ द्वन्द्वयुद्ध करानेके लिये रथको शीघ्रतासे बढ़ाने लगे ॥ १४ ॥ अर्जुनकी आज्ञानुसार चलते हुए महाभुज श्रीकृष्ण रथमें बैठे २ ही चारों ओर खडी हुई पाण्डवसेनाको धीरज देतेहुए चलरहे थे॥ १५ ॥ हे राजन् ! उस समय इन्द्रके वज्र और मेघके गड़-

वाशनितुल्यस्य मेघौघस्येव मारिष ॥ १६ ॥ महता रथघोषेण
पाण्डवः सत्यविक्रमः। अभ्यादप्रमेयात्मा निर्ज्जयंस्तव वाहिनीम् १७
तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्। मद्रराजोऽब्रवीत् कर्णं
केतुं दृष्ट्वा महात्मनः ॥ १८ ॥ अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः
कृष्णसारथिः। निघ्नन्नमित्रान्समरे यं कर्णं परिपृच्छसि ।१६।
एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन्गाण्डिवं धनुः। तं हनिष्यसि चेदद्य
तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ २० ॥ धनुर्ज्या चन्द्रताराङ्का पताका
किङ्किणीयुता। पश्य कर्णार्जुनस्यैषा सौदामन्यम्बरे यथा ।२१।
एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षमाणः समन्ततः। दृश्यते वानरो भीमो
वीराणां भयवर्धनः ॥ २२ ॥ एतच्चक्रं गदा शंखः शार्ङ्गं कृष्ण-

गड़ानेकी समान अर्जुनके रथका घन २ शब्द होरहाथा १६
इसप्रकार रथके प्रचण्ड घोषके साथ सत्यपराक्रमी, अमेयात्मा
अर्जुन तुम्हारी सेनाको मारताहुआ आगे बढ़नेलगा ॥ १७ ॥
मद्रराज शल्य महात्मा अर्जुनकी ध्वजाको देख जिसके सारथि
कृष्ण हैं और जिसके घोड़े स्वेत हैं ऐसे अर्जुनको आता हुआ
जानकर कर्णसे कहनेलगा कि-१८हे कर्ण! ये सफेद घोड़ोंवाला
और जिसके हाँकनेवाले श्रीकृष्ण हैं ऐसे रथमें बैठा अर्जुन समरमें
शत्रुओंको मारता हुआ आरहा है, तुम जिसको मनुष्योंसे बूझते
थे यह वही कुन्तीपुत्र अर्जुन हाथमें गांडीव धनुष पकड़े हुए रथमें
बैठा है, यदि तुम इसको मार डालोगे तो हमारा कल्याण होगा
॥ १९-२० ॥ हे कर्ण! अर्जुनके धनुषकी डोरीमें चन्द्रमा और
तारे बनेहुए हैं और पताकाओंमें घुंघुरू लगा रहे हैं इससे वह
बादलमें चमचमाती हुई बिजलीसी दीखरही है ॥ २१ ॥ यह
देखो! चारों ओरको घूरता हुआ, वीर पुरुषोंकोभी भय देने
वाला यह भयंकर वानर अर्जुनकी ध्वजाके ऊपर बैठा है २२
हे प्रभो! वह घोड़ोंको हाँकतेहुए अर्जुनके रथमें बैठे श्रीकृष्णके

स्य च प्रभो । दृश्यते पाण्डवरथे वाह्यमानस्य वाजिनः ॥ २३ ॥
एतत्कूजति गाण्डीवं विसृष्टं सव्यसाचिना । एते हस्तवता मुक्ताः
घ्नन्त्यमित्रान्छिता शराः ॥ २४ ॥ विशालायतताम्राक्षैः पूर्णच-
न्द्रनिभाननैः । एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् २५
एते परिघसंकाशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः । उद्धृता रणशूराणां
पात्यन्ते सायुधा भुजाः ॥ २६ ॥ निरस्तजिह्वा नेत्रान्ता वाजिनः
सह सादिभिः । पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणाः विशे-
रते ॥ २७ ॥ एते पर्वतशृंगाणां तुल्या हैमवता गजाः । सञ्छि-
न्नकुम्भा पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा ॥ २८ ॥ गन्धर्वनगराकारा
यथा वा ते नरेश्वराः विमानादिव पुण्यान्ते स्वर्गिणो निपत-
न्त्यमी ॥ २९ ॥ व्याकुलीकृतमत्यर्थं परसैन्यं किरीटिना । नाना-

चक्र, गदा, शङ्ख और शार्ङ्ग धनुष दीख रहे हैं ॥ २३ ॥ यह
अर्जुनके खैंचेहुए गांडीव धनुषकी टङ्कार सुनाई आरही है, और
देखो ! यह फुर्तीले अर्जुनके छोड़ेहुए तीक्ष्ण बाण शत्रुओंका
संहार कररहे हैं ॥ २४ ॥ और रणमें पीछेको पैर न हटानेवाले
राजाओंके विशाल लम्बे और लाल नेत्रोंवाले और चन्द्रमाकी
समान मस्तकोंसे यह रणभूमि छाती चली जारही है ॥ २५ ॥
ये पवित्र सुगन्धियोंसे चर्चित, परिघकी समान मोटे, और आयुधों
को धारण करनेवाले शूरवीरोंके हाथोंको अर्जुन काटडालता है
॥ २६ ॥ और जिनकी जीभ निकल रही है आँखे फूट गई हैं,
ऐसे घोडे सवारों सहित रणमें मर कर सोरहे हैं और बहुतसे
गिररहे हैं ॥ २७ ॥ ये पर्वतके शिखरोंकी समान ऊँचे हिमा-
लयमें उत्पन्न हुए हाथी अर्जुनके गण्डस्थलको काट देने पर
पहाडोंकी समान गिररहे हैं ॥ २८ ॥ पुण्यक्षय होने पर स्वर्गके
देवता जैसे विमानों परसे नीचे गिर पड़ते हैं, तैसे ही गन्धर्व-
नगरोंकी समान राजे भी एकके पीछे एक पृथ्वी पर गिररहे हैं २९

मृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ॥ ३० ॥ त्वामभिप्रेप्सुरायाति कर्ण निघ्नन्वरान् रथान् । असह्यमानो राधेय तं याहि प्रति भारतम् ॥ ३१ ॥ एषा विदीर्यते सेना धार्त्तराष्ट्री समन्ततः । अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निघ्नतः शात्रवान् बहून् ॥ ३२ ॥ वर्ज्जयन् सर्वसैन्यानि त्वरते हि धनञ्जयः । त्वदर्थमिति मन्येऽहं यथास्योदीर्यते वपुः ॥ ३३ ॥ न ह्यवस्थास्यते पार्थो युयुत्सुः केनचित् सह । त्वामृते क्रोधदीप्तो हि पीड्यमाने वृकोदरे ॥३४॥ विरथं धर्मराजञ्च दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम् । शिखण्डिनं सात्यकिञ्च धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम् ॥ ३५ ॥ द्रौपदेयान् युधामन्युमुत्तमौजसमेव च । नकुलं सहदेवञ्च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च ॥ ३६ ॥ सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परन्तपः । क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः

अर्जुनने शत्रुसेनाको, जैसे सिंह सैंकडों मृगोंकी टोलियोंको व्याकुल करदे तैसे व्याकुल करडाला है ॥ ३० ॥ और हे राधापुत्र कर्ण ! अर्जुन बड़े २ श्रेष्ठ रथियोंका संहार करता हुआ तेरी ओर आता है तू इसको न सहकर उसकी ओर चल ॥ ३१ ॥ अर्जुन बहुतसे शत्रुओंको फुर्तीसे माररहा है, उसके भयसे कौरवसेना चारों ओरको भागरही है ॥ ३२ ॥ अर्जुन सब सेनाओंको छोड़ता हुआ तेरी ओर आनेके लिये फुर्ती कररहा है, उसके शरीरकी चेष्टा जैसी दिखाई देती है उससे मैं समझता हूँ, कि-क्रोधसे जलता हुआ अर्जुन तुम्हारे सिवाय और किसीसे लड़नेके लिये नहीं रुकेगा, तुमने भीमसेनको दिक्क कर डाला है ॥ ३३-३४ ॥ धर्मराजके रथको तोड़ डाला है और शिखण्डी सात्यकि, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, उत्तमौजा, नकुल और सहदेव दोनोंको बहुत ही घायल कर डाला है, यह देखकर परन्तप अर्जुनके नेत्र क्रोधसे लालताल होगए हैं और वह क्रोधमें भर सब राजाओंको मारने की इच्छासे अकेला

सर्वपार्थिवान् ॥ ३७ ॥ त्वरितोभिपतत्यस्मांस्त्यक्त्वा सैन्यान्य-
संशयम् । त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं नास्त्यन्यो हि धनुर्द्धरः ॥ ३८ ॥
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिंस्त्वत्तो ह्यन्यं धनुर्द्धरम् । अर्जुनं समरे
क्रुद्धं यो वेलामिव धारयेत् ॥ ३९ ॥ न चास्य रक्षां पश्यामि
पार्श्वतो न च पृष्ठतः । एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्य-
मात्मनः ॥ ४० ॥ त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे ।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनञ्जयम् ॥ ४१ ॥ समानो ह्यसि
भीष्मेण द्रोणद्रौणिकृपैरपि । सव्यसाचिनमायान्तं निवारय महा-
रणे ॥ ४२ ॥ लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा । वनस्थितं
यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनञ्जयम् ॥ ४३ ॥ एते द्रवन्ति समरे

ही रथमें बैठ तेरे ऊपरको चढ़ा आता है ॥ ३५-३७ ॥ यह फुरतीसे सब सेनाओंको पीछे छोड़ता हुआ निश्चय ही हमारे ऊपर ही चढ़ा आता है, अतः हे कर्ण ! तू उसके सामने डट, मैं तेरे सिवाय ऐसे किसी योधाको नहीं देखता जो अर्जुनसे मुचैटा ले सके ॥३८॥ मुझे जगत्में तेरे सिवाय ऐसा कोई भी धनुर्धर नहीं दीखता, जो रणमें क्रोधमें भरे अर्जुनको किनारेकी समान रोकले ॥ ३९ ॥ मैं देखता हूँ अर्जुनके दायें या बायें किसी भी ओर कोई भी रक्षक नहीं है, यह अकेला ही तेरे ऊपर चढ़ा आरहा है अतः तू अपनी सफलताकी ओर तो ध्यान दे ॥ ४० ॥ हे कर्ण! तूही रणमें कृष्ण और अर्जुनका पराजय कर सकता है और यह काम सौंपा भी तुझे ही गया है अतः तू धनञ्जयसे मुचैटा ले ॥ ४१ ॥ हे कर्ण ! तुम भीष्म, द्रोणाचार्य अश्वत्थामा और कृपाचार्यसे कम नहीं हो अतः तुम महारणमें चढ़कर आते हुए अर्जुनको रोको ॥ ४२ ॥ जिह्वा लपलपाते हुए सर्पकी समान, गरजते हुए साँढकी समान और वनमें रहने वाले सिंहकी समान अर्जुनको तुम मार डालो ॥ ४३ ॥ देखो ! ये दुर्योधनकी सेना

धार्त्तराष्ट्रा महारथाः । अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निरपेक्षा नराधिपाः ४४
द्रवतामथ तेषान्तु नान्योऽस्ति युधि मानवः । भयहा यो भवेद्वीर-
स्त्वामृते सूतनन्दन । एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे ४५
धिष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकांक्षिणः । वैदेहाम्बष्ठकाम्बो-
जास्तथा नग्नजितस्त्वया ॥ ४६ ॥ गान्धाराश्च यया धृत्या जिताः
संख्ये सुदुर्जयाः । तां धृतिं कुरु राधेय ततः प्रत्येहि पाण्डवम् ४७
वासुदेवञ्च वार्ष्णेयं प्रीयमाणं किरीटिना । प्रत्युद्याहि महाबाहो
पौरुषे महति स्थितः ॥ ४८ ॥ कर्ण उवाच । प्रकृतिस्थोऽसि मे
शल्य इदानीं सम्मतस्तथा । प्रतिभासि महाबाहो मा भैषीस्त्वं धन-
ञ्जयात् ॥४९॥ पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य शिक्षितस्य च पश्य मे ।
एकोऽद्य निहनिष्यामि पांडवानां महाचमूम् ॥ ५० ॥ कृष्णौ च
पुरुषव्याघ्रौ तत् सत्यं ब्रवीमि ते । नाहत्वा तु तौ वीरौ व्यप-

---

के महारथी राजे अर्जुनके भयसे उदासीन हो भागेजारहे हैं। ४४ ।
हे सूतनन्दन ! तुम्हारे सिवाय युद्धमें दूसरा और ऐसा कोई नहीं
है कि–जो उन भागते हुओंके भयको दूर करदे हे पुरुषव्याघ्र !
युद्धमें ये सब कौरव तुम्हें द्वीप समझ, तुमसे रक्षा चाहते हुए
तेरी शरणमें आकर खड़े होगए हैं, हे राधेय ! तुमने जैसे धैर्यसे
समरदुर्जय वैदेह, काम्बोज अम्बष्ठ और नग्नजित् तथा गान्धा-
रोंको जीता है, तैसेही धैर्यको धारण करके अर्जुनके सामने
अड़नेको चलो ॥ ४५–४७ ॥ हे महाबाहु! तू बड़े भारी बलका
आश्रय ले किरीटधारी अर्जुनसे प्रीति करनेवाले श्रीकृष्णके सामने
चढ़ाई कर ॥ ४८ ॥ कर्णने कहा कि-हे शल्य ! अब तू अपने
नियम पर ठीक है और इस लिये मुझे तू प्रिय भी लगता है, हे
महाभुज! तू अर्जुनसे डर मत ४९ तू मेरी भुजाओंके बल और
शिक्षाको देखना, मैं पाण्डवोंकी बड़ी भारी सेनाको और श्रीकृ-
ष्ण तथा अर्जुनको अकेलाही मार डालूँगा, हे पुरुषव्याघ्र ! मैं

यास्ये कथञ्चन ॥ ५१ ॥ शिष्ये वा निहतस्ताभ्यामनित्यो हि रणे जयः । कृतार्थोद्य भविष्यामि हत्वा वाप्यथवा हतः ॥ ५२ ॥ शल्य उवाच । अजय्यमेनं प्रवदन्ति युद्धे महारथाः कर्ण रथप्रवीरम् । एकाकिनं किमु कृष्णाभिगुप्तं विजेतुमेनं क इहोत्सहेत ५३ कर्ण उवाच । नैतादृशो जातु बभूव लोके रथोत्तमो यावदुपश्रुतन्नः । तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं महाहवे पश्य च पौरुषं मे ५४ रणे चरत्येष रथप्रवीरः सितैर्हयैः कौरवराजपुत्रः । स वाद्य मां नेष्यति कृच्छ्रमेतत् कर्णस्यान्तादेतदन्तास्तु सर्वे ॥ ५५ ॥ अस्वेदिनौ राजपुत्रस्य हस्तावबेपमानौ जातकिणौ बृहन्तौ । दृढायुधः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः ॥ ५६ ॥

तुझसे सत्य कहता हूँ कि—मैं उन दोनों वीरोंको बिना मारे नहीं हटूँगा ॥ ५०–५१ ॥ अथवा मैं उन दोनोंसे मारा जाकर रणभूमिमें सोऊँगा, रणमें जय पराजयका कुछ निश्चय नहीं होता है इसलिये मैं आज उनको मारकर या उनसे मरकर कृतार्थ होऊँगा ५२ शल्यने कहा कि—हे कर्ण! रथश्रेष्ठ अकेले अर्जुनको ही महारथी रणमें अजेय मानते हैं फिर श्रीकृष्णकी सहायता पाने पर तो इसको युद्धमें जीतनेकी हौंस कौन कर सकता है ॥ ५३ ॥ कर्णने कहा कि—हमारे सुननेमें तो यह आया है कि—ऐसा महारथी पुरुष जगत्में कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ परन्तु मैं ऐसे इस अर्जुनसे महारणमें लड़ूँगा तू रणमें मेरे पुरुषार्थको देखना ५४ यह जो कौरवराजका पुत्र रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन रणमें श्वेत घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ घूमता है, या तो यह मुझे आज मारडालेगा और मेरे मरने पर सब इसके अधीन होजावेंगे ॥ ५५ ॥ राजपुत्र अर्जुनके दोनों हाथोंमें धनुषकी डोरियोंके चिन्ह हैं, तथा उसके हाथ काँपते नहीं हैं, और उसको पसीना भी नहीं आता है, अर्जुन दृढ़ आयुध वाला कार्यकुशल फुर्तीला है उसकी समान दूसरा

गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रानेकं यथा तान् प्रतियोज्य चाशु। ते क्रोशमात्रे निपतन्त्यमोघाः कस्तेन योधोस्ति समः पृथिव्याम् ॥ ५७ ॥ अतोपयत् खाण्डवे यो हुताशं कृष्णद्वितीयोऽतिरथस्तरस्वी। लेभे चक्रं यत्र कृष्णो महात्मा धनुर्गाण्डीवं पाण्डवः सव्यसाची ॥ ५८ ॥ श्वेताश्वयुक्तञ्च सुघोषमुग्रं रथं महाबाहुरदीनसत्त्वः। महेषुधी चाक्षये दिव्यरूपे शस्त्राणि दिव्यानि च हव्यवाहात् ॥ ५९ ॥ तथेन्द्रलोके निजघान दैत्यनासंख्येयान् कालकेयांश्च सर्वान्। लेभे शंखं देवदत्तं स्म तत्र को नाम तेनाभ्यधिकः पृथिव्याम् ॥ ६० ॥ महादेवं तोषयामास यो वै साक्षात् सुयुद्धेन महानुभावः। लेभे ततः पाशुपतं सुघोरं त्रैलोक्यसंहारकरं महास्त्रम् ॥ ६१ ॥ पृथक् पृथक् लोकपालाः समेता ददुर्महास्त्राण्यप्रमेयाणि यस्मै। यैस्तान् जघानाशु रणे

कोई भी योधा नहीं है ५६ जो बहुतसे कङ्कपक्षीके परोंवाले बाणों को फुर्तीसे धनुष पर चढाकर छोड़ता है और वे एकबाणसे एक कोस दूर जाकर भी निशाने पर गिरते हैं ऐसे अर्जुनकी समान पृथ्वीपर और कौन योधा है ५७ जिस अतिरथी धनुर्धर अर्जुनने श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डववनमें अग्निको तृप्त कर गांडीव धनुष पाया था और महात्मा श्रीकृष्णने चक्र पाया था ५८ तथा जिस महाबाहुने अग्निसे श्वेत घोड़ोंसे जुता,घनघनाता हुआ उग्र रथ, अखूट दिव्यरूप भाथे, और दिव्य अस्त्र पाये थे ॥५६॥ और जिसने इन्द्रलोकमें असंख्य कालकेयोंको मारडाला था और तहाँसे देवदत्त नामक शङ्ख पाया था, पृथिवीमें उससे अधिक और कौन बली होसकता है ॥ ६० ॥ जिस महानुभाव अर्जुनने युद्धकर अस्त्रोंके द्वारा साक्षात् शिवको प्रसन्न कर पाशुपत नाम वाले त्रिलोकीका संहार करनेमें समर्थ बड़े भारी अस्त्रको पाया था ६१ और जिसको कालकेयोंसे युद्ध करते समय लोकपालोंने

नृसिंहः स कालकेयानसुरान् समेतान् ॥ ६२ ॥ तथा विराटस्य पुरे समेतान् सर्वानस्मानेकरथेन जित्वा । जहार तद्गोधनमाजिमध्ये वस्त्राणि चादत्त महारथेभ्यः ॥ ६३ ॥ तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं कृष्णद्वितीयं परमं नृपाणाम् । समाह्वयन् साहसमुत्तमं वै जाने स्वयं सर्वलोकस्य शल्य ॥ ६४ ॥ अनन्तवीर्येण च केशवेन नारायणेनाप्रतिमेन गुप्तः । वर्षायुतैर्यस्य गुणा न शक्या वक्तुं समेतैरपि सर्वलोकैः ॥ ६५ ॥ महात्मनः शंखचक्रासिपाणेर्विष्णोर्जिष्णोर्वसुदेवात्मजस्य । भयञ्च मे जायतेसाध्वसञ्च दृष्ट्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ६६ ॥ अतीव पार्थो युधि कार्मुकिभ्या नारायणश्चाप्रतिचक्रयुद्धे । एवंविधौ पाण्डववासुदेवौ चलेत् स्व-

अलग २ बहुतसे अप्रमेय बड़े २ अस्त्र दिये थे और उस नरसिंहने उन अस्त्रोंसे इकट्ठे हुए कालकेय नामवाले असुरोंको मार डाला था ॥ ६२ ॥ तथा विराट नगरमें अकेले अर्जुनने रथमें बैठ कर हम सकल महारथियोंको जीत लिया था और हमसे गोधन लौटालिया था, और संग्राममें सब महारथियोंके वस्त्र उतार लिये थे ॥ ६३ ॥ ऐसे वीर्य और गुणोंवाले, तथा अत्र जिसकी श्रीकृष्णभी सहायता पर हैं, उस नृपोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको जो मैं रणमें पुकारता हूँ हे शल्य ! मैं यह सबसे अधिक साहस का काम कररहा हूँ, ऐसा समझता हूँ ॥ ६४ ॥ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले विजयी, वसुदेवके पुत्र, अपार बल और अनुपम गुणवाले भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंको यदि सब संसार भी इकट्ठा होकर कहे तो सहस्रों वर्षोंमें भी नहीं कह सकता ऐसे वासुदेव अर्जुनकी रक्षा पर हैं इन अर्जुन और श्रीकृष्णको एक रथमें बैठेहुए देखकर मुझे भय लगता है, परन्तु मैं घबड़ाता नहीं ॥ ६५॥ ६६ ॥ अर्जुन सब धनुषधारियोंसे श्रेष्ठ हैं और श्रीकृष्ण चक्रयुद्धमें अद्वितीय हैं कदाचित् हिमा-

देशाद्धिमवान्न कृष्णौ ॥ ६७ ॥ उभौ हि शूरौ कृतिनौ दृढास्त्रौ महारथौ संहननोपपन्नौ । एतादृशौ फाल्गुनवासुदेवौ कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते तु शल्य ॥ ६८ ॥ मनोरथो यस्तु ममाद्य तस्य मद्रेश युद्धं प्रति पाण्डवस्य । नैतच्चिरादाशु भविष्यतीदमत्यद्भुतं चित्र-मतुल्यरूपम् ॥६९॥ एतावहं वा युधि पातयिष्ये मां वापि कृष्णौ निहनिष्यतोद्य । इति ब्रुवन् शल्यममित्रहन्ता कर्णो रणे मेघ इवो-न्ननाद ॥ ७० ॥ अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरम् । कृपञ्च भोजञ्च महाभुजावुभौ तथैव गान्धारपतिं सहानुजम् ॥ ७१ ॥ गुरोः सुतञ्चावरजन्तथात्मनः पदातिनोऽथ द्विपसादिनश्च तान् । निरुन्धताभिद्रवताच्युतार्जुनौ श्रमेण संयो-जताशु सर्वशः ॥७२॥ यथा भवद्भिर्भृशविक्षतावुभौ सुखेन हन्या-

---

चल अपने स्थानसे हट जाय परन्तु अर्जुन और श्रीकृष्ण अपने कर्त्तव्यसे नहीं हट सकते ॥ ६७ ॥ वे दोनों शूर हैं, बलवान् हैं, उनके आयुध मजबूत हैं, और वे दोनों महारथी कवच पहररहे हैं, ऐसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने हे शल्य ! मेरे सिवाय और दूसरा कौन जासकता है ॥ ६८ ॥ हे मद्रेश ! मेरे मनमें आज अर्जुनसे लड़नेकी इच्छा है वह इच्छा शीघ्र ही पूरी होगी और अब विचित्र तथा पहिले कभी न हुआ युद्ध होगा ॥६९॥ आज मैं युद्धमें इनको मारडालूँगा अथवा वेही मुझै मारडालेंगे इसप्रकार शल्यसे कह शत्रुनाशक कर्ण मेघकी समान गर्जा ७० और तुम्हारे पुत्रके पासगया, दुर्योधनने उसको अभिनन्दन दे आलिङ्गन किया, तदनन्तर कर्णने कुरुवंशके वीर दुर्योधनसे महाभुज कृपाचार्य और कृतवर्मासे, भाइयोंसहित शकुनिसे, अश्व-त्थामासे, अपने छोटे भाईसे, हाथी सवारोंसे और घुड़सवारोंसे कहा कि-तुम श्रीकृष्ण और अर्जुनपर चारोंओरसे धावाकर उनको घेरलो और उनको थकाकर घबड़ादो, जिससेतुम्हारे हाथसे बहुत ही

महमत्र भूमिपाः । तथेति चोक्त्वा त्वरिताः स्म तेऽर्जुनं जिघांसवो वीरतमा समाद्रवुः ॥ ७३ ॥ शरैश्च जघ्नुर्युधि तं महारथा धनञ्जयं कर्णनिदेशकारिणः। नदीनदैर्भूरिजलो महार्णवो यथा तथा तान् समरेऽर्जुनोऽग्रसत् ॥ ७४ ॥ न सन्दधानो न तथा शरोत्तमान् प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते। धनञ्जयास्त्रैस्तु शरैर्विदारिता हता निपेतुर्नरवाजिकुञ्जराः ॥ ७५ ॥ शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं युगान्तसूर्यप्रतिमानतेजसम् । न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः ॥ ७६ ॥ शरोत्तमान् स महितान् महारथैश्चिच्छेद पार्थः प्रहसञ्छरौघैः । भूयश्च तानहनद्बाणसंघान् गाण्डीवधन्वायतपूर्णमण्डलः ॥ ७७॥ यथोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो सुखं विवस्वान् हरते जलौघान् । तथार्जुनो

घायल होने पर मैं उन्हें विना परिश्रमके मारडालूँ कर्णकी बात सुन वे वीर राजे "ऐसा ही करेंगे" यह कहकर अर्जुनको मारनेकी इच्छासे उस पर फुर्तीसे टूट पड़े ॥ ७१ –७३ ॥ और कर्णकी आज्ञा पालने वाले वे महारथी अर्जुन को बाणोंसे घायल करने लगे, परन्तु महासागर जैसे नद नदियोंके जलको निगल जाता है तैसे अर्जुन भी उनके बाणोंको ग्रसनेलगा ॥ ७४ ॥ अर्जुन बाणोंको कब चढाता है, कब छोड़ता है शत्रु यह कुछ भी न देख पाते थे. अर्जुनके अस्त्रोंसे विदीर्ण होनेके कारण मरकर हाथी घोड़े और रथी भूमिपर गिरने लगे ॥ ७५ ॥ बाणोंकी ज्वाला वाले, गाण्डीव धनुषरूपी सुन्दर मण्डलवाले और प्रलयकालके सूर्यकी समान तेजवाले अर्जुनको कौरव, नेत्ररोगी जैसे सूर्यको नहीं देख सकते तैसे, देख नहीं सकते थे ॥ ७६ ॥ अर्जुनने महारथियोंके फेंकेहुए श्रेष्ठ बाणोंको हँसते २ बाण मारकर काटडाला फिर गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनने धनुषके घेरेको पूरी तौर पर खेंच उनके बाण मारे ॥ ७७ ॥ आषाढ और ज्येष्ठमें

वाणगणान्निरस्य ददाह सेनां तव पार्थिवेन्द्र ॥ ७८ ॥ तमभ्यधावद्विसृजन् कृपः शरान् तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम् । महारथो द्रोणसुतश्च सायकैरवाकिरंस्तोयधरा यथाचलम् ॥ ७९ ॥ जिघांसुभिस्तान् कुशलः शरोत्तमान् महाहवे संप्रहितान् प्रयत्नतः ॥ शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन् पराभिनद्वक्षसि चेषुभिस्त्रिभिः ८० स गाण्डिवव्यायतपूर्णमण्डलस्तपन् रिपूनर्जुनभास्करो बभौ । शरोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो यथैव सूर्यः परिवेषवांस्तथा ॥ ८१ ॥ अथाग्र्यबाणैर्दशभिर्धनञ्जयं पराभिनद्द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः । चतुर्भिरश्वांश्चतुरः कपिन्ततः शरैश्च नाराचवरैरवाकिरत् ॥ ८२ ॥ तथापि तं प्रस्फुरदात्तकार्मुकं त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण ह ।

प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य जैसे सुखपूर्वक जलोंको खेंचता है, तैसे ही हे राजेन्द्र ! अर्जुन भी शत्रुके छोड़ेहुए वाणोंको नष्ट कर तुम्हारी सेनाको भस्म करनेलगा ॥ ७८ ॥ जैसे बादल पर्वत पर वर्षा करें तैसे ही कृपाचार्य कृतवर्मा तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा बाणोंको बरसाते हुए अर्जुन पर दौड़े और उस पर बाण बरसाने लगे ॥ ७९ ॥ महायुद्धमें कौरवोंके महारथियोंके मारनेकी इच्छासे छोड़ेहुए उत्तम बाणोंको युद्धकुशल अर्जुनने बाण मारकर काटडाला और प्रत्येकके वक्षःस्थलमें तीन २ बाण भी मारे ॥ ८० ॥ गाण्डीव धनुषरूपी विशाल पूर्ण मण्डलवाला और बाणरूपी उग्र किरणोंवाला अर्जुनरूपी सूर्य शत्रुओंको सन्तप्त करता हुआ प्रदीप्त होनेलगा और वह ज्येष्ठ और आषाढके परिवेष (मण्डल) वाले सूर्यकी समान दीखता था ८१ उस समय अश्वत्थामाने उत्तम प्रकारके दश बाणोंसे अर्जुनको पाँच बाणोंसे श्रीकृष्णको, चार बाणोंसे घोड़ोंको, और चार बाणोंसे हनूमान्को बींध डाला ८२ अश्वत्थामाको फिरभी फुरतीसे धनुष पकड़ते देख अर्जुनने फुरतीसे तीन बाणोंसे उसके

हयांश्चतुर्भिश्चतुरस्त्रिभिर्ध्वजं धनञ्जयो द्रौणिरथादपातयत् ॥८३॥
स रोषपूर्णो मणिवज्रहाटकैरलंकृतं तक्षकभोगवर्चसम्। महाधनं
कार्मुकमन्यदाददे यथा महाहिप्रवरं गिरेस्तटात् ॥ ८४ ॥ स्वमा-
युधञ्चोपनिकीर्य भूतले धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः समार्द-
यत्तावजितौ नरोत्तमौ शरोत्तमैर्द्रौणिरविध्यदन्तिकात् ॥ ८५ ॥
कृपश्च-भोजश्च तवात्मजश्च शरैरनेकैर्युधि पाण्डवर्षभम्। महा-
रथाः संयुगमूर्द्धनि स्थितास्तमोनुदं वारिधरा इवापतन् ॥ ८६ ॥
कृपस्य पार्थः सशरं शरासनं हयान् ध्वजान् सारथिमेव पत्रिभिः।
समार्पयद्बाहुसहस्रविक्रमस्तथा यथा वज्रधरः पुरा बलेः ॥८७॥
स पार्थबाणैर्विनिपातितायुधो ध्वजावमर्दे च कृते महाहवे। कृतः

धनुषको और क्षुरसे सारथिके शिरको, चार बाणोंसे घोड़ोंको
और तीन बाणोंसे उसकी ध्वजाको काट रथपरसे नीचे गिरा
दिया ॥ ८३ ॥ तब तो अश्वत्थामा क्रोधमें भरगया और उसने
जैसे पर्वतपरसे सर्पको उठावें तैसे ही मणि-रत्न और सुवर्णसे
अलंकृत, तक्षक सर्पकी समान कान्तिवाला दूसरा बहुमूल्य
धनुष हाथमें लिया ॥ ८४ ॥ तथा अपने और आयुधोंको भूमिमें
छोड़ गुणवान् अश्वत्थामाने धनुष पर डोरी चढा श्रेष्ठ बाणोंसे
उन नरश्रेष्ठोंको पीडित करना आरम्भ करदिया ॥ ८५ ॥ रण
के मस्तकस्थान पर खड़े महारथी कृतवर्मा और दुर्योधन, बादल
जैसे सूर्यके ऊपर झपटें तैसे, उन पर बाण बरसानेलगे। ८६।
पहिले इन्द्रने जैसे बलिके अश्व और सारथिका नाश करडालाथा
तैसे ही सहस्रबाहुकी समान पराक्रमी अर्जुनने बाण मारकर
कृपाचार्यके बाणसहित धनुष, घोड़े, ध्वजा, पताका और सारथिके
टुकड़े २ करडाले ॥ ८७ ॥ इस महायुद्धमें अर्जुनके बाणोंसे
कृपाचार्यके आयुधोंके टुकड़े २ होगए, ध्वजाका नाश होगया,
और जैसे पहिले भीष्मको अर्जुनने बाणमारकर घायल करदिया

कृपो बाणसहस्रयन्त्रितो यथापगेयः प्रथमं किरीटिना ॥ ८८ ॥
शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त्त नर्दतः । जघान
चाश्वान् कृतवर्मणः शुभान् ध्वजञ्च चिच्छेद ततः प्रतापवान् ८६
सवाजिसूतेष्वसनान् सकेतनान् जघान नागांश्च रथांस्त्वरंश्च
सः । ततः प्रकीर्णं सुमहद्बलं तव प्रदारितं सेतुरिवाम्भसा यथा६०
ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशवश्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान् । ततः
प्रयान्तं त्वरितं धनञ्जयं शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा ॥६१॥
समन्वधावन् पुनरुच्छ्रितैर्ध्वजै रथैः प्रयुक्तैरपरे पृथुत्सवः । अथा-
भिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्-धनञ्जयस्याभिमुखं महारथाः ॥६२॥
शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरैर्विदारयन्तो व्यनदन् सुभैरवम् ।
ततोऽभिजघ्नुः कुपिताः परस्परं शरैस्तदाञ्जोगतिभिः सुतेजनैः६३

था तैसे ही कृपाचार्यको सहस्रों बाणोंसे बींधकर कैद करलिया८८
फिर प्रतापी अर्जुनने दहाडते हुए तुम्हारे पुत्रकी धनुष और
ध्वजाको काटडाला और कृतवर्माके भी शुभ घोड़ोंको और
ध्वजाको काटडाला ॥८६॥ फिर अर्जुनने फुर्ती कर घोड़े और
सारथि सहित भाथोंको, ध्वजाओंको, हाथी, घोड़े और रथोंको
मारकर नष्ट करडाला उस समय तुम्हारी बड़ी भारी सेना प्रहलेसे
टूटतेहुए पुलकी समान भागनेलगी ६० तब श्रीकृष्णने रथको
आगे हाँका और दुःखी शत्रु अर्जुनके पीछे रहगये और वृत्रा-
सुरका नाश करनेकी इच्छावाले इन्द्रकी समान अर्जुन शीघ्रतासे
बढ़नेलगा, तब युद्धकी हौंसवाले तुम्हारे दूसरे योधा उठीहुई
पताकाओंवाले अच्छी प्रकारसे सजेहुए रथोंमें बैठ अर्जुनके पीछे
दौड़े, यह देख महारथी शिखण्डी, सात्यकि और नकुल सह-
देव अर्जुनके सामने पहुँच उनको हटा गर्जनाकर तीक्ष्ण बाणोंसे
उनको विदीर्ण करनेलगे, तदनन्तर दैत्य जैसे देवताओंसे युद्ध
करनेको इकट्ठेहुए थे, तैसे ही सृञ्जयोंकी सेनाके साथ कुरुवंशके

कुरुपवीराः सह सृञ्जयैर्यथासुराः पुरा देवगणैस्तथाहवे । जये-
प्सवः स्वर्गमनाय चोत्सुकाः पतन्ति नागाश्च रथाः परन्तपाः ६४
जगर्जु रुच्चैर्बलवच्च विव्यधुः शरैः सुमुक्तैरितरेतरं पृथक् । शरा-
न्धकारे तु महात्मभिः कृते महामृधे योधवरैः परस्परम् ॥
चतुर्दिशो वै विदिशश्च पार्थिव प्रभा च सूर्यस्य तमोवृताभवत् ६५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच । राजन् कुरूणां प्रवरैर्बलैर्भीममभिद्रुतम् ।
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनञ्जयः ॥ १ ॥ विसृज्य सूत-
पुत्रस्य सेनां भारत सायकैः । प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान्
धनञ्जयः ॥ २ ॥ ततोऽस्याम्बरमाश्रित्य शरजालानि भागशः ।

पुरुषभी कोपमें भर वेगसे जानेवाले अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरेको मारनेलगे तथा विजय चाहनेवाले और शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले अनेक रथी, घुड़सवार, और हाथीसवार स्वर्गमें जानेके लिये उत्कण्ठित हो रणमें लड़नेलगे, और दोनों दल बाणोंकी मार चला एक दूसरेको घायल करनेलगे, हे राजन् ! उन महात्मा योधाओंने उस महायुद्धमें एक दूसरेपर फैंकेहुए बाणोंके जालसे ऐसा अँधेरा करदिया कि-चारों दिशाएँ, उप-दिशाएँ और सूर्यकी कान्तिभी अन्धकारके कारण प्रतीत नहीं होती थी ॥ ६१-६५ ॥ उनासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् ! दूसरी ओर कौरवोंके प्रधान २ योधाओंने भीमसेनके ऊपर चढाईकी और भीमसेन कौरवरूपी समुद्रमें डूबनेवाला ही था कि-अर्जुन भीमको उबारताहुआ सा सूतपुत्रकी सेनाको छोड़ बाणोंसे शत्रुओंके वीरोंको यमलोकमें भेजनेलगा ॥ १-२ ॥ इस समय अर्जुनके छोड़ेहुए बाण आकाशमें विभागानुसार उड़तेहुए दीखते थे, और दूसरे

अदृश्यन्त तथान्ये च निघ्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ३ ॥ स पक्षिसं-
घाचरितमाकाशं पूरयञ्छरैः। धनञ्जयो महाराज कुरूणामन्तकोऽ-
भवत् ॥ ४ ॥ ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्विमलैरपि । गात्राणि
प्राहिणोत् पार्थः शिरांसि च चकर्त्त ह ॥ ५ ॥ छिन्नगात्रैर्विकव-
चैर्विशिरस्कैः समन्ततः । पतितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत् समा-
वृता॥६॥धनञ्जयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वरथद्विपैः । संछिन्नभिन्ने-
विध्वस्तैर्व्यङ्गावयवैः स्तृता ॥ ७ ॥ सुदुर्गमा सुविषमा घोरात्यर्थं
सुदुर्दृशा । रणभूमिरभूद्राजन् महावैतरणी यथा ॥ ८ ॥ ईषाच-
क्राक्षभग्नैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम् । ससूतैर्हतसूतैश्च रथैः
स्तीर्णाभवन् मही ॥९॥ सुवर्णवर्णसन्नाहैर्योधैः कनकभूषणैः ।

बहुतसे बाण तुम्हारी सेनाका नाश करनेलगे ॥ ३ ॥ पक्षियोंकी
टोलियोंकी समान बाणोंसे आकाशको व्याप्त करताहुआ महा-
बाहु अर्जुन कौरवोंका काल बनगया ॥ ४ ॥ अर्जुन भल्लोंसे,
क्षुरप्रोंसे, चमचमातेहुए नाराचोंसे शत्रुओंके अङ्गोंको काटनेलगा
और शिरोंको उडानेलगा ॥५ ॥ हे राजन् ! युद्धभूमि भुरकसहुए
शरीरोंसे, कवचरहित धडोंसे और गिरेहुए योधाओंसे ढकगई ६
रणभूमि अर्जुनके बाणोंकी मारसे छिन्नभिन्न हुए रथ, घोड़े
और हाथियोंसे छिन्न, भिन्न और कुचलेहुए अंग प्रत्यङ्गोंसे वैत-
रणी नदीकी समान दुर्गम, विषम और भयङ्कर तथा कठिनसे
देखने योग्य होगई७-८युद्ध करने वालोंमेंसे किसीके रथकी
ईषा, किसीका पहिया और किसीके रथकी धुरी टूटगई थी तथा
किसीके टेकड़े टूटगए थे तथा किन्हींके घोड़े मरगए थे तथा
किन्हींके जीवित थे कितनोंहीके सारथी मरगए थे और
कितनों के ही जीवित थे, ऐसे रथसमूहोंसे पृथ्वी भररही
थी ॥ ९ ॥ सदा मद टपकानेवाले, मजबूत कवचवाले
और जिनके ऊपर सुनहरी कवच पहिरे हुए सुवर्ण

आस्थिताः क्लृप्तवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः ॥ १० ॥ क्रुद्धाः
क्रूरैर्महामात्रैः पार्ष्ण्यंगुष्ठप्रचोदिताः । चतुःशताः शरवरैर्हताः पेतुः
किरीटिना ॥ ११ ॥ पर्यस्तानीव शृङ्गाणिससत्त्वानि महागिरेः ।
धनञ्जयशराभ्यस्तैस्तीर्णा भूर्वरवारणैः ॥ १२ ॥ समन्ताज्जलद-
प्रख्यान् वारणान्मदवर्षिणः । अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान् भिन्द-
न्निवांशुमान् ॥ १३ ॥ हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भिन्नैश्च बहुधा रथैः ।
विशस्त्रयन्त्रकवचैर्युद्धशौण्डैर्गतासुभिः ॥ १४ ॥ अपविद्धायुधै-
र्मार्गः स्तीर्णोऽभूत् फाल्गुनेन वै । व्यस्फूर्जयच्च गांडीवं सुमह-
द्भैरवं रवम् ॥ १५ ॥ घोरवज्रविनिष्पेषः स्तनयित्नोरिवाम्बरे ।
ततः प्रादीर्यत चमूर्धनञ्जयशराहता ॥ १६ ॥ महावातसमा-

के गहनोंसे विभूषित योधा बैठेहुए थे ऐसे हाथियोंको जब क्रूरमहावतोंने अंकुश और अंगूठा मारकर चलाया तब वे क्रोधमें भरकर दौड़े, उनमेंके चार सौ हाथी अर्जुनके बाणोंकी मारसे बड़े भारी पर्वतोंके जीवोंसे भरे शिखरोंकी समान भूमिमें ढहगए, उनके गिरनेपर रणभूमि छागई १०-१२ प्रभाकर सूर्य जैसे मेघमण्डल को तोडकर उदय होता है, तैसे ही अर्जुनका रथभी चारों ओर खड़े हुए श्याम वर्णके हाथियोंकी लंघारको नष्टभ्रष्ट कर बढने लगा १३ उस समय युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे मरेहुए घोडे,हाथी, मनुष्योंसे, टूटेहुए रथोंसे, शस्त्रोंसे, यंत्रोंसे और कवचरहित पडे हुए और युद्धकुशल होनेपर भी आयुधशून्य होनेसे मरेहुए योधा-ओंसे रणभूमिका मार्ग खचाखच होरहा था, अर्जुनके गाण्डीव धनुषका भी आकाशमें सजल मेघकी गर्जनाके समान और परस्पर टकराते हुए वज्रोंकी समान भयंकर शब्द होरहा था, धनञ्जयके बाणोंसे पिटती हुई सेना समुद्रमें आँधीसे झँझोड़ी जाती हुई नौकाकी समान, विदीर्ण होने लगी; गाण्डीव धनुषसे छूटते हुए प्राणलेवा नानाप्रकारके, बरैंदी और बिजलीकी समान बाण

विद्धा महानौरिव सागरे । नानारूपाः प्राणहराः शरा गाण्डीव-
चोदिताः ॥ १७ ॥ अलातोल्काशनिप्रख्यास्तत्र सैन्यं विनिर्दहन् ।
महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा ॥ १८ ॥ तथा तव महा-
सैन्यं प्रास्फुटच्छरपीडितम् । संपिष्टदग्धविध्वस्तं तव सैन्यं किरी-
टिना ॥ १९ ॥ कृतं प्रविहतं बाणैः सर्वतः प्रद्रुतं दिशः । महावने
मृगगणा दावाग्नित्रासिता यथा ॥ २० ॥ कुरवः पर्यवर्त्तन्त
निर्दग्धा सव्यसाचिना । उत्सृज्य हि महाबाहुं भीमसेनं तथा
रणे ॥ २१ ॥ बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत् पराङ्मुखम् । ततः
कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः ॥ २२ ॥ भीमसेनं समासाद्य
मुहूर्त्तं सोऽभ्यवर्त्तत । समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फाल्गुनः २३
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम् । भीमसेनाभ्यनुज्ञात-
स्ततः प्रायाद्धनञ्जयः ॥ २४ ॥ नादयन् रथघोषेण पृथिवीं द्यां च

तुम्हारी सेनाको भस्म करने लगे, बड़े भारी पर्वत पर बाँसके वनमें रात्रिमें अग्नि लगनेसे वह जैसे चट२ करता हुआ प्रज्वलित हो उठता है, तैसेही तुम्हारी बड़ी भारी सेना बाणोंसे पीड़ित हो भागने लगी, तुम्हारी सेनाको अर्जुनने बाणोंसे पीस डाला, जला डाला और ध्वस्त करडाला तब वह सेना चारों ओर भागने लगी, अर्जुनके द्वारा बाणोंसे जलाये जाते हुए कौरव दावाग्निसे भस्म होते हुए मृगोंकी समान त्रस्त हो भागने लगे, इसप्रकार कौरवोंकी सेना उद्विग्न हो महाबाहु भीमसेनको छोड़ पीठदे भागनेलगी, जब कौरवोंकी सेना भागगई तब युद्धविजयी अर्जुनने भीमसेनके पास पहुँचकर दो घड़ी विश्राम लिया, फिर भीमसेनको आलिंगन कर उसके साथ कितनी ही बातें कहकर कहा कि-राजा युधिष्ठिरके शरीरमेंसे बाण निकाल दियेगये हैं तथा वे अब अच्छे हैं, इसप्रकार कुशल मङ्गल कहकर और अनुमति ले रथकी घनघनाहटसे पृथ्वी और आकाशको

भारत । ततः परिवृतो वीरैर्दशभिर्योधपुङ्गवैः ॥ २५ ॥ दुःशासनादवरजैस्तत्र पुत्रैर्धनञ्जयः । ते तमभ्यर्दयन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ २६ ॥ आततेष्वसनाः शूरा नृत्यन्त इव भारत । अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः ॥ २७ ॥ नियुक्तान् हि स तान्मेने यमायाशु किरीटिना । ततस्ते प्राद्रवञ्छूरा पराङ्मुखरथेऽर्जुने ॥ २८ ॥ तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान् । नाराचैरर्द्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत् ॥२९॥ अथान्यैर्दशभिर्भल्लैः शिरांस्येषां न्यपतायत् । रोषसंरक्तनेत्राणि सन्दष्टौष्ठानि भूतले ॥ ३० ॥ तानि वक्त्राणि विबभुः कमलानीव भूरिशः । तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश कौरवान् ॥ ३१॥ रुक्माङ्गदान्रुक्मपुंखैर्हत्वा प्रायादमित्रहा ॥ ३२ ॥ अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

गुंजारता हुआ रण करनेके लिये चला, तब दुःशासनसे छोटे योधाओंमें श्रेष्ठ दश भाइयों ने अर्जुनको घेर लिया और विशाल धनुष धारण करनेवाले वे नाचतेहुएसे रणमें घूम कर, उल्काओंसे जैसे हाथीको दागाजावे तैसे बाणोंकी मारसे अर्जुनको पीडित करनेलगे, परन्तु श्रीकृष्णने रथको आगे हाँक कर उनके रथोंको दाहिनी ओर लाडाला और यह समझनेलगे कि अर्जुन अब शीघ्र ही इनको यमके पास भेजदेगा, अर्जुनका रथ ज्यों ही बढा कि—शूरवीर भाई उसके ऊपर चढगए तब पृथापुत्र अर्जुनने उन आते हुओंकी ध्वजा, घोड़े, धनुष और बाणोंको अर्धचन्द्र और नाराचनामक बाणोंसे शीघ्र ही काटडाला ॥ १४—२६ ॥ और भल्ल जातिके दशबाण मार उनके शिरोंको पृथ्वीपर गिरादिया, रोषके कारण लाल नेत्रवाले और ओठोंको काटतेहुए उनके भूमिपर पड़े हुए मस्तक कमलोंकी समान दीखते थे इस प्रकार शत्रुनाशी अर्जुन बडे वेगवान् दश भल्लोंसे उन सुवर्णके बाजूबन्द पहिरनेवाले कौरवोंके दश योधाओंको मार आगे बढा ॥ ३०—३२ ॥ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच । तं प्रयान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम् । युद्धायाभ्यद्रवन् वीराः कुरूणां नवती रथाः ॥ १ ॥ कृत्वा संशप्तका घोरं शपथं पारलौकिकम् । परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम् ॥ २ ॥ कृष्णः श्वेतान् महावेगानश्वान्काञ्चनभूषणान् । मुक्ताजालप्रतिच्छन्नान् प्रैषीत् कर्णरथं प्रति ॥ ३ ॥ ततः कर्णरथं यान्तमरिघ्नं तं धनञ्जयम् । बाणवर्षैरभिघ्नन्तः संशप्तकरथा ययुः ॥ ४ ॥ त्वरमाणांस्तु तान् सर्वान् ससूतेष्वसनध्वजान् । जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः ॥ ५ ॥ तेऽपतन्त हता बाणैर्नानारूपैः किरीटिना । सविमाना यथा सिद्धाः स्वर्गात् पुण्यक्षये तथा ॥ ६ ॥ ततः सरथनागाश्वाः कुरवः कुरुसत्तमम् । निर्भया भरतश्रेष्ठमभ्यवर्त्तन्त फाल्गुनम् ॥ ७ ॥ तदा-

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् ! जिसकी ध्वजामें हनुमान् हैं, वह अर्जुन बडे वेगवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ आगे बढनेलगा उस समय कौरवपक्षके व्याघ्रसमान शूरवीर नब्बै संशप्तक योधा 'पीछे हटने पर हमें परलोक न मिले' ऐसी भयंकर शपथ खाकर नरव्याघ्र अर्जुनके सामने युद्ध करनेको घँस आए और अर्जुनको घेर लिया ॥१-२॥ श्रीकृष्ण उस ओर ध्यान न देकर, तेज चलनेवाले सुवर्णके गहनोंसे अलंकृत, मोतीकी झूल ओढनेवाले श्वेत वर्णके घोड़ोंको कर्णके रथकी ओरको ही हाँकनेलगे ।३। तब अरिनाशक अर्जुनको कर्णके रथकी ओर बढते देख संशप्तक रथी बाणोंको छोडतेहुए अर्जुन पर दौड़े ॥ ४ ॥ उन नब्बै संशप्तकोंको फुर्ती करते देख अर्जुनने उन सबोंको सारथी, धनुष और बाणों सहित तीक्ष्ण बाणोंसे काटडाला ॥५॥ अर्जुनके बाण मारने पर अनेक रूपवाले संशप्तक, पुण्यक्षय होनेपर विमानों-सहित स्वर्गसे गिरतेहुए सिद्धोंकी समान भूमिपर गिर पडे ६ यह देखकर हे भरतर्षभ ! कौरवोंके रथी, हाथीसवार और घुड़सवार

यस्तमनुष्याश्वमृदीर्णवरवारणम् । पुत्राणान्ते महासैन्यं समरोत्सीद्धनञ्जयम् ॥ ८ ॥ शक्त्यृष्टितोमरप्रासैर्गदानिस्त्रिंशसायकैः । प्राच्छादयन्महेष्वासाः कुरवः कुरुनन्दनम् ॥ ९ ॥ तामन्तरीक्षे विततां शस्त्रवृष्टिं समन्ततः । व्यधमत् पांडवो वाणैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ १० ॥ ततो म्लेच्छाः स्थितैर्मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः । पार्श्वतो व्यहनन् पार्थं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ११ ॥ कर्णिनालीकनाराचैस्तोमरप्रासशक्तिभिः। मुसलैर्भिन्दिपालैश्च रथस्थं पार्थमार्दयन् ॥ १२ ॥ तां शस्त्रवृष्टिमतुलां द्विपहस्तैः प्रवेरिताम् । चिच्छेद निशितैर्भल्लैरर्द्धचन्द्रैश्च फाल्गुनः ॥ १३ ॥ अथ तान् द्विरदान् सर्वान्नानालिङ्गैः शरोत्तमैः । सपताकध्वजारोहान् गिरीन् वज्रैरिवाहनन् ॥ १४ ॥ ते हेमपुंखैरिपुभिरर्दिता हेमप्रा-

---

निर्भय हो अर्जुन पर चढ़ दौड़े ॥७॥ जिसमें मनुष्य और हाथी घोड़े फैल रहे थे ऐसी तुम्हारे पुत्रोंकी बड़ी भारी सेना अर्जुनको समरमें आगे बढ़नेसे रोकने लगी ॥ ८ ॥ उन धनुर्धर कौरव-योधाओंने शक्ति, ऋष्टि, तोमर पास, गदा, तलवार और वाणोंकी मारसे अर्जुनको ढक दिया ॥ ९ ॥ आकाशमें चारों ओर फैली हुई उस वाणवृष्टिको अर्जुनने, सूर्य जैसे अन्धकारको किरणोंसे नाश करे तैसेही, वाणोंसे नष्टभ्रष्ट करदिया ॥१०॥ तब तुम्हारे पुत्रोंके आज्ञा देनेपर तेरहसौ हाथीसवार म्लेच्छ रथ में बैठे हुए अर्जुनको कर्णि, नालीक, नाराच, तोमर, प्रास और शक्ति, मूसल और भिन्दिपालोंसे मार पीडित करने लगे ११-१२ अर्जुनने सजेहुए भाले और अर्धचन्द्राकार वाण मारकर म्लेच्छोंके हाथियोंकी शूंडोंद्वारा फेंकी हुई उन वाणोंकी तुमुल वौछारोंको नष्टकर दिया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त अर्जुनने नाना प्रकारके श्रेष्ठ वाण छोड़ पर्वतोंको वज्रसे तोड़नेकी समान, पताका और ध्वजा सहित सवारोंको मारडाला ॥ १४ ॥

लिनः । हताः पेतुर्महानागाः साग्निज्वाला इवाद्रयः ॥ १५ ॥
ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद्विशाम्पते । स्तनतां कूजतां चैव
मनुष्यगजवाजिनाम् ॥ १६ ॥ कुञ्जराश्च हता राजन् दुद्रुवुस्ते
समन्ततः । अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १७ ॥
रथा हीना महाराज रथिभिर्वाजिभिस्तथा । गन्धर्वनगराकारा
दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ १८ ॥ अश्वारोहा महाराज धावमाना-
स्ततस्ततः । तत्र तत्रैव दृश्यन्ते निहताः पार्थसायकैः ॥ १९ ॥
तस्मिन् क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्वीर्यमदृश्यत । यत् सादिनो वार-
णांश्च रथांश्चैकोऽजयद्युधि ॥ २० ॥ ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन
भरतर्षभ । दृष्ट्वा परिवृतं राजन् भीमसेनः किरीटिनम् ॥ २१ ॥
हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान् कतिचिद्रथान् । जवेनाभ्यद्रवद्राजन्
धनञ्जयरथं प्रति ॥ २२ ॥ ततस्तत् प्राद्रवत् सैन्यं हतभूयिष्ठमा-

सुवर्णकी हमेलें पहिरनेवाले हाथी सुवर्णकी पिछाड़ी वाले बाणोंसे मारे जाने पर अग्निकी ज्वालावाले पर्वतोंकी समान रणभूमिमें गिरनेलगे ॥१५॥ हे राजन् ! उस समय गर्जते और चीत्कार करते हुए योधाओंका तथा गांडीव धनुषका बडा भारी शब्द होनेलगा ॥१६॥ जिनके सवार मारेगए थे ऐसे हाथी और घोडे बाणोंसे पिटने पर दशों दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥१७॥ हे महाराज ! रथी और घोडोंसे शून्यहुए सहस्रों रथ गन्धर्वनगरोंकी समान दीखते थे ॥ १८ ॥ और हे महाराज ! पार्थके बाणोंसे घायल हो घुडसवार इधर उधर दौडतेहुए ही दीखते थे १९ उस समय धनञ्जयकी भुजाओंका बल देखने योग्य था, उसने अकेले ही हाथीसवार और घुड़सवारोंको युद्धमें जीतलिया २० तब तीनभागोंमें बटे हुए सेनादलसे अर्जुनको घिरा देख हे भरतर्षभ ! भीमसेन ॥ २१ ॥ तुम्हारे बचे हुए थोड़ेसे रथियोंको छोड़ धनञ्जयके रथकी ओर वेगसे दौड़ा ॥ २२ ॥ तब मरनेसे बाकी

तुरम् । दृष्ट्वार्जुनं तदा भीमो जगाम भ्रातरं प्रति ॥ २३ ॥ हता-
वशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाबलान् । भीमो व्यधमदश्रान्तो गदा-
पाणिर्महाहवे ॥ २४ ॥ कालरात्रिमिवात्युग्रां नरनागाश्वभोज-
नाम् । प्राकाराट्टपुरद्वारदारणीमतिदारुणाम् ॥ २५ ॥ ततो गदां
नृनागाश्वेष्वाशु भीमो व्यवासृजत् । सा जघान बहूनश्वानश्वा-
रोहांश्च मारिष ॥२६॥ कार्ष्णायसतनुत्राणान्नरानश्वांश्च पांडवः ।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन् हता ॥ २७ ॥ दन्तैर्दशन्तो
वसुधां शेरते क्षतजोक्षिताः । भग्नमूर्द्धास्थिचरणा क्रव्यादगण-
भोजनाः ॥ २८ ॥ असृङ्मांसवसाभिश्च तृप्तिमभ्यागता तदा ।
अस्थीन्यप्यश्नती तस्थौ कालरात्रीव दुर्दृशा ॥ २९ ॥ सहस्राणि
दशाश्वानां हत्वा पत्तींश्च भूयसः । भीमोऽभ्यधावत् संक्रुद्धो गदा-

बची हुई घबड़ाई हुई वह सेना जहाँ तहाँ भाग गई उस समय भीम भाई अर्जुनके पास आपहुँचा और अर्जुनके मारनेसे बचेहुए महाबली घुड़सवारोंको देख जरासाभी विश्राम न ले हाथमें गदा ले मारने लगा ॥ २३-२४ ॥ कालरात्रिकी समान भयंकर, हाथी, घोड़े और मनुष्योंको खानेवाली, महल, किले और नगर के द्वारोंको तोड़ने वाली महादारुण गदाको भीमसेन शीघ्रतासे मनुष्य, हाथी और घोड़ोंपर पटकाने लगा हे राजन् ! वह गदासे बहुतसे घोड़े और घुड़सवारोंको मारने लगा ॥ २५-२६ ॥ भीमसेन लोहेके बख्तर पहिरने वालोंके ऊपर गदा पटकाने लगा तब वह झनझन शब्द करते हुए गिरने लगे ॥२७॥ दाँतोंसे दाँत पीसते हुए लोहू लुहान हुए योधा हाथ पैर और शिरोंके फट जाने पर राक्षसोंके भोजन बनते हुए भूमिमें गिरनें लगे २८ वह गदा भी रक्त, माँस और वसाको खाकर तृप्त होगई तब वह हड्डियोंको ही खानेलगी, उस समय वह कालरात्रिकी समान दुःखसे देखने योग्य होरही थी ॥ २९ । दशसहस्र घुड़सवारों

पाणिरितस्ततः ॥३०॥ गदापाणिं ततो भीमं दृष्ट्वा भारत तावकाः । मेनिरे समनुप्राप्तं कालदण्डोद्यतं यमम् ॥ ३१ ॥ स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्धः पाण्डुनन्दनः । प्रविवेश गजानीकं मकरः सागरं यथा ॥ ३२ ॥ विगाह्य च गजानीकं प्रगृह्य महतीं गदाम् । क्षणेन भीमः संक्रुद्धस्तन्निन्ये यमसादनम् ॥ ३३ ॥ गजान् सकण्टकान् मत्तान् सारोहान् सपताकिनः । पततः समपश्याम सपक्षानिव पर्वतान् ॥ ३४ ॥ हत्वा तु स गजानीकं भीमसेनो महाबलः । पुनः स रथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमभ्ययात् ॥ ३५ ॥ निहतं प्राङ्मुखप्रायं निरुत्साहं परं बलम् । व्यालम्बत महाराज प्रायशः शस्त्रवेष्टितम् ॥ ३६ ॥ विलम्बमानं तत् सैन्यमप्रगल्भमवस्थितम् । दृष्ट्वा प्राच्छादयद्बाणैरर्जुनः प्राणतापनैः ॥ ३७ ॥ नराश्वनरमा-

---

को तथा बहुतसे पैदलोंको मारनेके पीछे भीमसेन क्रोधमें भर गदा लिये इधर उधर घूमनेलगा ॥ ३० ॥ हे भारत ! तुम्हारे सैनिक हाथमें गदा पकड़ घूमतेहुए भीमको, कालदण्ड उठाकर विचरतेहुए यमराज सा मानने लगे ॥ ३१ ॥ क्रोधमें भरा पाण्डुनन्दन भीम गजसेनामें, मगर जैसे समुद्रमें घुसे तैसे आ पड़ा ॥ ३२ ॥ और हाथमें बड़ीभारी गदाले क्रोधमें भरे भीमने हस्तिसेनाको झँझोड़कर यमलोकको पहुँचादिया ॥३३॥ झूल पहिरेहुए मदमत्त हाथी पताका और सवारों सहित परवाले पर्वतोंसे गिरतेहुए हमें दिखाई देते थे ॥ ३४ ॥ महाबली भीमसेन गजसेनाका संहारकर अपने रथमें बैठ अर्जुनके पीछे चलनेलगा ३५ हे महाराज ! शत्रुसेना उत्साहहीन होगई थी, भागनेको तयार थी, शस्त्रोंसे बिधगई थी, इधर उधर टकरा रही थी शत्रुसेनाको इधर उधर भटकती हुई और गभराईहुई देखकर अर्जुनने उसको प्राणोंको सन्तप्त करनेवाले बाण मारकर ढकदिया ॥ ३६–३७ ॥ युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे छायेहुए हाथी, मनुष्य और रथ केसरसे

तन्ना युधि गाण्डीवधन्वना। शरव्रातैश्चिता रेजुः कदम्बा इव केसरैः ॥ ३८ ॥ ततः कुरूणामभवदार्त्तनादो महान्नृप। नराश्वनागासुहरैर्वध्यतामर्जुनेषुभिः ॥ ३९ ॥ हाहाकृतं भृशं त्रस्तं लीयमानं परस्परम्। अलातचक्रवत् सैन्यं तदाभ्रमत तावकम् ॥४०॥ ततस्तद्युद्धमभवत् कुरूणां सुमहद्बलैः। न ह्यत्रासीदनिर्भिन्नो रथः सादी हयो गजः ॥ ४१ ॥ आदीप्तमिव तत् सैन्यं शरैश्छिन्नतनुच्छदम्। आसीत् शोणितसंक्लिन्नं फुल्लाशोकवनं यथा ४२ तं दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनम्। निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते ॥ ४३ ॥ अविसह्यन्तु पार्थस्य शरसम्पातमाहवे। मत्वा न्यवर्त्तन् कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना ॥ ४४ ॥ ते हित्वा समरे कर्णं वध्यमानाश्च सायकैः। प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता-

---

लदे कदम्बके वृक्षोंसे दीखते थे ॥३८॥ हे राजन्! उस समय अर्जुनके बाणोंके प्रहारसे मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके प्राणोंका नाश होनेपर कौरवसेनामें भयङ्कर रोवाराट मचगई॥३९॥ उस समय तुम्हारी सेना अतीव त्रस्त होकर हाहाकाकार मचातीहुई और एक दूसरेसे टकरातीहुई रणमें बरेंटीको समान घूमनेलगी ४० इसप्रकार कौरवोंकी बड़ीभारी सेनाओंका (अर्जुनसे) युद्धहुआ था इस युद्धमें ऐसा कोई भी हाथी, घोडा रथ या सवार नहीं बचा था, कि–जो बाणोंसे घायल न हुआ हो ॥ ४१ ॥ सैनिकोंके कवच बाणोंसे कटगये थे, इससे सेना प्रज्वलित हुईसी दीखती थी, और लोहूलुहान होनेसे प्रफुल्लित हुए अशोकवनसी दीखती थी॥४२॥ अर्जुनको ऐसा पराक्रम करते देख सब कौरव कर्णके जीवनसे निराश होगए ॥ ४३ ॥ युद्धमें अर्जुनके बाणप्रहारको असह्य मानकर कौरव योधा अर्जुनसे हारकर रणमेंसे पीछे हटने लगे ॥ ४४ ॥ अर्जुनके बाणोंसे घायल होतेहुए योधा भयभीत हो अपनी रक्षाके लिये कर्णको पुकारते हुए रणमें

श्चुक्रुशुश्चापि सूतजम् ॥ ४५ ॥ अभ्यद्रवत तान् पार्थः किरञ्छ-शतान् बहून् । हर्षयन् पाण्डवान् योधान् भीमसेनपुरोगमान्४६ पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति । अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णोऽभवत्तदा ॥४७॥ कुरवो हि महाराज निर्विषा पन्नगा इव । कर्णमेवोपलीयन्त भयाद्गाण्डीवधन्वनः ॥ ४८ ॥ यथा सर्वाणि भूतानि मृत्योर्भीतानि मारिष । धर्ममेवोपलीयन्ते कर्मवन्ति हि यानि च ॥ ४९ ॥ तथा कर्णं महेष्वासं पुत्रास्तव नराधिप । उपालीयन्त संत्रासात् पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५० ॥ ताञ्शोणितपरिक्लिन्नान् विषमस्थाञ्छरातुरान् । मा भैष्टेत्यब्रवीत् कर्णो ह्यभितो मामितेति च ॥ ५१ ॥ प्रभग्नं हि बलं दृष्ट्वा बलात् पार्थेन तावकम् । धनुर्विस्फारयन् कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघां-

---

कर्णको अकेला छोड भागनेलगे ॥ ४५ ॥ तब अर्जुनने उनके ऊपर सैंकडों बाण बरसाकर भीमसेन आदि पांडव पक्षके योधाओंको प्रसन्न किया ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! दूसरी ओर उस समय तुम्हारे पुत्र भाग कर कर्णके रथके पास पहुँच गए, अगाध रणसागरमें डूबते हुए तुम्हारे पुत्रोंकी कर्णने द्वीपकी समान रक्षा की थी ॥४७॥ हे महाराज ! गांडीव धनुषधारी अर्जुनके भयसे विषरहित सर्पकी समान हुए कौरव कर्णके ही पास पहुँचने लगे ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! कर्म करनेवाले सब प्राणी मृत्युसे डर कर जैसे धर्मकी ही शरण लेते हैं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार महात्मा अर्जुनके भयसे डरेहुए तुम्हारे पुत्र महाधनुर्धर कर्णकी ही शरणमें पहुँचनेलगे ॥ ५० ॥ कौरवोंको लोहूलुहान हुए, विपत्तिमें पड़े हुए और बाणोंकी मारसे खिन्न होतेहुए देखकर कर्ण निर्भय हो उनसे कहनेलगा कि–डरो मत ! २ मेरे पास आजाओ ॥ ५१ ॥ तुम्हारी सेनाको अर्जुन बलपूर्वक भगा रहा था, यह देखकर कर्ण शत्रुओंको मारनेकी इच्छासे धनुष

सया ॥ ५२ ॥ तान् विद्रुतान् कुरून् दृष्ट्वा कर्णः शस्त्रभृताम्वरः । सञ्चिन्तयित्वा पार्थस्य वधे दध्रे मनः श्वसन् ॥ ५३ ॥ विस्फार्य सुमहच्चापं तत आधिरथिर्नृपः । पञ्चालान् पुनराधावत् पश्यतः सव्यसाचिनः ।।५४।। ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः । कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम् ॥ ५५ ॥ ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष । व्ययोजयत पञ्चालान् प्राणैः प्राणभृतांवर ॥५६॥ तत्र शब्दो महानासीत् पञ्चालानां महामते । वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थे मित्रगृद्धिना ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच । ततः कर्णः कुरुषु प्रद्रुतेषु वरूथिना श्वेतहयेन राजन् । पाञ्चालपुत्रान् व्यधमत् सूतपुत्रो महेषुभिर्वात

तान कर खड़ा होगया ॥५२॥ परन्तु कौरव इस समय भाग ही रहे थे, यह देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णने कुछ विचार किया और फिर साँस खेंचकर अर्जुनको मारनेका मनमें विचार किया ॥ ५३ ॥ अधिरथका पुत्र कर्ण अर्जुनके सामने ही अपने बड़े भारी धनुषको खेंच पाञ्चालोंकी ओर झपटा ॥ ५४ ॥ पाञ्चाल राजे नेत्रोंको लाललाल कर, मेघ जैसे पर्वत पर जल बरसाते, तैसे उस समय कर्ण पर बाण बरसानेलगे ॥ ५५ ॥ हे प्राणधारियोंमें श्रेष्ठ ! उस समय कर्णने भी सहस्रों बाण छोड़ पाञ्चाल राजाओं मारडाला ॥ ५६ ॥ हे महामते ! मित्रका हितैषी कर्ण मित्रके लिये पाञ्चाल राजाओंका जिस समय संहार करने लगा, उस समय वे भयंकर चीसें मारने लगे ॥ ५७ ॥ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् ! कौरव योधाओंके रणमेंसे भाग जानेपर सूतपुत्र कर्ण श्वेत घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ, आँधी

इवाभ्रसंघान् ॥ १ ॥ सूतं रथादञ्जलिकैर्निपात्य जघान चाश्वान् जनमेजयस्य । शतानीकं सुतसोमञ्च भल्लैरवाकिरद्धनुषी चाप्यकृन्तत् ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नं निर्बिभेदाथ षड्भिर्जघान चाश्वांस्तरसा तस्य संख्ये । हत्वा चाश्वान् सात्यकेः सूतपुत्रः कैकेयपुत्रं न्यवधीद्विशोकम् ॥ ३ ॥ तमभ्यधावन्निहते कुमारे कैकेयसेनापतिरुग्रकर्मा । शरैर्विधुन्वन् भृशमुग्रवेगैः कर्णात्मजं चाभ्यहनत् प्रसेनम् ॥ ४ ॥ तस्यार्द्धचन्द्रैस्त्रिभिरुच्चकर्त्त प्रसह्य बाहू च शिरश्च कर्णः । स स्यन्दनाद्गामगमद् गतासुः परश्वधैः शाल इवावरुग्णः ॥ ५ ॥ हताश्वमञ्जोगतिभिः प्रसेनः शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः । प्रच्छाद्य नृत्यन्निव कर्णपुत्रः शैनेयबाणाभिहतः पपात ॥ ६ ॥ पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः

जैसे बादलोंके टुकड़े उड़ा दे तैसे, बाण मारकर पाञ्चाल राजाओंके पुत्रोंके टुकड़े उड़ाने लगा ॥ १ ॥ उसने जनमेजयके सारथिको अंजलिक नामक बाण मारकर गिरा दिया और घोड़ोंको मारडाला, शतानीक और सुतसोमके भाले मारे और धनुषोंको काटडाला ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नको छः बाणोंसे घायल कर उसके घोड़ोंको फुर्तीसे मारडाला, फिर उसने सात्यकिके घोड़ोंको मार कैकेयके पुत्र विशोकको मारडाला ॥ ३ कैकेयकुमारके मारे जाने पर कैकेयोंके सेनापति उग्रकर्माने भयंकर वेगवाले बाणोंको फेंककर कर्णके पुत्र प्रसेनको बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४ ॥ परन्तु कर्णने हँसकर उसके शिर और भुजाओंको तीन बाणमार कर काटडाला तब वह प्राणहीन हो फरसेसे काटे हुए सालकी समान, रथपरसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५ ॥ दूसरी ओर जब सात्यकिके घोड़े मर गए थे तब रणमें नाचते हुए कर्णके पुत्र प्रसेनने धनुषको कान तक खेंच उसको बाणोंसे ढ़क दिया, परन्तु अन्तमें वह सात्यकिके बाणोंसे मरकर भूमिमें गिर पड़ा । ६ ।

कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः । हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन् स व्यवासृजद्बाणममित्रसाहम् ॥ ७ ॥ तमस्य चिच्छेद शरं शिखंडी त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम् । शिखण्डिनः कार्मुकं सध्वजञ्च छित्वा क्षुराभ्यां न्यपतत् सूतजातः ॥ ८ ॥ शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो धार्ष्टद्युम्नेः स शिरश्चोच्चकर्त्त । अथाभिनत् सुतसोमं शरेण सुसंशितेनाधिरथिर्महात्मा । अथाक्रन्दे तुमुले वर्त्तमाने धार्ष्टद्युम्नौ निहते तत्र कृष्णः । अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ कर्णं जहीत्यब्रवीद्राजसिंह ॥ १० ॥ ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो रथं रथेनाधिरथेर्जगाम । भये तेषां त्राणमिच्छन् सुबाहुरभ्याहतानां रथयूथपंन ॥ ११ ॥ विस्फार्य गाण्डीवमथोग्रघोषं ज्यया समा-

---

पुत्रके मारेजानेसे कर्ण क्रोधमें भर गया और उसने सात्यकिको मारनेकी इच्छासे उसके समीप पहुँच उससे कहा कि "हे शैनेय ! तुझे; अभी मारे डालताहूँ" यह कहकर कर्णने शत्रुओंका संहार करनेवाला बाण छोड़ा ॥ ७ ॥ परन्तु शिखण्डीने तीन बाणमार उस बाणको नष्टकर दिया, और तीन बाणोंसे कर्णको भी बींध डाला, तब सूतपुत्रने दो क्षुर मारकर शिखण्डीकी ध्वजा और धनुषको काटडाला फिर भयङ्कर पराक्रमी अधिरथके पुत्र महात्मा कर्णने शिखण्डीको छः बाणोंसे बींधडाला और धृष्टद्युम्नके पुत्रके शिरको काटडाला तथा अतीव तीक्ष्ण बाणसे सुतसोमको बींध डाला ॥ ८–९ ॥ धृष्टद्युम्नके पुत्रके मारे जाने पर सेनामें बड़ा द्वन्द मचने लगा तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि–हे पार्थ ! हे राजसिंह ! कर्ण पृथ्वी परसे पाञ्चाल राजाओंको नष्ट कर कर रहा है अतः तू कर्णको मार ॥ १० ॥ श्रीकृष्णके कहनेको सुनते ही मनुष्योंमें वीर, सुन्दर भुजाओं वाला अर्जुन खिल खिलाकर, रथयूथोंके स्वामी कर्णने चढ़कर जिन पांचाल राजाओं को भयभीत कर डाला था, उनकी रक्षा करनेके लिये रथमें बैठ

हस्त तले भृशञ्च । बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा जघान नागाश्व-
रथध्वजांश्च ॥ १२ ॥ प्रतिश्रुतः प्राचरदन्तरीक्षे गुहा गिरीणाम-
पतन् वयांसि । यन्मण्डलज्येन विजृम्भमाणो रौद्रे मुहूर्तेऽभ्यप-
तत् किरीटी ॥ १३ ॥ तं भीमसेनोऽनुययौ रथेन पृष्ठे रक्षन्
पाण्डवमेकवीरः । तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां कर्णाय याता-
वरिभिर्विपक्तौ॥१४॥तत्रान्तरे सुमहत् सूतपुत्रश्चक्रे युद्धं सोमकान्
संप्रमृद्नन् । रथाश्वमातङ्गगणान् जघान प्राच्छादयामास शरैर्दि-
शश्च ॥ १५ ॥ तमुत्तमौजा जनमेजयश्च क्रुद्धौ युधामन्युशिख-
ण्डिनौ च । कर्णं विभेदुः सहिता पृषत्कैः संनर्दमानाः सह पार्ष-

---

तुरन्त कर्णके रथके पास गया और गाण्डीव धनुषका प्रचण्ड टंकार करके धनुषकी डोरीसे वारम्वार हाथकी हथेलियोंको बजाने लगा और एक दम बाणों की बौछारसे अन्धेरा कर घुड़सवार, हाथीसवार, रथी और ध्वजाओंका नाश करने लगा ॥ ११–१२ ॥ अर्जुनने जब उस भयंकर मुहूर्तमें मण्डलाकार और डोरी वाले गाण्डीव धनुषकी ध्वनि कर उत्साहशक्तिसे बलवान् हो शत्रुपक्ष पर हल्ला किया, उस समय धनुषकी प्रत्यञ्चाकी प्रतिध्वनि धुर आकाशलों पहुँच गई इस कारण पक्षी भयभीत हो गुफाओंमें घुस गये ॥ १३ ॥ वीरवर भीमसेन अर्जुनकी रक्षा करनेकी इच्छासे रथमें बैठकर उसके पीछे२ चलता था; तथा वे दोनों राजपुत्र शत्रुओंके घेरेमें घिर गए थे, तो भी पृथक् २ रथमें बैठ एकदम कर्णके पास जापहुँचे ॥ १४ ॥ उस समय सूतपुत्र कर्णने सोमकवंशके राजाओंकी सेनाका नाश कर महाभयंकर युद्ध कर अनेकों घोड़े, रथ और हाथिओंका संहार करडाला और बाणोंके समूहसे दिशाओंको छा दिया १५ उसके सामने उत्तमौजा, जनमेजय, युधामन्यु, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न आदि सब इकट्ठे हो सिंहोंकी समान गर्जना करने

तेन ॥ १६ ॥ ते पञ्च पञ्चालरथप्रवीरा वैकर्त्तनं कर्णमभिद्रवन्तः । तस्माद्रथाच्च्यावयितुं न शेकुर्धैर्यात् कृतात्मानमिवेन्द्रियार्थाः ॥ १७ ॥ तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतांस्तूणं पताकाश्च निकृत्य बाणैः । तान् पञ्चभिस्त्वभ्यहनत् पृषत्कैः कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १८ ॥ तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन । साद्रिद्रुमा स्यात् पृथिवी विशीर्णेत्यतीव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १९ ॥ स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना भृशायतेनाधिरथिः शरान् सृजन् । बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ २० ॥ शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिनच्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् । त्रिभिर्युधामन्युरविध्यदाशुगैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥ २१ ॥

लगे और कर्णके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ १६ ॥ इन्द्रियोंसे भोगने योग्य विषय जैसे जितेन्द्रिय पुरुषको चलायमान नहीं करसकते, तैसे ही पांचालोंके पाँच वीर पुरुषोंने कर्ण पर चारों ओरसे धावाकिया, तो भी ये उसे रथपरसे नीचे न गिरासके ॥ १७ ॥ कर्णने बाणोंकी मारसे उनके घोड़े सारथी, ध्वजा, पताका और धनुषोंको तुरत ही काटडाला, फिर उनके पाँच बाण मार सिंहकी समान जोरसे गर्जने लगा ॥१८॥ कर्ण जब हाथमें धनुषले बाण छोड़ पांचालोंको मारनेलगा, तब उसके धनुषके शब्दसे पर्वत और वृक्षोंसहित पृथ्वी फटतीहुई प्रतीत होती थी॥१९॥अधिरथका पुत्र कर्ण जिस समय इन्द्रके धनुषकी समान अतीव विशाल धनुषमेंसे बाण छोड़ने लगा उस समय वह रणमें किरणोंकी मालासे प्रदीप्त परिवेष (मंडल) वाले सूर्यसा दीखता था ॥ २० ॥ उसने शिखंडीके बारह, उत्तमौजाके छः और युधामन्यु, उत्तमौजा तथा धृष्टद्युम्नके तीन २ बाण मारे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! कर्णने युद्धमें पाँच महारथियोंको बाण

पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते महाहवे सूतसुतेन मारिप । निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना यथेन्द्रियार्थात्मवता पराजिताः ॥ २२ ॥ निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे विपन्ननावो वणिजो यथार्णवे । उदध्रिरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् ॥ २३ ॥ ततः शिनीनामृषभः शितैः शरैर्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून् बहून् । विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयैस्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥ २४ ॥ कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा स्वयञ्च कर्णो निशितैरताडयत् । स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २५ ॥ समाततेनेष्वसनेन कूजता भृशायतेनामितवाणवर्षिणा । बभूव दुर्द्धर्षतरः स

मार कर हरादिया, तब वे आत्मज्ञानीसे हारेहुए पाँच विषय जैसे उद्यमरहित हो जाते हैं तैसे ही वे उद्यमशून्य होगए और शत्रुओंको आनन्द देने लगे ॥ २२ ॥ और नौकामें बैठेहुए बनिये नौका टूटनेसे जैसे समुद्रमें डूबनेको हों और उनको समुद्र मेंसे बाहर निकाला जाय तैसे ही पञ्चाल राजे भी जब कर्णरूपी समुद्रमें डूबनेलगे तब द्रौपदीके पुत्रोंने युद्धकी सामग्रीसे भरे रथोंमें अपने मामाओंको बैठा उनको रणसागरमेंसे बाहर निकाला २३ और शिनिके श्रेष्ठ पुत्र सात्यकिने तीक्ष्ण बाण मारकर कर्णके छोड़ेहुए बाणोंको काटडाला और लोहेके प्रचंड बाण मारकर कर्णको बींधडाला और तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधनके आठ बाण मारे॥२४॥तब कृपाचार्य, कृतवर्मा, तुम्हारा ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन तथा कर्ण सात्यकिके तीक्ष्ण बाण मारनेलगे,यादवोंमें श्रेष्ठ मानाजाने वाला सात्यकि भी दिक्पाल सरीखे चार वीर पुरुषों के साथ दैत्यपतिकी समान युद्ध करने लगा ॥ २५ ॥ अमित बाणोंको बरसाते हुए पूर्ण रीति से खेंचने से शब्द करते हुए धनुषके कारण सात्यकि शरद ऋतुमें आकाशके बीचमें स्थित

सात्यकिः शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः ॥ २६ ॥ पुनः समास्थाय रथान् सुदंशिताः शिनिप्रवीरं जुगुपुः परन्तपाः । समेत्य पाञ्चालमहारथा रणे मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २७ ॥ ततोभवद्युद्धमतीव दारुणं तवाहितानां तव सैनिकैः सह । रथाश्वमातंगविनाशनं तथा यथा सुराणामसुरैः पुराभवत् ॥ २८ ॥ रथद्विपा वाजिपदातयस्तथा भ्रमन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः । परस्परेणाभिहताश्च चस्खलुर्विनेदुरार्त्ता व्यसवोपतंस्तथा ॥ २९ ॥ तथागते भीममभीस्तवात्मजः ससार राजावरजः किरञ्छरैः । तमभ्यधावंस्त्वरितो वृकोदरो महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान् ॥ ३० ॥ ततस्तयोर्युद्धमतीवदारुणं प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः । परस्परेणाभिनिविष्टरोपयोरुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३१ ॥ शरैः शरीरार्त्तिकरैः सुतेजनैर्निजघ्नतुस्तावितरेतरं भृशम् । सकृत् प्रभि-

---

सूर्यकी समान दुर्धर्ष होगया ॥ २६ ॥ फिर महारथी परन्तप पञ्चाल राजे कवचोंको पहिर रथोंमें बैठ, शत्रुनिग्रहके समय मरुतोंने जैसे इन्द्रकी रक्षाकी थी तैसे, सात्यकिकी रक्षा करने लगे ॥ २७ ॥ पहिले जैसे देवताओंका असुरोंके साथ रथ, घोड़े और हाथियोंका नष्ट करनेवाला युद्ध हुआ था, ऐसेही तुम्हारे शत्रुओंका तुम्हारे सैनिकोंसे दारुण युद्ध होने लगा ॥ २८ ॥ रथ, हाथी, और घोड़े और उनके सवार तथा पैदल अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे छागये और परस्परके प्रहारसे आर्त होकर काँपने लगे, गर्जने लगे और प्राणरहित होकर गिरने लगे ॥ २९ ॥ दूसरी ओर दुर्योधनसे छोटा तुम्हारा पुत्र दुःशासन निडर हो बाणोंकी बौछार करता हुआ भीमसेन पर दौड़ा, तब सिंह जैसे रुरुमृग परदौड़े तैसे, भीमसेन दुःशासन पर झपटा ॥ ३० ॥ शम्बर और इन्द्रकी समान क्रोधमें भरे महादारुण उन दोनोंका युद्धरूप जुआ प्राणोंका दाँव रखकर होने लगा ॥ ३१ ॥ मदमत्त

न्नाविव वासितान्तरे महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३२ ॥ तवा-
त्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन् धनुः क्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत् ।
ललाटमप्यस्य विभेद पत्रिणा शिरश्च कायात् प्रजहार सारथेः ३३
स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं वृकोदरं द्वादशभिः पराभि-
नत् । स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृ-
षत् ॥ ३४ ॥ ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभू-
षितम् । महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहंमुमोच भीमांगविदारणक्षमम् ३५
स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत् । प्रसार्य
बाहू रथवर्यमाश्रितः पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत् ॥ ३६ ॥
इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि भीमदुश्शासनयुद्धे
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

कामासक्त दो हाथी जैसे ऋतुमती हथिनीके लिये युद्ध करें, ऐसे ही कुछ २ घायल हुए दोनों योधा शरीरको पीड़ित करनेवाले अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरेको घायल करनेलगे । ३२ । युद्ध करते २ भीमसेनने फुर्तीके साथ दो क्षुर मारकर दुःशासनके धनुष और ध्वजाको काटडाला और एक बाण मारकर दुःशासनके मस्तकको घायल करडाला तथा उसके सारथिके शिरको धडसे उडादिया ॥ ३३ ॥ राजपुत्र दुःशासनने स्वयं रथके घोड़ोंको पकड़लिया और दूसरा धनुषले भीमके बारह बाण मारे फिर सीधे जाने वाले और भी बहुतसे बाणोंकी भीमपर बौछार करनी आरम्भ करदी ३४ तदनन्तर दुःशासनने सूर्यकी किरणकी समान कान्तिमान्, सुवर्ण, हीरे और श्रेष्ठ रत्नोंसे जडा, इन्द्रके वज्रकी समान दारुण प्रहार करनेवाला और भीमके शरीरको विदीर्ण करसकनेवाला एकबाण भीमके ऊपर छोडा॥३५॥ उस बाणसे शरीरके घायल होनेपर भीमसेन लोहूलुहान हो प्राणरहित की समान भुजापसार रथमें गिर पडा, और थोड़ी ही देरमें भान आनेपर दहाडनेलगा ॥३६॥ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८२॥

सञ्जय उवाच । तत्राकरोद्‌ दुष्करं राजपुत्रो दुःशासनस्तुमुलं युध्यमानः । चिच्छेद भीमस्य धनुः शरेण षष्ट्या शरैः सारथिमप्यविध्यत् ॥ १ ॥ स तत् कृत्वा राजपुत्रस्तरस्वी विव्याध भीमं नवभिः पृषत्कैः ततोभिनद्बहुभिः क्षिप्रमेव वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा ॥ २ ॥ ततः क्रुद्धो भीमसेनस्तरस्वी शक्तिञ्चोग्रां प्राहिणोत्ते सुताय । तामापतन्तीं सहसातिघोरां दृष्ट्वा सुतस्ते ज्वलितामिवोल्काम् ॥ ३ ॥ आकर्णपूर्णैरिषुभिर्महात्मा चिच्छेद पुत्रो दशभिः पृषत्कैः । दृष्ट्वा तु तत् कर्म कृतं सुदुष्करं प्रापूजयन् सर्वयोधाः प्रहृष्टाः ॥ ४ ॥ अथाशु भीमञ्च शरेण भूयो गाढं स विव्याध सुतस्त्वदीयः । चुक्रोध भीमः पुनराशु तस्मै भृशं प्रजज्वाल रुषाभिवीक्ष्य ॥ ५ ॥ विद्धोस्मि वीराशु भृशं त्वयाद्य सह-

सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ! राजपुत्र दुःशासनने तुमुल युद्ध करते २ बड़ा दुष्कर कर्म किया कि—वाण मारकर भीमसेनके धनुषको काटडाला और साठ वाणोंसे उसके सारथिको घायल करडाला ॥ १ ॥ महात्मा दुःशासनने इतना करके भीमसेनको नौ वाणोंसे वींधडाला फिर फुर्तीले राजपुत्रने बहुतसे वाणोंसे उसको वींधडाला॥२॥ तब भीमसेन क्रोधमें भरगया और फुर्तीके साथ एक उग्र गदा तुम्हारे पुत्रके ऊपर फैंकी, जलतीहुई उल्काकी समान उस भयङ्कर गदाको आती देख तुम्हारे महात्मा पुत्रने धनुषको कान तक खेंच दश वाण छोड़ तोड़ फोड डाला उसके इस दुष्कर कर्मको देख सब योधा प्रसन्न हो उसकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३-४॥ तुम्हारे पुत्रने फिर भी बड़ी फुर्तीसे उसके वेगके साथ वाण मारकर उसको वींधदिया, तब भीमसेनको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने क्रोधपूर्वक दुःशासनकी ओर देख कर ऊँचे स्वरसे कहा कि— ओ वीर ! तूने मुझे बहुत ही घायल करदिया है, अतः तूभी अब मेरी गदाके प्रहारको फिर सह, इस

स्व भूयोपि गदाप्रहारम् । उक्त्वैवमुच्चैः कुपितोथ भीमो जग्राह तां भीमगदां वधाय ॥ ६ ॥ उवाच चाद्याहमहं दुरात्मन् पास्यामि ते शोणितमाजिमध्ये । अथैवमुक्तस्तनयस्तवोग्रां शक्तिं वेगात् प्राहिणोन्मृत्युरूपाम् ॥ ७ ॥ आविध्य भीमोपि गदां सुघोरां विचिक्षिपे रोषपरीतमूर्त्तिः । सा तस्य शक्तिं सहसा विरुज्य पुत्रं तवाजौ ताडयामास मूर्ध्नि ॥८॥ स विस्फुरन्नाग इव प्रभिन्नो गदामस्मै तुमुले प्राहिणोद्वै । तयाहरद्दश धन्वन्तराणि दुःशासनं भीमसेनः प्रसह्य ॥ ९ ॥ तया हतः पतितो वेपमानो दुःशासनो गदया वेगवत्या । विध्वस्तवर्माभरणाम्बरस्रग्विचेष्टमानो भृशवेदनातुरः ।१०। हयाः ससूता निहता नरेन्द्र चूर्णीकृतश्चास्य रथः पतन्त्या । दुःशासनं पाण्डवाः प्रेक्ष्य सर्वे हृष्टाः पञ्चालाः सिंहनादानमुञ्चन् ॥ ११ ॥ तं पातयित्वाथ वृकोदरोऽथ जगर्ज हर्षेण विनादयन् दिशः । नादेन

प्रकार ऊँचे स्वरसे कह कोपमें भरे भीमने दुःशासनको मारनेके लिये हाथमें भयङ्कर गदा पकडी ॥ ५—६ ॥ और कहा कि— "अरे दुरात्मन् ! आज मैं युद्धमें तेरे रक्तको पीऊँगा" भीमके इस प्रकार कहने पर तुम्हारे पुत्रने मृत्युकी समान उग्र शक्ति भीमके ऊपर फैंकी ७ भीमने भी क्रोधमें भर भयङ्कर गदाको घुमाकर फैंका वह दुःशासनकी शक्तिको नष्टकर उसके मस्तकमें बड़े वेगसे लगी ८ फिर मद झरतेहुए हाथीकी समान नवयौवन वाले भीमने इस तुमुल युद्धमें गदा मारकर दुःशासनको दश धनुष तककी दूरी तक धकेलदिया ॥९॥ उस गदाके प्रहारसे दुःशासनका कवच टूट गया, माला और गहने बिखरगए और वह वेदनासे आतुर हो तडफताहुआ गिरपडा ।।१०।। उसके घोड़े और सारथि भी उस गदाके लगनेसे मारे गए थे, दुःशासनकी ऐसी दशा देख पांडव और पांचाल प्रसन्न होकर सिंहोंकी समान दहाड़नेलगे ११ दुःशासनको गिरानेके पीछे वृकोदर भीमसेन हर्षमें भर दिशाओं

तेनाखिलपार्श्ववर्त्तिनो मूर्च्छाकुलाः पतितास्त्वाजमीढ़ ॥ १२ ॥
भीमोऽपि वेगादवतीर्ययानाद्दुःशासनं वेगवानभ्यधावत् । ततः
स्मृत्वा भीमसेनस्तरस्वी सापत्नकं यत् प्रयुक्तं सुतैस्ते ॥ १३ ॥
तस्मिन् सुघोरे तुमुले वर्त्तमाने प्रधानभूयिष्ठतरैः समन्ततः । दुःशा-
सनं तत्र समीक्ष्य राजन् भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ १४ ॥
स्मृत्वा च केशग्रहणञ्च देव्या वस्त्रापहारञ्च रजस्वलायाः । अना-
गसो भर्तृपराङ्मुखाया दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य ॥ १५ ॥
जज्वाल कोपादथ भीमसेन आज्यप्रसिक्तो हि यथा हुताशः ।
तत्राह कर्णञ्च सुयोधनञ्च कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव ॥ १६ ॥
निहन्मि दुःशासनमद्य पापं संरक्षतामद्य समस्तयोधाः । इत्येवमु-
क्त्वा सहसाभ्यधावन्निहन्तुकामोतिबलस्तरस्वी ॥ १७ ॥ तथा

को गुंजारताहुआ दहाडने लगा, हे अजमीढवंशोत्पन्न ! उस की दहाडसे पासमें खड़ेहुए योधा मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ १२ ॥ तब भीमसेन एकसाथ रथपरसे कूद वेगके साथ दुःशासनकी ओर झपटा और तुम्हारे पुत्रोंने जो शत्रुताके वर्ताव किये थे, उनका स्मरण करने लगा ॥ १३ ॥ जिस समय प्रधान २ योधा चारों ओर भयंकर युद्ध करनेमें जुटे हुए थे, उस समय महापराक्रमी महाबाहु भीमसेन दुःशासन की ओर देख ॥ १४ ॥ जिसके भर्ता भी पराङ्मुख होरहे थे ऐसी निरपराधिनी रजस्वला देवी द्रौपदीके वस्त्र उतारनेका और केश खेंचनेंका स्मरण कर तथा दूसरे पाये हुए दुःखोंका स्मरण कर घी डालनेसे बढ़ते हुए अग्निकी समान क्रोधसे जलने लगा और सामने खड़े हुए दुर्योधन, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, और कृतवर्मासे कहने लगा कि ॥ १५-१६ ॥ अरे ! सकल योधाओं आज मैं पापी दुःशासनको मारे डालता हूँ तुममेंसे जिस किसीकी सामर्थ हो वह इसकी रक्षा करले, इस प्रकार

तु विक्रम्य रणे वृकोदरो महागजं केसरीवोग्रवेगः। निगृह्य दुःशा-
सनमेकवीरः सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम् ॥ १८ ॥ रथादवप्लुत्य
गतः स भूमौ यत्नेन तस्मिन् प्रणिधाय चक्षुः। असिं समुद्गृह्य
शितं सुधारं कण्ठे पदाक्रम्य च वेपमानम् ॥ १९ ॥ उवाच तद्गौ-
रिति यद्ब्रुवाणो हृष्टो वदेः कर्णसुयोधनाभ्याम्। ये राजसूया-
वभृथे पवित्राः जाता कचायाज्ञसे न्या दुरात्मन् ॥ २० ते पणिना
कतरेणावकृष्टास्तद्ब्रूहि त्वां पृच्छति भीमसेनः। श्रुत्वा तु तद्
भीमवचः सुघोरं दुःशासनो भीमसेनं निरीक्ष्य ॥ २१ ॥ जज्वाल
भीमं स तदा स्मयेन संश्टण्वतां कौरवसोमकानाम्। उक्तस्त-
दाजौ स तथा सरोपं जगाद भीमं परिवर्तनेत्रः ॥ २२ ॥ अयं
करिकराकारः पीनस्तनविमर्दनः। गोसहस्रप्रदाता च क्षत्रिया-

कह अतिबली तरस्वी भीम दुःशासनको मारनेकी इच्छासे रथमेंसे नीचे उतर उसके पासको झपटा और केसरी सिंह जैसे बड़े भारी हाथीको पराक्रम कर दबोचले. तैसे ही इक्कड वीर भीमने सुयोधन और कर्णके सामनेही दुःशासनको रथमेंसे खेंच नीचे गिरा दिया, पृथ्वी पर पडेहुए दुःशासनको ध्यानसे देखकर भीमने थर२ काँपतेहुए दुःशासनके कण्ठको पैर धरकर दबाया और तीक्ष्ण धारवाली तलवारको हाथमें पकड कहनेलगा कि-॥१७-१९॥ रे दुष्ट दुःशासन! तूने कर्ण और दुर्योधनके उकसानेसे सभाके बीचमें हमसे अरे बैल! २ कहा था, उसकी तुझे याद है तेरे वे शब्द अब कहाँ गए, अरे दुरात्मन्! राजसूययज्ञमें अवभृथ-स्नानसे पवित्र हुए द्रौपदीके केशोंको तूने कौनसे हाँथसे खेंचा था अब भीमसेन तुझसे इन बातोंका उत्तर माँगता है, भीम-सेनके इन भयानक वचनोंको सुन महारके कारण आँखोंके ऊपरको चढ जाने पर भी दुःशासन क्रोधमें भर कौरव तथा सोमक वंशके राजाओंको सुनाताहुआ भीमसे कहनेलगा कि-२०-२२

न्तकरः करः॥२३॥ अनेन याज्ञसेन्या मे भीम केशा विकर्षिताः। पश्यतां कुरुमुख्यानां युष्माकञ्च सभासदाम् ॥ २४ ॥ एवं त्वसौ राजसुतं निशम्य ब्रुवन्तमाजौ विनिपीड्य वक्षः। भीमो बलात्तं प्रतिगृह्य दोर्भ्यामुच्चैर्ननादाथ समस्तयोधान् ॥ २५ ॥ उवाच यस्यास्ति बलं स रक्षत्वसौ भवेदद्य निरस्तबाहुः। दुःशासनं जीवितं मोत्स्रजन्तमाक्षिप्य योधांस्तरसा महाबलः ॥ २६ ॥ एवं क्रुद्धो भीमसेनः करेण उत्पाटयामास भुजं महात्मा । दुःशासनं तेन स वीरमध्ये जघान वज्राशनिसंनिभेन ॥ २७ ॥ उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमावथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम् । ततो निपा-

हे भीम ! हाथीकी सूँड़की समान गोल, मांससे भरेहुए, स्थूल स्तनोंका मर्दन करनेवाले, सहस्रों गौओंका दान देनेवाले और क्षत्रियोंके संहार करने वाले इस हाथसे मैंने, कौरवोंके महापुरुषों के और तुम सभासदोंके सामने द्रौपदीके केश खेंचे थे, यह कह कर दुःशासनने अपना दाहिना हाथ उठा कर भीमको दिखाया ॥ २३-२४ ॥ युद्धभूमि पर दुःशासनकी इस बातको सुन महाबली भीमने दोनों हाथोंसे दुःशासनको ज़ोरसे पकड़ पृथ्वी पर घिस दे मारा और उसकी छाती पर चढ़ बैठा और दहाड़ कर सब योधाओंसे कहा कि-अब मैं इसकी इस (द्रौपदीके केशोंको खींचने वाली) भुजाको उखाड़े डालता हूँ; दुःशासन मारा जाने वाला है अतः तुममेंसे जो चाहता हो वह इसकी रक्षा करे ॥ २५-२६ ॥ इस प्रकार कह क्रोधमें भरे भीमने दोनों हाथोंसे दुःशासनके दाहिने हाथको पकड़ जड़से उखाड़ डाला और उस वज्र तथा अशनिकी समान भुजासे ही वीर पुरुषोंके बीचमें दुःशासनको पीटने लगा ॥ २७ ॥ इसके पीछे भूमि पर पड़े हुए दुःशासनके वक्षःस्थलको काटकर उसके गुनगुने रुधिर को पीने लगा, हे राजन् ! फिर तुम्हारे पुत्रके शिरको काट

त्यास्य शिरोपकृत्य तेनासिना तव पुत्रस्य राजन् ॥ २८ ॥ सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान् प्रतिज्ञां भीमोपिबच्छोणितमस्य कोष्णम् । आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः क्रुद्धो हि चैनं निजगाद वाक्यम् ।२९। स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषोर्वा माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य । दिव्यस्य वा तोयरसस्य पानात् पयोदधिभ्यां मथिताच्च मुख्यात् ।३०। अन्यानि पानानि च यानि लोके सुधामृतस्वादुरसानि तेभ्यः। सर्वेभ्य एवभ्याधिको रसोयं मतो ममाद्यहितलोहितस्य ॥ ३१ ॥ अथाह भीमः पुनरुग्रकर्मा दुःशासनं क्रोधपरीतचेताः । गतासुमालोक्य विहस्य सुस्वरं किं वा कुर्य्यां मृत्युना रक्षितोसि ॥ ३२ ॥ एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्तमास्वाद्यमानं तमतिप्रहृष्टम् । ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं भयेन तेपि व्यथिता निपेतुः ॥ ३३ ॥ ये चापि नासन् व्यथिताः मनुष्यास्तेषां करेभ्यः पतितं हि शस्त्रम् । भयाच्च

डाला ॥२८॥ बुद्धिमान् भीमसेन अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेकी इच्छासे दुःशासनके गुनगुने रुधिरको पीने लगा, और चारों ओर देख स्वाद लेता हुआ क्रोधमें भर कहने लगा ॥ २९ ॥ कि– "माताके दूधमें, शहदमें, घीमें, अच्छी प्रकारसे संस्कृतकी गई द्राक्षाकी मदिरामें, अमृतमें, दूधमें, अच्छी प्रकार बिलोये गए दहीमें तथा दूसरी और लौकिक पेय वस्तुओंमें सुधा और अमृत कैसा स्वाद है, परन्तु मुझे इस शत्रुके रुधिरमें उन सबसे अधिक स्वाद प्रतीत होता है ॥३०–३१॥ क्रोधमें भरे चित्तवाला भयङ्कर पराक्रमी भीम दुःशासनको मराहुआ देख जोरसे कहने लगा कि–मैं अब क्या करूँ ? मृत्युने तेरी रक्षा करदी ? ॥३२॥ इसप्रकार रुधिरका स्वाद ले हर्षमें भर भीमसेन उछलने कूदनेलगा उस समय मनुष्य भीमसेनको देखते ही भयविह्वल पृथ्वी पर गिर गए ॥ ३३ ॥ और जो घबड़ाये नहीं थे उनके हाथमेंसे भी शस्त्र गिरपड़े तथा वे चारों ओर देख डरकर आँखे बंदकर चीखे मारने

सञ्चुक्रुशुरस्वरैस्ते निमीलिताक्षा ददृशुश्च तं ततः ॥३४॥ ये तत्र भीमं ददृशुः समन्ताद्दौःशासनं तद्रुधिरं पिबन्तम् । सर्वेऽपलायन्त भयाभिपन्ना नायं मनुष्योऽयमिति ब्रुवाणाः ॥ ३५ ॥ तस्मिन्कृते भीमसेनेन रूपे दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानम् । सम्प्राद्रवन् चित्रसेनेन सार्धं भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः ॥ ३६ ॥ युधामन्युः प्रद्रुतं चित्रसेनं सहानीकस्त्वभ्ययाद्राजपुत्रः । विव्याध चैनं निशितैः पृषत्कैर्व्यपेतभीः सप्तभिराशुमुक्तैः ॥ ३७ ॥ संक्रान्तभोग इव लेलिहानो महोरगः क्रोधविषं सिसृक्षुः । निवृत्य पाञ्चालजमभ्यविध्यत्त्रिभिः शरैः सारथिमस्य षड्भिः ॥३८॥ ततः सुपुंखेन सुपत्रितेन सुसंशिताग्रेण शरेण शूरः । आकर्णमुक्तेन समाहितेन युधामन्युस्तस्य शिरो जहार ॥ ३९ ॥ तस्मिन् हते भ्रातरि चित्र-

---

लगे ॥ ३४ ॥ चारों ओरके मनुष्य भीमसेनको दुःशासनका रुधिर पीते देख भयसे उद्विग्न हो "यह मनुष्य नहीं है" यह कह रणभूमिमेंसे भागनेलगे ॥ ३५ ॥ भीम भयङ्कर रूप बना दुःशासनके हृदयमेंसे रुधिर पीरहा था उसको देख सब मनुष्य "यह राक्षस है" ऐसे कहकर चित्रसेनके साथ रणमेंसे भागगए ३६ चित्रसेन रणमेंसे भागनेलगा तब राजपुत्र युधामन्यु अपनी सेनाको साथले उसके पीछे पडा,और निडर हो सात बाण छोड चित्रसेनको घायल करडाला३७चित्रसेन भी फनके ऊपर पैर पडनेसे क्रोधमें भर जबाडोंको चाटते हुए सर्पकी समान क्रोधरूपी विषको युधामन्युके ऊपर छोडनेके लिये पीछेको लौटा और उसने पांचालपुत्रके तीन और उसके सारथिके छः बाण मारे ॥३८॥ शूरवीर युधामन्युने धनुषको कान तक खेंच सुवर्णकी पूँछवाले बाणको मार चित्रसेनके मस्तकको उडादिया ॥३९॥ इसप्रकार भाई चित्रसेनके मारे जानेपर कर्णको बडा क्रोध चढ़ा और वह अपना पराक्रम दिखाताहुआ पांडवोंकी सेनाको

सेने क्रुद्धः कर्णः पौरुषं दर्शयानः । व्यद्रावयत् पाण्डवानामनीकं भ्रत्युद्यातो नकुलेनामितौजाः ॥४०॥ भीमोऽपि हत्वा तत्रैव दुःशासनममर्षणम् । पूरयित्वाञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिस्वनः ॥४१॥ शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत् । एष ते रुधिरं कण्ठात् पिबामि पुरुषाधम ॥ ४२ ॥ ब्रूहीदानीं सुसंहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति । ये तदास्मान् प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति ॥४३॥ तान् वयं प्रति नृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति । प्रमाणकोट्यां शयनं कालकूटस्य भोजनम् ॥ ४४ ॥ दशनञ्चाहिभिः कृष्णैर्दाहश्च जतुवेश्मनि । द्यूतेन राज्यहरणमरण्ये वसतिश्च या ॥ ४५ ॥ द्रौपद्या केशपक्षस्य ग्रहणञ्च सुदारुणम् । इष्वस्त्राणि च संग्रामे-ष्वसुखानि च वेश्मनि ॥ ४६ ॥ विराटभवने यश्च क्लेशोऽस्माकं पृथग्विधः । शकुनेर्धार्त्तराष्ट्रस्य राधेयस्य च मन्त्रिते ॥४७॥ अनु-

भगानेलगा, यह देख अपारबली नकुल कर्णके ऊपर चढ़आया ॥ ४० ॥ दूसरी ओर ईर्षा करनेवाले दुःशासनके रक्तको चुल्लूमें ले भीमसेनने गला फाड़ चिल्लाकर जगत्के सब पुरुषोंको सुनाते हुए कहा कि अरे अधम पुरुष ! अब मैं तेरे गलेके रुधिरको पीता हूँ, अब तू हमसे फिर हर्षमें भरकर ओ बैल ! ओ बैल !! कहकर बोल; द्यूतसभामें जो पुरुष हमसे अरे बैल ! अरे बैल !! कहकर हमारे सामने नाचे थे, उनके सामने हम आज अरे बैलों ! अरे बैलों !! कहकर नाचते हैं, प्रमाणकोटीमें मुझे विष खिलाकर सुला दिया था, फिर मुझे काले साँपोंसे कटवाया था, जुआ खिलाकर हमारा राज्य छीन लिया था, उसके कारण ही हमें वनवास भोगना पड़ा था, क्रूरतासे द्रौपदीके मस्तकके केश खेंचे गए थे, इस महाभारतके युद्धमें हमने दुःखदायक बाणोंकी मार सही है, विराट राजाके घरमें अनेकों प्रकारके दुःख हमें भोगने पड़े; ये सब दुःख हमें दुर्योधन, शकुनि

भूतानि दुःखानि तेषां हेतुस्त्वमेव हि । दुःखान्येतानि जानीमो न सुखानि कदाचन । धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्यात् सपुत्रस्य सदा वयम् ॥४८॥ इत्युक्त्वा वचनं राजन् जयं प्राप्य वृकोदरः । पुनराह महाराज स्मयंतौ केशवार्जुनौ ॥ ४६ ॥ असृग्दिग्धो विस्रवँल्लोहितास्यः क्रुद्धोत्यर्थं भीमसेनस्तरस्वी । दुःशासने यद्रणे संश्रुतं मे तद्वै सत्यं कृतमद्येह वीरौ ॥ ५० ॥ अत्रैव दास्याम्यपरं द्वितीयं दुर्योधनं यज्ञपशुं विशस्य । शिरो मृदित्वा च पदा दुरात्मनः शान्तिं लप्स्ये कौरवाणां समक्षम् ॥ ५१ ॥ एतावदुक्त्वा वचनं प्रहृष्टो ननाद चोच्चैः रुधिरार्द्रगात्रः । ननर्द चैवातिबलो महात्मा वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनवधे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३

और कर्णके अन्यायसे भोगने पड़े हैं उनका मूलकारण तू ही था; हमने दुर्योधन और धृतराष्ट्रकी दुष्टबुद्धिके कारण सदा दुःख ही भोगे हैं, सुखका तो हम नाम भी नहीं जानते ४९-४८ हे राजन् ! भीमसेनने इस प्रकार सब दुःख दिखानेवाली बातें कह दुःशासनको मारडाला, फिर जिसका देह रक्तसे सनरहा था और मुखसे रक्त टपक रहा था और जिसको बड़ा क्रोध चढ़ रहा था; वह भीम श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास जा हँसकर कहने लगा कि-हे वीरपुरुषो ! मैंने युद्धमें दुःशासनके लिये जो प्रतिज्ञा की थी उसे सत्य करके दिखा दिया ॥ ४६-५० ॥ अब मैं दुर्योधनरूपी दूसरे यज्ञके पशुका वध करके उसकी रणयज्ञमें आहुति दूँगा और उस दुरात्माके मस्तकको कौरवोंके सामने पैरसे ठुकरानेके बाद शान्ति पाऊँगा ॥ ५१ ॥ ऐसा कहकर, जैसे महाबली इन्द्र वृत्रको मारनेके पीछे गर्जा था, लोहूसे सना हुआ महाबली भीम भी बड़े भारी अमर्षमें भर तिसी प्रकार गरजा ॥ ५२ ॥ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ ॥

सञ्जय उवाच। दुःशासने तु निहते पुत्रास्तव महारथाः। महाक्रोधविषा वीरा समरेष्वपलायिनः॥ १ ॥ दश राजन् महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्छरैः। निषङ्गी कवची पाशी दण्डधारो धनुर्द्धरः॥ २ ॥ अलोलुपः सहः पण्ढो वातवेगसुवर्चसौ। एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्पिताः॥ ३ ॥ भीमसेनं महाबाहुं मार्गणैः समवारयन्। स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात्तैर्महारथैः॥ ४ ॥ भीमः क्रोधाग्निरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ। तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दश भारत भारतान् ५ रुक्माङ्गदान्रुक्मपुंखैः पार्थो निन्ये यमक्षयम्। हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव ॥६॥ पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम्। ततः कर्णं महाराज प्रविवेश महद्भयम्॥ ७ ॥ दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव। तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्यः समितिशोभनः ॥८॥ उवाच

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र! दुःशासनके मरनेपर समरमें पीछेको न हटनेवाले महाक्रोधरूपी विषवाले तुम्हारे दश महाबली पुत्र भीमको बाणोंकी मारसे ढकनेलगे: भाईके मरणसे दुःखीहुए निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्धर, अलोलुप, सह, पण्ड, वातवेग और सुवर्चस नामक दश भाई इकट्ठे हो महाबाहु भीमको बाणोंसे मार आगे बढनेसे रोकनेलगे, जब महारथी इसप्रकार बाण बरसा भीमको आगे बढनेसे रोकनेलगे उस समय क्रोधाग्निके कारण लाललाल आँखोंवाला भीम क्रोधायमान कालकी समान दीखनेलगा,और उसने सुवर्णके बाजूबन्द पहिरनेवाले उन दश भरतवंशी वीरोंको सुनहरी पूँछवाले बाण मार कर यमराजके घर भेजदिया, उन वीरोंके मारेजाने पर तुम्हारी सेना भीमसे भयभीत हो सूतपुत्रके सामने ही भागनेलगी हेमहाराज! प्रजाका संहार करनेवाले कालकी समान भीमसेनको पराक्रम करते देख,कर्णके हृदयमें भयका संचार हुआ,सभाभूषण शल्य कर्णके

वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिन्दमम् । मा व्यथां कुरु राधेय नैतत्त्व-
य्युपपद्यते ॥ ६ ॥ एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः ।
दुर्योधनश्च संमूढो भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥१०॥ दुःशासनस्य रुधिरे
पीयमाने महात्मना । व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतचेतसः ॥११॥
दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः । कृपप्रभृतयः कर्णं हतशेषाश्च
सोदराः ॥ १२ ॥ पाण्डवा लब्धलक्ष्याश्च धनञ्जयपुरोगमाः ।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपस्थिताः ॥ १३ ॥ स त्वं
पुरुषशार्दूल पौरुषे महति स्थितः । क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि
धनञ्जयम् ॥ १४ ॥ भारो हि धार्त्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समर्पितः ।
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम् ॥ १५ ॥ जये स्याद्विपुला
कीर्त्तिर्ध्रुवः स्वर्गः पराजये । वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तनयस्तव१६

हृदयके भावको समझकर अरिंदमन कर्णसे समयोचित बात कहनेलगा, कि-हे राधेय ! तुम डरो मत ! यह बात तुम्हारे अनुकूल नहीं है ॥ १-६॥ भीमसेनके भयसे ये राजे भागे जारहे हैं, और दुर्योधन भी भाइयोंके मरणके दुःखसे व्याकुल हो , मूढसा होरहा है ॥ १० ॥ और महात्मा भीमने जबसे दुःशासनके रुधिरको पिया है तबसे कृप आदि महारथी तथा मरनेसे बचे हुए उसके भाइयोंके चित्त भी शोकसे किंकर्त्तव्यविमूढ होगए हैं वे दुर्योधनको चारों ओरसे घेर उसको धीरज देरहे हैं ११-१२ धनञ्जय आदि पांडव अपने लक्ष्यरूप तुझको समीपमें देखकर तेरे साथ ही युद्ध करनेको बढ़रहे हैं ॥१३॥ अतः हे पुरुषसिंह ! तू पुरुषार्थका भरोसा रख और क्षत्रियधर्मको विचारकर अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये चल ॥ १४ ॥ दुर्योधनने सारा भार तुम्हारे ऊपर ही रख छोडा है, हे महाभुज ! तुम उसको बल और शक्तिके अनुसार उठाओ ॥ १५ ॥ यदि तुम्हारी विजय हुई तो बडी भारी कीर्ति फैलेगी और पराजय हुआ तो अवि-

त्वयि मोहं समापन्ने पाण्डवानभिधावति । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः । हृदि चावश्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम् ॥ १७ ॥ ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधावदवस्थितः स्वरथे पाण्डवं तम् । वृकोदरं कालमिवात्तदण्डं गदाहस्तं पोथयन्तं त्वदीयान् ॥ १८ ॥ अथाभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो रोषादमित्रं प्रनुदन् पृषत्कैः । कर्णस्य पुत्रः समरे प्रहृष्टो जिष्णुर्जिघांसुर्मघवेव जम्भम् १९ ततो ध्वजं स्फाटिकविन्दुचित्रकं चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण । कर्णात्मजस्येष्वसनञ्च चित्रं भल्लेन जाम्बूनदपट्टवद्धम् ॥ २० ॥ अथान्यदादाय धनुः सुशीघ्रं कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत् । दिव्यैरस्त्रैरभ्यवर्षच्च सोपि कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः ॥ २१ ॥ शराभिघाताच्च रुषा च राजन् स्वया च भासास्त्रसमीरणाच्च ।

नाशी स्वर्ग मिलेगा, हे राधेय ! तुम्हारे विचारमें पडजाने पर तुम्हारा पुत्र वृषसेन तो क्रोधमें भर पाण्डवों पर चढगया है ! अमिततेजस्वी शल्यके वचनको सुन राधापुत्र कर्णने मनमें युद्ध करनेका दृढ निश्चय किया ॥ १६-१७ ॥ इधर दण्ड पकड़ेहुए कालकी समान गदा उठाकर तुम्हारे वीरोंसे लडतेहुए भीमके सामने वृषसेन क्रोधमें भरा जा पहुँचा ॥ १८ ॥ पहिले इन्द्रने जैसे जम्भासुरके ऊपर चढ़ाई की थी, तैसे ही महावली नकुलने कर्णके पुत्र वृषसेन पर चढाई की. और क्रुद्ध होकर हर्षमें भरे कर्णके पुत्रको बाणोंसे पीडित करनेलगा ॥ १९ ॥ पहिले तो नकुलने क्षुरनामक बाण मारकर स्फटिकके कारण विचित्र प्रतीत होतेहुए कञ्चुकयुक्त चित्रसेनके ध्वजदण्डको काटडाला फिर सुवर्णसे जड़े विचित्र जडाववाले उसके धनुषको भालेसे काट डाला ॥ २० ॥ अस्त्रकुशल कर्णपुत्रने शीघ्र ही दूसरा धनुषले नकुलको बींधडाला और उसके ऊपर दिव्य बाण वरसानेलगा २१ हे राजन् ! अस्त्रप्रहारके कारण उत्पन्नहुए रोषसे, अपनी

जज्वाल कर्णस्य सुतोऽतिमात्रमिद्धो यथाज्याहुतिभिर्हुताशः ।२२। कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन् सर्वानश्वानक्षिणोदुत्तमास्त्रैः । वनायुजान् सुकुमारस्य शुभ्रानलंकृतान् जातरूपेण चित्रान् ॥ २३ ॥ ततो हताश्वादवरुह्य यानादादाय चर्मामलरुक्मचन्द्रम् । आकाशसङ्काशमसिं गृहीत्वा पोप्लूयमानः खगवच्चचार ॥ २४ ॥ ततोऽन्तरीक्षे नृवराश्वनागांश्चिच्छेद तूर्णं नकुलश्चित्रयोधी । ते प्रापतन्नसिना गां विशस्ता यथाश्वमेधे पशवः शमित्रा ॥ २५ ॥ द्विसाहस्रा पातिता युद्धशौण्डा नानादेश्याः सुभृताः सत्यसन्धाः । एकेन संख्ये नकुलेन कृत्ताः जयेप्सुनानुत्तमचन्दनाङ्गाः ॥ २६ ॥ तमापतन्तं नकुलं जवेन कर्णस्य पुत्रः सहसाभिपत्य । स तुद्यमानो नकुलः पृषत्कैर्विव्याध वीरं

कान्तिसे तथा अस्त्ररूपी पवनसे घीकी आहुति पड़नेपर प्रज्वलित हो वृद्धि पाते हुए अग्निकी समान वृषसेन भी बहुत ही प्रदीप्त हो उठा ॥ २२ ॥ और हे राजन् ! उसने श्रेष्ठ २ अस्त्रोंका प्रहार कर श्वेत वर्णवाले, सुवर्णके साजसे अलंकृत और ऊँची जातके वनायु देशमें उत्पन्न हुए नकुलके चारों घोडोंको मार डाला ॥ २३ ॥ तब नकुल मरेहुए घोडोंवाले रथपरसे नीचे कूद पडा और चमकती हुई शुद्ध सुवर्णकी फुल्लियोंवाली ढाल और आकाशकी समान तलवारको ले उसको घुमाताहुआ पक्षीकी समान रणभूमिमें उछल२कर विचरनेलगा २४ विचित्रप्रकारसे युद्धकरनेवाले नकुलने आकाशमें तलवार घुमाकर रथी, घुड़सवार और हाथियों को काटडाला और वे अश्वमेधयज्ञमें हिंसकसे काटेहुए पशुओंकी समान भूमिमें गिर पड़े ॥ २५ ॥ विजयाभिलाषी नकुलने अकेले ही युद्धमें कुशल, अच्छी नौकरी देकर पुष्ट किये हुए सत्यप्रतिज्ञा वाले और चन्दनसे चर्चित अंगोंवाले दो सहस्र योधाओंको समाप्त करडाला ॥ २६ ॥ इसप्रकार वेगसे चढ़ते हुए नकुलके

स चुकोप विद्धः ॥ २७ ॥ महाभये रक्ष्यमाणो महात्मा भ्राता भीमेनाकरोत्तत्र भीमम्। तं कर्णपुत्रो विधमन्तमेकं नराश्वमातङ्गरथाननेकान् ॥ २८ ॥ क्रीडन्तमष्टादशभिः पृषत्कैर्विव्याध वीरं नकुलः सरोषः। स तेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी महाहवे वृषसेनेन राजन् ॥ २९ ॥ क्रुद्धोऽभ्यधावत् समरे जिघांसुः कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः। वितत्य पक्षौ सहसापतन्तं श्येनं यथैवामिषलुब्धमाजौ ॥ ३० ॥ अवाकिरद् वृषसेनस्ततस्तं शितैः शरैर्नकुलमुदारवीर्यम्। स तान् मोघांस्तस्य कुर्वञ्छरौघान् चचार मार्गान्नकुलश्चित्ररूपान् ॥ ३१ ॥ अथास्य तूर्णं चरतो नरेन्द्र खड्गेन चित्रं नकुलस्य तस्य। महेषुभिर्व्यधमत् कर्णपुत्रो महारणे चर्म सहस्रतारम् ॥ ३२ ॥ तच्चायसं निशितं तीक्ष्णधारं विकोषमुग्रं

कर्णपुत्रने चारों ओरसे बाणमारे,बाणोंके प्रहारसे पीड़ा पातेहुए नकुलने शूर कर्णपुत्रको बाणोंसे घायल करडाला तब वृषसेनको क्रोध आगया ॥ २७ ॥ उस महाभयंकर युद्धमें अपने भाई भीमसे रक्षित होकर नकुल महाभयंकर कर्म करने लगा,उसने घूम २ कर पैदल, घुड़सवार और रथियोंका संहार करडाला, तब युद्धमें वेगवान् नकुलको कर्णपुत्रने अठारह बाण मारकर बींध डाला ॥ २८–२९ ॥ मनुष्योंमें वीर माना जानेवाला पांडुपुत्र नकुल कर्णके पुत्रको मारनेकी इच्छासे क्रोधमें भर गया, और जैसे शकरा मांसके लिये दोनों पंख फैलाकर दौड़ता है तैसे ही कर्णके पुत्रपर एकसाथ झपटा,तब वृषसेन महापराक्रमी नकुलके तीक्ष्ण बाण मारने लगा, नकुल उसके बाणोंकी बौछारोंको निरर्थक करता हुआ और अपनेआप युद्धके अनेक पैंतरोंको दिखाता हुआ घूमने लगा ॥ ३०–३१ ॥ नकुल इसप्रकार हाथमें ढाल तलवार ले घूमरहा था कि-कर्णपुत्रने महायुद्धमें नकुलकी सहस्रों फुल्लियों वाली ढालके बाणोंसे टुकड़े २ कर

गुरुभारसाहम् । द्विषच्छरीरापहरं सुघोरमाधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम् ॥ ३३ ॥ चिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाहश्चकर्त्त खड्गं निशितैः क्षुरप्रैः । पुनश्च पीतैर्निशितैः पृषत्कैः स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविध्यत् ॥ ३४ ॥ कृत्वा च तद् दुष्करमार्य्यजुष्टं नरैरन्यैः कर्म रणे महात्मा । ययौ रथं भीमसेनस्य राजन् शराभितप्तो नकुलस्त्वरावान् ॥ ३५ ॥ स भीमसेनस्य रथं हताश्वो माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः । आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं संप्रेक्षमाणस्य धनञ्जयस्य ॥ ३६ ॥ ततः क्रुद्धो वृषसेनो महात्मा ववर्ष ताविषुजालेन वीरः। महारथावेकरथे समेतौ शरैः प्रभिन्दन्निव पाण्डवेयौ ॥ ३७ ॥ तस्मिन् रथे निहते पाण्डवस्य क्षिप्रञ्च खड्गे विशिखैर्निकृत्ते ।

डाले ॥ ३२ ॥ तब तीक्ष्ण धारवाली तेजकी हुई, उग्र, महाप्रहार को सहने वाली, शत्रुके शरीरोंको काटनेवाली, महाभयंकर सर्प की समान उग्र दीखनेवाली नंगी तलवारको नकुल रणमें घुमाने लगा, तब बड़े वेगवाले छः बाण मार शत्रुको सहनेवाले कर्णपुत्रने उस तलवारको काटडाला और चमकीले तथा तीक्ष्ण बाण मार नकुलकी छातीको बहुत ही घायल कर दिया ॥ ३३-३४ ॥ हे राजन् ! जिसको श्रेष्ठ पुरुष ही करसकें, साधारण मनुष्य न कर सकें ऐसे महान् पराक्रमको करके महात्मा नकुल बाणों की वेदनासे घबडागया था, इसलिये एक साथ भीमसेनके पास जा पहुँचा ॥ ३५ ॥ जिसके घोड़े मरगये थे तथा जो कर्णके पुत्रके बाणोंकी मारसे घबड़ा उठा था ऐसा नकुल, अर्जुनके देखते हुए जैसे सिंह कुलाँच मारकर पहाडके शिखर पर जाबैठता है, तैसे ही भीमसेनके रथमें जाबैठा॥३६॥ उस समय कर्णके पुत्रने नकुलके रथको और तलवारको बाणोंकी मारसे एक साथ तोडडाला,तब नकुल भीमके साथ उसके रथमें जाबैठा, इस प्रकार दोनों महारथी भाई ज्योंही एक रथमें बैठे,कि-उन दोनों महारथियोंको एक साथ घायल करनेकी इच्छासे वीर वृषसेन बाणोंकी वर्षा करने

अन्ये च संहत्य कुरुप्रवीरास्ततोऽभ्यघ्नन् शरवर्षैरुपेत्य ॥ ३८ ॥ तौ पाण्डवेयौ परितः समेतान्संहूयमानाविव हव्यवाहौ । भीमार्जुनौ वृषसेनाय क्रुद्धौ ववर्षतुः शरवर्षं सुघोरम् ॥ ३९ ॥ अथाब्रवीन्मारुतिः फाल्गुनन्तु पश्यस्वैनं नकुलं पीड्यमानम् । अयञ्च नो धावति कर्णपुत्रस्तस्माद्भवान् प्रत्युपयातु कार्ष्णिम् ॥ ४० ॥ स तन्निशम्यैव वचः किरीटी रथं समासाद्य वृकोदरस्य । अथाब्रवीन्नकुलो वीक्ष्य वीरमुपागतं शातय शीघ्रमेनम् ॥ ४१ ॥ इत्येवमुक्तः सहसा किरीटी भ्रात्रा समक्षं नकुलेन संख्ये । कपिध्वजं केशवसंगृहीतं प्रैषीदुग्रो वृषसेनाय वाहम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नकुलपराजये चतुरशीतितमोऽध्यायः

लगा, कौरवपक्षके दूसरे योधा भी इकट्ठे होकर दोनों भाइयोंके ऊपर चढ़ आये और भीम तथा नकुलको बाणोंकी वर्षा करके मारने लगे ॥ ३७-३८ ॥ उस समय आहुतियें होमनेसे प्रदीप्त हुए अग्नि की समान जाज्वल्यमान दीखते हुए भीम और अर्जुन वृषसेनके ऊपर क्रोधमें भरगये और उसके ऊपर तथा आसपास इकट्ठे हुए कौरवोंके योधाओंके ऊपर बाणोंकी महाभयानक वर्षा करने लगे ॥ ३९ ॥ उस समय पवनपुत्र भीमने अर्जुनसे कहा, कि-हे भाई ! देखो वृषसेन नकुलको बाणोंके प्रहारोंसे पीड़ित कररहा है, यह कर्णपुत्र इतने पर ही नहीं रुका है, किन्तु हमको भी दुःख देरहा है, इसलिये तू इसके ऊपर चढ़ायी कर ॥४०॥ भीमकी बात सुनकर अर्जुन भीमसेनके रथके पास आया, वीर अर्जुनको समीपमें आया देखकर नकुलने उससे कहा कि-हे भाई ! इस कर्णके पुत्रका शीघ्र ही नाश करो॥४१॥ इस प्रकार युद्धमें नकुलने एकायकी भाईके सामने किरीटधारी अर्जुनसे कहा तब, कृष्णके थामेहुए तथा जिसकी ध्वजामें वानर था ऐसे रथको उग्रस्वभाववाले अर्जुनने एकसाथ वृषसेनके सामनेको हाँक दिया ॥ ४२ ॥ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ क । ख ।

सञ्जय उवाच । नकुलमथ विदित्वा छिन्नवाणासनासिं विरथमरिशरार्त्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम् । पवनधुतपताका ह्रादिनो वल्गिताश्वा वरपुरुषनियुक्तास्ते रथा शीघ्रमीयुः ॥ १ ॥ द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्चशैनेयषष्ठा द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः। द्विरदरथनराश्वान् सूदयन्तस्त्वदीयान् भुजगपतिनिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः ।२। अथ तत्र रथमुख्यास्तान् प्रतीयुस्त्वरन्तो हृदिकसुतकृपौ च द्रौणिदुर्योधनौ च । शकुनिसुतवृकौ च क्राथदेवावृधौ च द्विरदजलदघोषैः स्यन्दनैः कार्मुकैश्च ॥ ३ ॥ तत्र नृप रथिवीरास्तान् दशैकञ्च वीरान् नृवरशरवराग्रैस्ताडयन्तोभ्यरुन्धन् । नवजलदसुव-

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! नकुलके धनुष और तलवारको कटेहुए देखकर और उसको रथहीन, बाणोंके प्रहारसे आतुर तथा कर्णके पुत्रके बाणोंसे बहुत ही घायल हुआ जान कर द्रुपदके पाँच पुत्रोंने, छठे शिनिके पुत्र सात्यकीने तथा शत्रुओंका पराजय करसकनेवाले द्रौपदीके पाचों पुत्रोंने इसप्रकार ग्यारह महारथियोंने अपने स्वामीकी आज्ञासे शस्त्र उठाकर शेषनागकी समान तीखे बाणोंसे तुम्हार पैदल, घुडसवार, रथी और हाथीसवारोंका नाश करनेके लिये रणमेंको शीघ्रतासे कूच किया, इस समय उनके रथोंका शब्द बडा ही गम्भीर होरहा था उत्तम घोड़े उनके रथोंको शीघ्रतासे खींचरहे थे, श्रेष्ठ सारथी उनके रथोंको हाँकरहे थे तथा उनके रथोंकी पताकायें पवनसे फराह रही थीं ॥ १–२ ॥ हे राजन् ! उस समय तुम्हारी ओरसे कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, उलूक, वृक, क्रांथ, देवावृध इत्यादि महारथी हाथी और मेघकी गर्जनाकी समान झंकारते हुए रथोंमें बैठ धनुषोंको ले पाण्डवोंकी ओर झपट शत्रुओंके ग्यारह महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोकने लगे, तब कुलिन्द नवमेघकी समान श्यामवर्ण वाले और पर्वतके

र्हस्तिभिस्तानुदीयुर्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिन्दाः ।४।
सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा रणाभिकामैः कृतिभिः समा-
स्थिताः । सुवर्णजालावतता बभुर्गजास्तथा यथा खे जलदाः
सविद्युतः ॥ ५ ॥ कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः कृपं ससूताश्व-
मपीडयद्भृशम् । ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः सहैव नागेन पपात
भूतले ॥ ६ ॥ कुलिंदपुत्रावरजश्च तोमरैर्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः ।
रथञ्च विक्षोभ्य ननाद नर्दतस्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ७
ततः कुलिन्देषु हतेषु तेष्वथ प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः । भृशं
प्रदध्मुर्लवणाम्बुसम्भवान् परांश्च बाणासनपाणयोऽभ्ययुः ।८।
अथाभवद्युद्धमतीव दारुणं पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः ।

शिखरोंकी समान ऊँचे भयंकर वेगवाले हाथियों पर बैठ उनके ऊपर चढ़ आये ॥ ३–४ ॥ अच्छी प्रकारसे सजेहुए, हिमाचलमें उत्पन्न हुए मद वर्षाने वाले, सुवर्णके जालसे विभूषित और जिनपर रणकी इच्छा वाले कुशल पुरुष बैठे हुए थे वे हाथी, आकाशमें स्थित बिजलीवाले मेघोंसे दीखते थे॥५॥ इतनेमें ही कुलिन्दके पुत्रने दश लोहेके बाण मार सारथी और घोड़ों सहित कृपाचार्यको बहुत ही घायल करडाला, तब कृपाचार्यने उसको बाणोंसे मारडाला और वह हाथीके साथ ही भूमि पर गिर पड़ा६ यह देखकर कुलिंदपुत्रके छोटे भाईने सूर्यकी किरणोंकी समान चमकते हुए लोहेके तोमर गांधारराजके मार उसके रथके टुकड़े करडाले और बडी जोरसे गर्जनाकी गान्धारपति शकुनिने उस गर्जतेहुएके शिरको काटडाला७ तुम्हारे महारथी, कुलिंदोंके मारे जानेपर हर्षमें भर लवण समुद्रमेंसे उत्पन्नहुए शङ्खोंको बजानेलगे और हाथमें धनुषले शत्रुओं पर चढ़गए ॥ ८ ॥ तब कौरवोंका पांडव और सृञ्जयोंके साथ बाण, तलवार, शक्ति, ऋष्टि, गदा और परशुओंसे मनुष्य, हाथी और घोडोंका प्राणलेवा दारुण

शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधैर्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम् । ९ ।
रथाश्वमातङ्गपदातिभिस्ततः परस्परं विप्रहताः पतन् क्षितौ ।
यथा सविद्युत्स्तनिता बलाहकाः समाहता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः १०
ततः शतानीकमतान्महागजांस्तथा रथान् पत्तिगणांश्च तान् बहून् ।
जघान भोजस्तु हयानथापतन् क्षणाद्विशस्ताः कृतवर्मणः शरैः ११
अथापरे द्रौणिशराहता द्विपास्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतनाः । निपे-
तुरुर्व्यां व्यसवः प्रपातितास्तथा यथा वज्रहता महाचलाः ॥१२॥
कुलिन्दराजावरजादनन्तरः स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत् । तवा-
त्मजं तस्य तवात्मजः शरैः शितैः शरीरं विभिदे द्विपञ्च तम् १३
स नागराजः सह राजसूनुना पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन् । शची-
शवज्राग्रहतोम्बुदागमे यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा ॥ १४ ॥

युद्ध होनेलगा ॥ ९ ॥ वायुके झपाटेसे जैसे बिजलीको गरजाते हुए मेघ दिशाओंमें तित्तर वित्तर हो जाते हैं तैसे ही वे रथ घोड़े और हाथियोंसे मारे जाकर भूमिशायी होनेलगे ॥ १० ॥ तदनन्तर भोजवंशी कृतवर्माने शतानीकके अधिकारमें रहनेवाले बड़े २ हाथियोंको, पैदलोंको और घोडोंको मारडाला, रथोंके टुकड़े २ करडाले, वे क्षण भरमें ही उसके बाणोंसे छिन्न भिन्न हो भूमिमें गिरपड़े ॥ ११ ॥ उस ओर अश्वत्थामाने सब प्रकारके आयुध, ध्वजासहित और जिनके ऊपर सवार बैठेहुए थे ऐसे तीन हाथियोंको प्राणहीन करदिया तब वे वज्रसे गिरते हुए पर्वतोंकी समान भूमिमें गिर पड़े ॥ १२ ॥ तब कुलिंदराजके अनुजके छोटे भाईने तुम्हारे पुत्रकी छातीको बाणोंसे घायल करडाला, तब तो तुम्हारे पुत्रने तीक्ष्ण बाण छोड़ उसको हाथीसहित बींध डाला॥१३॥राजपुत्रके साथही वह हाथी भी इन्द्रके वज्रके प्रहारसे गेरू टपकाते हुए गैरिक पर्वतकी समान चारों ओरसे रक्त टपकाता हुआ भूमिमें ढह गया ॥१४॥ तदनन्तर कुलिन्दपुत्रने एक दूसरे

कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः क्राथं समूताश्वरथं व्यपोथयत् । ततोऽ-
पतत् क्राथशराभिदारितः सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः ॥१५॥
रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः ।
सवाजिसूतेष्वसनस्तथा ध्वजस्तथा यथा महावातहतो महाद्रुमः ॥ १६ ॥
वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत् ।
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत् ॥१७॥
स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत् तथा हतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम् ।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः पपात नुन्नः सहदेवसूनुना ॥ १८ ॥
विषाणगात्रावरयोधपातिना गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः ।
जगाम वेगेन भृशं दर्यश्च तं ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् १९
ततः शतानीकहता महागजा हया रथाः पत्तिगणाश्च तावकाः ।

हाथीको बढ़ाया उसने सारथिसहित क्राथके रथको मसल डाला, थोड़ी ही देरमें वह क्राथके बाणोंसे मारा जाकर, वज्रसे तोड़े हुए पर्वतकी समान, अपने मालिकसहित पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१५॥ तब तो पर्वतमें उत्पन्न हुआ एक रथी हाथी पर चढ़ आगे बढ़ा तब उसके बाणोंसे दुर्जय क्राथ घोड़े, सारथि धनुष और ध्वजा सहित, आँधीसे झँझोड़े हुए वृक्षकी समान भूमिमें गिरपड़ा॥१६॥ तब वृकने हाथीपर बैठेहुए पहाडी राजाके बारह बाण मारे तब उस महागजने चारों चरणोंसे उसको रथ और घोड़ों सहित रौंदडाला ॥ १७ ॥ परन्तु उस महागजको और उसके नायकको बभ्रुके पुत्रने मजबूत बाण मार घायल करदिया तब वह हाथी अपने स्वामी सहित भूमिमें गिर पड़ा, उधर सहदेवके पुत्रने देवावृधके पुत्रको बाणोंसे पीडित कर मारडाला ॥ १८ ॥ कुलिन्द का पुत्र शरीर और दाँतोंसे योधाओंको नष्ट करनेवाले हाथी पर बैठ शकुनिका नाश करनेके लिये उस पर झपटा और शकुनिको पीडित करनेलगा तब शकुनिने उसके शिरको उड़ा

सुपर्णवातप्रहता यथोरगास्तथा गता गामवशा विचूर्णिताः २०
ततोऽभ्यविध्यद्बहुभिः शितैः शरैः कुलिन्दपुत्रो नकुलात्मजं स्मयन्।
ततोऽस्य कोपाद्विचकर्त नाकुलिः शिरः क्षुरेणाम्बुजसन्निभान-
नम् ॥ २१ ॥ ततः शतानीकमविध्यदायसैस्त्रिभिः शरैः कर्णसुतो-
र्जुनं त्रिभिः । त्रिभिश्च भीमं नकुलञ्च सप्तभिर्जनार्दनं द्वादश-
भिश्च सायकैः ॥ २२ ॥ तदस्य कर्मातिमनुष्यकर्मणः समीक्ष्य
हृष्टाः कुरवोऽभ्यपूजयन् । पराक्रमज्ञास्तु धनञ्जयस्य ये हुतोय-
मग्नाविति ते तु मेनिरे ॥ २३ ॥ ततः किरीटी परवीरघाती
हताश्वमालोक्य नरप्रवीरम् । माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये समीक्ष्य
कृष्णं भृशविक्षतञ्च ॥ २४ ॥ तमभ्यधावद् वृषसेनमाहवे स सूत-

दिया ॥ १६ ॥ तदनन्तर शतानीकने आपकी सेनाके बड़े २ हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंको मारडाला, वे गरुड़के पंखोंके प्रहारसे सर्प जैसे पराधीन और छिन्नभिन्न हो पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं तैसे, विवशहो कट फटकर पृथ्वीमें गिरपड़े ॥२०॥ तब कलिंगराजके पुत्रने हँसकर नकुलके पुत्रको बहुतसे तीक्ष्ण वाणोंसे घायल करडाला, तब नकुलपुत्र क्रोधमें भरगया और उसने क्षुरसे उसके कमलकी समान मुखवाले मस्तकको काटडाला २१ तब कर्णके पुत्रने लोहेके तीन वाणोंसे नकुलके पुत्रको घायल करडाला तथा अर्जुनको तीन, भीमको तीन, नकुलको सात और श्रीकृष्णको बारह वाण मार घायल करदिया ॥ २२ ॥ कर्णके पुत्रके इस अलौकिक कर्मको देखकर कौरव हर्षमें भर उसकी प्रशंसा करनेलगे, परन्तु जो अर्जुनके पराक्रमको जानते थे उन्होंने समझा कि—यह अब अग्निमें पड़चुका २३ नरोंमें श्रेष्ठ, शत्रुओंके वीरोंका मर्दन करनेवाला अर्जुन माद्रीके पुत्र नकुलके घोड़ोंको मरा देख और श्रीकृष्णको सब मनुष्योंके सामने घायल हुआ देख सूतपुत्रके पुत्र वृषसेनकी ओर दौड उसके सामने जा

जस्य प्रमुखं स्थितं तदा । तमापतन्तं नरवीरमुग्रं महाहवे बाण-
सहस्रधारिणम् ॥ २५ ॥ अभ्यापतत् कर्णसुतो महारथो यथैव
चेन्द्रं नमुचिस्तथैव तम् । ततो द्रुतं चैकरथेन पार्थं शरेण विध्वा
युधि कर्णपुत्रः ॥ २६ ॥ ननाद नादं सुमहानुभावो विध्वेव शक्रं
नमुचिः स वीरः । पुनः स पार्थं वृषसेन उग्रैर्बाणैरविध्यद्भुजमूले
तु सव्ये ॥ २७ ॥ तथैव कृष्णं नवभिः समार्दयत्पुनश्च पार्थं
दशभिः पृषत्कैः । पूर्वं तथा वृषसेनेन विद्धो महाजवैः श्वेतहयः
शरैस्तैः ॥ २८ ॥ संरम्भमीषद्गमितो वधाय कर्णात्मजस्याथ मनः
प्रदध्रे । ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात् कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं
ललाटे ॥ २९ ॥ मुमोच तूर्णं विशिखान्महात्मा वधे धृतः कर्ण-
सुतस्य संख्ये । आरक्तनेत्रोऽन्तकशत्रुहन्ता उवाच कर्णं भृशमु-
त्स्मयंस्तदा ॥ ३० ॥ दुर्योधनद्रौणिमुखांश्च सर्वानहं रणे वृषसेनं

खडा होगया, कर्णपुत्र सहस्रों बाणोंको धारण करनेवाले महा-
रथी अर्जुनको चढ़कर आयाहुआ देख उसपर पहिले नमुचि जैसे
इन्द्र पर झपटा था तैसे झपटा और पहिले नमुचि इन्द्रके बाण
मारकर जैसे गर्जा था तैसे ही महानुभाव वीर कर्णपुत्र भी शीघ्रता
से अर्जुनको एक बाणसे घायल कर बड़े वेगसे गर्जा वृषसेनने
फिर अर्जुनकी दाहिनी भुजाकी जडमें बहुतसे उग्र बाण मारे
और श्रीकृष्णको भी नौ बाण मार घायल करदिया, फिर
अर्जुनके दश बाण मारे, वृषसेनके पहिले छोड़ेहुए बाणोंसे
घायल होनेकी समान अर्जुन इस समय भी घायल होगया, तब
वह चित्तमें कुछ क्रोधकर कर्णके पुत्रको मारनेका मनमें संकल्प
करनेलगा उस समय रणके मुहाने पर खड़े महात्मा अर्जुनने माथेमें
तीन बल डाल फुर्तीसे उसके ऊपर बाण छोड़े कर्णके पुत्रको
मारनेमें लगाहुआ शत्रुहन्ता अर्जुन नेत्रोंको लाललाल कर मुस्क-
राताहुआ दुर्योधन, अश्वत्थामा, और कर्ण आदि सब महा-

तमुग्रम् । संपश्यतः कर्णं तवाद्य संख्ये नयामि लोकं निशितैः पृषत्कैः ॥ ३१ ॥ ऊनञ्च तावद्धि जना वदन्ति सर्वैर्भवद्भिर्मम सूनुर्हतोऽसौ । एको रथः मद्विहीनस्तरस्वी अहं हनिष्ये भवतां समक्षम् ॥ ३२ ॥ संरक्षयतां रथसंस्थाः सुतोऽयं अहं हनिष्ये वृषसेनमुग्रम् । पश्चाद्वधिष्ये त्वामपि सम्प्रमूढमहं हनिष्येऽर्जुन आजिमध्ये ॥ ३३ ॥ त्वामद्य मूलं कलहस्य संख्ये दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् । त्वामद्य हन्तास्मि रणे प्रसह्य अस्यैव हन्ता युधि भीमसेनः ॥ ३४ ॥ दुर्योधनस्याधमपूरुषस्य यस्यानयादेष महान् क्षयोऽभवत् । स एवमुक्त्वा विनिमृज्य चापं लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ ॥ ३५ ॥ ससर्ज तूर्णं विशिखान्महात्मा वधाय

रथियोंसे कहने लगा कि—आज मैं तुम सबोंके सामने ही युद्धमें तीक्ष्ण बाण मारकर कर्णके पुत्रको परलोकमें भेजदूँगा २४—३१ तुम सबोंने मिलकर मेरे पुत्रको मारडाला इस कार्यको मनुष्य तुम्हारा ओछापन बताते हैं, क्यों कि—मैं उसके पास नहीं था और वह अकेला ही था; परन्तु मैं तो तुम्हारे सामने ही इसको मारडालूँगा ॥ ३२ ॥ अरे ! रथमें बैठेहुए योधाओ ! तुम इस कर्णपुत्रकी रक्षाकर सको तो करो मैं इस उग्र वृषसेनको आज मार डालूँगा और हे मूढ़ कर्ण ! इसको मारनेके पीछे मैं तुम्है भी मारूँगा ॥ ३३ ॥ इस महाभारतके युद्धकी जड तू ही है और तू दुर्योधनका आसरा पाकर घमण्डमें भर गया है;अतः आज मैं पराक्रमकर रणमें तुम्है मारडालूँगा और इस दुर्योधनको भीमसेन मारेगा ॥ ३४ ॥ क्योंकि—कुरुकुलाधम दुर्योधनके कारण ही इन सकल राजाओंका यह संहार हुआ है हे राजन् ! महात्मा अर्जुनने इसप्रकार कहकर धनुषको साफकर वृषसेनको अपना लक्ष्य निश्चय किया और कर्णके पुत्रको मारनेके लिये बाणोंको छोडनेलगा, किरीटधारी अर्जुनने निःशंक हो उसको दश बाणोंसे

राजन् कर्णसुतस्य संख्ये । विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कैरमर्मस्वशंकं प्रहसन् किरीटी ॥ ३६ ॥ चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च क्षुरैश्चतुर्भिः शिर एव चोग्रैः । स पार्थबाणाभिहतः पपात रथाद्विबाहुर्विशिरा धरायाम् ॥ ३७ ॥ सुपुष्पितो वृक्षवरोतिकायो वातेरितः शाल इवाद्रिशृङ्गात् । सम्प्रेक्ष्य बाणाभिहतं पतन्तं रथात् सुतं सूतजः क्षिप्रकारी ॥ ३८ ॥ रथं रथेनाशु जगाम रोषात् किरीटिनः पुत्रवधातितप्तः ॥ ३६ ॥ ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य कर्णो हतं श्वेतहयेन संख्ये । संरम्भमागम्य परं महात्मा कृष्णार्जुनौ सहसैवाभ्यधावत् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनवधे
पञ्चाशीतमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच । तमायान्तमभिप्रेक्ष्य वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् । गर्जन्तं सुमहाकायं दुर्निवारं सुरैरपि ॥ १ ॥ अर्जुनं प्राह दाशार्हः

बाँधडाला फिर चार तीक्ष्ण क्षुर मारकर उसके धनुष, भुजा और शिरको काटडाला, पार्थके बाण लगनेसे शिररहित और भुजा रहित हुआ वह वृषसेन भूमिमें ढहपड़ा॥३५—३७॥ पुष्पोंसे लदा हुआ सालका बड़ा भारी वृक्ष आँधीके झोकेसे जैसे पर्वतके शिखरसे पृथ्वी पर गिर पड़े तैसे ही अपना पुत्र अर्जुनके बाणके प्रहारसे रथके ऊपरसे पृथ्वीपर गिरपडा, यह देखकर युद्धमें फुर्तीसे कार्य करनेवाले कर्णको क्रोध आगया और वह तुरतही रथमें बैठ अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये चला, युद्धमें श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनने मेरे पुत्रको मारडाला, यह देख बड़े ही क्रोधमें भरा कर्ण श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये दौडा३८—३६ पिचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे धृतराष्ट्र ! जिसको देवता भी न हटासकें और किनारेको लाँघनेवाले समुद्रकी समान गरजतेहुए

प्रहस्य पुरुषर्षभः । अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः शल्यसारथि. २
येन ते सह योद्धव्यं स्थिरो भव धनञ्जय । पश्य चैनं समायुक्तं
रथं कर्णस्य पाण्डव ॥ ३ ॥ श्वेतवाजिसमायुक्तं युक्तं राधासुतेन
च । नानापताकाकलिलं किङ्किणीजालमालिनम् ॥ ४ ॥ उह्य-
मानमिवाकाशे विमानं पाण्डरैर्हयैः । ध्वजञ्च पश्य कर्णस्य
नागकक्षं महात्मनः ॥ ५ ॥ आखण्डलधनुःप्रख्यमुल्लिखन्तमि-
वाम्बरम् । पश्य कर्णं समायान्तं धार्त्तराष्ट्रप्रियैषिणम् ॥ ६ ॥
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् । एष मद्रेश्वरो राजा
रथाग्रे पर्यवस्थितः ॥ ७ ॥ नियच्छति हयानस्य राधेयस्यामितौ-

बडीभारी कायावाले कर्णको अपने ऊपरको चढ़कर आयाहुआ देखकर ॥ १ ॥ दाशार्ह श्रीकृष्णने हँसकर अर्जुनसे कहा, कि-हे अर्जुन ! शल्य जिसका सारथी है और जिसके घोड़े सफेद हैं ऐसे जिस रथीके साथ तुझे युद्ध करना है वह कर्ण हमारे सामने को चढ़ा चला आरहा है, इसलिये तू सम्हलजा और हे पांडुपुत्र अर्जुन ! तू कर्णके रथको देख, सफेद घोड़े जुतेहुए हैं और उसमें कर्ण बैठा है उसके ऊपर भाँति २ की पताकायें फहरारहीं हैं तथा घंटियोंकी मालायें शोभा देरही हैं ॥२-४ ॥ जैसे आकाशमें विमान चलरहा हो, तैसे सफेद घोड़े उसके रथ को खेंचकर लारहे हैं तथा हाथीकी जञ्जीरके चिन्हवाली और इन्द्रके धनुषकी समान महात्मा कर्णकी ध्वजा पताकाको भी देख ॥ ५ ॥ यह ध्वजा आकाशमें रेखा खेंचती हुईसी दीखरही है और दुर्योधनका प्रिय करना चाहनेवाला कर्ण जैसे मेघ दौडता२ जलकी वर्षा करता हो तैसे ही बाणोंकी वर्षा करताहुआ हमारे ऊपरको चढ़ाचला आरहा है, वह देख कर्णके रथकी अगली बैठक पर जो बैठा है वह मद्रदेशका राजा शल्य है, वह महाबली राजा कर्णके घोड़ोंको वशमें रखकर हाँक रहा है, ध्यानदे

जसः । शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दञ्च दारुणम् ॥ ८ ॥ सिंहनादांश्च विविधान् शृणु पाण्डव सर्वशः । अन्तर्द्धाय महाशब्दान् कर्णेनामिततेजसा ॥ ९ ॥ दोधूयमानस्य भृशं धनुषः शृणु निःस्वनम् । एते दीर्यन्ति सगणाः पञ्चालानां महारथाः ॥ १० ॥ दृष्ट्वा केसरिणं क्रुद्धं मृगा इव महावने । सर्वयत्नेन कौन्तेय हन्तुमर्हसि सूतजम् ॥ ११ ॥ न हि कर्णशरानन्यः सोढमुत्सहते नरः । सह देवान् सगन्धर्वांस्त्रींल्लोकान् सचराचरान् ॥ १२ ॥ त्वं हि जेतुं रणे शक्तस्तथैव विदितं मम । भीममुग्रं महादेवं त्र्यक्षं शर्वं कपर्दिनम् ॥ १३ ॥ न शक्ता द्रष्टुमीशानं किं पुनर्योधितुं प्रभुम् । त्वया साक्षान्महादेवः सर्वभूतशिवः शिवः ॥ १४ ॥ युद्धेनाराधितः स्थाणुर्देवाश्च वरदास्तव । तस्य पार्थ प्रसादेन देवदेवस्य शूलिनः १५

दुन्दुभियोंके और शङ्खोंके दारुण शब्द और चारों ओरके सिंह कीसी गर्जनाओंके शब्द सुनायी आरहे हैं तथा महाबली कर्ण अपने धनुषको खेंचता है तो बड़े २ शब्दोंको ढकदेनेवाला उसके धनुषका शब्द सुनायी आता है तथा बड़ेभारी वनमें रहनेवाले मृगोंके झुण्ड जैसे कोपमें भरेहुए केहरी सिंहको देखकर भागजाते हैं तैसे ही ये पंचाल देशके राजे भी कर्णको देखकर अपनी सेनाके साथ रणमेंसे भागरहे हैं, इसलिये हे अर्जुन ! तू किसी प्रकार उद्योग करके कर्णका नाशकर ॥ ८-११ ॥ कर्णके बाणोंको तेरे सिवाय दूसरा कोई पुरुष नहीं सहसकता और रणमें देवता असुर, गन्धर्व तथा स्थावर जङ्गमरूप तीनों लोकोंको तू जीत सकता है, इस बातको मैं जानताहूँ, भयानक उग्रमूर्ति, महात्मा, त्रिनेत्र, जटाधारी और शर्व ऐसे भगवान् शंकरको दूसरे लोग देख भी नहींसकते, फिर उनके साथ लड़नेकी तो बात ही कहाँ परन्तु तूने तो सब प्राणियोंका मङ्गल करनेवाले कल्याणमूर्ति भगवान् महादेवकी युद्धके द्वारा आराधना की है और देवताओंने

जहि कर्णं महाबाहो नमुचिं वृत्रहा यथा। श्रेयस्तेऽस्तु सदा पार्थ युद्धे जयमवाप्नुहि ॥ १६ ॥ अर्जुन उवाच। ध्रुव एव जयः कृष्ण मम नास्त्यत्र संशयः। सर्वलोकगुरुर्यस्त्वं तुष्टोऽसि मधुसूदन १७ चोदयाश्वान् हृषीकेश रथं मम महारथ। नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्यति फाल्गुनः ॥ १८ ॥ अथ कर्णं हतं पश्य मच्छरैः शकलीकृतम्। मां वा द्रक्ष्यसि गोविन्द कर्णेन निहितं शरैः १९ उपस्थितमिदं घोरं युद्धं त्रैलोक्यमोहनम्। यज्जनाः कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्द्धरिष्यति ॥२०॥ एवं ब्रुवंस्तदा पार्थः कृष्णमक्लिष्टकारिणम्। प्रत्युद्ययौ रथेनाशु गजं प्रतिगजो तथा ॥ २१ ॥

तुझे वरदान दिये हैं, इसलिये हे महाबाहु अर्जुन ! देवाधिदेव त्रिशूलधारी शंकरकी कृपासे, जैसे इन्द्रने नमुचिको मारा था तैसे ही तू भी कर्णको मार, हे अर्जुन ! तेरा सदा कल्याण हो और युद्धमें तेरी विजय हो ॥ १२-१६ ॥ अर्जुनने कहा, कि-हे कृष्ण ! इसमें मेरी अवश्य ही विजय होगी, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है क्यों कि-हे मधुसूदन ! सब लोकोंके गुरु आप मुझपर प्रसन्न हैं ॥ १७ ॥ हे महारथी कृष्ण ! आप मेरे रथको कर्णके पास लेचलिये आज अर्जुन कर्णको मारे बिना युद्धमेंसे पीछेको नहीं लौटेगा ॥ १८ ॥ हे गोविन्द ! आज या तो आप कर्णको मेरे बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर मराहुआ देखेंगे अथवा मुझे ही कर्णके बाणोंसे मराहुआ देखोगे ॥ १९ ॥ आज हमें वह युद्ध प्राप्तहुआ है, कि जिसको देखकर तीनों लोक भौचक्केसे रह जायँगे, जबतक पृथिवी लोकोंको धारण करेगी तब तक लोग इस युद्धकी चर्चा किया करेंगे ॥ २० ॥ इसप्रकार उत्तम कर्म करनेवाले श्रीकृष्णजीसे कह जैसे एक हाथी दूसरे हाथीके सामने झपटकर पहुँचजाता है तैसे ही अर्जुन भी रथमें बैठकर शीघ्रतासे कर्णके सामनेको चलदिया ॥ २१ ॥ हे शत्रुओंको दबानेवाले

पुनश्चाह महातेजाः पार्थः कृष्णमरिन्दमम् । चोदयाश्वान् हृषीकेश कालोऽयमतिवर्त्तते । एवमुक्तस्तदा तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥ जयेन सम्पूज्य स पाण्डवं तदा प्रचोदयामास हयान्मनोजवान् । स पाण्डुपुत्रस्य रथो महाजवः क्षणेन कर्णस्य रथाग्रतोभवत् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे श्रीकृष्णवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच । वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः । पुत्रशोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां समवासृजत् । १ ॥ रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपुम् । युद्धायामर्षताम्राक्षः समाहूय धनञ्जयम् ॥ २ ॥ तौ रथौ सूर्यसङ्काशौ वैयाघ्रपरिवारितौ । समेतौ

राजन् ! तेजस्वी अर्जुनने मार्गमें जाते २ श्रीकृष्णसे कहा, कि-हे हृषीकेश ! घोड़ोंको हाँकिये, क्योंकि-युद्ध करनेका समय बीताजाता है, इसप्रकार महात्मा अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा कि उसी समय श्रीकृष्णने 'अर्जुनकी जय हो' इस वाक्यसे अर्जुनका सत्कार करके मनकी समान वेगवाले घोड़ोंको हाँका, कि-पांडुनन्दनका मनकी समान वेगवाला रथ क्षणभरमें कर्णके रथके सामने आकर खड़ाहोगया ॥ २२ ॥ २३ ॥ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! वृषसेन मारागया, यह देखकर तेजस्वी कर्ण शोक और क्रोधमें भरगया तथा पुत्रका शोक करता हुआ दोनों नेत्रोंमेंसे आँसू बहानेलगा, फिर क्रोधसे लाललाल आँखें करके रथमें बैठ शत्रुके सामने गया और युद्ध करनेके लिये अर्जुनको पुकारनेलगा॥ १ ॥२॥ उस समय दर्शक लोग बाघके चमड़ेसे मढ़े, सूर्यकी समान तेजस्वी उन दोनों रथोंको देखकर ऐसा समझनेलगे, कि-मानो एक स्थानपर दो

ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समुद्गतौ ॥ ३ ॥ श्वेताश्वौ पुरुषादित्यावास्थितावरिमर्दनौ । शुशुभाते महात्मानौ चन्द्रादित्यौ यथा दिवि ४ तौ दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुः सर्वभूतानि मारिष । त्रैलोक्यविजये यत्ताविन्द्रवैरोचनाविव ॥ ५ ॥ रथज्यातलनिर्घोषैर्बाणसिंहरवैरपि । तौ रथावभिधावन्तौ समालोक्य महीक्षिताम् ६ ध्वजौ च दृष्ट्वा संयुक्तौ विस्मयः समपद्यत । हस्तिकक्षञ्च कर्णस्य वानरञ्च किरीटिनः ७ तौ रथौ संप्रयुक्तौ तु दृष्ट्वा भारत पार्थिवाः । सिंहनादरवांश्चक्रुः साधुवादांश्च पुष्कलान् ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा च द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः

सूर्य उदय होगये हैं ॥ ३ ॥ दोनों रथमें बैठेहुए, शत्रुओंका संहारकरनेवाले, बड़े धनुषधारी, मनुष्योंमें सूर्यसमान, सफेद घोडोंवाले महात्मा कर्ण और अर्जुन उस समय रणमें ऐसे शोभा पारहे थे, मानो आकाशमें सूर्य और चन्द्रमाका उदय होरहा है ॥ ४ ॥ हे राजन् ! तीनों लोकोंका विजय करनेके लिये उद्यत हुए इन्द्र और राजा वलिकी समान पृथिवी को जीतनेके लिये उद्यतहुए कर्ण और अर्जुनको देखकर सब सेनादल आश्चर्य में होगये ॥ ५ ॥ वे दोनों रथी रथोंकी घरघराहट, धनुषोंकी प्रत्यञ्चाओंके हाथोंपर लगनेसे होनेवाले टङ्कारशब्द और वाणोंकी सरसराहट तथा योधाओंके सिंहनादोंके साथ एक दूसरेके ऊपर चढायी कररहे थे, यह देखकर तथा कर्णकी हाथीकी जञ्जीरके चिह्नवाली ध्वजाको एवं अर्जुनकी वानरके चिन्हवाली ध्वजाको देखकर राजे मनमें विस्मय करनेलगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उन दोनों महारथियोंको युद्धमें अच्छे प्रकारसे जुटे हुए देखकर तहाँ खड़े हुए राजे वड़े जोरसे सिंहनाद करनेलगे तथा साधु २ (शावास २) का कोलाहल मचानेलगे ॥ ८ उन दोनोंके द्वन्दयुद्धको देखकर तहाँ खड़ेहुए हजारों योधा तालियें वजानेलगे, खम ठोकनेलगे

सहस्रशः । चक्रुर्बाहुस्वनांश्चैव तथा चैलावधूननम् ॥ ९ ॥ आजघ्नुः कुरवस्तत्र वादित्राणि समन्ततः । कर्णं प्रहर्षयिष्यन्तः शंखान् दध्मुश्च सर्वशः ॥ १० ॥ तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनञ्जयम् । तूर्यशंखनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ ११ ॥ क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् । बाहुशब्दैश्च शूराणां कर्णार्जुनसमागमे ॥ १२ ॥ तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ रथस्थौ रथिनां वरौ । प्रगृहीतमहाचापौ शरशक्तिध्वजायुतौ ॥ १३ ॥ वर्मिणौ बद्धनिस्त्रिंशौ श्वेताश्वौ शंखशोभितौ । तूणीरवरसम्पन्नौ द्वावप्येतौ सुदर्शनौ ॥ १४ ॥ रक्तचन्दनदिग्धांगौ समदौ गोवृषाविव । चापविद्युद्ध्वजोपेतौ शस्त्रसम्पत्तियोधिनौ ॥ १५ ॥ चामरव्यजनोपेतौ श्वेतच्छत्रोपशोभितौ । कृष्णशल्यरथोपेतौ तुल्यरूपौ महारथौ ॥ १६ ॥ सिंहस्कन्धौ दीर्घभुजौ रक्ताक्षौ हेममालिनौ ।

और वस्त्र उडानेलगे ॥ ९ ॥ कौरव भी तहाँ कर्णको प्रसन्न करने के लिये चारों ओरसे बाजे बजानेलगे और सब मिलकर शङ्ख बजानेलगे ॥ ११ ॥ सब पांडव भी अर्जुनको हर्ष उपजानेवा बिगुल और शङ्खोंके शब्दोंसे सब दिशाओंको भरनेलगे ॥१२॥ कर्ण और अर्जुनके युद्धके समय शूर सिंहनाद करनेलगे, खम ठोंकनेलगे, जोर २ से पुकारनेलगे, इससे चारोंओर तुमुल शब्द फैलगया ॥१२॥ हे राजन्! बड़े २ धनुषोंको धारण करनेवाले बाण शक्ति और ध्वजाओंवाले, कवच और खड्गधारी, सफेद घोड़ों वाले शङ्खोंसे शोभायमान, बहुमूल्य भाथोंवाले, दर्शनीय, लाल चन्दनसे चर्चित, मदमत्त बैलोंकी समान, धनुष और ध्वजाधारी शस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले, चवँर पंखे और सफेद छत्रोंसे शोभायमान, श्रीकृष्ण और शल्य जिनका सारथीपना कररहे थे ऐसे एकसे रूपवाले, महारथी, महाबाहु, लाल नेत्रोंवाले सुवर्णकी मालाएं धारण किये, सिंहकीसी विशाल गरदनोंवाले, चौड़ी

सिंहस्कन्धप्रतीकाशौ व्यूढोरस्कौ महाबलौ । अन्योन्यवधमि-
च्छन्तौ अन्योऽन्यजयकांक्षिणौ ॥ १७ ॥ अन्योन्यमभिधावन्तौ
गोष्ठेष्विव महर्षभौ । प्रभिन्नाविव मातङ्गौ सुसंरब्धाविवाचलौ १८
आशीविषशिशुप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ।इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ सूर्या-
चन्द्रमसप्रभौ ॥ १९ ॥ महाग्रहाविव क्रुद्धौ युगान्ताय समुत्थितौ ।
देवगर्भौ देवबलौ देवतुल्यौ च रूपतः ॥ २० ॥ यदृच्छया समा-
यातौ सूर्याचन्द्रमसौ यथा । बलिनौ समरे दृप्तौ नानाशस्त्रधरौ
युधि ॥ २१ ॥ तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ शार्दूलाविव धिष्ठितौ । बभूव
परमो हर्षस्तावकानां विशाम्पते ॥ २२ ॥ संशयः सर्वभूतानां
विजये समपद्यत । समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्णधनञ्जयौ २३

छाती और बड़े बलवाले, एकदूसरेका वध करनेके अभिलाषी, परस्परका पराजय करना चाहनेवाले, एक गोठमें जैसे दो बैल एक दूसरेके सामनेको युद्धकरकेने लिये दौड़ते हों तैसे ही वे दोनों एक दूसरेके सामने युद्ध करनेको दौड़पड़े ! मद टपकाने वाले दो हाथियोंकी समान, वेगमें भरेहुए पर्वतोंकी समान सर्पोंके विषधर बच्चोंकी समान यम, काल और अन्तककी समान, इन्द्र और वृत्रासुरकी समान क्रोधमें भरे हुए, सूर्य और चन्द्रमाकी समान कान्तिवाले, प्रलय करनेके लिये उदय हुए और क्रोधमें भरेहुए महाग्रहोंकी समान, देवताओंसे जन्मपायेहुए देवताओंकी समान बलवान्, देवताओंकेसे रूप वाले, दैवेच्छासे इकट्ठेहुए सूर्य और चन्द्रमाकी समान दीखतेहुए गर्वमें भरेहुए, युद्धमें अनेकोंप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले और सिंहोंकी समान एक दूसरेका मुचैटा लेनेवाले, बलवान् महारथी कर्ण और अर्जुनको युद्ध करते देख तुम्हारे पुत्र बड़े प्रसन्न हुए और उनकी विजयके विषयमें सब लोगोंको सन्देह होनेलगा ॥ १३-२३ ॥ वे दोनों योधा बड़े बढ़िया शस्त्रोंको धारण

उभौ वरायुधधरावुभौ रणकृतश्रमौ। उभौ च बाहुशब्देन नाद-यन्तौ नभस्तलम् ॥२४॥ उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च। उभौ च सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २५ ॥ कार्त्तवीर्यसमौ चोभौ तथा दाशरथेः समौ। विष्णुवीर्यसमौ चोभौ तथा भवसमौ युधि ॥ २६ ॥ उभौ श्वेतहयौ राजन् रथप्रवरवाहिनौ। सारथि-प्रवरौ चापि तयोरास्तां महारणे ॥ २७ ॥ तौ तु दृष्ट्वा महाराज राजमानौ महारथौ। सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत॥२८॥ धार्त्तराष्ट्रास्ततः कर्णं सबला भरतर्षभ। परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्र-माहवशोभिनम् ॥ २९ ॥ तथैव पाण्डवा हृष्टा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः। परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि ॥ ३० ॥ तावकानां रणे कर्णो ग्लहो ह्यासीद्विशाम्पते। तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभव-त्तदा ॥ ३१ ॥ त एव सभ्यास्तत्रासन् प्रेक्षकाश्चाभवन् स्म ते।

कियेहुए थे, रणमें विजय पानेके लिये परिश्रम कररहे थे और दोनों भुजदण्डोंको ठोककर आकाशमण्डलको भरेडालते थे, वे दोनों योधा पुरुषार्थमें तथा बलमें प्रसिद्ध थे युद्ध करनेमें शंबरा-सुर तथा इन्द्रकी समान पराक्रमी थे, कार्त्तवीर्य, राम, विष्णु शङ्करकी समान बली थे॥ २५ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! वे दोनों सफेद घोडोंसे जुते बड़े २ रथोंमें बैठे थे और उनके सारथी भी बडे २ थे ॥ २७ ॥ हे महाराज ! उन दोनों सुन्दर महारथियों को देखकर सिद्ध और चारणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ था २८ हे भरतसत्तम ! उस समय तुम्हारे पुत्र अपनी सेनाके साथ युद्धमें दिपते हुए महात्मा कर्णको एक साथ चारों ओरसे घेरकर खड़े होगए ॥ २९ ॥ और धृष्टद्युम्न आदि पांडव हर्षमें भरकर युद्धमें अनुपम योधा मानेजानेवाले महात्मा अर्जुनको चारों ओर से घेरकर खड़े थे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उस समय तुम्हारे पुत्रोंने युद्धरूप जुएमें कर्णको दाँवपर लगादिया था और पांडवोंने

तत्रैषां ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ ३२ ॥ ताभ्यां द्यूतं समासक्तं विजयायेतराय वा । अस्माकं पाण्डवानाञ्च स्थितानां रणमूर्द्धनि ॥३३॥ तौ तु स्थितौ महाराज समरे युद्धशालिनौ । अन्योन्यं प्रतिसंरब्धावन्योन्यस्य वधैषिणौ ॥ ३४ ॥ तावुभौ प्रजिहीर्षन्ताविन्द्रवृत्राविव प्रभो । भीमरूपधरावास्तां महाधूमाविव ग्रहौ ॥ ३५ ॥ ततोऽन्तरीक्षे साक्षेपा विवादा भरतर्षभ । मिथो भेदाश्च भूतानामासन् कर्णार्जुनान्तरे ॥ ३६ ॥ व्यश्रूयन्त मिथो भिन्नाः सर्वलोकास्तु मारिष । देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३७ ॥ प्रतिपक्षग्रहञ्चक्रुः कर्णार्जुनसमागमे । द्यौरासीत् सूतपुत्रस्य पक्षे मातेव धिष्ठिता ॥ ३८ ॥ भूमिर्धनञ्जयस्या-

---

अर्जुनको दाँव पर लगाया था ॥ ३१ ॥ और रणभूमिके दर्शक सभासद बने थे और दाँव लगानेवालोंमें से एककी जय और दूसरेकी पराजय अवश्य ही होनेवाली थी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर रणके मुहाने पर खडेहुए हमारे पक्षके तथा तथा पांडव पक्षके योधाओंने जय और पराजयके लिये युद्धरूप जुएका आरम्भ करदिया ॥ ३३ ॥ और हे महाराज ! वे दोनों योधा इन्द्र और वृत्रासुरकी समान एक दूसरेका नाश करनेकी इच्छासे राहु और और केतुकी समान भयानक रूप धारण करके एक दूसरेके सामने खड़े होगये ॥३४॥३५॥ भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उस समय कर्ण और अर्जुनके लिये आकाशचारी प्राणी एक दूसरेका तिरस्कार करके विवाद करने लगे और उनमें कर्ण तथा अर्जुन के लिये मतभेद होगया और यह सबने जानलिया, कर्ण और अर्जुनके युद्धके समय देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसोंमें भिन्न २ पक्ष होगये, हे राजेन्द्र ! नक्षत्रों सहित आकाशमण्डलने व्यग्र होकर कर्णका पक्ष लिया जैसे माता पुत्रका पक्ष लेती है तैसे ही विशाल वसुन्धरा अर्जुनका पक्ष लेकर उसकी

सीन्मातेव हितकारिणी । गिरयः सागराश्चैव नद्यश्च सजला-
स्तथा ॥ ३९ ॥ वृक्षाश्चौषधयश्चैव ह्याश्रयन्त किरीटिनम् । असुरा
यातुधानाश्च गुह्यकाश्च परन्तप ॥ ४० ॥ कर्णतः समपद्यंत हृष्ट-
रूपाः समन्ततः । मुनयः सागराः सिद्धा वैनतेया वयांसि च ॥ ४१
रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः । सोपवेदोपनिषदः
सरहस्याः ससंग्रहाः ॥ ४२ ॥ वासुकिश्चित्रसेनश्च तक्षको मणिक-
स्तथा । सर्पाश्चैव तथा सर्वे काद्रवेयाश्च सान्वयाः ॥ ४३ ॥ विष-
वन्तो महाराज नागाश्चार्जुनतोभवन् । ऐरावताः सौरभेया वैशा-
लेयाश्च भोगिनः ॥ ४४ ॥ एतेभवन्नर्जुनतः क्षुद्रसर्पास्तु कर्णतः ।
ईहामृगा व्यालमृगा माङ्गल्याश्च मृगद्विजाः ॥४५॥ पार्थस्य विजये
राजन् सर्व एवाभिसंस्थिताः । वसवो मरुतः साध्या रुद्रा विश्वे-
श्विनौ तथा ॥४६॥ अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनोथ दिशो दश ।
धनञ्जयस्य ते पक्षे आदित्याः कर्णतोभवन् ॥ ४७ ॥ विशः
शूद्राश्च सूताश्च ये च सङ्करजातयः । सर्वशस्ते महाराज राधेय-

विजय चाहने लगी, पर्वत, समुद्र, जलसे भरीहुई नदियें, वृक्ष,
औषधियें आदि एक दूसरेका पक्ष लेनेलगे, असुर यातुधान
और गुह्यकोंने प्रसन्न होकर हे परन्तप ! कर्णका पक्ष लिया,
मुनि, चारण, सिद्ध, गरुड़ पक्षी, रत्न, निधि, चारों वेद, आख्यान
उपवेद, उपनिषद्, रहस्य ग्रन्थ, वासुकि, चित्रसेन, तक्षक, मणिक
सर्प, काद्रवेय, इनके वंशधर, विषधर सर्प तथा नागोंने अर्जुनका
पक्षलिया, ऐरावत सुरभीके पुत्र, विशालीके पुत्र तथा सर्प अर्जुन
के पक्षमें आमिले, छोटे सर्प कर्णके पक्षमेंहुए ईहामृग, व्यालमृग,
माङ्गलिक मृग और पक्षी हे राजन् ! अर्जुनके पक्षमें होगये, वसु,
मरुद्गण, साध्य, रुद्र, विश्वेदेवा, अश्वनिकुमार, अग्नि, इन्द्र,
सोम, पवन और दशों दिशायें अर्जुनके पक्षमें हुए, आदित्य,
वैश्य, शूद्र, सूत तथा सङ्कर जातिके पुरुषोंने कर्णका पक्ष

प्रभजंस्तदा ॥४८। देवास्तु पितृभिः सार्द्धं सगणाः सपदानुगाः। यमो वैश्रवणश्चैव वरुणश्च यतोर्जुनः॥ ४९ ॥ ब्रह्म क्षत्रञ्च यज्ञाश्च दक्षिणाश्चार्जुनं श्रिताः। प्रेताश्चैव पिशाचाश्च क्रव्यादाश्च मृगाण्डजाः ॥ ५० ॥ राक्षसाः सह यादोभिः श्वशृगालाश्च कर्णतः। देवब्रह्मनृपर्षीणां गणाः पाण्डवतोभवन् ५१ तुम्बुरुप्रमुखा राजन् गन्धर्वाश्च यतोर्जुनः। प्राधेयाः सह मौनेया गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥५२॥ ईहामृगा पक्षिगणा द्विपाश्वरथपत्तिभिः। उह्यमानास्तथा मेघैर्वायुना च मनीषिणः॥ ५३ ॥ दिदृक्षवः समाजग्मुः कर्णार्जुनसमागमम्। देवदानवगन्धर्वा नागयक्षाः पतत्रिणः॥ ५४ ॥ महर्षयो वेदविदः पितरश्च स्वधाभुजः। तपोविद्यास्तथौषध्यो नानारूपवलान्विताः ॥५५॥ अन्तरिक्षे महाराज निनदन्तोवतस्थिरे। ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं प्रजापतिभिरेव च ॥५६॥ भवश्चैव स्थितो यानं दिव्यं तं देशमा-

---

लिया ॥ ३६-४८ ॥ देवता, पितर उनके गण तथा सेवक, यम, वैश्रवण, वरुण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, यज्ञ तथा दक्षिणाओंने अर्जुन का पक्ष लिया, प्रेत, पिशाच, क्रव्याद, मृगाण्डज, राक्षस जलचर, कुत्ते और गीदड कर्णके पक्षमें हुए, देवता ब्राह्मण और राजर्षि पांडवोंके पक्षमें हुए ॥ ४९-५१ ॥ हे राजन्! तुम्बुरु आदि गन्धर्व अर्जुनकी ओर होगए प्राधेय और मौनेय नामक गन्धर्वोंके समूह, ईहामृग, अप्सराओंके झुण्ड, पक्षी, और बहुत से महात्मा पुरुष, हाथी, घोड़े, रथ, पैदल मनुष्य मेघ तथा वायुकी सवारी पर चढ़ तहाँ आये थे ॥ ५२-५३ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, वेदवेत्ता महर्षि, स्वधाका भोजन करनेवाले पितर, तप, विद्या और नानाप्रकारके रूप धारण कर सकने वाली बलवती ओषधियें भी कर्ण तथा अर्जुनके युद्धको देखनेके लिये अन्तरिक्षमें गर्जना करते हुए खड़े थे, प्रजापति और

गमत् । समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनंजयौ ॥ ५७ ॥ अर्जुनं-
जयतां कर्णमिति शक्रोऽब्रवीत् स्वयम् । जयतामर्जुनं कर्ण इति
सूर्योऽभ्यभाषत ॥ ५८ ॥ हत्वार्जुनं मम सुतः कर्णो जयतु संयुगे ।
हत्वा कर्णं जयत्वद्य मम पुत्रो धनञ्जयः ॥ ५९ ॥ इति सूर्यस्य
चैवासीद्विवादो वासवस्य च । पक्षसंस्थितयोस्तत्र तयोः विबुध-
सिंहयोः । द्वैपक्ष्यमासीद्देवानामसुराणान्तथैव च ॥ ६० ॥ समेतौ
तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनञ्जयौ । अकम्पन्त त्रयो लोकाः सह-
देवर्षिचारणाः ॥६१ ॥ सर्वे देवगणाश्चैव सर्वभूतानि यानि च ।
यतः पार्थस्ततो देवा यतः कर्णस्ततोऽसुराः ॥ ६२ ॥ रथयूथपयोः
पक्षौ कुरुपाण्डववीरयोः । दृष्ट्वा प्रजापतिं देवाः स्वयंभुवमचोद-
यन् ॥ ६३ ॥ कोऽनयोर्विजयी देव कुरुपाण्डवयोधयोः । समोऽस्तु

ब्रह्मर्षियोंको साथमें ले ब्रह्मा और शिव भी दिव्य विमानोंमें बैठ युद्ध देखनेके लिए उस दिव्यभूमिमें आए, महात्मा कर्ण और अर्जुनको युद्ध करनेके लिये उद्यत देखकर इन्द्र कहने लगा कि-"अर्जुन कर्णका पराजय करे" तब सूर्य चटसे बोल उठा कि-"कर्ण अर्जुनको जीत ले" ॥ ५४-५८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इसके पीछे सूर्य और इन्द्रमें विवाद होने लगा; सूर्य बोला कि-मेरा पुत्र युद्धमें अर्जुनको मार विजय पावेगा; तब इन्द्र बोल उठा कि-नहीं ! मेरा पुत्र कर्णको मार आज जीतेगा, देवताओंमें सिंह समान उन सूर्य और इन्द्रमें अर्जुन और कर्णका पक्ष लेकर विवाद होनेपर देवता और असुरोंमें दो दल होगए ५९-६० महात्मा अर्जुन और कर्णको आमने सामने देखकर देवर्षि देवता चारण और सकल प्राणियों सहित तीनों लोक काँप उठे तब देवता अर्जुनकी ओर होगए और असुर कर्णकी ओर चले गए ॥ ६१-६२ ॥ जब महारथियोंके सरदार कौरव और पाण्डवोंके योधाओंके कारण देवताओंमें दो दल होगए तब देवता

देव विजय एतयोर्नरसिंहयोः ॥ ६४ ॥ कर्णार्जुनविवादेन सर्वं संशयितं जगत् । स्वयम्भो ब्रूहि नस्तथ्यमेतयोर्विजयं प्रभो ॥६५॥ स्वयम्भो ब्रूहि तद्वाक्यं समोऽस्तु विजयोऽनयोः । तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम्॥६६॥ व्यज्ञापयत देवेशमिदं मतिमतांम्वरः । पूर्वं भगवता प्रोक्तं कृष्णयोर्विजयो ध्रुवः ॥ ६७ ॥ तत्तथास्तु नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन्मम । ब्रह्मेशानावथो वाक्यमूचतुस्त्रिदशेश्वरम् ॥ ६८ ॥ विजयो ध्रुव एवास्तु विजयस्य महात्मनः । खाण्डवे येन हुतभुक् तोषितः सव्यसाचिना ॥ ६९ ॥ स्वर्गञ्च समनुप्राप्य साहाय्यं शक्र ते कृतम् । कर्णश्च दानवः पक्ष अतः कार्यः पराजयः ॥ ७० ॥ एवं कृते भवेत् कार्यं देवानामेव निश्चि-

ब्रह्माजीसे कहने लगे कि-हे देव ! कौरव और पाण्डवपक्षके इन दो योधाओंमेंसे कौन जीतेगा, हे देव ! हमारी इच्छा है, कि-इन दोनों नरसिंहोंकी एकसी विजय हो ॥ ६३-६४ ॥ हे स्वयम्भु ब्रह्मदेव ! कर्ण और अर्जुनके विवादसे सारा जगत् संशयित होरहा है; अतः इन दोनोंमेंसे सच्ची विजय किसकी होगी यह बताइये ॥ ६५ ॥ हे प्रभो ! आप यह कहिये कि-इन दोनोंकी विजय एकसी होगी, यह सुनकर महाबुद्धिमान् इन्द्रने देवताओंके ईश्वर ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा कि-आपने पहिले ही मुझसे कहा था कि-श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही विजय होगी ॥ ६६-६७ ॥ अतः "वैसा ही हो" ऐसा आशीर्वाद दो, हे भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये यह सुन भगवान् ब्रह्मा और शंकर इन्द्रसे कहने लगे कि-॥ ६८ ॥ हे इन्द्र ! इस महात्मा विजय (अर्जुन) की ही विजय होगी, इसने खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया था और स्वर्गमें आ तुम्हारी सहायता भी की थी, तथा कर्णके पक्षमें दानव हैं अतः उसका पराजय करानेकी आवश्यकता है॥६९-७०॥

तम् । आत्मकार्यञ्च सर्वेषां गरीयस्त्रिदशेश्वर ॥७१॥ महात्मा फाल्गुनश्चापि सत्यधर्मरतः सदा । विजयस्तस्य नियतं जायते नात्र संशयः ॥७२॥ तोषितो भगवान् येन महात्मा वृषभध्वजः । कथं वा तस्य न जयो जायते शतलोचन ॥ ७३ ॥ यस्य चक्रे स्वयं विष्णुः सारथ्यं जगतः प्रभुः । मनस्वी बलवान् शूरः कृतास्त्रश्च तपोधनः ॥ ७४ ॥ बिभर्त्ति च महातेजा धनुर्वेदमशेषतः । पार्थः सर्वगुणोपेतो देवकार्यमिदं यतः ॥ ७५ ॥ क्लिश्यंते पाण्डवा नित्यं वनवासादिभिर्भृशम् । सम्पन्नस्तरसा चैव पर्याप्तः पुरुषर्षभः ॥ ७६ ॥ अतिक्रमेच्च माहात्म्याद्दिष्टमप्यस्य पर्ययम् । अतिक्रान्ते तु लोकानामभावो नियतं भवेत् ॥ ७७ ॥ न विद्यते व्यथा स्थानं क्रुद्धयोः कृष्णयोः क्वचित् । स्रष्टारौ जगतश्चैव सततं पुरु-

ऐसा करने पर देवताओंका कार्य अवश्य ही बनेगा और हे त्रिदशेश्वर ! अपना काम बनाना सबको अच्छा लगता है ॥७१॥ तथा महात्मा अर्जुन सत्य और धर्म पर सदा डटा रहता है अतः उसकी विजय अवश्य होगी,इसमें कुछ सन्देह नहीं है७२ जिसने महात्मा वृषभध्वज शंकरको सन्तुष्ट किया है,हे शतलोचन ! उसकी विजय क्यों न होगी ? ॥७३॥ जगत्‌के प्रभु विष्णु भगवान् स्वयं उसका सारथीपना कररहे हैं तथा वह स्वयं भी मनस्वी है, बलवान् है, शूर है, शस्त्रविद्यामें निष्णात है, तपोधन है ॥ ७४ ॥ और उस महातेजस्वीको समस्त धनुर्वेद आता है;उस अर्जुनमें सब गुण हैं और यह कार्यभी देवताओंका ही तो है॥७५॥ पाण्डव वनवास आदिसे सदा दुःख पाते रहते हैं, उनमें यह अर्जुन महातपस्वी और महात्मा पुरुष है ॥७६॥ दैव भी उसकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करसकता, यदि कदाचित् दैव उसकी आज्ञाका उल्लंघन करे तो लोकही नष्ट होजायँ ॥ ७७ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन क्रोध करें तो कोई भी कहीं भी नहीं बच सकता, ये दोनों महा-

पर्षभौ ॥ ७८ ॥ नरनारायणावेतौ पुराणावृषिसत्तमौ । अनियम्यौ नियन्तारावेतौ तस्मात्परन्तपौ ॥ ७९ ॥ नैतयोस्तु समः कश्चिद्दिवि वा मानुषेषु वा । अनुगम्यास्त्रयो लोकाः सह देवर्षिचारणैः ।८०। सर्वे देवगणाश्चापि सर्वभूतानि यानि च । अनयोस्तु प्रभावेण वर्त्तते निखिलं जगत् ॥ ८१ ॥कर्णो लोकानयं मुख्यान् प्राप्नोतु पुरुषर्षभः । कर्णो वैकर्तनः शूरो विजयस्त्वस्तु कृष्णयोः ८२ वसूनाञ्च सलोकत्वं मरुतां वा समाप्नुयात् । सहितो द्रोणभीष्माभ्यां नाकलोमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥ इत्युक्तो देवदेवाभ्यां सहस्राक्षोब्रवीद्वचः । आमन्त्र्य सर्वभूतानि ब्रह्मेशानानुशासनम् ।८४।श्रुतं भवद्भिर्यत् प्रोक्तं भगवद्भ्यां जगद्धितम् । तत्तथा नान्यथा तद्धि

त्मा पुरुष सर्वदा जगत्की रचना किया करते हैं ॥ ७८ ॥ ये दोनों नर और नारायण नामके प्राचीन ऋषि हैं, कोईभी इनको दण्ड नहीं देसकता, और ये सबको नियममें रखते हैं और शत्रुओंको सन्ताप देते हैं ॥ ७९ ॥ स्वर्गलोकमें अथवा मनुष्यलोक में इनकी जोड़का कोई आदमी नहीं है, देवर्षि, चारण, तीनों लोक, सब देवता, सकल भूतगण और क्या समस्त जगत्ही इन दोनोंके प्रभावसे नियममें रहकर अपना कर्त्तव्य किया करता है ॥ ८० ॥ ८१॥ पुरुषोंमें वृषभकी समान यह कर्ण श्रेष्ठ लोकोंको पावेगा, विकर्तनका पुत्र कर्ण शूर है, परन्तु विजय श्रीकृष्ण और अर्जुनकीही होगी ॥ ८२ ॥ यह कर्ण वसुओंके और मरुतोंके लोकमें जावेगा (अथवा इसकी इच्छा होगी तो) द्रोण और भीष्मके साथ साथ स्वर्गमें जासकेगा ॥ ८३ ॥ देवदेव शंकर और ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर इन्द्र सब प्राणियोंको बुला ब्रह्मा और भगवान् शंकरकी आज्ञा बतलाने लगा कि-॥ ८४ ॥ आप (शंकर और ब्रह्माजी) ने जो कुछ कहा वह आपने सुनलिया, जैसा उन्होंने कहा, वह वैसाही होगा उसके विपरीत कुछ नहीं

तिष्ठध्वं गतमन्यवः ॥ ८५ ॥ इति श्रुत्वेन्द्रवचनं सर्वभूतानि मारिष । विस्मितान्यभवन्राजन् पूजयाञ्चक्रिरे तदा ॥ ८६ ॥ व्यसृजंश्च सुगन्धीनि पुष्पवर्षाणि हर्षिताः । नानारूपाणि विबुधा देवतूर्याण्यवादयन् ॥ ८७ ॥ दिदृक्षवश्चाप्रतिमं द्वैरथं नरसिंहयोः । देवदानवगन्धर्वाः सर्व एवावतस्थिरे ॥८८॥ रथौ तयोः श्वेतहयौ दिव्यौ युक्तौ महात्मनौ । यौ तौ कर्णार्जुनौ राजन् प्रहृष्टावभ्यतिष्ठताम् ॥ ८९ ॥ समागता लोकवीराः शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक् । वासुदेवार्जुनौ वीरौ शल्यकर्णौ च भारत९० तद्भीरुत्रासनकरं युद्धं समभवत्तदा । अन्योन्यस्पर्द्धिनोरुग्रं शक्रशम्बरयोरिव ॥ ९१ ॥ तयोर्ध्वजौ वीतमलौ शुशुभाते रथे स्थितौ । राहुकेतू यथाकाशे उदितौ जगतः क्षये ॥ ९२ ॥ कर्णस्याशीविषनिभा रत्नसारमयी दृढा । पुरन्दरधनुःप्रख्या हस्तिकक्ष्या विरा-

---

होगा, अतः तुम वेखटके खड़े रहो ॥ ८५ ॥ हे भारत ! इन्द्रके वचनको सुन सब प्राणी विस्मित होगए और हर्षमें भर उन दोनोंकी पूजा करने लगे ॥ ८६ ॥ वे हर्षमें भर सुगन्धिवाले पुष्पोंको वरसाने लगे और नानाप्रकारके बाजोंको बजानेलगे८७ मनुष्योंमें सिंहसरीखे अर्जुन और कर्णका युद्ध देखनेके लिये देवता, दानव और गन्धर्व आदि सबही तहाँ आकर खड़े होगये८८ हे महाराज ! उस समय महात्मा कर्ण और अर्जुन मनमें प्रसन्न हो अपने २ दिव्य रथमें वैठे थे, उनके रथमें श्वेत, घोड़े जुतरहे थे, इसके पीछे तहाँ इकट्ठेहुए वासुदेव, अर्जुन, कर्ण तथा शल्य अपने २ शंख बजाने लगे ॥ ८९–९० ॥ परस्परकी स्पर्धा करनेवाले इन्द्र और शम्वरासुरकी समान उग्र उन दोनोंका युद्ध होने लगा तब डरपोक त्रस्त होने लगे ॥ ९१ ॥ उनके रथपर लगीहुई निर्मल ध्वजायें जगत्का संहार करनेके लिये उदितहुए राहु और केतुसी शोभा देती थीं ॥ ९२ ॥ हाथीके

जते ॥ ६३ ॥ कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्य इवांतकः । भीषयन्नेव दंष्ट्राभिर्दुर्निरीक्ष्यो रविर्यथा ॥ ६४ ॥ युद्धाभिलाषुको भूत्वा ध्वजो गाण्डीवधन्वनः । कर्णध्वजमुपातिष्ठत् स्वस्थानाद्वेगवान् कपिः ॥ ६५ ॥ उत्पपात महावेगः कक्ष्यामभ्यहनत्कपिः । नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा ॥६६॥ सा किङ्किणीकाभरणा कालपाशोपमायसी । अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धा नागकक्ष्याथ तं कपिम् ॥ ६७ ॥ तयोर्घोरतरे युद्धे द्वैरथे द्यूत आहिते । प्रकुर्वतां ध्वजौ युद्धं पूर्वं पूर्वतरं तदा ॥ ६८ ॥ हया हयानभ्यहेषन् स्पर्धमानाः परस्परम् । अविध्यत् पुण्डरीकाक्षः शल्यं नयनसायकैः ॥ ६९ ॥ शल्यश्च पुण्डरीकाक्षं तथैवाभिसमैक्षत ।

जंजीरकी चिन्हवाली कर्णकी दृढ़ ध्वजयष्टि जहरीले सर्पकी समान और इन्द्रधनुषकी समान दीखती थी और अर्जुनकी ध्वजामें मुख फाड़कर बैठेहुए कालकी समान महाकपि बैठा था, अपनी डाढ़ोंकी कान्तिसे वह दर्शकोंको डरारहा था और सूर्यकी समान उसको मनुष्य कठिनतासे देख सकते थे ॥ ६३-६४ ॥ युद्ध आरम्भ होनेसे पहिले अर्जुनकी ध्वजामें बैठाहुआ वानर युद्ध करनेकी इच्छासे कूदकर कर्णकी हाथीके जंजीरकी चिन्हवाली ध्वजा पर बैठगया, और गरुड सर्पको जैसे नख और दांतोंसे कुतरता है, तैसेही कर्णकी ध्वजाकी हाथीकी जंजीरको तोड़ने लगा, तब घूंघुरोंके आभूषणोंसे शोभित, कालपाशकी समान दीखती हुई, ठोस लोहेकी बनी जंजीर भी क्रोधमें भर उस वानरसे युद्ध करने लगी ॥ ६५-६७ ॥ इसप्रकार यहाँसे ही द्वैरथरूपी युद्धद्यूत आरम्भ होगया, ध्वजायें युद्ध कर रही थीं कि- दोनों घोड़े भी स्पर्धाके साथ हींसने लगे, श्रीकृष्ण नेत्ररूपी बाणसे शल्यको बींधने लगे तथा शल्यभी नेत्ररूपी बाण श्रीकृष्ण पर छोड़ने लगा, इस समय श्रीकृष्णने नेत्ररूपी बाणसे

तत्राजयद्वासुदेवः शल्यं नयनसायकैः ॥ १०० ॥ कर्णञ्चाप्यजयद्दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । अथाब्रवीत् सूतपुत्रः शल्यमाभाष्य सस्मितम् ॥ १०१ ॥ यदि पार्थो रणे हन्यादद्य मामिह कर्हिचित् । किं करिष्यसि संग्रामे शल्य सत्यमथोच्यताम् ॥१०२॥ शल्य उवाच । यदि कर्णं रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः । उभावेकरथेनाहं हन्यां माधवफाल्गुनौ॥१०३॥ सञ्जय उवाच । एवमेव तु गोविन्दमर्जुनः प्रत्यभाषत । तंप्रहस्याब्रवीत् कृष्णः सत्यं पार्थमिदं वचः ॥ १०४ ॥ पतेद्दिवाकरः स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः । शैत्यमग्निरियान्न त्वां कर्णो हन्याद्धनञ्जय ॥ १०५ ॥ यदि चैतत् कथंचित् स्यात् लोकपर्यासनं भवेत् । हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥ १०६ ॥ इति कृष्णवचः श्रुत्वा प्रहसन् कपिकेतनः । अर्जुनः प्रत्युवाचेदं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।१०७।

शल्यको हरादिया ॥ ९८–१०० ॥ कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी दृष्टिसे कर्णको जीतलिया, तब सूतपुत्र मुस्कराहटके साथ शल्यसे बोला कि–॥ १०१ ॥ हे शल्य ! यदि अर्जुन आज युद्धमें मुझे किसीप्रकार मारडाले तो तुम क्या करोगे, यह सच २ कहना ॥ १०२ ॥ शल्यने उत्तर दिया कि–यदि श्वेत घोड़ोंवाला अर्जुन आज तुझे रणमें मार डालेगा तो मैं अकेला ही रथमें बैठकर उन दोनोंको मार डालूँगा ॥१०३॥ सञ्जयने कहा कि–हे धृतराष्ट्र ! अर्जुनने भी इसीप्रकार श्रीकृष्णसे कहा–तब श्रीकृष्ण हँसकर अर्जुनसे कहने लगे कि–कदाचित् सूर्य नीचे गिरजाय, समुद्र भी चाहे सूख जाँय और अग्निमें भी चाहें शीतलता आजाय परन्तु कर्ण तुझे नहीं मारसकता ॥ १०४–१०५ ॥ यदि किसी प्रकार ऐसा हो ही जायगा तो संसार उलट जायगा और मैं कर्ण तथा शल्यको अपनी भुजाओंसे ही मसल डालूँगा १०६ कपिकी ध्वजावाला अर्जुन श्रीकृष्णकी बात सुनकर हँसा

ममैव तावत्पर्याप्तौ शल्यकर्णौ जनार्दन । सपताकध्वजं कर्णं सशल्यरथवाजिनम् ॥ १०८ ॥ सछत्रकवचञ्चैव सशक्तिशरकार्मुकम् । द्रष्टास्यद्य रणे कृष्ण शरैश्छिन्नमनेकधा ॥१०९॥ अद्यैनं सरथं साश्वं सशक्तिकवचायुधम् । संचूर्णितमिवारण्ये पादपं दन्तिना यथा ॥ ११० ॥ अद्य राधेयभार्याणां वैधव्यं समुपस्थितम् । ध्रुवं स्वप्नेष्वनिष्टानि ताभिर्दृष्टानि माधव ॥ १११ ॥ ध्रुवमद्यैव द्रष्टासि विधवाः कर्णयोषितः । न शाम्यते हि मे मन्युर्यदनेन कृतं पुरा ॥ ११२ ॥ कृष्णां सभागतां दृष्ट्वा मूढेनादीर्घदर्शिना । अस्मांस्तदोपहसता क्षिपता च पुनः पुनः ॥११३॥ अद्य द्रष्टासि गोविन्द कर्णमुन्मथितं मया । वारणेनेव मत्तेन पुष्पितं जगतीरुहम् ॥ ११४ ॥ अद्य ता मधुरा वाचः श्रोतासि मधु-

---

और उत्तम कर्म करनेवाले श्रीकृष्णसे कहने लगा कि—॥१०७॥ हे जनार्दन ! यह दोनों कर्ण और शल्य मेरे लिये क्या हैं, मैं कर्णको उसके रथ घोड़े, सारथी शल्य, ध्वजा, पताका, शक्ति, कवच, छत्र धनुष और उसके बाणोंके भी अपने बाण मारकर टुकड़े उड़ा दूँगा, यह आप देखना ॥ १०८-१०९ ॥ जंगलमें हाथी वृक्षको जैसे कुचल डालता है तैसेही मैं रथ, घोड़े, शक्ति, कवच और आयुधों सहित कर्णका आजही कुचला कर-डालूँगा॥११०॥ आज कर्णकी स्त्रियोंका रँडापा आही पहुंचा है, हे माधव ! आज उन्हें बुरे२ स्वप्न अवश्यही दीखे होंगे ॥१११॥ आज आप निश्चय ही कर्णकी स्त्रियोंको विधवा बनीं देखेंगे। इसकी पहली करतूतोंके कारण मेरा क्रोध शान्त नहीं होता है ॥ ११२ ॥ यह अपरिणामदर्शी मूढ द्रौपदीको सभामें आई हुई देखकर हँसा था और इसने हम पर आक्षेप भी किये थे ॥ ११३ ॥ जैसे फूलोंसे लदेहुए वृक्षको हाथी मसल डालता है, उसी प्रकार मैं कर्णको समाप्त करडालूँगा यह आप

सूदन । दिष्ट्या जयसि वार्ष्णेय इति कर्णे निपातिते ॥ ११५ ॥ अद्याभिमन्युजननीं प्रहृष्टः सान्त्वयिष्यसि । कुन्तीं पितृष्वसारञ्च संप्रहृष्टो जनार्दन ॥ ११६ ॥ अद्य बाष्पमुखीं कृष्णां सान्त्वयिष्यसि माधव । वाग्भिश्चामृतकल्पाभिर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥११७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनसमागमे
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच । तद्देवनागासुरसिद्धयक्षैर्गन्धर्वरक्षोप्सरसाञ्च संघैः । ब्रह्मर्षिराजर्षिसुपर्णजुष्टं बभौ वियद्विस्मयनीयरूपम् ॥ १॥ नानद्यमानं निनदैर्मनोज्ञैर्वादित्रगीतस्तुतिहासनृत्यैः । सर्वेऽन्तरिक्षं ददृशुर्मनुष्याः खस्थाश्च तद्विस्मयनीयरूपान् ॥ २ ॥ ततः प्रहृष्टाः कुरुपाण्डुयोधा वादित्रशंखस्वनसिंहनादैः । निनादयन्तो वसुधां

देखेंगे ॥ ११४ ॥ हे मधुसूदन ! कर्णको मारनेके पीछे तुम आज ही निम्न मधुर बातें सुनोगे कि–हे कृष्ण ! तुम्हारी विजय हुई यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ११५ ॥ हे जनार्दन ! आज तुम प्रसन्न होकर अभिमन्युकी माताको और अपनी बुआ कुन्तीको भी सन्तुष्ट करोगे ॥ ११६ ॥ हे माधव ! आज तुम जिसकी आँखोंमें आँसू भररहे हैं, ऐसी द्रौपदीको सन्तुष्ट करसकोगे और अमृतकीसी मीठी बातें कहकर धर्मपुत्रको भी सन्तुष्ट कर सकोगे ॥ ११७ ॥ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! देवता, नाग, असुर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व राक्षस और अप्सराओंके झुण्डोंसे तथा ब्रह्मर्षि, राजर्षि और गरुडोंसे खचाखच भरा हुआ आकाश अपूर्व शोभा देरहा था ॥१॥ मधुर वचनोंसे, बाजोंकी, गीतकी, स्तुतिकी और नृत्यकी तथा हास्यकी मधुर ध्वनियोंसे गुञ्जारते हुए विस्मयकारी आकाशकी ओर मनुष्य एक टक होकर देख रहे थे ॥ २ ॥ इस समय कौरव और पाण्डवपक्षके

दिशश्च स्वनेन सर्वे द्विषतो निजघ्नुः ॥ ३ ॥ नराश्वमातङ्गरथैः समाकुलं शरासिशक्त्यृष्टिनिपातदुःसहम् । अभीरुजुष्टं हतदेहसङ्कुलं रणाजिरं लोहितमावभौ तदा ॥ ४ ॥ बभूव युद्धं कुरुपाण्डवानां यथा सुराणामसुरैः सहाभवत् । तथा प्रवृत्ते तुमलेतिदारुणे धनञ्जयस्याधिरथेश्च सायकैः ॥ ५ ॥ दिशश्च सैन्यञ्च शितैरजिह्मगैः परस्परं प्रावृणुतां सुदंशितैः । ततस्त्वदीयाश्च परे च सायकैः कृतेन्धकारे ददृशुर्न किञ्चन ॥ ६ ॥ भयातुरावेकरथौ समाश्रयंस्ततोऽभवन्त्वद्भुतमेव सर्वतः । ततोस्त्रमस्त्रेण परस्परस्य तौ विधूय वाताविव पूर्वपश्चिमौ ॥७॥ घनान्धकारे वितते तमोनुदौ यथोदितौ तद्वदतीव रेजतुः न चाभिसर्त्तव्यमिति प्रचोदिताः

योधा हर्षसे वाजे वजाने लगे शंखध्वनि करनेलगे सिंहनाद करने लगे, उस शब्दके उनके शत्रु मरनेसे लगे ॥ ३ ॥ मनुष्य, हाथी, घोड और रथोंसे खचाखच वाण, शक्ति ऋष्टिके प्रहारोंसे दुःसह वीर पुरुषोंसे शोभित और वहुत सी ल्हासोंसे पटा हुआ रणांगण लाल लाल ही दीखता था ॥ ४ ॥ जैसे पहिले देवता और असुरोंमें संग्राम हुआ था, तिसी प्रकारका अचरजमें डालनेवाला संग्राम कौरव और पाण्डवोंमें होनेलगा ऐसा दारुण संग्राम हुआ कि—कर्ण और अर्जुनके सीधे जाने वाले बाणोंसे दिशाएँ और सेनाएं छा गईं, तुम्हारे और शत्रुओंके सैनिकोंके एक दूसरे पर तीक्ष्ण बाण छोडने पर तहाँ अँधेरा छागया अतः उनको कुछ नहीं दीखता था ॥ ५ ॥ ६ ॥ भयभीत हुए वहुतसे सैनिक अपने महारथियोंके रथोंमें ही वैठ गए, इस प्रकार चारों ओर बडा अचरजसा होरहा था, पूर्व और पश्चिम दिशाके वायुकी समान कर्ण और अर्जुन एक दूसरे पर अस्त्र मार एक दूसरेके अस्त्रोंको नष्ट करनेलगे उससमय चारोंओर फैलेहुए अंधेरेमें अर्जुन और कर्ण चन्द्रमा और सूर्यसे दीखते थे उससमय यह ध्वनि होरही

परे त्वदीयाश्च तदावतस्थिरे ॥ ८ ॥ महारथौ तौ परिवार्य सर्वतः सुरासुराः शम्बरवासवाविव । मृदङ्गभेरीपणवानकस्वनैः ससिंहनादैर्नदतुर्नरोत्तमौ ॥ ९ ॥ शशाङ्कसूर्याविव मेघनिःस्वनै-र्विरेजतुस्तौ पुरुषर्षभौ तदा । महाधनुर्मण्डलमध्यगावुभौ सुवर्चसौ बाणसहस्ररश्मिनौ ॥ १० ॥ दिधक्षमाणौ सचराचरं जगद् युगा-न्तसूर्याविव दुःसहौ रणे। उभावजेयावहितान्तकावुभावुभौ जिघांसू कृतिनौ परस्परम् ॥ ११ ॥ महाहवे वीतभयौ समीयतुर्महेन्द्रज-म्भाविव कर्णपाण्डवौ । ततो महास्त्राणि महाधनुर्द्धरौ विमुञ्च-मानाविषुभिर्भयानकैः ॥ १२ ॥ नराश्वनागानमितान्निजघ्नतुः

थी कि—कोई योधा रणमेंसे न भागे, यह सुनकर असुर और देवता शम्बरासुरसे युद्ध करतेसमय जैसे शंवरासुर और इन्द्रको घेर कर खडे होगये थे,तैसे ही कौरव और पाण्डवपक्षके सब सैनिक भी कर्ण और अर्जुनको चारों ओरसे घेर कर खडे होगए चन्द्रमा तथा सूर्य मेघकी गड़गड़ाहटके साथ उदय होतेहुए जैसे शोभा पाते हैं, तैसे ही पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और कर्ण भी मृदङ्ग, भेरी, पणव तथा नगाड़ेकी गर्जनाओंके साथ गर्जते हुए वडी शोभा पाने लगे, वड़े भारी धनुषरूपी मण्डलमें रहनेवाले, महातेजस्वी, बाणरूपी सहस्रों किरणोंवाले अर्जुन और कर्ण, प्रलयके समय चराचर जगत्को भस्म करनेकी इच्छावाले दो सूर्योंकी समान रणमें दुःसह होरहे थे, दोनों अजेय थे, दोनों शत्रुओंका नाश करनेवाले थे और दोनों चतुर थे, तथा दोनों एक दूसरेको मारडालना चाहते थे ॥ ७-११ ॥ ऐसे कर्ण और अर्जुन, युद्धमें जम्भासुर और इन्द्रकी समान निडर हो रण करनेके लिये युद्धमें आजुटे और वे दोनों महारथी और हाधनु-र्धर वड़े २ अस्त्र छोड भयानक अस्त्रोंसे असंख्य मनुष्य, हाथी, और घोड़ोंको मारनेलगे,तव सिंहसे मारेजाते हुए जङ्गली जानवरों

परस्परञ्चापि महारथौ नृप । ततो विसस्रुः पुनरर्दिता नरा नरो-
त्तमाभ्यां कुरुपाण्डवाश्रयाः ॥ १३ ॥ सनागपत्त्यश्वरथा दिशो
दश तथा यथा सिंहहता वनौकसः । ततस्तु दुर्योधनभोजसौबलाः
कृपेण शारद्वतसूनुना सह ॥ १४ ॥ महारथाः पञ्च धनञ्जया-
च्युतौ शरैः शरीरान्तकरैरताडयन् । धनूंषि तेषामिषुधीन् हयान्
गजान्रथान् ससूतांश्च धनञ्जयः शरैः ॥ १५ ॥ समं प्रमथ्याशु
परान्समन्ततः शरोत्तमैः द्वादशभिश्च सूतजम् । अथाभ्य-
धावंस्त्वरिता शतं रथाः शतं गजाश्चार्जुनमाततायिनः ॥ १६ ॥
शकास्तुषारा यवनाश्च सादिनः सहैव काम्बोजवरैर्जिघांसवः ।
वरायुधान् पाणिगतैः शरैः सह क्षुरैर्न्यकृन्तन्नपतन् शिरांसि
च ॥ १७ ॥ हयांश्च नागांश्च रथांश्च युध्यतो धनञ्जयः शत्रु-
गणान् क्षितौ क्षिणोत् । ततोंतरीक्षे सुरतूर्यनिस्वनाः ससाधुवादा

की समान कौरव तथा पांडवोंके आश्रयमें रहनेवाले पुरुष, हाथी, घोड़े पैदल और रथ उनके बाणोंसे पीडित हो रणमेंसे दशों दिशामेंको भागने लगे, तब दुर्योधन, कृतवर्मा और शकुनि तथा शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य (और कर्ण) ये पाँच महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर शरीरको पीडित करनेवाले बाण मारनेलगे तब धनञ्जयने बाण मारकर उनके धनुष भाथे, ध्वजा, घोड़े, रथ और सारथीको एक साथ मथडाला और बारह श्रेष्ठ बाण कर्णके मारे, तब शक, तुषार, यवन, और काम्बोजोंके मुख्य २ पुरुष सौ रथ और सौ हाथियों पर बैठ आततायी बन अर्जुन को मारनेकी इच्छासे उस पर चढ़ आये, तब अर्जुनने घोड़े पर हाथी पर, और रथ पर बैठ कर लडतेहुए योधाओंको उनके हाथमेंके शस्त्र और बाणों सहित क्षुरोंसे काटडाला तब उनके शिर भूमिमें गिरनेलगे, अर्जुनने शत्रुओंसे पृथ्वीको पाट दिया यह देख आकाशमें खड़ेहुए देवता हर्षित हो बाजे

हृपितैः समीरिताः ॥१८॥ निपेतुरप्युत्तमपुष्पवृष्टयः सुगन्धिगन्धाः पवनेरिताः शिवाः। तदद्भुतं देवमनुष्यसाक्षिकं समीक्ष्य भूतानि विसिस्मयुर्नृप ॥ १९ ॥ तवात्मजः सूतसुतश्च न व्यथां न विस्मयं जग्मतुरेकनिश्चयौ। अथाब्रवीद्द्रोणसुतस्तवात्मजं करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन् ॥ २० ॥ प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवै-रलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम्। हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित्तथैव भीष्मप्रमुखा महारथाः ॥ २१ ॥ अहं त्ववध्यो मम चापि मातुलः प्रशाधि राज्यं सह पाण्डवैश्चिरम्। धनञ्जयः शाम्यति वारितो मया जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरो भूतहिते सदा रतो वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ ॥ त्वया तु पार्थैश्च कृते च

बजानेलगे और अर्जुनसे शाबास २ कहने लगे ॥ १३—१८ ॥ पवन सुगन्धिको फैलाताहुआ श्रेष्ठ पुष्पोंकी वर्षा करनेलगा, यह अद्भुत कार्य देवता और मनुष्योंके समक्षमें हुआ, यह देख कर प्राणिमात्र विस्मित होगए ॥ १९ ॥ परन्तु एक ही निश्चय पर डटे हुए सूतपुत्र और तुम्हारे पुत्रको इस दृश्यसे न कुछ विस्मय हुआ न कुछ दुःख हुआ, उस समय द्रोणपुत्र अश्व-त्थामा अपने हाथसे दुर्योधनके हाथको दबा उसको समझाता हुआ बोला ॥ २० ॥ कि—हे दुर्योधन ! अब तुम प्रसन्न होओ और पांडवोंके साथ सन्धि कर लो, विरोध बहुत हो चुका, इस विरोध पर अब खाक डालो ब्रह्माकी समान प्रतापी अस्त्र-शास्त्रमें पारंगत गुरुदेव मारेगए तथा महारथी भीष्म आदि मुखिये भी मारे गए ॥ २१ ॥ मैं और मेरे मामा तो अवध्य हैं अतः तू पांडवोंसे सन्धिकर चिरकालतक राज भोग, मेरे कहनेसे अर्जुन शान्त होजायगा और श्रीकृष्ण तो विरोधको चाहते ही नहीं ॥ २२ ॥ और युधिष्ठिर तो सदा प्राणियोंका हित करनेमें ही लिप्त रहते हैं भीम, नकुल और सहदेव भी उनके वशमें हैं,

संविदे प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव ॥ २३ ॥ व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि पार्थिवा निवृत्तयुद्धास्तु भवन्तु सैनिकाः । न चेद्वचः श्रोष्यसि मे नराधिप ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभियुधि ॥ २४॥ इदञ्च दृष्टं जगता सह त्वया कृतं यदेकेन किरीटमालिना । यथा न कुर्याद्बलभिन्न चान्तको न च प्रचेता भगवान्न यक्षराट् ॥२५ ॥ अतोऽपि भूयांश्च गुणैर्धनञ्जयो न चानिवर्तिष्यति मे वचोऽखिलम् । तवानुयात्राञ्च सदा करिष्यति प्रसीद राजेन्द्र शमं त्वमाप्नुहि ॥ २६ ॥ ममापि मानः परमः सदा त्वयि ब्रवीम्यतस्त्वां परमाच्च सौहृदात् । निवारयिष्याम्यथ कर्णमप्यहं यदा भवान् सप्रणयो भविष्यति ॥ २७ ॥ वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणास्तथैव साम्ना च धनेन चार्ज्जितम् । प्रतापतश्चोपनतञ्चतुर्विधं तदस्ति

अतः यदि तुम पांडवोंसे सन्धि कर लोगे तो प्रजाओंका कल्याण होगा ॥ २३ ॥ बाकी बचे बांधव अपने २ नगरोंको चले जाएंगे और सैनिक भी युद्धसे निवृत्त हो जावेंगे, हे राजन् ! यदि तुम मेरे वचन पर ध्यान नहीं दोगे पीछेसे युद्धमें शत्रुओंसे मारे जाकर सन्ताप करोगे ॥ २४ ॥ अकेले अर्जुनने जो पराक्रम दिखाया वह तुमने और सारे जगत्ने देख लिया ऐसा पराक्रम तो इन्द्र, यमराज, ब्रह्मा और कुबेर भी नहीं कर सकते ॥२५॥ अर्जुनमें बहुतसे गुण हैं अतः वह मेरी सब बातोंका विरोध नहीं करेगा और सदा तुम्हारे अनुकूल रहेगा, हे राजेन्द्र ! अब तुम प्रसन्न होओ और पांडवोंसे सन्धि कर शान्ति स्थापित करो २६ और मैं भी तुम्हारे ऊपर बड़ा घमण्ड रखता हूँ अतः मैं तुमसे गाढ़ी मित्रता होनेके कारण सन्धि करनेके लिये कहता हूँ यदि तुम्हारा सन्धि करनेका विचार हो तो मैं कर्णको युद्ध करनेसे रोकदूँ २७ हे वीर! विचक्षण चार प्रकारके मित्र बतलाते हैं १ सहज मित्र २ सन्धि कर बनाया हुआ मित्र ३ धनसे अपनाया हुआ

सर्वं तव पाण्डवेषु च ॥ २८ ॥ निसर्गतस्ते तव वीर बान्धवाः
पुनश्च साम्ना समवाप्नुहि प्रभो । त्वयि प्रसन्ने यदि मित्रतां
गते । हितं कृतं स्याज्जगतस्त्वयातुलम् ॥ २९ ॥ स एवमुक्तः
सुहृदा वचो हितं विचिन्त्य निःश्वस्य च दुर्मनाब्रवीत् । यथा भवा-
नाह सखे तथैव तन्ममापि विज्ञापयतो वचः शृणु ॥ ३० ॥ निहत्य
दुःशासनमुक्तवान् वचः प्रसह्य शार्दूलवदेष दुर्मतिः । वृकोदरस्तद्
धृदये मम स्थितं त्वत्परोक्षं भवतः कुतः शमः ॥ ३१ ॥ न
चापि कर्णं प्रसहेद्रणेऽर्जुनो महागिरिं मेरुमिवोग्रमारुतः । न चाश्व-
सिष्यन्ति पृथात्मजा मयि प्रसह्य वैरं बहुशो विचिन्त्य ॥ ३२ ॥
न चापि कर्णं गुरुपुत्र संयुगादुपारमेत्यर्हसि वक्तुमच्युत । श्रमेण

मित्र, ४ प्रताप देख कर शरणागत हुआ मित्र, सो पाण्डवोंमें ये चारों बातें हैं।२८।हे वीर!वे स्वाभाविक रीतिसे तुम्हारे बान्धव हैं, और अब उनसे सन्धिकर तुम उनको मित्र बनालो यदि तुम प्रसन्न होकर पांडवोंसे सन्धि करोगे, तो तुमने जगत्का बडा भारी हित किया, यह समझा जायगा ॥ २९ ॥ मित्र अश्वत्थामाकी बात सुन दुर्योधनने साँस खेंचा और कुछ विचारकर मनमें खिन्न हो बोला कि-हे मित्र ! तुम जैसा कहते हो वह सब ठीक है परन्तु मैं जो कुछ बताता हूँ उसको भी सुनो ॥ ३०॥ दुःशासनको मारनेके पीछे इस दुर्मति भीमसेनने सिंहकी समान बलपूर्वक जो बात कही है, वह हृदयमें खटकती है वह बात कुछ तुम्हारे पीछे नहीं कही थी अतः मुझे शांति कैसे मिलसकती है ॥३१॥ आँधी जैसे पर्वतको न सह टुकड़े २ होजाती है,ऐसे ही अर्जुनभी कर्णसे टक्कर नहीं ले सकेगा, और पृथाके पुत्र हमारे साथ बहुत बार हुए वैरका विचार कर हमारा विश्वास भी नहीं करेंगे ॥ ३२ ॥ हे गुरुपुत्र ! तुमको कर्णसे" युद्ध बन्द करो" यह कहना भी उचित नहीं है इस समय अर्जुन बहुत थकगया है

युक्तो महताद्य फाल्गुनस्तमेष कर्णः प्रसभं हनिष्यति ॥ ३३ ॥ तमेवमुक्त्वाप्यनुनीय चासकृत् तवात्मजः स्वाननुशास्ति सैनिकान्। समाहिताभिद्रवताहितानिमान् सवाणहस्ताः किमु जोषमासत ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामवाक्ये
अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

संजय उवाच। तौ शंखभेरीनिनदे समृद्धे समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ। वैकर्त्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन् १ यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ प्रवृद्धदन्ताविव वासितार्थे। तथा समाजग्मतुरुग्रवेगौ धनञ्जयश्चाधिरथिश्च वीरौ ॥ २ ॥ वलाहकेनेव यथा वलाहको यदृच्छया वा गिरिणा गिरिर्यथा। तथा धनुर्ज्यातलनेमिनिःस्वनैः समीयतुस्ताविषुवर्षवर्षिणौ ॥३॥ प्रवृद्धशृङ्ग-

---

अतः कर्ण उसे बलपूर्वक मारडालेगा ॥ ३२ ॥ अश्वत्थामासे इस प्रकार कह उसको वहुतसी सत्कार भरी वातोंसे समझाकर अपने सैनिकोंसे कहनेलगा कि—अरे हाथमें वाण लिये क्यों चुपचाप खड़े हो शत्रुओं पर दौडो और उनको मारो ॥३३॥ अठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥

सञ्जयने कहा कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! जव तुम्हारे पुत्रकी खोटी सलाहके कारण शंख और भेरियोंका शब्द वढता ही चला गया उस समय श्वेत घोड़ों वाले मनुष्योंमें श्रेष्ठ वैकर्त्तन कर्ण और अर्जुन रण करनेके लिये आ जुटे ॥ १ ॥ हिमाचलमें उत्पन्न हुए मद वरसानेवाले वड़े दाँतोंवाले हाथी जैसे ऋतुमती हथिनीके लिये लडनेको तयार होजायँ तैसे ही भयङ्कर पराक्रमी वीर धनञ्जय और सूतपुत्र रणके लिये आजुटे २ मेघ जैसे मेघसे टकरावे और अपनी इच्छासे जैसे पर्वत पर्वतसे टकरावे तैसे ही वे वाणोंकी वौछार करनेवाले दोनों व्यक्ति

द्रुमवीरुधौषधी प्रवृद्धनानाविधनिर्झरौकसौ । यथाचला वा चलितौ महाबलौ तथा महास्त्रैरितरेतरं घ्नतुः ॥ ४ ॥ स सन्निपातस्तु तयोर्महानभूत् सुरेशवैरोचनयोर्यथा पुरा । शरैर्विभिन्नाङ्गनियन्तृवाहयोः सुदुःसहोऽन्यैः कटुशोणितोदकः ॥ ५ ॥ प्रभूतपद्मोत्पलमत्स्यकच्छपौ महाह्रदौ पक्षिगणैरधिष्ठितौ । सुसन्निकृष्टावनिलोद्धतौ यथा तथा रथौ तौ ध्वजिनौ समीयतुः ॥ ६ ॥ उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमावुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ । महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकैर्महेन्द्रवृत्राविव संप्रजघ्नतुः ॥ ७ ॥ सनागपत्त्यश्वरथे उभे बले विचित्रवर्माभरणाम्बरायुधे । चकम्पतुर्विस्मयनीयरूपे वियद्गताश्चार्जुनकर्णसंयुगे ॥८॥ भुजाः सवस्त्राङ्गुलयः समुच्छ्रिताः

धनुषकी प्रत्यञ्चा और रथकी नेमिका शब्द करते हुए आ डटे॥३॥ऊँचे २ शिखर,पेड़ लता और औषधि वाले तथा अनेक झरनेवाले दो पर्वत जैसे आपसमें लड़ें तैसे ही महाबली कर्ण और अर्जुन एक दूसरेको बाणोंसे मारनेलगे ॥ ४ ॥ पहिले इन्द्र और राजा बलिमें जैसा युद्ध हुआ था तैसा ही बड़ा भारी युद्ध अर्जुन और कर्णमें होनेलगा बाणोंकी मारसे रथी सारथी और घोड़ोंके अंग घायल होगए और उस अतीव दुःसह युद्धमें रुधिरका कटु प्रवाह बहने लगा ॥५॥ जिनके किनारों पर बहुतसे पक्षी बैठे हों तथा जिनमें बहुतसे कमल उत्पल मछली और कछुए हों ऐसे दो बड़े २ सरोवर जैसे आँधी चलने पर पास २ हो जायँ तैसे ही ध्वजावाले वे रथी भी एक दूसरेके सामने आडटे ॥ ६ ॥ वे दोनों इन्द्रकी समान पराक्रमी थे, वे दोनों महारथी इन्द्रकी समान थे और वे महेन्द्रकी समान बाणोंसे एक दूसरेको वृत्रासुर और इन्द्रकी समान मारने लगे॥७॥अर्जुन और कर्णको संग्राम छिड़नेके समय हाथी घोड़े पैदल और रथोंवालीं और विचित्र कवच आभूषण वस्त्र और आयुध धारण करनेवालीं

सर्सिहनादैह् पितैर्दिद्दत्तुभिः । यदर्जुनं मत्तमिव द्विपो द्विपं समभ्य-
यादाधिरथिर्जिघांसया ॥ ९ ॥ उदक्रोशन् सोमकास्तत्र पार्थं
पुरःसराश्चार्जुन भिन्धि कर्णम् । छिन्ध्यस्य मूर्द्धानमलञ्चिरेण
श्रद्धाञ्च राज्याद् धृतराष्ट्रसूनोः ॥ १० ॥ तथास्माकं बहवस्तत्र
योधाः कर्णं तदा याहि याहीत्यवोचन् । जह्यर्जुनं कर्ण शरैः
सुतीक्ष्णैः पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः ॥ ११ ॥ तथा कर्णः
प्रथमं तत्र पार्थं महेषुभिर्दशभिः प्रत्यविध्यत् । तमर्जुनः प्रत्यवि-
ध्यच्छिताग्रैः कक्षान्तरे दशभिः सम्प्रहस्य ॥ १२ ॥ परस्परं तौ
विशिखैः सुपुङ्खैस्ततक्षतुः सूतपुत्रोर्जुनश्च।परस्परन्तौ विभिदुर्विमर्दे
सुभीममभ्यापततुश्च हृष्टौ ॥ १३ ततोर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा

वे दोनों सेनाएँ और आकाशमें स्थित व्यक्ति भी काँप उठे८ जब अर्जुन कर्णको मारनेकी इच्छासे,मदमत्त हाथी जैसे दूसरे मतवाले हाथीपर झपटे, तैसे जब कर्णपर झपटा तब दर्शक लोग हर्षसे सिंहगर्जन कर अँगुलियोंसे अगोछेको पकड़ हाथसे अँगोछे उड़ाने लगे ॥ ९ ॥ अर्जुनके आगे चलने वाले सोमकराजे चिल्लाने लगे कि–हे अर्जुन ! कर्णको छेद भेद डालो, इसके शिरको काट डालो अब देर मत लगाओ और धृतराष्ट्रके पुत्रकी राज्यकी आशाको भी इसके साथही समाप्त करदो ॥ १० ॥ उसी प्रकार हमारे भी बहुतसे योधा कर्णसे कहने लगे कि–अर्जुनकी ओर झपटिये २ ! हे कर्ण ! तुम शीघ्रतासे अर्जुनको मारडालो, जिससे पाण्डव बहुत कालके लिये फिर वनमें भाग जाय ।११। तब पहिले कर्णने दश बढ़िया बाणोंसे अर्जुनको वींध डाला, तब अर्जुन हँसा और उसने कर्णकी कोखमें तीक्ष्ण बाण मारे ॥ १२ ॥ सूतपुत्र और पृथापुत्र हर्षमें भर एक दूसरे पर चढ़ने लगे एक दूसरेको तीक्ष्ण बाणोंसे बींधने लगे और उस भयंकर संग्राममें एक दूसरेको वेगसे भोंकने लगे ॥ १३ ॥ इतनेमें

भुजावुभौ गाण्डिवञ्चानुमृज्य । नाराचनालीकवराहकर्णान् क्षुरां-
स्तथा साञ्जलिकार्द्धचन्द्रान् ॥ १४ ॥ ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन्
पार्थेषवः कर्णरथं विशन्तः । अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते
विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षम् ॥१५॥ यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्षः
कर्णाय राजन्नसृजिज्जितारिः । तान् सायकैर्ग्रसते सूतपुत्र क्षिप्तान्
क्षिप्तान् पाण्डवस्याशु संघान् ॥१६॥ ततोऽस्त्रमाग्नेयममित्रसाधनं
मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः । भूम्यन्तरीक्षे च दिशोर्कमार्गं प्रावृत्य
देहोऽस्य वभूव दीप्तः ॥ १७ ॥ योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं
प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः । शब्दश्च घोरोतिवभूव तत्र यथा वने
वेणुवनस्य दह्यतः ॥१८॥ तद्वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुग्रतं स वारुणं

ही भयंकर धनुषवाला अर्जुन अपनी भुजा और धनुषको ठीक कर कर्णके ऊपर नाराच, नालीक, वराहकर्ण, क्षुर, अञ्जलिक और अर्धचन्द्र नामक वाणोंकी झड़ी लगाने लगा ॥ १४ ॥ हे राजन् ! सायंकालके समय पक्षी जैसे वसेरा करनेके लिये नीचेको मुखकर अपने २ घोसले या वृक्षमें घुसते हैं, तैसेही अर्जुनके छोड़े हुए वाण उस समय नीचा मुखकर चारों ओरसे कर्णके रथमें घुसने लगे ॥ १५ ॥ शत्रुओंका पराजय करनेवाला अर्जुन भ्रकुटि चढ़ा तिरछी आँखसे देखकर कर्णके ऊपर जो २ वाण छोड़ता था उस २ वाणका ही सूतपुत्र कर्ण वाण मारकर नष्टकर डालता था ॥ १६ ॥ तदनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुनने शत्रुको वशमें करनेवाला अग्न्यस्त्र कर्णपर छोड़ा, उसने पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिशा और सूर्यके मार्गको रोक दिया और वह चारों ओर फैल गया ॥ १७ ॥ उस समय सब योधाओंके वस्त्र सुलग उठे और वे रणमेंसे भागने लगे, उस समय जंगलमें वलते हुए वाँसोंकेसा भयंकर चटाचट शब्द होने लगा १८ प्रतापी कर्णने अग्न्यस्त्रको अपने सामने आता देख उसको शान्त करनेके लिये वारुणास्त्र

तत्प्रशमार्थमाहवे । समुत्सृजन् सूतसुतः प्रतापवान् स तेन वन्हि शमयाम्बभूव ॥ १९ ॥ बलाहकौघश्च दिशस्तरस्वी चकार सर्वास्तिमिरेण संवृताः । ततो धरित्रीधरतुल्यरोधसः समन्ततो वै परिवार्य वारिणा ॥ २० ॥ तैश्चापि वेगात् स तथाविधोपि नीतः शमं वन्हिरतिप्रचण्डः । बलाहकैरेव दिगन्तराणि व्याप्तानि सर्वाणि तथा नभश्च २१ तथा च सर्वास्तिमिरेण वै दिशो मेघैर्वृता न प्रदृश्येत किञ्चित् । अथापोवाह्याभ्रसंघान् समस्तात् वायव्यास्त्रेणापततः स कर्णात् ॥२२॥ ततोऽप्यस्त्रं दयितं देवराज्ञः प्रादुश्चक्रे वज्रममितप्रभावम् । गाण्डीवं ज्यां विशिखांश्चानुमन्त्र्य धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ २३ ॥ ततः क्षुरप्राञ्जलिकार्द्धचन्द्रा नालीकनाराचवराहकर्णाः । गाण्डीवतः प्रादुरासन् सुतीक्ष्णाः सहस्रशो वज्रसमानवेगाः ॥ २४ ॥ ते कर्णमासाद्य महाप्रभावाः सुतेजना

छोड़ा तब अग्न्यस्त्र शान्त होगया ॥ १९ ॥ और मेघकी घटाओंने शीघ्रतासे आ पर्वतोंकी तलैटीकी सब दिशाओंको पानीसे भरदिया और अँधेरा ही अँधेरा करदिया ॥ २० ॥ तब अग्न्यस्त्रका महाप्रचण्ड अग्नि उससे शान्त होगया और मेघोंने आकाशकी समान सब दिशाओंको घेरलिया ॥ २१ ॥ जिस समय अन्धकारसे तथा मेघमण्डलोंसे दिशायें घिरगईं उस समय कुछ भी नहीं दीखता था, इसके अनन्तर अर्जुनने कर्णकी ओरसे अपने सामनेको आतेहुए वारुणास्त्रको वायव्य अस्त्र मारकर शान्त कर दिया ॥ २२ ॥ जिसको शत्रु दबा नहीं सकते थे ऐसे अर्जुनने गाण्डीवधनुष, उसकी प्रत्यञ्चा तथा बाणोंको इन्द्रके दियेहुए मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके इन्द्रके प्यारे और बड़े प्रभाववाले वज्रको प्रकट किया ॥ २३ ॥ तब तो गाण्डीव धनुषमेंसे अनेकों क्षुरप्र, अञ्जलिक, अर्धचन्द्र,नालीक,नाराच और वराहकर्ण अस्त्र छूटनेलगे, वे बड़ेही तीखे और वेगवाले थे ॥ २४ ॥ महाप्रभाव-

गार्द्धपत्राः सुवेगाः । गात्रेषु सर्वेषु हयेषु चापि शरासने युगचक्रे ध्वजे च ॥ २५ ॥ निर्भिद्य तूर्णं विविशुः सुतीक्ष्णास्तार्क्ष्यत्रस्ता भूमिमिवोरगास्ते। शराचिताङ्गो रुधिरार्द्रगात्रः कर्णस्तदा रोषविवृत्तनेत्रः ॥ २६ ॥ दृढज्यमानाम्य समुद्रघोषं प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा । महेन्द्रशस्त्राभिमुखान् विमुक्तान् छित्वा कर्णः पाण्डवस्येषुसंघान् ॥२७॥ तस्यास्त्रमस्त्रेण निहत्य सोऽथ जघान संख्ये रथनागपत्तीन् । अमृष्यमाणस्तु महाविमर्दे महारथो भार्गवास्त्रप्रभावात् ॥ २८ ॥ पञ्चालानां प्रवरांश्चापि योधान् क्रोधाविष्टः सूतपुत्रस्तरस्वी । बाणैर्विव्याधाहवे सुप्रयुक्तैः शिलाशितैः रुक्मपुंखैः प्रसह्य ॥ २९ ॥ ततः पञ्चालाः सोमकाश्चापि राजन्

शाली बडे तेज, गिद्धके परोंवाले और बडे ही वेगवान् बाणोंने कर्णके सकल अङ्ग, घोडे, धनुष, दोनों पहिये और ध्वजाको बींधडाला ॥ २५ ॥ जैसे गरुडसे घबडायेहुए सर्प शीघ्रतासे पृथिवीमें घुसजाते हैं तैसेही वे बाण शीघ्रतासे कर्णके और उसके घोड़ोंके शरीरोंमें घुसगये, उस समय कर्णका शरीर बाणोंसे बिंधगया, लोहूलुहान होगया और क्रोधके कारण उसकी आँखें फिरगयीं ॥ २६ ॥ उसने दृढ़ प्रत्यञ्चावाला और समुद्रकी समान गर्जना करनेवाला भार्गव अस्त्र प्रकट किया, और अर्जुनने माहेन्द्र अस्त्र मारकर जो जो बाण प्रकट किये थे उनके टुकडे२ करडाले॥ २७ ॥ इन्द्रकी समान पराक्रमी कर्ण अर्जुनके प्रहारको सह नहीं सका, परन्तु परशुरामके दियेहुए भार्गवास्त्रके प्रतापसे अर्जुनके माहेन्द्र अस्त्रका नाश करके उसके रथी, हाथी और पैदलोंको मारडाला ॥ २८ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए सूतपुत्र कर्णने वेगमें आकर सोनेके परोंवाले और सानपर तेज कियेहुए बाण मारकर पञ्चालदेशके बडे२ योधाओंको युद्धमें घायल कर दिया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! कर्णने रणमें बाण मारकर पंचाल

कर्णेनाजौ पीड्यमानाः शरौघैः । क्रोधाविष्टा विविधुस्तं समन्तात् तीक्ष्णैर्बाणैः सूतपुत्रं समेताः ॥३०॥ तान् सूतपुत्रो निजघान बाणैः पञ्चालानां रथनागाश्वसंघान् । अभ्यर्दयद्बाणगणैः प्रसह्य विध्वा हर्षात् समरे सूतपुत्रः ॥३१॥ ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः । क्रुद्धेन सिंहेन यथैव नागा महाबला भीमबलेन तद्वत् ॥ ३२ ॥ पञ्चालानां प्रवरान् सन्निहत्य प्रसह्य योधानखिलानदीनः । ततः स राजन् विरराज कर्णो यथाम्बरे भास्कर उग्ररश्मिः ॥ ३३ ॥ कर्णस्य मत्वा तु जयं त्वदीयास्तलान्निजघ्नः सिंहनादांश्च चक्रुः । सर्वे ह्यमन्यन्तभृशाहतौ च कर्णेन कृष्णाविति कौरवेन्द्र ॥ ३४ ॥ तत्तादृशं प्रेक्ष्य महारथस्य कर्णस्य

और सोमक योधाओंको पीड़ित करडाला तब वे क्रोधमें भर इकट्ठे होकर चारों ओरसे कर्णके तीखे बाण मारने लगे । ३० । तब कर्णभी हर्षमें भरगया और युद्धमें पराक्रम दिखाता हुआ बाण मारकर पंचालोंके रथी, हाथी और घुडसवारोंके दलोंका संहार करने लगा ॥ ३१ ॥ तब वे कर्णके बाणोंके प्रहारोंसे छिन्न भिन्न हो चीखें मारते हुए प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिरने लगे, जैसे बड़ेभारी वनमें कोपमें भराहुआ सिंह हाथियोंकी धाँगोंका संहार करडालता है तैसेही कर्णने भी भयानक पराक्रम करके शत्रुओंका संहार करडाला ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उदार पराक्रमी कर्ण ऊपर कहे अनुसार पञ्चालराजके बड़े२ योधाओंका नाश करके जैसे प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य आकाशमें दिपता है तैसेही रणमें दिपने लगा ॥ ३३ ॥ हे कौरवेन्द्र ! कर्णके इस महापराक्रमको देखकर तुम्हारे पुत्र 'कर्णकी विजय होगयी' यह मान बैठे और बड़े हर्षमें भरकर सिंहकी समान गर्जनायें करनेलगे तथा वे सब अपने मनमें यह भी समझने लगे, कि-कर्णने कृष्ण और अर्जुनको खूबही घायल किया है । ३४ ।

वीर्यन्तु परैरसह्यम् । दृष्ट्वा च कर्णेन धनञ्जयस्य संग्राममध्ये विहतं तदस्त्रम् ॥ ३५ ॥ ततस्त्वमर्षी क्रोधसंदीप्तनेत्रो वातात्मजः पाणिना पाणिमाच्छ्रत् । भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसन्धममर्षितो निश्वसन् जातमन्युः ॥ ३६ ॥ कथन्नु पापोऽयमपेतधर्मः सूतात्मजः समरेऽद्य प्रसह्य । पञ्चालानां योधमुख्याननेकान्निजघ्निवांस्तव जिष्णो समक्षम् ॥ ३७ ॥ पूर्वं देवैरजितं कालकेयैः साक्षात् स्थाणोर्बाहुसंस्पर्शमेत्य । कथं नु त्वां सूतपुत्रः किरीटिन्नर्येषुभिर्दशभिः प्रागविध्यत् ॥ ३८ ॥ त्वया क्षिप्तानग्रसद्बाणसंघानाश्चर्यमेतत् प्रतिभाति मेऽद्य । कृष्णापरिक्लेशमनुस्मर त्वं यच्चाब्रवीत् षण्ढतिलान् स्म वाचः ।३९।रूक्षाः सुतीक्ष्णाश्च हि पापबुद्धिः सूतात्मजोऽयं गतभीर्दुरात्मा । संस्मृत्य तत् सर्वमिहाद्य पापं जह्याशु कर्णं युधि

जिसको शत्रु न सहसकें ऐसे महारथी कर्णके पराक्रमको देखकर तथा युद्धमें कर्णने अर्जुनके अस्त्रके टुकड़े करडाले, यह भी देख कर शत्रुओंको न सहनेवाले भीमकी आँखें क्रोधके मारे लाल२ होगयीं, उसके शरीरमें क्रोध भरगया और वह दोनों हाथोंको रगड़ता तथा लम्बे२ सांस छोड़ताहुआ सत्यप्रतिज्ञावाले अर्जुनसे कहनेलगा, कि- ॥३५॥३६॥ हे अर्जुन ! आज इस धर्मत्यागी कर्णने रणभूमिमें तेरे सामने पंचालोंके मुख्य २ योधाओंको कैसे मारडाला ? ॥३७॥ हे किरीटी ! पहले देवता भी तेरा पराजय नहीं करसके थे और कालकेय नामके राक्षसोंको भी तूने रणमें जीतलिया था तथा तूने साक्षात् महादेवके साथ बाहुयुद्ध किया था तो भी कर्णने तेरे पहले दश बाण मारकर कैसे बींधडाला ?३८ तूने कर्णके बाण मारे उनको उसने काटडाला, यह देखकर आज मुझे आश्चर्य होरहा है, हे अर्जुन ! इस दुष्टात्मा और पापबुद्धि वाले कर्णने निर्भय होकर द्रौपदीको दुःख दिया था, हमको निष्फल तिलोंकी समान पंढ कहा था तथा बड़ेही तीखे और कठोर वचन कहे थे उन सब बातोंको याद करके इस समय

सव्यसाचिन् ॥ ४० ॥ कस्मादुपेक्षां कुरुषे किरीटिन्नुपेक्षितुं नायमिहाद्य कालः। यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषीर्ग्रासं ददद्वह्नये खाण्डवे त्वम् ॥ ४१ ॥ तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्वमहञ्चैनं गदया पोथयिष्ये। अथाब्रवीद्वासुदेवोपि पार्थं दृष्ट्वा रथेषून् प्रतिहन्यमानान् ॥ ४२ ॥ अमीमृदत् सर्वपातेह कर्णो ह्यस्त्रैरस्त्रं किमिदं भोः किरीटिन्। स वीर किं मुह्यसि नावधत्से नदन्त्येते कुरवः संप्रहृष्टाः ॥ ४३ ॥ कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे तवास्त्रमस्त्रैर्विनिपात्यमानम्। यया धृत्या निहतं तामसास्त्रं युगे युगे राक्षसाश्चापि घोराः ॥ ४४ ॥ दम्भोद्भवाश्चासुराश्चाहवेषु तया धृत्या जहि कर्णं त्वमद्य। अनेन चास्य क्षुरनेमिनाद्य संछिन्धि

शीघ्रही युद्धमें कर्णका नाश कर ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे अर्जुन ! तू कर्णकी उपेक्षा क्यों कररहा है ? यह अवसर उपेक्षा करनेका नहीं है तूने पहले जिस धीरजको धारण करके खाण्डव वनमें अग्निको वलि देतेहुए सब प्राणियोंका पराजय किया था, उसही धैर्यसे अब भी कर्णका नाशकर , मैं भी गदा मारकर उसका भुरकस करडालूँगा, तदनन्तर श्रीकृष्णभी अर्जुनके रथ और बाणोंका कर्णने नाश करडाला, यह देखकर अर्जुनसे कहने लगे, कि–हे किरीटी ! आज कर्ण अस्त्रों पर अस्त्र मारकर तेरे अस्त्रोंका नाश करेडालता है, इसका क्या कारण है ? हे वीर ! तू भौचक्कासा क्यों होरहा है ? ये कौरव हर्षमें भरेहुए गरज रहे हैं, उनकी ओरको तू ध्यान क्यों नहीं देता ?॥४१-४३॥सब कौरव कर्णको आगे करे खड़े हैं, वे जानते हैं, कि–कर्ण अपने अस्त्रसे तेरे अस्त्रका नाश करडालता है, इसलिये हे अर्जुन ! तूने जिस धीरजसे पहले तामसास्त्रका नाश किया था, हरएक युग में भयानक राक्षसोंका नाश किया था और दम्भोद्भव नामक असुरोंको युद्धमें मारा था, तैसेही धैर्यको धारण करके तू आज

मूर्द्धानमरेः प्रसह्य ॥ ४५ ॥ मया विसृष्टेन सुदर्शनेन वज्रेण शक्रो नमुचेरिवारेः । किरातरूपी भगवान् स्वधृत्या यया महात्मा परितोपितोभूत् ॥ ४६ ॥ तां त्वं धृतिं वीर पुनर्गृहीत्वा सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम् । ततो महीं सागरमेखलां त्वं सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम् ॥ ४७ ॥ प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसंघां यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम् । स एवमुक्तोतिबलो महात्मा चकार बुद्धिं हि वधाय सौतेः ॥ ४८ ॥ स चोदितो भीमजनार्दनाभ्यां स्मृत्वा तथात्मानमवेद्य सर्वम् । इहात्मनश्चागमने विदित्वा प्रयोजनं केशवमित्युवाच ॥ ४९ ॥ प्रादुष्करोम्येप महास्त्रमुग्रं शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः । तन्मेऽनुजानातु भवान् सुराश्च ब्रह्मा भवो ब्रह्मविदश्च

कर्णका नाश कर, इन्द्रने मेरे दियेहुए सुदर्शन चक्रसे जैसे नमुचि नामवाले शत्रुका शिर काटडाला था तैसेही तू भी आज इस क्षुरनेमि नामके अस्त्रको मारकर कर्णके शिरको काटडाल ४४-४५ और हे वीर ! तूने जिस धैर्यको धारण करके भिल्लरूपधारी महात्मा शङ्करको प्रसन्न किया था, उसही धैर्यको फिर धारण करके तू परिवारसहित कर्णका नाश कर और फिर समुद्र जिसकी मेखला है ऐसी ग्राम और नगरोंवाली, शत्रुरहित सम्पदा भरी पृथिवी राजा युधिष्ठिरको अर्पण करके अतुल यश प्राप्त कर, इसप्रकार भीमने तथा श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, तब महाबली अर्जुनने कर्णका नाश करनेके लिये विचार किया ४६-४८ भीम तथा श्रीकृष्णके ऐसा कहने पर उसने अपने स्वरूपको तथा कामको देखा और यहाँ मैं किस लिये आया हूँ, उस प्रयोजनको समझकर केशव भगवान्से कहा, कि-॥ ४९ ॥ मैं लोकोंके कल्याणके लिये तथा कर्णका वध करनेके लिये महा उग्र अस्त्रको प्रकट करता हूँ इसलिये हे कृष्ण ! तुम देवता, ब्रह्मा, शिव तथा वेदवेत्ता सब ऋषि मुझे आज्ञा दो ॥ ५० ॥ ऐसा परमात्मासे

सर्वे ॥ ५० ॥ इत्युच्य देवं स तु सव्यसाची नमस्कृत्वा ब्रह्मणे
सोऽमितात्मा । तदुत्तमं ब्राह्ममसह्यमस्त्रं प्रादुश्चक्रे मनसा यद्विधे-
यम् ॥ ५१ ॥ तदस्य हत्वा विरराज कर्णो मुक्त्वा शरान्मेघ इवा-
म्बुधाराः । समीक्ष्य कर्णेन किरीटिनस्तु तथाजिमध्ये निहतं तद-
स्त्रम् ॥ ५२ ॥ ततोऽमर्षी बलवान् क्रोधदीप्तो भीमोऽब्रवीदर्जुनं
सत्यसन्धम् । ननु त्वाहुर्वेदितारं महास्त्रं ब्राह्मयं विधेयं परमं जना-
स्तत् ॥ ५३ ॥ तस्मादन्यद्योजय सव्यसाचिन्निति स्मोक्तोऽयोज-
यत् सव्यसाची । ततो दिशश्च प्रदिशश्च सर्वाः समावृणोत् साय-
कैर्भूरितेजाः ॥५४॥ गाण्डीवमुक्तैर्भुजगैरिवोग्रैर्दिवाकरांशुप्रतिमैर्ज्व-
लद्भिः । सृष्टास्तु बाणा भरतर्षभेण शतं शतानीव सुवर्णपुंखाः॥५५
प्राच्छादयत् कर्णरथं क्षणेन युगान्तवन्ह्यर्ककरप्रकाशाः । ततश्च

कहकर अमितात्मा अर्जुनने ब्रह्माजीको प्रणाम करके जिसका प्रयोग मनसे कियाजाता है ऐसे असह्य ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया ५१ परन्तु जैसे मेघ जलकी धारायें बरसाता है तैसेही कर्णने बाणों की वर्षा करके उसके ब्रह्मास्त्रका नाश करडाला और पराक्रमसे दिपने लगा, कर्णने संग्राममें अर्जुनके ब्रह्मास्त्रका नाश करडाला यह देखकर बलवान् भीमको क्रोध आगया और उसने सत्य प्रतिज्ञावाले अर्जुनसे कहा, कि—हे अर्जुन ! सब लोग जानते हैं, कि—जिसका देवता ब्रह्मा है, ऐसे मनसे प्रयोग कियेजानेवाले बड़ेभारी ब्रह्मास्त्रको अर्जुन जानता है, इसलिये हे सव्यसाची ! तू दूसरे अस्त्रसे कामले, ऐसा कहने पर महातेजस्वी अर्जुनने दूसरे अस्त्रको गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया, कि—उसमेंसे सर्पकी समान उग्र, सूर्यकी किरणोंकी समान कान्तिमान् और चमचमाते हुए बाण निकलने लगे, उनसे सब दिशायें और कोने भरगये, तदनन्तर भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुनने प्रलयकालके अग्नि और सूर्यकी किरणोंकी समान कान्तिवान्, सोनेकी पूँछवाले बाण मारकर एक क्षणमें कर्णके रथको ढकदिया, तदनन्तर उसमेंसे और भी

शूलानि परश्वधानि चक्राणि नाराचशतानि चैव ॥ ५६ ॥
निश्चक्रमुर्घोरतराणि योधास्ततो ह्यदृश्यन्त समंततोपि । छिन्नं शिरः
कस्यचिदाजिमध्ये पपात योधस्य परस्य कायात् ॥ ५७ ॥ भयेन
सोप्याशु पपात भूमावन्यः प्रनष्टः पतितं विलोक्य । अन्यस्य
सासिर्निपपात कृत्तो योधस्य बाहुः करिहस्ततुल्यः॥ ५८॥ अन्य-
स्य सव्यः सह वर्मणा च क्षुरप्रकृत्तः पतितो धरण्याम् । एवं
समस्तानपि योधमुख्यान् विध्वंसयामास किरीटमाली ॥ ५९ ॥
शरैः शरीरान्तकरैः सुघोरैर्दौर्योधनं सैन्यमशेषमेव। वैकर्त्तनेनापि
तथाजिमध्ये सहस्रशो बाणगणा विसृष्टाः ॥ ६० ॥ ते घोषिणः
पाण्डवमभ्युपेयुः पर्ज्जन्यमुक्ता इव वारिधाराः । स भीमसेनञ्च
जनार्द्दनञ्च किरीटिनञ्चाप्रतिमप्रभावः ॥ ६१ ॥ त्रिभिस्त्रिभि-

भयानक शूल,फरसे चक्र नाराच आदि सैंकड़ों अस्त्र निकलनेलगे, उनसे चारोंदिशाओंमें खड़े हुए योधा मरनेलगे, युद्धमें किसी योधाका मस्तक कटकर पृथिवी पर गिर पड़ा, उसके मस्तकको नीचे गिरता हुआ देखकर दूसरा योधा डरके मारे एक साथ पृथिवी पर गिरपड़ा, उसको पृथिवी पर गिरता हुआ देखकर दूसरा योधा रणमेंसे भागगया, किसी योधाका हाथीकी शुण्ड की समान हाथ कटकर तलवारके साथ भूमिपर आपड़ा ५२—५८ इतनेमें ही अर्जुनने क्षुर मारकर दूसरे योधाके बायें हाथको ढाल के साथ काटडाला और वह पृथिवी पर गिरपड़ा, इस प्रकार किरीटी अर्जुनने शरीरका नाश करनेवाले महाभयानक बाण मारकर मुख्य २ सब योधाओंका नाश करडाला, इस प्रकार जब दुर्योधनकी सब सेनाका नाश करडाला तो दूसरी ओर कर्णने भी युद्धमें अर्जुनके सामने हजारों बाण छोड़े, वे मेघमेंसे गिरनेवाली जलकी धाराकी समान सर २ करते हुए अर्जुनके पास आनेलगे, अतुलप्रभावशाली और भयानकबली कर्णने

भीमबलो निहत्य ननाद घोरं महता स्वरेण । स कर्णवाणाभिहतः किरीटी भीमं तदा प्रेक्ष्य जनार्दनञ्च ॥ ६२ ॥ अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः शरान् दशाष्टौ च समुद्ववर्ह । स केतुमेकेन शरेण विध्वा शल्यञ्चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम् ॥ ६३ ॥ ततः सुमुक्तैर्दशभिर्ज्जघान सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम् । स राजपुत्रो विशिरा विबाहुर्विवाजिसूतो विधनुर्विकेतुः ॥ ६४ ॥ हतो रथाग्रादपतत् स रुग्णः परश्वधैः शाल इवावकृत्तः । पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विध्वा ॥ ६५ ॥ चतुःशतान् द्विरदान् सायुधान्वै हत्वा रथानष्टशतं जघान । सहस्रमश्वांश्च पुनः स सादीनष्टौ सहस्राणि च पत्तिवीरान् ॥ ६६ ॥ कर्णं ससूतं सर-

---

कृष्ण, अर्जुन और भीमके तीन २ वाण मारकर महाभयानक गर्जनाकी, कर्णके वाणोंसे बींधाहुआ अर्जुन, भीम तथा कृष्णको भी घायल हुआ देखकर कर्णको सह नहीं सका, उसने फिर गांडीव धनुषमेंसे अठारह वाण छोड़े, उनमेंके एक वाणसे कर्णके ध्वजदण्डको वींध दिया, चार वाणोंसे शल्यको और तीन वाणोंसे कर्णको वींधडाला, फिर शेष दस वाण सोने का कवच पहरकर रथमें वैठेहुए सभापतिके मारकर उसका मस्तक, भुजा, धनुष, ध्वजा, रथके घोड़े तथा सारथी उन सबों का नाश करडाला और प्राणहीन हुआ राजपुत्र सभापति कुल्हाड़ीसे काटेहुए सालके वृक्षकी समान रथकी बैठक परसे रणभूमि में गिरपड़ा और तदनन्तर तीन, आठ, दो, चार, और दशवाण ऊपर तले मारकर शस्त्रधारी सवार योधाओंके साथ चार सौ हाथी, आठसौ रथ, घुड़सवारों सहित एक हजार घोड़े और आठ हजार पराक्रमी पैदलोंको मारडाला और वेगके साथ जानेवाले वाणोंकी मारसे घोड़े, रथ तथा सारथियों सहित कर्णको ढक दिया और फिर कौरवोंका संहार करनेलगा, तब कौरव रणमें

थाश्वकेतुमदृश्यमञ्जोगतिभिश्च चक्रे । ततः क्रोशन् कुरवो वध्यमाना धनञ्जयेनाधिरथिं समन्तात् ॥ ६७ ॥ विमुञ्च बाणान् जहि पाण्डुपुत्रं बाणैः पुरा हन्ति कुरून् समग्रान् । स चोदितः सर्वयत्नेन कर्णो मुमोच बाणान् सुबहूनभीक्ष्णम् । ते पाण्डुपांचालगणान्निजघ्नुर्मर्मच्छिदः शोणितपांसुदिग्धाः ॥ ६८ ॥ तावुत्तमौ सर्वधनुर्द्धराणां महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ ॥ ६९ ॥ निजघ्नतुश्चाहितसैन्यमुग्रावन्योन्यमप्यस्त्रविदौ महास्त्रैः। अथोपयातस्त्वरितोदिदृक्षुर्मन्त्रौषधिभ्यां विरुजो विशल्यः ७० कृतः सुहृद्भिर्भिषजां वरिष्ठैर्युधिष्ठिरस्तत्र,सुवर्णवर्मा । तथोपयातं युधि धर्मराजं दृष्ट्वा मुदा सर्वभूतान्यनन्दन् ॥ ७१ ॥ राहोर्विमुक्तं विमलं समग्रं चन्द्रं यथैवाभ्युदितं तथैव । दृष्ट्वा तु मुख्यावथ युध्यमानौ दिदृक्षवः

चीखें मारते हुए चारों ओरसे कर्णको पुकार २ कर कहने लगे, कि-तुम बाण छोड़कर शीघ्रही अर्जुनको मारो, नहीं तो तुमसे पहले वह सब कौरव योधाओंका संहार करडालेगा, इस प्रकार कौरवोंके प्रेरणा करनेपर कर्ण यथाशक्ति सबप्रकार उद्योग करके तले ऊपर बहुतसे बाण छोड़नेलगा ॥ ५९-६८ ॥ वे मर्मस्थानों को तोड़ डालनेवाले बाण पांडव और पंचाल योधाओंका नाश करके लोहूलुहानहो.धूलिमें सनगये, कर्ण और अर्जुन सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, महाबली और सब शत्रुओंके संहारकर्त्ता थे ६९ वे दोनों अस्त्रके ज्ञाता आपसमें बड़े२ अस्त्रोंको छोड़कर शत्रुओंकी भयानक सेनाका संहार करनेलगे, इतनेमेंही बड़े २ स्नेही वैद्योंने मंत्र और औषधियोंका उपचार करके राजा युधिष्ठिरके शरीरमेंसे शल्य निकाल उनको चङ्गा करदिया, वह शरीर पर सोनेका कवच पहरकर बड़ी शीघ्रतासे अर्जुन और कर्णका युद्ध देखनेके लिये रणभूमिमें आये, सकल प्राणी राहुके मुखमेंसे छूटेहुए निर्मल चन्द्रमाको आकाशमें उदय हुआ देखकर जैसे आनन्दित

शृङ्गवरावरिघ्नौ ॥ ७२ ॥ कर्णञ्च पार्थञ्च विलोकयन्तः खस्था
महीस्थाश्च जनावतस्थुः । सकाशु कज्यातलसन्निपातः सुमुक्त-
बाणस्तुमुलो बभूव ॥ ७३ ॥ दनतोस्तथान्योन्यमिषुप्रवेकैर्धनञ्जय-
स्याधिरथेश्च राजन् । ततो धनुर्ज्या सहसातिकृष्टा सघोषमच्छिद्यत
पांडवस्य ॥७४॥ तस्मिन् क्षणे सूतपुत्रस्तु पार्थं समाचिनोत् क्षुद्र-
काणां शतेन । निर्मुक्तसर्पप्रतिमैश्च तीक्ष्णैस्तैलप्रधौतैः खगपत्र-
वाजैः ॥ ७५ ॥ षष्ट्या बिभेदाशु च वासुदेवमनन्तरं फाल्गुन-
मष्टभिश्च।पूषात्मजो मर्मसु निर्बिभेद मरुत्सुतं चायुतशः शराग्रैः॥७६
कृष्णं च पार्थं च तथा ध्वजं च पार्थानुजान्सोमकान्पातयंश्च ।

होते हैं तैसेही राजा युधिष्ठिरको रणभूमिमें चङ्गा नीरोग देखकर सब लोग प्रसन्न हुए, दूसरी ओर विद्यमान और भूमिपर खडे हुए प्राणी भी मुख्य शत्रुका संहार करनेवाले कर्ण तथा अर्जुन को युद्धमें प्रवृत्त हुआ देखकर उनको देखनेकी इच्छासे अपने २ वाहनोंको वशमें रखकर खड़े रहे और हे राजन् ! आपसमें बाणोंकी मारामार करनेवाले कर्ण और अर्जुनके बीचमें, धनुष, प्रत्यञ्चा और हाथोंका घोर शब्द होनेलगा, बाणोंकी वर्षायें होनेलगीं और दोनोंमें दारुण युद्ध होनेलगा ॥७०-७३॥ उस समय अर्जुनने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाको बडे जोरसे खींचा, इसलिये वह भयानक शब्द करतीहुई आपसे आप टूटगयी॥७४॥ उस समय सूर्यपुत्र कर्णने अर्जुनके क्षुद्रक जातिके दो बाण मारे और कैंचुलीसे छूटेहुए सर्पकी समान, तेल पियेहुए और पक्षीके परोंवाले साठ बाण कृष्णके मारे, तुरन्तही फिर आठ बाण अर्जुनके मारे और पवनपुत्र भीमको असंख्यों बढ़िया बाण मार कर घायल करदिया ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ जब कर्णने अर्जुन, कृष्ण ध्वजा, पाण्डवोंके छोटे भाई तथा सोमकोंको बाणोंसे बींधडाला तब पाण्डव और सोमकोंने,जैसे मेघ जलकी बिन्दुओंसे आकाशमें

प्राच्छादयंस्ते निशितैः पृषत्कैर्जीमूतसंघा नभसीव सूर्यम् ॥७७॥
आगच्छतस्तान् विशिखैरनेकैर्व्यष्टम्भयत् सूतपुत्रः कृतास्त्रः ।
तैरस्त्रमस्त्रं विनिहत्य सर्वं जघान तेषां रथवाजिनागान् ॥ ७८ ॥
तथा तु सैन्यप्रवरांश्च राजन्नभ्यर्दयन्मार्गणैः सूतपुत्रः । ते भिन्न-
देहा व्यसवो निपेतुः कर्णेषुभिर्भूमितलं स्वनन्तः ॥ ७९ ॥ क्रुद्धेन
सिंहेन यथाश्वयूथा महाबला भीमबलेन तद्वत् । पुनश्च पांचाल-
वरास्तथान्ये तदनन्तरे कर्णधनञ्जयाभ्याम् ॥ ८० ॥ प्रस्कन्दतो
बलिना साधुमुक्तैः कर्णेन बाणैर्निहता प्रसह्य । जयं मत्वा विपुलं
वै त्वदीयास्तलान्निजघ्नुः सिंहनादांश्च नेदुः ॥ ८१ ॥ सर्वे
ह्यमन्यन्त वशे कृतौ तौ कर्णेन कृष्णाविति ते विमर्दे । ततो धनुर्ज्या-

---

सूर्यको ढकदेता है तैसेही कर्णको बाणोंसे ढकदिया ॥ ७७ ॥ फिर अस्त्रविद्यामें कुशल कर्णने अपने ऊपर चढ़कर आये हुए उन योधाओंको अनेकों बाण मारकर आगे बढ़नेसे रोकदिया और उनके छोड़ेहुए सब अस्त्रोंका नाश करडाला तथा उनके रथ, घोड़े और हाथियोंको मारडाला ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! क्रोध में भराहुआ सिंह जैसे महाबली कुत्तोंके समूहका नाश करडालता है तैसेही बली कर्ण भी बाण मारकर पाण्डवपक्षके बड़े २ योधा-ओंको पीड़ा देनेलगा और वे भी शरीर घायल होजानेके कारण चीखें मारने लगे और मरकर पृथिवी पर गिरनेलगे, इतना ही नहीं, किन्तु जब कर्ण और अर्जुन युद्ध कररहे थे उस समय बलवान् कर्णने जोरसे बाण मारकर पंचाल योधाओंको तथा दूसरे योधाओंको रणमेंसे भगादिया, तब तुम्हारे पक्षके योधा बड़ीभारी विजय मानकर तालियें बजातेहुए सिंहोंकी समान गरजने लगे ॥ ७९-८१ ॥ उस युद्धके समय सब कोई समझने लगे कि-कर्णने कृष्ण और अर्जुनको अपने वशमें करलिया है, परन्तु तदनन्तर कर्णके बाणोंसे जिसके अङ्ग घायल होगये थे ऐसे

मत्रनाम्य शीघ्रं शरानस्तानाथिरथेर्विधम्य ॥ ८२ ॥ सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो रणे पार्थः कौरवान् प्रत्यगृह्णात् । ज्याञ्चानुमृज्याभ्यहनत्तलत्रे बाणान्धाकरं सहसा च चक्रे ॥ ८३ ॥ शल्यञ्च कर्णञ्च कुरूंश्च सर्वान् बाणैरविध्यत्प्रसभं किरीटी । न पक्षिणो बभ्रमुरन्तरिक्षे तदा महास्त्रेण कृतेऽन्धकारे ॥ ८४ ॥ वायुर्वियत्स्थैरीरितो भूतसंघैरुवाह दिव्यः सुरभिस्तदानीम् । शल्यञ्च पार्थो दशभिः पृषत्कैर्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत् ॥८५॥ ततः कर्णं द्वादशभिः सुयुक्तैर्विध्वा पुनः सप्तभिरप्यविध्यत् । स पार्थबाणासनवेगमुक्तैर्दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ८६ ॥ विभिन्नगात्रः क्षतजोक्षिताङ्गः कर्णो बभौ रुद्र इवाततेषुः । प्रक्रीडमाणश्च

अर्जुनने बड़े क्रोधमें भरकर तुरन्तही धनुषकी डोरीको खेंच कर्ण के मारेहुए बाणोंका नाश करडाला, सोमकोंको फिर संग्राममेंको बुलाया और धनुषकी डोरीको घिसकर साफ किया तथा हथेली पर टक्कर देकर एक साथ बाणोंकी मारामार कर चारों ओर अन्धकार करदिया ॥ ८२-८३ ॥ तथा बाण मारकर एकसाथ कर्ण, शल्य और सब कौरवोंको वींधडाला, उस समय बड़े २ अस्त्रोंका जाल ऊपर चढ़ जानेसे आकाशमें अन्धकार होगया और पक्षियोंका उड़ना बन्द होगया ॥ ८४ ॥ आकाशचारी देवताओंकी प्रेरणासे सुगन्धित दिव्य पवन चलने लगा, अर्जुनने हँसते २ दश बाण मारकर शल्यके कवचको वींधडाला और बारह तथा फिर सात बाण मारकर कर्णको वींधडाला, अर्जुन के धनुषमेंसे वेगके साथ छूटेहुए उग्रवेगवाले बाणोंके लगनेसे कर्णका शरीर छिन्न भिन्न होकर लोहू लुहान होगया, उससमय लोहू लुहान शरीरवाले बाणधारी शिव जैसे रुद्रमुहूर्त्तमें श्मशानमें क्रीड़ा करते हुए शोभा पाते हैं तैसे ही बड़ेभारी धनुष तथा बाणों को धारण करनेवाला और लोहू लुहान हुआ कर्ण भी रणभूमि

श्मशानमध्ये रौद्रे मुहूर्त्ते रुधिरार्द्रगात्रः॥८७॥ततस्त्रिभिस्तं त्रिदशाधिपोपमं शरैर्विभेदाधिरथिर्धनञ्जयम् । शरांश्च पञ्च ज्वलितानिवोरगान् प्रवेशयामास जिघांसुरच्युतम् ॥ ८८ ॥ ते वर्म्म भित्वा पुरुषोत्तमस्य सुवर्णचित्रा ह्यपतन् सुमुक्ताः । वेगन गामाविविशुः सुवेगा स्नात्वा च कर्णाद्विमुखाः प्रतीयुः ॥ ८९ ॥ तान् भल्लैर्दशभिः सुमुक्तैस्त्रिधात्रिधैकैकमथोच्चकर्त्त । धनञ्जयास्त्रैर्न्यपतन् पृथिव्यां महाहयस्तक्षकपुत्रपक्षाः ॥ ९० ॥ ततः प्रजज्वाल किरीटमाली क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः । तथा विलुन्नांगमवेदय कृष्णं सर्पेषुभिः कर्णभुजप्रसृष्टैः ॥ ९१ ॥ स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः । मर्मण्यविध्यत् स

में दिपरहा था ॥ ८५–८७ ॥ तदनन्तर कर्णने देवराज इन्द्रकी समान अर्जुनके तीन बाण मारे और क्रोधमें भरेहुए सर्पोंकी समान पाँच प्रज्वलित बाण कृष्णके मारनेकी इच्छासे फेंके, वे बाण सोनेसे मँढ़ेहुए थे, इस लिये विचित्र मालूम होते थे, ठीक ठीक और जोरके साथ मारे हुए वे बाण कृष्णके कवचको फोड़ कर पृथिवी पर जापड़े और एक साथ पृथिवीके भीतर घुस पातालगङ्गामें स्नान करके फिर कर्णके सामने आपहुँचे, ।उस समय अर्जुनने भल्लजातिके दश बाण मारकर उन पाँचों बाणोंमेंसे हर एकके तीन २ टुकड़े करडाले और तक्षकपुत्र अश्वसेनकी सहायता करनेवाले वे विशाल सर्पाकार बाण पृथिवीपर जापड़े८८-८९० कर्णने सर्पाकार बाण मारकर कृष्णके शरीरको बींधदिया, यह देखकर, जैसे अग्नि घासके ढेरको जलाते समय क्रोधमें भरकर धधक उठता है तैसे ही अर्जुन भी क्रोधसे प्रज्वलित होउठा ॥ ९१ ॥ और उसने धनुषको कानतक खेंचकर शरीरका नाश करनेवाले जलतेहुए बाण छोड़कर कर्णके मर्मस्थानोंको फोड़ दिया, उसकी पीड़ासे धीरबुद्धिवाला कर्ण विचलित होउठा, परन्तु धीरज रख

चचाल दुःखाद्विषादवातिष्ठत धैर्यबुद्धिः ॥ ९२ ॥ ततः शरौघैः प्रदिशो दिशश्च रवेः प्रभा कर्णरथञ्च राजन् । अदृश्यमासीत् कुपिते धनञ्जये तुषारनीहारवृतं यथा नभः ॥ ९३ ॥ सचक्ररक्षानथ पादरक्षान् पुरःसरान् पृष्ठगोपांश्च सर्वान् । दुर्योधनेनानुमतानरिघ्नः समुद्यतान् स रथान् सारभूतान् ॥ ९४ ॥ द्विसाहस्रान् समरे सव्यसाची कुरुप्रवीरानृषभः कुरूणाम् । क्षणेन सर्वान् सरथाश्वसूतान् निनाय राजन् क्षयमेकवीरः ॥ ९५ ॥ ततोऽपलायन्त विहाय कर्णं तवात्मजा कुरवो येऽवशिष्टाः । हतानपाकीर्य शरक्षतांश्च लालप्यमानांस्तनयान् पितॄंश्च ॥ ९६ ॥

कर दैवयोगसे रणभूमिमें डटा खड़ा रहा ॥ ९२ ॥ हे राजन् ! जिस समय अर्जुनने कोपमें भरकर बाणोंकी मारामार चलायी उस समय बाणोंके जालसे ढकजानेके कारण, दिशाएँ, कोने, सूर्यकी प्रभा तथा कर्णका रथ कुहरेसे ढकेहुए आकाशकी समान दीखना बन्द होगये ॥ ९३ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर कौरवकुलमें श्रेष्ठ और अद्वितीय वीर गिने जानेवाले अर्जुनने कर्णके रथके पहियोंके रक्षक, पादरक्षक, आगे चलनेवाले, पिछले भागकी रक्षा करनेवाले, दुर्योधनके मान्य, महाबली दो हजार रथी योधाओंको उनके रथ घोड़े और सारथियोंके सहित एक क्षणमें नष्ट करडाला ॥ ९४–९५ ॥ तब तुम्हारे पुत्र तथा शेष बचेहुए कौरवपक्षके योधा कर्णको तथा बाण लगनेसे घायल हुए और विलाप करते हुए पुत्रोंको तथा पिताओंको छोड़कर रणमेंसे भागगये ॥ ९६ ॥ इस प्रकार कौरव डरके मारे रणमेंसे भागगये और कर्ण अकेला रह गया, उस समय उसने सब दिशाओंकी ओरको देखा तो उसको सूनसान दीखा, परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! इससे कर्ण उदास नहीं हुआ, किन्तु उसने बड़ेही हर्षमें

स सर्वतः प्रेक्ष्य दिशो विशून्यः भयावदीर्णैः कुरुभिर्विहीनः । न विव्यथे भारत तत्र कर्णः प्रहृष्ट एवार्जुनमभ्यधावत् ॥ ६७ ॥
इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनसंग्रामे एकोननवतितमोऽध्यायः

सञ्जय उवाच । ततः प्रयाताः शरपातमात्रमवस्थिताः कुरवो भिन्नसेनाः । विद्युत्प्रकाशं ददृशुः समन्ताद्धनञ्जयास्त्रं समुदीर्यमाणम् ॥ १ ॥ तदर्जुनास्त्रं ग्रसति स्म कर्णो वियद्गतं घोरतरैः शरौघैः । क्रुद्धेन पार्थेन भृशाभिसृष्टं वधाय कर्णस्य महाविमर्दे २ उदीर्यमाणं स्म कुरून् दहन्तं सुवर्णपुंखैर्विशिखैर्ममर्द । कर्णस्त्वमोघेष्वसनं दृढज्यं विस्फारयित्वा व्यसृजच्छरौघान् ॥ ३ ॥ रामादुपात्तेन महामहिम्ना ह्याथर्वणेनारिविनाशनेन । तदर्जुनास्त्रं व्यधमद्दहन्तं पार्थश्च बाणैर्निशितैर्निजघ्ने ॥ ४ ॥ ततो विमर्दः

भरकर युद्ध करनेके लिये अर्जुनके ऊपर धावा बोल दिया ॥ ६७ ॥ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर सेनामें भागड़ पड़नेसे भागे हुए कौरवपक्षके योधा एक बाणकी दूरी पर खड़े होकर दोनोंका युद्ध देखने लगे, उस समय बिजलीकी समान चमकताहुआ अर्जुनका अस्त्र चारों ओरको फैलाहुआ देखनेमें आया ॥ १ ॥ उस महायुद्धमें अर्जुनने क्रोधमें भरकर कर्णका तथा कौरवोंका संहार करनेके लिये वह अस्त्र छोडा था-और वह रणमें कौरवोंको जलारहा था, यह देखकर कर्णने दृढ डोरी और अमोघ बाणों वाले धनुप पर टङ्कार देकर सोनेकी पूँछवाले महाभयानक बाण मारकर आकाशमें ऊपर प्रज्वलित हुए अर्जुनके अस्त्रको नष्ट करडाला।२।३। अर्जुनका माराहुआ अस्त्र जैसेही कौरवोंको जलाने लगा, कि—महात्मा कर्णने बडी महिमावाले, शत्रुनाशक परशुरामजीसे मिलेहुए आथर्वण अस्त्र तथा तेज बाण मारकर अर्जुनके उस अस्त्रको नष्ट करडाला ४

सुमहान् बभूव तत्रार्जुनस्याधिरथेश्च राजन् ।अन्योऽन्यमासादयतोः पृषत्कैर्विषाणघातैर्द्विपयोरिवोग्रैः ॥ ५ ॥ ततोऽस्त्रसंघातसमावृतं तदा बभूव राजन् तुमुलं स्म सर्वतः । यत् कर्णपार्थौ शरजालवृष्ट्या निरन्तरं चक्रतुरन्तरिक्षम् ॥ ६ ॥ ततो जालं वाणमयं महान्तं सर्वेऽद्राक्षुः कुरवः सोमकाश्च । नान्यं च भूतं ददृशुस्तदाते बाणान्धकारे तुमुले च तस्मिन् ॥ ७ ॥ तौ सन्दधानावनिशं च राजन् समस्यन्तौ चापि शराननेकान् । संदर्शयन्तौ युद्धमार्गान्विचित्रान् धनुर्द्धरौ तौ विविधैः कृतास्त्रैः ॥ ८ ॥ तयोरेव युध्यतोराजिमध्ये सूतात्मजोऽभूदधिकः कदाचित् । पार्थः कदाचित्त्वधिकः किरीटी वीर्यास्त्रमायाबलपौरुषेण ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा तयोस्तं युधि संप्रहारं परस्परस्यान्तरमीक्षमाणयोः । घोरं तयो-

---

हे राजन् ! तदनन्तर जैसे दो हाथी भयानक दाँतोंसे आपसमें युद्ध करते हों तैसेही अर्जुन और कर्ण एक दूसरेके भयानक वाण मारकर महायुद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! उस समय कर्ण तथा अर्जुनने वाणोंकी वर्षा करके आकाशको छादिया, चारों दिशाओंके स्थान भी वाणोंके जालसे ढकगये ॥ ६ ॥ और वाणोंका जाल पुरजानेसे इतना अधिक अन्धेरा होगया, कि-कौरव और सोमकवंशके योधा वाणोंके सिवाय दूसरी किसी वस्तुको नहीं देखसकते थे ॥ ७ ॥ हे राजन ! वे दोनों धनुषधारी योधा धनुषपर तले ऊपर वाण चढ़ारहे थे, अनेकों वाण छोडरहे थे और सीखेहुए अनेकों अस्त्रोंका प्रयोग करके युद्धकी अनेकों रीतियें दिखारहे थे ॥ ८ ॥ इसप्रकार युद्ध करने वाले उन दोनोंमें वीरतामें, अस्त्रमें, मायाबलमें और पौरुषमें कभी कर्ण बढ़जाता था तो कभी अर्जुन चढ़जाता था ॥ ९ ॥ वे दोनों योधा रणमें एक दूसरेके ऊपर ऐसा प्रहार करते थे, कि उसको दूसरे नहीं सहसकते थे, उनके ऐसे भयानक युद्धको देख-

दुर्विषहं रणेऽन्ये योधाः सर्वे विस्मयमभ्यगच्छन् ॥ १० ॥ ततो भूतान्यन्तरिक्षस्थितानि कर्णार्जुनौ तौ प्रशशंसुर्नरेन्द्र । भो कर्ण साध्वर्जुन साधु चेति वियत्सुवाणी श्रूयते सर्वतोऽपि ॥ ११ ॥ तस्मिन् विमर्दे रथवाजिनागैस्तदाभिघातैर्दलिते ह भूतले । ततस्तु पातालतले शयानो नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥ १२ ॥ राजंस्तदा खाण्डवदाहमुक्तो विवेश कोपाद्वसुधातले यः । अथोत्पपातोद्धर्वगतिर्जवेन संदृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥ १३ ॥ अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै पार्थस्य वैरप्रतियातनार्थम् । सञ्चिन्त्य तूर्णं प्रविवेश चैव कर्णस्य राजन् शररूपधारी ॥ १४ ॥ ततोऽस्त्रसंघातसमाकुलं तदा बभूव जालं विततांशुजालम् । तत् कर्णपार्थौ शरसंघवृष्टिभिर्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ १५ ॥ तद्बाण-

कर सब योधा आश्चर्यमें डूबगये ॥ १० ॥ और अन्तरिक्षमें खड़ेहुए प्राणी कर्ण तथा अर्जुनकी प्रशंसा करतेहुए बोलउठे, कि–हे कर्ण ! तुझे धन्यवाद है और हे अर्जुन ! तुझेभी धन्यवाद है ऐसी वाणी आकाशमें चारों ओरसे सुनायी आनेलगी ११ उस महायुद्धमें रथ, घोडे और हाथियोंके पैरोंके प्रहारोंसे पृथ्वी खुदगयी और पातालमें रहनेवाला अश्वसेन नामका सर्प, कि–जिसने अर्जुनके साथ वैर बाँधलिया था और खाण्डववनके अग्निमेंसे छूटकर पृथिवीकी तलीमें घुसगया था; वह भी कर्ण और अर्जुनका युद्ध होरहा है, यह जानकर क्रोधके मारे बडे वेगसे पृथिवी पर देखनेके लिये आया ॥ १२ ॥ १३ ॥ और उसने विचार किया, कि–दुष्टात्मा अर्जुनसे वैरका बदला लेनेका यह समय ठीक है, ऐसा विचार बाणका रूप धरकर वह कर्णके भाथेमें घुसगया ॥ १४ ॥ उस समय कर्ण और अर्जुनने बाणों की वर्षा करके आकाशको लबालब भरदिया था और सूर्यकी विशालकिरणें बाणोंसे और अस्त्रोंसे ढकगयी थीं ॥ १५ ॥

जालिकमयं महान्तं सर्वेऽत्रसन् कुरवः सोमकाश्च । नान्यत् किञ्चिददृशुः सम्पतद्धि बाणान्धकारे तुमुलेऽतिमात्रम् ॥ १६ ॥ ततस्तौ पुरुषव्याघ्रौ सर्वलोकधनुर्द्धरौ । त्यक्तप्राणौ रणे वीरौ युद्धश्रमगुपागतौ । समुत्क्षेपैर्वीज्यमानौ सिक्तौ चन्दनवारिणा ।१७। सवालव्यजनैर्दिव्यैर्दिविस्थैरप्सरोगणैः । शक्रसूर्यकराब्जाभ्यां प्रमार्जितमुखावुभौ ॥ १८ ॥ कर्णोथ पार्थं न विशेषयद्दा भृशाश्च पार्थेन शराभितप्तः । ततस्तु वीरः शरविक्षताङ्गो दध्रे मनो ह्येकवधस्य तस्य ॥ १६ ॥ ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः सुसञ्चितं सर्पमुखं ज्वलन्तम् । रौद्रं शरं सन्नतमग्निघोरं पार्थार्थमत्यर्थचिराभिगुप्तम् ॥ २० ॥ सदार्चितं चन्दनचूर्णशायितं सुवर्णतूणीरशयं

चारों ओर बाणोंका बडाभारी जाल बँधगया था और भयानक अन्धकार होगया था, इस लिये सब कौरव और सोमक तहाँ और किसी भी वस्तुको नहीं देखसकते थे ॥ १६ ॥ जगत् भरमें अद्वितीय धनुषधारी और पुरुषोंमें बाघसमान वीर तथा प्राणोंकी परवाह किये विना युद्ध करनेवाले कर्ण तथा अर्जुन इसप्रकार रणभूमिमें युद्ध करते २ थकगए, उनको देखकर आकाशमें खडीहुई दिव्य मूर्त्ति धारण करनेवाली अप्सरायें हाथमें चँवर लेकर उनको पवन डुलाने लगीं तथा चन्दनके रससे सींचनेलगीं इन्द्र और सूर्य अपने करकमलसे दोनोंके पसीनेसे भीगे मुखमण्डल को पोंछनेलगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ वीरवर कर्ण जब अर्जुनसे आगे नहीं बढ़सका किन्तु उसके बाणोंकी मारसे घायल अङ्गोंवाला और सन्तप्त होगया तब उसने भाथेमेंके सर्पमुख नामक बाणको चढानेका विचार किया ॥ १६ ॥ महाबली कर्णने यह बाण अर्जुनके मारनेके लिये बहुत दिनोंमे सँत कर रक्खा था, उसने शत्रुनाशक, युद्धमें भयदायक, अग्नितीक्ष्ण, जलता हुआ, अच्छे प्रकारसे साफ कियाहुआ, नित्य पूजामें रक्खा हुआ,

महार्चिषम् । आकर्णपूर्णं प्रविकृष्य कर्णः पार्थोन्मुखः सन्दधे चोत्तमौजाः ॥ २१ ॥ प्रदीप्तमैरावतवंशसम्भवं शिरो जिहीर्षुर्युधि फाल्गुनस्य । ततः प्रजज्वाल दिशो नभश्च उल्काश्च घोराः शतशः प्रपेतुः ॥ २२ ॥ तस्मिंस्तु नागे धनुषि प्रयुक्ते हाहाकृता लोकपालाः सशक्राः । न चापि तं बुबुधे सूतपुत्रो बाणे प्रविष्टं योगबलेन नागम् ॥ २३ ॥ दशशतनयनोऽपि दृश्य बाणे प्रविष्टं निहत इति सुतो मे स्रस्तगात्रो बभूव । जलजकुसुमयोनिः श्रेष्ठभावो जितात्मा त्रिदशपतिमवोचन्मा व्यथिष्ठा जये श्रीः ॥ २४ ॥ ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषुं तमुग्रम् । न कर्ण ग्रीवामिषुरेष लप्स्यते समीक्ष्य सन्धत्स्व शरं शिरोघ्नम् ॥२५ ॥

चन्दनके चूरेसे चर्चित, बड़ा प्रभावशाली, सुवर्णके भाथेमें रक्खा हुआ, ऐरावतके वंशमें उत्पन्न, धकधकाताहुआ सर्पमुख नामका बाण धनुप पर चढ़ाया और धनुपका कानतक खींचकर अर्जुन का शिर काट लेनेकी इच्छासे अर्जुनके सामनेको ताका, उस समय दिशाओंमें और आकाशमें आगसी लग उठी आकाशमेंसे सैंकड़ों भयानक उल्कापात होनेलगे ॥ २०-२२ ॥ कर्णने जब नागमुखको धनुप पर चढ़ाया उस समय इन्द्रसहित लोकपाल हाहाकार करनेलगे, परन्तु कर्ण यह नहीं जानता था, कि-सर्प योगबलसे मेरे बाणमें घुस बैठा है.परन्तु बाणमें सर्पको घुसाहुआ देखकर मेरा पुत्र मरजायगा, इस भयसे इन्द्रके अङ्ग ढीले पडगये तब कमलमेंसे उत्पन्न हुए शुद्ध अन्तःकरणवाले जितेन्द्रिय ब्रह्माने इन्द्रसे कहा, कि-तू शोक न कर अर्जुनमें श्रीका निवास है ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनन्तर महात्मा मद्रराज शल्य सूतपुत्रको धनुषपर बाण चढ़ाते देखकर कहनेलगा, कि-हे कर्ण ! यह बाण अर्जुनके कण्ठमें नहीं लगेगा, इसलिये तू ठीक २ विचार करके शिर काटडालने वाले बाणको धनुपपर चढ़ा ॥ २५ ॥ मद्रराजकी

अथाब्रवीत् क्रोधसंदीप्तनेत्रो मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी । न सन्धत्ते द्विः शरं शल्य कर्णो न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति ॥ २६ ॥ इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितम् । हतोसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिपन्नुवाच चोच्चैर्गिरमूर्जितां वृषः ॥ २७ ॥ स सायकः कर्णभुजाभिसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमः सुघोरः । गुणाच्युतः कर्णधनुःप्रमुक्तो वियद्गतः प्राज्वलदन्तरिक्षे ॥२८॥ तं वीक्ष्य दीप्तं युधि माधवस्तु त्वरान्वितां सत्वरयैव लीलया।पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं तं प्रावेशयज्जगतीं किञ्चिदेव ॥ २६ ॥ क्षितिं गता जानुभिस्तेथ वाहा हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरीचिवर्णाः । ततोन्तरिक्षे सुमहान्निनादः संपूजनार्थं मधुसूदनस्य ॥ ३० ॥ दिव्याश्च वाचः

वातको सुनकर वेगमें भराहुआ सूतपुत्र कर्ण, क्रोधसे लाल २ आँखें कियेहुए शल्यसे कहनेलगा, कि-हे मद्रराज ! कर्ण कभी भी वाणको दो वार नहीं चढ़ाता है,मुझसे योधा कभी भी कपट का युद्ध नहीं करेंगे॥२६॥हे राजन् ! इस प्रकार कहने पर उसने विजयके लिये उद्यत होकर उद्योगके साथ बहुत वर्षोंसे जिसकी पूजाकी थी ऐसा दुर्जय वाण अर्जुनके मस्तककी ओर ताककर फुरतीसे मारा और अर्जुनका तिरस्कार करते हुए जोरसे चिल्लाकर कहा, कि-हे अर्जुन ! तेरा मरण होचुका है ॥ २७ ॥ वह सूर्य और अग्निकी समान तेजस्वी महाभयानक शब्द करनेवाला वाण कर्णके हाथमेंसे छूटकर गगनमण्डलमें चक्कर बाँधता २ अन्तरिक्ष में पहुँचतेही वलउठा ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णने संग्राममें, वेगके साथ अपनी ओरको आतेहुए उस प्रज्वलित वाणको देखकर योंही साधारण खेलसा करतेहुए अर्जुनके वड़े भारी रथको एकदम पैरसे दवाकर जराएक पृथिवीमेंको धसादिया ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण ने ज्योंही पैरसे रथको दवाया, कि—सोनेके गहनोंसे शोभायमान और चन्द्रमाकी किरणोंकी समान स्वेत रंगके घोड़े घुटने टेककर,

सहसा बभूवुर्दिव्यानि पुष्पाण्यथ सिंहनादाः । तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य ॥ ३१ ॥ ततः शरः सोऽभ्यहनत् किरीटं तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः । अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं धरावियद्द्योसलिलेषु विश्रुतम् ॥ ३२ ॥ व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः शरेण मूर्ध्नः प्रजहार सूतजः । दिवाकरेन्दुज्वलनप्रभत्विषं सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषितम् ॥ ३३ ॥ पुरन्दरार्थं तपसा प्रयत्नतः स्वयं कृतं यद्विभुना स्वयंभुवा । महार्हरूपं द्विषतां भयङ्करं बिभर्तुरत्यर्थसुखं सुगन्धिनम् ॥ ३४ ॥ जिघांसते देवरिपून् सुरेश्वरः स्वयं ददौ यत् सुमनाः किरीटिने । हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः पिनाकपाशाशनिसायकोत्तमैः ॥३५॥

पृथिवीपर बैठगये, कृष्णकी इस कार्यकुशलताको देखकर उनकी पूजा करनेके लिये आकाशमें बड़ीभारी गर्जना हुई, एक साथ दिव्य वाणियें सुनायी आनेलगीं दिव्य फूलोंकी वर्षा होनेलगी, सिंहनाद होनेलगे, मधुसूदनके उद्योगसे अर्जुनका रथ जिससमय पृथिवीमेंको धसा था उसी समय यह सब हुआ ३०-३१ कर्णने बड़े उद्योग तथा क्रोधके आवेशसे जो सर्पबाण बुद्धिमान् अर्जुनके कण्ठको ताककर मारा था वह, अर्जुनके रथके पृथिवीमें धसजाने और नीचा होजानेसे उसके कण्ठमें न लगकर इन्द्रके दिये हुए और अर्जुनके मस्तक पर धारण किएहुए उसके मजबूत दिव्य मुकुटमें लगा और वह मुकुट मस्तक परसे नीचे गिरपड़ा, यह मुकुट पृथिवी, स्वर्ग, अन्तरिक्ष और जलमें प्रसिद्ध था, सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी समान कान्तिमान् था, व्यापक स्वयंभूने तप करके इन्द्रके लिये उसको बड़े उद्योगसे बनाया था, बहुत ही बढ़िया और शत्रुके लिये भयानक था, धारण करने वालेको बड़ाही सुखदायक और सुगन्धिसे महकरहा था ॥ ३२-३४ ॥ अर्जुनने जब देवताओंके शत्रुओंको मारडाला तब देवराज इन्द्रने

सुरोत्तमैरप्यविसह्यमर्दितुं प्रसह्य नागेन जहार यद्वृषः । स दुष्ट-
भावो वितथप्रतिज्ञः किरीटमत्यद्भुतमर्जुनस्य ॥ ३६॥ नागो महार्हं
तपनीयचित्रं पार्थोत्तमाङ्गात्प्रहरत्तरस्वी । तद्धेमजालावततं सुघोषं
जाज्वल्यमानं निपपात भूमौ ॥ ३७ ॥ तदुत्तमेषून्मथितं विषा-
ग्निना प्रदीप्तमर्चिष्मदथ क्षितौ प्रियम् । पपात पार्थस्य किरीट-
मुत्तमं दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः ॥ ३८ ॥ स वै किरीटं बहु-
रत्नभूषितं जहार नागोऽर्जुनमूर्द्धतो बलात् । गिरेः सुजाताङ्कुर-
पुष्पितद्रुमं महेन्द्रवज्रः शिखरोत्तमं यथा ॥ ३९ ॥ मही वियद्द्यौः
सलिलं च वायुना प्रसह्यमुग्रं विनिघूर्णितं यथा । अतीव शब्दो

स्वयं प्रसन्न होकर अर्जुनको वह मुकुट दिया था, दूसरोंकी बात तो दूर रही साक्षात् महादेव, इन्द्र, वरुण और कुबेर भी पिनाक, वज्र, पाश और उत्तम बाणसे उस मुकुटका नाश नहीं करसकते थे, अति दुष्ट प्रयोजनवाले तथा जिसकी प्रतिज्ञा मिथ्या होगयी थी ऐसे प्रचण्डमूर्ति और वेगमें भरेहुए सर्पने उस शुद्ध सुवर्ण के मुकुटको अर्जुनके मस्तकपरसे गिरादिया, यह मुकुट अमूल्य था, सोनेसे मँढ़ाहुआ था, उसकी कान्ति दिपरही थी, अश्वसेन नामके सर्पने उस मुकुटको अपने विषकी अग्निसे तोड़कर भूमिपर गिरादिया, सायंकालके समय लालबिंबवाला सूर्य जैसे अस्ताचलके शिखरपरसे नीचे गिरता है, तैसेही अर्जुनका वह तेजस्वी और प्यारा मुकुट भी खन २ करता हुआ पृथिवीपर जापड़ा ॥ ३५-३८ ॥ अनेकों रत्नोंसे जड़े तथा सुन्दर अंकुरित पुष्पोंवाले वृक्षोंसे भरे पहाड़के उत्तम शिखरको जैसे इन्द्रका वज्र तोड़कर बलात्कारसे पृथिवीपर गिरा देता है तैसेही इस सर्पने भी अनेकों रत्नोंने शोभायमान उस मुकुटको अर्जुनके शिर परसे पृथिवी पर गिरा दिया ॥ ३९ ॥ इस समय पृथिवी, आकाश, स्वर्ग और समुद्र प्रचण्ड पवनसे आन्दोलित होकर जैसे प्रचण्ड

श्रुत्वेषु वै तदा जनाध्यवस्यन् व्यथिताश्च चस्खलुः ॥ ४० ॥
विना किरीटं शुशुभे स पार्थः श्यामो युवा नील इवोच्चशृङ्गः ।
ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा स्वमूर्द्धजानव्यथितस्तदार्जुनः ।
विभासितः सूर्यमरीचिना दृढं शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा ॥ ४१ ॥
गोकर्णा सुमुखीकृतेन इषुणा गोपुत्रसंप्रेषिता गोशब्दात्मजभूषणं
सुविहितं सुव्यक्तगोऽशुप्रभम् । दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्द-
गोपूरि वै गोकर्णासनमर्द्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम् ॥ ४२ ॥

शब्द करते हैं तैसे ही उस बाणका शब्द भी तीन लोकोंमें बहुत ही फैल गया तथा उसको सुनते ही मनुष्य भयभीत हो पृथिवी पर गिरपड़े ॥ ४० ॥ इस समय मुकुटसे शून्य हुआ श्यामवर्ण और तरुण अवस्थावाला अर्जुन श्यामवर्ण पर्वतके शिखरकी समान दीखरहा था, उस समय अर्जुन घबड़ाया नहीं किन्तु उसने मस्तक पर सफेद दुपट्टा लपेटकर अपने उड़ते हुए केशोंको बाँध दिया, इस लिये शिखरपर फैली हुई सूर्यकी किरणोंसे जैसे उदयाचल शोभा पाता है, तैसे ही अर्जुन भी शोभा पाने लगा ॥ ४१ ॥ वली अर्जुनके शिरपर जो सूर्यकी समान तेजस्वी मुकुट था वह अदितिके पुत्र इन्द्रके मस्तक पर आभूषणकी समान रहता था और उसको विश्वकर्माने बनाया था, सूर्यपुत्र कर्णने उस दिव्य मुकुटसे शोभायमान अर्जुनके घोड़ोंकी लगामके मध्यमें विद्यमान मस्तकको ताककर नागपाश नामका बाण मारा, उस समय अर्जुनने बाण मारकर जिस नागनको काट डाला था और उसने अपने पुत्रको मुखमें निगलकर उसकी रक्षाकी थी, वही अश्वसेन नाग कर्णके सर्पमुखनामक बाणमें घुस गया था परन्तु श्रीकृष्णने घोड़ोंकी लगाम खेंचकर घोड़ोंको घुटनोंके बल बैठा दिया था, इसलिये कर्णने जो अर्जुनके मस्तकको ताककर बाण छोड़ा था वह मस्तकमें नहीं लगा, किन्तु उसने मस्तक परसे उसके

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः । महोरगः

मुकुटको उडादिया, इसप्रकार अर्जुन उस नागके सपाटेमें न आकर मृत्युके मुखमेंसे बचगया और फिर उसने उस सर्पको मारडाला था*॥ ४२ ॥ कर्णने अपनी भुजाके बलसे अर्जुनके

टिप्पणी—अर्जुन तथा श्रीकृष्णने खांडववनको अग्निसे जलवाकर उसको तृप्त किया था, उस समय तक्षक नाग तो पहलेसे ही वनमेंसे भागगया था, परन्तु उसकी स्त्री और पुत्र अश्वसेन वनमें ही रहगये थे। अर्जुन जिस समय वाण मारने लगा, उस समय वह अश्वसेनकी माता अपने पुत्रकी रक्षा करने के लिये उसको अपने मुखसे निगलनेलगी, निगलते २ उसकी पूँछ बाकी रहगयी, उस समय अर्जुनने वाण मारकर अश्वसेनकी माताका फन, काटडाला। उस समय इन्द्रने, 'मेरे मित्रका पुत्र मरजायगा' यह देखकर मेघ और पवनको आज्ञा दी, इससे अर्जुन घबड़ाया और वह अवसर पाकर अश्वसेन खाण्डववन मेंसे भाग निकला, तबसे उस सर्पका और अर्जुनका वैरभाव बँधगया था, इसलिये ही अब कर्ण अर्जुनके वाण मारनेलगा तब वह अर्जुनसे वैरका बदला लेनेके लिये कर्णके वाणमें घुस बैठा, उस वृत्तान्तके साथ इस श्लोकका संबंध है, तथा यह श्लोक महाभारतके कूट श्लोकोंमेंका एक श्लोक है। इस श्लोकके चारोंपदोंमें व्यासजीने गो शब्दका भिन्न २ अर्थमें प्रयोग किया है, इसलिये इसको पढ़ते ही इसका अर्थ हृदयङ्गम नहीं होता, नीलकण्ठने इसका संस्कृतटीका बहुत अच्छा किया है, उसको हम संस्कृत जाननेवालोंके मनोविनोदार्थ यहाँ लिखे देते हैं—

"गोकर्णा मुकुटं जहारेत्यन्वयः। अर्जुनस्य मुकुटहरणमपि महत् कर्म इति सूचयन् मुकुटं विशिनष्टि गवि चक्षुषि कर्णौ यस्याः सा गोकर्णा चक्षुश्रवाः सर्पिणी अर्जुनेन खांडवे निहता सती इह

कृतवैरोऽर्जुनेन किरीटमाहत्य ततो व्यनीयात् ॥ ४३ ॥ तथापि

मस्तकको ताककर जो बाण छोड़ा था उस सर्पमुख नामक बाण में अग्नि और सूर्यकी समान कांतिवाला महातेजस्वी तक्षकका पुत्र घुस बैठा था, क्योंकि—उसका अर्जुनके साथ वैर था, वह अर्जुन के मुकुटको पृथिवी पर गिराकर फिर पीछेको लौटगया ४३

निमित्तभूता तस्य मुकुटमेव जहार हृतवती न तु शिरः कथं हन्ताया हननिमित्तत्वमत आह सुमुखीकृतेन इषुणा गोपुत्रसंप्रेषिता, सन्धिरविवक्षितत्वान्न भवति । शोभनं पुत्रजीवनकरं मुखं यस्याः सा सुमुखी, सा हि पुत्रं निगीर्य दह्यमानात्खाण्डवादुत्पतन्ती शिरोदेशो अर्जुनेन छिन्ना सती स्वयं मृता पुत्रञ्च रक्षितवती-त्यादिपर्वण्युपाख्यायते. कृतेन स्वयं निर्मितेन पुत्रेण त्रातेन इषुणा इषुभावकृतेन "आत्मा वै पुत्रनामासि"इति श्रुतेरण्वाकारपुत्ररूपेण सम्पन्ना सती गोमतो रश्मिमतोऽर्कस्य पुत्रेण कर्णेन प्रेषिता । इषुणे-त्थम्भावे तृतीया । गोपुत्रेति मतुब्लोप आर्पः । किं कृत्वा मुकुटं जहारेत्यत आह-सुव्यक्तगोऽसुप्रभं गोगतकं दृष्ट्वा सुव्यक्ता अति-शयेनाविर्भूता गावो रश्मयस्तेज इति यावत् । सुव्यक्तैर्गोभिरसुभिश्च प्रकर्षेण भासमानं निरतिशयतेजोबलमर्जुनं गोगतकं गोशब्देन हयरश्मीनां प्रदेशो लक्ष्यते, तत्र गतं विद्यमानं कं शिरो यस्य तं, अर्जुनस्य ग्रीवादेशं कर्णेन लक्षीकृतं विज्ञाय भगवता सूत्रधारेण अश्वेषु जानुभ्यामवनीं गमितेषु रश्मिभिः समसूत्रदेशो अर्जुनस्य शिरो दृष्ट्वाऽपि वेगातिशयात्स्वयं नीची भवितुमशक्ता सती तद्देशस्थं मुकुटं जहारेत्यर्थः । गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितमिति-गोः पृथिवी तया शब्द्यते गोशब्दा अदितिः'इयं वा अदितिरिति' पृथिव्या अदितेर्निर्देशात् तस्या आत्मजस्य इन्द्रस्य भूषणं सुविहितं वेधसेति शेषः, तथा चात्रैवोक्तं 'पुरन्दरार्थं तपसा प्रयत्नतः स्वयं कृतं यद्विधिना स्वयम्भुवा' इति । कीदृशं मुकुटं वै निश्चितं प्रसिद्धं

दग्ध्वा तपनीयचित्रं किरीटमाविष्कृतमर्जुनस्य । इयेष गन्तुं पुनरेव तूर्णं पृष्टश्च कर्णेन ततोऽब्रवीदिदम् ॥ ४४ ॥ मुक्तस्त्वयाहं न समीक्ष्य कर्ण शिरो हृतं यन्न मयार्जुनस्य । समीक्ष्य मां मुञ्च रणे त्वमाशु हन्तास्मि शत्रुं तव चात्मनश्च ४५ स एव मुक्तो युधि सूतपुत्रस्तमब्रवीत् को भवानुग्ररूपः नागोऽब्रवी-

उस सर्पने अर्जुनके सुवर्णसे जड़े अनेकों चित्रोंसे चित्रित मुकुटको तोड़ फोडकर नीचे गिरादिया और तहाँसे पीछेको लौटकर कर्णके भाथेमें घुसना चाहनेलगा, उस समय कर्णने उसको देखा तब वह कर्णसे कहने लगा कि- ॥ ४४ ॥ हे कर्ण ! तूने ठीक २ निशानेको न देखकर अर्जुनके ऊपर मेरा प्रयोग किया था, इसलिये ही मैं अर्जुनके मस्तकको नहीं काटसका, अब तू रणमें अर्जुनके मस्तकको ताककर उसके ऊपर फ़ुरतीसे मेरा प्रयोग कर तो तेरे तथा अपने शत्रु अर्जुनका नाश करूं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार अश्वसेन नामक नागने सूतपुत्र कर्णसे कहा, तब, कर्णने उससे बूझा, कि-उग्ररूप धारण करनेवाला तू कौन है ? नागने उत्तर दिया, कि-अर्जुनने खाण्डव वनमें

वा । गोशब्दगोपूरि-गोभिः रश्मिभिः शब्द्यते रश्मिमानिति कथ्यत इति सूर्यः, तस्येव भुवनगर्भव्यापिनो गावः किरणास्तैर्भुवनं पूरयितुं शीलमस्य तत्तथा सूर्यसमप्रभमित्यर्थः। ननु चेतनाधिष्ठितो बाणः पुनरेत्यार्जुनं कुतो न हतवानित्यत आह-गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशमिति-गोकर्णं सर्पं पुनरर्जुनं हन्तुमिच्छन्तं असनेन बाणक्षेपेण मर्दयति यः स तथाभूतोऽर्जुनश्च तमेव सर्पमनवाप्य मृत्योर्वशं न ययौ । सर्पस्य पुनरागमनं वधश्चात्रैव कीर्त्यते । गौर्नादित्ये बलीवर्दे क्रतुभेदर्षिभेदयो । स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि । नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमस्विति कोशः ॥

द्विद्धि कृतागसं मां पार्थेन मातुर्वधजातवैरम् ॥ ४६ ॥ यदि स्वयं वज्रधरोऽस्य गोप्ता तथापि याता पितृराजवेश्मनि । कर्ण उवाच । न नाग कर्णोद्य रणे परस्य बलं समास्थाय जयं बुभूषेत । न सन्दध्यां द्विःशरं चैव नाग यद्यर्जुनानां शतमेव हन्याम् । तमाह कर्णः पुनरेव नागं तदाजिमध्ये रविसूनुसत्तमः ॥ ४८ ॥ व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिर्हन्तास्मि पार्थं सुसुखी व्रज त्वम् । इत्येवमुक्तो युधि नागराजः कर्णेन रोषादसहंस्तु वाक्यं ॥४९॥ यायात् स्वयं पार्थवधाय राजन् कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः । कृष्णस्ततः पार्थमुवाच संख्ये महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ ५० ॥ स एवमुक्तो

मेरी माताको मारकर मेरा अपराध किया है, इसलिये वह मेरा वैरी होगया है, यह बात मैं तुम्हारे जाननेके लिये कहता हूँ ४६ यदि सत्तात् इन्द्र भी आकर अर्जुनकी रक्षा करेगा तो भी वह यमलोकमें जायगा कर्णने कहा—हे नाग ! आज कर्ण रणमें दूसरेके बलका आसरा लेकर विजय पाना नहीं चाहता ॥ ४७ ॥ सूर्यके पुत्र कर्णने रणभूमिमें नागसे फिर कहा कि—मैं दूसरी वार वाणमें तेरा सन्धान करके यदि सैंकड़ों अर्जुनोंको मार सकूँ तो भी इसप्रकार अपने वाणको दुसराकर नहीं चलाऊँगा ॥४८॥ हे नाग!मैं अपने सर्पवाणोंको उत्तम रीतिसे छोडकर,बडाभारी उद्योग करके तथा क्रोधसे रणमें अर्जुनको मारूँगा, तू आनन्दपूर्वक यहाँसे चलाजा, कर्णने रणमें नागराजसे ऐसा कहा, तव नागराज क्रोधमें भरकर इस बातको सह न सका ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! वह उग्रस्वभावका सर्प स्वयं वाणका स्वरूप धारण करके अर्जुनका नाश करनेके लिये उसके सामनेको उड़ा उस समय श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा, कि—हे पार्थ ! तेरे साथ वैर करनेवाले इस बड़े भारी सर्पको तू मारडाल ॥ ५० ॥ मधुसूदनने अर्जुनसे ऐसा कहा, तव शत्रुके पराक्रमको सहसकनेवाले गांडीवधनुषधारी

मधुसूदनेन गांडीवधन्वा रिपुवीर्यसाह।।उवाच को न्वेष ममाद्य नागः स्वयं च आयात् गरुडस्य वक्त्रम् ॥ ५१ ॥ कृष्ण उवाच । योसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं सन्तर्पयाणेन धनुर्द्धरेण । वियद्गतो जननीगुप्तदेहो मत्वैकरूपं निहतास्य माता ॥ ५२ ॥ स एष तद्वैरमनुस्मरन् वै त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम् । नभश्च्युतां प्रज्वलितामिवोल्कां पश्यैनमायान्तममित्रसाह ॥ ५३ ॥ सञ्जय उवाच । ततः स जिष्णुः परिवृत्य रोषाच्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः नागं वियत्तिर्य्यगिवोत्पतन्तं स छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥५४॥ गते तु तस्मिन् भुजगे किरीटिना स्वयं विभुः पार्थिव भूतलादथ । समुज्जहाराशु पुनः पतंतं रथं भुजाभ्यां पुरुषो-

---

अर्जुनने कहा, कि—यह सर्प कौन वस्तु है, यह अभी अपने आप गरुडके मुखमें आयाजाता है ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि—हे अर्जुन ! तू धनुष धारण कियेहुए खांडव वनमें अग्निको तृप्त कर रहा था, उस समय इस सर्पकी जननीने इसको अपने मुखसे निगलकर अपने शरीरमें छिपा लिया था और वह आकाशमेंको उडने लगी थी, उस समय तूने इसको और इसकी माताको एक-रूप समझकर बाणसे इसकी माताको मारडाला था ॥ ५२ ॥ हे सामनेसे शत्रुकी टक्कर झेलनेवाले अर्जुन ! यह सर्प उस वैरको याद करके अवश्य ही अपने नाशके लिये तुझसे प्रार्थना कररहा है, वह देख जैसे आकाशमेंसे बलती हुई उल्का गिररही हो तैसे ही यह नाग हमारी ओरको चला आरहा है ॥ ५३ ॥ सञ्जय कहता है. कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर विजयी अर्जुनने क्रोधके साथ पीछेको फिरकर आकाशमेंसे तिरछी गतिसे गिरते हुए उस सर्पके तीखी धारवाला तेज किया हुआ बाण मारकर उसके शरीरके टुकडे २ करडाले और वह पृथिवी पर गिरपडा ५४ हे राजन् ! अर्जुनने सर्पको मारडाला तब व्यापक पुरुषोत्तम

न्तमस्तदा ॥ ५४ ॥ तस्मिन्मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः शिलाशितैर्बर्हिणबर्हवाजितैः । विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो धनञ्जयं तिर्यगवेक्षमाणः ॥ ५६ ॥ ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तैर्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य । नाराचमाशीविषतुल्यवेगमाकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥ ५७ ॥ स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य प्राणान्निरस्यन्निव साधुमुक्तः । कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः ॥५८॥ ततो वृषो बाणनिपातकोपितो महोरगो दण्डविघट्टितो यथा । तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान् महाविषः सर्प इवोद्वमन् विषम् ॥ ५९ ॥ जनार्दनं द्वादशभिः पराभिनन्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम् । शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं विभिद्य

भगवान्‌ने स्वयं अपने दोनों हाथोंसे पृथिवीमें धसेहुए रथको तुरन्त निकाल लिया ॥ ५५ ॥ उसी समय पुरुषोंमें वीर कर्णने तिरछी दृष्टिसे अर्जुनकी ओरको देखा और सानपर धरकर तेज कियेहुए मोरके परोंवाले दश बाण अर्जुनके मारे ॥ ५६ ॥ तब अर्जुनने वराहकर्ण नामके तेज कियेहुए बारह बाण कर्णके मारे, तदनन्तर धनुषको कानतक खेंचकर विषैले सर्पकी समान वेगवाला नाराच नामका बाण मारा ॥ ५७ ॥ वह ठीक २ छोड़ा हुआ बाण उसके विचित्र प्रकारके कवचको काटकर मानों प्राणोंको खेंचता हो, इसप्रकार कर्णके रुधिरको पीकर लोहूलुहान परोंवाला होकर पृथिवीमें घुसगया ॥ ५८ ॥ इसप्रकार अर्जुनके बाणका प्रहार लगनेसे लाठीका प्रहार खायेहुए बड़ेभारी सर्पकी समान कर्ण कोपमें भरगया और बड़ाभारी विषधर सर्प जैसे विषकी वर्षा करता हो तैसे ही कर्णभी फुरतीसे बड़े २ बाणोंकी वर्षा करनेलगा ॥ ५९ ॥ उसने बारह बाण श्रीकृष्णके मारे, निन्यानवे बाण मारकर अर्जुनको घायल किया और फिर भयानक एक बाणसे अर्जुनको घायल करके वह गर्जना करता हुआ

कर्णो व्यनदज्जहास च ॥ ६० ॥ तमस्य हर्षं ममृषे न पांडवो बिभेद मर्माणि ततोस्य मर्मवित् । परैः शतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रमस्तथा यथेन्द्रो बलमोजसारणे ॥ ६१ ॥ ततः शराणां नवतिन्तदार्जुनः ससर्ज कर्णेन्तकदण्डसन्निभाम् । स तैर्भृशं विद्धतनुः प्रविव्यथे तथा यथा वज्रविदारितोचलः ॥ ६२ ॥ मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम् । प्रवृद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभिर्धनञ्जयेनोत्तमकुण्डलेपि च ॥ ६३ ॥ महाधनं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः कृतं तदस्योत्तमवर्म भास्वरम् । सुदीर्घकालेन ततोस्य पाण्डवः क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत् ॥ ६४ ॥ स तं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः शितैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत् । स वि-

हँसनेलगा ॥ ६० ॥ कर्णके हँसनेको अर्जुन सह नहीं सका, इसलिये रणमें इन्द्रने पराक्रम करके जैसे बल दैत्यको घायल करडाला था, तैसे ही इन्द्रकी समान पराक्रमी अर्जुनने रणमें सैंकडों बाण मारकर कर्णके मर्मस्थानोंको घायल करडाला ६१ तदनन्तर अर्जुनने फिर कर्णके कालके दण्डकी समान नब्भै बाण मारे, उनसे कर्णका शरीर बिंधगया और वज्रसे तोड़ेहुए पर्वतकी समान उसको व्यथा होनेलगी ॥ ६२ ॥ फिर मणियोंसे और उत्तम हीरेसे जड़ेहुए कर्णके सोनेके मुकुटको तथा कानमें पहरनेके उत्तम कुण्डलको अर्जुनने बाण मारकर बींधडाला और वह पृथिवी पर टूटपडा ॥ ६३ ॥ फिर जिसको कारीगरोंने बडा उद्योग करके बनाया था ऐसा जो कर्णका बडाकीमती और तेजस्वी कवच था, उसके भी अर्जुनने बाण मारकर एकक्षणमें बहुतसे टुकड़े करडाले ६४ और फिर कोपमें भरेहुए अर्जुनने तेज किये चार बाण कवचरहित हुए कर्णके मारकर उसको बींधडाला, इसप्रकार शत्रुकी ओरसे हुए प्रबल प्रहारके कारण कर्ण ऐसे पीडा पानेलगा, जैसे रोगी वात-पित्त कफरूप त्रिदोषके

व्यथेऽत्यर्थमरिप्रताडितो यथातुरः पित्तकफानिलज्वरैः ॥ ६५ ॥ महाधनुर्मण्डलनिःसृतैः शितैः क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च । ततस्तु कर्णं बहुभिः शरोत्तमैर्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन् ॥ ६६ ॥ दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन कर्णो विविधैः शिताग्रैः । बभौ गिरिर्गैरिकधातुरक्तः क्षरन् प्रपातैरिव रक्तमम्भः ॥ ६७ ॥ ततोऽर्जुनः कर्णमवक्रगैर्नवैः सुवर्णपुंखैः सुदृढैरयस्मयैः । यमाग्निदण्डप्रतिमैः स्तनान्तरे पराभिनत् क्रौञ्चमिवाद्रिमग्निजः ॥ ६८ ॥ ततः शरावापमपास्य सूतजो धनुश्च तच्छक्रशरासनोपमम् । ततो रथस्थः स मुमोह चस्खलन् प्रशीर्णमुष्टिः सुभृशाहतः प्रभो ॥ ६९ ॥ न चार्जुनस्तं व्यसने तदेषिवान् विहन्तुमार्यः पुरुषव्रते स्थितः । तत-

कारण होनेवाले ज्वरसे पीडा पाता है ॥ ६५ ॥ इस समय अर्जुनने क्रिया उद्योग और बलका प्रयोग करके तेज कियेहुए बहुतसे बाण धनुषमेंसे ऊपरतले छोडकर कर्णको घायल करदिया और उसके मर्मस्थानोंको फोडदिया ॥ ६६ ॥ अर्जुनने उग्र वेगवाले और तीखी नोकवाले अनेकों प्रकारके बाणोंसे कर्णके ऊपर बडी मारामार की तब तो कर्ण लाल पानीकी धारें बहानेवाले गेरूसे लाल २ हुए पर्वतकी समान शोभा पानेलगा ॥ ६७ ॥ तदनन्तर जैसे अग्निपुत्र स्वामिकार्त्तिकेयने क्रौंच पर्वतको बींधडाला था, ऐसे ही अर्जुनने सोनेके परोंवाले बहुतसे दृढ, लोहेके यम और अग्निके दण्डकी समान सीधे जानेवाले नौ बाणोंसे कर्णकी छातीको फोडदिया ॥ ६८ ॥ इससे कर्णको बडी पीडा होनेलगी, उसने भाथेको तथा इन्द्रके धनुषकी समान धनुषको हाथमेंसे नीचे डालदिया, उसके हाथकी मुट्ठी खुलगयी और गहरी चोट लगनेके कारण वह मूर्छित होकर रथमें ही गिरपडा ६९ इस समय सत्पुरुषोंके व्रतको धारण करनेवाले आर्य अर्जुनने कर्णको मार डालनेकी इच्छा नहीं की, तब तो कृष्ण संभ्रममें

स्तमिन्द्रावरजोपि सम्भ्रमादुवाच किं पाण्डव हे प्रमाद्यसे ॥ ७० ॥
नैवाहितानां सततं विपश्चितः क्षणं प्रतीक्षन्त्यपि दुर्बलीयसाम् ।
विशेषतोरीन् व्यसनेषु पण्डितो निहत्य धर्मञ्च यशश्च विन्दति ७१
तदेकवीरं तव चाहितं सदा त्वरस्व कर्णं सहसाभिमर्दितुम् । पुरा
समर्थः समुपैति सूतजो जहि त्वमेनं नमुचिं यथा हरिः ॥ ७२ ॥
ततस्तु देवेत्यत्यभिपूज्य सत्वरं जनार्दनं कर्णमविध्यदर्जुनः । शरो-
त्तमैः सर्वकुरूत्तमस्त्वरन् यथा तथा शम्बरहा पुरा बलिम् ॥ ७३ ॥
साश्वन्तु कर्णं सरथं किरीटी समाचिनोत् भारत वत्सदन्तैः ।
प्रच्छादयामास दिशश्च बाणैः सर्वप्रयत्नात्तपनीयपुंखैः ॥ ७४ ॥

पड़कर कहनेलगे कि—हे पांडव ! तू असावधानी क्यों कररहा है ? ॥ ७० ॥ चतुर पुरुष अतिदुर्बल शत्रुओंको भी मारनेके लिये एक क्षणकी भी बाट नहीं देखते हैं, विशेष कर जब शत्रु सङ्कटमें पड़े हों तब ही चतुर उनका नाश करके धर्म और यशको पाते हैं ॥ ७१ ॥ फिर यह तो इकड वीर है और तेरा सदाका शत्रु है, इसलिये तू इसका नाश करनेको शीघ्रता कर वह यदि शक्तिमान् होजायगा तो फिर पहलेकी समान तेरे ऊपर चढ़ आवेगा, इस लिये जैसे हरिने नमुचि दैत्यको मारडाला था तैसे ही तू इस कर्णको काटडाल ॥७२॥ कृष्णकी बात सुनकर तुरन्त अर्जुन बोला, कि—बहुत अच्छा, ऐसा ही करता हूँ, इसप्रकार कृष्णकी बातका सन्मान करके पहले जैसे शम्बरासुरका नाश करनेवालेने बलिके बाण मारे थे तैसे ही कौरववंशी अर्जुनने शीघ्रतासे उत्तम बाण मारकर कर्णको बींधडाला ॥ ७३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! मुकुटधारी अर्जुनने अपनेसे जो कुछ भी होसकता था वह सब प्रकारका उद्योग करके कर्णको उसके रथको तथा उसके घोड़ोंको वत्सदन्त नामके बाणोंसे ढकदिया और सुवर्णकी पूँछवाले बाणोंसे दिशाओंको छादिया ॥ ७४ ॥

स वत्सदन्तैः पृथुपीनवक्षाः समाचितः सोऽधिरथिर्विभाति ।
सुपुष्पिताशोकपलाशशाल्मलिर्यथाचलश्चन्दनकाननायुतः ॥ ७५ ॥
शरैः शरीरे बहुभिः समर्पितो विभाति कर्णः समरे विशाम्पते ।
महीरुहैराचितसानुकन्दरो यथा गिरीन्द्रः स्फुटकर्णिकारवान् ७६
स बाणसंघान् बहुधा व्यवासृजन् विभाति कर्णः शरजालरश्मि-
वान् । सलोहितो रक्तगभस्तिमण्डलो दिवाकरोस्ताभिमुखो यथा
तथा ॥ ७७ ॥ बाह्वन्तरादाधिरथेर्विमुक्तान् बाणान्महाहीनिव
दीप्यमानान् । व्यध्वंसयन्नर्जुनबाहुमुक्ताः शराः समासाद्य दिशः
शिताग्राः ॥ ७८ ॥ ततः स कर्णः समवाप्य धैर्यं बाणान् विमुञ्चन्
कुपिताहिकल्पान् । विव्याध पार्थं दशभिः पृषत्कैः कृष्णञ्च षड्भिः
कुपिताहिकल्पैः ॥ ७९ ॥ ततः किरीटी भृशमुग्रनिःस्वनं महाशरं
सर्पविषानलोपमम् । अयस्मयं रौद्रमहास्त्रसम्मितं महाहवे क्षेप्तुमना

चौडी और ऊँची छाती वाला कर्ण वत्सदन्त नामक बाणोंसे ढकगया और फूल खिलेहुए अशोकके वृक्षसा तथा चन्दनके वनसे भरपूर मलयागिरिसा शोभा पानेलगा ॥ ७५ ॥ हे राजन् ! कर्णके शरीरमें बहुतसे बाण चुभगये थे, इसलिये जिसके शिखर और गुफायें वृक्षोंसे भरगयी हों तथा जिसमें फूलोंवाले कनेरके वृक्ष खडे हों ऐसे बड़े पर्वतसा दीखरहा था ॥ ७६ ॥ अनेकों बाणोंके समूहोंको छोडनेसे बाणरूप किरणोंवाला कर्ण, लाल किरणोंवाले और अस्ताचलके सामनेको जातेहुए सूर्यसा लाल २ दीखरहा था ॥ ७७ ॥ अधिरथके पुत्र कर्णकी भुजामेंसे जाज्वल्य-मान और बड़े २ सर्पोंकी समान जो बाण छूटरहे थे उन बाणोंको अर्जुन तेज धारवाले बाण दशों दिशाओंमेंको छोडकर नष्ट कर रहा था ॥७८॥ क्षणभर बाद कर्णने धीरज धरकर कोपमें भरे साँपसे दश बाण मारकर अर्जुनको बींधडाला और क्रोधमें भरे साँपसे छः बाण मारकर कृष्णको बींध दिया ७९ महाबुद्धिमान्

महामतिः ॥ ८० ॥ कालो ह्यदृश्यो नृप विप्रकोपान्निदर्शयन् कर्ण-
वधं ब्रुवाणः । भूमिस्तु चक्रं ग्रसतीत्यवोचत् कर्णस्य तस्मिन् वध-
काल आगते ॥ ८१ ॥ ब्राह्मं महास्त्रं मनसः प्रनष्टं यद्भार्गवोस्मै
प्रददौ महात्मा । चक्रं च वामं ग्रसते भूमिरस्य प्राप्ते तस्मिन् वधकाले
नृवीर ॥ ८२ ॥ ततो रथं घूर्णितवान्नरेन्द्र शापात्तदा ब्राह्मण-
सत्तमस्य । ततश्चक्रमपतत्तस्य भूमौ स विह्वलः समरे सूतपुत्रः ८३
सवेदिकश्चैत्य इवातिमात्रः सुपुष्पितो भूमितले निमग्नः । घूर्णे रथे

अर्जुनने अतिभयानक शब्द करनेवाला सर्पके विषकी समान और अग्निकी समान लोहेका रुद्रास्त्र (रुद्र जिसका देवता है ऐसा)बाण कर्णके ऊपर छोडनेका विचार किया ८० परन्तु इतनेमें ही हे राजन् ! कर्णके नाशका समय आपहुँचा था, इसलिये कालने अदृश्य रहकर, कर्णके रथके विषयमें उत्तम ब्राह्मण परशुरामने क्रोधमें आकर कर्णको जो शापदिया था, उस प्रसङ्गको यादकर कर्णसे कहा, कि-तेरे नाशका समय पास ही आपहुँचा है, इसलिये पृथिवी तेरे रथके पहियेको निगलजाती है ॥ ८१ ॥ हे पुरुषोंमें वीर राजन् ! कर्णके मरणका समय पास आपहुँचा था, इसलिये महात्मा परशुरामने कर्णको जो ब्रह्मदैवत नामक महाअस्त्र दिया था, उस अस्त्रका प्रयोग करना कर्ण इस समय भूलगया और पृथिवी उसके रथके बाँयें पहिये को निगलगयी अर्थात् उसके रथका बायाँ पहिया पृथिवीमें घुस गया ॥ ८२ ॥ ग्रामकी सीमा (सरहद) पर ग्रामके चिह्नरूपसे गड़ा हुआ बड़ाभारी पुष्पित वृक्ष जैसे पकी चौंतरीके साथ पृथिवीमें अत्यन्त धँसाहुआ होता है तैसे ही ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीके शापसे कर्णके रथका पहिया भी पृथिवीमें गड़गया तथा उसका रथ डगमगानेलगा कर्ण परशुरामसे मिलेहुए ब्रह्मा-स्त्रको भूलगया और उसके छोड़ेहुए सर्पमुखनामक भयानक

ब्राह्मणस्याभिशापाद्रामाद्दुपात्ते स्त्वविभांति चास्त्रे ॥ ८४ ॥ छिन्ने शरे सर्पमुखे च घोरे पार्थेन तस्मिन् विपसाद कर्णः । अमृष्यमाणो व्यसनानि तानि हस्तौ विधुन्वन् स विगर्हमाणः ॥ ८५ ॥ धर्मप्रधानं किल पाति धर्म इत्यब्रुवन् धर्मविदः सदैव । वयञ्च नित्यं प्रयताम धर्मे चर्तुं यथाशक्ति यथाश्रुतञ्च॥८६॥स चापि निघ्नाति न पाति भक्तान्मन्ये न नित्यं परिपाति धर्मः । एवं ब्रुवन् प्रस्खलिताश्वसूतो विचाल्यमानोऽर्जुनबाणपातैः ॥ मर्माभिघाताच्छिथिलः क्रियासु पुनः पुनर्धर्ममगर्हदाजौ ॥ ८७ ॥ ततः शरैर्भीमतरैरविध्यत्त्रिभिराहवे । हस्ते कृष्णं तथा पार्थमभ्यविध्यच्च सप्तभिः ८८

वाणको भी अर्जुनने काटडाला, इस सब बनावके कारण सूतपुत्र कर्ण विह्वल होकर काँपनेलगा और इन सब दुःखोंको न सहसकनेके कारण अपने दोनों हाथोंको हिलाताहुआ वह इस प्रकार धर्मकी निन्दा करनेलगा॥८२–८५॥कि–जो मनुष्य धर्मको आगे रखकर काम करता है उसकी धर्म अवश्य ही रक्षा करता है, ऐसा धर्मको जानने वाले सदा ही कहा करते हैं. हम भी अपनी शक्तिके अनुसार तथा शास्त्रमें जैसा सुना है उसके अनुसार नित्य धर्माचरण करनेका उद्योग करते हैं, तो भी धर्म अपने भक्तोंका पालन नहीं करता किन्तु उनका नाश ही करता है, इसलिये मैं तो यह मानता हूँ, कि–धर्म सदा अपने भक्तोंकी रक्षा नहीं करता किन्तु उनका नाश ही करता है, इसप्रकार कर्ण दोनों हाथ हिलाकर कहरहा था, और उसके घोड़े तथा सारथी इधर उधरको झटके खारहे थे, अर्जुनके बाण पड़नेसे कर्ण भी रथमें डगमगा रहा था, वह मर्मस्थानोंमें बाण लगनेसे अपना काम करते २ रुकगया और बारम्बार धर्मकी निन्दा करनेलगा ॥ ८६ ॥८७॥ इसप्रकार धर्मकी निन्दा करके कर्णने महाभयानक तीन बाण कृष्णके हाथमें मारे और सात बाण-

ततोर्जुनः सप्तदश तिग्मवेगानजिह्मगान्। इन्द्राशनिसमान् घोरानसृजत् पावकोपमान् ॥ ८९॥ निर्भिद्य ते भीमवेगा ह्यपतन् पृथिवीतले। कम्पितात्मा ततः कर्णः शक्त्या चेष्टामदर्शयत् ॥९०॥ बलेनाथ स संस्तभ्य ब्रह्मास्त्रं समुदैरयत्। ऐन्द्रं ततोर्जुनश्चापि तं दृष्ट्वाभ्युपमन्त्रयत् ॥ ९१ ॥ गाण्डीवं ज्यां च बाणांश्च सोनुमन्त्र्य परन्तपः। व्यसृजच्छरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ ९२ ॥ ततस्तेजोमया बाणा रथात् पार्थस्य निःसृताः। प्रादुरासन्महावीर्याः कर्णस्य रथमन्तिकात् ॥ ९३ ॥ तान् कर्णस्त्वग्रतो न्यस्तान्मोघांश्चक्रे महारथः। ततोब्रवीद् वृष्णिवरस्तस्मिन्नस्त्रे विनाशिते ९४ विसृजास्त्रं परं पार्थ राधेयो ग्रसते शरान्। ततो ब्रह्मास्त्रमव्यग्रः

अर्जुनके मारे ॥ ८८ ॥ तव अर्जुनने तीक्ष्ण वेगवाले, सीधेजानेवाले, इन्द्रके वज्रकी समान, अग्निसे भयानक सत्तर बाण कर्णके मारे, वे भयानक वेगवाले बाण कर्णको बींधकर पृथिवी पर जापड़े, उन बाणोंकी मारसे कर्णका शरीर काँपउठा, परन्तु कर्णने अपनी शक्तिभर युद्ध करनेकी चेष्टा दिखायी तथा बलसे शरीरको टिका रखकर अर्जुनके ऊपरको ब्रह्मास्त्र छोडा, उस ब्रह्मास्त्रको आतेहुए देखकर अर्जुनने उसके सामने इन्द्रास्त्रका अभिमंत्रण किया ॥ ८९ ॥ ९१ ॥ शत्रुको सन्ताप देनेवाले अर्जुनने गांडीव धनुष, उसकी डोरी और बाणोंको ब्रह्मास्त्रके मंत्रसे अभिमंत्रित करके ऐसे बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दी जैसे इन्द्र जलकी वर्षा करता हो ॥ ९२ ॥ अर्जुनके रथमेंसे तेजोमय और बड़े पराक्रमवाले बाण छूट २ कर कर्णके रथके पास आ आकर गिरनेलगे ॥ ९३ ॥ महारथी कर्ण अर्जुनके छोड़ेहुए उन बाणोंको अपने सामने आते ही बेकार करडालता था, इसप्रकार कर्णने जब अर्जुनके अस्त्रोंका नाश करडाला, यह देखकर श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा, कि-॥ ९४ ॥ हे

समन्त्र्य समयोजयत् ॥ ९५ ॥ छादयित्वा दिशो बाणैः कर्णं प्रत्यस्यदर्जुनः। ततः कर्णः शितैर्बाणैश्चिच्छेद ज्यां सुतेजनैः ९६ द्वितीयाञ्च तृतीयाञ्च चतुर्थीं पञ्चमीं तथा। षष्ठीमथास्य चिच्छेद सप्तमीञ्च तथाष्टमीम् ॥ ९७ ॥ नवमीं दशमीञ्चैव तथा चैकादशीं वृषः। ज्याशतं शतसन्धानः स कर्णो नावबुध्यते ॥९८॥ ततो ज्यां विनिधायान्यामभिमन्त्र्य च पाण्डवः। शरैरवाकिरत् कर्णं दीप्यमानैरिवाहिभिः ॥ ९९ ॥ तस्य ज्याच्छेदनं कर्णो ज्यावधानञ्च संयुगे। नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१००॥

अर्जुन! राधाका पुत्र कर्ण तेरे बाणोंका नाश कररहा है, इस लिये तू कोई दूसरा अस्त्र चला, यह सुनकर अर्जुनने बड़े ही उग्र ब्रह्मास्त्रको बडी सावधानीसे मंत्र पढ़कर धनुष पर चढाया ९५ और कर्णको बाण मारकर ढकदिया.कर्णने भी अतितेज और अच्छे प्रकारसे तयार कियेहुए बाण मारकर उसके धनुषकी डोरीको काटडाला ॥ ९६ ॥ तब अर्जुनने धनुषके ऊपर दूसरी डोरी चढायी, कर्णने उसको भी काटडाला इसप्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवी, छटी, सातवीं, आठवीं, नवमी, दशमी, और ग्यारवीं वार चढायी हुई डोरीको भी कर्णने काटडाला, परन्तु अर्जुनके पास सौ डोरियें (प्रत्यञ्चायें) थीं, इस बातको, सौ वार बाण चढाकर मारनेवाला कर्ण नहीं जानता था ॥ ९७ ॥९८ ॥ तदनन्तर अर्जुनने धनुषके ऊपर नयी डोरी चढाकर और उसको मंत्रसे अभिमंत्रित करके और फिर सर्पकी समान देदीप्यमान बाण कर्णके ऊपर छोडना आरम्भ करदिया ॥ ९९ ॥ ज्यों ही धनुषके ऊपरकी डोरी टूटती थी, कि-अर्जुन फुरतीसे उसके ऊपर नयी डोरी चढालेता था, उसकी फुरतीके कारणसे अर्जुनके धनुषकी डोरी कब टूटी और उसने नयी डोरी कब चढाली, इस बातको कर्ण नहीं जानसका, यह घटना बड़े आश्चर्यमें डालने

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रतिघ्नन् सव्यसाचिनः। चक्रे चाप्यधिकं पार्थात्स्ववीर्यमतिदर्शनम् ॥ १०१ ॥ ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेणाभिपीडितम्। अभ्यस्येत्यब्रवीत् पार्थमातिष्ठास्त्रं व्रजेति च ॥ १०२ ॥ ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमम्। अश्मसारमयं दिव्यमनुमन्त्र्य परन्तपः ॥ १०३ ॥ रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान्। ततोग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप १०४ ततोऽवतीर्य राधेयो रथादाशु समुद्यतः। चक्रं भुजाभ्यामालम्ब्य समुत्क्षेप्तुमियेष सः ॥ १०५ ॥ सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना। गीर्णचक्रा समुत्क्षिप्ता कर्णेन चतुरङ्गुलम् ॥ १०६॥ ग्रस्त-

---

वाली थी ॥ १०० ॥ कर्ण सामनेसे अस्त्र मारकर अर्जुनके अस्त्रोंको पीछेको हटाताहुआ निष्फल करदेता था और अर्जुनके बाण मारता था इसलिये उसने रणमें अपना पराक्रम अर्जुनसे भी अधिक दिखाया था ॥ १०१ ॥ कृष्णने अर्जुनको कर्णके बाणसे पीडित हुआ देखकर कहा, कि-हे धनञ्जय ! सबसे उत्तम अस्त्र लेकर कर्णके समीप जा और उसके ऊपर प्रहार कर ॥ १०२ ॥ इसपर शत्रुको सन्ताप देनेवाले अर्जुनने अग्निकी समान भयानक बडा कठिन और साँपके विषकी समान जहरी तथा जिसका देवता रुद्र था ऐसे दिव्य अस्त्रको मंत्रसे अभिमंत्रित किया और उसको धनुष पर चढा कर्णके ऊपर छोडनेका विचार कररहा था, कि-इतनेमें ही हे राजन् ! कर्णके रथका पहिया पृथिवीमेंको और अधिक धसगया ॥ १०३ ॥१०४ ॥ इस कारण राधाका पुत्र कर्ण तुरन्त रथमेंसे नीचे उतर पडा और दोनों हाथोंसे रथके पहियेको पकडकर पृथिवीमेंसे बाहर निकालना चाहने लगा ॥ १०५ ॥ उसने पर्वत, वन और अरण्यसहित सात द्वीपवाली अपने पहियेको निगलनेवाली पृथिवीको चार अंगुल ऊँचा करदिया, परन्तु रथका पहिया बाहरको न निकला ॥ १०६ ॥

चक्रस्तु राधेयः कोपादश्रूण्यवर्त्तयत् । अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १०७ ॥ भो भो पार्थ महेष्वास मुहूर्तं परिपालय । यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ॥ १०८ ॥ सव्यं चक्रं महीग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिमं मम । पार्थ कापुरुषाचीर्णमभिसन्धिं विसर्जय ॥ १०९ ॥ न त्वं कापुरुषाचीर्णमार्गमास्थातुमर्हसि । ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु ॥ ११० ॥ विशिष्टतरमेव त्वं कर्तुमर्हसि पाण्डव । प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेथ कृतांजलौ ॥ १११ ॥ शरणागते याचमाने न्यस्तशस्त्रे तथैव च । अवाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ॥११२॥ न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः । त्वञ्च शूरतमो लोके साधु-

तब जिसके रथके पहियेको पृथिवी निकलगयी थी ऐसा कर्ण क्रोधके मारे आँसू बहाता हुआ क्रोधमें भरेहुए अर्जुनको देख कर यों कहनेलगा ॥ १०७ ॥ अरे ओ महाधनुषधारी अर्जुन! मैं इस रथके पहियेको पृथिवीमेंसे बाहर निकाललूँ तबतक दो घडीको तू थमा रह ॥१०८॥ हे पार्थ! दैवयोगसे यह मेरे रथका बायाँ पहिया पृथिवीमें धसगया है, इसको देखकर तू हलके मनुष्योंकी समान नीच धावा न करना ॥ १०९ तुझे नीच पुरुषोंके आचरण कियेहुए मार्गमें नहीं चलना चाहिये, हे कुन्तीनन्दन ! तू प्रसिद्ध है और युद्धके काममें सबसे श्रेष्ठ है ११० हे अर्जुन ! तू तो बडा ही उत्तम कर्म करनेकी योग्यता रखता है जिसके शिरके बाल खुलगये हों, जो रणमेंसे पीठ फेरकर भाग रहा हो, जो ब्राह्मण हो, जो दोनों हाथ जोडरहा हो, जो शरणमें आया हो, जिसने हाथमेंसे हथियार धरदिये हों, जो प्राणरक्षाके लिये प्रार्थना कररहा हो, जिसके पास बाण न हों, जिसका कवच नीचे गिरगया हो, जिसके हथियार गिरपड़े हों अथवा टूटगये हों ऐसे योधा पर सदाचारी वीर पुरुष शस्त्रका प्रहार

वृत्तश्च पाण्डव॥११३॥ अभिज्ञो युद्धधर्माणां वेदान्तावभृथाप्लुतः। दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि॥ ११४ ॥ यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज! ॥ न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तु-मर्हसि ॥ ११५ ॥ न वासुदेवात्त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम्। त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्द्धनः। अतस्त्वां प्रब्रवीम्येष मुहूर्त्तं क्षम पाण्डव ॥ ११६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णरथचक्रग्रसने नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

सञ्जय उवाच। तमब्रवीद्वासुदेवो रथस्थो राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मम्। प्रायेण नीचा व्यसने निमग्ना निन्दन्ति दैवं

नहीं करते हैं, हे अर्जुन! तू जगत्में बडा वीर और सदाचारी है ॥ १११-११३ ॥ युद्धके धर्मोंको जाननेवाला है, तूने ज्ञान-रूप अवभृथ स्नान किया है, तू दिव्य अस्त्रोंको जाननेवाला और उदारचित्त है तथा युद्धमें कार्त्तवीर्यकी समान पराक्रमी है ११४ इसलिये हे महाबाहु अर्जुन! जबतक मैं इस रथके पहियेको पृथिवी मेंसे बाहर निकाललूँ तबतक तू थमजा, तू रथमें बैठा है और मैं भूमिमें खडा हूँ और मेरी दशा विकल है, इसलिये मुझे मारना तुझे उचित नहीं है११५हे अर्जुन! मैं कृष्णसे या तुझसे डरता नहीं हूँ, परन्तु तू भी एक क्षत्रियकुमार और बड़ेभारी कुलको बढाने वाला है, इस लिये इस समय मैं तुझसे कहता हूँ, कि–तू एक मुहूर्त्त भरको ठरहजा ॥११६॥ नब्भेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र! कर्णके ऐसे कहने को सुनकर रथपर बैठेहुए वासुदेवने कहा, कि–हे कर्ण! तू इस समय धर्मको याद कररहा है, यह बड़े आनन्दकी बात है; प्रायः ऐसा देखागया है, कि–नीच पुरुषोंके ऊपर जब दुःख आकर पड़ता है तो वे धर्मकी निन्दा किया करते हैं, परन्तु

कुकृतं न तु स्वयम् ॥ १ ॥ यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानायये-स्त्वञ्च सुयोधनश्च । दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः ॥२॥ यदा सभायां कौन्तेयमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम् । अक्षज्ञः शकुनिर्जेता क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ३ ॥ वनवासे व्यतीते च वर्षे कर्ण त्रयोदशे । न प्रयच्छसि यद्राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ४ ॥ यद्भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः । आचरत्त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ५ ॥ यद्वारणावते पार्थान् सुप्तान् जतुगृहे तदा । आदीपयंस्त्वं राधेय क्व ते धर्म-स्तदा गतः ॥६॥ यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम् । सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ७ ॥ यदानार्यैः

अपने पापकर्मकी निन्दा नहीं करते ॥ १ ॥ हे कर्ण ! जो एक ही वस्त्र पहर रही थी ऐसी द्रौपदीको तूने, दुर्योधनने, दुःशासनने और सुबलके पुत्र शकुनिने बीचसभामें मँगवाया था, उस समय तुझे धर्म याद नहीं आया ? ॥ २ ॥ जिस समय जुआ खेलना न जाननेवाले राजा युधिष्ठिरको शकुनिने जान बूझकर राजसभामें जुआ खिलाकर जीतलिया था उस समय तेरा धर्म कहाँ चलागया था ? ॥ ३ ॥ अरे कर्ण ! बारह वर्षका वनवास बीतजानेपर तेरहवें वर्षमें भी पांडवोंको राज्य नहीं दिया, उस समय तेरा धर्म कहाँ चलागया था ? ॥ ४ ॥ तेरी संमतिसे दुर्योधनने भीमसेनको विष मिला भोजन खिलवाया था और जहरी साँपोंसे कटवाया था, तब तेरा धर्म कहाँगया था ? ॥ ५ ॥ हे कर्ण ! वारणावतमें पाण्डव लाखाभवनमें सोरहे थे, उस समय तूने उस भवनमें आग लगवा दी थी, तब तेरा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ६ ॥ हे कर्ण ! जब द्रौपदी रजस्वला थी और दुःशासन उसको बीचसभामें पकड़े खड़ा था, उस समय तू खिलखिला कर हँसा था, तब तेरा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ७ ॥

पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसम् । उपप्रैक्ष्यसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ८ ॥ विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः । पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्वं गजगामिनीम् । उपप्रेक्षितवांस्त्वं हि क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ९ ॥ राज्यलुब्धः पुनः कर्णः समाह्वयसि पाण्डवान् । गान्धारराजमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ १० ॥ यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः । परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ११ ॥ यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि किं सर्वथा तालुविशोषणेन । अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि ॥ १२ ॥ नलो ह्यक्षैर्निर्जितः पुष्करेण पुनर्यशो राज्यमवाप वीर्यात् । प्राप्तास्तथा पाण्डवा बाहु-

हे राधाके पुत्र ! पहले दुष्ट पुरुषोंने जब निरपराधिनी द्रौपदीको दुःख देना आरम्भ किया था और तू पास बैठा देखता रहा था, तब तेरा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ८ ॥ हे कर्ण ! दुःखमें पड़ीहुई गजगामिनी द्रौपदीसे तूने कहा था, कि—अरी द्रौपदी ! पांडवोंका नाश होचुका है और वे सदाके लिये नरकमें जापड़े हैं, इस लिये अब तू किसी दूसरे पतिको करले, ऐसा कहकर जब तू उसकी ओरको देखने लगा था, उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ९ ॥ हे कर्ण ! तूने राज्यके लोभसे शकुनिका आश्रय लेकर पांडवोंको जुआ खेलनेके लिये फिर बुलाया था, उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था ? ॥ १० ॥ हे कर्ण ! जब युद्धमें बहुतसे महारथियोंने इकट्ठे होकर बालक अभिमन्युको घेर कर मारडाला था, तब तेरा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ११ ॥ यदि यह धर्म उस समय नहीं था तो फिर तालुको अधिक सुखानेसे क्या लाभ है ? हे सूतपुत्र ! तू आज यहाँ रणभूमिमें चाहे जितने धर्मके कामकर, परन्तु अब तू जीता बचकर नहीं जासकता । १२ । पुष्करने राजा नलको फाँसोंसे जुएमें जीतलिया था, परन्तु

र्यात् सर्वैः समस्ताः परित्यक्तलोभाः ॥१३॥ निहत्य शत्रून् समरे
प्रवृद्धान् ससोमका राज्यमवाप्नुयुस्ते । तथा गता धार्त्तराष्ट्रा विनाशं
धर्माभियुक्तैः सततं नृसिंहैः ॥ १४ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त-
स्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत । लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चि-
दुक्तवान् ॥ १५ ॥ क्रोधात् प्रस्फुरमाणौष्ठो धनुरुद्यम्य भारत ।
योधयामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः ॥ १६ ॥ ततोऽब्रवीद्वासुदेवः
फाल्गुनं पुरुषर्षभम् । दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल १७
एवमुक्तस्तु देवेन क्रोधमागात्तदार्जुनः । मन्युमभ्याविशद्घोरं
स्मृत्वा तत्तु धनञ्जयः ॥ १८ ॥ तस्य क्रुद्धस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्य-
स्तेजसोर्च्चिषः । प्रादुरासंस्तदा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १९ ॥

राजा नलने पराक्रम करके जैसे फिर राज्य और यशको पालिया था, तैसे ही लोभरहित पाण्डव भी सोमकवंशके सब राजाओंके साथ रहकर अपने बाहुबलसे रणमें महाबली शत्रुओंका संहार करके फिर राज्य पावेंगे और धर्म करने वाले पुरुषोंमें सिंहसमान इन महापुरुषोंके हाथ धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश होजायगा ॥ १३-१४ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णके ऐसा कहने पर कर्णने लज्जासे नीचेको मुख करलिया और कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ १५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! क्रोधके मारे जिसके होठ फड़करहे थे ऐसा महापराक्रमी कर्ण धनुष उठाकर बड़े वेगके साथ अर्जुनसे युद्ध करनेलगा ॥ १६ ॥ हे पुरुषसत्तम ! तब वासुदेवने अर्जुनसे यह बात कही, कि-हे महाबली ! तू दिव्य अस्त्रसे कर्णको घायल करके रथमेंसे नीचे गिरादे ॥ १७ ॥ कृष्णदेवके ऐसा कहने पर उस समय अर्जुन क्रोधमें भरगया, क्योंकि-उस समय अर्जुनको कौरवोंके दिये हुए दुःखोंकी याद आगयीथी ॥१८॥ उस समय क्रोधमें भरेहुए अर्जुनके शरीरके सब रोमकूपोंमेंसे तेजकी चिनगारियें निकलने

तत् समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनञ्जयम् । अभ्यवर्षत् पुनर्यत्नमकरोद्रथसर्जने ॥ २० ॥ ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो ववर्ष शरवृष्टिभिः । अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्रजहार च पाण्डवः ॥ २१ ॥ ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः । मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत् प्रजज्वाल तेजसा ॥२२॥ वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम् । जीमूतैश्च दिशः सर्वाश्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः ॥ २३ ॥ पाण्डवेयस्त्वसंभ्रान्तो वायव्यास्त्रेण वीर्यवान् । अपोवाह तदभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः ॥ २४ ॥ ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् । आददे पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रो जिघांसया ॥ २५ ॥ योज्यमाने ततस्तस्मिन् वाणे धनुषि पूजिते । चचाल पृथिवी

लगीं, हे राजन् ! उस दृश्यको देखकर आश्चर्य मालूम होता था ॥ १९ ॥ कर्णने, क्रोधमें भरेहुए अर्जुनके शरीरमेंसे निकलती हुई तेजकी चिनगारियोंको देखकर अर्जुनके ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा और रथको सूधा करनेका फिर उद्योग करनेलगा ॥२०॥ इतनेमें अर्जुनने भी सामनेसे ब्रह्मास्त्र मारकर कर्णके ऊपर वाणोंकी वर्षा करडाली और अपने ब्रह्मास्त्रसे कर्णके ब्रह्मास्त्र को पीछेको हटादिया ॥ २१ ॥ और फिर अग्निदेवका प्यारा दूसरा अस्त्र कर्णके ऊपर छोड़ा, जो तेजसे दहकता हुआ बलरहा था२२कर्णने वारुणास्त्र मारकर अर्जुनके उस आग्नेय अस्त्रको शान्त करदिया और मेघोंकी घटाओंसे दशों दिशाओंको गाढ़ अन्धकारसे भरदिया ॥ २३ ॥ परन्तु इससे पराक्रमी अर्जुन जरा भी घबड़ाया नहीं, उसने कर्णके देखते हुए वायव्य अस्त्र मारकर आकाशमें इकट्ठेहुए वादलोंको वखेरदिया ॥ २४ ॥ तब कर्णने अर्जुनका नाश करनेकी इच्छासे महाभयानक बलते हुए अग्निकी समान तथा जिसकी पूजा की गयी थी ऐसा एक वाण धनुषपर चढ़ाकर ठीककिया,—उसको देखकर हे भरत-

राजन् सशैलवनकानना ॥ २६ ॥ ववौ सशर्करो वायुर्दिशश्च रजसा वृताः । हाहाकारश्च सञ्जज्ञे सुराणां दिवि भारत ॥२७॥ तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष । विषादं परमं जग्मुः पांडवा दीनचेतसः ॥ २८ ॥ स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः शक्राशनिप्रख्य रुचिः शिताग्रः । भुजान्तरं प्राप्य धनञ्जयस्य विवेश वल्मीक-मिवोरगोत्तमः ॥ २९ ॥ स गाढविद्धः समरे महात्मा विघूर्णमानः श्लथहस्तगाण्डिवः । चचाल बीभत्सुरमित्रमर्दनः क्षितेः प्रकम्पे च यथाचलोत्तमः ॥ ३० ॥ तदन्तरं प्राप्य वृषो महारथो रथांगमुर्वी-गतमुज्जिहीर्षुः ॥ ३१ ॥ रथादवप्लुत्य निगृह्य दोर्भ्यां शशाक दैवान्न महाबलोपि । ततः किरीटी प्रतिलभ्य संज्ञां जग्राह बाणं

वंशी राजन् ! पर्वत, वन और काननों सहित पृथिवी डगमगाने लगी ॥ २५–२६ ॥ पवन धूलि उड़ाताहुआ चलनेलगा, दिशायें धूलिसे ढकगयीं और हे भारत ! स्वर्गमें देवता हाहाकार कर उठे ॥ २७ ॥ हे महाराज ! कर्णको वह बाण चढ़ाते हुए देखकर पांडव उदास मन होकर दुःखी होने लगे ॥ २८ ॥ कर्णका अपने हाथसे छोड़ा हुआ वह बाण इन्द्रके वज्रकी समान कान्ति वाला तथा तीखी धारवाला था, वह बाण अर्जुनकी दोनों भुजाओंके मध्यभागमें ऐसे घुसगया जैसे बड़ाभारी नाग बमईमें घुसता हो ॥ २९ ॥ उससे महात्मा अर्जुन अत्यन्त ही घायल होकर चक्कर खानेलगा, उसका हाथमें लिया हुआ गाण्डीव धनुष ढीला पड़गया और जैसे भूकम्पके समय बड़ा पर्वत डगमगाने लगता है तैसे ही शत्रुओंका मर्दन करनेवाला अर्जुन काँपउठा ३० इस समय अवसर पाकर महारथी कर्ण फिर रथपरसे नीचे उतरा और दोनों हाथोंसे पृथिवीमें धसेहुए रथके पहियेको बाहर निका-लनेका उद्योग करनेलगा, वह महाबली था तो भी दैवयोगसे उसको न निकाल सका ॥ ३१ ॥ इतनेमें ही अर्जुनको चेत

यमदण्डकल्पम् ॥ ३२ ॥ ततोऽर्जुनः प्राञ्जलिकं महात्मा यतोऽब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थम् । छिन्ध्यस्य मूर्द्धानमरेः शरेण न यावदारोहति वै रथं वृषः ॥ ३३ ॥ तथैव सम्पूज्य स तद्वचः प्रभोस्ततः क्षुरं प्रज्वलितं प्रगृह्य । जघान कक्षाममलार्कवर्णां महारथो रथचक्रे निमग्ने ॥ ३४ ॥ तं हस्तिकक्ष्याप्रवरञ्च केतुं सुवर्णमुक्तामणिवज्रपृष्ठम् । ज्ञानप्रकर्षोत्तमशिल्पियुक्तैः कृतं सुरूपं तपनीयचित्रम् ॥ ३५ ॥ जयास्पदं तव सैन्यस्य नित्यममित्रवित्रासनमीड्यरूपम् । विख्यातमादित्यसमं स्म लोके समत्विषं पावकभानुचन्द्रैः॥३६ तत क्षुरप्रेण सुसंशितेन सुवर्णपुंखेन हुताग्निवर्चसा । श्रिया

होगया, उसने यमके दण्डकी समान प्रांजलिक नामका एक बाण लिया उस समय महात्मा कृष्णने अर्जुनसे कहा, कि-३२ यह कर्ण जबतक रथमें नहीं बैठता है इतने समयमें तू बाण मारकर इसके मस्तकको उडादे ॥ ३३ ॥ अर्जुनने बहुत अच्छा कहकर प्रभुकी बातको मानलिया और दहकते हुए बाणको हाथमें लेकर जिस समय उस बड़े रथका पहिया पृथिवीमें धसाहुआ था, उसी समयमें हाथीकी जंजीरके चिन्हवाले सूर्यकी समान कान्तिमान् कर्णके महारथके ध्वजदण्डपर बाण मारा॥३४॥कर्णके इस ध्वजदण्डमें हाथीकी जञ्जीरका चिन्ह था उसका ऊपरका भाग सोने, मोती, मणि और हीरोंसे मढाहुआ था, इस ध्वजदण्डको ऊँचा ज्ञान रखनेवाले श्रेष्ठ शिल्पियोंने बनाया था, वह देखने योग्य और सोनेका बड़ा ही विचित्र बनाहुआ था, आपकी सेनाकी सदा विजय करानेवाला था, शत्रु उसको देखते ही डरजाते थे, वह प्रशंसा करने योग्य, सूर्यकी समान प्रसिद्ध और कान्तिमें सूर्य,चन्द्र तथा अग्निकी समान था ॥३५॥३६॥अर्जुनने सुवर्णके परोंवाले, उत्तम कीर्त्तिमान्, शाकल्यसे होमेहुए अग्निकी समान तेजवाले क्षुरप्र नामक बाणको मारकर कर्णके

ज्वलन्तं ध्वजमुन्ममाथ महारथस्याधिरथेः किरीटी ॥३७॥ यशश्च दर्पश्च तथा जयोपि प्रियाणि सर्वाणि च तेन केतुना । साकं कुरूणां हृदयाणि चापतन् बभूव हाहेति च निःस्वनो महान् ३८ दृष्ट्वा ध्वजं पातितमाशुकारिणा कुरुप्रवीरेण निकृत्तमाहवे । नाशंसिरे सूतपुत्रस्य सर्वे जयं तदा भारत ये त्वदीयाः ॥ ३९ ॥ अथ त्वरन् कर्णवधाय पार्थो महेन्द्रवज्रानलदण्डसन्निभं । आदत्त पार्थोञ्जलिकं निषङ्गात् सहस्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमम् ॥ ४० ॥ मर्मच्छिदं शोणितमांसदिग्धं वैश्वानरार्कप्रतिमं महार्हम् । नराश्वनागासुहरं त्र्यरत्निं षड्वाजमञ्जोगतिमुग्रवेगम् ॥ ४१ ॥ सहस्रनेत्राशनितुल्यवीर्यं कालानलं व्यात्तमिवातिघोरम् । पिनाक-

---

महारथके उस शोभासे दमकते हुए ध्वजदण्डके टुकड़े २ कर डाले ॥ ३७ ॥ उस ध्वजदण्डके गिरनेके साथ ही कौरवोंका यश, दर्प, सकल प्रियकाम और हृदय भी गिरगये, तुरन्त ही महाभारी हाहाकार मचगया ॥ ३८ ॥ फुरतीसे काम करनेवाले कौरववंशके वीर अर्जुनने युद्धमें कर्णके रथके ध्वजदण्डको तोड डाला, यह देखकर, हे भरतवंशी राजन् ! उसी समय तुम्हारे पक्षके सब योधाओंने कर्णके विजयकी आशा छोडदी ॥ ३९ ॥ फिर अर्जुनने कर्णका वध करनेके लिये, फुरतीसे जैसे सहस्र किरणोंवाले सूर्यमेंसे एक किरण लेता हो तैसे भाथेमेंसे महेन्द्रके वज्रकी समान, अग्निकी समान और यमराजके दण्डकी समान अञ्जलिक नामका बाण लिया ॥ ४० ॥ वह बाण मर्मभागको फोडनेवाला रुधिर और मांससे सनाहुआ, अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी, बहुमूल्य, मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके प्राण हरलेनेवाला, तीन अरत्निकी बराबर लम्बा, छः पर और शीघ्र गतिवाला, उग्रवेग और इन्द्रके वज्रकी समान वीरतावाला मुख फाड़ेहुए कालानलकी समान घोर, शिवके पिनाक और विष्णुके

नारायणचक्रसन्निभं भयङ्करं प्राणभृतां विनाशनम् ॥ ४२ ॥ जग्राह पार्थः स शरं प्रहृष्टो यो देवसंघैरपि दुर्निवार्यः । संपूजितो यः सततं महात्मा देवासुरान् यो विजयेन्महेषुः ॥ ४३ ॥ तं वै प्रमृष्टं प्रसमीक्ष्य युद्धे चचाल सर्वं सचराचरं जगत् । स्वस्ति जगत् स्यादृषयः प्रचक्रुशुस्तमुद्यतं प्रेक्ष्य महाहवेषुम् ॥ ४४ ॥ ततस्तु तं वै शरमप्रमेयं गांडीवधन्वा धनुषि न्ययोजयत् । युक्त्वा महास्त्रेण परेण चापं विकृष्य गाण्डीवमुवाच सत्वरम् ॥ ४५ ॥ अयं महास्त्रमहितो महाशरः शरीरहृच्चासुहरश्च दुर्हृदः । तपोऽस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता मया यदीष्टं सुहृदां श्रुतं तथा ॥ ४६ ॥ अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः सुसंशितः कर्णमरिं ममोर्जितम् ।

चक्रकी समान भयानक तथा प्राणियोंको संहार करनेवाला था ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस बाणको अर्जुनने बड़े हर्षमें भरकर हाथमें लिया, जिस बाण को देवता भी पीछेको नहीं हटासकते थे, जो महामान्य बाण देवता और असुरोंको भी जीतसकता था तथा जिसने सर्वत्र पूजा पायी थी ॥ ४३ ॥ ऐसे बाणका अर्जुन युद्धमें प्रयोग कररहा है, यह जानकर स्थावर जङ्गमरूप सब जगत् काँप उठा और महासंग्राममें उस बाणको उठाहुआ देखकर ऋषि चिल्ला उठे, कि-जगत्का कल्याण हो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर गांडीव धनुषधारी अर्जुनने उस अप्रमेय बाणको धनुषकी डोरी पर साधा और फिर गांडीव धनुषको खेंचकर तुरन्त ही बोलउठा, कि—दुष्टचित्त पुरुषके प्राण और शरीरका नाश करनेवाले इस महाबाणको मैं धनुष पर चढाकर कर्णके ऊपर छोड़ता हूँ, यदि मैंने तप किया हो, गुरुओंको प्रसन्न किया हो तथा हितैषियोंका उत्तम उपदेश सुना हो तो उस सत्यके प्रभावसे मेरा ठीक२सन्धान किया हुआ यह बाण मेरे प्रभावशाली शत्रु कर्णका नाश करे, ऐसा कहकर अर्जुनने कर्णका वध करनेके लिये उसके ऊपर वह घोर

इत्यूचिवांस्तं प्रमुमोच बाणं धनञ्जयः कर्णवधाय घोरम् ॥ ४७ ॥ कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां दीप्तामसह्यां युधि मृत्युनापि । ब्रुवन् किरीटी तमतिप्रहृष्टो ह्ययं शरो मे विजयावहोस्तु ॥ जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभावः कर्णं मयास्तो नयतां यमाय ॥ ४८ ॥ तेनेषुवर्येण किरीटमाली प्रहृष्टरूपो विजयावहेन । जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभेण चक्रे विपक्तं रिपुमाततायी ॥ ४९ ॥ तथा विमुक्तो बलिनार्कतेजाः प्रज्वालयामास दिशो नभश्च । ततोर्जुनस्तस्य शिरोज्जहार वज्रेण वृत्रस्य यथा महेन्द्रः ॥५०॥ शरोत्तमेनांजलिकेन राजन् तदा महास्त्रमतिमंत्रितेन । पार्थो पराह्णे शिर उच्चकर्त्त वैकर्त्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः ॥ ५१ ॥ तत् प्रापतच्चाञ्जलिकेन छिन्नमपास्य कायो

बाण छोडा ॥ ४५ ॥ ४७ ॥ अर्जुन चन्द्रमा और सूर्यकी समान प्रभावशाली था, उसकी इच्छा कर्णको मारडालनेकी थी उसने अपने मनमें बहुत ही प्रसन्न होकर 'मेरा यह बाण विजयी हो और मेरे हाथमेंसे छूटकर कर्णको यमके पास लेजाय' ऐसा कहते २ अथर्वांगिराकी बनायी, जिसको संग्राममें मृत्यु भी न सहसके ऐसी प्रचण्ड और प्रदीप्त कृत्याकी समान वह बाण कर्णके ऊपर छोड़ा, आततायी अर्जुनने, अतिप्रसन्न होकर सूर्य तथा चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् और विजय करानेवाला वह महाबाण ठीक शत्रुके सामनेको ताका, उस सूर्यकी समान तेजस्वी महाबाणने बलवान् अर्जुनके हाथमेंसे छूटते ही दिशाओंमें और आकाशमण्डलमें उजाला करदिया और हे राजन् ! जैसे इन्द्रने वज्र मारकर वृत्रासुरका मस्तक काटडाला था तैसे ही इन्द्रपुत्र अर्जुनने भी अञ्जलिक नामके उस बड़े बाणको महास्त्रके मंत्रसे अभिमंत्रित करके कर्णके ऊपर छोडा और उससे कर्णके मस्तकको काटडाला जिस समय कर्णका प्राणान्त हुआ था उस समय तीसरा पहर था ॥ ४८-५१॥ अञ्जलिक नामक बाणसे कटाहुआ कर्णका

निपपात पश्चात् । तदुद्यतादित्यसमानवर्चसं शरन्नभोमध्यग-भास्करोपमम् । वरांगमुर्व्यामपतच्चमूमुखे दिवोकरास्ताद्दिव रक्त-मण्डलः ॥५२॥ ततोस्य देहं सततं सुखोचितं सुरूपमत्यर्थमुदार-कर्मणः परेण कृच्छ्रेण शिरः समत्यजद्गृहं महर्द्धीव ससंगमीश्वरः ॥ ५३ ॥ शरैर्विभिन्नं व्यसु तत् सुवर्चसः प्रपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितम् । स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः ॥ ५४ ॥ देहाच्च कर्णस्य निपातितस्य तेजः सूर्यं खं वितत्याविवेश॥५५ तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः सं दृष्टवन्तो निहते स्म कर्णे । ततः शङ्खान् पांडवा दध्मुरुच्चैर्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गु-

---

शिर पहले कायको त्यागकर पृथिवी पर गिरा और फिर कर्णका शरीर पृथिवी पर गिरा, जैसे लाल २ मण्डलवाला सूर्य अस्ताचल परसे नीचे गिरता है तैसे ही सेनापति कर्णका उदय होतेहुए सूर्यकी समान कान्तिवाला, शरद् ऋतुके आकाशके मध्य-भागमें स्थित सूर्यकी समान तेजस्वी मस्तक, धड़परसे पृथिवी पर गिरपडा, जैसे बडीभारी सम्पत्तिवाला धनी पुरुष परम प्रिय घरको बड़े दुःखसे त्यागता है, ऐसे ही उदार कर्म करनेवाले, महा-तेजस्वी, नित्य सुखके अभ्यासी सूतपुत्र कर्णके परमरूपवान् ऊँचे शरीरने अपने मस्तकको बड़े ही कष्टसे त्यागा और फिर बाणोंकी मारसे छिन्नभिन्न हुआ और प्राणरहित हुआ कर्णका ऊँचा शरीर भी घावमेंसे रुधिर टपकानेलगा और गेरुआ जलको बहानेवाले वज्रसे छिन्न भिन्न कियेहुए पर्वतके शिखरकी समान पृथिवी पर गिरपडा, उस समय कर्णके शरीरमेंसे तेजका पुञ्ज बाहर निकल कर आकाशमें फैलगया, और फिर वह तेज सूर्य-मण्डलमें समागया, इस अद्भुत दृश्यको तहाँ खडेहुए मनुष्योंने और योधाओंने अपनी दृष्टिसे देखा था, इसप्रकार अर्जुनने कर्णको मारडाला, यह देखकर पांडवोंके योधा जोरसे शङ्ख

नेन ॥ ५६ ॥ तथैव कृष्णश्च धनञ्जयश्च हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारि-
जातौ । तं सोमकाः प्रेच्य हतं शयानं प्रीता नादान् सह सैन्यैर-
कुर्वन् ॥ ५७ ॥ तूर्याणि संजघ्नुरतीव हृष्टा वासांसि चैवादुधवु-
र्भुजांश्च । संवर्द्धयन्तश्च नरेन्द्रयोधा पार्थं समाजग्मुरतीव हृष्टाः ५८
बलान्विताश्चापरे ह्यप्यनृत्यन्नन्योऽन्यमाश्लिष्य नन्दत ऊचुः ।
दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि निष्टनन्तं कृत्तं रथात् सायकैरर्जुनस्य ॥ ५९॥
महानिलेनाद्रिमिवापविद्धं यज्ञावसानेऽग्निमिव प्रशान्तम् । रराज
कर्णस्य शिरो निकृत्तमस्तङ्गते भास्करस्येव बिम्बम् ॥ ६० ॥
शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः । विभाति देहः कर्णस्य
स्वरश्मिभिरिवांशुमान् ॥ ६१ ॥ प्रताप्य सेनामामित्रीं दीप्तैः

बजानेलगे ॥ ५२–५६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन भी हर्षमें भरकर शंख बजानेलगे, सोमकवंशके राजे भी कर्णको मारागया जानकर अपनी सेनाके सहित शंखनाद करनेलगे ॥ ५७ ॥ दूसरे महाबली योधा भी, जिसको अर्जुनने बाण मारकर बींधडाला था और जो मरकर रथमेंसे रणभूमिमें गिरपड़ा था उस कर्णके शवको देख बड़े ही हर्षमें भरकर बाजे बजानेलगे, वस्त्र उछालने लगे, आपसमें भुजाओं पर थाप देकर शब्द करनेलगे हे नरेन्द्र ! कितने ही योधा हर्षमें भरकर अर्जुनसे चिपटगये और उसका उत्साह बढानेलगे ॥ ५८ ॥ कितनेही बलवान् योधा अर्जुनके बाणोंसे कटेहुए और रथमेंसे नीचे गिरेहुए कर्णको देख आपसमें आलिङ्गन करके गर्जना करतेहुए नाचने कूदने लगे ॥ ५९ ॥ इस समय अर्जुनका काटाहुआ कर्णका मस्तक, बड़ेभारी पवनसे टूटेहुए पर्वतकी समान और यज्ञ होजाने पर शान्तहुए अग्निकी समान और अस्तहुए सूर्यके बिम्बकी समान शोभा पारहा था ६० कर्णके सब शरीरमें बाण गुभे हुए थे, रुधिरके प्रवाहसे उसका शरीर निचुड़रहा था, इसलिये अपनी किरणोंसे जैसे सूर्य शोभा

शरगभस्तिभिः । बलिनार्जुनकालेन नीतोऽस्तं कर्णभास्करः ।६२।
अस्तं गच्छन् यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति । एवं जीवितमादाय
कर्णस्येषुर्जगाम सः ॥ ६३ ॥ अपराह्ले पराह्लोऽस्य सूतपुत्रस्य
मारिष । छिन्नमञ्जलिकेनाजौ स्योत्सेधमपतच्छिरः ॥ उपर्युपरि
सैन्यानां तस्य शत्रोस्तदञ्जसा । शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः
सोप्याहरद्द्रुतम् ६४ कर्णन्तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणित-
दिग्धगात्रम् । दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराजश्छिन्नध्वजेनापययौ
रथेन ॥ ६५ ॥ हते कर्णे कुरवः प्राद्रवन्त भयार्दिता गाढविद्धाश्च
संख्ये । अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम् ६६
सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः सहस्रनेत्रप्रतिमाननं शुभम् । सहस्र-
पाता है तैसे ही कर्णका शरीर शोभा पारहा था ॥ ६१ ॥ कर्ण-
रूप सूर्यने, शत्रुकी सेनाको, चमकतेहुए बाणरूप किरणोंसे बहुत
ही तपा डाला था और अर्जुनरूप बलवान् सायङ्कालने उसको
अस्तङ्गत करदिया था ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! जैसे अस्त होता
हुआ सूर्य सायङ्कालके समय कांतिको लियेहुए अस्त होजाता
है, ऐसे ही अर्जुनका माराहुआ कर्णका मृत्युरूप बाण भी कर्णके
जीवन को हरकर चलागया ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस दिनका
तीसरा पहर ही उसका अन्तिम दिन था, अञ्जलिक नामक
अस्त्रने सेनाओंके ऊपर ही ऊपर होकर फुरतीसे शत्रु कर्ण
के ऊँचे मस्तकको विना ही परिश्रमके काटडाला और वह ऊँचा
मस्तक रणभूमिमें जापड़ा ६४ वीर कर्णको गुभे हुए बाणोंके सहित
तथा लोहूलुहान शरीरके साथ पृथिवी पर पड़ा हुआ देखकर
मद्रदेशका राजाशल्य जिसका ध्वजदण्ड टूटगया था ऐसे रथपर
रणभूमिमेंसे भागगया ॥ ६५ ॥ कर्णके रणमें गिरते ही कौरव पक्षके
योधा, जो युद्धमें बड़े ही घायल होरहे थे वारम्वार अर्जुनके अति-
प्रकाशमान बड़े ध्वजदण्डको देख भयभीत होकर रणभूमिमेंसे
भागने लगे ॥ ६६ ॥ जैसे सायङ्कालके समय सूर्य अस्त हो जाता

रश्मिर्द्विनसंक्षये यथा तथापतत् कर्णशिरो वसुन्धराम् ॥ ९७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णवधे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

सञ्जय उवाच । शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः । ययौ हते चाधिरथौ पदानुगे रथेन संछिन्नपरिच्छदेन ॥ १ ॥ निपातितस्यन्दनवाजिनागं बलञ्च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम् । दुर्योधनोऽश्रुपरिपूर्णनेत्रो मुहुर्मुहुर्न्यश्वसदार्त्तरूपः ॥२॥ कर्णन्तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् । यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं दिदृक्षवः संपरिवार्य तस्थुः ॥ ३ ॥ प्रहृष्टवित्रस्तविषण्णविस्मितास्तथापरे शोकहता इवा भवन् । परे त्वदी-

---

है तैसे ही सहस्राक्ष इन्द्रकी समान पराक्रम करनेवाले कर्णका कमलकी समान सुन्दरमुखवाला मस्तक भी धड़परसे पृथिवी पर आपड़ा ॥ ९७ ॥ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ ॥ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! कर्ण तथा अर्जुनके युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे कर्णकी सब सेनाका नाश होगया और अधिरथी कर्ण भी रणमें मारागया तब राजा शल्य, जिसके सब भाग टूटगये थे ऐसे रथके सहित पैदल ही कौरवोंकी छावनीकी ओरको चलदिया ॥ १ ॥ कर्णकी सेनाके, रथ, घोड़े हाथी और उसका सेनापति कर्ण भी रणमें मारागया है, यह देखकर दुर्योधन सुस्त होगया, उसकी दोनों आँखें आँसुओंसे भरगयीं और वह व्याकुल होकर वारम्वार लंबे २ साँस लेनेलगा ॥ २ ॥ दैवकी इच्छासे जैसे सूर्य पृथिवी पर आपड़े तैसे ही वीर कर्ण रणभूमिमें पड़ाहुआ था, उसका शरीर बाणोंसे भराहुआ और लोहूलुहान होरहा था, उसको देखनेके लिये योधा चारों ओरसे घेरे खड़े थे ॥ ३ ॥ कर्णको रणमें पड़ाहुआ देखकर तुम्हारे तथा शत्रुपक्षके योधाओंमेंसे कितने ही बड़े प्रसन्नहुए, कितने ही सहम

याश्च परस्परं जना यथा यथैषां प्रकृतिस्तथाभवन् ॥४॥ प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधं धनञ्जयेनाभिहतं महौजसम् । निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रवुर्हतर्षभा गाव इवाजने वने ॥ ५ ॥ भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन नादं कृत्वा रोदसी कम्पयानः । आस्फोटयन् वल्गते नृत्यते च हते कर्णे त्रासयन् धार्त्तराष्ट्रान् ॥ ६ ॥ तथैव राजन् सोमकाः सृञ्जयाश्च शङ्खान् दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे । परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः सूतात्मजे वै निहते तदानीम् ॥ ७ ॥ कृत्वा विमर्दं भृशमर्जुनेन कर्णो हतः केसरिणेव नागः । तीर्णा प्रतिज्ञा पुरुषर्षभेण वैरस्यान्तं गतवांश्चैव पार्थः ॥ ८ ॥ मद्राधिपश्चापि विमूढचेतास्तूर्णं रथेनापहृतध्वजेन । दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य

गये, कितने ही खेद करनेलगे, कितने ही आश्चर्यमें होगये और कितने ही शोकसे व्याकुल होगये, जिनकी जैसी प्रकृति थी उसके अनुसार ही वे हर्ष वा शोक मनारहे थे ॥ ४ ॥ अर्जुनने रणमें कर्णके शरीरपरके कवचको, गहनोंको और आयुधोंको बींधडाला था तथा महाबली कर्णको मारडाला यह देखकर, जैसे निर्जन वनमें महाबली मुख्य बैलके मरजाने पर दूसरे बैल भागजाते हैं तैसे ही कौरव भी रणमेंसे भागगये ॥ ५ ॥ उस समय भीमसेन भयानक गर्जना करनेलगा, आकाश तथा पृथ्वीको कम्पायमान करनेलगा, वह खमे ठोककर, कूदकर, और नाचकर तुम्हारे पुत्रोंको त्रास देनेलगा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जब कर्ण मारागया, उस समय सोमक और सृञ्जय वंशके राजे तथा दूसरे क्षत्रिय भी आनन्दमें भरकर शङ्ख बजाने लगे तथा एक दूसरेको हृदयसे लगाने लगे ॥ ७ ॥ जैसे केहरी सिंह हाथीको मारडालता है तैसेही महात्मा अर्जुनने योधाओंकी बड़ीभारी मारकाट करके कर्णको मार अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करतेहुए वैरका बदला लिया था ॥ ८ ॥ मद्रदेशका राजा शल्य

राजन् सवाष्पदुःखात् वचनं बभाषे ॥ ९ ॥ विशीर्णनागाश्वरथ-
प्रवीरं बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम् । अन्योन्यमासाद्य हतं मह-
द्भिर्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः ॥ १० ॥ नैतादृशं भारत युद्धमासी-
न्यथाद्य कर्णार्जुनयोर्बभूव । ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णावन्ये
च सर्वे तव शत्रवो ये ॥ ११ ॥ दैवं ध्रुवं पार्थवशात् प्रवृत्तं तत्
पाण्डवान् पाति हिनस्ति चास्मान् । तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे
प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः ॥ १२ ॥ कुवेरवैवस्वतवासवानां
तुल्यप्रभावा नृपते सुवीराः । वीर्येण शौर्येण बलेन तेजसा तैस्तैश्च
युक्ता विविधैर्गुणौघैः ॥१३॥ अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रास्तवा-

घवड़ागया और तुरन्तही जिसका ध्वजदण्ड टूटगया था ऐसे रथमें वैठकर दुर्योधनके पास गया और दुःखके मारे रोता२ कहनेलगा, कि-॥ ९ ॥ तुम्हारी सेनाके हाथी, घोड़े, रथ और योधा मरगये हैं, तुम्हारा सेनादल यमराजके देशकी समान (प्रेतनगर) हो गया है, पर्वतके शिखरोंकी समान वड़े२ योधाओंने, घुड़सवारोंने और हाथियोंने आपसमें युद्ध करके परस्परका संहार करडाला है ॥ १० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कर्ण और अर्जुनका आपसमें जैसा युद्ध हुआ था, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था, कर्णने युद्धमें चढ़ायी करके कृष्ण, अर्जुन तथा दूसरे सव शत्रुओंको घेरलिया था ॥ ११ ॥ परन्तु अर्जुनके पराक्रमके कारणसे हमारा दैव सर्वथा उलटा होगया, दैव पाण्डवोंकी रक्षा करता है और हमारा नाश करता है, इसकारण तुम्हारे कामको सिद्ध करनेवाले सव वीरोंको शत्रुओंने वलात्कारसे रणमें मारडाला ॥ १२ ॥ हे राजन् ! हमारे पक्षके योधा कुवेर, वैवस्वत और इन्द्रकी समान प्रभावशाली थे, वे वीरता शूरता वल तेज आदि अनेकों गुणोंके भण्डार थे ॥ १३ ॥ वे ऐसे थे कि-उनको कोई मारही नहीं सकता था और वे तुम्हारा काम सिद्ध करना चाहते थे, उनको

नारायणचक्रसन्निभं भयङ्करं प्राणभृतां विनाशनम् ॥ ४२ ॥ जग्राह पार्थः स शरं प्रहृष्टो यो देवसंघैरपि दुर्निवार्यः । संपूजितो यः सततं महात्मा देवासुरान् यो विजयेन्महेषुः ॥ ४३ ॥ तं वै प्रमृष्टं प्रसमीक्ष्य युद्धे चचाल सर्वं सचराचरं जगत् । स्वस्ति जगत् स्यादृषयः प्रचक्रुशुस्तमुद्यतं प्रेक्ष्य महाहवेषुम् ॥ ४४ ॥ ततस्तु तं वै शरमप्रमेयं गांडीवधन्वा धनुषि व्ययोजयत् । युक्त्वा महास्त्रेण परेण चापं विकृष्य गाण्डीवमुवाच सत्वरम् ॥ ४५ ॥ अयं महास्त्रप्रहितो महाशरः शरीरहृच्चासुहरश्च दुर्हृदः । तपोस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता मया यदीष्टं सुहृदां श्रुतं तथा ॥ ४६ ॥ अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः सुसंशितः कर्णमरिं ममोर्जितम् ।

चक्रकी समान भयानक तथा प्राणियोंको संहार करनेवाला था ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस वाणको अर्जुनने बड़े हर्षमें भरकर हाथमें लिया, जिस वाण को देवता भी पीछेको नहीं हटासकते थे, जो महामान्य वाण देवता और असुरोंको भी जीतसकता था तथा जिसने सर्वत्र पूजा पायी थी ॥ ४३ ॥ ऐसे वाणका अर्जुन युद्धमें प्रयोग कररहा है, यह जानकर स्थावर जङ्गमरूप सब जगत् काँप उठा और महासंग्राममें उस वाणको उठाहुआ देखकर ऋषि चिल्ला उठे, कि-जगत्का कल्याण हो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर गांडीव धनुषधारी अर्जुनने उस अप्रमेय वाणको धनुषकी डोरी पर साधा और फिर गांडीव धनुषको खेंचकर तुरन्त ही बोलउठा, कि-दुष्टचित्त पुरुषके प्राण और शरीरका नाश करनेवाले इस महावाणको मैं धनुष पर चढाकर कर्णके ऊपर छोड़ता हूँ, यदि मैंने तप किया हो, गुरुओंको प्रसन्न किया हो तथा हितैषियोंका उत्तम उपदेश सुना हो तो उस सत्यके प्रभावसे मेरा ठीक२सन्धान किया हुआ यह वाण मेरे प्रभावशाली शत्रु कर्णका नाश करे, ऐसा कहकर अर्जुनने कर्णका वध करनेके लिये उस योधा जोरसे शत्रु

इत्यूचिवांस्तं प्रमुमोच बाणं धनञ्जयः कर्णवधाय घोरम् ॥ ४७ ॥ कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां दीप्तामसह्यां युधि मृत्युनापि । ब्रुवन् किरीटी तमतिप्रहृष्टो ह्ययं शरो मे विजयावहोस्तु ॥ जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभावः कर्णं मयास्तो नयतां यमाय ॥ ४८ ॥ तेनेषुवर्येण किरीटमाली प्रहृष्टरूपो विजयावहेन । जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभेण चक्रे विपक्तं रिपुमाततायी ॥ ४९ ॥ तथा विमुक्तो बलिनार्कतेजाः प्रज्वालयामास दिशो नभश्च । ततोर्जुनस्तस्य शिरोऽजहार वज्रेण वृत्रस्य यथा महेन्द्रः ॥५०॥ शरोत्तमेनाञ्जलिकेन राजन् तदा महास्त्रमतिमन्त्रितेन । पार्थो पराह्ले शिरं उच्चकर्त्त वैकर्त्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः ॥ ५१ ॥ तत् प्रापतच्चाञ्जलिकेन छिन्नमपास्य कायो

बाण छोडा ॥ ४५ ॥ ४७ ॥ अर्जुन चन्द्रमा और सूर्यकी समान प्रभावशाली था, उसकी इच्छा कर्णको मारडालनेकी थी उसने अपने मनमें बहुत ही प्रसन्न होकर 'मेरा यह बाण विजयी हो और मेरे हाथमेंसे छूटकर कर्णको यमके पास लेजाय' ऐसा कहते २ अथर्वाङ्गिराकी बनायी, जिसको संग्राममें मृत्यु भी न सहसके ऐसी प्रचण्ड और प्रदीप्त कृत्याकी समान वह बाण कर्णके ऊपर छोड़ा, आततायी अर्जुनने, अतिप्रसन्न होकर सूर्य तथा चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् और विजय करानेवाला वह महाबाण ठीक शत्रुके सामनेको ताका, उस सूर्यकी समान तेजस्वी महाबाणने बलवान् अर्जुनके हाथमेंसे छूटते ही दिशाओंमें और आकाशमण्डलमें उजाला करदिया और हे राजन् ! जैसे इन्द्रने वज्र मार कर वृत्रासुरका मस्तक काटडाला था तैसे ही इन्द्रपुत्र अर्जुनने भी अञ्जलिक नामके उस बड़े बाणको महास्त्रके मंत्रसे अभिमंत्रित करके कर्णके ऊपर छोडा और उससे कर्णके मस्तकको काटडाला ... समय कर्णका प्राणान्त हुआ था उस समय तीसरा पहर ... लिक नामक बाणसे कटाहुआ कर्णका

निपपात पश्चात् । तदुद्यतादित्यसमानवर्चसं शरन्नभोमध्यग-भास्करोपमम् । वरांगमुर्व्यामपतच्चमूमुखे दिवाकरास्तादिव रक्त-मण्डलः ॥५२॥ ततोस्य देहं सततं सुखोचितं सुरूपमत्यर्थमुदार-कर्मणः परेण कृच्छ्रेण शिरः समत्यजद्गृहं महर्द्धीव ससंगमी-श्वरः ॥ ५३ ॥ शरैर्विभिन्नं व्यसु तत् सुवर्चसः पपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितम् । स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः ॥ ५४ ॥ देहाच्च कर्णस्य निपातितस्य तेजः सूर्यं खं वितत्याविवेश॥५५ तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः सं दृष्टवन्तो निहते स्म कर्णे । ततः शङ्खान् पांडवा दध्मुरुच्चैर्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गु-

---

शिर पहले कायको त्यागकर पृथिवी पर गिरा और फिर कर्णका शरीर पृथिवी पर गिरा, जैसे लाल २ मण्डलवाला सूर्य अस्ताचल परसे नीचे गिरता है तैसे ही सेनापति कर्णका उदय होतेहुए सूर्यकी समान कान्तिवाला, शरद् ऋतुके आकाशके मध्य-भागमें स्थित सूर्यकी समान तेजस्वी मस्तक, धड़परसे पृथिवी पर गिरपडा, जैसे बडीभारी सम्पत्तिवाला धनी पुरुष परम प्रिय घरको बड़े दुःखसे त्यागता है, ऐसे ही उदार कर्म करनेवाले, महा-तेजस्वी, नित्य सुखके अभ्यासी सूतपुत्र कर्णके परमरूपवान् ऊँचे शरीरने अपने मस्तकको बड़े ही कष्टसे त्यागा और फिर बाणोंकी मारसे छिन्नभिन्न हुआ और प्राणरहित हुआ कर्णका ऊँचा शरीर भी घावमेंसे रुधिर टपकानेलगा और गेरुआ जलको बहानेवाले वज्रसे छिन्न भिन्न कियेहुए पर्वतके शिखरकी समान पृथिवी पर गिरपडा, उस समय कर्णके शरीरमेंसे तेजका पुञ्ज बाहर निकल कर आकाशमें फैलगया, और फिर वह तेज सूर्य-मण्डलमें समागया, इस अद्भुत दृश्यको वहाँ खडेहुए मनुष्योंने और योधाओंने अपनी दृष्टिसे देखा था, इसप्रकार अर्जुनने कर्णको मारडाला, यह देखकर पांडवोंके योधा जोरसे शङ्ख

नेन ॥ ५६ ॥ तथैव कृष्णश्च धनञ्जयश्च हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारि-
जातौ । तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं प्रीता नादान् सह सैन्यैर-
कुर्वन् ॥ ५७ ॥ तूर्याणि संजघ्नुरतीव हृष्टा वासांसि चैवादुधवु-
र्भुजांश्च । संवर्द्धयन्तश्च नरेन्द्रयोधा पार्थं समाजग्मुरतीव हृष्टाः ५८
बलान्विताश्चापरे ह्यप्यनृत्यन्नन्योऽन्यमाश्लिष्य नदन्त ऊचुः ।
दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि निष्टनन्तं कृत्तं रथात् सायकैरर्जुनस्य ॥ ५९॥
महानिलेनाद्रिमिवापविद्धं यज्ञावसानेऽग्निमिव प्रशान्तम् । रराज
कर्णस्य शिरो निकृत्तमस्तङ्गते भास्करस्येव बिम्बम् ॥ ६० ॥
शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः । विभाति देहः कर्णस्य
स्वरश्मिभिरिवांशुमान् ॥ ६१ ॥ प्रताप्य सेनामामित्रीं दीप्तैः

बजानेलगे ॥ ५२–५६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन भी हर्षमें भरकर शंख बजानेलगे, सोमकवंशके राजे भी कर्णको मारागया जान कर अपनी सेनाके सहित शंखनाद करनेलगे ॥ ५७ ॥ दूसरे महाबली योधा भी, जिसको अर्जुनने बाण मारकर बींधडाला था और जो मरकर रथमेंसे रणभूमिमें गिरपड़ा था उस कर्णके शवको देख बड़े ही हर्षमें भरकर बाजे बजानेलगे, वस्त्र उछालने लगे, आपसमें भुजाओं पर थाप देकर शब्द करनेलगे हे नरेन्द्र ! कितने ही योधा हर्षमें भरकर अर्जुनसे चिपटगये और उसका उत्साह बढानेलगे ॥ ५८ ॥ कितनेही बलवान् योधा अर्जुनके बाणोंसे कटेहुए और रथमेंसे नीचे गिरेहुए कर्णको देख आपसमें आलिङ्गन करके गर्जना करतेहुए नाचने कूदने लगे ॥ ५९ ॥ इस समय अर्जुनका काटाहुआ कर्णका मस्तक, बड़ेभारी पवनसे टूटेहुए पर्वतकी समान और यज्ञ होजाने पर शान्तहुए अग्निकी समान और अस्तहुए सूर्यके बिम्बकी समान शोभा पारहा था ६० कर्णके सब शरीरमें बाण गुभे हुए थे, रुधिरके प्रवाहसे उसका शरीर निचुड़रहा था, इसलिये अपनी किरणोंसे जैसे सूर्य शोभा

शरगभस्तिभिः । बलिनार्जुनकालेन नीतोऽस्तं कर्णभास्करः ।६२।
अस्तं गच्छन् यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति । एवं जीवितमादाय
कर्णस्येषुर्जगाम सः ॥ ६३ ॥ अपराह्णे पराह्णोऽस्य सूतपुत्रस्य
मारिष । छिन्नमञ्जलिकेनाजौ स्योत्सेधमपतच्छिरः ॥ उपर्युपरि
सैन्यानां तस्य शत्रोस्तदञ्जसा । शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः
सोऽप्याहरद् द्रुतम्६४कर्णन्तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणित-
दिग्धगात्रम् । दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराजश्छिन्नध्वजेनापययौ
रथेन ॥ ६५ ॥ हते कर्णे कुरवः प्राद्रवन्त भयार्दिता गाढविद्धाश्च
संख्ये । अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम्६६
सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः सहस्रनेत्रप्रतिमाननं शुभम् । सहस्र-
पाता है तैसे ही कर्णका शरीर शोभा पारहा था॥ ६१ ॥ कर्ण-
रूप सूर्यने, शत्रुकी सेनाको, चमकतेहुए बाणरूप किरणोंसे बहुत
ही तपा डाला था और अर्जुनरूप बलवान् सायङ्कालने उसको
अस्तङ्गत करदिया था ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! जैसे अस्त होता
हुआ सूर्य सायङ्कालके समय कांतिको लियेहुए अस्त होजाता
है, ऐसे ही अर्जुनका माराहुआ कर्णका मृत्युरूप बाण भी कर्णके
जीवन को हरकर चलागया ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस दिनका
तीसरा पहर ही उसका अन्तिम दिन था, अञ्जलिक नामक
अस्त्रने सेनाओंके ऊपर ही ऊपर होकर फुरतीसे शत्रु कर्ण
के ऊँचे मस्तकको विना ही परिश्रमके काटडाला और वह ऊँचा
मस्तक रणभूमिमें जापड़ा६४वीर कर्णको गुभेहुए बाणोंके सहित
तथा लोहूलुहान शरीरके साथ पृथिवी पर पड़ा हुआ देखकर
मद्रदेशका राजाशल्य जिसका ध्वजदण्ड टूटगया था ऐसे रथपर
रणभूमिमेंसे भागगया॥६५॥ कर्णके रणमें गिरते ही कौरव पक्षके
योधा,जो युद्धमें बड़े ही घायल होरहे थे बारम्बार अर्जुनके अति-
प्रकाशमान बड़े ध्वजदण्डको देख, भयभीत होकर रणभूमिमेंसे
भागने लगे ॥ ६६ ॥ जैसे सायङ्कालके समय सूर्य अस्त हो जाता

रश्मिर्दिनसंक्षये यथा तथापतत् कर्णशिरो वसुन्धराम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णवधे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

सञ्जय उवाच । शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः । ययौ हते चाधिरथौ पदानुगे रथेन संछिन्नपरिच्छदेन ॥ १ ॥ निपातितस्यन्दनवाजिनागं बलञ्च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम् । दुर्योधनोऽश्रुपरिपूर्णनेत्रो मुहुर्मुहुर्न्यश्वदार्त्तरूपः ॥ २ ॥ कर्णन्तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् । यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं दिदृक्षवः संपरिवार्य तस्थुः ॥ ३ ॥ प्रहृष्टवित्रस्त्रविषण्णविस्मितास्तथापरे शोकहता इवा भवन् । परे त्वदी-

---

है तैसे ही सहस्राक्ष इन्द्रकी समान पराक्रम करनेवाले कर्णका कमलकी समान सुन्दरमुखवाला मस्तक भी धड़परसे पृथिवी पर आपडा ॥ ६७ ॥ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! कर्ण तथा अर्जुनके युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे कर्णकी सब सेनाका नाश होगया और अधिरथी कर्ण भी रणमें मारागया तब राजा शल्य, जिसके सब भाग टूटगये थे ऐसे रथके सहित पैदल ही कौरवोंकी छावनीकी ओरको चलदिया ॥ १ ॥ कर्णकी सेनाके, रथ, घोड़े हाथी और उसका सेनापति कर्ण भी रणमें मारागया है, यह देखकर दुर्योधन सुस्त होगया, उसकी दोनों आँखें आँसुओंसे भरगयीं और वह बावलासा होकर वारम्वार लंबे २ साँस लेनेलगा ॥ २ ॥ दैवकी इच्छासे जैसे सूर्य पृथिवी पर आपड़े तैसे ही वीर कर्ण रणभूमिमें पड़ाहुआ था, उसका शरीर बाणोंसे भराहुआ और लोहूलुहान होरहा था, उसको देखनेके लिये योधा चारों ओरसे घेरे खड़े थे ॥ ३ ॥ कर्णको रणमें पडाहुआ देखकर तुम्हारे तथा शत्रुपक्षके योधाओंमेंसे कितने ही बड़े प्रसन्नहुए, कितने ही सहम

श्चाश्च परस्परं जना यथा यथैषां प्रकृतिस्तथाभवन् ॥४॥ प्रविद्ध-वर्माभरणाम्बरायुधं धनञ्जयेनाभिहतं महौजसम् । निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवुर्हतर्षभा गाव इवाजने वने ॥ ५ ॥ भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन नादं कृत्वा रोदसी कम्पयानः । आस्फोटयन् वल्गते नृत्यते च हते कर्णे त्रासयन् धार्त्तराष्ट्रान् ॥ ६ ॥ तथैव राजन् सोमकाः सृञ्जयाश्च शङ्खान् दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे । परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः सूतात्मजे वै निहते तदानीम् ॥ ७ ॥ कृत्वा विमर्दं भृशमर्जुनेन कर्णो हतः केसरिणेव नागः । तीर्णा प्रतिज्ञा पुरुषर्षभेण वैरस्यान्तं गतवांश्चैव पार्थः ॥ ८ ॥ मद्राधिप-श्चापि विमूढचेतास्तूर्णं रथेनापहृतध्वजेन । दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य

गये, कितने ही खेद करनेलगे, कितने ही आश्चर्यमें होगये और कितने ही शोकसे व्याकुल होगये, जिनकी जैसी प्रकृति थी उसके अनुसार ही वे हर्ष वा शोक मनारहे थे ॥ ४ ॥ अर्जुनने रणमें कर्णके शरीरपरके कवचको, गहनोंको और आयुधोंको बींधडाला था तथा महाबली कर्णको मारडाला यह देखकर, जैसे निर्जन वनमें महाबली मुख्य बैलके मरजाने पर दूसरे बैल भागजाते हैं तैसे ही कौरव भी रणमेंसे भागगये ॥ ५ ॥ उस समय भीमसेन भयानक गर्जना करनेलगा, आकाश तथा पृथ्वीको कम्पायमान करनेलगा, वह खमे ठोककर, कूदकर, और नाचकर तुम्हारे पुत्रोंको त्रास देनेलगा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जब कर्ण मारागया, उस समय सोमक और सृञ्जय वंशके राजे तथा दूसरे क्षत्रिय भी आनन्दमें भरकर शङ्ख बजाने लगे तथा एक दूसरेको हृदयसे लगाने लगे ॥ ७ ॥ जैसे केहरी सिंह हाथीको मारडालता है तैसेही महात्मा अर्जुनने योधाओंकी बड़ीभारी मारकाट करके कर्णको मार अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करतेहुए वैरका बदला लिया था ॥ ८ ॥ मद्रदेशका राजा शल्य

राजन् सवाष्पदुःखात् वचनं बभाषे ॥ ६ ॥ विशीर्णनागाश्वरथ-प्रवीरं बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम् । अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भिर्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः ॥ १० ॥ नैतादृशं भारत युद्धमासीद्यथाद्य कर्णार्जुनयोर्बभूव । ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णावन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये ॥ ११ ॥ दैवं ध्रुवं पार्थवशात् प्रवृत्तं तत् पाण्डवान् पाति हिनस्ति चास्मान् । तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः ॥ १२ ॥ कुवेरवैवस्वतवासवानां तुल्यप्रभावा नृपते सुवीराः । वीर्येण शौर्येण बलेन तेजसा तैस्तैश्च युक्ता विविधैर्गुणौघैः ॥१३॥ अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रास्तवा-

घवड़ागया और तुरन्तही जिसका ध्वजदण्ड टूटगया था ऐसे रथमें बैठकर दुर्योधनके पास गया और दुःखके मारे रोता२ कहनेलगा, कि–॥ ६ ॥ तुम्हारी सेनाके हाथी, घोड़े, रथ और योधा मरगये हैं, तुम्हारा सेनादल यमराजके देशकी समान (प्रेतनगर) हो गया है, पर्वतके शिखरोंकी समान बड़े२ योधाओंने, घुड़सवारोंने और हाथियोंने आपसमें युद्ध करके परस्परका संहार करडाला है ॥ १० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कर्ण और अर्जुनका आपसमें जैसा युद्ध हुआ था, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था, कर्णने युद्धमें चढ़ायी करके कृष्ण, अर्जुन तथा दूसरे सब शत्रुओंको घेरलिया था ॥ ११ ॥ परन्तु अर्जुनके पराक्रमके कारणसे हमारा दैव सर्वथा उलटा होगया, दैव पाण्डवोंकी रक्षा करता है और हमारा नाश करता है, इसकारण तुम्हारे कामको सिद्ध करनेवाले सब वीरोंको शत्रुओंने बलात्कारसे रणमें मारडाला ॥ १२ ॥ हे राजन् ! हमारे पक्षके योधा कुबेर, वैवस्वत और इन्द्रकी समान प्रभावशाली थे, वे वीरता शूरता बल तेज आदि अनेकों गुणोंके भण्डार थे ॥ १३ ॥ वे ऐसे थे कि–उनको कोई मारही नहीं सकता था और वे तुम्हारा काम सिद्ध करना चाहते थे, उनको

क्रुद्धः शतशोथ सहस्रशः । तत्सैन्यं पाण्डवेयानां योधयामास सर्वतः ॥ ४९ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् । यदेकः सहितान् सर्वान् रणेऽयुध्यत पाण्डवान् ॥ ५० ॥ दुर्योधनः स्वकं सैन्यमपश्यद्भृशदुःखितम् । ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः ॥ ५१ ॥ हर्षयन्निव तान् योधानिदं वचनमब्रवीत् । न तं देशं मपश्यामि यत्र याता भयार्दिताः ॥ ५२ ॥ गतानां यत्र वो मोक्षः पाण्डवात्किं गतेन वः । अल्पञ्च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥ ५३ ॥ अद्य सर्वान् हनिष्यामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् । विप्रयातांस्तु नो भिन्नान् पाण्डवाः कृतकिल्बिषान् ५४ अनुसृत्य वधिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः । सुखं सांग्रामिको मृत्युः

करने लगे, दुर्योधनने जराभी न घबड़ाकर रणमें तेजकिये हुए बाण मार पांडवोंके सैंकड़ों और सहस्रों योधाओंका संहार कर डाला, इस संग्राममें हमने तुम्हारे पुत्रका जैसा अचरज भरा पराक्रम देखा था वह यह था, कि-दुर्योधनने अकेलेही रणमें पांडवोंकी सब सेनाके साथ युद्ध किया था ॥ ४५-५० ॥ इसके बाद तुम्हारे बुद्धिमान् महात्मा पुत्रने जब देखा, कि-उसकी अपनी सेना बड़ा दुःख पारही है तो वह अपनी सेनाको खडी रखकर सैनिकोंको प्रसन्न करता हुआ यह कहने लगा कि-अरे! सैनिकों! तुम भयसे व्याकुल होकर जिस देशमें जानेपर पांडवोंसे बचजाओ ऐसा कोईभी देश मुझे नहीं दीखता, फिर भागनेसे क्या लाभ है? पांडवोंके पास थोड़ीसी सेना है, कृष्ण और अर्जुन बहुतही घायल होगये हैं, आज मैंइन सबका नाश करडालूँगा और मेरी विजय अवश्यही होगी, तुम सेनामें भागड़ डालकर चले जाओगे तो भी पांडव तुम अपराधियोंके पीछे दौड़कर तुम्हें मारडालेंगे, ऐसे धर्मभ्रष्ट होकर मरनेकी अपेक्षा तो युद्धमें मारा जाना ही अच्छा है, क्षत्रियके धर्मके अनुसार युद्ध करनेवालोंका संग्राममें मरण होनाही

क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥ ५५ ॥ मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चान-
न्त्यमश्नुते । शृणुध्वं क्षत्रियाः सर्वे यावन्तः स्थ समागताः ५६
यदा शूरश्च भीरुश्च मारत्यन्तको यमः । को नु मूढो न युध्येत
मादृशः क्षत्रियव्रतः ॥ ५७ ॥ द्विषतो भीमसेनस्य क्रुद्धस्य वश-
मेष्यथ । पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥५८॥ न ह्यधर्मोस्ति
पापीयान् क्षत्रियस्य पलायनात् । न युद्धधर्माच्छ्रेयोन्यः पन्थाः
स्वर्गस्य कौरवाः । अचिरेण हता लोकान् सद्यो योधः समश्नुते:५९
सञ्जय उवाच । एवं ब्रुवति ते पुत्रे सैनिका भृशविक्षताः । अन-
वेक्ष्यैव तद्वाक्यं प्राद्रवन् सर्वतो मुखम् ॥ ६० ॥
इतिश्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कौरवसैन्यपलायने त्रिनवतितमोऽध्यायः

सुखदायक मानाजाता है, क्योंकि–संग्राममें मरनेवालोंको दुःख नहीं होता है, किन्तु उनको तो परलोकमें बड़ाभारी सुख मिलता है, यहाँ इकट्ठे हुए सब क्षत्रिय सुन लो, जब यमराज वीर और डरपोक दोनोंको ही मारता है तब मुझसरीखा क्षत्रिय व्रतको धारण करनेवाला ऐसा कौनसा मूढ़ पुरुष है जो युद्ध नहीं करेगा ?॥ ५१–५७॥ भीम हमारा शत्रु है, वह क्रोधमें भराहुआ है, इसलिये तुम भागजाओगे तो भी वह तुम्हें पकड़कर मारडालेगा अतः तुम्हें अपने बापदादोंके आचरण कियेहुए क्षत्रियधर्मका त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ५८ ॥ हे कौरव पक्षके योधाओं ! क्षत्रियके के लिये रणमेंसे भागजानेकी समान महापापी अधर्म और कोई भी नहीं है तथा युद्धकी समान स्वर्ग देनेवाला दूसरा धर्म नहीं है, हे योधाओं ! तुम रणमें मरतेही स्वर्गमें पहुँचजाओगे ॥ ५९ ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्रने सैनिकोंको ऐसे२ बहुतसे उपदेश दिये, परन्तु बहुतही घायल हुए योधा दुर्योधनकी बातों पर कुछ भी ध्यान न देकर चारों ओरको भागने ही लगे ॥ ६० ॥ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥ ॥

सञ्जय उवाच। दृष्ट्वा तु सैन्यं विनिवर्त्यमानं पुत्रेण ते मद्रपतिस्तदानीम्। सन्त्रस्तरूपः परिमूढचेता दुर्योधनं वाक्यमिदं बभाषे १ शल्य उवाच। पश्येदमुग्रं नरवाजिनागैरायोधनं वीरशतैः सुपूर्णम्। महीधराभैः पतितैर्महांगजैः सकृत्प्रभिन्नैः शरभिन्नदेहैः ॥ २ ॥ तैर्विह्वलद्भिश्च गतासुभिश्च प्रध्वस्तवर्मायुधचर्मखड्गैः। वज्रापविद्धैरिव चाचलेन्द्रैर्विभिन्नपाषाणमहाद्रुमौषधैः ॥ ३ ॥ प्रविद्धघण्टांकुशतोमरध्वजैः सहेमजालै रुधिरौघसंप्लुतैः। शराभिभिन्नैः पतितैश्च वाजिभिः श्वसद्भिरार्त्तैः क्षतजं वमद्भिः ॥ ४ ॥ दीनं स्तनद्भिः परिवृत्तनेत्रैर्महीं दशद्भिः कृपणं नदद्भिः। तथापविद्धैर्गज-

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन जिस समय सेनाको पीछेको लौटानेका उद्योग कररहा था, उस समय मद्रदेशका राजा शल्य, जो सहम गया था और इस लिये जिसका चित्त उचाट खागया था उसने दुर्योधनसे इसप्रकार कहा ॥ १ ॥ शल्य बोला, कि—हे वीर! मरेहुए मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके समूहोंसे तथा जिनके गण्डस्थलोंमेंसे केवल एक ही वार मद टपका है ऐसे बाणोंसे विंधेहुए पहाड़ोंकी समान पड़ेहुए बड़े २ हाथियोंसे भरीहुई इस प्रचण्ड रणभूमिको देख, कितने ही हाथी विह्वल होकर रणभूमिमें पड़े हैं, कितने ही मरगये हैं और उनके ऊपर चढनेवालोंके कवच, आयुध, ढाल और तलवारें भी चूर २ होगयी हैं, हाथियोंके गलेके घण्टे, अंकुश तोमर और ध्वजा भी टूटी पड़ी हैं और वे हाथी सुनहरी झूलोंके साथ लोहूलुहान होकर रणभूमिमें पड़े हैं, वज्रके प्रहारसे जिनके पाषाण, बड़े २ वृक्ष और औषधियोंका नाश होगया हो ऐसे ढहेहुए बड़े २ पहाड़ोंकी समान वे हाथी दीखरहे हैं और बाणोंसे फटे हुए घोड़े भी आतुर होकर रणमें पड़े २ श्वास लेरहे हैं तथा मुखमेंसे रुधिर ओकरहे हैं ॥ २-४ ॥ तथा जिनको शत्रुओंने

वाजियोधैर्बलापविद्धैरथ वीरसंघैः ॥ ५ ॥ मन्दासुभिश्चैव गतासुभिश्च नराश्वनागैश्च रथैश्च मर्दितैः। मंदांशुभिश्चैव मही महाहवे नूनं यथा वैतरणीव भाति ॥६॥ गजैर्निकृत्तैर्वरहस्तगात्रैरुद्वेपमानैः पतितैः पृथिव्यां । विशीर्णदन्तैः क्षतजं वमद्भिः स्फुरद्भिरार्त्तैः करुणं नदद्भिः ॥ ७ ॥ निकृत्तचक्रेषुयुगैः सयोक्त्रभिः प्रवृद्धतूणीरपताककेतुभिः । सुवर्णजालावततैर्भृशाहतैर्महारथौघैर्जलदैरिवावृता ॥ ८ ॥ यशस्विभिर्नागरथाश्वयोधिभिः पदातिभिश्चाभिमुखैर्हतैः परैः । विशीर्णवर्माभरणाम्बरायुधैर्वृता प्रशान्तैरिव पावकैर्मही ॥ ९ ॥ शरप्रहाराभिहतैर्महाबलैरवेक्षमाणैः पतितैः सहस्रशः ।

पराक्रम करके मारडाला है ऐसे हाथीसवार, घुडसवार और दूसरे वीर पुरुषोंके मण्डल भी दीनताके साथ चीखें माररहे हैं, रणभूमिको काट रहे हैं इनके रोनेको सुनकर दया आती है और इनकी आंखें ऊपरको चढ़कर लौटगयीं हैं, थोड़े २ प्राणवाले और मरेहुए योधाओंसे, घोड़ोंसे, हाथियोंसे तथा टूटेहुए रथोंके कारण रणभूमि वैतरणी नदीसी मालूम होती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ शत्रुओंने हाथियोंकी शुंडोंको तथा शरीरोंको काटडाला हैं और उनके दांत उखाडलिये हैं वे हाथी पृथिवी पर पडे२ रुधिर ओक रहे हैं और ऐसे चिंघाड़ रहे हैं, कि-सुनकर दया आती है॥७॥ बडे२ रथोंके पहिये, ईषा, जुए और जोत तथा ध्वजा, पताकायें टूटेपडे हैं तथा सोनेसे मढ़े हुए बडे२ रथभी रणमें पडे हैं, रणभूमि मेघमण्डलोंसे घिरीहुईसी दीखरही है ॥ ८ ॥ शत्रुओंने सामनेसे चढ़ायी करके जिनको मारडाला है ऐसे हाथी घोडे और रथोंपर चढ़कर युद्ध करनेवाले यशस्वी योधा तथा पैदल भी मरकर रणभूमिमें पडे हैं,उनके कवच, गहने, वस्त्र और शस्त्रभी टूटकर इधर उधर बिखरे पडे हैं, इन सबोंसे भरीहुई रणभूमि शान्त हुए अग्निसे भरीहुईसी मालूम होती है ॥ ९ ॥ कर्ण और

दिवश्च्युतैर्भूरतिदीप्तिमद्भिर्नक्तं ग्रहैर्द्यौरमलप्रदीप्तैः ॥ १० ॥
प्रनष्टसंज्ञैः पुनरुच्छ्वसद्भिर्मही बभूवानुगतैरिवार्चिभिः। कर्णार्जुना-
भ्यां शरभिन्नगात्रैर्हतैः प्रवीरैः कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ११ ॥ शरास्तु
कर्णार्जुनबाहुमुक्ता विदार्य नागाश्वमनुष्यदेहान्। प्राणान्निर-
स्याशु महीं व्यतीयुर्महोरगा वासमिवाभिनम्राः ॥ १२ ॥ हतै-
र्मनुष्याश्वगजैश्च संख्ये शरावभिन्नैश्च रथैर्बभूव। धनञ्जयस्याधि-
रथेश्च मार्गणैरगम्यरूपा वसुधातिदुर्गमा ॥ १३ ॥ रथैर्वरेपू-
न्मथितैः सुकल्पितैः सयोधशस्त्रैश्च वरायुधैर्ध्वजैः। विशीर्णयोक्त्रै-
र्विनिकृत्तबन्धनैर्निकृत्तचक्राक्षयुगत्रिवेणुभिः ॥ १४ ॥ विमुक्त-
शस्त्रैश्च तथा ह्युपस्करैः कृतानुकर्षैर्विनिषङ्गबन्धनैः। प्रभग्ननीडैर्म-

अर्जुनके बाण लगनेसे जिनके शरीर विंधगये हैं, इसकारण ही जो अचेत होरहे हैं तथा बार२ सास लेरहे हैं ऐसे कौरवोंके तथा सृञ्जयोंके हजारों योधा एक दूसरेके सामनेको देखतेहुए मानो स्वर्गमेंसे गिरपडे हों, इसप्रकार युद्ध करते २ रणभूमिमें गिर गये हैं और जैसे निर्मल कान्तिवाले नक्षत्रोंसे आकाश शोभा पाता है तैसेही योधाओंसे रणभूमि दिपरही है॥१०॥११॥ कर्ण और अर्जुनकी भुजाओंमेंसे जो बाण छूटते थे वे हाथी घोडे और मनुष्योंके शरीरोंको वींधकर तुरन्तही उनके प्राणोंको हर लेते थे और जैसे बडे२ सर्प नीचेको नमकर बिलोंमें घुसजाते हैं तैसेही पृथ्वीमें घुसजाते थे॥ १२॥ हे राजन्! अर्जुन और कर्णके बाणोंसे मरेहुए मनुष्य, हाथी और घोडोंसे तथा टूटकर चूराहुए पडे रथ और बाणोंसे रणभूमि अगम्य होरही है ॥ १३ ॥ अच्छे प्रकार सजाये और शस्त्रोंसे भरेहुए रथभी बडे२ बाणोंकी मारसे टूटपड़े हैं, उनकी ध्वजायें टूटगयी हैं,घोडोंकी रासें टूट गयी हैं, रथोंके बन्धन, पहिये, धुरे,पीछेके तीनकाठ और जोत भी टूट कर इधर उधर बिखरे पड़े हैं, रथोंमें भरेहुए सामान और मणियों

णिहेमखण्डितैः स्तृता मही द्यौरिव शारदैर्घनैः ॥ १५ ॥ विकृष्य माणैर्जवनैस्तुरङ्गमैर्हतेश्वरै राजरथैः सुकल्पितैः । मनुष्यमातङ्ग-रथाश्वराशिभिर्द्रुतं व्रजन्तो बहुधा विचूर्णिताः ॥ १६ ॥ सहेम-पट्टाः परिघाः परश्वधाः शिताश्च शूला मुसलानि मुद्गराः । पेतुश्च खड्गा विमला विकोशा गदाश्च जाम्बूनदपट्टनद्धाः १७ चापानि रुक्मांगदभूषणानि शराश्च कार्त्तस्वरचित्रपुंखाः । ऋष्टयश्च पीता विमला विकोशाः प्रासाश्च दण्डैः कनकावभासैः ॥ १८ ॥ छत्राणि वालव्यजनानि शंखाश्छिन्नापविद्धाश्च स्रजो विचित्राः । कुथापताकाम्बरभूषणानि किरीटमाला मुकुटाश्च शुभ्राः ॥१६॥ प्रकीर्णका विप्रकीर्णाश्च राजन् प्रवालमुक्ता तरलाश्च हाराः ।

से शोभायमान तथा सोनेसे जड़ेहुए ढाँचेभी टूटेपड़े हैं, इसप्रकार छिन्न भिन्न होकर बड़े२ रथ रणभूमिमें पड़ेहुए हैं, इसलिये रण-भूमि शरदृऋतुके मेघमण्डलोंसे घिरेहुए आकाशकी समान शोभा पारही है ॥ १४ ॥ १५ ॥ वह देखो योधा रणभूमिमेंसे भागतेमें, जिनको बड़े वेगवाले घोड़े खेंचरहे हैं और जिनके स्वामी मारेगये हैं ऐसे राजरथोंकी झपटमें आजानेके कारण तथा इधर उधरको भागतेहुए मनुष्य, हाथी, रथ और घोड़ोंकी झपटमें आजानेके कारण कुचलगये हैं ॥ १६ ॥ सोनेकी पट्टियोंसे जड़ेहुए परिघ, फरसे, तीखे त्रिशूल, मूसल, मुगदर, खुलीहुई चमकदार तलवारें और सोनेकी पत्तरसे जडीहुई गदायें रणभूमिमें बिखरी पड़ी हैं ॥ १७ ॥ सोनेके बाजूबन्दवाले धनुष, सोनेके परोंवाले बाण, निर्मल पानी पिलायीहुई खुली ऋष्टियें, प्रास, सोनेकी समान चमकतेहुए दण्डोंवाले छत्र, चँवर, टूटेहुए शङ्ख, भाँति२के फूल मालायें, हाथियोंके ऊपर डालनेकी झूलें, पताका, वस्त्र, गहने, किरीट, सफेद मुकुट, मूँगे और मोती पिरोयेहुए हार, बाजूबन्द, सोनेकी जञ्जीरें, कण्ठे, बहुमूल्य मणियें, हीरे, सुवर्ण, मोती,

आपीडकेयूरवराङ्गदानि ग्रैवेयनिष्कासस्सुवर्णसूत्राः ॥ २० ॥ मण्युत्तमा वज्रसुवर्णमुक्ता रत्नानि चोच्चावचमङ्गलानि । गात्राणि चात्यन्तसुखोचितानि शिरांसि चेन्दुप्रतिमाननानि ॥२१॥ देहांश्च भोगांश्च परिच्छदांश्च त्यक्त्वा मनोज्ञानि सुखानि चैव । स्वधर्मनिष्ठां महतीमवाप्य चाप्याशु लोकान् यशसा गतास्ते ॥ २२ ॥ निवर्त्त दुर्योधन यान्तु सैनिका व्रजस्व राजन् शिविराय मानद । दिवाकरोप्येष विलम्बतो प्रभो पुनस्त्वमेवात्र नरेन्द्र कारणम् २३ इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो दुर्योधनं शोकपरीतचेताः । हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणमार्त्तं विसंज्ञं भृशमश्रुनेत्रम् ॥ २४ ॥ तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्रा सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति । निरीक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं यशसा ज्वलन्तम् ॥२५॥ नराश्व-

---

घटिया बढिया माङ्गलिक रत्न, परम सुखको भोगनेवाले योधाओंके शरीर, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख आदि अनेकों वस्तुएँ रणभूमिमें पड़ी हैं उनको देखो ॥ १८–२१ ॥ योधा अपने शरीर ऐश्वर्य, सरोसामान और मनोहर सुखोंको त्यागकर अपने क्षत्रिय धर्मका ठीकर पालन करके यशके साथ स्वर्गको पधार गये हैं ॥ २२ ॥ हे मान देनेवाले राजा दुर्योधन ! अब सैनिक भले ही भागजायँ, सूर्य अस्ताचलमें जानेको उद्यत है और सायङ्काल होनेको आगया है, इसलिये अब तुम छावनीमेंको लौटचलो, फिर तुम जो उचित समझो सो करना ॥२३॥ शोकसे व्याकुलचित्त हुआ राजा शल्य दुर्योधनसे ऐसा कहकर चुप होगया तब, दुर्योधन हाय कर्ण ! हाय कर्ण ! कहकर विलाप करता हुआ विह्वल और अचेत होगया, उसकी आँखोंमेंसे बहुतही आँसू बहनेलगे ॥ २४ ॥ अश्वत्थामा तथा दूसरे सब राजाओंने दुर्योधनको बारम्बार धीरज दिया और अर्जुनके यशसे उज्ज्वल बडेभारी ध्वजदण्डको तथा मनुष्य घोडे और हाथियोंके शरीरों

मातङ्गशरीरजेन रक्तेन सिक्ताञ्च तथैव भूमिम् । रक्ताम्बरस्रक्तप-
नीययोगान्नारीं प्रकाशामिव सर्वगम्यां ॥ २६ ॥ प्रच्छन्नरूपां
रुधिरेण राजन्रौद्रे मुहूर्त्तेतिविराजमाने । नैवावतस्थुः कुरवः
समीक्ष्य प्रव्राजिता देवलोकाय सर्वे ॥ २७ ॥ वधेन कर्णस्य च
दुःखितास्ते हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः । द्रुतं प्रयाता शिबि-
राणि राजन् दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ २८ ॥ गाण्डीवमुक्तै-
स्तु सुवर्णपुंखैः शिलाशितैः शोणितदिग्धवाजैः । शरैश्चिताङ्गो
भुवि भाति कर्णो हतोपि सन् सूर्य इवांशुमाली ॥ २९ ॥ कर्ण-
स्य देहं रुधिरावसिक्तं भक्तानुकम्पी भगवान् विवस्वान् । स्पृष्ट्वां-
शुभिर्लोहितरक्तरूपा सिष्णासुरभ्येति परं समुद्रम् ॥ ३० ॥

मेंसे निकलतेहुए रुधिरके प्रवाहसे भीगीहुई, लाल वस्त्र, लाल पुष्पमालायें तथा सोनेके गहनोंसे शोभायमान होनेसे सब मनुष्योंके देखने योग्य वेश्याकी समान दीखतीहुई लोहूलुहान हुई रणभूमिको वारम्वार देखतेहुए छावनीकी ओरको लौटचले, हे महाराज ! सब योधा भयानक समयमें युद्धमें मरकर स्वर्गलोकको चलेगये थे, इसकारण कौरवपक्षके योधा रणमें क्षणभरभी खड़े नहीं रहसके ॥ २५-२७ ॥ परन्तु कर्णके मरणसे दुःखी होकर हा कर्ण ! हा कर्ण ! कहतेहुए तथा लाल रङ्गके सूर्यको देखतेहुए शीघ्रतासे छावनीकी ओरको जानेलगे ॥ २८ ॥ लोहूमें सनेहुए सोनेके परोंवाले, सानपर तेज कियेहुए और गांडीव धनुषमेंसे छोड़ेहुए बाणोंसे जिसका सब शरीर भररहा था ऐसा कर्ण, रणमें मारागया था, तो भी वह अंशुमाली सूर्यकी समान तेजस्वी मालूम होरहा था॥२९॥ भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले सूर्य भगवान् किरणरूप हजारों हाथोंसे लोहूमें सनेहुए कर्णके शरीरको छूकर मानो आपभी लाल रङ्गके होगये हों ऐसे मालूम होरहे थे, वह सूर्यनारायण स्नान करनेकी इच्छासे पश्चिम

इतीव सञ्चिन्त्य सुरर्षिसंघाः समस्थिता यान्ति यथानिकेतनम् ।
सचिंतयित्वा जनता विसस्रुर्यथासुखं खञ्च महीतलञ्च ॥ ३१ ॥
तदद्भुतं प्राणभृतां भयङ्करं निशाम्य युद्धं कुरुवीरमुख्ययोः । धन-
ञ्जयस्याधिरथेश्च विस्मिताः प्रशंसमानाः प्रययुस्तदा जनाः ॥३२॥
शरसंकृत्तवर्माणं रुधिरोक्षितवाससम् । गतासुमपि राधेयं नैव
लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ ३३ ॥ तप्तजाम्बूनदनिभं ज्वलनार्कसम-
प्रभम् । जीवन्तमिव शूरञ्च सर्वभूतानि मेनिरे ॥ ३४ ॥

के समुद्रकी ओरको जारहे हैं * ॥ ३० ॥ ऐसा विचार करके देवर्षि अपने२ स्थानको जानेलगे और इकट्टेहुए प्राणियोंका समूह भी ऐसा ही विचार कर अपनी इच्छानुसार आकाश तथा पृथिवी परके अपने २ स्थानोंकी ओरको जानेलगा ॥ ३१ ॥ तहाँ दर्शक रूपसे खडेहुए लोग पांडवोंके मुख्य वीर अर्जुनका और कौरवोंके मुख्य वीर कर्णका प्राणियोंको डरादेनेवाला अद्भुत युद्ध देखकर अचंभेमें होगये और प्रशंसा करते हुए अपने २ स्थानोंको चले गये॥३२॥कर्णका कवच बाणोंसे टूटगया था,वस्त्र लोहूसे सराबोर होगये थे और वह मरगया था तो भी लक्ष्मीने (शरीरकी शोभाने) उसको त्यागा नहीं था अर्थात् उसकी दिव्य सुन्दरता पहलेकीसी ही थी ॥ ३३ ॥ दमकतेहुए सूर्यकी समान तथा सूर्य और अग्निकी समान कान्तिवाले वीर कर्णको देखकर सब लोग उसको ऐसा समझते थे मानो अभी यह जीवित ही है॥३४॥ हे

टिप्पणी—भारतवासी सनातनधर्मियोंमें यह नियम है,कि—किसी सगे संबंधीका मरण सुनकर तुरन्त नदी पर जाकर स्नान करते हैं और शवको छूकर भी शुद्धिके लिये स्नान करते हैं,सूर्य कर्णके पिता हैं तथा कर्ण सूर्यका बड़ा उपासक था, अतः सूर्यको पुत्रके मरणके कारण तथा कर अर्थात् हाथ वा किरणोंसे छूनेके कारण पश्चिमसागरमें स्नान करना वर्णन किया है ।

हतस्यापि महाराज सूतपुत्रस्य संयुगे । वित्रेसुः सर्वतो योधाः सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ३५ ॥ हतोऽपि पुरुषव्याघ्रो जीववानिव लक्ष्यते । नाभवद्विकृतिः काचित् हतस्यापि महात्मनः ॥ ३६ ॥ चारुवेषधरं वीरं चारुमौलिशिरोधरम् । तन्मुखं सूतपुत्रस्य पूर्णचन्द्रसमद्युति ॥ ३७ ॥ नानाभरणवान्राजंस्तप्तजाम्बूनदाङ्गदम् । हतो वैकर्त्तनः शेते पादपोऽङ्कुरवानिव ॥ ३८ ॥ कनकोत्तमसंकाशो ज्वलन्निव विभावसुः । स शान्तः पुरुषव्याघ्रः पार्थसायकवारिणा ॥ ३९ ॥ यथा हि ज्वलनो दीप्तो जलमासाद्य शाम्यति । कर्णाग्निः शमितस्तद्वत् पार्थमेघेन संयुगे॥४०॥ आहृत्य च यशो दीप्तं सुयुद्धेनात्मनो भुवि । विसृज्य शरवर्षाणि प्रताप्य च दिशो

महाराज सूतपुत्र कर्ण मरगया था, तो भी जैसे साधारण मृग सिंहसे डरजाते हैं तैसे ही रणमें खडेहुए योधा उससे त्रास पारहे थे ॥ ३५ ॥ पुरुषोंमें सिंहसमान कर्ण मरगया था, तो भी जीता हुआ सा मालूम होता था, क्यों कि–मरजाने पर भी उस महात्माके शरीरमें कुछ अनन्तर नहीं पड़ा था ॥ ३६ सुन्दर वेश, सुन्दर मुकुट और हार धारण कियेहुए सूतपुत्रका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् मालूम होता था ॥ ३७॥ हे राजन् ! अनेकों प्रकारके गहने और बाजूबन्दोंको धारण करनेवाला कर्ण मरकर यद्यपि रणभूमिमें सोरहा था, तो भी वह अंकुरोंवाले वृक्षसा दिपरहा था ॥ ३८ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! कर्ण बढ़िया सोनेकी समान और बलतेहुए अग्निकी समान तेजस्वी था, उसको अर्जुनके बाणरूप जलने शान्त करदिया था ॥३९॥ जलता हुआ अग्नि जैसे जलसे शान्त होजाता है तैसे ही अर्जुनरूप मेघने युद्धमें कर्णरूप अग्निको शांत करदिया था ४० जिस कर्णने बड़ा उत्तम युद्ध करके पृथिवी पर चमकता हुआ यश पाया था और बाणोंकी वर्षा करके दशों दिशाओंको सन्तप्त करदिया था, वह कर्ण लड़ाईमें

दश ॥ ४१ ॥ सपुत्रः समरे कर्णः स शान्तः पार्थतेजसा । प्रताप्य
पाण्डवान्सर्वान् पञ्चालाञ्चास्त्रतेजसा ॥४२॥ वर्षित्वा शरवर्षेण
प्रताप्य रिपुवाहिनीम् । श्रीमानिवसहस्रांशुर्जगत् सर्वं प्रताप्य च४३
हतो वैकर्त्तनः कर्णः सपुत्रः सहवाहनः । अर्थिनां पक्षिसंघस्य
कल्पवृक्षो निपातितः ॥ ४४ ॥ ददानीत्येव योऽवोचन्न नास्तीत्य-
र्थितोऽर्थिभिः । सद्भिः सदा सत्पुरुष स हतो द्वैरथे वृषः ॥४५॥
यस्य ब्राह्मणसात् सर्वं वित्तमासीन्महात्मनः । नादेयं ब्राह्मणे-
ष्वासीद्यस्य स्वमपि जीवितम् ॥ ४६ ॥ सदास्त्रीणां प्रियो नित्यं
दाता चैव महारथः । स पार्थास्त्रविनिर्दग्धो गतः परमिकां गतिम्४७
यमाश्रित्याकरोद्वैरं सुतस्ते स गतो दिवम् । आदाय तव पुत्राणां

पुत्रसहित अर्जुनके तेजसे शान्त पडगया (मरगया) था जिसने अस्त्रके तेजसे सब पांडवोंको और पंचाल राजाओंको सन्ताप दिया था, बाणोंकी वर्षा करके जिसने शत्रुसेनाको बडी घबडा-हटमें डालदिया था और जिसने श्रीमान् सूर्यकी समान सब जगत्को बहुत ही तपाया था उस कर्णको पुत्र, सेना और वाहनों सहित अर्जुनने रणमें मारकर याचकमण्डलीके कल्पवृक्षको काट डाला ॥ ४१-४४ ॥ जब उत्तम याचक उसके पास याचना करनेको आते थे उस समय जो सदा ही 'देता हूँ' ऐसा कहा करता था, किन्तु 'नहीं देता, ऐसा कभी कहता ही नहीं था वह सत्पुरुष कर्ण द्वन्द्वयुद्धमें मारागया है ॥ ४५ जिस महात्माने अपना सब धन ब्राह्मणोंको देडाला था, जो ब्राह्मणोंको अपना जीवन तक देनेको राजी था, जो सदा स्त्रियोंको प्रिय था, जो दाता और महारथी था वह कर्ण अर्जुनके अस्त्रसे भस्म होकर परम गतिको प्राप्त होगया है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तुम्हारे पुत्रने जिसके भरोसे पर पांडवोंके साथ वैर बाँध लिया था वह कर्ण तुम्हारे पुत्रोंकी विजयकी आशा, कल्याण और रक्षाको साथ लेकर

जयाशां शर्म वर्म च ।। ४८ ।। हते कर्णे सरितो न प्रसस्रुर्जगाम चास्तं सविता दिवाकरः । ग्रहश्च तिर्यग्ज्वलनार्कवर्णः सोमस्य पुत्रोभ्युदियाय तिर्यक् ।। ४९ ।। नभः पफालेव ननाद चोर्वी ववुश्च वाताः परुषाः सुघोराः। दिशो बभूवुर्ज्वलिताः सधूमा महार्णवाः सस्वनुश्चुक्षुभुश्च ।। ५० ।। सकाननाश्चाद्रिचयाश्चकम्पिरे प्रविव्यथुर्भूतगणाश्च सर्वे । बृहस्पतिः सम्परिवार्य रोहिणीं बभूव चन्द्रार्कसमो विशाम्पते ।। ५१ ।। हते तु कर्णे विदिशोपि जज्वलुस्तमोवृता द्यौर्विचचाल भूमिः । पपात चोल्का ज्वलनप्रकाशा निशाचराश्चाप्यभवन् प्रहृष्टाः ।। ५२ ।। शशिप्रकाशाननमर्जुनो यदा क्षुरेण कर्णस्य शिरो न्यपातयत् । तदान्तरिक्षे

स्वर्गमें चलागया है ।। ४८ ।। हे राजन् ! जिस समय कर्ण रणभूमिमें मरा था उस समय नदियें बहना बन्द होगयी थीं, सूर्य अस्त होगया था अग्नि और सूर्यकी समान कान्तिमान् मङ्गलग्रह तथा सोमका पुत्र बुधग्रह यह आकाशमें वक्रगतिमें उदय हुए थे ।। ४९ ।। आकाशमें और पृथिवी पर गर्जनायें हो रही थीं पृथिवी काँपउठी थी, अतिभयानक और तीक्ष्ण वायु चलनेलगा था, दिशायें सुलगउठी थीं धुएँसे भरगयी थीं तथा समुद्र क्षुब्ध होकर गर्जनायें करने लगे थे ।।५०।। वनोंसहित पहाडोंकी लँगारें काँपउठी थीं, सब प्राणी वडी ही पीडा भोगनेलगे थे और हे राजन् ! बृहस्पतिने रोहिणीको घेरकर चन्द्रमा तथा सूर्यकी समान वर्ण धारण किया था ।।५१।। दिशा विदिशायें सुगलउठी थीं, आकाशमें अन्धकार छागया था, पृथिवी काँपनेलगी थी, अग्निकी समान प्रकाशवान् उल्कायें पृथिवी पर गिरनेलगीं थीं और राक्षस बड़े ही प्रसन्न हुए थे ।। ५२ ।। जब अर्जुनने क्षुर जातिका बाण मारकर कर्णके, चन्द्रमाकी समान मुखवाले मस्तकको काटकर नीचे गिरादिया था, उस समय आकाशमें खड़ेहुए

सहसैव शब्दो बभूव हाहेति सुरैर्विमुक्तः ॥ ५३ ॥ स देवगन्धर्व-मनुष्यपूजितं निहत्य कर्णं रिपुमाहवेऽर्जु नः । रराज पार्थः परमेण तेजसा वृत्रं निहत्येव सहस्रलोचनः॥५४॥ ततो रथेनाम्बुदवृन्दनादिना शरन्नभोमध्यदिवाकरार्चिषा। पताकिना भीमनिनादकेतुना हिमेन्दु-शंखस्फटिकावभासिना॥५५॥ महेन्द्रवाहप्रतिमेन तावुभौ महेन्द्रवीर्यप्रति-मानपौरुषौ । सुवर्णमुक्तामणिवज्रविद्रुमैरलंकृतावप्रतिमेन रंहसा॥५६॥ नरोत्तमौ पाण्डवकेशिमर्दिनौ तदाहितावग्निदिवाकरोपमौ । रणा-जिरे वीतभयौ विरेजतुः समानयानाविव विष्णुवासवौ ॥ ५७ ॥ ततो धनुर्ज्यातलबाणनिस्वनैः प्रसह्य कृत्वा च रिपून् हतप्रभान् । संछादयित्वा तु कुरून् शरोत्तमैः कपिध्वजः पक्षिवरध्वजश्च ५८

देवता एकसाथ हाहाकार करउठे थे ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! अर्जुन देवता, गन्धर्व और मनुष्योंमें सन्मान पायेहुए शत्रु कर्णका युद्धमें नाश करके जैसे पहले वृत्रासुरका नाश करके इन्द्र शोभायमान हुआ था तैसे ही परमतेजसे दिपनेलगा ॥ ५४ ॥ मेघमण्डलकी समान गर्जना करने वाले, शरद ऋतुके मध्याह्नकालके सूर्यकी समान कान्तिवाले, पताकाओंसे शोभित, भयानक शब्द करती हुई ध्वजावाले, हिम चन्द्रमा शंख और बिल्लौरकी समान श्वेत कान्तिवाले और इन्द्रके वाहनकी समान अनुपम वेगवाले रथमें बैठेहुए, महेन्द्रकी समान पराक्रमी, सोने मोती मणि हीरे और मूँगोंसे सजेहुए, अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी महात्मा केशव और धनञ्जय निर्भय बैठे हुए थे, वे एक ही विमानमें बैठे हुए विष्णु और इन्द्रकी समान शोभा पारहे थे ॥ ५५-५७ ॥ कर्णको मारकर हर्षमें भरेहुए बड़े प्रभावशाली अर्जुन तथा कृष्णने बड़े २ बाण मारकर कौरवोंको ढकदिया था तथा धनुषकी डोरीके हथेलीके और बाणोंके शब्द करके शत्रु-ओंको निस्तेज करडाला था और फिर उन दोनोंने सोनेके पत्तरों

हृष्टौ ततस्तावमितप्रभावौ मनांस्यरीणामवदारयन्तौ । सुवर्णजाला-वततौ महास्वनौ हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः।चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः ॥ ५९ ॥ पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो देवदत्तस्य चोभयोः । पृथिवीञ्चान्तरीक्षञ्च दिशश्चैवान्वनादयत् ॥ ६० ॥ वित्रस्ताश्चाभवन् सर्वे कुरवो राजसत्तम । शङ्खशब्देन तेनाथ माधवस्यार्जुनस्य च ॥ ६१ ॥ तौ शङ्खशब्देन निनादयन्तौ वनानि शैलान् सरितो गुहाश्च । वित्रासयन्तौ तव पुत्रसेनां युधिष्ठिरं नन्दयतां वरिष्ठौ ॥ ६२ ॥ ततः प्रयाताः कुरवो जवेन श्रुत्वैव शंखस्वनमीर्यमाणम् । विहाय मद्राधिपतिं पतिञ्च दुर्योधनं भारत भारतानाम् ॥ ६३ ॥ महाहवे तं बहुरोचमानं धनञ्जयं भूतगणाः समेताः । तदान्वमोदन्त जनार्दनञ्च प्रभाकरावभ्युदितौ यथैव ॥ ६४ ॥ समाचितौ कर्णशरैः परन्तपावुभौ

से जड़ेहुए, बड़े शब्दवाले, बरफकी समान सफेद रङ्गके बड़े२ शङ्खोंको हाथमें लेकर सुन्दर मुखसे चूमा और फिर दोनोंने एक साथ बजाकर शत्रुओंके हृदयोंको चीरडाला था ॥ ५८ ॥५९॥ उन पाञ्चजन्य और देवदत्त नामके शङ्खोंकी ध्वनिने पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाशको गुञ्जारदिया था ॥ ६० ॥ हे श्रेष्ठ राजन्! कृष्ण और अर्जुनके शंखोंकी ध्वनिको सुनकर सब कौरव सहम गये थे ॥ ६१ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनने शंखकी ध्वनिसे वन पर्वत नदी और गुफाओंको गुञ्जार दिया था, तुम्हारी सेनाको भयभीत और राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न किया था ॥ ६२ ॥ हे भरतवंशी राजन्! जिस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनके बजाये हुए शंखोंकी ध्वनिको सुनतेही कौरवोंके सैनिक मद्रदेशके राजा शल्य और भरतवंशी राजा दुर्योधनको छोड़कर बड़े वेगके साथ रणमेंसे भागगये थे ॥ ६३ ॥ उस समय इकट्ठेहुए दर्शक लोगोंने उस महायुद्धमें दिपतेहुए अर्जुन तथा श्रीकृष्णका उदय हुए सूर्य

व्यभातां समरेऽच्युतार्जुनौ । तमो विहत्याभ्युदितौ यथामलौ शशाङ्कसूर्यौ दिवि रश्मिमालिनौ ॥६५॥ विहाय तान् बाणगणानथागतौ सुहृद्वृतावप्रतिमानविक्रमौ । सुखं प्रविष्टौ शिबिरं स्वमीश्वरौ सदस्यहूताविव वासवाच्युतौ ॥ ६६ ॥ तौ देवगन्धर्वमनुष्यचारणैर्महर्षिभिर्यक्षमहोरगैरपि । जयाभिवृद्ध्या परयाभिपूजितौ हते तु कर्णे परमाहवे तदा ॥ ६७ ॥ यथानुरूपं प्रतिपूजितावुभौ प्रशस्यमानौ स्वकृतैर्गुणौघैः । नन्दतुस्तौ ससुहृद्गणौ तदा बलं नियम्येव सुरेशकेशवौ ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि रणभूमिवर्णन नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

और चंद्रमाकी समान सन्मान किया।६४।अन्धकारका नाश करके उदय हुए और किरणोंकी मालाको पहरेहुए निर्मल चन्द्रमा और सूर्य जैसे आकाशमें शोभा पाते हैं तैसेही कर्णके बाणोंसे बिंधे हुए परन्तप श्रीकृष्ण और अर्जुनभी शत्रुरूप अन्धकारका नाश करके रणभूमिमें बड़ीही शोभा पारहे थे ।। ६५ ॥ अनुपम पराक्रमी और महाबली प्रभु श्रीकृष्ण और अर्जुन शरीरमें गुभेहुए बाणोंको बाहर निकालकर मित्रमण्डलीसे घिरकर जैसे आवाहन कियेहुए विष्णु और इन्द्र सभामें प्रवेश करते हैं तैसेही आनन्दपूर्वक अपनी छावनीमें जापहुँचे ॥६६॥ जिस समय महासंग्राममें अर्जुनने कर्णको मारा था, उस समय देवता, गन्धर्व, मनुष्य, चारण, महर्षि, यक्ष तथा महानागोंने उनकी जयकी परम वृद्धि चाही थी और उनकी पूजा की थी ॥ ६७ ॥ इकट्ठे हुए योधाओंने श्रीकृष्ण और अर्जुनके उत्तम कर्मोंको देखकर उनकी पूजा करके प्रशंसा की और इन्द्र तथा विष्णु जैसे बल दैत्यका पराजय करके प्रसन्न हुए थे तैसेही श्रीकृष्ण और अर्जुनभी शत्रुका पराजय करके अपने स्नेहियोंके साथ प्रसन्न हुए थे ॥ ६८ ॥ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त॥ ९४ ॥ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । हते वैकर्त्तने कर्णे कुरवो भयपीडिताः । वीक्ष-माणा दिशः सर्वाः पर्यापेतुः सहस्रशः ॥ १ ॥ कर्णं तु निहतं दृष्ट्वा शत्रुभिः परमाहवे । भीता दिशो व्यकीर्यन्त तावका क्षत-विक्षताः ॥ २ ॥ ततोवहारं चक्रुस्ते राजन् योधाः समन्ततः । वार्यमाणा भयोद्विग्नास्तावका भृशदुःखिताः ॥३॥ तेषान्तु मतमा-ज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ । अवहारं ततश्चक्रे शल्यस्यानुमते नृप ४ कृतवर्मा रथैस्तूर्णं वृतो भारत तावकैः । नारायणावशेषैश्च शिवि-रायैव दुद्रुवे ॥ ५ ॥ गान्धाराणां सहस्रेण शकुनिः परिवारितः । हतमाधिरथिं दृष्ट्वा शिविरायैव दुद्रुवे ॥ ६ ॥ कृपः शारद्वतो राजन् नागानीकेन संवृतः । महामेघनिभेनाशु शिविरायैव दुद्रुवे ॥ ७ ॥ अश्वत्थामा ततः शूरो विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः । पाण्डवानां जयं

सञ्जयने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! कर्णके रणमें मारे जानेके बाद शत्रुओंसे भयभीत हुए तथा बहुतसे घायल हुए कौरवोंके हजारों सैनिक दशों दिशाओंमेंको देखनेलगे और डरके मारे भागनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ दुर्योधनने उस समय अपने योधा-ओंको भागनेसे रोका, परन्तु वे सब उदास और बडेही दुःखी होगये थे, इसलिये चारों ओरसे युद्धबन्द करके छावनीकी ओरको भागनेलगे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने उन योधाओंके विचारको जानलिया और शल्यकी सम्मतिके अनुसार युद्धको बन्द करके सेनाको पीछेको लौटाया ॥ ४ ॥ कृतवर्माभी श्रीकृष्णके झपाटेमेंसे बचेहुए तुम्हारे महारथियोंसे घिरकर छावनीकी ओरको दौड़ा ॥ ५ ॥ अधिरथके पुत्र कर्णको माराहुआ देखकर शकुनिभी हजारों गान्धारोंसे घिराहुआ छाव-नीकी ओरको चलपड़ा ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कृपाचार्य भी बडे मेघकी समान हस्तिसेनासे घिरकर तुरन्तही छावनीकी ओरको दौड़पड़े ॥ ७ ॥ वीर अश्वत्थामा भी पांडवोंकी विजय

दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ८ ॥ संशप्तकावशेषेण बलेन महता वृतः । सुशर्मापि ययौ राजन् वीक्षमाणो भयार्दितः ॥ ९ ॥ दुर्योधनोऽपि नृपतिर्हृतसर्वस्वबान्धवः । ययौ शोकसमाविष्टश्चिन्तयन् विमना बहु ॥ १० ॥ छिन्नध्वजेन शल्यस्तु रथेन रथिनाम्वरः । प्रययौ शिबिरायैव वीक्षमाणो दिशो दश ॥ ११ ॥ ततोऽपरे सुबहवो भारतानां महारथाः । प्राद्रवन्त भयत्रस्ता ह्रियाविष्टा विचेतसः ॥ १२ ॥ असृक् क्षरन्तः सोद्विग्ना वेपमाना भयातुराः । कुरवो दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् ॥ १३ ॥ प्रशंसन्तोऽर्जुनं केचित् केचित् कर्णं महारथाः । व्यद्रवन्त दिशो भीताः कुरवः कुरुसत्तम ॥ १४ ॥ तेषां योधसहस्राणां तावकानां महा-

हुई देखकर वारम्वार लम्बे साँस छोड़ताहुआ छावनीकी ओरको दौड़गया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! राजा सुशर्माभी संशप्तकोंकी सेनामेंसे बाकी बचेहुए बड़ीभारी सेनाके साथ भयभीत होकर चारों ओरको दृष्टि डालताहुआ छावनीमेंको चलागया ॥ ९ ॥ जिसके सब बांधव मरगये थे ऐसा राजा दुर्योधनभी शोकसे मनमें बहुत ही उदास होकर छावनीकी ओरको चलागया ॥ १० ॥ महारथी राजा शल्य भी जिसका ध्वजदण्ड टूटगया था ऐसे रथपर चढ़कर दशों दिशाओंमेंको दृष्टि डालताहुआ छावनीकी ओरको बड़ी शीघ्रतासे चलागया ॥ ११ ॥ तदनन्तर दूसरे भी भरतवंशके बहुतसे महारथी डरके मारे शरमातेर तथा अचेतसे होकर छावनीकी ओरको भागनिकले ॥ १२ ॥ जिनके शरीरोंमेंसे रुधिर टपकरहा था ऐसे कौरवपक्षके योधा भी कर्णको रणमें पराहुआ देखकर काँपगये और सब घबड़ाहटमें पडगये इससे व्याकुल होकर छावनीकी ओरको भागनिकले ॥ १३ ॥ हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र ! डरे हुए कौरवोंके योधाओंमेंके कितनेही अर्जुनकी और कितने ही कर्णकी प्रशंसा करते २

मृधे । नासीत्तत्र पुमान् कश्चिद्यो युद्धाय मनो दधे ॥ १५ ॥
हते कर्णे महाराज निराशाः कुरवोऽभवन् । जीवितेष्वपि राज्येषु दारेषु च धनेषु च ॥ १६ ॥ तान् समानीय पुत्रस्ते यत्नेन महता प्रभो । निवेशाय मनो दध्रे दुःखशोकसमन्वितः ॥ १७॥ तस्याज्ञां शिरसा योधाः प्रतिगृह्य विशाम्पते । विवर्णवदना राजन् न्यविशन्त महारथाः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शिबिरप्रयाणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच । तथा निपातिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते । आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो निपातितः । वृत्रकर्णवधं घोरं कथयिष्यन्ति

डरके मारे दशों दिशाओंमेंको भागनिकले ॥ १४ ॥
हे राजन् ! उस महायुद्धमें तुम्हारे हजारों योधाओंमें ऐसा एक पुरुष भी नहीं था, कि–जिसने युद्ध करनेके लिये विचार किया हो ॥ १५ ॥ हे महाराज ! रणमें कर्णके मारेजाने पर कौरवोंके योधाओंने अपने जीवन, राज्य, स्त्री तथा धनकी आशा छोडदी थी ॥१६॥ परन्तु दुःख और शोकसे व्याकुल हुए समर्थ दुर्योधन ने बड़े उद्योगसे उन सबोंको इकट्ठा करके छावनीमें लेआनेका विचार किया ॥ १७ ॥ और हे राजन् ! जिनके मुख निस्तेज होगये थे ऐसे वे महारथी भी दुर्योधनकी आज्ञाको शिरोधार्य करके छावनीमें पहुँच विश्राम करनेलगे ॥ १८ ॥ पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! कर्ण मारागया और शत्रुकी सेना रणमेंसे भागगयी तब श्रीकृष्णने हर्षमें भर अर्जुनको हृदयसे लगाकर कहा ॥ १ ॥ हे अर्जुन ! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था तैसे ही तूने कर्णको मारा है, आजसे मनुष्य वृत्रासुरके

मानवाः ॥ २ ॥ वज्रेण निहतो वृत्रः संयुगे भूरितेजसा । त्वया तु निहतः कर्णो धनुषा निशितैः शरैः ॥ ३ ॥ तमिमं विक्रमं लोके प्रथितन्ते यशस्करम् । निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः ।४। वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम् । निवेद्य धर्मराजाय त्वमानृण्यं गमिष्यसि ॥ ५ ॥ वर्त्तमाने महायुद्धे तव कर्णस्य चोभयोः । द्रष्टुमायोधनं पूर्वमागतो धर्मनन्दनः ॥ ६ ॥ सुभृशं गाढ़विद्धत्वान्न शक्तः स्थातुमाहवे । ततः स शिबिरं गत्वा स्थितवान् पुरुषर्षभः ॥ ७ ॥ तथेत्युक्तः केशवस्तु पार्थेन यदुपुङ्गवः । पर्यावर्त्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम् ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वार्जुनं कृष्णः सैनिकानिदमब्रवीत् । परानभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वं भद्रमस्तु वः ॥९॥

और कर्णके भयानक मरणकी कथाको कहेंगे ॥२॥ इन्द्रने युद्धमें महातेजस्वी वज्रसे जैसे वृत्रका नाश किया था तैसे ही तूने धनुष पर तेज कियेहुए बाण चढाकर कर्णका नाश किया है ॥३॥ हे कुन्तीनन्दन ! अब तेरे इस लोकमें प्रसिद्ध और यश देनेवाले पराक्रमको हम दोनों बुद्धिमान् कुरुराजके पास चलकर निवेदन करें ॥ ४ । तूने बहुत दिनोंसे अपने मनमें कर्णके मारनेका विचार कररक्खाथा, वह काम तू आज धर्मराजको निवेदन करके उऋण हो। ५ तेरा और कर्णका महायुद्ध चलरहा था, उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिर दोनोंका युद्ध देखनेको आये थे।६।परन्तु वह बहुत ही घायल होजानेके कारण संग्राममें खड़े नहीं रहसके थे, इसलिये फिर छावनीमेंको लौटगये थे इसलिये आओ हम उनके पासचलें७ श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर अर्जुनने कहा, कि-"बहुत अच्छा चलिये" तब धीरजधारी श्रीकृष्णने अर्जुनके राजरथको रणमें से छावनीकी ओरको फेरदिया ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णने अर्जुनसे ऐसा कहकर सैनिकोंसे कहा, कि-तुम शत्रुओंके सामने तयार हुए खड़े रहना, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ९ ॥ सैनिकोंको ऐसी आज्ञा

धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम् । युयुधानञ्च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै । तावद्भवद्भिर्यत्तैस्तु भवितव्यं नराधिपैः ॥ ११ ॥ स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम् । पार्थमादाय गोविंदो ददर्श च युधिष्ठिरम् ॥ १२ ॥ शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे । अगृह्णीताञ्च मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ ॥ १३ ॥ तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षादश्रूण्यवर्तयत् । राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥ उवाच च महाबाहुः पुनः पुनररिन्दमः । वासुदेवार्जुनौ प्रेम्णा तावुभौ परिषस्वजे ॥ १५ ॥ तत्तस्मै तद्यथावृत्तं वासुदेवः सहार्जुनः । कथयामास कर्णस्य निधनं यदुनन्दनः १६

देकर गोविन्दने धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, नकुल, सहदेव, भीमसेन और सात्यकीसे कहा, कि-॥१०॥ अर्जुनने कर्णको मारडाला है, यह समाचार हम राजा युधिष्ठिरको सुना आवें, तबतक तुम सब राजे तयार हुए यहाँ ही खडे रहना ॥ ११ ॥ शूर राजाओंने कहा, कि-बहुत अच्छा तयार खडे हैं, तब श्रीकृष्णजीने जानेकी इच्छा दिखायी और तुरन्त ही गोविन्द अर्जुनको लेकर राजा युधिष्ठिरकी छावनीकी ओरको चलेगये और तहाँ जाकर राजासे मिले ॥ १२ ॥ राजसिंह युधिष्ठिर सोनेके उत्तम पलँग पर सोरहे थे तहाँ जा वे दोनों प्रसन्न मनसे राजा युधिष्ठिरके चरणको हाथसे छूकर खडे होगये, राजा युधिष्ठिर उन दोनोंको प्रसन्न देखकर समझगये, कि इन्होंने कर्णको मारडाला है, इसलिये हर्षसे आँसू बहातेहुए शय्यापरसे उठकर खडेहोगये ॥ १३ ॥१४॥ और शत्रुओंका दमन करनेवाले युधिष्ठिर प्रेमके साथ श्रीकृष्ण और अर्जुनको छातीसे लगाकर मिले ॥ १५ ॥ फिर यदुकुलमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने कर्णके मरणके विषयमें जैसा कुछ हुआ था वह सब वृत्तान्त राजा युधिष्ठिरको कहसुनाया ॥ १६ ॥ और दोनों

ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत् । युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः ॥ १७॥ दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च पाण्डवश्च वृकोदरः । त्वञ्चापि कुशली राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८ ॥ मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामाल्लोमहर्षणात् । क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पाण्डव ॥ १९ ॥ हतो वैकर्त्तनो राजन् सूतपुत्रो महारथः । दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्द्धसि भारत ॥२०॥ यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत् पुरुषाधमः । तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम् ॥२१॥ शेतेऽसौ शरपूर्णाङ्गो शत्रुस्ते कुरुपुङ्गव । तं पश्य पुरुषव्याघ्रं विभिन्नं बहुधा शरैः ॥ २२ ॥ हतामित्रामिमामुर्वीमनुशाधि महाभुज । यत्तो भूत्वा सहास्माभिर्भुङ्क्ष्व

हाथ जोड़कर जराएक मुसकुराते हुए शत्रुरहित हुए राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि—॥ १७ ॥ गांडीव धनुषधारी अर्जुन भीम, नकुल, सहदेव और तुम कुशलपूर्वक हो यह बड़े आनन्दकी बात है १८ हे पांडव ! वीरोंका संहार करनेवाले और रोमाञ्च खड़े करनेवाले इस महासंग्राममें तुम बचगये हो,अब आगेको तुम्हे जो कुछ काम करना हो वह करो ॥ १९ ॥ हे राजन् ! जिसको वैकर्त्तन नाम से पुकारते थे वह सूतपुत्र महारथी कर्ण मारागया और तुम्हारा विजय तथा अभ्युदय हुआ, यह बहुत ही अच्छा हुआ ॥ २० ॥ जो पुरुषाधम द्रौपदीको जुएमें जीतीहुई देखकर हँसा था उस सूतपुत्र कर्णके रुधिरको आज रणभूमि पीरही है ॥ २१ ॥ हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ पुरुषव्याघ्र ! तुम्हारे शत्रुके सब अङ्गोंमे बाण गुभ गये हैं और वह बहुतसे बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर रणभूमिमें पड़ा है उसको तुम देखो ॥ २२ ॥ और हे महाभुज राजन् ! शत्रुरहित हुई इस पृथिवी पर राज्य करो और सावधान होकर हमारे साथ अनेकों ऐश्वर्योंको भोगो ॥ २२ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! महात्मा कृष्णकी इस बातको सुनकर

भोगांश्च पुष्कलान् ॥ २३ ॥ सञ्जय उवाच । इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः । धर्मपुत्रः महृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ दिष्ट्या दिष्ट्येति राजेन्द्र वाक्यं चेदमुवाच ह । नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन ॥ २५ ॥ त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तम् । न तच्चित्रं महाबाहो युष्मद्बुद्धिप्रसादजम् ॥ २६ ॥ प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठः साङ्गदं दक्षिणं भुजम् । उवाच धर्मभृत् पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ २७ नरनारायणौ देवौ कथितौ नारदेन मे। धर्मात्मानौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ२८असकृच्चापि मेधावी कृष्णद्वैपायनो मम।कथामेतां महाभागां कथयामास तत्त्ववित् २९ तव कृष्ण प्रसादेन पाण्डवोयं धनञ्जयः।जिगायाभिमुखः शत्रून्न चासीद्विमुखः क्वचित् ॥३०॥ जयश्चैव ध्रुवोस्माकं न त्वस्माकं

धर्मपुत्र धर्मराज मनमें प्रसन्न हुए और कृष्णसे कहने लगे, कि—॥ २४ ॥ हे महाबाहु देवकीनन्दन ! वधाई है ! बधाई है !! बड़ा ही अच्छा काम हुआ है, आपके लिये यह काम कुछ अचरजकी बात नहीं है ॥ २५ ॥ तुम सारथी थे, तब ही अर्जुन उद्योग करके कर्णको मारसका है, हे महाबाहु कृष्ण ! कर्ण मारागया, इसमें मैं कुछ भी आश्चर्य नहीं मानता हूँ, आपकी बुद्धिके प्रसादसेही यह काम सिद्ध हुआ है ॥२६ ॥ हे कुरुसत्तम राजन् ! धर्मात्मा युधिष्ठिरने ऐसा कहकर अपना बाजूबन्दवाला दाहिना हाथ ऊँचा करके श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कहा ॥ २७ ॥ कि—मुझसे पहले नारदजीने कहा था, कि—महात्मा कृष्ण और अर्जुन प्राचीन महर्षि नर नारायण नामके देवता हैं और यही कथा बुद्धिमान् तत्त्वज्ञानी वेदव्यासजीने भी मुझसे वार२ कही थी ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे कृष्ण ! इस अर्जुनने तुम्हारी कृपासे शत्रुओंके ऊपर चढ़ायी करके उनको जीता है, अर्जुन किसी वार भी रणमेंसे पीछेको

पराजयः । यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ३१ ॥ भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च महात्मा गौतमो कृपः । अन्ये च बहवः शूरा ये च तेषां पदानुगाः ॥३२॥ त्वद्बुद्ध्या निहते कर्णे हता गोविन्द सर्वथा । इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु तं रथं हेमभूषितम् ॥ ३३ ॥ श्वेतवर्णैर्हयैर्युक्तं कालवालैर्मनोजवैः । आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ ३४ ॥ प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं ततः । कृष्णार्जुनाभ्यां वीराभ्यामनुमन्त्र्य ततः प्रियम् ॥ ३५ ॥ आभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफाल्गुनौ । ददर्श च रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥ यथा कदम्बकुसुमं केसरैः सर्वतो वृतम् । चितं शरशतैः कर्णं धर्मराजो ददर्श सः ॥ ३७ ॥ गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्रशः । दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यन्ते वै वृषं

लौटकर नहीं आया है ॥ ३० ॥ और तुमने युद्धमें जबसे अर्जुनका सारथीपना स्वीकार किया है, तबसे हमारी अवश्यही विजय है, पराजय है ही नहीं ॥ ३१ ॥ हे गोविन्द ! तुम्हारीही बुद्धिसे महात्मा भीष्म द्रोण और कर्ण मारे गये हैं, इसलिये उनके पीछे पीछे चलनेवाले दूसरे वीरभी सर्वथा मरही चुके हैं, इस प्रकार श्रीकृष्णसे कहकर सफेद रङ्ग और काली पूँछवाले तथा मनकी समान वेगवाले चार घोड़ोंसे जुते, सोनेसे सजायेहुए राजरथमें बैठकर अपनी सेनासे घिरेहुए वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ प्रिय विषयोंकी बातें करते२ राजा युधिष्ठिर रणभूमि देखनेको चलदिये और वहाँ जाकर देखा तो पुरुषश्रेष्ठ कर्ण रणभूमि में पड़ाहुआ था ॥ ३२—३६ ॥ सैंकड़ों बाणोंसे बिंधेहुए कर्णको राजा युधिष्ठिरने केसरसे घिरेहुए कदम्बके पुष्पकी समान देखा ॥ ३७ ॥ सुगन्धित तेलसे भरीहुई सोनेकी हजारों डिबियोंसे कर्णकी लहासके पास उजाला किया गया तब धर्मराज तथा उनके साथी रणमें पड़ेहुए कर्णको देखनेलगे ॥ ३८ ॥

तदा।३८।सञ्छिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदली कृतम् । सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥ सञ्जातप्रत्ययोतीव वीक्ष्य चैव पुनः पुनः । प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवफाल्गुनौ ।४०। अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह । त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः ॥ ४१ ॥ हतं श्रुत्वा नरव्याघ्रं राधेय-मतिमानिनम् । निराशोद्य दुरात्मा स धार्त्तराष्ट्रो भविष्यति ।४२। जीविते चैव राज्ये च हते कर्णे महारथे । त्वत्प्रसादाद्वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ ॥४३ ॥ दिष्ट्या जयसि गोविन्द दिष्ट्या शत्रु-र्निपातितः । दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च विजयी पांडुनन्दनः ।४४। त्रयोदश समास्तीर्णा जागरेण सुदुःखिताः । स्वप्स्यामोद्य सुखं

वाणोंके प्रहारोंसे कर्णका कवच टूटगया था और शरीर चिरगया था उस कर्णको तथा उसके पुत्रको मराहुआ देखा तथा उसको वार२ वारीकीके साथ देखकर राजा युधिष्ठिरने निश्चय किया, कि-वास्तवमें कर्णमें अब प्राण नहीं हैं, तदनन्तर मनुष्योंमें व्याघ्र समान श्रीकृष्णकी तथा अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहनेलगे, कि–हे गोविन्द ! तुम वीर, विद्वान् और हमारे नायक हो, आपसे रक्षा पाकर आज मैं अपने भाइयोंके साथ पृथिवीका राजा हुआ हूँ ॥ ३९–४१ ॥ नरोंमें व्याघ्रसमान तथा महाअभिमानी राधापुत्र कर्णको लडाईमें मराहुआ सुनकर आज दुष्टात्मा दुर्योधन अपने जीवन और राज्यके लिये निराश होजायगा, हे महापुरुष ! आपकेही अनुग्रहसे महारथी कर्णका नाश हुआ है और हमभी कृतार्थ हुए हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे गोविन्द ! तुमने विजय की है, शत्रुका नाश किया है और गांडीवधनुषधारी पांडुपुत्र अर्जुनकी विजय हुई यह बडा ही अच्छा हुआ है ॥ ४४ ॥ हे महाबाहु कृष्ण ! हम तेरह वर्षसे बड़े ही दुःखी थे और जाग २ कर ही रातें बितारहे थे, परन्तु अब आपकी कृपासे रातमें सुखसे

रात्रौ त्वत्प्रसादान्महाभुज ॥ ४५ ॥ एवं स बहुशो राजा प्रश-
शंस जनार्दनम् । अर्जुनञ्च कुरुश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥
सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा च कर्णं निहतं सपुत्रं पार्थसायकैः । पुन-
र्जातमिवात्मानं मेने स च महीपतिः ॥ ४७ ॥ समेत्य च महाराज
कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । हर्षयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः ४८
नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः । सात्यकिश्च महाराज
वृष्णीनां प्रवरो रथः ॥ ४९ । धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पांण्डु-
पांचालसृञ्जयाः । पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने ॥५०॥
ते वर्द्धयित्वा नृपतिं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । जितकाशिनो लब्ध-
लक्ष्या युद्धशौण्डाः महारिणः ॥ ५१ ॥ स्तुवन्तः स्तवयुक्ताभिर्वा-
ग्भिः कृष्णौ परन्तपौ । जग्मुः स्वशिबिरायैव मुदा युक्ता महा-
रथाः ॥ ५२ ॥ एवमेष क्षयो वृत्तः सुमहाँल्लोमहर्षणः । तव दुर्म-

सोवेंगे ॥ ४५ ॥ इसप्रकार धर्मराज युधिष्ठिर कृष्ण और कुरु-
श्रेष्ठ अर्जुनकी बहुतही प्रशंसा करनेलगे ॥ ४६ ॥ तथा अर्जुन
के बाणोंसे कर्णको पुत्रसहित मराहुआ देखकर राजा युधिष्ठिर
अपनेको नये जन्ममें आयाहुआ माननेलगे ॥ ४७ ॥ तब
हे महाराज ! महारथी राजेभी इकट्ठे होकर प्रसन्न—मनसे कुन्ती-
पुत्र राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करने लगे ॥ ४८ ॥ कर्णके मारे
जाने पर पांडुपुत्र भीमसेन, नकुल, सहदेव, वृष्णियोंके मुख्य
महारथी सात्यकी, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पांडु पंचाल और
सृञ्जयोंकी सेनाओंने राजा युधिष्ठिरको मान दिया (सलामी दी)
॥ ४९–५० ॥ विजयसे शोभायमान दीखनेहुए, लक्षको बींधने
वाले और युद्धमें चतुर ये महारथी धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको
मान देनेके अनन्तर स्तुतिवाली वाणीसे परन्तप कृष्ण और
अर्जुनकी स्तुति करते तथा प्रसन्न होनेहुए अपनी २ छावनीकी
ओरको चलेगये ॥ ५१–५२ ॥ सञ्जयने कहा कि हे राजा धृत-

न्विते राजन् किमर्थमनुशोचसि ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वैतदप्रियं राजा धृतराष्ट्रोम्बिकासुतः । पपात भूमौ निश्चेष्टश्छिन्नमूल इवद्रुमः ॥ ५४ ॥ तथा सा पतिता देवी गान्धारी दीर्घदर्शिनी । शुशोच बहुलालापैः कर्णस्य निधनं युधि । ५५ ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्विदुरो नृपतिं सञ्जयस्तथा । पर्याश्वासयताञ्चैव तावुभावेव भूमिपम् ॥ ५६ ॥ तथैवोत्थापयामासुर्गान्धारीं कुरुयोषितः । स दैवं परमं मत्वा भवितव्यञ्च पार्थिवः ॥ ५७ ॥ परां पीडां समाश्रित्य नष्टचित्तो महातपाः । चिन्ताशोकपरीतात्मा न जज्ञे मोहपीड़ितः । ससमाश्वासितो राजा तूष्णीमासीद्विचेतनः ॥५८॥ इदं महायुद्धमखं महात्मनोर्द्धनञ्जयस्याधिरथेश्च यः पठेत् । स

राष्ट्र ! तुम्हारे अन्यायके कारणसे इसप्रकार रोमाञ्च खड़े करने वाला बड़ाभारी संहार हुआ है, अब तुम शोक क्यों करते हो?॥५३॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय ! अम्बिका के पुत्र राजा धृतराष्ट्र ऐसे अप्रिय समाचारको सुनकर सुन्न होगये और जड़कटे वृक्षकी समान पृथिवीपर ढहपड़े ॥ ५४ ॥ ऐसे ही दीर्घ दृष्टिवाली देवी गान्धारी भी पृथिवी पर ढहपड़ी और युद्धमें मारेगये कर्णका बड़ा ही विलाप करती हुई शोक करने लगी ॥ ५५ ॥ विदुर गान्धारीको और सञ्जय राजा धृतराष्ट्रको पकड़े हुए थे तथा वे दोनोंजने राजा धृतराष्ट्रको धीरज देनेलगे ५६ कौरवराजकी रानियोंने गान्धारीको उठाकर धीरज दिया, महातपस्वी राजा धृतराष्ट्र बड़े ही दुःखमें पडजानेसे मूर्छित होगये, उनका मन चिन्ता और शोकसे दबगया तथा दुःखकी पीडामें वह सब भूलगये, जब विदुर और सञ्जयने राजा धृतराष्ट्रको धीरज देकर शान्त किया तब वह दैव और भवितव्यताको मुख्य मानकर अचेत दशामें मौन ही बैठेरहे ॥ ५७॥ ५८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जो पुरुष महात्मा धनञ्जय और कर्णके इस महा-

सम्यगिष्टस्य मखस्य यत् फलं तदाप्नुयात् संश्रवणाच्च भारत ५९
मखो हि विष्णुर्भगवान् सनातनो वदन्ति तच्चाग्न्यनिलेन्दुभानवः।
अतोऽनसूयुः शृणुयात् पठेच्च यः स सर्वलोकानुचरः सुखी भवेत् ६०
तां सर्वदा भक्तिमुपागता नराः पठन्ति पुण्यां वरसंहितामिमाम्।
धनेन धान्येन यशसा च मानुषा नंदन्ति ते नात्र विचारणास्ति ६१
अतोऽनसूयुः शृणुयात् सदा तु वै नरः स सर्वाणि सुखानि चाप्नुयात्।
विष्णुः स्वयम्भूर्भगवान् भवश्च तुष्यन्ति ते तस्य नरोत्तमस्य ६२
वेदावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह दृष्टा रणे बलं क्षत्रियाणां जयो युधि।
धनज्येष्ठास्त्वापि भवन्ति वैश्याः शूद्रारोग्यं प्राप्नुवन्तीह सर्वे ॥६३॥
तथैव विष्णुर्भगवान् सनातनः स चात्र देवः परिकीर्त्यते यतः।

युद्धरूप यज्ञके वृत्तान्तको पढ़ता है अथवा सुनता है उस पुरुषको अच्छे प्रकारसे कियेहुए यज्ञका फल मिलता है ॥ ५९ ॥ सनातन भगवान् विष्णु ही यज्ञरूप हैं अग्नि, वायु, चन्द्रमा और सूर्य भी उनको ही यज्ञ कहते हैं, इसलिये जो मनुष्य ईर्षारहित होकर इस युद्धयज्ञको सुनता है अथवा इसका पाठ करता है वह सब लोकोंमें पहुँचसकता है और सुखी होता है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य भक्तिके साथ इस पवित्र कर्णसंहिताको पढते हैं अथवा सुनते हैं वे धन, धान्य और यश पाते हैं, इसमें जरा सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य ईर्षारहित होकर नित्य इस संहिताका पाठ करता है अथवा सुनता है उसको सब सुख मिलते हैं और भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव उस उत्तम पुरुषके ऊपर प्रसन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ इस कर्णपर्वको सुननेसे ब्राह्मणको बिना पढ़े वेदोंकी प्राप्ति होती है, क्षत्रिय रणमें बलवान् होकर विजय पाता है वैश्य बहुतसा धन धान्य पाता है और शूद्र आरोग्य पाते हैं ॥ ६३॥ इस संहितामें सनातन विष्णु भगवानके गुण गाये गये हैं, इसकारण इस संहिताको पढ़ने अथवा श्रवण करनेसे मनुष्य

ततः स कामाँल्लभते सुखी नरो महामुनेस्तस्य वचोऽर्चितं यथा ९४
कपिलानां सवत्सानां वर्षमेकं निरन्तरम् । यो दद्यात् सुकृतं तद्धि श्रवणात् कर्णपर्वणः ॥ ९५ ॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां कर्णपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

की सब कामनायें सिद्ध होती हैं और वह सुखी होता है ऐसा महामुनि वेदव्यासजीका उत्तम वचन है ॥ ९४ ॥ जो मनुष्य एक वर्षतक नित्य बछड़े सहित कपिला गौओंका दान करता है, उसको जो पुण्य मिलता है, वही पुण्य इस कर्णपर्वका श्रवण करनेसे प्राप्त होता है ॥९५॥ छियानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९६ ॥

इति श्रीमहाभारतका कर्णपर्व मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र
गौडवंश्य भोलानाथात्मज ऋषिकुमार
रामस्वरूपशर्मा द्वारा सम्पादित
हिन्दी भाषानुवाद सहित
समाप्त
शुभम्भूयात्
ॐ शम् ।

समाप्त कर्णपर्व.

